महाकवि रत्नाकरवर्णिरचित

भरतेश वैभव

[भाग १-पृष्ठ १ से ४३१ तक]

[भाग २-पृष्ठ १ से २७६ तक]

हिन्दी अनुवाद

पं० वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

प्रस्तावना

भरतेशवैभव और रत्नाकरवर्णी

साहित्य संसारमें कर्नाटक साहित्यके लिए बहुत ऊंचा स्थान है। कर्नाटक भाषामें जैनसाहित्य विपुल रूपसे अंकित किये गये हैं। अन्यसाहित्योंकी अपेक्षा इसमें शब्दमाधुर्य, भावगांभीर्य व अपूर्व रचनाकौशल होनेसे सुश्राव्य ही नहीं सुग्राह्य भी हुआ करता है। जैन साहित्यका बहुभाग अंश कर्नाटक भाषामें अंकित कहा जाय तो अनुचित न होगा। कर्नाटक देशमें बड़े-बड़े आगमोंके ज्ञाता कवि हुए हैं। उनमें सबसे अधिक श्रेय इस क्षेत्रमें प्राप्त हुआ है तो रत्नाकरवर्णीको कह सकते हैं। उसकी रचनायें सभी दृष्टिसे अद्वितीय हैं।

उपर्युक्त कविने कर्नाटक कविताओंमें भरतचक्रवर्तीका स्वतंत्र जीवनचरित्र चित्रित किया है। इस ग्रंथको कर्नाटकमें "भरतेशचरिते" कहनेकी पद्धति चली आ रही है। परन्तु कविने स्वयं पीठिकामें कहा है कि "श्रीभरतेशवैभवविदु" अर्थात् यह भरतेशवैभव है, 'भरतेश वैभववेंब काव्यवनिदनोरेदेनु सुजिगळालिपुदु' अर्थात् भरतेशवैभव नामक काव्यको मैंने कहा है, सज्जन लोग सुनें। इसमें इस ग्रन्थका नाम भरतेशवैभव ऐसा जान पड़ता है। सचमुचमें इसमें भरतके वैभवका ही वर्णन किया है, इसलिए इसका यही नाम उपयुक्त है। कोई कोई इसे भरतेश-संगति और अण्णाळचरितके नामसे कहते हैं। यह ग्रन्थ कर्नाटकके सांगत्य छंदमें निर्मित होनेसे पहिला नाम एवं इस कविको अण्णागळु (भाईसाहेब) कह करके पुकारनेकी पद्धति होनेसे इसका दूसरा नाम रूढ़िमें आया होगा।

ग्रंथ प्रमाण :

यह ग्रन्थ पांच कल्याणोंसे विभक्त है जिनको कविने क्रमसे भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय, अर्ककीर्तिविजय इस प्रकार नाम दिये हैं। इन पांचकल्याणोंमें अस्सी संधियां एवं ९९६० श्लोक संख्या है। देवचंद्रकी राजावलि कथासे इस ग्रन्थमें ८४ संधियोंका होना सिद्ध होता है। परन्तु ४ संधियां इस समय अनुपलब्ध हैं।

कवि :

इस ग्रन्थकर्ताका नाम रत्नाकरवर्णी है। कविने अपनेको क्षत्रिय वंशज कहा है। उसमें श्रीमन्धर स्वामीको अपने पिता, दीक्षा गुरुके स्थानमें चारुकीर्तिको एवं

मोक्षाग्रगुरु हंसनाथ (परमात्मा) इस प्रकार उल्लेख किया है । देवचन्द्रने अपने ग्रन्थमें इस कविका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह कर्नाटकके सुप्रसिद्ध क्षेत्र मूडबिद्रीके सूर्यवंशके राजा देवराजका सुपुत्र था एवं उसका नाम रत्नाकर रखा गया । शेष उपाधियाँ उसके बादकी अवस्था की हैं ।

रत्नाकर बाल्यकालमें ही काव्यालंकार शास्त्रमें अत्यन्त प्रवीण था एवं सार-त्रय टीका, कुन्दकुन्दके ग्रन्थ, समाधिशतक, समयसार, योगरत्नाकर, नियमसार, अध्यात्मसार, स्वरूपसंबोधन, इष्टोपदेश आदि ग्रन्थोंको मननपूर्वक अभ्यासकर उस देशके भैरव राजाके दरबारमें प्रसिद्ध विद्वान् था । उसको लोकमें सबसे अधिक "निरंजनसिद्ध और दिगम्बरपुरुष" पर प्रेम था । इसे शृंगारकवि नामकी भी उपाधि प्राप्त थी ।

रत्नाकर भैरवराजाका दरबारी कवि था । इसकी विद्वत्ताको देखकर राज-कन्या मोहित हो गई । रत्नाकर भी उसके मोहपाशमें आ गया । वह उसपर आसक्त होकर शरीरके वायुओंको वशमें करके, वायुनिरोधयोगके बलसे महलमें अदृश्य पहुँचकर उस राजपुत्रीके साथ प्रेम करता था । यह बात धीरे-धीरे राजा-को मालूम होनेपर राजाने उसे पकड़नेका प्रयत्न किया । उस दिन रत्नाकरने अपने गुरु महेंद्रकीर्तिसे पंचाणुव्रतको लेकर अध्यात्मतत्वमें अपने आत्माको लगाने को प्रारम्भ किया । उसी समय भट्टारकजीके शिष्य विजयण्णाने एक द्वादशानुप्रेक्षा नामक ग्रंथकी संगीत में रचना की थी, जिसका बहुत आदरके साथ हाथीके ऊपर जुलूस निकाला गया । तब रत्नाकरने अपने भरतेशवैभवको भी हाथीके ऊपर रखकर जुलूस निकालनेके लिए भट्टारकजीसे प्रार्थना की । तब भट्टारकजीने कहा कि उसमें दो तीन शास्त्रविरुद्ध दोष हैं । इसलिए वैसा नहीं कर सकते हैं । तब रत्नाकरने इस विषयपर उनसे आग्रह किया एवं कुछ अनबनसा हुआ तो उन्होंने ७०० घरके श्रावकोंको कड़ी आज्ञा दे दी कि इस रत्नाकरको कहीं भी आहार नहीं दिया जाय । तब रत्नाकर अपनी बहिनके घरमें भोजन करते हुए, जिन धर्मसे रुष्टकर 'आत्मज्ञानिको सभी जाति कुल बराबर हैं' ऐसा समझकर गलेमें लिंग बाँधकर लिंगायत बन गया । वहाँपर वीरशैवपुराण, बसवपुराण, सोमेश्वरशतक आदिकी रचना की ।

कविके विषयमें और एक कथा सुननेमें आती है । रत्नाकर बाल्यकालमें ही वैराग्यको प्राप्त कर चारुकीर्तियोगीसे दीक्षा लेकर योगाभ्यास करता था । प्रातःकाल उठते ही अपने साथीदारोंको एवं शिष्योंको उपदेश देता था । दिनपर दिन उसके शिष्यवर्गकी वृद्धि होती जाती थी । कुछ लोग उसके प्रभावको देखकर उससे जलते थे । उन लोगोंने एक दिन प्रातःकाल होनेके पहिले रत्नाकरके पलंग—

के नीचे एक वेश्याको ला बिठाकर स्वयं यथावत् शास्त्र सुननेको बैठ गये। उस वेश्याने कुछ समय बाद अपने आभरणोंका शब्द किया तो उन ईर्षालु लोगोंने 'यह क्या है' ऐसा कहकर उस वेश्याको बाहर निकाला व रत्नाकरका अपमान किया। रत्नाकर एकदम उठकर वहाँसे चला गया। कुछ लोग जाकर बहुत प्रार्थना करने लगे। परन्तु वह पीछे नहीं लौटा। जाते-जाते एक नदीको पार कर रहा था, तब भक्तोंने शपथपूर्वक प्रार्थना की तो भी "मुझे ऐसे दुष्टोंका संसर्ग नहीं चाहिए। मैं आज ही इस जैनधर्मको तिलांजलि देता हूँ" ऐसा कहकर उस नदीमें डूब गया। वहाँसे उठकर एक पर्वतपर चला गया। पर्वतपर एक शैवग्रन्थका हाथीपर जुलूस निकालते हुए देखकर उस ग्रन्थको बांचकर उसमें कुछ भी रस नहीं है ऐसा कह दिया। सब लोगोंने राजासे इसकी शिकायत की। राजाने उसे सरस ग्रन्थ समझकर उसके सम्मानके लिए आज्ञा दी थी। रत्नाकरको बुलाकर राजा कहने लगा, "तुम्हारा रस कौनसा है"। तब रत्नाकरने ९ मासकी अवधि माँगी। उसके बाद इस भरतेशवैभवको रचकर राजाको दिखाया कि इसमें रस है। तब राजा इस काव्यको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बड़े-बड़े विद्वान् इसके काव्यसे मुग्ध हो गये। राजाने कविका पूर्ण सत्कार करके लिंगायत होनेके लिए आग्रह किया, कविने उस राजाको प्रसन्न रखनेके लिए लिंगको बाँध लिया। परन्तु कहा कि मैं जिस समय मरूंगा मेरा दाहसंस्कार वगैरह जैन ही करेंगे। मैं बाहरसे लिंगायत होनेपर भी अन्दरसे जैन हूँ एवं यह लिंग नहीं केवल चाँदीकी पेटी है ऐसा मनमें समझता था। अन्तमें जैन होकर ही मर गया।

इन दोनों कथाओंको देखनेपर मालूम होता है कि कवि पूर्वमें जैन होकर किसी समय किसी कारणसे लिंगायत बनकर पुनः जैन बन गया था।

यद्यपि इस ग्रन्थकी रचना शुभस्पर्धासे हुई है, यह बात उपर्युक्त कथा सन्दर्भोंसे मालूम होती है, तथापि कवि स्पष्ट कहते हैं कि मैंने इस काव्यकी किसीके साथ मत्सरबुद्धिसे रचना नहीं की। परमात्माकी आज्ञासे आत्मसंतोषके लिए मैंने इसकी रचना की। चाहे इसे कोई पसन्द करे या न करे इसकी मुझे चिंता नहीं इत्यादि। संसारके नियमानुसार कविने अपने काव्यके प्रति आदरकी अपेक्षा नहीं की तो भी उसका यथेष्ट आदर हुआ। अर्थात् जिस पदार्थकी हम उपेक्षा करते हैं वह तो हमें मिल जाता है। जिसको हम चाहते हैं, वह हमसे दूर चला जाता है। कविने इस काव्यका आदर एवं अपने लिए कीर्तिकी इच्छा नहीं की। परन्तु वे दोनों बातें उसे अनायास ही प्राप्त हुई। कीर्ति चाहनेसे नहीं आती, सत्कार्य करनेसे अपने आप आती है।

कविकी इतर रचनायें :

कविने भरतेशवैभवके अलावा रत्नाकरशतक, अपराजितशतक, त्रिलोक–

शतक नामक शतकत्रय ग्रन्थकी रचना की है एवं करीब २००० श्लोक प्रमाण अध्यात्म गीतोंकी रचना की है। उपर्युक्त शतकत्रयमें रत्नाकरशतकमें वैराग्य रस अपराजितशतकमें भक्तिरस एवं तीसरे शतकमें त्रिलोकका वर्णन है। वैराग्य और भक्तिशतक बहुत ही हृदयग्राही ढंगसे लिखे गये हैं। भरतेशवैभवमें अपने गुरुको चारुकीर्ति व शतकत्रयमें देवेंद्रकीर्तिके नामसे कवि उल्लेख करते हैं। इससे ये दोनों ग्रंथ भिन्न-भिन्न रत्नाकरके हैं ऐसा लोग समझेंगे। परन्तु यह बात नहीं है। कविके जीवनघटनामें दीक्षागुरु चारु-कीर्ति होनेपर भी जब उन्होंने उसे बहिष्कृत किया, तब वह देवेंद्रकीर्ति के पास जाकर रहा होगा। चारुकीर्ति मूडबिद्रीके भट्टारकका नाम है। देवेंद्रकीर्ति होम्बुच गादीके भट्टारक हैं। दोनों ग्रंथोंकी रचनाशैली, यत्र-तत्र वर्णनसादृश्य आदि बातोंको देखनेपर यह बात निश्चित हो जाती है कि दोनोंके कर्ता एक ही प्रसिद्ध रत्नाकर हैं। रत्नाकरको शृंगारकवि हंसराज नामक उपाधि प्राप्त थी। यदि शतकत्रयके कर्तासे यह रत्नाकर भिन्न माना जाए तो उस रत्नाकरका कोई शृंगार काव्य होना चाहिये जिससे वह उपाधि चरितार्थ होती। परन्तु अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। यही भरतेश वैभव उस उपाधिके लिये कारण है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिए ये सब रचनायें रत्नाकरवर्णीकी हैं एवं कर्नाटक साहित्य-में अद्वितीय हैं।

कालविचार

रत्नाकरने अपने कालके विषयमें त्रिलोकशतककी रचना करते समय कहा है कि "मणिशैलंगति इन्दु शालिशक।" इस प्रकार कहनेसे इसका समय शालि-वाहन शके वर्ष १४७९ होता है अर्थात् सन् १५५७ है। आजसे करीब-करीब चारसौ वर्ष पूर्वका यह रत्नाकर है। रत्नाकरके विषयमें हमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। उसकी प्रखर विद्वत्ता उसकी रचनाओंसे ही स्पष्ट है। किस विषयमें उसकी गति नहीं थी हम यह कहनेमें असमर्थ हैं।

अपने ग्रन्थमें कविने प्रत्येक विषयका चित्रण किया है। शृंगार, अलंकार, अध्यात्म, संगीत आदि विषयोंका वर्णन करते हुए भोगयोगियोंको हर्ष उत्पन्न करनेकी शक्ति उसमें अद्भुत थी। यही कारण है कि उसका यह काव्य विद्वानों-की, यहांतक कि बड़े-बड़े योगियोंको आदरणीय हुआ।

कथासार

कौशलदेशकी अयोध्यानगरीमें श्रीवृषभनाथ तीर्थंकरके पुत्र षट्खंडाधिपति भरतचक्रवर्ती बहुत आनन्दके साथ राज्यपालन करता था। वह अत्यन्त निपुण

एवं प्रजाओंका आन्तरिक हितचिंतक था। सदा उसे आत्मविनोदके कार्यमें प्रसन्नता होती थी। वह अपने दरबारमें बहुतसे विद्वान् कवियोंके साथ कविता-विनोदमें, संगीत विद्वानोंके साथ तद्विषयमें, प्रातःकालके समयको बिताता था। देवपूजादि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर ही वह प्रतिनित्य दरबारमें आता था। दरबार बरखास्तकर सत्पात्रदान देनेके कार्यमें लगता था। मुनियोंको आहार देकर भोजन करनेमें अपनेको धन्य समझता था। भोजनानंतर दिनके शेष भागमें अपनी ९६ हजार रानियोंके साथ भोगयोगमें लीन होकर सहयोगी होकर बहुतसे सुखोंका अनुभव करते हुए भी योगीके समान रहता था। इस प्रकार उसने अपने सत्कृत्योंसे सबलयशको प्राप्त किया। **भोगविजय**

एक दिन दोपहरेके समय आयुधशालामें आयुधपूजा आदि करके वह राजा भरत दिग्विजयके लिए निकला। सबसे पहले मागध वरतन, प्रभास इत्यादि व्यन्तर राजाओंसे सम्मानको प्राप्तकर उनसे बहुमूल्य भेंटको प्राप्त करते हुए, अन्य षट्खण्डवर्ति राजाओंसे स्त्री रत्नादि भेंट प्राप्त करते हुए बहुत सुखके साथ उसने दिग्विजययात्रा की। वह साठ हजार वर्ष दिग्विजयमें रहा। बीचमें उसे बारह सौ तद्भव मोक्षगामी पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति हुई। उन सबका यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारोंको बहुत समारम्भके साथ करते हुए जब दिग्विजयसे लौटा तब उसके छोटे भाई बाहुबलिने उससे विरोध व्यक्त किया। युद्धके लिए सन्नद्ध होकर आया। भरतने अपने छोटे भाईके साथ युद्ध न करके अपने वचनचातुर्यसे ही उसे जीत लिया। बाहुबलि अपने अपराधके लिए पश्चात्ताप कर दीक्षा लेकर जिनयोगी बन गया। भरतेश बहुत समारम्भके साथ निज नगरप्रवेश कर दिग्विजयकी थकावटको दूर करने लगा। **दिग्विजय**

बाहुबलि जिन दीक्षा लेकर जंगलमें जाकर घोर तपश्चर्या कर रहा था। तथापि उसे आत्मसिद्धि नहीं हुई। इस समाचारको सुनकर भरतने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवंतके समवशरणमें जाकर इसका कारण पूछा। पूछनेपर उसके हृदयमें अभीतक शल्य मौजूद है, जो आत्मसिद्धीके लिये बाधक है। ऐसा मालूम कर उसी जंगलमें जाकर बाहुबलि योगीसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना कर उसके शल्यको दूर कर उसे केवलज्ञानकी प्राप्ति कराई। भरतकी माता यशस्वती देवी भी अनन्तवीर्य स्वामीसे दीक्षा लेकर अर्जिका बन गई। कैलास पर्वतमें जो जिननिवास निर्माण कराये गये थे उनका मुखवस्त्रोद्घाटन भरत चक्रवर्तीने अपने सकल परिवारोंसे युक्त होकर विधिपूर्वक बहुत ही समारम्भ के साथ कराया। **योगविजय**

भरतचक्रवर्तीके सौ पुत्र विद्याध्ययन कर रहे थे। एक दिन हस्तिनापुरके

अधिपति मेघेश संसारसे विरक्त होकर दीक्षा लेकर चला गया, यह समाचार सुनकर उन सौ पुत्रोंने भी संसारसे वैराग्यको प्राप्त कर लिया। तदनन्तर समवशरणमें जाकर भगवान् आदिनाथसे तत्त्वोपदेश सुना एवं मोक्षमार्गको समझ-कर जिनदीक्षासे दीक्षित हो गये । यह समाचार मालूम होनेपर भरत चक्रवर्ती-को बड़ा दुःख हुआ । वह उसी समय समवशरणमें गया । वहाँपर अपने पुत्रोंको देखकर तीर्थनाथकी बड़ी भक्तिसे पूजा की । तदनन्तर भगवान् आदिनाथको निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई ।

भरत चक्रवर्ती पुनः अयोध्याको आकर राज्यपालन करने लगा । एक दिन दर्पणमें मुख देखते समय अपने एक पके बालको देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ । तत्क्षण अर्ककीर्तिका पट्टाभिषेक किया । तदनन्तर स्वयं ही अपने गुरु होकर दीक्षा ले ली एवं निश्चल ध्यानके बलसे तैजसकार्माण वर्गणाओंको जलाकर अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञानको प्राप्तकर क्रमशः मोक्षधाममें चला गया ।

मोक्षविजय

अर्ककीर्ति राज्यका पालन करता था । परन्तु उसे जब यह समाचार मिला कि पिताश्री भरत मुक्तिको गये, तब उसका भी चित्त उदास हुआ । राज्यसे मोहको छोड़कर अपने छोटे भाई आदिराजके साथ जिनदीक्षा ले ली । फिर क्रम-से मूलोत्तर गुणोंका पालन करते हुए कुछ समय बाद निश्चल ध्यानके बलसे मुक्तिको गया ।

अर्ककीर्तिविजय

मुख्य पात्रवर्ग

कथासार उपर्युक्त प्रकार है । इस साहित्यका मुख्य नायक भरत है । राजा भरत जैन तीर्थंकरोंमें सबसे आदिके श्री आदिनाथ तीर्थंकरके आदिपुत्र, आदिचक्र-वर्ती व तद्भव मोक्षगामी था । षट्खंडका पालन करते हुए भी वह आत्मानुभवी था । अतएव राजा होकर भी योगी था । भरतेशके जीवनकी प्रत्येक दशा अनुकर-णीय है । विद्वान् कविने काव्यके मुख्य अंगको पूर्ण बल देकर उसे सुन्दर रूपसे चित्रित किया है । भरत चक्रवर्तीकी ९६ हजार रानियाँ थीं और १२०० पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे । सारांश यह है कि भरतेश सत्युगके आदि महापुरुष थे । इसलिए उन्हींके कारणसे इस देशको भरतखण्ड या भारत कहते हैं ।

भुजबलि राजा भरतका छोटा भाई है । भरतेश राजा होकर जिस समय अयोध्यामें राज्यपालन कर रहा था, उस समय भुजबलि युवराज होकर पौदनपुर-में राज्यपालन कर रहा था । भुजबलि अपने नामके समान महावीर था । षट्खण्ड भरतके वशमें होनेके बाद भी भुजबलिने भरतकी आधीनता स्वीकार नहीं की ।

इसलिये भाई-भाईमें परस्पर युद्ध हुआ। उसमें भुजबलिकी विजय हुई। पीछे राज्यके लिये मुझे भाईसे युद्ध करना पड़ा इस प्रकारके पश्चात्तापसे वैराग्य पाकर भरतको राज्य सौंपकर दीक्षा लेकर चला गया। इस प्रकार पुराणोंमें कथन है। परन्तु कविने अपने चातुर्यसे भरतको धीरोदात्तरूपसे वर्णन करनेकी सदिच्छासे कथाभागको तत्वाविरोध रूपसे थोड़ा बदलकर भरतेशकी ही जय हुई है। वह भी बाहुबलिके साथ युद्ध न करके भरतने केवल अपने वचनचातुर्यसे ही बाहुबलिको परास्त किया, जिससे लज्जित होकर वह विरक्त हुआ ऐसा लिखा है। यहाँपर पाठकोंको जैनागममें परस्पर विरोधिताका भास हो सकता है। परन्तु वस्तुतः विरोध नहीं है। यह भरतेश वैभव होनेसे भरतको धीर, उदात्त व उच्च पात्रके रूपमें वर्णन करना यह काव्यका धर्म है। फिर भी दूरदर्शितासे कविने आगम-विरोधाभासके भ्रमको दूर करनेके लिये ही मानों उस समय भरतके मुखसे यह कहलाया है कि""अरे भाई! मैंने युद्धसे डरकर तुमको बातोंमें टाल दिया ऐसा शायद मनमें कहोगे। वैसा नहीं! तुम जिस ढंगसे युद्धके लिये आये हो इसमें तुम्हारे लिए अवश्य विजय है। सामान्य मनुष्योंके समान युद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है। अच्छा! सही! तुम जीते हम हार गये। मेरे भाईकी जीत मेरी जीत नहीं क्या! मुझे जरा भी मनमें क्लेश नहीं है। इससे भी वाचक ठीक-ठीक अर्थ समझेंगे। बाहुबलि आदि कामदेव था, इसलिए ग्रंथमें बाहुबलिके लिए यत्र तत्र कामदेवके पर्यायवाची शब्द उपयोगमें लाये गये हैं। बाहुबलिकी पट्टरानी इच्छा महादेवी, मन्त्री प्रणयचन्द्र, सेनापति वसंतक, पट्टहाथी माकंद। बाहुबलिका जीवन पूर्वमें तिरस्कार पश्चात् अनुराग उत्पन्न होने लायक है। यही बाहुबलि अब गोम्मटस्वामी कहलाते हैं।

बुद्धिसागर—भरतेशका मंत्री है। वह चक्रवर्तीके लिए दाहिने हाथके समान रहकर अपने अनुभवसे चक्रवर्तीके सर्व कार्य बुद्धिमत्तासे साधन करता था। उसके लिए अन्तपुरप्रवेश भी निषिद्ध नहीं था। वह चक्रवर्तीके मनोगत विषयको पहलेसे समझकर उसी प्रकार सर्व व्यवस्था करता था। चक्रवर्तीके मित्र मागध, वरतनु, प्रभास इत्यादि व्यंतरोंका जिस समय सत्कार किया गया उस समय मंत्रीने उनके योग्यतानुसार व्यवहार किया। चक्रवर्तीके विश्वासपात्र षट्खण्ड कार्य-निर्वाहक होनेपर भी सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता था। यही उसकी विशेषता थी।

जयराज—यह भरतका यशस्वी सेनापति है। इसीने अपनी कुशलतासे भरतको षट्खण्डको साधन कर दिया था। इसको भरतने मेघेश्वर नामकी उपाधि दे दी। यह महावीर था। इसके चरित्रका वर्णन करनेवाले कर्नाटक व संस्कृत साहित्यमें कई ग्रन्थ हैं।

मागधामर—यह भरतेशका व्यन्तर सेनापति है। पूर्वसागरके एक द्वीपमें वह राज्यपालन कर रहा था। वह वीर व महा गर्वी था। क्रोधी होनेपर भी हितैषियोंके वचनको सुननेवाला था। भरतके आगमनको सुन पहिले यद्यपि उसने युद्धकी तैयारीकी। फिर भी बादमें मन्त्रीके समझानेसे समझकर भरतचक्रवर्तीको भेंट वगैरह देकर उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसके बाद कई व्यन्तर राजाओंको वशमें करके दिया।

नमिराज—भरतेश्वरका छली साला है। भरतचक्रवर्ती मुझसे संपत्तिमें बड़ा होनेपर भी वंशमें बड़ा नहीं है। इस गर्वसे, भेंट व बहिन सुभद्रा देवीको देनेके समयमें भरत यदि हमारे घरमें आयेगा तो देंगे नहीं तो नहीं देंगे, इस प्रकार उसने निश्चय किया था। फिर माता व बुद्धिसागरके समझानेसे भरतके पासमें जाकर बहुत संभ्रमसे सुभद्रादेवीका विवाह भरतके साथ किया। भरतने उसका सत्कार दिया। कविने स्त्रीपात्रोंको भी अच्छी तरह चित्रित किया है।

यशस्वतीदेवी—भरतेशकी पूज्य माता थी। पुत्रके प्रति माताका अत्यधिक प्रेम व पुत्रकी माताके प्रति श्रद्धा उनमें आदर्शरूपसे थी। यशस्वतीदेवी सदा आत्मचिंतनके साथ-साथ पुत्रके प्रति हितकामना करती थी। भरतचक्रवर्तीकी ९६ हजार रानियोंकी भक्ति सासुके प्रति अनुकरणीय थी। दिग्विजय प्रस्थानके समय बहुएँ और बेटेको मातुश्रीने आशीर्वादके साथ जो समयोचित उपदेश दिया वह मनन करने योग्य है। बहुओंने जो सासुके पुन: दर्शन करने पर्यंत जो कुछ नियम ग्रहण किया इसीसे उनकी भक्ति, वात्सल्य व्यक्त हो जाता है।

कुसुमाजी—भरतकी ९६ हजार स्त्रियोंमें अत्यधिक प्रीतिपात्र थी। यद्यपि भरतका प्रेम सबके लिए समान था, फिर भी उसके गुणके प्रति विशेष अनुरक्त था। भरत उसे बाहरसे नहीं बतलाता था, फिर भी कुसुमाजीने जो सरस-सल्लाप किया था एवं भरतको अपने घर बुलाकर भोजन कराते समय जो सल्लाप किया उससे उनका प्रेम अच्छी तरह व्यक्त होता है।

सुभद्रादेवी—भरतकी पट्टरानी थी, वह भरतके खास मामाकी बेटी थी। वह गुणोंमें भरतचक्रवर्तीके लिए अनुगुण थी। पट्टरानी होनेपर भी सभी रानियोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करती थी। सभी रानियोंको संताप होनेपर भी इसके लिए कोई सन्तान नहीं थी। फिर भी इतर सबके सन्तानको समान निर्ममभावसे प्रेम करती थी।

इसके अलावा बहुतसे पात्र है जिनका परिचय कथाप्रसंगमें पाठकोंको हो जायगा।

सारांशतः सर्व प्रकारसे यह काव्य सुन्दर मृदुमधुरवाक्योंकी रचनासे अपने इतिहास चित्ताकर्षक, हृदयमें सुखोत्पादक नीतियोंसे युक्त, मानवीय हृदयमें सद्गुणोंका बीजारोपण करनेवाला, कथा-प्रेमियोंको आनन्द देनेवाला, अध्यात्म-रस पिलानेवाला, शृंगारप्रेमियोंको शृंगार रसको देनेवाला, तत्वज्ञानियोंको तत्व-ज्ञान करानेवाला एवं विद्वानोंको आदरणीय है। एक बार नहीं अनेकबार मनन करने योग्य है।

शैली

इस काव्यकी रचनामें कविने अत्यन्त सरल शैलीको पसन्द किया है। साधारणसे साधारण रसिकोंको इस काव्यका रस मिले इस उद्देश्यसे कविने अत्यन्त सरल पद्धतिसे स्वाभाविक चित्रोंको चित्रित किया है। काव्य मधुर व श्रव्य रहे इसके लिये कविने बहुत प्रयत्न किया है। अतएव काव्य शिक्षाप्रद नैतिक बल-दायक एवं आत्मकल्याणके लिये साधक हो गया है।

रचनाचातुर्य—इस काव्यको बांचनेसे कविके रचनाचातुर्यका बोध होता है। यद्यपि भोगविजयमें कथाभोग तो बहुत ही कम है यही कारण है कि कविने भरत चक्रवर्तीके तीन दिनकी दिनचर्याको १९ परिच्छेदोंमें चित्रित किया है। यही कौशल है।

काव्यको एक नाटकके ढंगसे प्रारम्भ किया है। आस्थानसंधिसे प्रारम्भकर भरतचक्रवर्तीको राजदरबारमें बैठा दिया है। वहींपर दिविजकलाधर नामक आस्थान कविसे भरतकी स्तुति कराई है जिससे पाठकोंको भरतेशके गुणोंका परिचय हो, दिविजकलाधरने भी उस कार्यको पूर्णकर अपने विवेकको सिद्ध किया है। तदनन्तर चक्रवर्तीके धार्मिक कृत्योंसे परिचय करानेके लिये मुनिभुक्ति-संधिका वर्णन किया है। उसके बाद शय्यागृहसंधि पर्यंत भरतचक्रवर्तीका रानियोंके साथ एक दिनके सरस विहारका वर्णन होनेपर भी पाठकोंके चित्तको आकर्षित करनेवाला है।

भरतेशका सर्वांगीण वर्णन करना इस काव्यका मुख्य ध्येय है। आदि-चक्रवर्ती भरतका परिचय पंचमकालके वह भी १६ वीं शताब्दीके एक कविकी अपेक्षा भरतके साथ रात्रिदिन रहनेवाली उसकी प्रिय रानीको अधिक रहना स्वाभाविक है। इसलिए कविने उस विषयपर अनधिकार चेष्टा न कर भरतेशकी प्रियरानी कुसुमाजीसे ही उस कामको कराया है। उसमें भी क्या तारीफ ? वह अपने हृदयकी बात दूसरोंसे कहती है क्या ? नहीं, वह अपने महलमें बैठकर अपने प्रिय तोते से पतिकी प्रशंसा कर रही है। पड़ोसमें रहनेवाली समनाजी सुमनाजी रानियोंने छिपकर सुन लिया, फिर उसे इस काव्यके रूपमें रचना की।

उस काव्यकी सुननेके लिए पण्डिताने राजासे आग्रह किया। राजाने अन्तरंग दरबारमें उसे सुन लिया। कवि स्वयं पीछे हटकर रानियोंसे ही उसका वर्णन कराता है, यह विचित्र बात है।

लोकमें दाम्पत्य प्रेमकी आवश्यकताको प्रगट करनेकी इच्छासे कविने जिस समय कुसुमाजी तोतेसे अपने प्राणवल्लभकी कथा कह रही थी, उस समय उससे (तोतेसे) चुप्पी साधनेका कारण पूछा तो उसने दम्पतियोंके प्रेमसे जीवन सुख-मय होता है, इस विषयपर अच्छा चित्र खींचा है।

उसके बाद काव्यके कवयित्रियोंको योग्य सत्कार करके पण्डिताकी प्रार्थना-नुसार भरतेश उस दिन कुसुमाजीके घर भोजनके लिए जाते हैं। यहांपर कविने और भी सरस प्रकरण खींचा है। सबसे पहले कुसुमाजी भरतको प्रसन्न करनेके लिये वीणावादनकला प्रदर्शित करती है। तदनन्तर रात्रिका समय आनन्दसे जावे इस उद्देश्यसे दो नाटकोंकी योजना कर नेत्रमोहिनी, चित्तमोहिनी, नामके स्त्रीपात्रोंने एवं कुसुमाजी पद्मिनी आदि रानियोंने अपने नर्तनसे अन्तःपुरको प्रसन्न किया। इसी समय प्रणयकलहके एक विचित्र दृश्यको दिखलाकर चक्र-वर्तीको कविने शैया गृहको भेज दिया। यहांपर शय्यागृहकी क्रियाओंका सुस्पष्ट वर्णन करते हुए कविने शृङ्गाररससे कृतिको आप्लावित किया है।

दूसरे दिनके दिनक्रममें अभिषेक, देवपूजा, योगाभ्यास, पारणा आदिका वर्णन बहुत अच्छे ढंगसे वर्णन किया है।

यद्यपि दिग्विजय कल्याणमें युद्धोंका वर्णन विशेष नहीं है। तथापि षट्-खण्डस्थ व्यंतर भूचर विद्याधर राजाओंको किस प्रकारके सामोपायसे वश किया इसका वर्णन यत्र-तत्र मिलता है। वस्तुतः भरतको भूमि साधनेके लिए बहुतसा युद्ध नहीं करना पड़ा। उसने अपने नामके बलसे ही पृथ्वीको साध ली थी। इस प्रकरणमें स्थान-स्थानपर पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति, उनके संस्कार विशेष आदिका वर्णन करते हुए सुभद्रा देवीके विवाहसमारम्भका भी अच्छा चित्र खींचा है। उसके बाद जिनदर्शन और तीर्थगमन संधिकी रचना की है। लौटते समय बाहुबलिको अधीन करनेके प्रयत्नमें कटकविनोद, मदनसन्नाह, राजेन्द्रगुणवाक्य इत्यादि परिच्छेदोंमें अन्ततक युद्धकी संभावनाको व्यक्त करते हुए अन्तमें अहिंसा धर्मके पालनके लिए, आदर्शन्यायकी स्थितिके लिए भाई-भाईका युद्ध योग्य नहीं, ऐसा समझकर वचनचातुर्यका जो प्रयोग भरतसे कराया गया है, वह हृदयंगम होकर लोकमें नीतिकी प्रवृत्ति करा सकता है। योगविजय, मोक्षविजय और अर्ककीर्तिविजयमें कविने प्रायः संसारकी अस्थिरता बतलाकर भव्योंका चित्त मोक्षकी ओर आकर्षित किया है।

वर्णनाक्रम

कविने प्रथमतः प्रतिज्ञा की है कि "प्रचुरदि पदिनेंट् रचनेय काव्यके रचि-सुवरानंतु पेळे, उचितके तक्कन्तु पेळ्वेनध्यात्मवे निचितप्रयोजनवेनगे" अर्थात् कविगण अठारह अंगोंको लक्ष्यमें रखकर काव्यकी रचना करते हैं परन्तु मैं वैसा नहीं करूंगा। मुझे केवल थोड़ासा अध्यात्मविवेचन करना यहांपर मुख्य प्रयोजन है। जिस समय ध्यानसे मेरा चित्त विचलित होगा उस समय शुभ योगमें मेरा चित्त रहे एवं अध्यात्मविचार हो इस दृष्टिसे काव्यरचनाकी प्रतिज्ञा की है। इस-लिए इसकी रचनामें कविने अन्य कवियोंका अनुकरण नहीं किया है। इसका वर्णन स्वाभाविक है। जिस पदार्थका उसने वर्णन किया है वह पदार्थ नैसर्गिकरूपसे पाठकोंके हृदयमें अंकित हुए बिना नहीं रह सकता। जो वर्णन उसे स्वयंको पसन्द नहीं आया था उसे और ढंगसे जहां वर्णन करना चाहता था वहां तत्क्षण उसे बदलकर पाठकोंको अरुचि उत्पन्न नहीं हो इस ढंगसे वर्णन करता है। आस्थानमें बैठे हुए चक्रवर्तीका वर्णन करते हुए वीररसको अच्छी तरहका टपका दिया है एवं उसकी सुन्दरताका अच्छा चित्र खींचा है, जिसे सुनकर ही अच्छा चित्रकार हुबहु चित्र खींच सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थानका विचित्र वर्णन पाठकोंको मनमोहक हो गया है।

संगीतशास्त्रमें गति—इस कविकी गति संगीतशास्त्रमें भी अद्भुत थी। आंखोंसे जिन पदार्थोंको हम लोग देख सकते हैं वह पदार्थ हमारे सामने न हो उसका वर्णन कर हमारे सामने लाकर ठहरा देना यह अद्भुत शक्ति है, फिर उसमें भी कानोंसे स्वरभेदोंको सुनकर आनन्द प्राप्त करानेवाले गानोंको न गाकर केवल विवेचनसे ही गानेसे भी अधिक आनन्दका अनुभव कराना यह इस कविका एक असाधारण कौशल कहना चाहिए। क्योंकि संगीतमें यह स्वयं प्रवीण था। संगीतका वर्णन जहांपर उन्होंने किया है वहांपर गायन रसिक स्वयं वाद्ययंत्रको लेकर उसे बजाते हुए स्वर्गीय आनन्दको प्राप्त किये बिना नहीं रह सकता। इस-लिए संगीत प्रेमियोंको भी यह आदरणीय है।

कविने पूर्व नाटक उत्तर 'नाटक प्रकरणमें नाट्यकलाके मुख्य अंग नर्तनका बहुत ही उत्तम ढंगसे वर्णन किया है। प्रकरणको बांचते समय नाटक प्रत्यक्ष आंखोंके सामने हो रहा हो ऐसा मालूम होता है।

इंद्रियोंको गोचर होनेवाले पदार्थोंका असदृश रूपसे वर्णन करना यह कवियों-की विद्वत्ता है। उसमें भी इंद्रियोंसे अगोचर पदार्थोंको आंखोंके सामने ला देना यह असाधारण शक्ति है। अतींद्रिय ज्ञानके गोचर परमात्माको इस कविने इस ढंगसे वर्णन किया है कि मानो मालूम होता है कि आत्मा हमारे आंखोंके सामने ही हो। या

हमारे हथेलीमें आ बैठा हो। अध्यात्म विचारका वर्णन करते समय कविने वस्तुतः पूर्ण प्राबीण्यका दिग्दर्शन किया है। यह विषय इसे अभ्यस्त होनेके कारण इतने सरस ढंगसे उसका वर्णन किया है इसमें संदेह नहीं।

रस—रस भी काव्यका एक अंग है। प्रसंगानुसार रसोंका सम्मिश्रणकर पाठकोंको हर्ष विषादादिमें डालना यह कविके बुद्धिचातुर्यपर निर्भर है। रत्नाकर-की रचनाओंसे उसे श्रृंगार कवि हंसराज की उपाधि प्राप्त थी। श्रृंगार विषयके वर्णनमें भी उसने अपने अप्रतिम कौशलको बतलाया है। जिस प्रकार भरतने कई जगह इस बातका अनुभव कराया है कि आत्मविज्ञानीके लिये दुनियामें कोई बात अशक्य नहीं, बाकीकी लौकिक बातें उसे सरलतासे प्राप्त हो सकती हैं, इसी प्रकार अध्यात्मरसमें अधिकार प्राप्त कविने यह बतलाया है कि अध्यात्मरसके प्राप्त होनेके बाद बाकीके रसोंका वर्णन करना बांये हाथका खेल है। इसलिए कविने काव्यमें प्रसंग पाकर श्रृंगार रसको ओत-प्रोत भर दिया है। चाहे कुछ स्थलोंमें वह मर्यादातीत होनेका अनुभव भले ही करे, फिर भी अध्यात्मरसके बीचमें आ जानेसे एवं काव्य का मुख्य अंग होनेसे कोई बेढब नहीं हुआ।

भरतेशको कुमारवियोगका जिस समय समाचार मिला उस समय जो दुःख हुआ उसका वर्णन करते समय कविने करुणारससे पाठकोंके चित्तको गीला कर दिया है। उसे बांचते समय पत्थर भी पानी हुए बिना नहीं रह सकता।

भरतका रानियोंके साथ सरसालाप व विदूषकका प्रासंगिक विनोद, काव्यमें हास्यरसको यत्र-तत्र व्यक्त करता है। ऐसे स्थानोंके अध्ययनसे उदासीन पाठकोंके हृदयमें भी उल्लासका छा जाना साहजिक है। कविने जहां अध्यात्मविषयका वर्णन किया है वहांपर शांतरस अच्छी तरह टपकता है। जहांपर वैराग्यभावका वर्णन किया है वहां आस्तिकवादीके हृदयमें विरक्ति परिणाम उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकता। सचमुचमें यही कविका असाधारण प्रभाव व सामर्थ्य कहना चाहिये कि उसकी रचनामें चित्रित विषयोंका प्रभाव अविलंबसे वाचकोंके हृदयपर हो जाय। यह खूबी इस कविके काव्यमें नैसर्गिक वर्णनोंके आधिक्य होनेसे खूब ही पाई जाती है। प्रत्येक विषयमें निष्णात होनेके कारण जिस विषयका भी वर्णन करनेके लिए बैठे उसे सांगोपांग इस प्रकार वर्णन करता है कि जिससे पाठकोंको उसके अध्ययनमें स्वाद आये बिना न रहे।

कविताका तत्त्वज्ञान—कविने अभिमानपूर्वक पहिलेसे कहा है इस काव्यके द्वारा भोगी और योगी दोनोंके हृदयको मैं आकर्षित करूंगा। उसी प्रकार उसे उसमें सफलता भी मिली। तत्त्वज्ञानका बोध पाठकोंको हो इस इच्छासे श्री भग-वंतके मुखसे एवं भरतेशसे उसका उपदेश दिलाया गया है। भरतेश वैभवके नाम

सुननेपर केवल वैभवके वर्णनात्मक विषय होंगे, इस प्रकार भ्रम होनेपर भी ग्रन्थको देखनेसे पाठकोंको मालूम होगा कि यह केवल पुराण ग्रन्थ नहीं है। इससे तत्त्वज्ञानका भी उनको यथेष्ट बोध मिलता है। आत्मविज्ञानका वर्णन इतने सरस ढंगसे किया है, भ्रम होता है कि यह केवल अध्यात्मशास्त्र ही तो नहीं। संसारकी प्रवृत्तिमें तत्त्वविचार, आत्मविचार वगैरह विषयोंमें मनुष्योंकी बहुत कम रुचि होती है। उनको यह विषय बहुत कठिन मालूम होता है। परन्तु कविने उन कठिन विषयोंको इतना सरल व सरस बनाया है कि कैसा भी व्यक्ति क्यों न हो, उसे इसको सुननेकी इच्छा होगी। थोड़ीसी रुचि उत्पन्न हो गई तो एकदफे नहीं, कई दफे सुननेकी इच्छा करेंगे। हम तो कहते हैं कि यह वस्तुतः अध्यात्मग्रन्थ ही है, जिनको एकदफे इसका स्वाद आया उनका कल्याण अवश्यम्भावी है। तत्त्वविचारोंमें कविने अनन्त अपार शक्तिका उदाररूपसे वर्णन कर सर्व मतवालोंको एकमतसे आत्मकल्याणके लिये प्रेरित किया है।

विषय-सूची

भोगविजय

१. आस्थान संधिः २
२. कविवावय संधिः ११
३. मुनिभुक्ति संधि २४
४. राजभुक्ति संधि ३३
५. राजसौध संधि ४१
६. अथ राजलावण्य संधि ५१
७. सुकसल्लाप संधि ६१
८. उपाहार संधि ६८
९. सरस संधि ७९
१०. सन्मान सन्धि ९१
११. वीणा संधि १०६
१२. पूर्वनाटक संधि ११०
१३. उत्तरनाटक संधि ११३
१४. तांडवविनय संधि ११६
१५. शय्यागृह संधि १२४
१६. पर्वाभिषेक संधि १३२
१७. तत्वोपदेश संधि १४२
१८. पर्वयोग संधि १५७
१९. पारणा संधि १७०

दिग्विजय

२०. नवरात्रि संधि १८१
२१. पत्तनप्रयाण संधि १९०
२२. दशमीप्रस्थान संधि १९९
२३. पूर्वसागरदर्शन संधि २०४
२४. राजविनोद संधि २०९
२५. आदिराजोदय संधि २१७
२६. वरतनुसाध्य संधि २२५
२७. प्रभासागरांबन्ह संधि २३३
२८. विजयार्धदर्शन संधि २४२
२९. कपाटविस्फोटन संधि २४८
३०. कुमारविनोद संधि २५४
३१. क्षेचरीविवाह संधि २६२
३२. भूचरीविवाह संधि २६९
३३. विनमिवार्तालाप संधि २७५
३४. वृष्टिनिवारण संधि २८२
३५. सिंधुदेवियाशिर्वाद संधि २८९
३६. अंकमाला संधि २९६
३७. मंगलयान संधि ३०३
३८. मुद्रिकोपहार संधि ३१४
३९. नमिराजविनय संधि ३२३
४०. विवाहसंभ्रम संधि ३२९
४१. स्त्रीरत्नसंभोग संधि ३३५
४२. पुत्रवैवाह संधि ३३७
४३. जिनदर्शन संधि ३४६
४४. तीर्थागमन संधि ३५२
४५. अंबिकादर्शन संधि ३६४
४६. कामदेव आस्थान संधि ३७३
४७. संधानभंग संधि ३८०
४८. कटकविनोद संधि ३८९
४९. मकलसन्नाह संधि ३९९
५०. राजेंद्रगुणवाक्य संधि ४०७
५१. चित्तजनिर्वेग संधि ४२०
५२. नगरीप्रवेश संधि ४३२

●

महाकवि रत्नाकरवर्णिरचित

भरतेश वैभव

करोड़ों चंद्रसूर्योंके प्रकाशसे भी अधिक तेज जिसका है ऐसी केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट ज्योतिको धारण करनेवाले एवं जिनके चरण देवताओंके मस्तकके किरीटोंसे प्रतिबिंबित हो रहे हैं ऐसे श्री भगवान् वृषभदेव हमारी रक्षा करें।

अष्टकर्मोंसे रहित होनेसे सर्वदा शुद्ध एवं केवलज्ञानसंपत्तिके अधिपति सिद्ध परमेष्ठिको हमने नमस्कार किया है। इसलिए सिद्धरसमें—पारसमें डुबोये हुए लोहेके समान अब मैं आत्मसिद्धिको प्राप्त करूँगा। अब मुझे किस बातकी चिंता है?

व्यवहार व निश्चयको जानकर, आत्माको पहिचान कर, आत्मसाधन करनेवाले तीन कम नव करोड़ मुनियोंके चरणोंमें हमारा नमस्कार हो। हे आत्मन्! तुम परब्रह्म हो! तीनों लोकमें तुम ही श्रेष्ठ हो, ज्ञान ही तुम्हारा वस्त्र है! सर्वमलकलंकरहित हो! पापको जीतनेवाले हो! इसलिये तुमको नमस्कार हो! विशेष क्या? मेरा साक्षात् गुरु तुम ही हो, मुझे दर्शन दो। आपसे एक प्रार्थना है, जिस समय चित्तकी एकाग्रता न रहेगी, उस समय आपका स्मरण करके आपकी आज्ञासे कर्नाटक भाषामें इसे कहूँगा।

कवियोंके बाँचने योग्य यह काव्य ईखके समान मीठा रहे। वह बाँसके समान रहे तो क्या लाभ? हे सरस्वती, मुझे बुद्धि दो।

अय्या! येष्टु चेन्नायितप्पा? ऐसे कर्नाटकी लोग, अय्या मंचिद्रि? ऐसे तेलगु लोग, अय्या येंच पोर्लु आण्ड? ऐसे तुळुभाषाके लोग अर्थात् यह काव्य क्या अच्छा हुआ ऐसा कहते हुए, उत्साहसे सब भाषाभाषी मन लगाकर इसे सुनें।

इस काव्यमें कहीं शब्ददोष, समासदोष आदि हों, तो आश्चर्य नहीं। कारण सभी लक्षणोंको लक्ष्यमें रखकर यदि काव्यकी रचना करें तो वह कठिन हो जाएगा। फिर तो वह काव्य न रहकर विचित्र ग्रन्थ हो जाएगा और काव्य न रहेगा।

दोष कहाँ नहीं है! क्या चंद्रमामें काला कलंक नहीं है? इससे क्या चाँदनी भी काली है? नहीं। कदाचित् कहीं शब्दगत दोष आजावे तो इससे कुछ तत्वमें बाधा आ सकती है क्या? भव्यात्माओ! सुनो!

तुम्हें एक सुन्दर और आदर्श कथा सुनाता हूँ। यदि आप सुनेंगे तो आत्मकल्याण आज, कल या परसों तक होगा।

यह भरतेश वैभव है। इसे सुनो! इसको सुननेसे वारंवार सौभाग्य-की प्राप्ति होगी। पापका विनाश या पुण्य का लाभ होगा। देवेंद्र-पदवीकी प्राप्ति होगी, अंतमें मोक्ष भी मिलेगा, इसमें संदेह नहीं।

जिसने अगणित राज्य संपत्तिका उपभोग कर, दिगम्बर योगी बन कर क्षणमें कर्मोंको भस्मकर अनन्तसौख्यको प्राप्त किया ऐसे महाराज भरतेशका वैभव क्या आप सुनना नहीं चाहेंगे?

इस काव्यमें अध्यात्म और शृङ्गारका इस प्रकार विवेचन करूँगा कि जिसमें त्याग और भोगकी सीमा ज्ञात हो जाय और त्यागी और भोगी दोनोंके हृदयमें उसका रोमांचकारी अनुभव हो जाय। सुनिये तो सही।

कविगण काव्यके कलेवरको पूर्ण करनेके लिये समुद्र, नगर, राजा-रानी आदिका वर्णन करनेकी पद्धतिसे निरूपण करते है। परन्तु वैसा हम नहीं करेंगे; कारण इस ग्रन्थमें मुझे चरित्रकी ओटमें कुछ अध्यात्म-का वर्णन भी करना है।

यद्यपि इस कृतिका रचयिता मैं सामान्य मनुष्य अवश्य हूँ। परन्तु चरित्रनायक तो सामान्य नहीं है। वह कृतयुगके प्रथम तीर्थंकरके पुत्र हैं। इसलिये आप सुनें और मेरा दोष न देखें।

यह पुण्यकथा पुण्यात्माओंको रुचिकर होगी। दुर्जनों को वह पसंद नहीं आयेगी। पापको दूर कर पुण्यसंपादन करते हुए स्वर्ग जानेकी इच्छा रखनेवाले इसे अवश्य सुनें।

"ॐ नमः, जिनं नमः, सिद्धं नमः, हंसं नमामि इत्यादि मन्त्रोंको कहनेके बाद यदि इस कथाको सुननेकी इच्छा हो तो 'इच्छामि' कहिये। इतना ही नहीं, अच्छी तरह उपयोग लगाकर सुनिये।

आस्थान संधिः

भरत क्षेत्रकी भूषणस्वरूप अयोध्या नगरीमें भरतचक्रवर्ती सुखसे राज्यपालन कर रहा था। उसकी संपत्तिका मैं क्या वर्णन करूँ?

भगवान् आदिनाथका ज्येष्ठ पुत्र, पृथ्वीका एक मात्र राजा वह भरत क्षणभर यदि आँख मींचले तो मुक्तिको देखता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

सोलहवाँ मनु, प्रथमचक्रवर्ती, स्त्रियोंके लिये कामदेव, विवेकियों-के चूडामणि एवं तद्भवमोक्षगामी भरतका वर्णन करनेमें मैं कहाँ समर्थ हूँ ?

जो यथार्थमें गुण नहीं हैं ऐसे गुणोंका वर्णन करनेकी पद्धति ठीक नहीं है। परन्तु जो गुण उस भरत महाराजमें हैं उनका भी पूर्णरूपसे वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ?

बहुत कहनेसे क्या लाभ ? उस क्षत्रिय कुलरत्नको आहार तो है किन्तु नीहार-मलमूत्र नहीं है। क्या वह अलौकिक पुरुष नहीं है ? लोकमें सभी पदार्थोंके जलानेपर उनका भस्म तैयार होता है। किन्तु कपूरको जलानेपर कहीं भस्म होता है क्या ? नहीं, संसारके सभी मनुष्योंमें आहार-नीहार पाए जाते हैं। किन्तु हमारे भरतमें आहार तो है नीहार नहीं है।

वह चक्रवर्ती भरत कोमल शरीरवाला है। सुवर्ण सदृश उसका वर्ण है। अपने रूपसे दुनियाभरको मोहित करनेवाला सुन्दर रूपधारी है। इतना ही नहीं, अभी वह तरुण है।

वह सम्राट् भरत एक दिन प्रातःकाल देवपूजादि नित्यक्रियासे निवृत्त हो राजसभामें विराजमान हैं।

नवरत्न निर्मित उस आस्थानभवनमें भरत रत्ननिर्मित पुष्पक विमानमें विराजमान देवेन्द्रके समान शोभायमान हो रहा था।

मानस-सरोवरमें कमलके ऊपर जिस प्रकार राजहंस शोभता है उसी प्रकार शरीरकांतिसे परिपूर्ण उस राजसभारूपी सरोवरमें रत्न सिंहासनरूपी कमलके ऊपर वह राजहंस भरत शोभायमान हो रहा था।

क्या यह चक्रवर्ती है ? अथवा उदयगिरिके शिखरपर उदित होनेवाले सूर्यका सामना करनेवाला कोई प्रतिद्वन्द्वी सूर्य तो नहीं है ?

उसका शरीर कितना सुगन्धयुक्त है ? किरीट कितना सतेज है ? भव्यतिलक उसके भालपर कितना चमक रहा है ?

धीरी वीरदृष्टिसे वह देख रहा है। दूसरे लोग आठ-दस बार बोलते हैं तो वह एक बार उत्तर देता है। उसकी बात सुननेकी प्रतीक्षा लोगोंको करनी पड़ती है। यह उसकी गम्भीरता है।

ठीक है, गम्भीरता सर्वगुणोंमें श्रेष्ठ है। राजा हो, चाहे राजभोगी हो, परन्तु उसे गांभीर्यगुणकी आवश्यकता है। और गम्भीरता नष्ट हो जाय तो फिर क्या है।

वह चक्रवर्ती भरत कंठमें रत्न एवं मोतीका हार धारण किया हुआ है। हारोंके बीचमें स्थित उसका सुन्दर मुखकमल दिनमें भी नक्षत्रोंके मध्यमें विद्यमान चन्द्रके समान शोभायमान हो रहा था।

इस प्रकार वह अनेक प्रकारसे शोभाको प्राप्त हो रहा था। कोई इसे कविका कल्पनाचातुर्य कहकर छोड़ न देवें। क्योंकि वह आदिनाथ स्वामीका पुत्र है। वह कर्मोंके शत्रु चरमशरीरी है। उसके लिये क्या यह सब बातें असम्भव हैं? हम सरीखे सामान्य देहवालोंको यह आश्चर्यकी बात दिखेगी। किन्तु वज्रमय शरीरवाले उस चक्रवर्तीके विषयमें क्या आश्चर्य है? वह तो करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाले परमौदारिक दिव्य शरीरको धारण करनेवाला है। उसके रूपका कोई चित्र आदिके अवलंबनसे चित्रण नहीं कर सकता। जो रूप नेत्रों तथा मनको गोचर नहीं हो सकता, भला वह कैसा वचनगोचर हो सकता है?

पुरुषोंके रूपपर स्त्रियोंका तथा स्त्रियों के रूपपर पुरुषोंका मोहित होना स्वाभाविक है। परन्तु सम्राट् भरतके सौन्दर्यपर स्त्री और पुरुष दोनों मुग्ध होते थे।

भरतको देखनेपर अत्यन्त वृद्धा भी एक बार मचलकर उठती थी। ऐसी अवस्थामें युवतियोंकी क्या दशा होती होगी यह अब कहनेकी आवश्यकता नहीं है। भरत सदृश सुन्दर शरीर, योग्य अवस्था, अतुल संपत्ति, अगाध गांभीर्य एवं अनुपम पराक्रम अन्यत्र अनुपलभ्य है।

अहा! इन सब विशेषताओंको प्राप्त करनेके लिए उसने पूर्व भवमें ऐसे कौनसे पुण्यकार्य किये होंगे? अथवा भक्तिसे भगवानकी कितनी स्तुति की होगी? नहीं तो ऐसा वैभव कैसे प्राप्त हुआ?

अधिक क्या कहें? पूर्वभवमें उसने आत्मा और शरीरका भेद विज्ञान करके आत्मकला की अच्छी साधना की थी। आत्मध्यानका अभ्यास किया था। उसीके फलसे यह सब कुछ प्राप्त हुए हैं। यह विभूति सबको कैसे मिल सकती है?

उसका दर्शन करनेवालोंको नेत्रोंमें थकावट नहीं आती थी। प्रशंसा करनेवालोंको आलस्य नहीं आता था। देखकर तथा स्तुतिकर तृप्ति ही नहीं होती थी।

सब लोग विचार करते थे, यह रूप, यह संपत्ति, यह बल आदि और किसीको मिल नहीं सकते। कदाचित् मिले भी तो शोभा नहीं दे सकते।

उसके दोनों ओरसे ढारे जानेवाले चमरोंके बीचमें वे धवल मेघके मध्यस्थित चन्द्रसूर्यके समान वह शोभायमान हो रहा था। एक ओर अधीनस्थ नरेन्द्रमंडल है तो दूसरी ओर नर्तकी, कवि, मंत्री आदि बैठे हुए थे। उसके सिंहासनके पीछे हितैषी—अंगरक्षक खड़े हुए थे।

'हल्ला मत करो'! इधर सुनो! अपनी जगह पर बैठिये। इत्यादि प्रकारके शब्द उस राजसभामें सुनाई दे रहे थे। कोई-कोई कहते थे, यह राजसभा है, इसमें हल्ला नहीं करना चाहिए, हँसना नहीं चाहिये, इधर-उधर जाना नहीं चाहिये।

कुछ बुद्धिमान लोग, सम्राट् भरतेशके मनोभावको जानकर एवं दूसरोंके विचारोंको समझकर कभी-कभी कुछ समयोचित भाषण करते थे।

मण्डलीक राजाओंके, राजकुमारोंके, मन्त्रियोंके, पण्डितोंके एवं गायकोंके समूहसे वह राजसभा पूर्णरूपसे भरी हुई थी।

याचकगण, स्तुतिपाठ करनेवाले, वैद्य, ज्योतिषी, महावत सैनिक वाहकगण एवं सेवक लोग उस राजसभामें उपस्थित थे तथा भरतेश्वरकी शोभा देख रहे थे।

जैसा कमल सूर्यको देखता है, नीलकमल चन्द्रको निहारता है, इसी प्रकार उस सभामें उपस्थित समाज सम्राट् भरत के दर्शनमें लीन था और अन्य बातोंको भूल गई थी।

इस प्रकार उस समय सभी लोग उसकी ओर देख रहे थे। उस समय सम्राट् ने अपनी दृष्टि गायकोंपर डाली और उन लोगोंने महाराजके अभिप्रायको जानकर गायन आरम्भ कर दिया।

वहाँ रोमांचनसिद्ध, जुंजुमालप, गानामोदचंचु, श्रीमन्त गांधार रागवर्तक आदि प्रसिद्ध गायक थे।

बहुत मुँह न खोलकर अपने शरीरको इधर-उधर न हिलाकर बड़ी कुशलतापूर्वक वे गान करने लगे।

वे गाते समय घबराये नहीं। उनने बहुत अधिक ध्वनि भी नहीं की, इस प्रकार कुछ गायकोंने गान द्वारा सम्राट् भरतका मन प्रसन्न किया।

जब उनने रागभंग न कर बहुत कुशलता के साथ प्रातःकालके योग्य राग आलाप किया, तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानों श्रोताओंके अंतःकरणमें शीतलपवन बह रही है।

जिस प्रकार भ्रमर कमलके समीप गुंजन करता है, उसी प्रकार ये गायक भी महाराज भरतके मुखकमलके समीप मधुरगान कर रहे थे।

जिस प्रकार चन्द्र दर्शन से समुद्र उमड़ता है उसी प्रकार भरतचंद्र को देखकर इन गवैयोंका हृदय भी उमड़ता था।

जिन भरतके स्मरण मात्रसे अज्ञ लोगोंको भी भरतशास्त्र 'संगीत-शास्त्र' आवे तब भला इन गायकोंको उस संगीतशास्त्रमें प्रवीणता मिले तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

प्रातःकालके योग्य रागमें श्रीवीतरागप्रभुके गुणोंका वर्णन करते हुए गायकोंने ऐसा मधुरगान किया कि सुननेवालोंकी आत्मा पवित्र हो जाये। उनने भूपाली तथा धनश्री रागमें उस भूपालीके राजसमूहके अधिपती चक्रवर्तीके सामने श्री आदिनाथ स्वामीकी स्तुति करते हुए इस प्रकार गाया कि सबका पाप नष्ट हो जाय।

उनने अमल मनसे पवित्र निष्कल, अविनाशी भगवान् आदिनाथ प्रभुकी स्तुति मल्हाररागमें इस प्रकार की कि सुननेवालोंका कर्ममल दूर हो जाय।

देशाक्षिरागमें जिनेंद्रकी स्तुति करके उन लोगोंने देशाधिपति भरतको प्रसन्न किया। मंगलकौशिक नामक रागमें मंगलाष्टक गाकर बतलाया, इसी प्रकार गुण्डाक्रि, भैरवी इत्यादि रागोंमें जिनेश्वरकी स्तुति की।

वीणाकी ध्वनि कौनसी है और गानेवालोंकी ध्वनि कौनसी है, यह भेद प्रकट न होते देखकर वे जिन और सिद्धोंके स्वरूपकी महिमा प्रकट कर वे गाने लगे।

किन्नरीके साथ जिस समय वे गारहे थे उस समय श्रोता लोग कहते थे कि अब किन्नर किं पुरुषोंकी क्या आवश्यकता है ?

वे रत्नत्रयकी महिमाको वीणा द्वारा ऐसा गारहे थे कि श्रोता पुनः गायन के लिए प्रेरणा किए बिना नहीं रहते थे।

उनकी कंठध्वनि, गायनजागृति, आलापक्रम ये सब कुछ अच्छे थे। इसमें जिनेंद्र भगवान्‌का नाम और मिल गया, भला फिर उस माधुर्यका कहना ही क्या ?

लोग कह रहे थे कि भ्रमरकी गुंजनमें क्या है ? कोयलका स्वर रहने दो, तुंबर नारदोंकी अब क्या आवश्यकता है ?

पाषाण, वृक्ष, सर्प, पशु, मृग भी गायनसे मुग्ध होते हैं, तब फिर क्या रसिक मनुष्य मुग्ध नहीं होंगे ? उनके गायनसे सारी सभा अपनेको भूल गई।

जब बाँसुरीसे पशु, नागस्वरसे सर्प, कल्याणध्वनिसे वृक्ष, गुण्डाक्रीसे पाषाण भी वश होते हैं तब मनुष्योंके मुग्ध होनेमें क्या आश्चर्य है ?

गायन विद्या एकांत दृष्टिसे न तो अच्छी है और न बुरी ही है। यदि उस गायनमें पुण्यानुबन्धिनी कथा ग्रथित हो, धर्माचरणका आदर्श विद्यमान हो, और उद्‌देश्य पवित्र हो तो वह गायन हित करनेवाला है। पुण्यबन्धका कारण है। जिस गायनमें नीच स्त्रियोंकी वृत्ति हिंसा, कलह आदिका वर्णन हो, वह पापबन्धका कारण है और हेय है।

अमल मुनियोंके समूहमें कमलकर्णिकाको स्पर्श न कर विमल प्रकाशयुक्त भगवान् अर्हंत समवशरणमें विराजमान हैं। उनके गुणोंका वर्णन करते हुए भक्तिसे वे गाने लगे।

क्या ही आश्चर्यकी बात है ? कमलके ऊपर भी चार अंगुल छोड़कर निराधार आकाशमें खड़े रहनेकी सामर्थ्य अर्हंत परमेष्ठीके सिवाय और किसकी है ? क्या उन्हें रहनेके लिये धरातलकी आवश्यकता है ? पुष्पकी भी क्या आवश्यकता है। जिन्होंने सारे संसारको लात मारी है उन्हें किस वस्तुकी आवश्यकता है ?

सरोवरमें कमलका आवास, जंगलमें सिंहका रहना लोक प्रसिद्ध है तथा ऐसी पद्धति भी है। परन्तु देवोंके बीचमें सिंह, सिंहके ऊपर कमलका रहना यह तो महदाश्चर्य है यह जिनेश्वरकी ही महिमा है।

आकाशमें एक चन्द्रका तो हम दर्शन करते हैं परन्तु तीन चन्द्र एक जगह शोभित हों यह तीन छत्रधारी जिनेन्द्रभगवान्‌की ही महिमा है।

देवगण जिस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि कर रहे थे उस समय उन पुष्पोंकी सुगन्धसे आकृष्ट हो जो भ्रमर आते थे उनकी शोभा दर्शनीय थी।

भगवान्‌के समीपमें रहनेवाला अशोक वृक्ष कितना अच्छा दिख रहा है। क्या यह नवरत्नसे निर्मित तो नहीं है ?

भगवान्‌की दिव्यध्वनि सचमुचमें दिव्य है, क्योंकि भगवान् दिव्य हैं, उनका सुख दिव्य है, उनका दर्शन दिव्य है, उनका ज्ञान दिव्य है, उनकी शक्ति दिव्य है और उनकी सिद्धि दिव्य है, भला ऐसी स्थितिमें

उनकी ध्वनि भी दिव्य क्यों न हो? भगवान्‌के पीछे विद्यमान भामण्डल मेरुपर्वतके पीछे रहनेवाले इन्द्र धनुषकी शोभाको उत्पन्न कर रहा है।

चामरोंके बीच भगवान् ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, मानों हिमसे आच्छादित पर्वत ही हो। उनने सिंहासन आदि अष्ट महाप्रतिहार्योंके बीच विराजमान, भव्योंके कर्मको संहार करनेवाले भगवान्‌की अत्यन्त भक्तिपूर्वक स्तुति की।

इस प्रकार जिनेन्द्रका गुणानुवाद करके उनने सिद्ध परमेष्ठीकी तथा तदनन्तर मुनियों की वन्दना कर इस शरीरमें स्थित आत्मतत्वके विचारपर ऐसा मधुरगान किया कि भरत चक्रवर्ती आनंदित हो उठे।

इस शरीरमें आत्मा सर्वत्र विद्यमान है इस बातको न जान करके संसारी जीव उसे बाहर ही ढूंढकरके दुःखका अनुभव कर रहे हैं।

चमकता हुआ दर्पण हाथमे होते हुए भी पानीमें अपने प्रतिबिम्ब को देखनेवाले व्यक्तिके समान अपने शरीरके भीतर रहनेवाले आत्मको नहीं देखकर ये प्राणी सर्वत्र घूम रहे हैं यह कितने दुःखकी बात है।

अपने घरमें विद्यमान भण्डारको बिना देखे बाहर श्रीमन्तोंके पास जाकर भीख मांगनेवाला मूर्ख नहीं तो कौन है? शरीरस्थित आत्माको भूलकर बाह्यपदार्थोंको देखनेवाला किस प्रकार सुखी हो सकता है?

ईखमें विद्यमान मधुररसको न जानकर बाहरके सूखे पत्तोंको खाने वाले पशुओंके समान मूर्खजन आत्मीयसुखसे अनभिज्ञ होनेके कारण शरीर सुखमें ही मुग्ध होते हैं।

हाँ! हरे-हरे पत्तोंको भी छोड़कर हाथी ईखके मिष्ट रसका स्वाद लेता है, इसी प्रकार कोई-कोई भेदविज्ञानी शरीरसुखको तुच्छ समझ-कर आत्मीय सुखका ही अनुभव करते हैं।

अपने हाथमें विद्यमान पदार्थको न देखकर सारे जंगलमें उसे खोजनेवालेके समान शरीरमें स्थित आत्माको न देखकर सारे लोकमें ढूंढनेपर क्या आत्माकी उपलब्धि होगी?

म्यानमें रहनेवाली तलवारके समान, बादलसे ढंके हुए सूर्यके समान बाहरसे मलिन शरीरमें छिपा हुआ आत्मा भीतर प्रकाशमान हो रहा है।

ज्ञान ही आत्माका शरीर है, ज्ञान ही आत्माका रूप है यह आत्मा निर्मल ज्ञानदर्शन स्वरूप है। यह ज्ञानदर्शन ही आत्माका चिह्न है।

जो इस प्रकार समझकर आत्माका दर्शन करते हैं वे धन्य हैं। यह आत्मा पुरुषाकार होकर इस शरीरमें रहता है फिर भी इस शरीरके रूपमें मिलता नहीं है। यह आत्मा आकाशके बीचमें पुरुषाकारसे बनाये गए चित्रके समान है।

यह शरीर एक बाजेके समान है, वाद्यको जबतक कोई बजानेवाला नहीं बजाता है तबतक वह बज नहीं सकता। इसी प्रकार इस शरीरमें जबतक आत्मा नहीं है तबतक उसका कोई उपयोग नहीं है। यद्यपि आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु बहुत खेदकी बात है कि इसे न समझकर आत्मा चलनेमें असमर्थ शरीरको चलाता है। बोलनेमें असमर्थ शरीरसे बुलवाता है और कहीं वह शरीर असमर्थ हो जाय तो आत्मा दुःखी हो जाता है।

जिस समय अग्नि लोहेमें प्रवेश करती है उस समय लुहार उसे हथौड़ेसे ठोंकता है। परन्तु जब वह लोहेसे बाहर निकले तो उसे कौन ठोंक सकता है। प्रत्युत: वही सबको जला सकती है; इसी प्रकार जो आत्मा शरीरमें प्रविष्ट है उसे ही बाधा होती है। शरीरको छोड़नेपर आत्माको कौनसी बाधा है? कोई भी नहीं।

जीव वर्तमान देहको मरणके समय छोड़ देवे तो उसे आगे दूसरे शरीरकी पुन: प्राप्ति होती है। इस शरीरको छोड़कर आगे अन्य शरीरको धारण न करनेकी अवस्थाको प्राप्त करना ही मुक्ति है।

कोई कह सकता है कि यह कथन तो सरल है परन्तु ऐसा होना कठिन है। इस प्राप्त शरीरको छोड़कर आगेके शरीरको न लेनेका उपाय क्या है? इसका उत्तर यह है कि बीजकी अंकुरोत्पत्तिकी सामर्थ्य जबतक मूलत: नष्ट नहीं की जाती है, तबतक वह अंकुरोत्पत्तिका कार्य जरूर करेगा। मूलसे उसकी शक्तिको नष्ट करने पर फिर उसमें वह कार्य नहीं दिखेगा। इसी प्रकार शरीरकी उत्पत्तिका कारण जो कर्म है उस कर्मबीजका मूलसे नाश करना चाहिये। इससे आगेका शरीर उत्पन्न नहीं हो सकता है। यदि कर्मबीजको अच्छी तरह जलावें तो शरीरकी उत्पत्ति होना असम्भव है। परन्तु कौनसी अग्निसे? सम्यग्ज्ञान अथवा विवेकरूपी अग्निसे यह कर्म जलाया जा सकता है; फिर उस देहकी उत्पत्ति असम्भव है; तब आत्मा मुक्तिस्थानको प्राप्त कर अनंत सुखी बनता है।

जिस वृक्षकी जड़ अधिक फैली हुई रहती है, उसके नाशका कारण

वह स्वयं बनता है; इसी प्रकार तैजस कार्माण शरीरका फैलाव ही आत्मा के अहितका कारण है। इसलिए सबसे पहले आत्मानुभवनरूपी अग्निसे कार्माण तैजस शरीरके विस्तारको जला देना चाहिए। तब बाह्य औदारिकादि शरीर सब स्वतः ही नष्ट होते हैं और तब ही मुक्ति होती है।

इस प्रकार भगवान् आदिनाथका संदेश है। आत्मा और शरीरको भिन्न करके देखनेके लिए उपर्युक्त विचार अचूक उपाय हैं। भेदविज्ञानीको ही इस प्रकारके विचार प्राप्त हो सकते हैं, अन्य व्यक्तिको नहीं. इस प्रकार आत्मविनोदी भरतराजके सामने उन गायकोंने गायन किया।

उन लोगोंने अपने गायनमें यह भी कहा कि चाहे राजा हो, चाहे योगी हो, अथवा गृहस्थ हो, यदि वह इस जिनतत्वको जानकर जिनकी भक्ति करेगा तो उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस प्रकार गम्भीर तत्वपूर्ण गानोंको सुनकर चक्रवर्ती महान् आनंदित हुआ। सस्मित भरतेश्वरके मुखमें हर्षकी रेखायें प्रकट होने लगीं। सम्राट्ने उन लोगोंको बुलाकर अनेक दिव्यवस्त्र पारितोषिक रूप में दिए। इस प्रकार गायन समाप्त हुआ। गायकोंके गायन कौशलसे वह सभा आनंदित हुई। महाराजा भरत भी सानंद उस आस्थानमें विराजमान थे।

इस जिन कथाको जो कोई सुनते हैं उनके पापका नाश होता है, पुण्यकी वृद्धि होती है, तेज बढ़ता है, तथा भविष्यमें वे कैलास पर्वतपर पहुँचकर भगवान् आदिनाथका दर्शन करेंगे।

यदि इसे प्रेमसे बाँचे, गावें अथवा सुनकर प्रसन्न होवें तो नियमसे स्वर्गीय सम्पत्तिको अनुभव कर आगे विदेहक्षेत्रमें जा सीमंधर स्वामीका दर्शन अवश्य करेंगे।

हे परमात्मन्! तुम प्रत्येक मनुष्यके इच्छित ध्येयकी सिद्धि करनेवाले हो। योगियोंके अधिनायक हो अर्थात् योगिगण सदा तुम्हारा ही चिंतवन किया करते हैं। तुम अन्तरंग-बहिरंगमें सुन्दर हो, सर्वश्रेष्ठ हो। ज्ञानके एकाधिपत्यको प्राप्त कर चुके हो, अतएव मेरे अंतरंग में तुम्हारा निवास सदाकाल बना रहे यही मेरी इच्छा है।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वर सदा सर्वदा सन्तोषी बने रहते हैं।

इति आस्थानसंधिः ७

कविवाक्य संधिः

सिद्ध परमेष्ठिन् ! आप समस्त लोकके यथार्थ गुरु हैं। उत्कृष्ट केवलज्ञान ज्योतिको धारण करनेवाले हैं। विषयविषका नाश कर चुके हैं। अतएव आपने संसारका ही नाश किया है। भव्यरूपी कमलोंको खिलानेके लिए आप सूर्यके समान हैं इसलिए आपसे मेरी सादर प्रार्थना है कि मुझे आप सदा सुबुद्धि देवें।

चक्रवर्ती भरतके आस्थानमें संगीतध्वनि अब सुनाई नहीं देती। अब भरतराजकी इच्छा साहित्यकला सुननेकी ओर झुकी है। इसलिए उनने विद्वानोंके समूहकी ओर अपनी दृष्टि डाली। सम्राट् भरतके आस्थानमें कवियोंकी क्या कमी ? फिर भी उनमें जब दिविजकलाधर नामके कविकी ओर महाराज भरतकी दृष्टि गई, तब वह विद्वान् उनके भावको समझकर बोलने लगा।

राजन् ! तुम श्री जिनेंद्रचरणके सेवक हो। राजाधिराजोंमें अग्रगण्य हो। हंस (आत्म) कलासे आनन्दित होनेवाले हो, एवं सबको आनन्दित करनेवाले हो। इसलिए तुम्हें महा जय सिद्धि हो।

प्रत्येक शब्दके व्यावहारिक और पारमार्थिक ऐसे दो अर्थ निकलते हैं। शत्रु राजा तुम्हारी 'जयसिद्ध हो' ऐसा कहे तो यह जयसिद्ध शब्दका लौकिक अर्थ है। यदि संसारके प्राणियोंको भय उत्पन्न करनेवाले कालकर्मको आप जीत लेवें यह उसका पारमार्थिक अर्थ है। राजन् ! लौकिक जयसिद्धिको प्राप्त करनेवाले राजा लोकमें बहुत हैं, परन्तु लौकिक जय एवं पारमार्थिक जयको प्राप्त करनेवाले राजाओंमें दुर्लभ हैं। उसके लिए सुविवेककी आवश्यकता है। यह साधारण बात नहीं है।

राजाको भोगविचारकी आवश्यकता है। आत्मयोगविचारकी भी आवश्यकता है। राजाको रागरसिक होना चाहिए, वीतरागताका भी रसिक होना चाहिये। उसमें शृंङ्गारका विज्ञान भी होना चाहिये। उसे आत्मज्ञानकी ओर भी झुकना चाहिये। संसार-युद्धके भी उसकी तैयारी रहनी चाहिये। आत्मयोगका विषय भी उसके आगे होना चाहिये।

वह इहलोक सम्बन्धी सुखको भी भोगें। परलोकमें सुख मिले इसके लिये धर्मकार्यमें उत्साहित हो। अनन्त प्रकारकी इच्छाओंमें फँसा हुआसा लोगोंको दिखे। परन्तु वह हृदयसे निस्पृह रहे।

सुखका मूल सम्पत्ति है। सम्पत्तिका मूल धर्म है। अतः उत्तम पुरुष तो जिस धर्मके प्रसादसे सम्पत्तिकी प्राप्ति हुई है, उस धर्मको कभी नहीं भूलते हैं। भोगमें फँसकर कर्मी लोग धर्मकी उपेक्षा करते हैं।

योग्य स्थानमें ध्यान देना चाहिये। परिस्थिति तथा धर्मको जानकर बातचीत करना योग्य है। अयोग्य स्थानमें मौन आवश्यक है, भगवान् या अपने गुरुओंके पासमें गरीबके समान ही रहना चाहिये। प्रजाके सामने राजाके समान भी रहना चाहिये। उत्तम कुलोत्पन्न क्षत्रियोंका यह लक्षण है।

राजा प्रजाका हितैषी रहे। शत्रु-राजाओंके लिए भुजगेन्द्र सर्पराज सदृश रहे। अपने गुरुके समीपमें सेवकके समान रहे। धार्मिक जनोंको बन्धु होकर रहे।

राजन्! परस्त्रियोंके लिए डरपोक, युद्धके लिए महावीर, मिथ्या मत स्वीकार करनेका अवसर आये तो मूर्ख, जिनागममें अविचल, कलामें आनन्दयुक्त होना राजधर्म है।

इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना चाहिए। आत्मयोगमें अविचल होना चाहिये। विशेष क्या कहें? लोकमें आज जो राजा है वह भविष्यमें स्वर्गके इन्द्र कहे जावेंगे। इंद्रियोंको वशमें करनेवालेके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। इंद्रियोंको वशमें न कर इंद्रियोंके वशमें होनेवाले मछली, हाथी, पतंग, भ्रमर इत्यादि प्राणी जब एक-एक इंद्रियोंके वशीभूत होकर अपने प्राणोंको खो देते हैं, तब पांचों इंद्रियोंके वशीभूत होनेवाले राजा बिगड़ जायँ इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

अविवेकी मनुष्यकी पंच इंद्रिय पंचाग्निके समान हैं। उन इंद्रियोंसे स्वयं उसका नाश होता है। विवेकीको पंच इंद्रिय पंचरत्नोंके समान ज्ञानशून्य होकर विषयोंको भोगनेवाला भोगी, भोगी नहीं, वह तो भवरोगी है। विवेकसहित भोगनेवाला भोगी योगी है।

कर्म अज्ञानीको स्पर्श करता है। ज्ञानीको स्पर्श करनेका साहस उस कर्ममें नहीं है। वह ज्ञान कहाँ है? मैं ही तो ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं शरीरके रूपमें नहीं हूँ। इस प्रकारके विचार विवेकी मनुष्योंके मानसिक अनुभव की वस्तु है।

राजन्! विज्ञान दो प्रकारका है। एक बाह्यविज्ञान, दूसरा अंत-

रंगविज्ञान। बाह्य विषयोंको जाननेवाला बाह्यविज्ञान है। अपनी आत्माको जानना अंतरंगविज्ञान है।

जगतमें रत्नपरीक्षा करनेके लिए प्रयत्न करना, हाथी-घोड़े आदि की परीक्षा करनेको सिखाना यह भी एक कला है। परन्तु यह बाह्य-कला है। आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञानरूप रत्नत्रयस्वरूप है। उन रत्नोंकी परीक्षा कर पहिचानना बड़ा कठिन कार्य है। इसे अंतरंगविज्ञान कहते हैं। इससे ही कल्याण होता है।

काम, आयुर्वेद, मन्त्र, तन्त्र, गणित, संगीत तथा ज्योति सर्व शास्त्र बाह्यविज्ञान हैं। क्योंकि इन शास्त्रोंके ज्ञानसे मनुष्योंको शरीरको पोषण करनेका उपाय ज्ञात होता है। परन्तु आत्मा निर्मल स्वरूप है। उसमें और उनके निर्मल गुणोंमें कोई भिन्नता नहीं है ऐसा समझकर उसका विचार करना अंतरंग विज्ञान है। यही उपादेय है।

छन्द, अलंकार और नाट्यशास्त्र आदि बाह्य ज्ञानके साधक हैं, क्योंकि इनसे अल्प समयके लिये मनोरंजन होता है इसलिए बाह्य-विज्ञान हैं तथा आत्मा अपनी यथार्थताको भूल जाता है; परन्तु इन सब विकल्पोंको छोड़कर आत्मतत्वको ही विचार करना अंतरंग विज्ञान है।

वेद, पुराण, तर्क इत्यादि शास्त्रोंका जानना बाह्य विज्ञान है। आत्मा और शरीरको भिन्न करके असली स्वरूपका चिंतवन करना अंतरंग विज्ञान है। इस प्रकार लोकमें और भी जितनी कलायें हैं, जो आत्मपोषणमें सहकारी न होकर शरीरपोषणमें निमित्त हों एवं भौतिक उन्नतिके साधक हों उन्हें बाह्यविज्ञान कहना चाहिये। जो ज्ञान आत्म-हितका साधक हो जिसके मनन करनेसे आत्मा परिशुद्ध होता है, जिससे लोकमें आत्मोन्नतिका आदर्श स्थापित होता है उसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं।

राजन्! प्रत्येक जीव अनेक भवोंमें बाह्यविज्ञान अनेकबार प्राप्त किया और खोया, परन्तु अंतरंग विज्ञानकी प्राप्ति एकबार भी नहीं हुई। क्योंकि वह सामान्यविज्ञान नहीं है। यदि कहा जाय कि वह मुक्ति पदके लिये कारण है तो अनुचित नहीं है। वह मनोरथको पूर्ण करता है। कल्पवृक्ष, कामधेनु तथा चिन्तामणि रत्न भी उसकी बरा-बरी नहीं कर सकते हैं। लोकमें कोई भी वस्तु उसके समान नहीं है।

राजन्! जिस राजाको वह अलौकिक विज्ञान प्राप्त होता है उसके

विषयमें कहना ही क्या है ? अभी इस भूमण्डलके राजा हैं तो कल स्वर्गके राजा होंगे और परसों मुक्तिसाम्राज्यके अधिपति बनेंगे।

राजन् ! वह आत्मविज्ञानी सम्पत्तिसे मदोन्मत्त न होगा। मानियोंके अधीन न होगा, क्षुद्र हंसी की बातोंसे सन्तुष्ट न होगा, गम्भीरता-हीन बातें न करेगा। विशेष क्या ? वह मेरुपर्वतके समान अकंपित धैर्यवान् रहेगा। वह इंद्रिय सुखोंमें आसक्त न होगा। देवेन्द्रकी सम्पत्ति भी उसकी दृष्टिमें तुच्छ रहेगी। इंद्रियोंकी अनुभव करते हुए भी वह योगीन्द्रवृत्तिकी अधिक कामना करता रहेगा। वह सांसारिक अनेक दुःखोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवरूपी अमृतके आस्वादसे अपनेको अत्यन्त सुखी मानता है।

बार-बार आत्मचिंतवन करनेसे उनके कर्मोंकी सदा निर्जरा होती रहती हैं। मैं किसी भी तरह इन दुष्ट कर्मोंको दूर कर अवश्य मुक्तिको प्राप्त करूँगा यह उसका दृढ़निश्चय रहता है। सच बात तो यह है कि जो व्यक्ति बार-बार देह और आत्माको भिन्न रूपमें अनुभव कर स्वरूपको भोगता है, उसे कर्मबन्ध नहीं होता। वह तो रोगी होते हुए भी यथार्थ में योगी है।

राजन् ! जमीनमें गड़े लोहेमें जंग (मल) लगता है किन्तु क्या वह सोनेमें लगता है ? नहीं। इसी प्रकार अविवेकी भोगियोंको तो है। विवेकियोंको क्या कर्मबंध होता है ? दो प्रकारके भोगी होते हैं। एक सकाम भोगी दूसरे निष्काम भोगी। सकाम भोगी कर्मबन्धनसे बद्ध होता है, किन्तु निष्काम भोगीको कर्मबंध नहीं होता है। दग्ध बीज बोए जाने पर क्या अंकुरोत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है ? कभी नहीं। क्योंकि उसकी अंकुरोत्पत्तिकी शक्ति नष्ट हो चुकी है। इसी प्रकार कर्मबंधरूपी अंकुरके लिये बीजरूप रागको यदि पहले ही नष्ट कर दिया जाय, तो फिर उसकी उत्पत्ति कहाँसे होगी ? निष्काम-भोगी आत्मविज्ञानीको इन्द्रियविषयोंमें राग नहीं रहता है। अतएव वह कर्मांकुरको उत्पन्न नहीं करता है। विकारमय संसार के बीचमें रहनेपर भी उन विकारोंका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। नागलोकमें वास करनेपर भी क्या गरुड़को सर्पोंकी बाधा हो सकती है ? नहीं। इसी प्रकार भोगोंके बीचमें रहते हुए भी आत्मविज्ञानीको उन भोगोंसे कर्मका बन्ध होगा क्या ? नहीं। महाराज ! यही दशा आपकी कही जा सकती है।

विष तो लोकमें सबको मारनेमें समर्थ है, किन्तु जिसे गारुड़ी मन्त्र सिद्ध है क्या उसका विष कुछ बिगाड़ सकता है ? नहीं। इसी प्रकार इंद्रियजनित सुख जगतमें सबको दुःख देता है, तो क्या वह आत्मविज्ञानीका कुछ बिगाड़ कर सकता है ? कभी नहीं।

हे राजन् ! आपकी यह वृत्ति अन्य नरेशोंमें नहीं है। आपकी वृत्ति, आपकी बात, आपमें ही देखकर, हे षट्खंडके अखंडस्वामी, मैंने यह सब निवेदन किया है।

लोकमें बहुधा ऐसी पद्धति देखी जाती है कि जो बात राजाको प्रिय हो, वही लोग कहते हैं। उसी प्रकार आपको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे मैंने यह नहीं कहा है। हे भरतेश ! आपका यह तत्व निश्चयसे मोक्षका मार्ग है।

राजन् ! लोकमें ऐसे बहुतसे योगी होंगे, जो बाह्य सम्पूर्ण परिग्रहका परित्याग कर अंतरंग निर्मल आत्माका दर्शन करते हैं; परन्तु बाह्य अतुल ऐश्वर्य रखते हुए भी अन्तरंग में अकिंचनतुल्य निर्मोही होकर आत्मानुभव करनेवाले आप सरीखे कितने हैं ?

लोकमें संपत्ति, शरीर सौंदर्य, यौवन, अधिकार ये सब प्रायः मनुष्यको अभिमानके पर्वतपर चढाकर अवनतिके गड्ढेमें गिरानेमें सार्थक हैं, परन्तु हे भरतेश ! इनमेंसे आपमें किस बातकी कमी है ? फिर भी आप अविवेकी नहीं हैं। इन सब बातोंमें पूर्णता होते हुए भी आपकी दृष्टि सिद्धालयकी ओर लगी हुई है। आप सदृश तत्वविलासी लोकमें अन्य कौन हैं ?

अमुक मेरे शत्रु हैं। उसको मैं कैसे जीतूं ? अमुक शत्रुको जीतनेका क्या उपाय है ? ऐसा विचार करनेवाले लोकमें अगणित हैं परन्तु यमको जीतनेका क्या उपाय है, ऐसा विचार करनेवाले आप सदृश कितने हैं ?

जिस प्रकार एक नर्तकी अपने मस्तकपर एक घड़ेको धारण कर नर्तन कर रही है। नृत्य करते समय वह गायन, ताल, लय आदिको भंग नहीं होने देती है। इतना सब होते हुए भी उसकी मुख्य दृष्टि यह रहती है कि मस्तकका घड़ा नीचे नहीं गिर पड़े। इसी प्रकार राजन् ! समस्त राज्यवैभवको संभालते हुए भी आपकी मुख्यदृष्टि मुक्तिमें है। जिस समय बालक आकाशमें पतंग उड़ाते हैं उस समय पतंगके डोरेको अपने हाथमें रखते हैं। यदि उस डोरेको हाथमें न रखें तो पतंग न

जाने किधर उड़कर जायेगा ? इसी प्रकार हे राजन् ! आपने अपनी बुद्धिको सीधा मुक्तिमें लगाया है। आत्मा अपनी चंचल परिणतिसे इधर-उधर विचरण न करे, अतएव आपने उस डोरीको सम्हालकर मुक्तिमें लगाया है। घटिका यंत्रको देखनेके लिये जो व्यक्ति बैठा है, वह निद्रा आनेपर दूसरोंसे कथा कहनेके लिये प्रेरणा कर स्वयं हुंकार करते हुए भी उस घटिका यंत्रसे अपनी दृष्टिको जिस प्रकार नहीं हटाता है; उसी प्रकार आत्मविज्ञानी भी संसारकी अनेक विकलताओं-के मध्यमें अपनी आत्माको नहीं भूलता है।

भावार्थ-पूर्वमें समय जाननेके लिये घोलू ऐसे यंत्र हुआ करते थे कि बिना घड़ीके काम चलता था। लग्न-कौतूहलके समय ठीक मुहूर्तसे कार्य संपन्न करनेके लिये एक प्रमाणविशेषसे निश्चित कटोरीके तलमें एक अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रकर उसे पानीमें डालते थे। उस छिद्रसे पानी अंदर जाकर जिस समय वह कटोरी डूबती थी तब एक घटिका होती थी। फिर उसे खालीकर उस पानीमें छोड़ना पड़ता है। इसी प्रकार घटिका-की निर्णय करते थे। आज कल भी कहीं-कहीं इस प्रकारकी प्रथा है। परन्तु आजकलकी घडियालसे समय जाननेके लिए घडियालके पास किसी आदमीको बिठलाना नहीं पड़ता है। देशी साधन के पास किसी आदमीको बिठलाना पड़ता है। क्योंकि वहाँ कोई न बैठे तो कटोरी डूबकर कितना समय हुआ यह जाननेका कोई साधन नहीं। उसके पास जो आदमी बैठा रहता है उसे समय बितानेके लिये कोई कहानी कहनेको कहता है। कहानी कहनेवाला भी सुननेवालेको नींद नहीं आवे इसलिए हुंकार देनेको कहता है। वह आदमी हुंकार तो देता है, परंतु उसकी दृष्टि उस पानीकी कटोरीकी तरफ ही रहती है। नहीं तो वह उद्देश्यसे च्युत हो जाता है। इसी प्रकार आत्मविज्ञानी व्याव-हारिक सर्व कार्योंमें रहते हुए भी अपने लक्ष्यसे च्युत नहीं होता है। अपनी आत्मामें स्थिर रहता है।

लोकमें ऐसे बहुत होंगे जो स्त्रियोंके सौंदर्यका वर्णन करनेपर बहुत आसक्तिपूर्वक उसे सुनते हैं। उस स्त्रीका मुख चंद्रमाके समान है, उसका कुच अमृतके कुंभके समान है। वह मदोन्मत्त हथिनीके समान है, उसकी जंघा केलेके वृक्षके समान है, उसकी कटि अत्यंत पतली है आदि शृङ्गारपूर्ण वर्णनको लोग उत्साहसहित सुनते हैं। आत्महित-कारी तत्व सुननेवाले, हे राजन् ! आप सरीखे भला कितने होंगे ?

इस राज्यासनपर आरूढ होकर कामकथा, चोरकथा, जारकथा,

स्त्रीकथा, रणकथा, वेश्याकथा आदिको सुनकर नरक जानेवाले राजा बहुत हैं। परंतु सत्कथाको सुनकर आत्मशुद्धि एवं मुक्तिको प्राप्त करनेवाले आप सरीखे कितने हैं ? अर्थात् दूसरे नहीं हैं।

मंदिरमें विद्यमान देवको न देखकर केवल मंदिरको देखनेवाले मूर्खके समान अंदरकी आत्माको न देखकर शरीरको ही आत्मा समझकर अपनी प्रशंसा करानेवाले बहुत हैं।

महाराज ! तुम इन्द्रके समान हो, चंद्रके समान हो, ऐसी प्रशंसा करनेपर राजालोग बड़े प्रसन्न होते हैं। परंतु चक्रवर्ती भरतको ऐसी बातोंसे हर्ष नहीं होता। उनका विचार है कि इंद्रादिक बड़े-बड़े संपत्तिधारी सब नष्ट होनेवाले हैं, केवल जिनेंद्रदेवकी संपत्ति ही अविनश्वर है। स्तुतिपाठक लोग राजाओंसे कहते हैं तुम्हारी कीर्ति बहुत बड़ी है, तुम्हारी मूर्ति अत्यन्त कोमल है, तब वे नरेश प्रसन्न होकर उन स्तुतिपाठकोंका उद्धार करते हैं। परन्तु भरतेश्वर कहते हैं कि शुद्ध निश्चयनयसे इस आत्माकी कोई मूर्ति ही नहीं; फिर इसे कोमलमूर्ति आदि कहना ठीक नहीं है।

कोई कोई राजाकी प्रशंसामें कहते हैं, तुम कल्पवृक्षके समान हो, कामधेनुके समान हो, चिंतामणि रत्नके समान हो। ऐसी प्रशंसा करनेपर राजा लोग हर्षसे फूल जाते हैं और उस भक्तकी इच्छा पूर्ति करते हैं परन्तु महाराज भरत विचार करते हैं कि कल्पवृक्ष* तो एकेंद्रिय वृक्ष है। क्या उसके समान मैं हूँ ? कामधेनु तो एक गाय है। क्या मैं उसके समान पशु हूँ ? चिंतामणि रत्न तो एक पाषाण है। क्या मैं भी पत्थर हूँ ? नहीं, नहीं, मैं तो चित्स्वरूप हूँ।

आत्मा अनुपम है। संसारमें उसकी तुलना करनेवाला कोई दूसरा पदार्थ ही नहीं है। ज्ञानको सूर्यकी उपमा देना ठीक नहीं, दर्पणकी उपमा देना भी ठीक नहीं है। सूर्यसे अन्धकारका नाश होता है, परंतु अज्ञानका नाश नहीं होता। दर्पणमें पदार्थोंका प्रतिबिंब पड़ता है, वैसा प्रतिबिंब ज्ञानमें नहीं पड़ता है। 'इस कारण ज्ञान और आत्माका अनुपम स्वरूप है।

हे राजन् ! तुम नृत्यकलाको देखते हो, संगीतको सुनते हो, साहित्यके आनंदको भी लूटते हो, परन्तु उन सबमें आत्मकलाको बड़ी उत्सुकतासे ढूंढते रहते हो। सबकी अपेक्षा यही विचित्रता आपमें है।

---

*आदिपुराणमें कल्पवृक्षको अचेतन पृथ्वीकाय कहा है।

आपके हृदयमें भोग विलासके प्रति आसक्ति नहीं है, फिर भी लोग तुम्हें षट्खंड वैभवके भोगी समझते हैं। तुम योगी होकर बाह्य रूपमें कोई आत्मध्यान नहीं करते हो, फिर भी तुम अंतरंग में आत्मानुभव करते हो इसीलिए योगी हो। भोगमें रहकर योग साधन कर मुक्तिको प्राप्त करनेवाले तुम्हारे समान कितने हैं।

विषयविषोंको खाकर भी उनके प्रभावको शून्य करनेमें तुम सर्वथा समर्थ हो। विषम चित्तको आत्मामें तुमने लगाया है। अतएव हे राजन्! तुम राजर्षि हो।

महाराज! जो आपका दर्शन करते हैं उनके पाप नाश होते हैं। तुम्हारा नामस्मरण करनेवालोंको पुण्यबन्ध प्राप्त होता है। मैंने आपकी स्तुति नहीं की है, आँखों देखी बात ही कही है।

भरत महाराज की महिमा अपार है। उनके गुण गाये नहीं जा सकते। कवियोंने उनकी स्तुतिमें जो कहा है वह ऐसी कोई कला या शास्त्र नहीं है जिसका निर्णय भरत न कर सकें। इसी प्रकार उनके शरीरको 'आयुर्वेदो नु मूर्तिमान्' साक्षात् सजीव जीवनशास्त्र कहा है। उनका पुण्य भी अचित्य है। उनका यह सम्पूर्ण अनुभव जन्मसम्बन्धी अनुभव अथवा विज्ञान नहीं है। उनने अनेक भवोंमें उसका संचय किया था, अतः भवमें वे लोकोत्तर पुरुष हुए।

राजन्! प्रतिसमय उचित रूपसे जिन व सिद्धवंदना करनेको आप नहीं भूलते, इसलिये आपको आत्मयोग दिखता है। यद्यपि आप अतुल भोगको भोगते हैं, परन्तु वह शीलसंगत है, अतः आपकी स्तुति करना उचित है।

जिस प्रकार भ्रमर कमलका आश्रय लेता है, उसी प्रकार सत्पात्र दानी, तत्वविज्ञानी व आत्मानुभवी सज्जन लोग आपका आश्रय करते हैं। इसमें कोई अनुचित बात नहीं है।

राजन्! देव, गुरु, धर्मका आप उत्कर्ष करनेवाले हो। जिन यज्ञ सम्बन्धी कथाको सुननेवाले हो। जिनसंघकी पूजामें तुम्हारी अनुपम भक्ति है। अपनी सन्तानके समान प्रजाकी रक्षा करते हो। फिर ऐसा कौन विवेकी मनुष्य इस संसारमें होगा जो तुम्हारा गुण वर्णन नहीं करेगा?

(यहाँ कवि सचमुच में राजा भरतकी अतिशयोक्तिसे स्तुति करता है, यह बात नहीं है। भरतमें ऐसे-ऐसे अद्भुत गुण थे कि जिनका वर्णन

करना मानवीय शक्तिके बाहर था। महाराज भरतका चरित्र तीर्थङ्कर प्रभुके द्वारा भी प्रशंसित था। अनेक प्रकारके राजवैभवको भोगते हुए भी योगी कहलानेका अधिकार, गार्हस्थ्य जीवनमें ही आत्मानुभव करनेकी अद्भुत सामर्थ्य क्या किसीको सहज प्राप्त हो सकती है? उसके लिए तो जन्मांतरमें कठिन तपश्चर्या करनी पड़ती है। जिस भरत की स्वर्गमें देवेंद्र भी प्रशंसा करते हैं, उनके विषयमें अन्यलोग स्तुति करें तो अतिशयोक्तिकी क्या बात है?)

हे राजन्! आप जिनभक्ति, सिद्धभक्ति आदि कालोचित कार्योंमें प्रमाद नहीं करते हैं। इन सबको करते हुए भी आत्मदर्शनमें आप भूल नहीं करते। शीलसे असंगत भोगमें आपको घृणा है। भोगमें भी आप शीलसे च्युत नहीं होते। भला आप सदृश राजाओंकी कौन नहीं स्तुति करेगा?

यह स्वाभाविक बात है कि लोकमें सत्पात्र दानी, तत्वज्ञानी व आत्मानुभवी पुरुषका सज्जन लोग आश्रय करते हैं। जिस प्रकार भ्रमर जाकर कमलका आश्रय करते हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है?

महाराज! जीर्णोद्धार कराना, जिनपूजा करना, पुण्यानुबंधिनी कथाओंको सुनना, जिनसंघकी सेवा करना आदि शुभकार्य आपकी मुख्य दिनचर्या है। इन सब बातोंको करते हुए भी प्रजाका पुत्रवत्पालन करनेमें कभी भी असावधान नहीं रहते हैं। फिर भला आपकी स्तुति कौन न करेगा?

जिनभक्ति, सिद्धभक्ति, गुरुभक्ति व शास्त्रसेवा आदि आपके स्वाभाविक कार्य हैं। पिताको देखकर जैसे पुत्र प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार समस्त प्रजा आपको देखकर सन्तुष्ट होती है।

जो व्यक्ति जिनस्वरूप व सिद्धस्वरूपको सम्यक्प्रकार विचार न कर ध्यान करता है उसको कोई लाभ नहीं होता। परन्तु जो जिन तथा सिद्ध स्वरूपमें अपने मनको लीन कर ध्यान करता हो उसे राजाकी प्रीति प्राप्त होती है। स्त्रीप्रेम, राजानुराग, पूजा प्रेमके लिये इससे अच्छा कौनसा मन्त्र है?

जिस समय आत्माके रूपका दर्शन होता है और साधक साक्षात् अरहंतके रूपको धारण करता है, उस अवस्थामें उस व्यक्तिको व्यंतरवश्य, विद्यावश्य आदि करना क्या कोई कठिन कार्य है? यह तो जाने दो, मुक्तिकांता भी सहजमें उसके वश हो जाती है।

राजन् ! यह शरीर ही जिनेंद्रमन्दिर है। मन ही सिंहासन है। निर्मल आत्मा जिनेंद्रभगवान् है। बाहरके अन्य विकल्पोंको छोड़कर आंख मींचकर इस प्रकार देखें तो सचमुचमें जिनदेव अपने ही भीतर दर्शन देते हैं। जैसे कोई व्यक्ति किसी बातको भूलकर फिर सावधान हो पुनः उस ओर उपयोग लगा उस पदार्थमें चित्त स्थिर करता है, उसी प्रकार खोये हुए पदार्थको ढूंढनेके समान एकाग्रतापूर्वक ज्ञान दर्शन ही मेरा निज रूप है, इस प्रकारकी चितना जब शरीरके अन्दर होती है तब इस आत्माका दर्शन होता है। जैसे कोई विद्यार्थी अभ्यास
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
किये हुए पाठको भूल गया हो और अध्यापकके पूछनेपर वह बहुत दत्तचित्त होकर विचार करता हो, उसी प्रकार ज्ञान दर्शन ही मेरा रूप है, ऐसा समझकर एकाग्रतासे यदि शरीरके अंदर चित्त लगावे तो आत्माका दर्शन होता है।

जिस प्रकार सुन्दर छाया मूर्तिका रूप है उसी प्रकार आत्माका भी निज रूप है, इस प्रकार स्मरण करते हुए आंख मींचकर आत्माको देखें तो अवश्य आत्मदर्शन होता है। प्राभृतशास्त्रोंको उत्तम प्रकार अध्ययन व मनन कर, शरीरस्थ वायवोंको भृत्योंके समान वशमें कर जिस समय चित्तमें त्रिलोकीनाथ भगवान्का स्मरण करते हैं, उस समय आत्माका प्रत्यक्ष होता है।

सूर्य चंद्र स्वरूप नासिकारंध्रको बंद करके प्राण व अपानवायुको जिस समय ब्रह्मरंध्रमें (मस्तकपर) चढ़ाते हैं उस समय शरीरके भीतर-का अन्धकार नष्ट होकर तेजःपुंज आत्माका दर्शन होता है।

खेद है कोई-कोई पवनको वश करके आत्माको देखते हैं। कोई-कोई उसे वश न करके ही देखते हैं। कोई शरीरको ही आत्मा समझते हैं।

कोई प्रयत्नकर एक ही दिनमें सहसा इस आत्माका दर्शन करना चाहे तो वह उसे नहीं देख सकता है। यह कोई सरल बात नहीं है। जब ये जटिल कर्म इससे दूर हट जाय, तब कहीं यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है।

क्या आत्मा बिजलीकी कोई मूर्ति तो नहीं है, चांदनीमें बनाया हुआ चित्र तो नहीं है अथवा प्रकाशका पुतला तो नहीं है, इस प्रकार कल्पनाकर विचार करनेपर वह दिखेगा।

आत्मानुभवी यह अनुभव करता है मानों वह ज्योतिर्लोकमें प्रवेश कर गया हो, अथवा शीतलज्योतिके बीचमें ही खड़ा हो। इस प्रकार

अभ्यास करते-करते यह मालूम होता है कि मैं तनुवातवलयमें रहने-वाले सिद्ध परमेष्ठीके समान हो गया हूँ।

आत्मा बोलता नहीं, चलता नहीं, उसके शरीर नहीं, मन नहीं। यहाँतक कि उसके पचेंद्रिय भी नहीं हैं। अनंतसुख केवलज्ञान यही उसका निजस्वरूप है। ऐसी आत्मा इस शरीरमें है।

जिस समय वह आत्मा अपने स्वरूपका विचार करता है उस समय नानाप्रकारके कर्म अपने आप उसे छोड़कर भाग जाते हैं और उसे ऐसा सुख प्राप्त होता है जैसा उसने कभी अनुभव नहीं किया और न पहिले कभी देखा अथवा सुना।

मुक्तिसुख के लिये वह अभेद भक्ति कारण है। यही जिनेंद्र भग-वान्‌द्वारा उपदिष्ट है। राजन्! इस बातको मुक्तिगामी जन जानते ही हैं। तुम राजयोगी हो! वैराग्यरसका तुम्हें अच्छी तरह अनुभव है, इसलिये तुमको तो इसका और भी अधिक अभ्यास है।

हे राजन्! इस आत्मानुभवसे उत्पन्न सुखको क्या हम लोग जानते हैं? नहीं, हम तो केवल बोलते ही हैं। इस स्वानुभवजन्य सुखको आत्मयोगियोंके शिरोमणि तुम ही अनुभव करते हो इस बातको हम सब स्वीकार करते हैं।

महाराज! आप अध्यात्मसूर्य हो! आपके समक्ष हम लोगोंका अध्यात्मरसका वर्णन करना सचमुचमें सूर्यको दीपक दिखाना है।

जैसे चन्दनके वृक्षोंके समीप रहनेवाले अन्य वृक्ष भी उनके संसर्गसे थोड़े सुगन्धित हो जाते हैं, उसी प्रकार आपके सत्संगसे आत्मविशुद्धिके मार्गको हम भी थोड़ासा समझ गये इसमें क्या आश्चर्य है?

आपसे प्राप्त अनुभवको आपकी ही सेवामें आज उपस्थित करनेपर आपको सन्तोष हुआ तथा आपके भक्तोंको भी हर्ष हुआ। आज मैंने "यथा राजा तथा प्रजा" या स्वामीके समान उनका परिवार होता है, इन वाक्योंके यथार्थ स्वरूपका साक्षात्कार किया है।

भरतेश्वरने इस प्रकार द्विविजकलाधर कविकी रचना बहुत उत्सु-कताके साथ सुनी। वह रचना सम्राट्‌के हृदयमें पहुँची। अध्यात्म-विषयको सुननेकी भरतेश्वरकी तीव्र इच्छा रहती है।

महाराज भरत मन ही मन यह विचार कर प्रफुल्लित होते हैं कि इस कविने मेरे अन्तरंगको पहिले कभी आँखों देखा हो इस प्रकार विवेचन किया है। कितनी बुद्धिमत्ता है यह? इस कविको आत्मज्ञान अवश्य प्राप्त हुआ है। यदि ऐसा नहीं है तो इस प्रकार वचन चातुर्य

उस विषयमें कैसे आ सकता है ? लोकमें वचन ही मनके भावोंको झलकाते हैं, चक्रवर्ती भरत इस प्रकार अपने मनमें विचार करने लगे।

इस लोकमें थलमें, जलमें इच्छानुसार गमन करना सरल है, परन्तु बिना आधारके कोई आकाशमें क्या चल सकता है ? नहीं। इसी प्रकार बाह्य लोग समस्त लोकका वर्णन कर सकते हैं, परन्तु आध्यात्मिक विषयका वर्णन करना उन लोगोंके लिए कभी शक्य हो सकता है। शब्द समुद्रमें प्रवेश करके एक-एक शब्दके सैकड़ों अर्थ करनेवाले विद्वान् लोग तैयार हो सकते हैं; परन्तु शब्दरहित आत्मयोगका वर्णन करना सामान्य बात नहीं है। तर्कशास्त्रमें गति प्राप्तकर परस्पर विवाद करनेवाले विद्वान् तैयार हो सकते हैं। परन्तु अर्क (सूर्य) के समान रहनेवाले आत्माको जानकर वचनसे कहना बहुत कठिन है।

आगम, काव्य व नाटकके वर्णनसे लोगोंको आनन्दविभोर करके सुलाया जा सकता है, परन्तु आत्मयोगका वर्णन कौन कर सकता है ?

स्त्रियोंकी वेणी, मुख व कुचोंका वर्णन करके लोगोंको प्रसन्न करना सहज साध्य है, परन्तु वचनागोचर परंज्योति आत्माका वचन द्वारा वर्णन करना क्या सरल है ?

युद्धका वर्णन करके सुननेवालेके हृदयमें जोश उत्पन्न करना सरल है, किन्तु आत्माका वर्णन करके दूसरोंके हृदयमें परमात्माका विचार उत्पन्न करना यह अत्यन्त कठिन कार्य है।

जो आसन्नभव्य है जिनका संसार समीप है, उन्हीं लोगोंको अध्यात्मके विचार प्राप्त होते हैं। हर एकको नहीं। आत्मध्यान करनेवाले ही आत्मज्ञानकी बात कहते हैं। दूसरोंको वह कला नहीं आ सकती। जिस प्रकार प्रत्यक्ष किसी विषयको देखनेवाला व्यक्ति उसका स्पष्ट वर्णन करता है, उसी प्रकार आत्माका प्रत्यक्षदर्शन करनेवाला व्यक्ति उसका वर्णन करता है। आत्माको प्रत्यक्षकरके फिर उसका वर्णन करनेपर भी अभव्य उसको नहीं मानते हैं। हाँ, भव्योत्तमोंके लिए वह अमृत है।

यह कवि अवश्य आसन्नभव्य है, सिद्धलोकका पथिक है। इस प्रकार चक्रवर्ती मन ही मन विचार कर रहे थे। फिर उनने अपने मुखसे स्पष्ट कहा हे दिग्विजकलाधर ! तुम सचमुचमें सुकवि हो, इधर आओ। इस प्रकार उसे अपने समीप बुलाकर उसे अपने हाथसे पारितोषिक प्रदान किया। सुवर्णकंकण, कंठमाला, कुण्डल आदि अनेक आभूषण

व वस्त्र उसे दिये। इतना ही नहीं, बहुतसे ग्रामोंकी जागीर देकर उसकी दरिद्रताको दूर किया। फिर चक्रवर्ती कुछ हँसकर कहने लगे तुमने बहुत सुंदर बात कही, जो तुमने अन्दर देखा है वही बाहर कहा है। बहुत देरतक कहते-कहते तुम थक गये होगे। अतः अब जरा बैठ जाओ। इस प्रकार कहकर उसे उसके स्थानमें जानेको कहा।

तब वह द्विजकलाधर हर्षित हो कहने लगा राजन्! यह जैनागम है, क्या यह कथन करनेके लिये सरल है? भला मैं क्या चीज हूँ? आपके आस्थान विद्वान् ही इस विषयको जान सकते हैं। यह सर्व आपकी ही कृपाका फल है। इसमें हमारा कुछ भी नहीं है। आपके ही प्रसादसे प्राप्त अमूल्यरत्नोंको आपकी ही सेवामें अर्पण किये हैं। इसमें मैंने क्या बड़ी बात की है? यह कहकर वह वहाँसे सानंद चला गया।

सभामें उपस्थित लोग भी विचार करने लगे चक्रवर्तीके अंतरंगको कोई नहीं पहिचानते। परंतु इस विद्वान् कविने उसे जानकर वर्णन किया है। सचमुचमें यह बहुत बुद्धिमान् व दूरदर्शी विद्वान् है इत्यादि प्रकारसे लोग उस कविकी प्रशंसा करने लगे। कविके ज्ञानपर राजा हर्षित व राजाकी उदारता देखकर सब प्रजाजन जब प्रसन्न हो रहे थे तब भों भों करता हुआ शंखका शब्द सुननेमें आया। उसी समय सबने विचार किया कि अब चक्रवर्तीके भोजनका समय हुआ है, ऐसा निश्चयकर सब लोग राजाको नमस्कार कर वहाँसे उठे। उस समय दण्डधारी लोग यथोचित सन्मानपूर्ण शब्दोंके साथ सब लोगोंको वहाँसे विदा कर रहे थे।

राजसभा विसर्जित हुई। महाराज भरत भी 'जिनशरण' शब्द कहते हुए वहाँसे उठे। उस समय चारों ओरसे जयजयकार शब्द सुननेमें आ रहा था।

महाराज भरत जिस प्रकार प्रजाका पालन करते हैं, उसी प्रकार रत्नत्रयधर्मपालक साधुओंकी सेवा करनेमें भी वे दत्तचित्त रहते हैं। प्रतिनित्य साधुओंको आहार दिये बिना मैं भोजन नहीं करूँगा ऐसी उनकी कठिन प्रतिज्ञा है। इसलिये राजसभासे बाहर आकर वे मुनियोंको पडगाहन (प्रतिग्रहण) करनेके लिये तैयारी करने लगे। बीच-बीचमें उन्हें दरबारकी बात याद आ रही थी। कविने मेरे हृदयकी बात जान ली थी, इस बातको बारंबार स्मरण कर वे मन ही मन आनंदित हो रहे थे। अनंतर सम्राट् मुनियोंकी मार्गप्रतीक्षा करनेके लिए तैयार हुए।

इति कविवाक्य संधि

मुनिभुक्तिसंधि

सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप अपार है। लोकके भव्योंको अजरामर पद देनेवाले, स्वभावावस्थाको प्राप्त हुए, मोहनीय कर्मको वशमें किए हुए प्रसिद्ध आत्मा सिद्धालयमें विराजमान हैं। ऐसी विशुद्ध आत्मासे सब लोग प्रार्थना करें कि वे हम सबको सुबुद्धि देवें।

भरत चक्रवर्तीके हृदयकी बात जिनेंद्र भगवान् ही जानें। मुनियोंकी चर्याका समय जानकर वे राजमहलके द्वारकी ओर चले।

सभाभवनसे आकर उनने शरीरके समस्त राजचिह्नोंको उतार लिया। राज्यशासनके योग्य वस्त्राभूषणोंको यद्यपि उनने उतार लिया तो क्या उनकीसुंदरतामें कोई कमी हुई ? नहीं। शारीरिक श्रृंगारसे रहित होकर वे द्वार-प्रतीक्षाके लिये चले। छत्र, चामर, खड्ग, पादरक्षा आदि राजचिह्नोंकी अब उनको आवश्यकता न थी। अब तो सम्राट भरत पात्रदानकी अपेक्षा करनेवाले एक सामान्य श्रावकके समान हैं।

पात्रदानकी प्रतीक्षाके लिए जाते समय उनके बांयें हाथमें अक्षत, पुष्प आदि मंगल द्रव्य व दाहिने हाथमें जलका कलश था। उनकी कड़ी आज्ञा थी कि मेरे साथ कोई भी नहीं आवे और न कोई मुझे मार्गमें नमस्कार ही करे। निधिकी अपेक्षा रखनेवाला कोई व्यक्ति जिस प्रकार उस निधिकी पूजाकर पश्चात् उसे लानेके लिये जाता है, उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी तपोनिधियोंको लानेके लिए जा रहे हैं। राजाके सामने सेवकको, गुरुके समक्ष राजाको किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये यह बात राजनीतिज्ञ भरत अच्छीतरह जानते थे।

दान देना, पूजा करना ये गृहस्थोंके कर्तव्य हैं। यह कार्य परहस्तसे होना उचित नहीं है, ऐसा समझकर सम्राट् स्वयं ही उस कार्यके लिये जा रहे थे।

जिस समय वे आगे जा रहे थे, उस समय उनका अनुगमन करनेवाले लोगोंको पीछे रोक दिया गया था। फिर भी भरत महाराजके शरीरके सुगंधसे मुग्ध हुए भ्रमर उनके पीछेपीछे झुण्डके झुण्ड आने लगे। भरतने उनको भी बहुत कहा कि मेरे साथ चलनेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु फिर भी वे भ्रमर नहीं रुके। ठीक ही बात तो है। मनुष्योंके कान हैं अतः उन लोगोंने मेरी आज्ञा सुन ली, परन्तु इन भ्रमरोंके कान नहीं हैं। ये चतुरिंद्रिय प्राणी हैं, इसलिए इनको रोकनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, ऐसा समझकर वे चुपचाप चले। अन्तमें किसी प्रकार

मार्ग तयकर भरत महाराज राजमहलके बहिर्भागमें आकर खड़े हो गये।

उनने पूजनसामग्री व जलकलशको नीचे रख दिया है। अब वे साधुओंकी प्रतीक्षा बहुत उत्सुकताके साथ कर रहे हैं। उस समय उनकी शोभा अपार थी। प्रतीत होता था कि कहीं अयोध्या नगरकी शोभा देखनेके लिये स्वयं देवेंद्र ही कहीं आकर तो नहीं खड़ा हुआ है।

भरतेश्वर बड़ी चिन्तामें निमग्न हैं। उनके मनमें यह चिन्ता लग रही है कि मैं इस संसारसमुद्रको पारकर कब मुक्ति पाऊँगा?

उस राजमहलके इधर उधरसे तीन बड़े-बड़े राजमार्ग तीन दिशाओं में गये हुए थे। भरत महाराज उन तीनों मार्गोंकी तरफ पुनः देखकर शांत भावसे मुनियोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जिस प्रकार कुमुदिनी चन्द्रमाकी प्रतीक्षा करती है उसी प्रकार महाराज भरत मुनियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कभी तो चर्मचक्षुसे मार्गकी ओर देख रहे हैं तो कभी ज्ञानदृष्टिसे शरीरस्थित आत्माका निरीक्षण कर रहे हैं। भीतर आत्माकी और बाहरसे मुनियोंके मार्गको देखते समय उनके कार्यमें तनिक भी प्रमाद नहीं हो रहा है।

चारों ओरसे स्तब्धता छाई हुई है। राजमहलसे लेकर बाहर तक कोई हल्ला नहीं है, क्योंकि सब कोई जानते थे कि यह भरत चक्रवर्ती के मुनिदानका समय है। कुछ सेवक आसपासमें छिपकर दानविधिको देखनेके लिए बैठे हैं। भरत उनको नहीं देख रहे हैं। संभवतः अपनी चर्यासे वे यह बात बतला रहे हैं कि यद्यपि सब लोक मुझे देख रहे हैं तो भी मैं उनसे अलिप्त हूँ। इसलिए ही तो वे एकाकी खड़े हैं। उस समय भरत इस प्रकार प्रतीत होते थे मानों कोई आत्मविज्ञानी पंचेन्द्रियोंसे युक्त होनेपर भी उनसे अलिप्त है। उस समय उनके चित्त-में निर्मल योगियोंको दान देनेके, सिवाय भोजन आदि करनेकी कोई चिन्ता नहीं है।

उस दिन उस नगरीमें चर्याके लिए बहुतसे योगिराज आये थे, परन्तु रास्तेमें ही बहुतसे श्रावकोंने उनका प्रतिग्रहण कर लिया इस-लिये राज-प्रासादतक कोई नहीं पहुँच सके। अब तो भरत चक्रवर्ती बड़ी चिन्तामें मग्न हैं कभी दाहिनी ओर कभी बायी ओर देखते हैं। परन्तु किसी जिनरूपधारीको न देख फिर चिन्तामग्न हो जाते हैं।

बहुत दूरतक भी दृष्टि पसारकर देखते हैं फिर भी कोई नहीं दिख रहे हैं। इससे उनको मनमें बहुत दुःख हो रहा है।

क्या आज पर्वोपवासका दिन है? आज कौनसी तिथि है? नहीं, आज तो कोई पर्वका दिन नहीं है। तब फिर क्यों नहीं मुनिराज आये? क्या कारण है कि मेरे महलकी ओर तपोनिधि नहीं आते? कहीं किसी दुष्ट हाथी-घोड़े आदिने तो उनको कष्ट नहीं दिया? क्या किसी दुष्टने उनकी निन्दा तो नहीं की?

मेरे राज्यमें यदि किसीने मुनिनिन्दा की तब तो मेरे राज्यकी इतिश्री हो गई? फिर मेरे अस्तित्वसे क्या प्रयोजन? ऐसी अवस्थामें मुझे षट्खण्डका अधिपति कौन कहेगा? नहीं, नहीं, मेरे राज्यमें मुनि-निन्दा करनेवाले मनुष्य नहीं हैं तो फिर आज मुनियोंका आवागमन क्यों नहीं होता?

हा! आज मुनियोंकी सेवा करनेका भाग्य नहीं है? सचमुचमें एक दिन भी रिक्त न होकर मुनियोंको आहार दान देना बड़े सौभाग्य की बात है। जिस प्रकार द्वीपमें जानेवाले जहाजमें अनेक प्रकारकी सामग्री भरकर भेजी जाती है, उसी प्रकार मोक्ष जानेवाले मुनियोंके करतलपर अन्नको रखकर भेजना प्रत्येक श्रावकका कर्तव्य है।

आत्मा और शरीरको भिन्न समझकर ध्यान करनेवाले योगी-को अपने हाथसे आहार देनेका सौभाग्य क्या प्रत्येक व्यक्तिको प्राप्त होता है?

रत्नत्रयके धारक, परमवीतरागी, तपस्वी आत्मामृतको तो आत्मा-को अर्पण करते हैं एवं भव्यात्मोंके द्वारा दिए हुए अन्नको शरीरको देते हैं। ऐसे योगियोंको आहार देनेवाला गृहस्थ क्या धन्य नहीं है?

चिद्गुणान्नको आत्माके लिये व पुद्गलान्नको पौद्गलिक शरीरके लिये देनेवाले सद्गुरुओंको आहारदान दे, तो इससे सद्गति होनेमें क्या कोई सन्देह है? ब्रह्मनाम आत्माका है। उस ब्रह्मसे उत्पन्न अन्नको ब्राह्मणान्न कहते हैं। परपदार्थोंसे उत्पन्न अन्नको शूद्रान्न कहते हैं।

सुक्षेत्रमें बोया हुआ बीज व्यर्थ नहीं जाता है। उसमें अंकुरोत्पादन होकर फल आदि अवश्य उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मोक्षगामीके हाथमें दिया हुआ आहार व्यर्थ नहीं जाता है। उसका इहलोकमें ही प्रत्यक्ष फल मिलता है।

सीपमें पड़ी हुई स्वाती नक्षत्रकी बूँद क्या व्यर्थ जाती है ? नहीं ! वह तो उत्तम मोती बन जाती है। इसी प्रकार ऐसे सद्‌गुरुओंको दिया हुआ आहारदान व्यर्थ नहीं जाता है। उससे मुक्ति भी प्राप्त होती है।

भोजन नहीं ग्रहण करनेवाली मूर्तिकी द्रव्यसे पूजा करना उपचार-भक्ति है। भोजन करनेवाले जिनरूपधारी गुरुओंको आहार दान देना मुख्य भक्ति है। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती अनेक विचारोंमें मग्न हो गये, परन्तु अभीतक कोई मुनिराज नहीं आये। वे और भी चिंतामें पड़ गए।

क्या कारण है आज मुनीश्वरोंका आगमन नहीं हो रहा है ? इतनेमें एक आश्चर्यकारक घटना हुई। आकाशमें एक अद्‌भुत प्रकाश दिखने लगा। इधर-उधर न देखकर उस कांतिकी ओर ही भरत महाराज देखने लगे। अभी वह कांति दूरसे दिख रही है। इससे चक्रवर्तीकी उत्सुकता बढ़ने लगी।

यह क्या है ? एक दूसरे सूर्यके समान यह अद्‌भुत प्रकाश क्या है ? जिन ! जिन ! यह क्या है ?

इतनेमें वह प्रकाश एकके स्थानपर दो रूपमें पृथक्-पृथक् दिखने लगा। भगवन् ! यह एक था अब दो हो गये। पहिले सूर्यके समान दिख रहा था, अब सूर्य व चंद्रमाके समान दिख रहा है। इतना विचार कर ही रहे थे कि वे दोनों प्रकाश पास-पासमें आ गये।

अहा ? यह तो चारणमुनियोंका शरीर है, और अन्य वस्तु नहीं है ऐसा उन्होंने निश्चय किया।

सूर्यके विमानमें विद्यमान जिनप्रतिमाओंका अपने प्रासादसे दर्शन करनेवाले चक्रवर्तीको इन मुनियोंको पहिचाननेमें इतनी देर न लगती, परन्तु उस दिन आकाश मेघसे घिरा हुआ था, इसलिए उनने अच्छी तरह विचार कर निर्णय किया।

चिंता दूर हो गई। हर्षसे शरीर रोमांचित हो उठा। अहा ! मेरा तो भाग्योदय हुआ ! ऐसा कहकर पूजाके द्रव्यको हाथमें लेकर वे नीचे उतरे। इतनेमें ही वह चंद्रमण्डल व सूर्यमण्डल इस धरातलमें उतरे।

गरीब मनुष्य निधियोंको देखकर हर्षसे नाच उठता है। इसी प्रकार भरत चक्रवर्ती उन मुनिनिधियोंको देखकर अत्यन्त आनंदित हो उनकी सेवामें उपस्थित हुए।

चक्रवर्तीने बड़ी भक्तिपूर्वक कहा, "भो मुनिमहाराज ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ !" यह सुनते ही वे दोनों मुनिराज वहाँ खड़े हो गये। तब भरत-

राजने अपने हाथके गंध, पुष्प, अक्षत आदिसे दर्शनांजलि देकर तदनंतर भावशुद्धिसे जलधारा दी। पश्चात् अत्यंत भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर उनको साष्टांग नमस्कार किया। तब कुछ लोग इधर-उधरसे आकर जयजयकार शब्द करते हुए कहने लगे कि चक्रवर्ती भरत यहाँ खड़े ध्यान कर रहे थे, इसलिये उस ध्यानके बलसे ये दोनों मुनि आ गये हैं।

भरत चक्रवर्ती जिस निधिको ले जानेको यहाँ आये थे वह निधि अब उनको मिल गई है। अब वे उस निधिको अपने महलमें बहुत सावधानीसे ले आ रहे हैं।

जिस प्रकार कामदेव हारकर उन मुनियोंसे प्रार्थना कर अपने घर ले जाता हो, उसी प्रकार वह नरलोकका कामदेव उनको अपने महल-में ले जा रहा है।

जहाँ मुनियोंको सीढ़ियोंसे उतरना पड़ता था वहाँ चक्रवर्ती उनको अपने हाथका सहारा देता था, और जब वे ऊपर चढ़ते थे, तब भी बहुत भक्तिसे हाथ लगाते हुए कहने लगता था स्वामिन् ! आप लोग आकाशमें बिना सहारे चलनेवाले हैं आपको अवलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। यह केवल हमारा उपचार है।

यह भी जाने दीजिये। देखिए तो सही, जब हमारा महल इतना वक्र है तब हमारा हृदय कितना वक्र होगा? हमारा महल वक्र, हमारा मन वक्र, फिर भी आप इस शिष्यपर कृपा करके यहाँ पधारे हैं। इससे अब हमारा मन व महल दोनों सीधे हो गये।

भरत चक्रवर्तीके धर्मविनोदको सुनते-सुनते मुनिराज मन ही मन प्रसन्न होने लगे। परन्तु कुछ बोले नहीं, क्योंकि उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि भोजन करनेसे पहिले किसीसे नहीं बोलेंगे। फिर भी मनमें भरतकी भक्तिसे प्रसन्न होकर जा रहे थे।

इस प्रकार भय और भक्तिसे जिस समय उन योगियोंको वह चक्र-वर्ती महलमें ले गया तब चक्रवर्तीकी रानियाँ सामने आईं। मुनियोंको देखते ही भक्तिसे सबकी सब रोमांचित हो गईं। तत्क्षण आरती उतारी। फिर सबने मुनिराजोंको साष्टांग नमस्कार किया। जिस प्रकार कामदेव दिगम्बर तपस्वियोंके प्रति स्पर्धा करके हार गया हो फिर वह उसी हारके कारण अपने महलमें लाकर अपनी स्त्रियोंसे भी हार स्वीकार कर रहा हो और इसीलिए स्त्रियाँ भी उन मुनिराजोंके

चरणमें पड़ती हों इस प्रकार उस समय भरत चक्रवर्तीकी शोभा प्रतीत हुई। उस समय महलमें एकको नहीं, सबको एक उत्सवका दिन प्रतीत हुआ। उत्सव दिन भी कैसा? विवाहोत्सवके समान हर्ष था। इसी आनंदमें उन सतियोंने किन्नरवीणा आदि लेकर अन्नदानकी महिमाको गाना प्रारम्भ कर दिया।

वे मुनिराज जब महलके अंदर जा रहे थे तब वे स्त्रियाँ दोनों तरफसे चामर ढार रही थीं। सेवकके घर स्वामी आवे, तो जिस प्रकार सेवक अनेक प्रकारसे भक्ति करता है, उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती उन तपस्वियोंके अपने महलमें आनेपर अनेक प्रकारसे अपनी स्त्रियोंसे युक्त होकर उनकी भक्ति करके अपनेको भाग्यशाली समझते थे।

चक्रवर्तीने हमको नमस्कार किया इसका उन मुनिराजोंको कोई अभिमान नहीं आया, और न उन सुन्दरी रानियोंको देखकर ही मनमें कोई विकार उत्पन्न हुआ। वे अपने मनको आत्मामें दृढकर चक्रवर्तीके साथ गये।

जिन योगियोंने अपने शरीरको भी तुच्छ समझकर आत्माकी ओर चित्त लगाया है भला कुछ बाह्यपदार्थोंको देखकर उनका मन विचलित हो सकता है?

तदनंतर, उन योगियोंके पादकमलोंका प्रक्षालन कर अमृतगृहमें पदार्पण कराया। उस घरमें कोई अन्धकार नहीं था। लोगोंको ऐसा मालूम होता था कि कहीं यह सूर्यका जन्मस्थान तो नहीं है?

भरतेश्वरने वहांपर उन योगियोंको ऊँचा आसन दिया फिर अपनी धर्मपत्नियोंसे युक्त होकर भक्तिसे उनकी पूजा की। तदनंतर भक्तिपूर्वक आहारदान दिया।

दातारोंमें चक्रवर्ती भरत उत्तम था और पात्रोंमें वे चारणमुनीश्वर उत्तम थे। इसलिये उत्तमपात्रोंको सिद्धान्तशास्त्रोंमें प्रणीत विधिके अनुसार उत्तम दान दिया।

दानके समय बाहर घंटा, वाद्य आदि मंगल शब्द होने लगे, क्योंकि चक्रवर्तीके आहारदानसंभ्रम सामान्य नहीं हैं।

इस जगत्‌में जितने उत्तम पदार्थ हैं वे सब भरत चक्रवर्तीके महलमें हैं। इसलिये उनको किस बातकी कमी हो सकती है? उन ज्ञानशील तपस्वियोंको उस चक्रवर्तीने अमृतान्न देकर तृप्त किया। सचमुचमें उस समय अनेक प्रकारके भक्ष्य खीर, शाक, पाक, फल

आदिको सोनेके बरतनोंसे निकालकर देते हुए चक्रवर्ती कल्पवृक्ष, कामधेनु व चिन्तामणिको भी मात कर रहे थे।

उस समय भरत चक्रवर्तीकी रानियोंके परोसनेकी युक्ति और उन अमृतग्रासोंको मुनिराजोंके हाथमें रखनेकी चक्रवर्तीकी युक्ति सचमुच दर्शनीय थी।

दोनों मुनिराज किसी भी अभिलषित पदार्थोंकी ओर संकेत न करके भरतने जिस दिव्य अन्नको दिया उसे भोजनकर तृप्त हो गये।

जिन मुनिराजोंके तपःप्रभावसे नीरस अन्न भी हाथमें आनेपर सरस बन जाता है तब चक्रवर्तीके द्वारा दिये हुए सरस अन्न किस प्रकार हुए यह बात अवर्णनीय है।

स्वर्गके देवगण जिस अमृतको सेवन करते हैं उसके समान अपने लिए निर्मित आहारको अपने हाथसे षट्खण्डाधिपतिने मुनिराजोंको समर्पण किया उसका क्या वर्णन करें?

चक्रवर्ती ने भुक्तिसे उन चारणमुनियोंको तृप्त किया। इतना ही नहीं, भक्तिसे भी तृप्त किया। तथा भुक्ति और भक्तिसे मुक्तिपथकी युक्तिको पा लिया। सप्तविध दातृगुण व नवविध भक्तिसे युक्त होकर जब चक्रवर्तीने उन योगियोंको आहारदान दिया तब उन्हें तृप्ति हो गई।

उन योगियोंने जिस समय भोजन-समाप्ति की, उस समय संभवतः उन लोगोंने यह विचार किया होगा कि परमात्माका स्वात्मानन्द ही भोजन है। भोजन शरीरके लिए है। आहारादिक सेवन करना शरीर-स्थितिके लिए कारण है, इसलिए शरीरको विशेषतया पुष्ट करना ठीक नहीं है। इस प्रकार हंसक्षीरनीरन्यायसे समझकर उन्होंने भोजन को पूर्ण किया।

बद्ध पल्यंकासनमें विराजमान होकर चारणयोगियोंने मुखशुद्धि की। तदनन्तर हस्तप्रक्षालन कर सिद्ध-भक्तिके अनन्तर आँख मींचकर उन्होंने आत्मदर्शन किया।

इतनेमें घंटाध्वनि रुक गई। चारों ओरसे रानियाँ आकर खड़ी हो गई। योगियोंकी निश्चल ध्यानमुद्रा देखकर चक्रवर्ती मनही मन हर्षित होने लगे। अभी उन मुनियोंकी देह जरा भी नहीं हिल रही है। वे पत्थर की मूर्तिके समान निश्चल हैं। वे सिद्धांतोक्त मंत्रोंका जप करते हुए आत्माका बहुत दृढ़ताके साथ निरीक्षण कर रहे हैं।

आँखोंको खोलकर जब उन्होंने आनन्दसे राजाकी ओर देखा, तब भरतने बहुत उत्साह व भक्तिसे नमोस्तु किया।

"**अक्षयं दानफलमस्तु ते**" इस प्रकार चन्द्रगति मुनिने और "**निर्मलात्मसिद्धिरस्तु**" इस प्रकार आदित्यगतिने उनको आशीर्वाद दिया।

उन चरणयोगियोंके पवित्र आशीर्वादको पाकर उस चक्रवर्तीके हृदयमें कितना आनन्द हुआ यह परमात्मा ही जाने। उस समय वह इस प्रकार नाचने लगा मानो मुक्ति ही उसके हाथ में आ गई हो। ठीक ही है। सत्पात्रोंकी प्राप्तिमें किसे हर्ष नहीं होगा? उसी समय भरत चक्रवर्तीकी रानियोंने भी मुनियोंको नमोस्तु किया। मुनियोंने भी उन सबको गीर्वाणभाषामें आशीर्वाद दिया।

उस समय भरतेशकी दानचर्यासे देव भी प्रसन्न हुए। उन्होंने इस हर्षमें नर्तन किया। आश्चर्य है कि उस समय पाँच घटनाओंके द्वारा देवोंने भूलोकको चकित कर दिया।

सहसा किसी सुगंधित फूलोंके बगीचेमें प्रवेश किये के समान शीत व सुगन्धयुक्त पवन बहने लगी।

उसी समय अयोध्येश भरतके महलमें स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी। स्वर्ग से देवगण भरत के महल पर रत्नवृष्टि व सुवर्णवृष्टि करने लगे। देवगण हर्षसे अनेक प्रकार की वाद्यध्वनि करने लगे। आकाश में देव खड़े होकर भरतचक्रवर्ती की जयजयकार करते हुए प्रशंसा करने लगे।

यह दान उत्तम है, दाता उत्तम है, और पात्र भी उत्तमोत्तम है।

हे भरत! हमने स्वर्गलोक में उत्पन्न होकर स्वर्गीय सुखका अनुभव किया तो क्या हुआ। तुम्हारे समान पात्रदान करने का भाग्य हमें कहाँ है? हमने व्रतसे, तपसे व दानसे यह स्वर्ग प्राप्त किया यह सत्य है। परन्तु खेद है कि यहाँ व्रत नहीं, तप नहीं व दान देनेका अधिकार भी नहीं है। हे भरत! तुम्हारा भाग्य हमें कहाँ?

अन्न देनेकी शक्ति तो हममें भी है। परन्तु कदाचित् हम आहारदान करनेका विचार करें तो हम व्रती नहीं हैं। अव्रती होने से हम दान देवें तो जिनमुनि उसे ग्रहण नहीं करेंगे।

हे राजन्! हम जिनेन्द्रकी पूजा करते हैं। परन्तु वह केवल उपचार है। क्योंकि उनके उदराग्नि नहीं है। किन्तु मुनियोंके उदराग्नि है। उसकी उपशांति करनेका अधिकार हमें नहीं, तुम्हें है, इसलिए तुम धन्य हो।

भूलोकमें आहारदान देनेवाले बहुतसे राजा मिल सकते हैं, परन्तु उनमें दान देनेकी युक्ति नहीं। कदाचित् युक्ति हो तो भक्ति नहीं। युक्ति व भक्तिसे युक्त मुक्तिसाधक दाता तुम ही हो।

जो सौभाग्य व सम्पत्ति मनुष्योंमें मद उत्पन्न करता है, उस मदने तुम्हें स्पर्श भी नहीं किया है। तुम्हें उस भोगसे मूर्च्छा नहीं आई है। इस तरह अनेक प्रकारसे देवोंने चक्रवर्ती भरत की महिमा गाई। ठीक ही तो है। धर्मात्माओंके धार्मिक गुणपर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करना धार्मिक पुरुषोंका जातिचिह्न है।

"धर्म साम्राज्यका चिरकाल पालन करो"

इस प्रकार देववाणी करके देवगण अन्तर्धान हुए।

आद्य चक्रवर्तीके दानकी महिमा अपार है। उपर्युक्त पंच आश्चर्य रूप घटनायें भरतेश्वरके दानके प्रत्यक्ष प्रभावको सूचित करती हैं।

"जिनशरण" शब्द का उच्चारण करते हुए मुनिगण वहाँसे गमन करनेको उठे। उसी समय महाराज भरत भी "हमें आप ही शरण हैं" ऐसा कहकर उनके पीछे ही उठकर चलने लगे।

भरतको उन मुनिराजोंने आज्ञा दी कि 'तुम ठहर जाओ, अब हम जाते हैं' परन्तु भरतने उनसे सविनय निवेदन किया "आप पधारिये। ऐसा कहकर एकदम अपने दो रूप बना लिया एवं दोनों रूपों से दोनों मुनिराजोंको हाथका सहारा देकर उनके साथ जाने लगा।

चार आठ गज जानेके बाद मुनियोंने फिर कहा "अब तो ठहर जाओ" "स्वामिन्! थोड़ी सेवा और करने दीजियेगा। आप पधारिये।" भरतने कहा।

थोड़े दूर जानेके बाद फिर मुनियोंने कहा कि 'अब आगे नहीं आना, ठहर जाओ'। "भगवन्! आपको उचित है कि भक्तों को आगे बुलाकर उद्धार करें, परन्तु आपलोग हमारा तिरस्कार करके आगे न आनेका आदेश कर रहे हैं। क्या यह आपको उचित है?" इस प्रकार भरतने विनोदमें कहा।

भरतकी विनयको देखकर मुनिगण मनमें प्रसन्न होकर जा रहे थे। यह भगवान्‌का पुत्र ही तो है ऐसा समझकर मनमें विचार करते हुए वे जा रहे थे।

"राजन्! भोजनको विलंब होता है। जावो, अब तो जावो" ऐसा कहकर मुनि ठहर गये। परन्तु भरत वहाँसे भी जानेको तैयार नहीं

हुआ। वह कहने लगा कि "भगवन् ! चलिये कुछ दूर और, ऐसा कह-कर भक्ति से आगे बढ़ा।

इस प्रकार उन मुनियोंके साथ वह चक्रवर्ती अन्तिम द्वारपर्यन्त गया। वहांसे भी उनको छोड़कर आनेकी इच्छा नहीं थी।

ठीक है ! जो सतत आत्मानुभव करते हैं ऐसे योगिरत्नोंको छोड़ कर कौन मोक्षगामी जाना चाहेगा ?

अब भी यह पीछे नहीं जाता है ऐसा समझकर मुनियोंने कहा कि "अब भगवान् आदिनाथ का शपथ है, ठहर जावो" ऐसा कहकर ठह-राया। भरतने भी भक्तिपूर्वक उन तपस्वियोंको नमस्कार कर साथ ही अपने दोनों रूपोंको एक बना लिया।

वीतरागी तपस्वियों ने भी उसको आशीर्वाद दिया एवं आकाश-मार्गसे विहार कर गये। भरत भी उनकी ओर आंख लगाकर बराबर देखने लगा।

दोनों मुनिवर आकाशमार्गमें जाते समय चन्द्र और सूर्यके समान मालूम होते थे। ठीक है ! वे नामसे भी तो चन्द्रगति और आदित्य-गति थे।

वे जबतक दृष्टिपथमें आ रहे थे, तबतक चक्रवर्ती खड़े होकर बड़ी उत्सुकताके साथ उनको देखते रहे। तदनंतर निराश होकर वहांसे महलकी ओर चले।

सेवकोंने आकर सोनेकी खड़ाऊ लाकर दी। इधर-उधरसे आकर चामरधारी चामर ढुराने लगे। इस प्रकार चक्रवर्ती राज वैभवके साथ महलकी तरफ चले।

इति मुनिभक्ति संधि

राजभुक्ति संधि

पवित्र है मूर्ति जिनकी, उज्ज्वल है कीर्ति जिनकी, त्रैलोक्यमें पवि-त्राकार तथा गंभीर जो सिद्ध भगवान् हैं, वे हमारी रक्षा करें।

राजाधिराज भरत चक्रवर्ती मुनिदानके अनन्तर महलकी ओर आने लगे। उस समय सुन्दर दुपट्टा धारण किये हुए वे ऐसे चलते थे मानो कोई हाथीका बच्चा चल रहा हो। उस समय दुपट्टा हिलाते

हुए वे चलने लगे। पैरोंमें सोनेकी खड़ाऊ पहने हुए तथा अपनी प्रवीणताको दिखाते हुए वे धीरे-धीरे लीलापूर्वक चलने लगे।

मेरे घर आज उत्कृष्ट पात्रका दान हुआ है, इस प्रकार मनमें आनन्दित हो सेवकोंका आदर-सत्कार करते हुए उन्होंने महलमें प्रवेश किया। तदनन्तर एक नौकरको बुलाकर कहा "जाओ उस सोनेकी राशिमेंसे सोना निकालकर पुरवासी गरीबोंको तथा भिक्षुओंको यथेच्छ दे दो" इस प्रकार आज्ञा देते हुए वे महलके अन्दर गये।

इधर उनकी रानियां मुनियोंके गुणोंकी स्तुति करती हुई तथा दानमें हुए अतिशयोंसे हर्ष मनाती हुई पतिके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगी। इतनेमें अपने सामने पतिकी चमकती हुई मुखकी कांतिको देखकर चक्रवर्तीकी सभी स्त्रियाँ परस्पर बातचीत करने लगी।

आज राजाधिराज (स्वामीका) भरत चक्रवर्तीका मन बड़ा प्रफुल्लित है। ऐसा मालूम होता है कि इनको कोई उत्तम वस्तु प्राप्त हुई है।

फिर आपसमें कहने लगी बहिन ! तुम उनके मुखको तो देखो तब ज्ञात होगा कि मेरा कहना सच है या झूठ। इस प्रकार वे परस्पर कहने लगी। कोई-कोई कहती है कि तुम्हारी बात सच है। झूठ नहीं है। इस प्रकार हम लोगोंको भी देखनेमें आता है। ऐसा कहती हुई सबकी सब आनंदित होती हैं। कोई-कोई कहती है कि अपने आप परस्परमें संदेहास्पद बात करनेमें कुछ प्रयोजन नहीं है, अतः चलो, स्वामीके पास जाकर अपने संदेहको दूर करें।

इतनेमें सभी स्त्रियाँ भरत चक्रवर्तीके पास जाकर पूछने लगी, हे नाथ ! आपके मुखकी प्रसन्नता देखकर हमारे मनमें जो भाव उत्पन्न हुआ है, वह सच है या झूठ ? तब उन्होंने कहा सच है मेरे हृदयके भावोंको तुम लोगोंके सिवाय और कौन जान सकता है यह कहकर भरतेश्वरने कहा कि चलो अब हम सब भोजन करें।

तदनन्तर पादप्रक्षालन करके जब वे भोजन करने गये तब अपने योग्य ही भोजनकी तैयारी देखकर वहीं खड़े होकर सोचने लगे आज बहुत देर हो गई अतः सभी रानियोंके साथ ही भोजन करना ठीक है। यह सोचते हुए निम्नलिखित नामोंसे सबको प्रेमपूर्वक पुकारने लगे। कन्नाजी, कमलाजी, विमलाजी, सुमनाजी, होन्नाजी, मधुराजी, रत्नाजी, चेन्नाजी, चित्राजी, कांताजी, मुकुराजी, कुसुमाजी, संताजी, मधुमाधवाजी, अन्तरंगाजी, सखाजी, सुखवती, शांताजी, भृङ्गलोचना, नील-

लोचना, कुरंगलोचना, सारंगलोचना, पुष्पमाला, शृङ्गारवती, गुणवती, चन्द्रमती, वीणादेवी, विद्यादेवी, सुरदेवी, वाणीदेवी, श्रीदेवी, बाणादेवी, भद्रादेवी, कल्याणीदेवी, अंजनादेवी, कुंकुमदेवी, मल्लिकादेवी, सुदेवी, उत्साहीदेवी, चित्रावली, चित्रलेखा, पद्मलेखा, ललितांगी, विचित्रांगी, कनकलता, कुंदलता, कनकमाला, जिनमती, सिद्धमती, रत्नमाला, मणिमाला, कांतिमाला आदिको बुलाकर कहने लगे कि आज हम सब साथ ही बैठकर भोजन करेंगे।

इतनेमे सभी स्त्रियाँ आकर हाथ जोड़कर कहने लगी कि हम लोगों का नियम है कि पतिके भोजनानन्तर ही हम भोजन करेंगी। अतः कृपाकर पहले आप भोजन कीजिए।

भरतेशने कहा, यह नियम कैसा है ? आज मेरी बात सुनो। आओ सभी एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करें।

सभी रानियाँ परस्पर मुख देखकर विचार करने लगी। सभीके विचार एक प्रकारके नहीं होते हैं। अतः वे सभी आपसमें छोटी बहिन बड़ी बहिनसे कहने लगी दीदी ! हम स्वामीकी आज्ञापालनार्थ साथ बैठकर भोजन करेंगी तो इसमें दोष तो नहीं होगा ? इस प्रकारकी बात सुनकर एकने कहा कि जिस प्रकार स्वामी मुनिराजको आहार दिये बिना आहार नहीं करते, उसी प्रकार हम भी अपना धर्म क्यों छोड़ें ? पतिको भोजन करानेके पश्चात् भोजन करनेवाली स्त्री स्वर्ग-स्वामिनी होती है। अतः एकसाथ भोजन करना ठीक नहीं है।

एकने कहा—यदि हम स्वतः भोजन करें तो दोष है, किंतु यहाँ तो वे स्वतः भोजन करनेके लिये कहते हैं। इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है।

इतनेमें फिर एकने कहा—इनको हमारे ही कारण भोजनके लिये इतनी देरी हो रही है। कोई-कोई मनमें ही विचार करने लगी कि इतनी देरसे कह रहे हैं परंतु क्या किया जाय। पतिको उत्तर देना अधर्म है। इसलिये कुछ समझमें न आनेके कारण कोई तो गूंगीके समान चुपचाप रही, और कोई अपने ही मनमें अनेक प्रकारसे चिन्ता करने लगी। कोई एक दो बातें भी करने लगी।

इस प्रकार वे सब राजमहिलाएँ कर्तव्यविमूढ होकर विचार कर रही हैं कि इतनेमें उनके अभिप्रायको समझकर श्री भरतेश बोलने लगे कि देवियों, आओ, इधर आओ, आप लोगोंको यह व्रत किस गुरु ने

दिया है ? क्या मेरी आज्ञाके बिना व्रत लिया जा सकता है ? यह व्रत मेरी आज्ञासे लिया गया है या नहीं, परंतु मेरी बातको मानना क्या तुम लोगोंका धर्म नहीं है ?

प्राणनाथ ! हम लोगोंने देव–गुरुसाक्षीपूर्वक यह नियम नहीं लिया है। हम [illegible] पूर्वक करती हैं। सात आठ दिनसे हम अपनी इच्छासे यह नियम पालन कर रही हैं।

भरतेश्वर बोले, ठीक है। गुरु, देव, साक्षीपूर्वक तो आप लोगोंने यह नियम नहीं लिया है, क्योंकि नियम देनेवाले गुरु आप लोगोंसे अलग हैं। फिर भी आप लोगोंमें यह व्रत है ऐसी कल्पना कर इसे क्या अबतक पालन किया है ? क्या आप लोग इसे व्रतके रूपमें पालन कर रही हैं ?

स्वामिन् ! इन व्रतपद्धतियोंको हम क्या जाने ? व्रतग्रहणकी विशेष विधि आदिको आप ही जाने। पतिभुक्त शेषान्नको भोजन करना हमको बहुत प्रिय लगता है। जिस प्रकार लोग प्रीतिसे व्रतपालन करते है, उसी प्रकार हम इसे प्रेमसे पालन करती आ रही हैं। हमारे हृदयमें कोई व्रतकी कल्पना नहीं।

अच्छी बात ! गुरुने आपको व्रत दिया नहीं, आप लोगोंने भी व्रत है ऐसी कल्पना नहीं की। केवल विनोदमें जो बात हुई है उसे व्रत कहकर क्यों हठ करती हो, यह समझमें नहीं आता। आओ ! हम सब भोजन करें। आप लोगोंको ध्यान रहे कि मैं अपने स्वार्थ व संतोषके लिये आप लोगोंके व्रतको कभी भंग नहीं करूँगा। इसमें आप लोगोंको संदेह न रहे, अतः मैं यह बात पितृसाक्षीपूर्वक कह रहा हूँ। अब आप लोग सब आवे। आपका कोई दोष नहीं है। देवियों ! आओ। आप सब लोग मिलकर मुनिभुक्त शेषान्नका भोजन करें। यह तो अमृतान्न है। आप लोग संकोचकर मेरे हृदयको क्यों दुखाती हैं ? समझमें नहीं आता। अब आप लोगोंको मैं करुणियाँ कहूँ या निष्करुणियाँ कहूँ, यह भी समझमें नहीं आता। अस्तु। निष्करुणी तरुणियो ! अब तो आओ ! भोजन करें। बहुत देर हो चुकी है। इस प्रकार भरतेशने उन लोगोंको जरा लज्जित करते हुए कहा।

इतनेमें सब स्त्रियोंने उनकी आज्ञापालनार्थ स्वीकृति दे दी और हर्षपूर्वक पतिके आदेशको शिरोधार्य किया। भला इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जब षट्खंडके मनुष्यमात्र उनकी आज्ञा पालनमें तनिक भी

विलम्ब नहीं करते, तब फिर कुछ स्त्रियोंकी क्या बात है ? और वे भी उनकी अंतःपुरस्थ रानियाँ हो।

भरतने सुवर्णके जलपात्रको स्वयं अपने हाथसे उठाया। सब रानियोंको हाथ-पाँव धोकर भोजनको चलनेके लिये कहा।

इतनेमें वहां एक विनोदप्रद घटना हुई। भरतजी जिस समय उस सुवर्ण कलशको हाथ लगाकर जल्दी-जल्दी में एक रानीको दे रहे थे, उस समय उस कलशका जरासा धक्का भरतेशको लगा, कोई चोट नहीं आई केवल किंचित् स्पर्श हुआ। इतनेमें उस रानीने भरतेश्वर विशेष प्रसन्न हो इसलिए कहा "जिन ! जिन ! सिद्ध ! हा ! आपको लग गया" यह कहकर वह दुःख प्रदर्शित करने लगी। उसका मुख म्लान हो गया। वह आँख उठाकर नहीं देख सकी। उसके ओंठ सूख गये। वह दुःखी होकर कहने लगी स्वामिन् ! कहें तो आप मानते नहीं, आपही गड़बड़ी करते हैं। अब आपको लग गया, इसमें मेरा क्या दोष है ?

इतनेमें अन्य स्त्रियोंने भी दुःख प्रदर्शित करना आरंभ कर दिया। कोई खम्बेके सहारे, तो कोई दिवालके सहारे टिककर खड़ी हो गई। कोई शाब्दिक तो कोई मानसिक दुःख प्रदर्शित करने लगी।

इस दृश्यको सुनकर भरतेश्वरको हँसी आई वे कहने लगे हा ! कष्ट है। भरतका कैसा भाग्य है। इस समय यह क्या स्थिति है ? इस प्रकारके वचनोंसे उन स्त्रियोंका चित्त जरा पिघलने लगा। वे अब विरस प्रसंगको सरसरूप देनेका यत्न करने लगी।

वे हँसती हुई आगे आकर बोली "प्राणनाथ ! आप जो कह रहे हैं वह पूर्ण सत्य है यदि हम जरा टिककर खड़ी हो गई तो क्या हुआ ? हमारे मुखकी कांति क्या कहीं चली गई ? आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? हम लोगोंने थोड़ी देर विनोद किया। इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है।

स्वामिन् ! अपराधियोंको दण्ड देनेवाले राजा ही यदि अपराध करें तो फिर क्या कहें ? इस प्रकार उन स्त्रियोंने हंसते हुए कहा और वे भरतके मनको हर तरहसे प्रसन्न करने लगी।

बस ! अब रहने दो विनोद ! आप लोग सब थक गई हैं। अब हम सब लोग भोजन करें, ऐसा कहकर चक्रवर्ती भरतने उन सबको अपने साथ ही भोजनको बिठा लिया।

जो मंगलासन भरतेश्वरके लिए पहिलेसे ही निश्चित था उसपर वे बैठ गये। पंक्तिबद्ध होकर वे स्त्रियाँ इधर-उधर बैठ गईं। भूकांत भरतको बीचमें कर वे कांतामणी रमणियाँ बैठ गई थी। उस समय सचमुचमें ऐसा मालूम हो रहा था, मानों लताओंके मध्यमें वसंतराजेंद्र ही हो। अथवा रत्नहारोंके मध्यमें मुख्यरत्न ही हो।

कुछ स्त्रियाँ तो भोजनको बैठी थी और कुछ स्त्रियाँ बहुत प्रेमसे भोजनको परोसनेकी तैयारी करनेके लिए इधर-उधर फिर रही थी। रत्न, सुवर्ण व चाँदी आदिसे बने हुए पात्रोंको लेकर जब वे स्त्रियाँ इधर-उधर जा रही थी तब संभवतः बिजलीके चमकनेका आभास हो रहा था। जिस समय भोजन करनेके लिये भरतेश्वर अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँपर बैठे थे उस समय वहाँ एक बरातके पंक्तिभोजनके समान दृश्य दिख पड़ता था। परोसनेवाली रानियाँ बहुत चतुराईसे परोस रही थी। इस समयकी शोभा अत्यन्त विचित्र थी।

क्या चन्द्रकी पंक्तिमें अमृतपान करनेके लिये तारांगनायें तो नहीं बैठी थी? अथवा देवामृतको पीनेके लिये देवेंद्रकी पंक्तिमें देवांगनायें तो नहीं हैं अथवा कामदेवके पंक्तिमें मोहनदेवी तो नहीं हैं? इस प्रकार दर्शकोंके मनमें विविध प्रकारके विचार आ रहे थे। परोसनेवाली स्त्रियाँ भी ऐसी ही मालूम हो रही थी कि कहीं वे देवलोकसे ही उतरकर तो नहीं परोस रही हैं।

अमृतान्न, भोज्यान्न, देवान्न, दिव्यान्न, व अमृतरसायन इस प्रकार पंचामृतोंको क्रमसे उन्होंने परोसा। अनेक प्रकारके शाक, श्रीखण्ड, पूरनपोळी आदि भक्ष्यविशेषोंको बहुत सावधानीपूर्वक सबको परोसने लगी।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके भक्ष्यविशेष वे स्त्रियाँ बहुत आनन्दसे परोस रही थी ऐसा दिखता था मानो उस दिन कोई पर्व ही हो।

ये सब स्त्रियाँ अपने पतिकी पंक्तिमें बैठकर भोजन कर रही हैं और हम इनको परोसनेके काममें लगी हुई' इस प्रकार मनमें जरा भी मत्सरभाव उन स्त्रियोंमें नहीं है। 'हममें और इनमें कोई भेद नहीं है' ऐसा समझकर वे परोसनेके काममें लगी हुई हैं।

लोकमें प्रायः स्त्रियोंमें मत्सरभाव विशेषतया पाया जाता है, परंतु उन विवेकी स्त्रियोंमें यह बात नहीं थी। इस प्रकार बहुत भक्तिसे सब

तरहके भोजनको परोसकर उन स्त्रियोंने चक्रवर्ती भरतकी आरती उतारी और नमस्कार कर एक तरफ खड़ी हो गई।

भरत भी इन स्त्रियोंकी नवीन भक्तिको देखकर जरा हँसे।

उस समय भरत भोजनके लिये शुद्धिपूर्वक विराजमान थे। उस समय तिलक, यज्ञोपवीत, सुवर्णके कटीसूत्र, उत्तरीय व अंतरीय वस्त्र-के सिवाय अन्य कोई राजकीय विभूति उनके शरीरमें नहीं थी। वे हस्तप्रक्षालन आदि विधिसे निवृत्त होकर प्रशस्त पल्यंकासनमें बैठ गये अर्थात् दाहिने गुल्फको बायें गुल्फके ऊपर रखा और उसके ऊपर बायें हाथपर दाहिना हाथ रखकर वे बैठ गये।

तदनंतर शांतभावसे आँख मींचकर अपने उपयोगको लोकाग्र भागमें पहुँचाकर उन्होंने श्री सिद्ध-परमेष्ठीका स्मरण किया तथा उन-को अपने अंतरंगमें लाकर स्थापित किया, उनकी मानवन्दना की, और उन्हें यथास्थान विराजमान कर अपने नेत्र खोले। वे आँखोंसे अन्नजलको अच्छी तरह देख रहे हैं और ज्ञानचक्षुसे अपनी आत्माका दर्शन कर रहे हैं।

इसके बाद सोनेके कलशसे पानी लेकर मंत्रजप करते हुए उन्होंने थोड़ासा जलपान किया अर्थात् भोजन करनेको प्रारम्भ किया। इतने-में घंटा बजने लगा।

भरतेश्वर दिव्यामृतके समान दिव्य अन्नपानका अब भोजन करने लगे हैं। भरतेश्वर ज्ञानान्नको आत्माके लिए और अन्न पानको शरीर-के लिये एक कालमें अर्पण कर रहे हैं। ज्ञानियोंके सिवाय भरतेशके हृदयकी बातको और कौन जान सकते हैं? भरत भक्ष्यके सुखका अनुभव शरीर को करा रहे हैं और आत्मा को मोक्ष के सुख का अनुभव करा रहे हैं। मोक्षगामियोंके सिवाय उस दक्षकी हृदयपरीक्षा कौन कर सकता है? उस मधुर अन्नको सम्राट् अपने शरीरको खिला रहे हैं। खिलाते हुए वे शरीरसे, कह रहे हैं कि 'देखो! तुमको मोटे ताजे बनानेके लिए मैं यह नहीं खिला रहा हूँ, तुम मेरे आत्माकी अच्छी तरह सेवा करना" सचमुचमें भरतके हृदयका विचार आसन्न-भव्य ही जान सकते हैं। वे जिस समय तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल व मधुर इन पाँच रसोंका अनुभव जीभको करा रहे हैं, उसी समय आत्माको दर्शन, ज्ञान, वीर्य व सुखका भी अनुभव करा रहे हैं।

शरीरको तन्दुलान्न खिला रहे हैं तो आत्माको बोधपिंड दे रहे हैं।

भोजन करते समय थाली कटोरी वगैरहमें हाथ आकर जैसे ही मुँहमें पहुँचता था वैसे ही उनका हृदय सिद्धलोकमें पहुँचता था।

जिस प्रकार किसी मनुष्यको भूख तो न हो, परन्तु बन्धुओंके आग्रहसे वह भोजन कर रहा हो; उसी प्रकारकी गति चक्रवर्तीकी हो गई थी अर्थात् वे बहुत उदासीन भावसे भोजन कर रहे थे, क्योंकि अनुपम पुण्योदयवाले श्री भरतको मोक्षके सिवाय अन्य विषयमें आनंद ही नहीं आता था।

जिस प्रकार किसी दुष्ट राजाके राज्यमें जबतक कोई सज्जन रहे तबतक तो उसे दुष्ट राजाकी बात सुननी ही पड़ती है, उसी प्रकार चक्रवर्ती भरत यह विचारकर भोजन कर रहे थे कि जबतक इस दुष्ट कर्मजन्य शरीरके साथ मैं हूँ तबतक मुझे उसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। जैसे घरपर आये अतिथिका सत्कार कर पहुँचानेके बाद मनुष्य अपने घरमें आकर स्वस्थ बन जाता है, उसी प्रकार भरतेश उस शरीरको अतिथि समझते थे। उसे खिलाकर वे अपने घररूप जो आत्मा है उसमें पहुँचकर सुखसे रहते थे।

इस प्रकार भरतेश अपने आत्मविचार करते हुए भोजन कर रहे हैं। फिर भी उनकी रानियाँ चुपचाप बैठी हैं। उन्होंने अभी भोजन करना प्रारम्भ नहीं किया है। चक्रवर्तीने जरा आँख फेर कर उनके तरफ देखा और पूछा—आप लोग क्यों बैठी हैं? भोजन क्यों नहीं करती हैं? तब किसीने भरतेशके कानमें कुछ कहा। भरतने सम्मतिका संकेत किया। तत्क्षण एक रानीने भरतकी थालीसे कुछ पक्वान्न लेकर सबको परोस दिया, तब कहीं सबको संतोष हुआ। उन पतिव्रता स्त्रियोंकी पतिभुक्तशेषान्न खानेकी प्रतिज्ञा थी। क्या इस प्रकारकी पतिभक्ति घर-घरमें हो सकती है?

जीवबल, देहबलकी वृद्धिके लिए भरतेशने ३२ ग्रास भोजन करके तृप्ति की। फिर उन रानियोंने भी हितमितमधुर भोजनकर तृप्ति प्राप्त की। वे सदा सन्तोषान्न खाती रहती हैं। इसलिए उनको क्षुधाग्नि विशेष नहीं है।

भरत व उनकी रानियोंने निर्मल जलसे हाथ धो लिया। भरत कहने लगे कि अब हमें भोजनानन्तरकी क्रिया करनी है। आप लोग अब उन परोसनेवाली रानियोंको भोजन करावें। ऐसा कहकर वे स्वयं आँख मीचकर बैठ गये और सिद्धमन्त्रका ध्यान करने लगे।

रानियोंने कहा—'बहिनी आइये। आप बहुत थक गई हैं। हम अब आप लोगोंको' परोसेंगी, ऐसा कहकर बाकी बची रानियोंको बहुत आनन्दसे भोजन कराया।

भरत चक्रवर्ती आँख खोलकर "जिनसिद्धशरण" ऐसा उच्चारण कर वहाँसे उठे एवं विश्रान्तिके लिए चन्द्रशालामें पहुँचे। वहाँपर भी रानियाँ पहुँचकर पतिसेवा करने लगी। कोई पंखा करने लगी, कोई गुलाबजल छिड़कने लगी, कोई पैर दबाने लगी। इस प्रकार, अनेक भाँतिकी सेवा करने लगी।

हे परमात्मन्! तुम्हारा रूप बहुत विचित्र है लिखनेमें नहीं आता, सुधारनेमें नहीं आता। मंथन करनेपर भी नहीं मिल सकते। तुम अभव हो इसलिये मेरी कामना है कि मेरे हृदयमें सदा रहो। यह भरतके नित्यका विचार है।

इति राजभुक्ति संधि

—०——

राजसौध संधि

हे परमात्मन्! तुम्हारा रूप विचित्र है। कोई कुशल चित्रकार तुम्हारे चित्रको चित्रित करना भी चाहे, तो वह चित्रित नहीं कर सकता है। बिगड़नेपर सुधरनेकी बात तो दूर ही रहे। समुद्रके मंथन करनेपर जिस प्रकार अनेक प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसी लोकोक्ति है, दहीको मथनेपर जिस प्रकार मक्खन निकलता है, उसी प्रकार क्या किसी वस्तुका मंथन करनेपर तुम मिल सकते हो? नहीं। क्योंकि तुम्हारे रूप नहीं है। आकार नहीं है। कोई तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता। देख नहीं सकता। तुममें कोई शब्द नहीं है, इसलिए सुन नहीं सकता। तुममें कोई गन्ध नहीं, इसलिये कोई सूँघ नहीं सकता। फिर भी हे आत्मन्! मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे हृदयमें तुम वैसे ही अंकित रहो, जैसे किसीने तुम्हारे चित्रको लिख छिपाकर रखा हो।

हे सिद्धात्मन्! तुम्हारी महिमा अपार है। अनन्त अमृत संपत्तियोंको धारण करनेपर भी लोकको एक अकिंचनके समान दिखते हो। आभरणोंके नहीं होनेपर भी अत्यन्त सुन्दर हो। तुम्हारी बातें कृत्रिम नहीं स्वाभाविक हैं। क्योंकि तुम यथार्थपदको प्राप्त कर चुके हो। भक्तजन अपने विचारोंके विकारसे कुछका कुछ समझे यह दूसरी बात

है। हे परमात्मन् ! मुझे तुम्हारे सच्चे रूपदर्शनकी सामर्थ्य दो वैसी सद्बुद्धि मेरे अन्दर उत्पन्न हो भगवन् ! मेरी आशाको पूर्ण कीजिये।

एक दिनकी बात है भरतेश प्रातःकालकी नित्य क्रियाओंसे निवृत्त होकर अपने ऊपरके महलमें नवरत्नमय मण्डपमें जाकर विराजमान हैं।

सोने के उस महल में स्थित नवरत्न मण्डपमें लालकमलके समान सिंहासनपर आसीन राजेन्द्र देवेन्द्रके समान मालूम होते थे।

पीछेकी ओर झल्लरीदार मुलायम तकिया, इधर-उधर शीतल हवा बहानेवाली देवदासियां, तथा सम्राट्के देहपर स्थित दिव्यवस्त्र सचमुचमें अद्भुत शोभा दे रहे थे। इतना ही क्यों ? शरीरकी कांति, आभूषणकी कांति, उस मण्डपकी कांति आदिके फैल जानेसे जनपति भरत उस समय दिनपतिके उदय कालमें साक्षात् दिनपति (सूर्य) ही मालूम हो रहे थे।

इतनेमें अन्तःसभाके योग्य सर्व सामग्री वहां एकत्रित होने लगी। अनेक मंगलद्रव्योंको लेकर दासियाँ सेवामें उपस्थित हुईं। वीणा किन्नरि, वेणु आदि वाद्योंको लेकर गायन करनेवाली स्त्रियाँ आई और भरतेश्वरको बहुत विनयके साथ नमस्कार करने लगीं।

हाथमें बेतको रखनेवाली व्यवस्थापक स्त्रियाँ 'हटो, रास्ता छोड़ो, इन्हें बुलावो, उन्हें बुलावो' आदि शब्दको करती हुई अपनी-अपनी सेवा कर रही थीं।

भरतेशकी रानियोंको काव्यका अध्ययन जिसने कराया था वह पण्डिता नामकी दासी भी वहाँ आकर उपस्थित हुई। राजेन्द्रको प्रणाम कर अपने स्थानमें बैठ गई।

इसी प्रकार सब रानियाँ शृङ्गार करके भरतेशके दर्शनार्थ अपने हाथमें उत्तमोत्तम बेटोंको लेकर उस महलपर चढ़ रही थी। ऐसा मालूम होता था मानो कामदेवके दर्शनार्थ उनकी स्त्रियाँ मेरु पर्वतपर चढ़ रही हो।

बहिन ! देखकर आओ, सावधानीसे आओ, जरा हमारे हाथको तो पकड़ो, इस प्रकार मुझे छोड़कर क्यों दौड़ती हो ? घबराओ मत। आओ, आओ बहिन, इस प्रकार परस्पर कई प्रकारका वार्तालाप करती हुई वे उस महलपर चढ़ रही थी।

तुम आगे क्यों भागी जा रही हो ? भागो ! भागो ! राजा प्रसन्न होकर तुम्हें अवश्य कुछ न कुछ देगा। जल्दी जाओ, इस प्रकार कोई आगे जानेवाली रानीसे कह रही थी।

वह लज्जित होकर 'अच्छा बहिन ! जिनके पैरसे चला नहीं जाता वे कुछ भी बोल सकती हैं। आपकी इच्छा जो चाहे सो बोलो ! ऐसा कहकर जा रही थी। कोई रानी कह रही थी जरा जल्दी चलो बहिन! इतना धीरे क्यों चल रही हो ! इतनेमें उसकी हंसी उड़ानेकी दृष्टिसे दूसरी रानियाँ कहने लगीं कि देखो इसे कितनी जल्दी पड़ी है ? न मालूम पतिके मुखका दर्शन किये कितने दिन हो गये हैं ! इसलिये जल्दी दौड़ रही है ! तब वह लज्जित होकर बोली 'अच्छी बात ! आप लोगोंके हितकी बात कही यही भूल की। अब मैं मौन रहूँगी' ऐसा कहकर चल रही थी। एक रानी गर्भिणी थी, उसे देखकर दूसरी रानियाँ कहने लगीं कि बहिन ! देखो ! यह ऊपर नहीं चढ़ सकती। स्वयं चढ़ती है और पेटमें एक बजनको लेकर चढ़ रही है। इसे कितना कष्ट हो रहा होगा ! क्या भरतेश्वरको दया नहीं है। इसे क्यों बुलाया है ? जरा हाथका सहारा लगा दो बहिन ! तब वह स्त्री कहने लगी कि बस रहने दो तुम्हारी बात ! मैं तुमसे आगे जा सकती हूँ, परन्तु आगे जाने पर आप लोग कहती हैं कि इसे पतिको देखनेकी हड़बड़ी है। इसलिये मैं पीछेसे धीरे-धीरे आ रही हूँ।"

इस प्रकार बहुतसे विनोद करती हुई वे रानियाँ महलपर चढ़ रही हैं। उनमें एक रानी मौनसे चढ़ रही थी। उसे देखकर दूसरी कहने लगी, देखो ! यह मौन धारण करके जा रही है। संभवतः यह मनमें पतिका ध्यान करती हुई जा रही है। इसके मनमें क्या है समझ में नहीं आता ? बहिन ! तुमको ऐसा ध्यान किसने सिखाया है ?

वह रानी कहने लगी बहिनों ! ध्यान गान तो तुम और तुम्हारा पति जाने। हम सरीखी उसे क्या समझे। हाँ ! तुम लोगोंके वार्तालाप को सुनती हुई व मनमें प्रसन्न होती हुई मैं मौनसे आ रही हूँ, और कोई बात नहीं है।

पीछे रहे, आगे जावें, बोले या मौनमें रहे, प्रत्येक अवस्थामें आप लोग कुछ कल्पना करती हो। तुमको जीतनेमें पतिदेव ही समर्थ हैं।

अब रहने दो विनोद ! सभा-भवन समीप आ गया है। अब बहुत गंभीरतासे आइयेगा। अपनी बात उधर सुननेमें आयेगी, इसलिए बहुत सावधान चित्तसे चलो।

इस प्रकार तरह-तरह के विनोद करती हुई वे रानियां महलपर चढ़कर आईं। अब सभा-भवन बिलकुल पासमें है।

रानियाँ आनंदपूर्वक महलपर चढ़कर आ रही हैं यह समाचार राजाको व्यवस्थापक दासियोंसे पहिलेसे मिल गया।

सबकी सब रानियाँ उस सभा-भवनमें प्रविष्ट हो पंक्तिबद्ध खड़ी हो गईं, फिर एक-एक रानी भेंट समर्पण करने लगी।

एक रानी निंबफलको भरतके चरणमें समर्पण कर अलग जाकर सुवर्णबिंबके समान खड़ी हो गई।

दूसरी नीलांगी नीलकमलको समर्पणकर अलग जा इन्द्रनील मणिके बिंबके समान खड़ी हो गई।

एक रानी लाल कमलको समर्पण कर भरतके बांयें तरफ माणिककी पुतलीके समान खड़ी हो गई।

एक रानी चंपाके फूलको अर्पणकर स्त्रियोंके बीचमें रह गई।

एक कृष्ण वर्णकी रानी अपने करकौशलसे रचित पुष्पमालाको लाकर भरतको उपहारमें देने लगी, मानों रतिदेवी ही कामदेवको उपहार दे रही हो। जिस प्रकार रतिदेवी कामदेवको पुष्पके खड्ग व बाण भेंटमें देती है, उसी प्रकार कोई रानी श्री भरतको केवड़ाके फूल लाकर समर्पण करने लगी। एक तारुण्यभूषित रानी पहाड़ी कमलको भरतके चरणमें रखकर अलग जाकर बहुत विभवसे खड़ी हो गई।

एक रानी लज्जित होकर सामने ही नहीं आ रही थी। सबके पीछे-पीछे रही थी। उसे दूसरी रानी हाथ धरकर लाई व उसके हाथसे भेंट दिलाई।

एक रानी डर-डरकर आई, व जिस समय भेंट समर्पण करने लगी उस समय उसके हाथका जपा पुष्प सहसा नीचे गिर गया, तब वह बहुत लज्जित हुई। दूसरी रानियाँ उस समय हँसकर कहने लगी कि यह भेंट नहीं है, यह तो पुष्पांजलि है।

एक मुग्धा रानी लज्जायुक्त होकर आई। मल्लिका पुष्पको समर्पण करते समय जब वह पुष्प हाथसे सरककर गिर पड़ा तब, वह और भी लज्जित हुई। भरतेश कहने लगे कि इतना लज्जित होनेका क्या कारण है? पुष्प गिर पड़ा तो क्या हुआ? हमारे ऊपर ही तो गिर पड़ा है न? तुम्हें लज्जित न होना चाहिए।

एक रानीने पादरी पुष्पको लाकर भरतके चरणमें रखा। जब चक्रवर्तीने पैरसे उसको जरा सरका दिया तब पण्डिता कहने लगी कि

राजन् ! आपने ठीक किया। क्या परदार सोदर (सहोदर) भरतके पास पादरी आ सकता है ? आपने पैरसे लात मारी सो बहुत ठीक किया। इससे महाराजको तनिक हँसी आ गई।

राजन् ! तुम्हारी स्त्रियाँ अत्यधिक शीलवती हैं। उनके समीप यदि पादरी आया तो उसको पकड़कर तुम्हारे पास लाई और तुमने उसे लात मारकर दण्ड दिया यह उचित ही किया।

इतनेमें दूसरी रानी आई और आम्रफलको समर्पण कर एक ओर खड़ी हो गई। एक रानी जो मोतीके हारको पहनी हुई थी अपनी भेंट समर्पण करने लगी। एक रानी अपने हाथमें माणिक्य रत्नको लाकर भरतके हाथमें देती हुई नमस्कार करने लगी।

दूसरी रानी मोतीके एक हारको बहुत भक्तिके साथ भरतके हाथमें रखकर प्रणाम करने लगी। इतनेमें पण्डिता विनोदसे कहने लगी कि राजन् ! लोकमें मुखसे मुख स्पर्शकर चुम्बन देनेकी पद्धति तो है। परंतु यह आश्चर्यकी बात है कि यहाँ दोनों हाथ परस्पर चुम्बन देते हैं।

इसी प्रकार अनेक रानियोंने चांदीके फूल, सोनेके फूल आदि अर्पण किये और वे अपने-अपने स्थानमें खड़ी हो गईं। पंक्तिबद्ध स्थित वे रानियाँ उस समय देवांगनाओंके समान मालूम होती थीं।

महाराज भरतने सबपर एक दृष्टि डाली और कुछ देर बाद हाथके इशारेसे सबको बैठनेके लिए कहा। पतिकी आज्ञा पाकर सबकी सब मृदु गादीपर वहाँ बैठ गईं। पासमें ही पण्डिता बैठ गई। जो गायकियाँ आई थीं उनको भी बैठनेका इशारा किया अतः वे भी अपने स्थानपर बैठ गईं। उस समय वह कामदेवका दरबारसा मालूम होता था। भरतके सिवाय वहाँ कोई पुरुष नहीं था। चामर ढारनेवाली उन तरुणियों के बीच भरत अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहे थे। इतनेमें भरतेशने गायकियोंकी ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। गायन आरम्भ हुआ।

कमलरसको खींचनेवाला भ्रमर जिस प्रकार उसीमें मग्न होकर गूंजता है, उसी प्रकार गायनकलामें प्रवीण गायकियाँ मग्न होकर गाने लगीं।

उनकी दृष्टि तो राजाकी तरफ, स्मरण रागकी ओर तथा हाथ वीणाके तारपर था। इनमें एकाग्रताको पाकर वे गा रही थीं। प्रातःकालमें बहुतसे पक्षी सूर्यके सामने जिस प्रकार मधुर ध्वनि करते हैं, उसी प्रकार राजा भरतके सामने वे देवियाँ गायन कर रही थीं।

सबसे पहिले उन लोगोंने उदय रागको इतना अच्छी तरह गाया कि यदि उस समय देवेंद्र भी वहाँसे निकलता तो गायन सुननेको वह वहीं ठहर जाता। ऐसा मालूम हो रहा था कि उस समय एक बार वे गायन समुद्रमें प्रविष्ट होकर पुनः उसमें डुबकी लगाकर आ रही हों।

वे उस स्वरको नाभिसे उठा रही थीं, फिर उसे हृदयदेशमें लाकर फैलाती थी। पश्चात् सुन्दर कण्ठमें ध्वनित कर बाहर निकालती थी। वह गायन सचमुचमें श्रीदेवीका मंगलगान मालूम हो रहा था। उन गायकियोंने उदयरागको गाकर फिर देवगांधारि, भूपालि, धन्यासि, वेळावळि, सौराष्ट्र आदि शुद्ध रागोंका आश्रयकर गायन किया।

वे उस गायनके साथ हाव-भाव, विलास, विभ्रम आदि अनेक क्रियायें भी करती जाती थीं। उस समय सुननेवाली राजसभाकी सभी स्त्रियां सिर हिला रही थीं।

जिस समय वीणाके तारको वह अंगुलीसे ताड़ित कर रही थी, उस समय भरतेश्वर मनमें विचार कर रहे थे कि यह कुशल गायिका इस संसारको नीरस जानकर उसे प्रगट करनेके लिए ही यह क्रिया कर रही है। जब वे स्वर मंडलसे गायन कर रही थीं तब यदि सुर-मंडल भी सुनता तो मुग्ध हो जाता; फिर परमण्डलको जीतनेमें समर्थ भरतेश्वर उसपर क्यों नहीं संतुष्ट होंगे ? इतना ही नहीं वह कामरूपी अरिमण्डलको जीतनेके लिये भी समर्थ है।

सुननेवाले कहते थे कि इनके समक्ष किन्नरी, विद्याधरी व अप्स-राओंका मूल्य क्या है ? उन्होंने भिन्न व अभिन्न भक्तियुक्त किन्नरी वाद्यसे भी सभाको मोहित कर दिया था।

भला इसमें आश्चर्य भी क्या है ? वे गायकियाँ सामान्य तो थी नहीं। भरतचक्रवर्तीके यहाँ गायनकी शिक्षा प्राप्त कर चुकी थी अतः श्रोताओंको अत्यंत मोहित करनेकी उसमें किस बात की कमी होगी।

सबसे पहिले अरहंत भगवान्‌का स्मरण करके बादमें सिद्धपरमेष्ठी एवं मुनिगणोंका बहुत भक्तिपूर्वक स्मरण किया। तदनन्तर भोग व योग के विचारको मिश्रितकर वे गाने लगीं। क्योंकि वे अच्छी तरह जानती थी कि भरतेश्वरके मनमें क्या है ? वे चक्रवर्ती भोग तथा योगको हृदयसे पसंद करते हैं। उनको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे उन्होंने भोग व योग विचारको निम्नलिखित प्रकारसे गाया।

सुखका अनुभव करना क्या सरल है ? उसके लिये बड़ी भारी कुशलता चाहिये। इहलोक और परलोककी चिन्ता रखनेवाले चतुर

हैं। सामनेकी सर्व परिस्थितियोंको जानना चाहिये और अपनेको भी जानना चाहिये। यही कुशलता है।

आत्मज्ञानीको तीन आँखें होती है अथवा जिसको तीन नेत्र हैं वही इस लोकमें विजयी होता है। दो आँखोंसे तो वह लोकको देख सकता है, परंतु आत्माको उन आँखोंसे नहीं देख सकता है। उसके लिये तीसरे ज्ञानरूपी नेत्रकी आवश्यकता है। उस ज्ञानरूपी नेत्रसे वह आत्माको देखता है। इसलिए त्रिनेत्रीको ही सुखकी सिद्धि होती है सबको नहीं।

वह विवेकी तरुणियोंके बीचमें रहता है। अथवा आत्मरतिरूपी क्षीर-समुद्रमें भी रहता है। अनेक विषयवासनाओंके बीचमें रहनेपर भी आत्मा-नुभवकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना चाहिए। उद्योगी पुरुष पुंगवोंको ही सुखकी सिद्धि हो सकती है। भला आलसियोंको वह क्यों मिलेगी? एक बार तो वह नरेन्द्र उत्तम स्त्रियोंसे वार्तालाप करता है, तो पश्चात् सरस्वती (शास्त्र) से वार्तालाप करता है। परसतियोंके प्रति मौन धारण करके मुक्तिरूपी सतीके प्रति ध्यान रखतीं है। इस प्रकार वह विवेकी चतुर्मुख रहता है। जो कमलनयनियोंके चित्त व अपने चित्तका अन्तर समझनेमें समर्थ है, उसीको आत्मसिद्ध है, उसे अर्हं कहते हैं। जिसमें इस प्रकारकी शक्ति है वही श्रीमंत है, वही प्रभु है। ऐसे श्री-मंतोंकी ही सुखकी सिद्धि होती है, दीनोंको नहीं।

जो लोग शरीर सम्बन्धी सुखमें पागल होकर आत्मसुखके स्वादको नहीं लेते हैं और इंद्रियोंके सुखको ही भोगते हैं, सचमुचमें वे बड़ी भारी भूल करते हैं। उनकी गति ठीक वैसी ही है जैसे कोई पागल भूसेको बचाकर रखता हो और चावलको फेंक रहा हो। यह अज्ञानी भी सार आत्मसुखको छोड़कर असार इन्द्रिय सुखको ग्रहण करता है।

लोकमें असमर्थ मनुष्य गुणोंकी प्राप्तिके लिये बहुत प्रयत्न करता रहता है। अमुक गुण चाहिये, धन चाहिये, शक्ति चाहिये इस प्रकार लोग रात-दिन खटपट किया करते हैं। परन्तु उनको वे पदार्थ प्राप्त नहीं होते। किन्तु आत्मयोगको धारण करनेवाले योगियोंके पाससे यदि वे गुण धक्का देनेपर भी नहीं जाते। प्रत्युत वे महागुण उस व्यक्तिके शरणमें स्वयमेव आश्रय पानेको आते हैं।

जिसके हाथमें पारस या चिन्तामणिरत्न है उसे सम्पत्तियोंको प्राप्त करनेमें क्या कठिनता होगी? इसी प्रकार जिसके हाथमें आत्मानुभव

रूपी रत्न आ गया है उसको ऐसे कौनसे पदार्थ हैं जो नहीं मिल सकेंगे। तीन लोक ही उसकी मुट्ठीमें समझना चाहिये।

जिसने आत्मानुभवको प्राप्त किया उसे भवभवमें भोग मिलेगा। तीन भव, चार भव, दस भव अथवा जबतक भी वह संसारमें रहेगा तबतक वह बहुत सुखके साथ रहेगा। तदनन्तर उस भवका नाशकर कैवल्यसुखको प्राप्त करेगा। इस आत्मानुभवकी बराबरी करनेवाला भाग्य क्या और कोई है ? नहीं। वह सबसे बड़ा भाग्यशाली है।

वह आत्मविनोदी यदि स्वर्ग लोकमें जाकर जन्म लेता है तो देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले सौन्दर्यको प्राप्त करता है। यदि भूलोकमें आकर जन्म लेता है तो वह कामदेव सदृश सुन्दर होकर जन्म लेता है।

स्वयं वह कुछ नहीं चाहता है, परन्तु सौभाग्यादिक तो अहमहमिका रूपसे (मैं पहले मैं पहले इस भावसे) उसके आश्रयको पानेके लिये स्वयं आते हैं। वह सौभाग्यकी भी इच्छा नहीं करता, इसीलिये वे आते हैं। आत्मरसिकके मनमें लोककी चिन्ता नहीं रहती है, फिर भी सब लोक उसकी चिन्ता करते है। लोककी ओर उसका उपयोग नहीं होता है। परन्तु आश्चर्य है कि लोकके विचारमें उसीका ध्यान रहता है।

जो आत्माविवेकी है, वह अपने समक्ष जाती हुई किसी स्त्रीके हृदयकी बात को तत्काल समझ लेता है। जो स्त्रियाँ पुरुषोंको फँसानेमें प्रवीण हैं उनको हराकर वह उन्हें अपने पीछे फिराता है, परन्तु उनकी ओर उसकी उपेक्षा ही रहती है।

उसके थोड़ेसे मन्दहास करने मात्रसे उन स्त्रियोंके हृदयमें अपार आनन्द उत्पन्न करता है, परन्तु उन स्त्रियोंको यह पता नहीं है कि आत्मरसिककी इन्द्रिय और आत्मा अलग-अलग हैं। वह इन्द्रिय से हँसता है, आत्मा से नहीं। उसकी आत्माको बाहरकी बातोंको सिखानेवाले कौन हैं ?

कभी-कभी वह आत्मज्ञानी मुग्धा स्त्रीको मोहन कला सिखाकर उसे विदग्धा (चतुर) बनाता है। कभी-कभी उस चतुर स्त्रीको भी अपने वचन चातुर्यसे मुग्धा बना देता है। किसी समय वह मौनसे रहता है।

वह स्त्रियोंके साथ विशेषरूपसे सरस हास्य आदि करनेको उद्यत नहीं होता है। कदाचित् किसी समय वह वैसा करे, तो उसमें विसरताको भी आने नहीं देता। उस हास्यालापसे वह उन स्त्रियोंको अपने वशमें

कर लेता है। इतना सब होते हुए भी अपनी आत्मपरिणतिमें वह प्रमाद नहीं करता है। उसमें बहुत सावधान रहता है। यह उसकी विशेषता है।

वह किसीके प्रति क्रोधित होता नहीं, और न क्रोधित होना ही वह जानता है। उसे वैसी इच्छा कभी नहीं होती है। यदि वह कुछ क्रोधित हो भी गया तो उसी समय उस क्रोधको भूल जाता है, और ज्ञानप्राप्ति कर लेता है। जिस प्रकार तपाया हुआ पानी जल्दी ठण्डा हो जाता है उसी प्रकार उसे कभी थोड़ा कषाय आ जाय तो वह जल्दी शांत हो जाता है।

वह स्त्रियोंके साथ प्रेमव्यवहार करे, तो नखहृति, दन्तहृति आदि कर वह विशेष आसक्त नहीं होता। कदाचित् करें तो दूसरोंको वह उसकी कृति है या नहीं यह भी मालूम नहीं हो पाता है।

स्त्रियोंके साथ वह प्रणयकलह कभी नहीं करता है। यदि कदाचित् करे तो भी क्षणभरमें उससे पलटकर गंभीरतामें निमग्न रहता है यह निष्पाप भोगियोंका लक्षण है।

स्वयं अपने गौरव गंभीरता आदि गुणोंका पूर्ण ध्यान रखकर वह आत्मविवेकी व्यवहार करता है। उसकी स्त्रियां भी उसके समान आचरण करती हैं। उसकी लीला ठीक वैसी ही है जैसे कोई हाथी जंगलमें हथिनियोंके बीचमें रहकर क्रीडा कर रहा हो।

यदि किसी एक स्त्रीके प्रति उसका विशेष प्रेम भी हो, तो वह उसे किसीको नहीं प्रगट करता है। एक पुरुष एक पत्नीके साथ जिस प्रकार रहता हो वह उसी प्रकार अनेक नारियोंके साथ समदृष्टिसे रहता है।

स्त्रियोंको आकर्षण भी करता है। उनके प्रति प्रीति भी करता है। उनकी इच्छाकी नित्यपूर्ति भी करता है। उन्हें आनन्द उत्पन्न करता है। उन्हें हर प्रकारकी नीति,. रीतिको सिखाता है एवं बीच-बीचमें अपना अनुभव भी करता रहता है।

वह आत्मज्ञानी बहुतसे जालोंमें फँसा हुआ है ऐसा बाह्यमें देखने-वालोंको मालूम होता है, परन्तु यथार्थमें वह किसीमें भी फंसा हुआ नहीं है। वह कामसेवनमें मदोन्मत्त हो गया हो ऐसा मालूम तो होता है परन्तु वह कभी भी वैसा होता नहीं। ठगोंके समान उसका आचरण दिखता है परन्तु सचमुचमें उसमें छल नहीं है। जिसने अपनी आत्माका

अनुभव किया है, उसकी यह लीला है। अन्तरंगमें एक प्रकार और बाह्यमें अन्यरूप रहनेपर भी आत्मकल्याणका साधक होनेसे वह मायाचार नहीं है।

कभी तो वह किलेके समान बनता है और कभी ग्रामके समान बन जाता है। कभी वह फूलके बगीचेके समान रहता है। जिस समय उन स्त्रियोंको संसर्गसुखका अनुभव कराता है उस समय उनको ऐसा मालूम होता है कि कहीं स्वर्गही पुरुषके रूपमें आया है।

जिस प्रकार कोई तरुण मनुष्य बच्चोंके साथ अनेक प्रकारसे अल्प वार्तालाप विनोद आदि करता है, परन्तु वह कुछ ही समयके लिए हुआ करता है, इसी प्रकार वह आत्मज्ञानी उन रमणियोंके साथ विनोद परिहास आदि करता रहता है। फिर भी उसके मनमें भिन्न ही विचार रहता है। वह अपने आपको नहीं भूलता है।

जैसे नगरवासी चतुर लोग ग्रामीणोंके साथ अनेक प्रकार विनोद करते हुए कहीं जा रहे हों उसी प्रकार मोक्षको जानेवाले इस पथिककी मार्गमें यह अनेक प्रकारसे मोहलीला है।

बाहरसे जो लोग उसका व्यवहार देखते हैं, उनको ज्ञात होता है कि यह नीतिमार्ग नहीं है। यह मार्गच्युत हुआ है। परन्तु वस्तुतः वह सन्मार्गमें ही रहता है। आत्मज्ञानीकी गति बहुत विचित्र है। उसके मनकी बात कौन जान सकता है? उसके हृदयको जिनेंद्र भगवान् ही जाननेमें समर्थ हैं।

बड़े-बड़े सांड़, हाथी आदि जिस मार्गसे जाते हैं वहां उनके पांवोंके चिह्नको हरएक जान सकता है, परन्तु हवाके भी पाद-चिह्न को कोई पहचान सकता है क्या? नहीं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्योंकी चित्त-प्रवृत्तिको जान सकनेपर भी तत्त्वशील विवेकीके हृदयको जानना साधारण बात नहीं है।

वे गायकियां कहने लगीं कि यह हमारे भरतचक्रवर्तीकी दिनचर्या है। यह बात अन्यत्र नहीं पाई जायगी। भरतेशमें भी इस प्रकार की प्रवृत्तिकी प्राप्ति क्यों हुई है? उन्होंने पूर्वजन्ममें जो मनःपूर्वक आत्म-भावना की उसका यह फल है। इसीलिये वे आज आदर्श महापुरुष कहलाते हैं।

उपर्युक्त विषयको सुनकर भरतेशको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने उसी समय उनको पासमें बुलाकर अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्र-आभरण आदि देकर उनका सत्कार किया।

सम्राट्ने कहा—तुम लोगोंने बहुत अच्छा गान किया। इस वचन को सुनकर वे स्त्रियाँ और भी अधिक प्रसन्न हुईं। फिर सम्राट्के चरणकमलोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार कर वे अपने-अपने स्थान में जाकर बैठ गईं।

चारों ओरसे कमलोंके द्वारा घिरा हुआ तथा कमलों के बीचमें बैठा हुआ ब्रह्मा जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार भरतेश उस समय उन स्त्रियोंकी सभामें बैठे-बैठे शोभाको प्राप्त हो रहे थे।

सम्राट् भरतको इस प्रकारका वैभव क्यों प्राप्त हुआ है? वह इस प्रकारकी भावनामें निरत रहते हैं कि आत्मन्! संसारके भयसे दुःखी जो कोई भी प्राणी तुम्हारे पास शरणागत होकर आवे उनकी रक्षा करने के लिये तुम वज्रपिंजरके समान हो, जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता है। तुम स्वाभाविक आभूषणोंसे युक्त हो, अतएव सहजसुन्दर हो। अनन्त सुख तुममें है। तुम उज्ज्वल ज्ञानज्योतिको धारण कर रहे हो, इसलिए मेरी रक्षा करनेमें सर्वथा समर्थ हो, मेरी रक्षा करो। मेरे हृदयमें रहो। आत्मन्! सचमुचमें तुम संसारका नाश करनेवाले हो, मुझे भी सिद्धिकी ओर ले जावो।

इस प्रकार सतत भावनाके कारण सम्राट् भरतेशने असाधारण वैभवको प्राप्त किया।

इति राजसौध संधि

अथ राजलावण्य संधि

जब भरतेश दरबारमें बहुत वैभवके साथ विराजमान थे, तब तक एक गायकीने पण्डिताके कानमें कुछ कहा।

वह पण्डिता एकदम उठी और सम्राट्को हाथ जोड़कर कहने लगी कि स्वामिन्! मुझे आपसे एक प्रार्थना करनी है, आशा है आप आज्ञा देंगे!

"अच्छा! कहो!" भरतेशने कहा।

आपकी सेवामें मैं एक नवीन काव्यको उपस्थित करना चाहती हूँ। कृपया आप उसे सुननेका कष्ट करें। पंडिताने कहा।

तब विचारकुशल सम्राट् भरतेशने कहा कि उस काव्यको किसने रचा है ? उसमें किसका वर्णन है ? उस नवीन कृतिका संशोधक कौन है ?

दूसरोंने उस काव्यकी रचना नहीं की है और न उसमें दूसरोंका वर्णन ही है। उसका संशोधन करनेके लिए अन्य पात्र नहीं हैं। हे राजन् ! वह रचना आपके महलमें ही रची गई है, और उसमें आपका ही वर्णन है। उसका आप ही संशोधन करें, यही दासीकी प्रार्थना है।

महलमें जो नवीन रूपसे रचना रची हुई है उसको करनेवाले कौन हैं ? रचना करनेवालोंका नाम तो बताओ। इस प्रकार मन्द हास्यके साथ महाराज बोले।

राजन् ! महलमें श्री. कुसुमाजी रानीने अपने मनकी बात एक तोतेसे कही। उसे पड़ोसमें रहनेवाली श्री. सुमनाजी रानीने सुनी व चरित्रके रूपमें रचना कर दी।

कल सुमनाजी रानीके महलमें लीला विनोदके लिये अमनाजी आई हुई थीं। उस समय कुसुमाजी अमृतवाचक नामक अपने तोतेके साथ बातचीत कर रही थीं। तब दोनों रानियोंने उसको जोड़कर चरित्रका रूप दे दिया। अमनाजी सुमनाजीसे कहने लगी कि कुसुमाजीने जो कुछ कहा सो बहुत अच्छा हुआ। बहिन ! तुम उसकी रचना करो, मैं उसे अच्छी तरह लिखती जाती हूँ। ऐसा तैयार हुआ काव्य है यह। राजन् ! आप इसे सुनें, ऐसा पण्डिताने कहा।

भरतेशने कहा अच्छी बात ! मैं उसे सुनूंगा। किसीसे उसे बाँचने के लिए कहो। तुम बैठे रहो। ऐसा कहनेपर वह पण्डिता उस पुस्तकको किसी एक स्त्रीके हाथमें देकर उसे बाँचनेको कहने लगी व स्वयं वहीं पासमें बैठ गई।

इतनेमें उस सभामें स्थित कुसुमाजी रानी एकदम उठी व सम्राट्से प्रार्थना कर कहने लगी कि आज दिनमें मेरा एक व्रत विधान है। मुझे अभी मंदिरमें जाना है। इसलिए मैं अब जाऊँगी ऐसा कहकर जाने लगी।

इतनेमें महाराज हँसकर बोलने लगे कि "अच्छी बात ! तुम जा सकती हो, परन्तु तुम्हारे व्रतविधानकी निर्विघ्न परिपूर्णताके लिये यह सुवर्ण कंकण देता हूँ। लेती जावो, चुपचाप क्यों जाती हो। इसे ले जावो।" ऐसा कहकर यों ही हाथको आगे बढ़ाया।

तब कुसुमाजी इस बातको सच्ची समझकर पासमें आई और कंकण लेनेके लिये उसने हाथको आगे बढ़ाई। इतनेमें हाथी जिस प्रकार अपनी हथिनीको धरता है, उसी प्रकार भरतेशने उसके हाथको पकड़ लिया।

प्रिये! तू किसे ठग रही है? मुझे अज्ञात रखकर तुझे आज मत किसने दिया है? रहने दो। यहाँ बैठी रहो! तुझे मेरी शपथ है। यह कहकर भरतेशने कुसुमाजीको अपने पासमें बिठा लिया।

तुमने जो चरित्र मनोविनोदार्थ तोतेको कहा उसे सुनकर तुम्हारी बहिनोंको हर्ष हुआ, इसीलिए उन्होंने उसकी रचना की। क्या अब मैं भी उसे सुनकर मनोविनोद न करूँ? ऐसे आनंदके समयपर क्यों उठकर जाती हो? सोचो तो सही।

हाँ, मैं तुम्हारे उठकर जानेका कारण समझ गया हूँ। तुमने जो एकांतमें तोतेके साथ बातचीत की थी, वह बाहर प्रगट हो गई है, इस लज्जासे उठकर जा रही हो। अपने हृदयकी बात को दूसरोंको मालूम न होने देना कुलस्त्रियोंका धर्म है। परन्तु यह सोचो कि यहाँपर दूसरे कौन हैं? यहाँ तो सब अपने ही लोग हैं। फिर तुझे इतना संकोच क्यों? चुपचाप यहाँ बैठी रहो और इस काव्यको सुनो।

पुनः भरतेश्वरने पंडितासे कहा, पंडिता! देखा तुमने कुसुमाजीको? कुसुमके गेंदके समान किस प्रकार उछलकर जा रही थी। 'राजन्! देख ली, स्त्रियोंके हृदयकी बात आप सरीखा और कौन जान सकता है? स्वामिन् अपना गुप्त वार्तालाप दूसरोंके सामने आया इससे उसे लज्जा हुई। यह कुलीन स्त्रियोंका धर्म है। जो आपने उसे समझाया तो बहुत अच्छा हुआ।" पंडिताने कहा।

सम्राट् कहने लगे यह बात जाने दो! पर यह तो देखो कि व्रतके बहाने यह मुझे किस प्रकार ठग रही थी।

पण्डिता कहने लगी स्वामिन्! उसके पास जीतनेका तंत्र नहीं है। इस तंत्रसे वह तुम्हें जीत नहीं सकती है। क्या करे? वह मुग्धा है, इसीलिए उसने यहाँतक दूरदर्शितासे विचार नहीं किया। स्त्रियोंका चातुर्य ऐसा ही रहता है।

एकांतमें स्त्रियाँ अनेक प्रकारकी कला, कुशलताओंको प्रकट करती हैं परन्तु लोकांतमें पूछनेपर उनका सर्व चातुर्य लुप्त हो जाता है। यह स्त्रियोंका निज गुण है।

स्त्रियोंकी अनेक जाति होती हैं। उनमें बाला बोलना नहीं जानती है। मुग्धा आगे नहीं आती है या दूसरोंके सामने मूर्ख बन जाती है। मध्यमाको आलस्य नहीं रहता है। लोला चंचल रहती है। वह सार रहित है। इसी प्रकार विदग्धा तंत्रिणी आदि कई जाति स्त्रियोंकी है। इन सबके मर्मको राजन्! तुम जानते ही हो।

"स्वामिन्! कुसुमाजीके हाथको पकड़कर आपने ठहराया सो अच्छा हुआ, परन्तु वह अब अकेली आपके पास बैठी रहनेमें लज्जित होती है, इसलिये उसे अपनी सहोदरियोंके पास जाकर बैठनेकी आज्ञा दीजिये" पण्डिताने कहा।

भरतेश कहने लगे कि प्रिये कुसुमाजी! तू मेरे पास बैठनेमें लज्जित होती है? यदि हाँ तो जाओ, अपनी बहिनोंके साथ सदाकी भांति बैठी रहो।

इस प्रकार आज्ञा देनेपर वह वहाँसे उठी और अन्य रानियां जहां-पर बैठी थीं वहां जाकर बैठ गई।

अब काव्यको पढ़ो, इस प्रकार सम्राट्ने आज्ञा दी। तब एक कन्या ताडपत्रके ग्रन्थको खोलकर पढ़ने लगी, जिसमें निम्नलिखित काव्य लिखा हुआ था।

मंगलाचरण

सिंहके ऊपर जो सुन्दर कमल रखा हुआ है उसको भी स्पर्श न करके जो निराधार खड़े हैं, उन आदिनाथ स्वामीके पादकमलोंको नमस्कार हो।

जिनके शरीरका भार नहीं है, ज्ञान ही जिनका शरीर है, जो तनुवातवलय के बीचमें स्थित सिद्धशिलामें विराजमान हैं, उन सिद्ध-परमेष्ठियोंके पादकमलोंको मैं हृदयसे स्मरण करती हूँ।

तीन कम नव करोड़ मुनीश्वरोंको मैं भावशुद्धिपूर्वक नमस्कार करती हूँ। तथैव शारदादेवीको भी प्रणाम करती हूँ और भेदाभेदा-त्मक रत्नत्रयकी भी मैं सदा भावना करती हूँ।

सम्राट् भरतके हृदयमें जो प्रकाशपुंज परमात्मा है उसे शुभचित्त-से मैं नमस्कार करती हूँ।

कमलको स्पर्श न कर आकाशप्रदेश में खड़े हुए अपने मामाजी (श्वसुर) को नमस्कार कर बहिन अमराजीकी आज्ञासे इस चरित्रको पढ़कर पतिदेवको सुनाऊँगी।

कुसुमाजी रानीने जो अमृतवाचक तोतेके साथ विनोदवार्ता की थी उसे एक चरित्रका रूप देकर यहाँ वर्णन किया जायेगा।

कुसुमाजी कहती है "हे अमृतवाचक ! सुनो, भरतचक्रेश्वरने सबको मोहित करनेवाले इस सुन्दर रूपको किस पुण्यसे प्राप्त किया ? पूर्वमें इसके लिए उन्होंने कौनसे व्रतका आचरण किया होगा ? इस तारुण्यपूर्ण अपूर्व सौंदर्यको पाकर स्त्रियोंके मध्य रहनेपर भी अपने हृदयको न बताकर चलनेवाली गम्भीरता उनको किससे प्राप्त हुई ? लोकमें यौवन, तथा सम्पत्तिको पाना कठिन नहीं है, परन्तु उसके साथ विनयादिक सद्गुणोंको प्राप्त करना कठिन है।

जैसे आकाशमें रहनेवाला एक ही सूर्य जल भरे हुए अनेक घड़ोंमें प्रतिबिंबित होता है, उसी प्रकार यह एक ही भरतेश अनेक स्त्रियोंके हृदयमें प्रतिबिंबित होते हैं।

जिस जंगलमें उत्तम तपोधन रहते हैं वहाँ क्रूर मृग भी अपने परस्परके वैरविरोधको छोड़कर रहते हैं। उसी प्रकार राजर्षि भरत जहाँ रहते हैं, वहाँपर रहनेवाली स्त्रियाँ मत्सरभावको छोड़कर रहती हैं, यह आश्चर्य की बात है।

हम लोगोंके मातृगृहको भुलाकर रात-दिन अनेक प्रकारके मिष्ट व्यवहारोंसे हम लोगोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाला साहस उनमें कहाँसे आया ? लोकमें एक व्यक्तिको एक बार देखकर पुनः देखनेपर वह पहिले के समान नहीं रहता है। वह पुराना-सा हो जाता है। परन्तु आश्चर्य है कि यह भरतेश्वर नित्य प्रति नये-नयेके समान ही मालूम होते हैं।

अमृतवाचक ! षट्खण्डके राज्यको पालन करनेवाला पतिदेवका मैं मुकुटसे लेकर चरणोंतक वर्णन करूँगी। तुम सुनो। यह कहकर कुसुमजीने सम्राट् भरतके प्रत्येक अंग-प्रत्यंगोंका बहुत सुन्दरतासे वर्णन किया। जिस समय वह चक्रवर्तीका वर्णन कर रही थी उस समय उसके हृदयसे पतिदेवके प्रति भक्तिरस टपक रहा था।

हे शुकराज ! मुकुटवर्धन जो अनेक राजा हैं उनको पालन करनेवाले हमारे प्राणनायक हैं उनकी सर्वांग शोभाको मुकुटसे लेकर अंगूठे तक वर्णन करूँगी, जिसे ध्यान देकर सुनो !

हे शुकराज ! पुरुषप्रमाणके केशको बाँधकर पर्याप्त श्रृङ्गार हमारे राजा पाते हैं। उनके मुखकी हर्षमुद्रा व सुन्दरता जिस तरफ भी राजा

मुख फेरे उस तरफ टपकती रहती है। विशाल ललाटमें कस्तूरीका तिलक बहुत अधिक शोभाको प्राप्त हो रहा है।

हे शुकराज ! कामदेवको अपने बाणके द्वारा स्त्रियोंका वश करनेका कष्ट क्यों ? जावो, उससे कहो कि हमारे भरतेश्वरके भृकुटियोंकी सेवा करो, काम हो जायेगा।

हे पक्षी ? जिस प्रकार चाँदनीके स्पर्शमात्रसे चन्द्रकांत शिला पानी छोड़ती है, उसी प्रकार हमारे राजाकी आँखोंके प्रकाशके लगते ही स्त्रियोंका अन्तरंग पिघलता है। पतिदेवके सुगन्ध श्वासोच्छ्वासके वशीभूत होकर जो भ्रमर आकर गुंजार करते हैं, उसे देखनेपर अपने सुगन्धसे भ्रमरोंको आकर्षित करनेवाले चम्पा पुष्पका भी कोई महत्व नहीं है।

पतिदेवकी गाल दर्पणके समान चमक रही है, पतिदेवके कानमें जो मोतीके कुण्डल शोभित हो रहे हैं, उनको देखनेपर मालूम होता है कि शायद प्रिय स्त्रियाँ उनके अन्तरंगकी इच्छाको कानमें कहते समय लगा हुआ वह हर्षचिह्न है। नेत्रकान्ति, आभरणोंकी ज्योति, जब उनके कपोलपर पड़ती है, मालूम होता है कि आकाशमें गर्जनाके साथ बिजली चमक रही हो।

यौवनावस्था पतिदेवके शरीरमें ओतप्रोत भरी हुई होनेसे बाहर भी उमड़ रही हो इस दृश्यको उनकी सुन्दर मूँछें बता रही हैं।

मकरंदसे युक्त कमल सूर्यके उदयमें जिस प्रकार प्रफुल्लित होता है, हे शुकराज ! हमारे पतिदेवके मुँह खोलनेपर कपूर वाटिकाकी शोभा है। पतिराजकी दंतपंक्ति मोतीकी मालाके समान शोभाको प्राप्त हो रही है। प्रियपक्षी ! सुनो, हमारे राजा जब बोलनेके लिए मुँह खोलते हैं तो जीभ और ओठका हलन-चलन जामुनके बीचमें छिपे हुए कल्पवृक्षके पत्तेके समान मालूम होता है।

काँच या अभ्रककी बाटलीमें उतरनेवाले कुंकुम रसके समान ताम्बूल रस गलेसे नीचे उतरते समय मालूम होता है तो अपने पतिके उस सुन्दर कण्ठका मैं क्या वर्णन करूँ ?

शुकराज ! हमारे राजाकी प्रिय स्त्रियाँ दोनों तरफसे खड़ी होकर उनके केश पाशोंके बलसे झूला झूलती हैं तो उनके केश समूहोंके बलका मैं क्या वर्णन करूँ। हमारे राजाके दोनों बाहु तो मोहिनियोंका मोह पाश है, सुवर्ण वर्णसे युक्त राहुके समान शशुचन्द्रमाको भी तिर-

स्फुरित करते हैं। वे दोनों आजानुबाहु श्रृङ्गार और वीर रससे शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

कामदेव पंचबाण कहलाता है, क्योंकि पंचबाणोंको वह धारण करता है। परन्तु हमारे राजा तो उससे दुगुने सुन्दर हैं, उसी बातको सूचित करनेके लिए वे हस्तमें दस अंगुलीरूपी बाणोंको धारण करते हैं। इस प्रकार उनकी सुन्दर अंगुलियाँ शोभाको प्राप्त हो रही हैं।

उनके करतल अरुण वर्णसे युक्त है, उसमें भी नखकी श्वेतकांति और अँगूठियोंके रत्नकी कांति जब प्रतिबिंबित होकर पड़ती है तो वे दोनों बाहु अनेक वर्णके द्वारा मिश्रित कमलनालके समान मालूम होते हैं।

शुकराज! हमारे राजा कंठमें जो हार धारण करते हैं उसमें लगा हुआ रत्नपदक तो ऐसा मालूम हो रहा है कि शायद लावण्य समुद्रके बीच कोई रत्नदीपक हो।

हे पक्षि! हमारे राजाकी कुक्षि जीवरक्षाके कोमल पत्तेके समान सुन्दर मालूम होती है। स्त्रियोंके नेत्ररूपी मछलियोंके विहार करने योग्य श्रृङ्गार-तटाकके समान हमारे राजाकी नाभि है, शुकराज! इसे किसीसे नहीं कहना।

पक्षी! छिपानेकी क्या बात है। एक दफे हमारे राजाकी सुन्दर कुक्षिकी लोमराशिको चींटियोंका समूह समझकर मैंने हाथसे हटानेका प्रयत्न किया। राजा मेरी कृतिपर हँसे। मैं लज्जित हुई।

विजयार्ध पर्वतके दोनों ओरके छह खंडोंके हमारे राजा अधिपति होंगे इस बातको सूचित करती हुई कंठकी तीन और कुक्षीकी तीन रेखायें शोभाको प्राप्त हो रही हैं। शत्रुओंको हमारे राजा पीठ नहीं दिखा सकते हैं, पीठमें पड़ी हुई स्त्रियोंकी और भरतेशकी आँखें नहीं जा सकतीं, इस बातको सूचित करते हुए पतिदेवका पृष्ठभाग श्रृङ्गार व वीरतासे शोभाको प्राप्त हो रहा है।

पक्षी! दूसरोंको नहीं कहना। हमारे राजाके मध्य प्रदेशको देखनेपर ऐसा मालूम होता है कि हाथीके कुंभके ऊपर कोई बालसिंह खड़ा हो।

हमारे राजाके जंघाओंका स्पर्श भी जिन स्त्रियोंको हो उनकी थकावट सब दूर हो जाती है। कदली भी उसके बराबरी नहीं कर सकती है। शुकराज! हमारे पतिदेवके सौंदर्यको अच्छी तरह समझ लो।

भूनत कांतिगंगाके ऊपर दो मछलियाँ जिस प्रकार खड़ी हों उस प्रकार राजाके पादके ऊपरकी दो जंघायें शोभाको प्राप्त हो रही हैं।

इसी प्रकार चक्रवर्तीके पाद, अंगुलियाँ और नखकी कांति बहुत सुन्दरतासे शोभित हो रही है।

राजाके हस्ततल और पादतलमें हल, कुलिशांकुश, चक्र, चामर, कलश, दर्पण, चाप, गोधूम, कमल आदि अनेक शुभ लक्षणोंसे लक्षित रेखायें शोभाको प्राप्त हो रही हैं। इसके अलावा शरीरमें यत्र-तत्र शुभ लक्षणोंसे युक्त तिल, सुप्रदिक्षणसे युक्त भँवर नेत्रकी ललाई, एवं रोम संकुल आदि शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

छह अंगुल प्रमाणक मध्यप्रदेश, चार अंगुल प्रमाण कण्ठ, आजानु-बाहु एवं दीर्घकेश पक्षी ! हमारे पतिदेवकी शोभामें अद्वितीय हैं।

सुन्दर नासिका, ललाट, जंघा आदि तो भद्र लक्षणोंसे युक्त हैं। इस प्रकार पतिदेवके प्रत्येक अंग शुभलक्षणोंसे युक्त हैं।

हँसमुख, विशाल नाक, दीर्घनेत्र, काली मूंछें, कांतिपूर्ण ओठ, आदिके द्वारा हमारे राजा दुनियाको आकर्षित करते हुए शोभाको प्राप्त हो रहे हैं। शुकराज ! क्या कहूं, पतिदेवके शरीरके पिछले भाग, अगले भाग आदि कहीं भी कोई प्रकारकी त्रुटि नहीं है, सर्व प्रदेश उत्तम लक्षणोंसे संयुक्त हैं। कहीं भी किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है। विशेष क्या कहूँ ! किसी सुवर्णकी पुतलीको अच्छी तरह घिसकर धोकर रखनेपर उसमें जान आ गई हो इस प्रकार हमारे पतिदेव चमक-दमकसे दिखते हैं, एवं हम लोगोंके अन्तरंगको आकर्षण करते हैं। क्या वह सुगंधद्रव्यसे बना हुआ पुरुष तो नहीं अथवा चम्पापुष्पके दलसे बना हुआ पुरुष तो नहीं अथवा शीतल वायुके द्वारा बना हुआ पुरुष तो नहीं। इस प्रकार स्त्रियोंके हृदयको आनन्दित करते हैं। शुकराज ! वस्त्र, आभरण, रीति-नीति, बोल-चाल व सरस व्यवहारसे बार-बार स्त्रियोंके अन्तरंगको इस प्रकार आकर्षण करते हैं कि जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। हे अमृतवाचक ! बोलो हमारे पतिदेवका सौन्दर्य, हँसना, बोलना एवं शृङ्गारका सम्मिलन आदि तुम्हारे कामदेवको भी नसीब हो सकते हैं ? अपने सौन्दर्यके द्वारा जब स्त्रियोंको ये आकर्षित कर लेते हैं, तब तुम्हारे कामदेवको स्त्रियोंको जीतनेका कोरा अभिमान क्यों ?

हमारे राजा कामदेवको भी घबराहट पैदा कर सकते हैं, और अपनी अंगकांतिसे हम लोगोंको जीतते हैं। अंगसौंदर्यसे स्त्रियोंको जीतना चाहिए एवं समरमें खड्गकी और स्त्रियोंके समरमें पुष्पोंके खड्गकी आवश्यकता है, और सोनेके लिए अग्निकी आवश्यकता है। प्रिय अमृतवाचक ! सुनो, पतिराजके स्पर्श होते ही हम लोग सुख-सागरमें मग्न होती हैं। बोलना नहीं चाहिये, तथापि बोल देती हूँ। हमलोगोंके साथ सरसालाप कर हमें हक्का-बक्का कर देते हैं। वह तो जब रात-दिन हमारे साथ रहते हैं तो वह समय क्षणभरके समान मालूम होता है, परन्तु जब वियुक्त होते हैं तो युगके समान मालूम होता है। शरीरमें चुंबन ही मधुर है, ऐसा कहते हैं, परन्तु पक्षी ! तुम आश्चर्य करोगे, पतिदेवका सारा शरीर ही मधुर है, मुझसे नाराज न होना। नासिकाका श्वासोच्छ्वास सुगन्ध है ऐसा लोग कहते हैं, परन्तु हमारे राजाके सर्व अंग सहज दिव्यगन्धसे युक्त हैं, उसका मैं क्या वर्णन करूँ ?

प्रत्येक अंग–प्रत्यंगोंका वर्णन करनेके पश्चात् वह कहने लगी कि अमृतवाचक ! ऐसा मत कहो कि भरतेश मेरे पति हैं। इसलिए प्रेमके वश होकर मैंने उनकी प्रशंसा की है। परन्तु तनिक तुम ही विचार करो कि जिनके शरीरमें मलमूत्र नहीं है, ऐसे पवित्र शरीरवाले चक्रवर्तीका सौंदर्य किस प्रकारका होगा ? उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता है।

सम्राट्को देखकर यह किंकर्तव्यविमूढ हो गई, इसलिये ही इसने चक्रवर्तीका इस प्रकार वर्णन किया है ऐसा मत कहो। वे तो प्रथम तीर्थंकरके प्रथम पुत्र हैं। उनका पूर्णरूपसे वर्णन करनेमें क्या मैं समर्थ हूँ ? वे सब मनुष्योंके स्वामी हैं। व्यंतरोंके अधिपति हैं। विद्वानोंके राजा हैं। इस प्रकारकी ख्याति लोकमें भरतेश्वरकी है। उनका वर्णन कौन कर सकता है ? सब राजाओंके वह राजा हैं, बुद्धिमानोंके समूहके वे स्वामी हैं। तीन लोकमें प्रशंसाके योग्य हमारे पतिदेव हैं। पुष्पबाणसे रहित यह कामदेव है। कलंकरहित यह पूर्णचन्द्र है। भर जवानीसे युक्त युवतियोंकी दृष्टिमें आनन्दपूर्ण पर्व है। शुकराज सुनो ! यह हमारा पतिदेव है।

उनमें जो गुण है, उनके अन्तको पाकर वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। अमृतवाचक ! यह तो मैंने केवल उनके गुणोंकी सूचना मात्र तुम्हें दी है, ऐसा तुम समझो।

परन्तु ध्यान रहे, मैंने जो-जो बातें कही हैं, उनको अपने मनमें रखो। दूसरे किसीको नहीं कहना। तुमको अपना स्नेही समझकर मैंने तुमसे यह कहा है, अन्यथा मैं किसीसे कहनेवाली नहीं थी।

अमृतवाचक ! तुम अभीतक चुपचाप सुन रहे हो, और कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो। मैं जो कुछ भी कह रही हूँ वह सच है या झूठ, तुम्हारे मनको वह पटती है कि नहीं, बोलो तो सही। इस प्रकार वह आग्रहसे पूछने लगी।

तब वह अमृतवाचक बोलने लगा। बहिन ! तुमने जो कुछ भी रहस्य कहा वह मेरे चित्तमें आता ही नहीं। आया भी तो मैं उसे नहीं कह सकता। पक्षियोंकी जातिमें जिसने जन्म लिया है उसमें वह चातुर्य कहाँसे आयेगा ? लोकमें मैं सबकी बोल व चालको देख सुनकर सीख सकता हूँ, परन्तु बहिन ! तुम्हारी तथा तुम्हारे पतिकी चाल बोल कुछ विचित्र ही है। वे किसी दूसरेको नहीं आ सकती हैं। इसलिए मैं चुप-चापके सुनता जा रहा था। अब तुम बहुत आग्रह कर रही हो, इसलिए जो कुछ मेरी समझमें आया उसे कहता हूँ। सुनो !

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरने उस प्रकारके अंगलावण्य को या अलौकिक सौंदर्यको किस प्रकार प्राप्त किया ? उसके लिये कैसे उद्योग किया ? वह इस जन्मके उद्योगका फल नहीं है। उन्होंने पूर्व जन्मसे ही इसके लिए बड़ी तैयारी की थी। वे निरन्तर चिन्तवन करते थे, परमात्मन् ! तुम भयंकर संसाररूपी जंगलको जलानेके लिये अग्निके समान हो। उत्तम केवलज्ञानको धारण करनेवाले हो, मंगल-स्वरूप हो। तुम्हारा धैर्य मेरुके समान अचल है। इसलिये संसारका नाश करनेके लिये अन्तरंगमें आपका निवास रहे। मुझे ऐसी सामर्थ्य प्रदान करो।

सद्भावनाका यह फल है कि उन्होंने लोकाकर्षक सौंदर्यको प्राप्त किया।

इति राजलावण्य संधि

अथ शुकसल्लाप संधि

सिद्धपरमात्मन् ! भव्योंके हृदयमें आप सन्तोष उत्पन्न करनेवाले हैं। तपोधन मुनिराज आपकी सेवा में सदा निरत रहते हैं। इसलिए हमें ही आपकी सेवाके योग्य सुबुद्धि दीजिये।

बहिन कुसुमाजी ! सुनो, तुम्हारे सामने मैं कहनेमें समर्थ तो नहीं हूँ, फिर भी तुमने आग्रह किया है; तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन करना मेरा धर्म नहीं है; इसलिये मेरे मनमें जो बात आई है, उसे मैं तुमसे कहूँगा। वह तोता कहने लगा।

बहिन ! तुम जितनी भी बातें अपने पतिके बारेमें कह चुकी हो। पूर्ण सत्य हैं। इसमें तनिक भी असत्य नहीं है। तीन छत्राधिपति भगवान् आदिनाथके ज्येष्ठ पुत्रकी बराबरी करनेवाले इन दश दिशाओंमें कौन है ? उनकी बराबरी करनेवाले राजा इस लोकमें कोई नहीं हैं और उनकी रानियोंकी बराबरी करनेवाली स्त्रियाँ भी लोकमें नहीं हैं। इतना ही नहीं, तुम्हारे साथ बातचीत करते रहनेवाले मेरे समान भी कोई नहीं है, ऐसा यदि कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

जिसने इस षट्खण्डाधिपतिको जन्म दिया है, वह यशस्वतीदेवी भी जगन्माता हैं एवं तुम जो उसकी रानियाँ हुई हो, इसके लिए भी तुमने पूर्वमें अतुलपुण्यका सम्पादन किया होगा।

उत्तम सतियोंके साथ उत्तम पुरुषोंका सम्बन्ध उत्तम सुवर्णके आभरणके बीचमें उत्तम रत्नके जड़ावके समान मालूम होता है।

बहिन ! तरुणी व तरुणका सम्बन्ध सचमुचमें आम्रवृक्षपर लगी हुई मल्लिकाके समान है। सुन्दर भरतके साथ आप सदृश सुन्दरियोंका सम्बन्ध अशोक वृक्षके साथ लगी हुई जुहीकी लताके समान मालूम होता है।

यदि भरत चन्दनके समान सुगंधयुक्त हैं तो आप लोग कपूरके समान हैं। चन्दन वृक्षपर लिपटी हुई सुगंधित लताके समान आपकी अवस्था है। भरत पुरुषरत्न हैं। आप लोग स्त्री रत्न हैं। इसलिये आप लोगोंकी जोड़ी रत्नोंको मिलाकर बनाये हुए रत्नहारके समान मालूम होती है। लोकमें अनेक प्रकारका अनमेलपना पाया जाता है।

यदि पति धार्मिक हो तो पत्नी धार्मिक नहीं रहती है। पत्नी धार्मिक हो तो पति वैसा नहीं, पति बुद्धिमान् हो तो पत्नी मूर्खा, पत्नी

बुद्धिमती हो तो पति मूर्ख, पति वीर हो तो पत्नी भीरु, पत्नी शूर हो तो पति कायर, पति व्यवहार कुशल हो तो पत्नी भोली, पत्नी कार्य-चतुर हो तो पति भोंदू; इस प्रकारकी विलक्षणतासे संसार भरा पड़ा है। परन्तु बहिन !-पतिपत्नियोंकी समानतामें तुम सदृश प्रशंसा प्राप्त करनेवाले लोकमें कौन हैं ? तुम लोगोंमें पतिके अनुकूल पत्नी, पत्नीके अनुकूल पतिके गुण हैं। सब लोग तुम्हारे पुरुषकी प्रशंसा करते हैं और तुम लोगोंकी भी प्रशंसा करते हैं।

सर्वकला विशारद पुरुषको पाना स्त्रियोंका पूर्वजन्ममें अर्जित पुण्य समझना चाहिए। कलाओंमें प्रवृत्ति करनेके अनुकूल स्त्रीका पाना भी पुरुषका महापुण्य समझना चाहिये। लोकमें स्त्री पुरुषोंमें परस्पर अनुकूल प्रवृत्ति मिलना कठिन ही नहीं, दुर्लभ है। इसके लिये अनेक जन्मों का संस्कार, भावना पुण्यकी आवश्यकता है। कुसुमाजी बहिन ! मुझे यह कहनेमें हर्ष होता है कि तुम लोगोंमें व भरतमें जो अनुकूल प्रवृत्ति है, वह लोकमें आदर्शरूप है। इस प्रकारका दृश्य अन्यत्र दुर्लभ है। बहिन ! तुम लोगोंने कितना पुण्य किया है ? क्या व्रत पालन किया है, किस प्रकारकी शुद्ध भावना की है ? कह नहीं सकते।

बहिन ! विद्वान् पति व विदुषी पत्नीका मिलाप सचमुचमें बहुत मधुर मालूम होता है। जिस प्रकार कि वीणाके तार मिलकर मीठा स्वर निकलता है। इस प्रकारका सुयोग हाथीपर सवार होनेके समान है। मूर्खोंका योग बैलपरकी सवारी है। विशेष क्या ? उनकी जोड़ी साक्षात् कामदेव व रतिदेवीकी ही जोड़ी है।

बहिन ! समयको जानना चाहिये। योग्यायोग्य विचारको जानना चाहिये। अपने पतिके चित्तको देखना चाहिये। समय-समय पर नूतन शृङ्गार करना चाहिये। वह उत्तम सुखियोंका लक्षण है। पतिका शृङ्गार पत्नीको प्रिय, पत्नीका शृङ्गार पतिको प्रिय, इस प्रकारका आचरण रखना स्त्रियोंका धर्म है।

स्त्रियोंको प्रत्येक विषयकी चिन्ताकी आवश्यकता है। गंभीरताको भी वे प्राप्त करें। उग्रताको दूर करें। बहिन ! वीरताकी भी आवश्यकता है। आचार व शीलोंका पालन करना उनका परमधर्म है। उत्तम भोगियोंका यह लक्षण है।

बहिन ! कामसुखको आसक्तिपूर्वक नहीं भोगना चाहिये। जठराग्निकी तीव्रता मंदता आदिको जानकर जितना आवश्यक हो उतना

ही भोजन करें तो हितकर हो सकता है, नहीं तो अनेक प्रकारके रोगोत्पत्तिकी संभावना है। कामसुख को भी इसी प्रकार भोगना चाहिये। अतिकामसे दुःख होगा। यही उत्तम भोगियोंका लक्षण है।

यौवनका मद जितना चढ़े उतना ही उसे भोगकर ठण्डा कर देना चाहिये। मदनकामेश्वरी आदि तंत्रोंसे उस कामेच्छाको बढ़ाना कभी भी ठीक नहीं है। बहिन ! तुम जानती हो कि भोजन किया हुआ अन्न यदि उचित रूपसे पचकर शरीरके अवयवोंमें पहुँच जाय तो ठीक है। द्रावण, स्तंभन आदि प्रयोगकर उस आहारको पचानेका उद्योग करना सुख नहीं है, दुःख है। नवयौवनमें उत्पन्न कामसुख स्वर्गीय गंगाजलके समान मीठा रहता है। धातुपौष्टिक अनेक औषधियोंसे उत्पन्न मदसे भोगा हुआ भोग यह लवण समुद्रके जलके समान है।

स्वाभाविक शक्तिसे भोग न कर जो लोग औषधि आदिके बलसे भोगते हैं उनको अन्तमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियाँ वगैरह नष्ट होती हैं।

बहिन ! यदि किसीको भूख न हो और वह भोजन करे तो उसे जिस प्रकार निश्चयसे अजीर्ण रोग होगा, उसी प्रकार अपनी शक्ति व इच्छाको नहीं जानकर कामभोग करें, तो अनेक रोग अवश्य उत्पन्न होंगे। अपनी विवशताको देखकर जितनेमें वह मद उतर जाय वहाँ-तक भोगनेमें शोभा है। अत्युत्कट भोग भोगनेपर महान् अहित होगा। उससे तृष्णा लगेगी, बुद्धि भ्रष्ट होगी, विशेष क्या ? ऐसा सुख स्वयंका शत्रु बन बैठता है।

स्त्रियोंके साथ हास्य-विलास, विनोद आदि करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये। संसर्ग-सुख तो कुछ ही समयके लिये होना चाहिये। यदि पच गया तो वह सुख है, नहीं तो महा दुःख है।

बहिन ! अपने अंतरंगको जानकर, इच्छाको देखकर व शक्तिको पहिचानकर जो कुशल पतिपत्नी भोग करते हैं उनकी जय होती है। उन्हें आनंद मिलता है।

इंद्रियोंके वश स्वयं न होकर उन मदोन्मत्त इंद्रियोंको वशमें करके भोग भोगनेमें बड़ी शोभा है। वह सरस कविता है। शृंगार है।

रतिक्रीडासे थककर बनाई गई रचना कविता आदि वेश्याके शृंगारके समान है। सशक्त मस्तकसे उत्पन्न शब्दमाधुर्य, अर्थगांभीर्य आदि गुणोंसे युक्त रचना ब्राह्मणीके शृंगारके समान है।

बहिन ! पति व पत्नी परस्पर एक दूसरेके चित्तको अपहरण कर भोगें तो उसमें बड़ी शोभा है। एकांगी भोग सुख नहीं है वह तो कंठका खड्ग है। स्त्री-पुरुष अंतरंग हृदयसे मिलें, तो मधुर फल चखने-का आनंद आता है, नहीं तो कटु रस प्राप्त होता है।

कुसुमाजी ! एक दूसरेके गुणपर मुग्ध होकर जो पति-पत्नी भोग विलासमें रहते हैं उन लोगोंका सुखमार्ग इतना सरल रहता है जैसे जलके भीतर रहनेवाले बड़े भारी पत्थरको उठानेमें कोई कठिनता नहीं होती; परन्तु केवल धन, स्वर्ण आदिके कारणसे उत्पन्न जो प्रेम है उसमें कोई शोभा नहीं है। जमीनपर पड़े हुए पत्थरको उठानेके समान उनका मार्ग भी कठिन है।

बहिन कुसुमाजी ! तुम्हारे पति व तुम लोगोंका रूप समान है। वय भी योग्य है। गुणगुणभी समान है। इन सब बातोंकी जोड़ी तुम लोगोंको प्राप्त हो गई है, इसीलिये पति-पत्नियोंमें इतना प्रेम है। दांप-त्यजीवनकी सर्व सामग्री अविकलरूपसे तुम लोगोंको प्राप्त है।

सम्राट्ने रूपसे तुम लोगोंको जीत लिया। सरसकलापोंसे तुम लोगोंके मनको प्रसन्न किया, वह राजाके रूपमें कामदेव हैं। इसलिए उसने तुम लोगोंका सर्वापहरण किया है।

बहिन ! मुझे मालूम होता है कि सभी रानियोंमेंसे तुमपर सम्राट्-का अधिक प्रेम होगा या तुम्हारा प्रेम उसपर अधिक होगा। अन्यथा इस प्रकार चक्रवर्तीकी सुन्दरता या अंगप्रत्यंगोंके वर्णन करनेकी चतु-रता तुममें कहाँसे आ सकती है।

जहाँ मन प्रसन्न हो जाता है वहीं कार्य भी अच्छा होता है और तदनुकूल वचनकी भी प्रवृत्ति हो जाती है। इसलिए हे सत्सतिकुल-मणि ! तुमने अपने पसंदके पतिकी प्रशंसा की यह उचित हुआ।

तुमने क्या कहा। तुम्हारे पतिका प्रेम ही ऐसा है जो वह तुमसे बुलाये बिना नहीं रह सकता। ऐसी कौन स्त्री होगी, जो पतिसे प्राप्त आनन्दरसका वर्णन नहीं करेगी ? अपने पतिके कृत्यपर किसे हर्ष न होगा ?

कुसुमाजी ! लोकमें दुःखी पुरुषोंके, दुःखी स्त्रियोंके, निष्ठुर पुरुषोंके, निष्ठुर स्त्रियोंके भी उदाहरण रात्रिदिन हमारे सामने आते रहते हैं। परन्तु शिष्ट पुरुषोंका व शिष्ट स्त्रियोंका वृत्त सुनना दुर्लभ ही है। वैसे स्त्री-पुरुष हमें देखनेको भी नहीं मिलते।

बहिन ! तुम्हारे रोम-रोममें भरतेशका प्रेम भरा हुआ है, इसलिए तुम्हारा हृदय उसके लिए समर्पित है। यह सच है कि नहीं, यह तुमसे मैं पूछना नहीं चाहती। तुम्हारे वचन ही इस बातको स्पष्ट कह रहे हैं। अपने पतिके कृत्यके प्रति सन्तुष्ट होनेवाली शीलवती स्त्रियोंका लोकमें कौन वर्णन नहीं करेंगे। बहिन ! मैं तुम्हारी शपथपूर्वक कहता हूँ कि मुझे सज्जन सतियोंके चरित्र में बड़ा आनन्द आता है। उसको सुनकर मेरा हृदय भर जाता है।

इस प्रकार वह अमृतवाचक तोता कुसुमाजीको दांपत्य-जीवनके रहस्य कहने लगा।

कुसुमाजी बैठी-बैठी उस तोतेके रहस्यपूर्ण वचन व वाक्चातुर्यको सुन रही थी। अपने मनमें ही विचार करने लगी कि इसने जो भी बात कही वह नवीन व रहस्यपूर्ण है। इससे मालूम होता है कि यह तोता नहीं है। पक्षियोंको जितना सिखावें उतना ही बोल सकते हैं, परन्तु यह तो मुझे ही सिखाने लग गया है और दांपत्य-कलाको सिखा रहा है। यह तोता कभी नहीं है। या तो कोई व्यंतर इस शरीरपर प्रविष्ट होकर बोल रहा है या कोई देव है। तोतेका चातुर्य यह नहीं हो सकता। इसके शब्द पुरुषके समान नहीं हैं। स्त्रीके समान हैं। उसमें भी तरुणीके समान शब्द हैं। यह युवती कौन है ? अब इस बात-का पता लगाना चाहिये। ऐसा विचार कर वह कहने लगी पक्षी ! तुम्हारे वचन सबके सब सत्य हैं। परंतु तुम्हारा वेष सत्य मालूम नहीं होता है। इसलिये तुम अपने छोटे वेषको छोड़कर बड़े वेषको धारण कर मेरे साथ बोलो।

बहिन ! आपने मुझसे छोटे वेषको छोड़कर बड़े वेष धारण करनेके लिए कहा है, परन्तु यह मेरा वेष सत्य ही है। मेरा छोटा वेष तो बचपनमें ही चला गया है।

देखो ! मेरे साथ इस प्रकार चालाकी करना ठीक नहीं है। तुम मेरी प्रियसखी हो, इसलिए अपने निजरूपको दिखलावो, इस प्रकार कुसुमाजीने बलपूर्वक कहा।

इतनेमें उस तोतेके नीचे अनेक रत्नाभरणोंसे भूषित एक तरुणी उठकर खड़ी हो गई। अपने छुपे हुए रूपको अपने बुद्धि चातुर्यसे जाननेवाली उस रानीके कौशलपर वह देवी हँसने लगी।

सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आई ? बोलो। रानीने पूछा।

देवी ! मैं एक व्यंतरकन्या हूँ, इधर-उधर पर्वत, जंगल वगैरहमें रहती हूँ। लीला विनोदसे आकाश मार्गसे जा रही थी। उस समय बहिन ! तुम इस तोतेके साथ बोल रही थी। उन मनमोहक वचनोंसे आकृष्ट होकर मैं यहाँ सुननेके लिये आई हूँ। अलग खड़ी रहकर सुनती तो सम्भवतः तुम अपने मनकी बात मुझसे नहीं कहती, इसलिए इस पक्षीके शरीरमें प्रविष्ट होकर मैं तुमसे बोल रही थी। तुम मेरे रहस्यको समझ गई। बहुत अच्छा हुआ। सचमुचमें तुम विवेकी भरतेशकी अर्धांगिनी हो।

बहिन ! रूप, यौवन, संपत्ति व बुद्धिचातुर्य आदिको प्राप्त करना कठिन नहीं है। परंतु इस प्रकारकी पतिभक्तिको पाना अत्यंत कठिन है। पुराणपुरुष सम्राट्की अर्धांगिनी होकर तुमने ही उसे प्राप्त किया है। दूसरोंको वह पतिभक्ति कहाँसे मिलेगी ?

भरत जिनेन्द्र भगवान्का पुत्र है। तुम लोग जिनेन्द्र भगवान्की पुत्रवधू ! इसलिये तुम लोगोंका आचरण पुण्यमय है। यह सौभाग्य सबको कैसे प्राप्त हो सकता है।

वे सम्राट् मेरे कोई नहीं हैं। वे लोकमें परनारीसहोदरके नामसे प्रसिद्ध हैं, इसलिए वे मेरा भी सहोदर भाई हैं। अब मैं उसे भाईके नामसे ही कहूँगी। देवी ! अभीतक तोतेके शरीरमें प्रविष्ट होकर मैं तुम्हें बहिनके नामसे सम्बोधन कर रही थी। परन्तु अब मैं तुम्हें बहिन न कहकर भाभीके नामसे कहूँगी।

भाभी ! मेरे भाईके प्रति तुमने जो असली प्रेम रखा है उसे देखकर मेरे चित्तमें अत्यन्त हर्ष होता है। इसके उपलक्ष्यमें मैं तुम्हारी सेवामें क्या भेंट अर्पण करूँ समझमें नहीं आता। हमारे भाई नवनिधिके स्वामी हैं। उसने तुम्हारे लिये इच्छित रत्नमय आभरणोंको दे ही रखा है। ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हारे लिये क्या दूँ ? यदि दूँ तो भी तुम लेनेवाली नहीं। इस बातको मैं जानती हूँ। अब तुम्हारे लिए वस्त्राभूषणोंको देनेकी बात जाने दो। जिस समय तुम्हें मेरी आवश्यकता हो स्मरण कर लेना; मैं तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगी। यह कहकर वह व्यंतरकन्या अदृश्य हो गई।

कुसुमाजी आश्चर्यचकित हो इधर-उधर देखने लगी, परन्तु अब व्यन्तरकन्या वहाँ नहीं है।

वह बीती हुई घटनाका विचार करती-करती जरा हँसने लगी, व

"जिनसिद्ध" ऐसा उच्चारणकर आश्चर्य करने लगी कि कहीं मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ ?

इतनेमें वहाँ बहुतसी स्त्रियां कुसुमाजीके साथ क्रीडाके लिये आईं। कुसुमाजी बीती हुई आश्चर्यप्रद घटनाओंको किसीसे नहीं बोलती हुई सदाकी भाँति खेलमें लग गईं।

इस प्रकार कुसुमाजीके चरित्रको सुमनाजीने रचकर तैयार किया और अमनाजीने उसे लिखा। यह सामान्य चरित्र नहीं है। यह चक्रवर्तीकी पुण्यसंपत्तिके वैभवसे पूर्ण है।

इसमें कोई दोष हो, तो आप श्रीमान् इसका संशोधन कर देवें।

भरतेश्वरने कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। यह काव्य जिन शरण होकर सर्वकाल इस भूमण्डलको सुशोभित करे।

इस प्रकार उपर्युक्त चरित्रको बाँचकर उस सुन्दरीने ग्रन्थको बांध दिया।

सम्राट् भी चरित्रको सुनकर मन ही मन आनंदित हो रहे थे। विचार करने लगे कि कुसुमाजी बहुत चतुर हैं, किस कुशलतासे वह तोतेके साथ बातचीत कर रही थी ? उनको सुनकर कविताबद्ध रचना करनेवाली ये रानियाँ भी कम चतुर नहीं हैं।

तोतेके साथ बातचीत करती हुई उसके स्वरसे ही तोतेके शरीरमें प्रविष्ट हुई व्यंतरकन्याको पहिचान लिया, यह आश्चर्यकी बात है।

अच्छा हुआ कि तोतेके शरीरमें व्यंतरकन्या थी इस निश्चयसे ही कुसुमाजी वहाँ बैठी रहीं। यदि उसके शरीरमें कदाचित् पुरुष होता तो यह कभी वहाँ नहीं बैठ सकती थी। पहिलेसे घबराकर इधर-उधर भाग जाती। इस प्रकार भरतेश्वरने अपने मनमें अनेक प्रकारके विचारोंसे प्रसन्न होकर जिसने काव्यको बाँचा उसका अनेक वस्त्र-आभूषणोंसे सत्कार किया एवं उस काव्यकी रचयित्री दोनों रानियों व कुसुमाजीको फिर अच्छी तरह सम्मानित करूँगा यह विचारकर वे वहाँसे महलकी ओर जानेके लिये उठे। इतनेमें वह अंतःपुरका सभा-भवन जयजयकार शब्दसे गूँज उठा।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि सम्राट् भरतकी इस प्रकार प्रशंसा क्यों होती थी ? उनको ऐसी अद्भुत विवेक-जागृति क्यों हुई थी ? इसका सीधा साधा उत्तर यह है कि भरत महाराज सदा अपनी आत्माके गुणोंकी प्राप्तिके लिए इस प्रकार प्रार्थना करते थे हे आत्मन्!

तुम बोलनेमें चतुर हो, चलनेमें चतुर हो, व्यक्त होनेमें व अदृश्य होनेमें चतुर हो, इसलिये सुचतुर लोकमें सबसे अधिक तुम विवेकी हो। इसलिये हे विवेकियोंके स्वामी ! तुम सदा मुझपर कृपाकर मेरे हृदयमें रहो जिससे कि मैं भी तुम्हारे समान ही लौकिक-पारमार्थिक मार्गमें कुशल बन जाऊँ।

इसीका यह फल है।

इति शुकसल्लाप संधि

अथ उपाहारसंधि

उस काव्यकी रचनासे सम्राट् भरत अपने हृदयमें आनंदित हुए। साथ ही प्रकटमें बोले कि इसमें कुछ विचारणीय विषय है। यह सुमना जी रानीकी कविता नहीं है। यह अमराजीकी ही रचना है। इसको सुनकर दोनों रानियाँ एक दूसरेके मुखको देखती हुई हँसने लगी। सुमनाजी कहने लगी बहिन ! मैंने उसी समय कहा था कि यह भार मेरे ऊपर नहीं लादना। किंतु मैंने देख लिया कि अब रहस्य प्रगट हो गया है।

नाथ ! आप जो कुछ कह रहे हैं यह बिलकुल ठीक है। बहिनने मुझसे इस काव्यकी रचनाके लिए कहा था। परन्तु मैंने कहा कि इसकी कविता करना कठिन काम है। इसलिये मुझसे यह नहीं हो सकेगा, तब अमराजीने इसकी रचना की। मैंने केवल उसको लिखा है और कोई बात नहीं।

मैंने वहींपर बहिनसे कहा था कि इस बातको छिपाना नहीं। जिनने रचना की हो उसीके नामको पतिके समक्ष प्रकट करना। परन्तु बहिनने मेरी बात नहीं सुनी। मैं यह जानती थी कि हमारे पतिदेवके सामने कोई बातको छिपावें तो भी वह छिप नहीं सकती है। वे हर एककी मनोवृत्तिको जानते हैं। इसलिए बहिनसे व्यर्थ विवाद करनेसे क्या लाभ ? ऐसा मनमें विचारकर मैं लिखती गई। परन्तु स्वामिन् ! लोकमें विवेकियों को कौन ठग सकता है ? इस बातकी सत्यता यहीं पर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। अब अच्छा हुआ जो मेरे ऊपर झूठा भार

लदा हुआ था, उसे आपने उतार दिया। इस प्रकार सुमनाजी बहुत संतोषके साथ बोलने लगीं।

सम्राट् कहने लगे कि पहिले आधे भागमें तो सुमनाजीकी रचना है और उत्तरार्धमें तुम्हारी रचना है, तब अमराजी बहुत हर्षित हो बोली कि यह बिलकुल ठीक है।

सुमनाजी बोली बहिन ! मैंने पहिले ही कहा था कि तुम ही इसकी पूर्ण रचना करो, उसे न सुनकर तुम चुपचाप बैठ गई। फिर मैंने थोड़ीसी रचना कर उपायसे आगे की रचना करनेको तुम्हें प्रवृत्त किया।

स्वामिन् ! आदिमंगल तो मेरी ही रचना है, परन्तु मध्यमंगल व अंत्यमंगल यह सब कुछ अमराजीकी रचना है। आप इन सब बातोंका भेद स्पष्ट रूपसे समझ गये। क्या भगवान् आदिनाथने तो आकर आपको नहीं कहा ? बहिन ! देखो तो सही, अपने पतिराजको हमलोग कैसे जीत सकती हैं ? हमारे अन्तरंगको वे किस कुशलताके साथ जानते है। इस प्रकार कहती हुई सभी स्त्रियाँ परस्पर हर्ष मनाने लगीं।

सम्राट् बोलने लगे कि आप लोगोंका काव्य सुनकर मुझे हर्ष हुआ। तुम्हारा कविता करनेका अभ्यास भी अच्छा है। मैं इस काव्यकी रचनासे प्रसन्न हुआ हूँ। तुम लोगोंको इस प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें इस समय मैं क्या दूँ ? जिस पदार्थको चाहो उसे माँगो मैं उसे देनेकी आज्ञा करूँगा।

स्वामिन् ! आपको प्रसन्नकर आपसे कोई धन वैभवका पुरस्कार पानेकी इच्छासे हम लोगोंने इसकी रचना नहीं की है। हम लोगोंके मनमें कोई लोभ नहीं है। आपके मनमें जो हर्ष हुआ है वह आपके ही भण्डारमें जमा रहे। ऐसा उन दोनों रानियों ने कहा।

"अच्छी बात ! इस प्रसन्नताके प्रतिफलको आप लोग जब चाहेंगी, तब हम देंगे। अभी मैंने जिन आभूषणोंको पहिन रखा है मैं उनमेंसे तुम्हें दूँगा" सम्राट्ने कहा।

"स्वामिन् ! हमें अभी आपकी दयासे कोई आभरणोंकी कमी नहीं है। आवश्यकतासे भी अधिक आभरण हमारे पास हैं, इसलिये आभरण देनेकी घोषणा भी आपके ही खजानेमें जमा रहे। हमें अभी उसकी आवश्यकता नहीं है।" इस प्रकार बहुत संतोषके साथ वे बोलीं।

सम्राट्ने कहा—यदि पहिलेके आभरण हैं तो क्या हुआ ? अभी मैं इस प्रसन्नताके प्रसंगमें अपने आभरणोंमेंसे तुमको देना चाहता हूँ। आओ ! लेओ ! यह कहकर अपने पास बुलाने लगे।

हा ! हमलोग कितनी बार मना करती हैं, किन्तु फिर भी पतिदेव नहीं मानते। हम क्या करें। ऐसा कहकर सभी रानियोंको इशारा करती हुई, उनके साथ आई तथा भरतके चरणमें साष्टांग नमस्कार करने लगीं, उस समय ठीक ऐसा दृश्य दृष्टिगोचर हुआ, जैसा कि एक बड़ी आँधी द्वारा किसी वृक्षसे कोई लताके गिरनेपर होता हो।

यह क्या हुआ ? मैंने तो पुरस्कार प्रदान निमित्त इन दोनोंको बुलाया था, परन्तु ये सबकी सब आकर क्यों साष्टांग नमस्कार कर रही हैं ? इस प्रकार विचार करते हुए वे पण्डिताके मुखकी ओर देखने लगे। पण्डिता सम्राट्के मनकी बातको समझकर बोलने लगी।

'स्वामिन् ! आपने इन रानियोंसे जो अपने पहिने हुए आभरणोंको देनेकी बात कही, वह उन लोगोंको पसन्द नहीं आई। उत्तम सतियोंका यह लक्षण है कि वह कभी भी अपने पतिके अलंकारको बिगाड़कर अपना शृङ्गार करना नहीं चाहेगी। वे अच्छी तरह जानती हैं कि तुम्हारा जो शृङ्गार है, वही उन लोगोंके नेत्रोंका शृंगार है। ऐसी स्थितिमें आपके आभरणोंको निकलवाकर वे अपना शृङ्गार नहीं करना चाहती हैं। उनके हृदयमें सच्ची पतिभक्ति है।

इसलिये ऐसा करनेकी इच्छा न होनेसे सबकी सब आकर आपके चरणोंमें नमस्कार कर रही हैं। इतना ही उन लोगोंका अभिप्राय है अन्य नहीं। उन लोगोंने कई प्रकार से निषेधरूप अपना अभिप्राय प्रकट किया, फिर भी आपने नहीं माना, आग्रह ही किया। ऐसी अवस्थामें कोई उत्तर देना हमारा धर्म नहीं है, ऐसा समझकर वे मौनसे आकर आपको साष्टांग प्रणाम कर रही हैं।

तब सम्राट् कहने लगे कि 'अच्छा हमने तो दोनों रानियोंको आभरण देनेके लिये बुलाया था, वे सबकी सब आकर क्यों नमस्कार कर रही हैं ? इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिये।

स्वामिन् ! क्या आप इस बातको नहीं जानते हैं और हँसी करते हैं। मालूम होते हुए भी नहींके समान प्रकट करते हैं। उसे छिपा रहे हैं। मैं जानती हूँ कि आप बहुत चतुर हैं। इस बातको जानते हुए भी अजान बनकर आप मुझसे पूछ रहे हैं। क्या आप यह नहीं जानते हैं ;

कि हमारी रानियोंमें परस्परमें कोई भेदभाव नहीं है। एक दूसरे पर आई हुई आपत्तियोंको वे सबकी सब अपने ही ऊपर आई हुई समझती हैं। उन लोगोंका स्नेह ही इस प्रकार है।

स्वामिन्! देवियोंको आपके चरणमें पड़े बहुत देरी हो चुकी है अब विशेष विनोदकी आवश्यकता नहीं है। उनको आप उठनेकी आज्ञा दीजियेगा। सम्राट् हँसकर बोले अच्छा! आप लोग बहुत थक गई होंगी। अब उठकर खड़ी हो जाओ। इस बातको सुनकर सब रानियाँ उठकर खड़ी हो गई।

भरतेश कहने लगे अच्छी बात! यदि तुम लोगोंको मेरे पहने हुए आभरण पसंद नहीं, तो और नवीन आभरण दूँगा। इसलिये आप लोगोंको इतना संकोच क्यों है? स्पष्ट क्यों नहीं कहती हैं। तब वे स्त्रियाँ स्पष्ट बोलीं आजके दिन आप कुछ भी कहें हम लेनेको तैयार नहीं हैं हमारा यह व्रत है। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक बोलनेपर भरत बहुत विचारमें पड गये। अब क्या करना? इन लोगोंके निमित्तसे मुझे आनंद प्राप्त हुआ, उसके फल रूपमें मैं इनको कुछ देना चाहता हूँ। परन्तु ये लेनेको तैयार नहीं हैं। इन लोगोंको कुछ न कुछ दिये बिना मेरा उमड़ता हुआ आनंद रुक नहीं सकता। अब इसके लिए क्या उपाय है? ठीक है। ये सोना-सुवर्ण नहीं चाहती हैं तो नहीं सही, इनको एक बार आलिंगन तो दे देना चाहिये, परन्तु ये मेरे पासमें आनेमें भी लज्जित होती हैं। ऐसी अवस्थामें क्या करना? इस प्रकार विचार करते हुए उपायके साथ उनको पासमें बुलानेका तंत्र किया।

अरी सुमना! अमर! तुम दोनों इधर आवो। तुम लोगोंके काव्यको सुनकर कुसुमाजीको चित्तविभ्रम हो रहा है। उसके मनकी बात बाहर पड़नेका उसको परम दुःख है। इसलिये उसके मनको शांत करनेका जो उपाय है उसे तुम लोगोंके कानमें गुप्त रूपसे मैं कहना चाहता हूँ, इसलिये मेरे पास आवो! ऐसा कहकर उनको पासमें बुला लिया। दोनों रानियाँ हँसती-हँसती पासमें आईं। आनेके बाद दोनोंको अपने दाहिनी व बांयी तरफ खड़ी कर पहिले उन दोनोंके कानमें कुछ कहनेके समान उनके कानकी ओर मुख ले जाकर बादमें दोनोंको जोरसे आलिंगन दिया। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था कि कल्पवृक्षकी दोनों ओरसे दो कल्पलतायें ही हों या कामदेव विनोद विहारमें दोनों ओरसे पांचालिकाओंको आलिंगन जिस प्रकार देता हो वैसा ही मालूम हो रहा था।

दोनों रानियाँ घबराईं। इधर-उधरसे बचने का प्रयत्न किया। भरतने भी अपने मनकी बात पूर्ण होनेके बाद उनको छोड़ दिया।

इतनेमें सबकी सब रानियाँ हँसने लगीं। भरतेश भी जरा हँसे। कुसुमाजी सबसे अधिक हँसीं और कहने लगीं अच्छा हुआ! ऐसा ही होना चाहिये। मैं जो कुछ भी अपनी महलमें गुप्त रूपसे बोली थी उसे तुम लोगोंने आकर यहाँपर पतिदेवको कह दिया। क्या तुम लोगों-को भी देखनेवाला कोई दैव नहीं है? उसका फल प्रत्यक्ष रूपसे तुम लोगोंने देख लिया। लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि किसीके गुप्त विषयको कोई प्रकट कर दूसरोंके सामने हँसी करते हैं, उन लोगोंके सम्बन्धमें दैव स्वयं जागृत रहता है। उनको लोकमें किसी न किसी प्रकार यह हँसीका भाजन बना देता है। इस बातका अनुभव बहिनो! तुम लोगोंने प्रत्यक्ष रूपसे किया।

अब कुसुमाजी बहुत लज्जित नहीं हो रही थी। पहिलेके समान अब खंबेके पीछे नहीं जा रही है। हाँ! पतिके सामने कुछ लज्जासे युक्त होकर उन दोनों रानियोंके प्रति जोर-जोरसे कहने लगी कि मेरी हँसी उड़ानेके लिए तुम लोगोंने प्रयत्न किया, परन्तु दैवको यह अस्वीकार होनेसे तुम ही लोगोंकी हँसी हुई। अभीतक मुख नीचेकर बैठी हुई कुसुमाजीको हर्षपूर्वक बोलती हुई देखकर सम्राट् प्रसन्न हुए।

अमराजी व सुमनाजी कुछ आगे आईं और कुछ नीचे मुखकर कहने लगीं स्वामिन्! सब लोगोंके सामने इस प्रकारका व्यवहार करना क्या आपको उचित है? आप ही विचार करें।

भरतेश्वर बोले कि इनमें दूसरे कौन हैं? ये सब रानियाँ मेरी ही तो हैं? और सबकी सब तुम्हारी बहिनें हैं। पुरुषोंमें मैं अकेला ही हूँ। ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंको लज्जा क्यों होती है? मुझे तुम लोगोंकी काव्यरचनासे हर्ष हुआ, तब मैंने आप लोगोंको आलिंगन दिया, इसमें क्या दोष है। स्त्रियोंको मैं आलिंगन दूँ इसमें क्या अनु-चित है?

स्वामिन्! इस विषयपर हमारा कुछ भी नहीं कहना है। परंतु कुसुमाजीके सम्बन्धमें हम कुछ उपाय कहेंगे ऐसा कहकर आपने चालसे व झूठे तंत्रसे क्यों हमें पासमें बुलाया? इसीका हमें दुःख है।

इस सम्बन्धमें मेरा तंत्र झूठा क्यों हुआ? इस उपायसे क्या कुसुमाजी नहीं हँसी? यही तो मैं भी चाहता था। इसीके लिए जो

उपाय कहना था सो करके दिखाया। इसमें क्या बिगड़ा ? विचार तो करो, सम्राट्ने उत्तर दिया।

तब दोनों परस्परमें कहने लगीं बहिन ! हम लोग पतिदेवको नहीं जीत सकती हैं। ऐसी अवस्थामें उनसे अधिक बात करना अपने ऊपर आपत्ति मोल लेना है। इसलिए यहाँसे अपनी बहिनोंके पास जाना अच्छा है। ऐसा कहकर उधर जाने लगीं।

कुसुमाजीको सामने देखकर कहने लगीं बहिन ! तुम जो कुछ बोली थी वह सत्य हुआ। हम दोनोंने तुम्हारी स्तुति की उसका फल हम लोगोंको इस प्रकार मिला। क्या विचित्रता है ?

ठीक बात है। बहिनों ! तुम लोगोंने मेरी झूठी प्रशंसा क्यों की ? मेरे अन्दर ऐसे कौनसे गुण हैं ? विशेष गुणी लोग हीन गुणियोंकी प्रशंसा कभी न करें। अन्यथा इसका परिणाम ऐसा ही होता है। कदाचित् मैं छोटी हूँ, और आप लोगोंकी प्रशंसा करूँ तो कोई आपत्ति नहीं है। ऐसी अवस्थामें आप लोग मेरी प्रशंसा करें यह क्या अच्छी बात है ? क्या छोटी बड़ोंमें कोई भेद नहीं है ? बहिन ! क्या आप इसे नहीं जानती हैं ?

तब वे दोनों कहने लगीं कि बहिन ! तुम इतना रुष्ट क्यों होती हो ? हम लोगोंने विनोदके लिए तुम्हारी प्रशंसा की है और कोई बात नहीं है। 'तब तो मैं भी विनोदके लिए ही रुष्ट हो गई हूँ और कोई बात नहीं' कुसुमाजीने कहा। भरतेश इन बहिनोंके विनोदव्यवहारको देखकर मन ही मन हँस रहे थे।

इतनेमें कुछ रानियाँ कहने लगीं कि बहिनों ! इसमें क्या बिगड़ा ? आप लोग इस प्रकार चर्चा क्यों कर रही हैं ? विशेष वाचाल बनना भी स्त्रियोंका धर्म नहीं है। सुईके साथ रहनेवाले डोरेके समान अपने पतिकी आज्ञा पालन करती हुई रहना यह कुलस्त्रियोंका धर्म है। स्वामीके मनको जो बात अनुकूल है, वही बात हम लोगोंके लिए भी अनुकूल रहना चाहिये। अपने पतिके समान वैभव अन्यत्र कहीं देखनेको मिलेगा ? कभी अपने पतिदेवने सभामें मुँह खोलकर अपनी प्रसन्नता प्रगट नहीं की। आज उन्होंने जो प्रसन्नता प्रकट की है, वह बड़े भाग्यकी बात है। इस प्रकार सब स्त्रियोंने हर्ष मनाया।

यह विनोदपूर्ण घटना हुई कि नवीन काव्यको हम लोगोंने सुन लिया, पतिदेवको भी हर्ष हुआ। अब चलो ! हम सब चलकर स्वामी-

की सेवामें भेंट रखकर आनंदसे उनको नमस्कार करें। इस प्रकार कहकर सब स्त्रियाँ सम्राट्के पासमें गईं।

तदनन्तर हरएक स्त्रीने एकएक आभरण भरतेश्वरके चरणमें भेंट रखकर बहुत भक्तिसे स्वामीको नमस्कार किया। बात ही बातमें वहाँपर आभरणकी बड़ी राशि खड़ी हो गई।

सम्राट्भी रानियोंकी विचित्र भक्ति देखकर प्रसन्न हुए। वे पण्डितासे कहने लगे कि पण्डिता! देखो तो सही! अमराजी, सुमनाजी व कुसुमाजीका विवाद किधर चला गया। अब तो वे लोग प्रसन्न दिखती हैं। अभीतक वे तीनों आपसमें झगड़ा कर रही थीं। अब शान्त हैं, इसका कारण क्या है?

स्वामिन्! ठीक है। क्या सुमनाजी व कुसुमाजीमें कभी मनोवैषम्य हो सकता है?

आजी अर्थात् खड्गके युद्धमें अपाय हो सकता है। परन्तु (कुसुम आजि) फूलके युद्धमें वह क्यों सम्भव हो सकता है? दूसरी बात, असुरोंके युद्धमें कठोरता भले ही हो, परन्तु देवोंके युद्धमें (अमर आजि) वह कठोरता क्यों हो सकती है?

पण्डिताके इस वचनचातुर्यको सुनकर सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न हो कहने लगे कि तुमने बहुत अच्छा कहा, लो तुम्हारे लिए यह सोनेके आभरण भेंटमें देता हूँ ऐसा कहकर पण्डिताको पुरस्कार दिया।

स्वामिन्! इन नारीरूप मणियोंके मध्यमें गुणनिधिस्वरूपमें चिरकालतक रहकर आप भोगसाम्राज्यका पालन करें यह कहकर पण्डिता अलग जाकर खड़ी हो गई। फिर न मालूम भरतजीके मनमें क्या आया कि पण्डिताको बुलाकर कहने लगे पण्डिता! हम आज अपने महलमें भोजन करें यह ठीक है या हमारी किसी एक रानीके महलमें जाकर भोजन करें वह ठीक होगा? बोलो।

पण्डिता समझ गई कि सम्राट् कुसुमाजी पर प्रसन्न हो गये हैं। उनके महलमें जाकर भोजन करनेकी इनकी इच्छा है। वह कहने लगी स्वामिन्! किसी एक रानीके महलमें जाकर भोजन करना आपके लिये श्रेयस्कर है।

तो फिर कहो किस रानीके महलमें जाऊँ?

स्वामिन्! इसका उत्तर जरा विचार करके दूँगी ऐसा कहकर पण्डिता मौनसे खड़ी हो गई, फिर आँख मींचकर जरा विचार करके

कहने लगी कि स्वामिन् ! आज कुसुमाजी रानीके महलमें भोजनको जाना यह उत्तम होगा। तब सम्राट्ने प्रश्न किया कि यह क्यों ?

तब पण्डिता बोली कि स्वामिन् ! नवीन काव्यको रचनाके उपलक्ष्यमें आपने दो रानियोंका सम्मान इस सभाभवनमें ही किया परन्तु तीसरी रानीका सम्मान नहीं किया है। वस्तुतः देखा जाय तो कुसुमाजी ही उस काव्यकी जननी हैं। इनका सम्मान अवश्य होना चाहिए। इसलिए आप उनके प्रासादमें जाकर भोजन करें तो उसका सम्मान हो सकता है।

पण्डिताकी सूझको देखकर सब रानियाँ आनन्दित हो गईं। कहने लगीं ठीक है ! ऐसा ही होना चाहिये।

पण्डिताने कुसुमाजीसे भी कहा कि बहिन ! आज तुम्हारे महलमें पतिदेवका भोजन होगा। जाओ ! भोजनकी सब तैयारी करो।

ऐसा कहनेपर कुसुमाजी और भी लज्जित हुई। तब अन्य स्त्रियोंने ज्ञात किया कि यह हमारे सामने लज्जित हो रही है, इसलिए इसकी लज्जा दूर कर देनी चाहिये ऐसा विचारकर वे चतुर रानियाँ कहने लगीं बहिन जाओ ! जाओ ! आज पतिदेवको भोजन करानेका सौभाग्य तुम्हें मिला है ऐसा हम समझती हैं। जाओ, सब तैयारी करो ऐसा कहकर सबने उसे भेज दिया।

कुसुमाजीके महलमें आज सम्राट् भरतका भोजन होगा। सचमुचमें वह भाग्यवती है। इतना ही नहीं वह गुणवती भी है। व्यन्तरकन्याने जिसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की, जिसने अपने मनोगत विचारसे भरतचक्रवर्तीके हृदयको भी हिला दिया ऐसी कुसुमाजी सचमुचमें प्रशंसनीय हैं। इसीलिए भरतेश्वरके चित्तने उसके महलमें भोजन करनेकी स्वीकृति दे दी।

अब सभा समाप्त हुई। सभी स्त्रियाँ एक-एक कर भरतको नमस्कार कर वहाँसे जाने लगीं। वेशधारिणी दासियाँ भी सबकी प्रशंसा करती हुई उनको भेजने लगीं।

वे दासियाँ अमराजी–सुमनाजीसे कहने लगीं माता ! आप लोगोंके मुखपर आज हर्षकी रेखा है। इसका क्या कारण है ? हाँ ! हम समझ गईं। चक्रवर्तीने सभामें आप लोगोंका सम्मान किया है इसीका हर्ष होगा।

इस प्रकार कई तरहसे विनोद करती हुई वे सब रानियाँ वहाँसे चली गईं। सबके जानेके बाद भरतने विचार किया कि मेरा समय

स्त्रियोंके बीचमें व्यतीत हुआ है, इसलिए आत्म-विचारके लिए कुछ भी समय नहीं मिला। विनोदलीलामें ही सब काल व्यतीत हुआ, इसलिए कुछ समय पर्यन्त आत्मविचार करना चाहिये।

तदनंतर सर्व प्रकारके शल्योंका त्यागकर भरतजी पल्यंकासनमें आँख मींचकर बैठ गये एवं अंदर नैर्मल्ययोगको धारण करने लगे।

अभीतक वे स्त्रियोंके बीचमें रहकर उनसे विनोद कर रहे थे। वह विचार किधर गया? उनका तो लेश भी उनके हृदयमें अब नहीं है। दस हजार वर्षोंसे तपश्चर्या करनेवाले मुनिके समान इनके चित्तकी अब निर्मलता है। आश्चर्यकी बात है।

हाँ! वे चक्रवर्ती हैं। उनकी आज्ञाका कौन उल्लंघन कर सकता है? इन्द्रियोंको वह आज्ञा देवें कि तुम अपना काम करो तो वे इंद्रियाँ नौकरोंके समान उनके उपयोगमें आती हैं। यदि वह आज्ञा देवें कि जाओ अब हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, तो वे अपने आप भागती हैं। प्रतीत होता है कि सम्राट्ने अब भी उन्हें आज्ञा दी होगी। अतएव उनका कुछ उपयोग नहीं हो रहा है।

बालकगण पतंग जब खेलते हैं, जब उनकी इच्छा खेलनेकी होती है, तब पतंगको खेलते हैं। यदि उनकी इच्छा न हो, तो पतंगकी डोरीको लपेटकर रखते हैं। इसी प्रकार भरतके चित्तकी परिणति है। विषयाभिलाषामें उनकी इच्छा है तो वे अपने मन व इंद्रियोंको उधर जाने देते हैं, नहीं तो उसे अपनी इच्छानुसार रोक लेते हैं। कभी अपनी इंद्रियोंसे बाहरका काम लेते हैं, कभी उन्हीं इंद्रियोंसे आत्मकार्य कराते हैं।

कभी अपनी आँखके उपयोगको बाहर लगाकर सेवकोंसे इच्छित कार्यको कराते हैं और कभी उन्हीं आँखोंको मींचकर अन्दरसे उन इंद्रियरूपी सेवकोंसे अपनी आत्माकी सेवा कराते हैं।

वे बाहरसे इन्द्रियभोगोंको भोग रहे हैं। अन्दरसे अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करते हैं। इसीका नाम जितेंद्रियता है। इन्द्रियोंके भोगोंको भोगते हुए भी अतींद्रियसुखका अनुभव होना यह सामान्य बात नहीं है।

लोकमें ऐसे बहुतसे तपस्वी हैं, जो अपना सिर मुंडाते हैं, शरीर सुखाते हैं, अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करते हैं। परन्तु ये सब बाह्य तप हैं। भरतने अपने मनके ऊपर आधिपत्य जमा लिया है। उनकी

दृष्टिसे सिर मुंडनेके बदले मनको मुंडनेमें अधिक महत्व है। शरीरको सुखानेके स्थानमें कर्मको सुखानेमें उनको अधिक आनंद आता है। बाह्यद्रव्योंको देखते हुए किये जानेवाले तपोंकी अपेक्षा आत्मदर्शन-पूर्वक की जानेवाली तपश्चर्या उन्हें अधिक प्रिय है।

शास्त्रके मर्मको न समझकर केवल वस्त्रको ही परिग्रह समझ उसे त्याग करनेवाला मुनि नहीं है। वस्त्रके समान ही तीन लोक व शरीर परिग्रह हैं। ऐसा समझकर वे केवल आत्मामें तृप्त होनेवाले राजयोगी हैं। परिग्रहके बीचमें बैठे रहनेपर भी वे परिग्रहसे अलग हैं। शरीरके अन्दर रहनेपर भी वे शरीरसे भिन्न हैं। सचमुचमें उनकी अलौकिक शक्ति है। लोककी सर्व स्त्रियोंको छोड़कर अपनी स्त्रीमें रत होनेवाला क्या वह जड़ ब्रह्मचारी है? नहीं! नहीं! केवल आत्मामें रत होने-वाला वह भरत दृढ़ ब्रह्मचारी है। विचार करनेपर आत्माका ही नाम ब्रह्म है। अपनी आत्मारूपी आकाशमें अपने मनका संचार करना यही तो ब्रह्मचर्य है और यही मुक्तिका बीज है।

स्त्रियोंका त्याग करना यह व्यवहार-ब्रह्मचर्य है। अपने चित्तको आत्मामें लगाना यह निश्चय-ब्रह्मचर्य है।

बाह्य सर्व परिग्रहोंको छोड़ अंतरंग परिग्रहोंसे परिपूर्ण दंभाचारी मुनि जगतमें बहुत होते हैं। क्या भरतेश्वर वैसे हैं? नहीं! नहीं! बाह्यरूपसे देखा जाय तो भरतेशके पास सब कुछ है। भीतर कुछ नहीं है। आंतरिक सब परिग्रहोंका उन्होंने खंडन किया है इसलिए वे बड़े आचार्य के समान हैं।

उनकी कितनी प्रशंसा करें! भोजन करते हुए भी वे उपवासी हैं। भोगते हुए वे ब्रह्मचारी हैं। हाथमें भूमण्डल होनेपर भी निष्परिग्रही हैं। शिरमें बालोंकी वृद्धि होनेपर भी उनका सिर मनुमुण्डित है। ऐसे अद्भुत तपस्वी हैं वे।

जिन! जिन! आश्चर्यकी बात है कि भरतने आँख मींचकर अपने शरीरमें अपने आपको देखा। वहींपर सिद्धपरमेष्ठीका दर्शन किया व आत्मसुखका अनुभव किया।

भरतेशको इस समय सर्वांगमें आत्मा देदीप्यमान दिख रहा है; जैसे-जैसे आत्माका दर्शन होता है वैसे-वैसे कर्म ढीला होकर निर्जीर्ण होता है। जैसे-जैसे कर्म निकलता जाता है, वैसे-वैसे ही चैतन्यप्रकाश बढ़ रहा है एवं भरतजीको अपूर्व सुखका अनुभव हो रहा है।

कभी वह आत्मज्योति पुरुषाकार दिखती है तो कभी केवल प्रकाशक रूपमें दिख रही है। कभी बीचमें चंचलता आ जाती है। अतः सहसा अंधकार हो जाता है और वह प्रकाश मलिन हो जाता है।

इस प्रकार कभी अन्धकार और कभी प्रकाश और कभी मलिन प्रकाशरूप आत्मस्वरूप भरतको प्रत्यक्ष हो रहा है।

जब अपूर्व आत्मज्योतिका दर्शन होता था, तब आनंदसे भरतेश्वरको रोमांच हो जाता था। भीतरसे सुखकी भी वृद्धि होती थी। भरतेश्वर आनंद व आश्चर्यमें मग्न होते थे।

भीतर आत्माका प्रकाश स्पष्ट दिख रहा है। उसी प्रकाशमें उन्हें यह भी दिखता है कि बालूके समान कर्मरेणु भी सरक-सरक कर हट रहे हैं। साथ ही आत्मानंद नदीके बाढ़के समान बढ़ता ही जा रहा है।

इस प्रकार भरतेशके चित्तकी दशा हो रही है। इस बातको सब लोग माननेको तैयार न होंगे, क्योंकि यह आत्मतत्वका अनुभव स्वसंवेदनज्ञानके गोचर है। भव्योंको ही उसका अनुभव हो सकता है, अभव्योंको नहीं। यह जैनशास्त्रका कथन है! जैनसिद्धान्तका यह सिद्ध रहस्य है। अभव्योंके चित्तको यह विषय परम विरुद्ध मालूम होता है।

इस प्रकार भरतेश अपने आत्मयोगामृतमें डुबकी लगाते हुए अपने मनके लोभादिक दोषोंको धो रहे हैं जैसे-जैसे दोष धुलते जाते हैं वे अधिक सुखी हो रहे हैं।

उन्हें सुखसमुद्रमें डुबकी लगाने दीजिएगा। हम लोग संसारमें गोता खा रहे हैं। भरतजी संसारमें रहते हुए भी आत्मसुखमें मग्न हैं। कैसी विचित्रता है यह?

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि इस प्रकारका सामर्थ्य भरतेश्वरमें क्यों आया? उन्होंने इसके लिये कौनसे साधनका अवलंबन लिया था? जिससे उन्हें इंद्रियोंके साथ-साथ अतींद्रियसुखका भी अनुभव हो रहा था। पाठकोंको स्मरण रहे कि भरतेश परमात्मासे प्रार्थना करते थे "हे आत्मन्! लोकको देखनेके लिये तुझे इन जड़ नेत्रोंकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे सारे शरीरमें (ज्ञानरूपी) नेत्र हैं। पदार्थोंके विचार करनेके लिए तुझे मनकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारे सारे शरीरमें (ज्ञानरूपी) मन है। आत्मांगमें सर्वत्र विचारशक्ति है, अनंत सुख व वीर्य है; इसलिए तुम अपने प्रकाशके साथ मेरे हृदयमें सदा निवास करते रहो"।

इसी भावनाका यह संस्कार है।

इति उपहार संधि

अष्ट दर्शनसंधि

मैं आत्मा हूँ। ज्ञान मेरा स्वभाव है। वही मेरा शरीर है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए अपने ज्ञाननेत्रके द्वारा भरतजी परमात्माका दर्शन कर रहे हैं।

सबसे पहिले भरतेश आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है इस प्रकारके मन्त्रका अनुभव करने लगे, तदनन्तर यह विचार तो दूर हो गया और अब वे केवल आत्मामें ही निमग्न होने लगे।

उनके हृदयमें अब कोई संकल्प नहीं, विकल्प नहीं, और न बाहर विचार ही है अब तो वे आनन्दरसमें मग्न हो रहे हैं।

कर्मोंकी निर्जरा बराबर हो रही है, आत्मप्रकाश बढ़ता जा रहा है, ज्ञान व सुखकी वृद्धि हो रही है।

अब भरतेश अपने राज्यको भूल गये हैं। स्त्रियोंका उन्होंने त्याग किया है। अब उन्हें शरीरकी भी स्मृति नहीं रही है। वे राज्याधिपति उस समय सिद्धोंके समान निर्मल आत्मसाम्राज्यमें निमग्न थे।

उस समय तनिक भी हिलडुल नहीं रहे थे। प्रेक्षकोंको ऐसा प्रतीत होता था कि कहीं कोई सोनेकी पुतलीको लाकर उस सिंहासन पर कीलित नहीं किया है?

कोई पूछे कि सम्राट् कहाँ हैं, तो उत्तर मिलेगा कि महलमें हैं! महलमें किस जगह हैं? अन्तःपुरके दरबारमें हैं। वहाँ भी किस जगह हैं, क्या कर रहे हैं? सिंहासनपर बैठे हैं। सिंहासनपर भी बैठे हुए अपने शरीरके अन्दर हैं। परन्तु यह सब असत्य कथन है। उस समय भरतेश न महलमें, न सिंहासनपर और न देहमें ही। उस समय तो वे अपनी आत्मामें विराजमान थे।

उस समय भरतेश्वरको ऐसा अनुभव हो रहा था कि आकाश स्वयं पुरुषाकार होकर ज्ञान व प्रकाशके रूपमें हो उस शरीरमें आ गया है। इस प्रकार वे परमात्माका अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार बाह्यकी सर्व बातोंको भूलकर अपने आपमें अत्यधिक लीन होते हुए भरतेशने आत्मानन्दका पूर्ण स्वाद लिया।

इतनेमें जोरसे शंखध्वनि हो उठी। उसका शब्द भरतेशके कानतक भी आया। उसी समय सम्राट्ने बहुत भक्तिके साथ परमात्माकी अष्ट-द्रव्योंसे भावपूजा की व नेत्र खोले। इतनेमें दासियोंने आकर प्रार्थना की, स्वामिन्! मुनिभुक्तिका समय हो गया है। आप पधारें।

चक्रवर्ती जिनशरण, निरंजन, सिद्ध शब्दको उच्चारण करते हुए वहाँसे उठे। उस सुवर्णमय महलसे नीचे उतरकर सबसे पहिले उन्होंने मुनियोंका प्रतिग्रहण किया। तदनन्तर उन सत्पात्रोंको भावभक्तिसे दान देकर आदरके साथ विदा किया।

भरतेश्वर महलमें बैठे हुए हैं। इतनेमें कुसुमाजी रानीकी छोटी बहिन मकरंदाजी आई। मकरंदाजी बड़ी सुन्दरी है। अभी छोटी है। फिर भी चतुर है। अपनी सखियोंके साथ चक्रवर्तीके पास आई और सुगन्ध अक्षताको देकर कहने लगी कि भावाजी! भोजनकी सब तैयारी हो गई। हमारे महलमें पधारिये।

भरतेश हँसकर बोलते कुमारी! आज मैं तुम्हारे गृहमें भोजनके लिये नहीं आ सकता। डेढ़ वर्षके बाद आकर यदि मुझे बुलाया तो मैं आऊँगा। अभी तुम जाओ।

भावाजी! अपनी बहिनके घरमें मैंने बुलाया, सो आप हँसीका बात कर रहे हैं, क्या यह उचित है?

कुमारी! तुमने बहिनका भवनका नाम कब लिया? तुमने तो यही कहा था कि हमारे घरमें भोजनके लिए चलिये, यदि मैं उससे ऐसा समझा तो अनुचित क्या है?

अच्छा रहने दीजिये आपका यह विनोद। अब बहुत समय हो चुका है। आप भोजनके लिये चलिये। बहिन कुसुमाजी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

अच्छी बात! चलो! ऐसा कहकर सम्राट् कुसुमाजीके घरके लिए रवाना हुए। उस समय ठीक वैसा ही मालूम हो रहा था जैसे कुसुमको चूसनेके लिये भ्रमर जा रहा हो। सम्राट् पधार रहे हैं यह समाचार पहिलेसे ही सेविकाओंने कुसुमाजीको सुनाया। उसी समय कुसुमाजी अपनी सखियोंके साथ भरतेश्वरका स्वागत करनेको आई।

अनंतर कुसुमाजीने भरतेशके पासमें जाकर उनकी रत्नोंसे आरती उतारी और बहुत भक्तिके साथ उनके चरणोंमें अपने मस्तकको रखा। अपने हाथके सहारे उसे उठाते हुए भरतेश्वरने कहा कि कुसुमी! रहने दो। इस प्रकारकी भक्तिकी क्या आवश्यकता है?

फिर सात-आठ हाथ आगे बढ़नेपर उसने अपने हाथोंसे भरतेश्वरके चरणोंको धोया व बहुत भक्तिके साथ अपने वस्त्रसे उनके पादको पोंछ दिया। अब भरतेश्वर कुसुमाजीके महलमें प्रवेश कर गये।

भीतर पहुँचनेपर सम्राट्ने पिंजड़ेमें टँगे हुए एक तोतेको देखा। चक्रवर्तीको देखकर तोता कहने लगा कि बहिन! हमारे महलमें भावाजी आ गये हैं। उनको विराजनेके लिए सिंहासन तो मँगावो। उनका सत्कार करो।

वहाँ एक सिंहासन तैयार रखा हुआ था। 'क्या इसीका नाम अमृतवाचक है?' ऐसा पूछकर सम्राट् उस सिंहासनपर बैठ गये।

वह तोता कहने लगा कि भावाजी! आप पधारे? आप बड़े गुण-वान् हैं। आप यहाँ आये, सो बहुत अच्छा हुआ। भावाजी! आप कुशल से तो हैं? आप क्यों नहीं आते हैं? क्या आपको राजा होनेका अभिमान है? नहीं तो हमारी बहिनके महलमें क्यों नहीं पधारते? अस्तु आज आ गये मेरे फंदेमें आ गये। अब देखता हूँ कि आप किस प्रकार निकल जाते हैं।

तोतेकी बात सुनकर भरतेश्वरको हँसी आई।

तब तोता बोलने लगा कि भावाजी! आपको हँसी आ रही है। आप अभीतक दूर थे, अब आप पासमें आ गये हैं, अब देखिये कि मेरी बहिन आपको हँसीमें कैसे फँसाती है। मेरी बहिनके दोनों हाथ फाँसीके समान हैं। अब मैं देखता हूँ कि उस फाँसीसे कैसे बच करके जायेंगे। प्रेमसे कुसुमाजी बहिनके साथ रहना हो तो रहिये। यदि निकलकर जाना चाहोगे तो बहिनके नेत्रकटाक्षरूपी चाँदीके साँकलोंसे बँधवा डालूँगा। मैं तो पिंजड़ेमें बन्द हूँ। यदि जानेका प्रयत्न किया तो बहिन की दंतपंक्तियोंके प्रकाशरूपी सोनेके पिंजड़ेमें तुमको भी बन्द करके रखवा दूँगा, जान लिया?

"अमृतवाचक! तुम्हें और तुम्हारी बहिनको मैंने कौन-सा कष्ट दिया जो इतना क्रोध करते हो! तुम लोगोंको मैं शिष्ट समझकर यहाँ आया हूँ, परंतु तुम दोनों दुष्ट मालूम होते हो। भरतेशने कहा।

राजन्! आपको मेरी बातोंसे दुःख हुआ? अच्छा, कोई बात नहीं। अब तुम हमारी महलमें बहिनके अधरसे जीवन-अमृत को पीते हुए जीवसिद्धिको पावो। अब तो मेरी बातें अच्छी लगती हैं न? मेरे लिए जामुनका फल जंगलमें है। तुम्हारे लिए जामुन बहिनके मुखमें है। मैं जंगलमें जा करके खाता हूँ। तुम यहीं पय खाकर सुखी रहो। बहिनका मध्य सिंहल देश है। केशबन्धन कुंतल देश है। कर्ण कर्नाटक देश है। कुच काश्मीर देश है, इसलिए बहिनके शरीररूपी राज्यका पालन करो। यहाँसे क्यों जाते हो? और भी सुनो! उसका यौवन

वनके समान है, सौन्दर्य सुन्दर जल भरे तालाब व नदियोंके समान है, भावाजी ! अब खूब वनक्रीडा व जलक्रीडासे अपने संतापको ठंडा करो। ये सब वचन आपको अच्छे लगते होंगे, परंतु एक बात और है। मेरी बहिनके मुखमें एक मधुका घड़ा भरा हुआ है। वह अत्यंत मीठा है, परंतु भावाजी ! उसका स्वाद आप कैसे ले सकते हैं, आप तो जैन हैं न ?

भरतेश तोतेकी बात सुनकर जरा हँसे परंतु उन्होंने यह जान लिया कि यह इस तोतेकी चतुरता नहीं है। इसको किसीने सिखाया है। सिखानेवाला कौन है ? कुसुमाजीकी बहिन मकरंदजीका ही यह कार्य है। उसीने यह तंत्र रचा है, ऐसा मनमें विचार कर वे उसपर प्रसन्न हुए।

मकरंदाजीको आलिंगन देकर अपने संतोषको व्यक्त करूँ, यह इच्छा भरतेश्वरको उत्पन्न हुई। परंतु वह पासमें आवे कैसे ? इसके उपाय सोचकर भरतेश कहने लगे देवी ! तोतेकी वाक्चातुर्यसे मैं प्रसन्न हो गया हूँ। जरा उसे मेरे पासमें तो ले आवो !

इस बातको सुनकर मकरंदाजी तोतेको लेकर भरतेशके पास गईं और जिस समय उनके हाथमें वह तोतेको दे रही थी। उस समय भरतेशने एकदम उसे पकड़ लिया व आलिंगन दिया।

मकरंदाजी लज्जाके मारे मुँह छिपाकर इधर-उधर भागनेकी कोशिश करने लगी, परन्तु भरतेशने उसे जोरसे पकड़ रखा था। उन्होंने एक चुम्बन देकर उसे छोड़ दिया और कहा कि देवी ! मैं तुमसे प्रसन्न हो गया हूँ।

तब रानी कुसुमाजी पूछने लगी कि स्वामिन् ! आप बहिनके ऊपर इस प्रकार इतने शीघ्र प्रसन्न क्यों हो गये ?

कुसुमाजी ! रहने दो ! तुम लोगोंका सब कुछ तन्त्र मैं जानता हूँ। क्या तुम नहीं जानती हो ? आज इस तोतेने जो नई बात बोली है, उसमें मकरंदाजीका हाथ है। क्या उसने उसे नहीं सिखाया है ? बोलो तो सही। इसलिए मैं उसकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न हो गया हूँ। अतएव उस प्रसन्नतासे उसे आलिंगन देकर छोड़ा है। और कोई बात नहीं।

तब कुसुमाजी रानी बहिन मकरन्दाजीसे कहने लगी कि बहिन देख लिया न ? मैंने उसी समय तुम्हें कहा था कि यह काम तुम मत करो। हमारे पतिदेव हवाकी चालको भी पहिचाननेवाले हैं। उनके

सामने तुम अपने चातुर्यको क्यों दिखाती है ? फिर भी तुम्हारी समझमें नहीं आया।

पतिदेवके आनेका समाचार सुनकर व मेरी तैयारी देखकर तुम बैठकर तोतेको कुछ सिखाने ही लगी थी। मैंने पूछा बहिन ! क्या कर रही हो ? ऐसे कार्य मत करो।

तुमने उत्तर दिया बहिन ! आज भावाजी अपने घर भोजन करनेके लिये आनेवाले हैं। जब आकर इस महलमें प्रवेश करेंगे, तब इस तोतेसे कुछ सरस व्यवहार कराऊंगी।

मैंने उत्तर दिया बहिन ! तुम पतिदेवके साथ अपनी बुद्धिमत्ताको बतलानेका प्रयत्न मत करो। वे तो कोरे आकाशमें रूप लिखने तककी सामर्थ्य रखते हैं, इसलिए इस कार्यमें व्यर्थ प्रयास मत करो ऐसा कहनेपर भी तुमने माना नहीं। मैंने फिर भी बहुत विरोध किया, फिर भी तुम सिखाती गई। तोतेको मुझे देनेके लिये कहा, परन्तु तुम उसे भी लेकर उठी, फिर सखियोंसे इसे पकड़नेको कहा तो तुम उन लोगोंके भी हाथ न आकर शीघ्र ही बगीचेकी तरफ भाग गई। इसके साथ खेलनेके लिए यह समय नहीं है, ऐसा विचार कर मैं अपने गृहकार्यमें लगी रही, तुम बगीचेमें जाकर सब कुछ सिखाकर हँसती-हँसती आई।

देव ! मैंने इन वचनोंको कभी नहीं सुना। आज ही इस तोतेके मुखसे ऐसे वचनको सुन रही हूँ। यह बात आपसे शपथपूर्वक मैं कहती हूँ। इसकी वृत्तिको देखकर इसे अब कन्या कहूँ या कुटिलकामिनी कहूँ ? समझमें नहीं आता। इस प्रकार कुसुमाजी अपनी बहिनके संबंधमें भरतेश्वरसे कहने लगी।

मकरंदाजी—बहिन ! मैंने तुम्हारे व तुम्हारे राजाके साथ क्या कुटिलता की, जरा बतला सकती हो, 'देवी जरा तोतेको इधर लाओ' यह कहकर मुझे पासमें बुलाकर जोरसे पकड़ रखनेवाले तुम्हारे राजा ही कुटिल हैं।

कुसुमाजी कहने लगी धूर्ता ! अपनी मुँहको ज्यादा मत चलाओ। मुँह बंद करो, तुमसे प्रसन्न होकर राजाने तुम्हारा सन्मान किया। तब उसे तुम उनकी कुटिलता कह रही हो।

बहिन ! कुसुमाजी यह सन्मान तुम्हारे लिए मुबारक रहे। मुझे आवश्यकता नहीं। क्या मैं इनकी रानी हूँ जो इन्होंने इतने जोरसे पकड़कर आलिंगन दिया। यह कुटिलता नहीं तो और क्या है ? मैं

तो अपनी बड़ी बहिनको देख लूं इस अभिलाषासे यहां इस महलमें आई, परंतु मुझे उसका फल मिला। अब मैं चुपचाप अपने गाँवको जाऊँगी। अब इस गाँवका नाम लिया तो मैं कन्या नहीं हूं। समझी? देखो तो सही। मानियोंके सामने आनेपर जिस प्रकार मानभंग किया जाता है उसी प्रकार इसने हमारा अपमान किया है। हाथीके समान खींचकर मुझे ले गया। क्या इसे यह राजा है इस बातका अभिमान है? इन बातोंको करती हुई मकरंदाजी बीच बीचमें अपने मुखके आकारको रोनेके समान कर रही हैं। कभी आँखोंको मलती है। भीतर संतोष है केवल बाहरसे वह इस प्रकार बोल रही है। कभी भरतेशकी ओर टेढ़ी आँखोंसे देख रही है, और फिर लंबी सांस लेकर मुँह छिपाकर फिर जरा हँसती भी है।

भरतेश भी इस प्रकारकी उसकी वृत्ति देखकर मन ही मनमें हँस रहे हैं। कुसुमाजीको ओर इशारा कर रहे हैं कि इसकी ठकबाजी देखो तो सही। कुसुमाजी बहिनसे कहने लगी कि बहिन! इस प्रकार क्यों दुःखी हो रही हो। तुम्हें क्या हुआ? मकरन्दाजी कहने लगी कि बहिन! रहने दो तुम्हारी बात! तुम्हारे कारण ही मेरा सर्वनाश हो गया। सर्वस्व हरण हो गया।

तब उसे सुनकर कुसुमाजी व्यंगभावसे कहने लगी, हां! मेरी बहिनका बहुत अलाभ हुआ! बहुत क्षति हुई!

मकरन्दाजी कहने लगीं कि क्या तुम वैश्य या शूद्र जातिमें उत्पन्न हो? क्या जातिक्षत्रियोंकी कन्यायें इस प्रकार कभी बोल सकती हैं? तुम इस प्रकार क्यों बोलती हो। कुमारी कन्याको दूसरे पुरुष आलिंगन करे यह मरणके समान है। और क्या खराबी होनेमें कुछ बाकी रहा है?

कुसुमाजी कहने लगी कि बहिन! हमारे विवेकी पतिदेवके सामने तुम्हारी कृत्रिम बातें नहीं चल सकती हैं। वे तो हर एकके भावको अच्छी तरह जानते हैं। तुम्हारी आंखोंसे निकलनेवाली आँसुओंकी धाराको देखकर उनको बड़ा दुःख हो रहा है। अब तो रोना बन्द करो! बस! बहुत हो गया।

मकरन्दाजीको मालूम हुआ कि मेरा रोना झूठा है यह बात इन्हें मालूम हो गई, आँखोंसे आँसू ही नहीं निकलते और यह इस प्रकार कहती है। इसलिए वह अब आँखोंको मल-मलकर उससे पानी

निकालनेका प्रयत्न करने लगी। इतनेमें उसकी आँखोंसे पानी निकलने लगा।

चक्रवर्ती भरत इस दृश्यको देखकर जोरसे हँसे। इस समय कुसुमाजी कहने लगी बहिन! हमारे पतिदेवके सामने किसी भी स्त्रीके दुःखके आँसू निकल ही नहीं सकते हैं। अब तुम्हारे नेत्रमें आनन्दाश्रु निकलने लगे, सो बहुत अच्छा हुआ।

मकरन्दाजी बहिन! तुम अपनी पतिकी ही प्रशंसा करती हो परन्तु मैं तो उनके मुखको देखना भी पसन्द नहीं करती। तुमने अपने पतिकी वृत्तिको क्या देखा नहीं? किस प्रकार वह शिष्ट हैं?

कुसुमाजी रहने दो तुम्हारी माया! तोतेसे जो कुछ भी तुमने छिपकर बुलवाया उसीको तो उन्होंने ग्रहण किया है और स्वाद लिया। फिर तुम इतनी खिसियाती क्यों हो?

इस बातको सुनकर मकरन्दाजीने भी उत्तर नहीं दिया और सिर झुकाकर हँसने लगी!

भरतने अपनी थूक मकरन्दाजीको दी, परन्तु मकरन्दाजीने थू, थू कहकर उसका तिरस्कार किया। कुसुमाजी कहने लगी कि मूर्खा! यह क्या करती है। हमारे पतिदेवके थूक अमृतके समान है, उस अमृतको देते हुए तिरस्कार क्यों करती हो?

मकरन्दाजी—बहिन! तुम्हारे लिये अमृत होगा, मेरे लिये नहीं। ऐसा कहकर वहाँपर रखे हुए सोनेके कलशसे जल लेकर कुल्ला करने लगी व कहने लगी कि जिना! जिना! बड़ा अनर्थ हुआ। फिर जप करने लगी, और आँख मींचकर ध्यान करने लगी जैसे किसी बड़े भारी पापकी निवृत्ति कर रही है। आँख खोलकर भरतेशकी ओर देख रही है और लज्जित होकर सिर झुका लेती है।

फिर कुसुमाजी उसे चिढ़ानेके लिए कहने लगी कि बहिन! इतनी ढोंग क्यों करती है? हमारे पतिदेवकी थूकके स्पर्श होने मात्रसे तुम्हारे कोटिकुल पवित्र हुए, इसमें दुःखकी क्या बात है?

मकरन्दाजी—बहिन! क्या बोल रही हो? इस भरतेशके साथमें विवाह होनेसे तुम अपने माता पिताओंके देशको नीची दृष्टिसे देखती हो। भले ही इनके समान सम्पत्ति हमारी माता-पिताओंकी न हो परन्तु वंशमें तो वे लोग इनसे क्या कम है? पतिके गुणोंसे मुग्ध होकर स्वयं मैं सुखी हो गई हूँ ऐसा तुम कह सकती हो, परन्तु सबको नीचे देखना क्या बुद्धिमत्ता है? क्या यह क्षत्रिय कन्याओंका धर्म है?

इस बातको कहते समय भरतेश्वरके कुल, शील व गुणोंके प्रति मकरन्दाजीके हृदयमें भी प्रसन्नता हो रही थी, परन्तु उसे छिपाकर वह अपने मातृगृहकी प्रशंसा कर कहने लगी।

बहिन ! क्या हतभाग्य राजकुमारी यदि किसी बड़े भाग्यवान् राजाकी रानी हो जाय तो वह अपने चातुर्य व प्रेमसे मातृगृहको उसके बराबरीका नहीं बतायेगी ? यदि पतिको प्रसन्न कर वह अपने माता-पिताकी प्रतिष्ठा नहीं कराती है, तो उसे राजपुत्री क्यों कहना चाहिये ?

उत्तम क्षत्रियकुलमें उत्पन्न कन्याओंका यह कार्य होना चाहिये कि वह चाहे कितने ही संपत्तिशाली राजाओंके घरमें, यहांतक कि चक्रवर्तीके घरमें ही क्यों न पहुँचे, वहांपर भी अपने माता-पिताके घर, धन, पतिके मन, पिताके मन व अपने मन आदिके विषयमें उसे अपनी कुशलतासे समानतारूप प्रतिष्ठा लानी चाहिये।

बहिन ! बड़े घरमें प्रवेश करनेसे जिस घरमें जन्म हुआ है उसे भूल जाना, कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

यह राजकन्याओंका लक्षण है। ऐसी अवस्थामें, बहिन ! अब अपने घरकी प्रशंसा करना छोड़कर इस राजाकी ही प्रशंसा करना क्या तुम्हें उचित है ?

इन बातोंको सुनकर कुसुमाजी बोलने लगी बहिन ! यह सब बुद्धिमत्ता तुम्हारे पास ही रहने दो। तुम्हारा जिस समय विवाह किसी राजाके साथ होगा उस समय वहाँ राजकन्याओंके चातुर्यको बतलाना। मैं कोरा घमण्ड करना नहीं जानती। लोकके अन्य राजाओंको अन्य राजाओंकी बराबरीके रूपमें वर्णन कर सकते हैं, परंतु लोकके सब राजाओंको एक छत्रके अंदर रक्षण करनेवाले पतिदेवकी अन्य लोगोंके साथ बराबरी करना असंभव है।

बहिन ! तुम ही बोलो। प्रथम तीर्थंकरके जो प्रथम पुत्र हैं प्रथम चक्रवर्ती हैं और सोलहवें मनु हैं उनकी बराबरी करनेवाले क्या लोकमें कोई मिल सकते हैं ? दुर्गंध शरीरको दुर्गंध शरीरकी जोड़ी मिल सकती है। मलमूत्ररहित निर्मल शरीरको कोई जोड़ी मिल सकती है ? बाहरके विषयोंसे प्रसन्न होनेवाले मूर्खोंकी जोड़ी मिल सकती है। परमात्म-योगके अनुभव करनेवाले आत्मसुखी पति-देवकी बराबरी कौन कर सकता है ?

मैंने जो कुछ भी देखा सो कहा, इसमें जरा भी असत्य नहीं है। दुनियामें जितने भी राजा हैं, मांडलिक हैं यदि वे हमारे पतिदेवके अनुकूल हैं तब तो वे राजा हैं, नहीं तो दुष्ट हैं यह तुमने जान ली है।

इसलिये मकरंदा! व्यर्थकी बात मत करो, यहाँपर तुम्हारा अभिमान चल नहीं सकता है। अभिमान करनेके लिये और कोई जगह देखो। यहाँ उसके लिए स्थान नहीं है। तुम जो कोरा अभिमान पूर्ण वचन बोल रही हो उससे तुम्हारा व तुम्हारे मायकेका अहित है। मेरे पतिदेवके सामने इस प्रकार क्यों बोल रही है? मुँह बंद कर।

मकरंदाजी–बहिन! क्या ही विचित्रता है। इस राजाने तुम्हारे ऊपर खूब वश्यमंत्र चलाया है, इसलिए तुम्हें उसके सिवाय और कोई दिखता ही नहीं है। तुमने अपने मनको इसे बेच दिया है। पाँच इन्द्रियोंका अनुराग इसपर स्पष्ट दिख रहा है। शरीरको सब तरहसे उसे समर्पण कर दिया है। सुखमें मग्न होकर तुम अपने मायकेके घरको भूल गई, इसमें आश्चर्य क्या है?

बहिन! क्या तुम्हारे पतिके तांबूलमें कोई औषधि तो नहीं है? या उनके बाहुओंमें कोई वश्यमंत्र तो नहीं है? नहीं तो तुम इस प्रकार क्यों फंस सकती थी? मैं झूट नहीं बोल रही हूँ। उसने मुझे जरासा जब आलिंगन दिया मेरे सारे शरीरमें रोमांच हो गया और जब मुझे चुंबन दिया उस समय मैं मूर्छित होकर गिरना ही चाहती थी परंतु साहस कर सम्भल गई। मैं अपनी मानहानिके मारे इतनी क्षुब्ध हो गई कि मेरी आंखोंमें आंसू ही नहीं निकला। तुम्हारे पतिकी मायाको क्या कहूँ? ऐसी अवस्थामें तुम उसके वशमें हो गई इसमें आश्चर्यकी बात नहीं।

सम्राट् भरत मकरंदाजीकी बातोंको बड़े ध्यानसे सुन रहे थे एवं अपने मनमें विचार कर रहे थे कि इस कन्याने कहाँ सीख लिया है। अभी तो यह अविवाहित है। अभी जब इसकी यह अवस्था है तो विवाह होनेके बाद फिर यह कैसी होगी? तदनंतर सम्राट् प्रकटरूपमें बोले कुसुमाजी! यह तुम्हारी बहिन बहुत रुष्ट हो गई है। उसे बहुत कष्ट हुआ है। उसे इधर बुलाओ। और भी उसका जरा सत्कार करूँ इससे उसका दुःख दूर हो जायेगा।

कुसुमाजी–बहिन! जरा हमारे पतिदेवके पास इधर आओ।

मकरंदाजी–रहने दो, जाओ, मैं नहीं आती। पहिले एक बार तुम्हारे पतिके पास आनेका फल मुझे मिल चुका है। खूब मेरा सत्कार

हो चुका है। क्या अब भी मुझे ज्ञान नहीं ? जाओ। मैं नहीं आती।

सम्राट्–देवी ! पहिलेके सत्कारसे तुम्हें दुःख हुआ ! अबकी बार उससे भी बढ़िया भेंट तुम्हें दूँगा, तुम घबराओ मत।

मकरंदाजी–व्यर्थकी बातोंसे मेरे चित्तमें क्रोधकी उत्पत्ति नहीं करना, मुझे आश्चर्य होता है कि दुनियामें जन्म लेकर तुमने क्या मायाचार फैला रखा है। स्त्रियोंको देखते ही उनको आलिंगन देते हो। क्या यही तुम्हारा ध्यान रहता है ? क्या तुम्हारे पास स्त्रियोंकी कमी है ? हजारों स्त्रियोंके रहनेपर भी इस प्रकारकी वृत्ति तुम्हारी उचित है। जो तुमसे प्रसन्न है उसके साथमें यह व्यवहार ठीक है। परंतु जो तुमसे बचकर दूर जाना चाहती है उसे जबरदस्ती पकड़ रखने व मुखको हटा लेनेपर भी जबरदस्ती चुंबन देनेकी तुम्हारी बात देखकर हँसी आती है।

इस प्रकार मकरंदाजी कहती हुई अंदर-अंदर ही हँस रही थी और बीच-बीचमें बोलती जा रही थी।

कुसुमाजी रानी जान गई कि भरतेशको अपनी बहिनपर प्रीति उत्पन्न हो गई है। इसलिए दोनोंकी बात चुपचाप सुन रही थी। तब भरतेश फिर मकरंदाजीसे बोले कि :–

अरी धूर्ता! मैं तुम्हें पुरस्कार देकर तुम्हारा सत्कार करना चाहता हूँ। परंतु तुम मुझे तिरस्कृत कर रही हो। यह क्यों ?

मकरंदाजी–राजन् ! तुम महाधूर्त हो। वह पुरस्कार तुम्हारे पास ही रहे मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है।

भरतेश्वर इस बातको सुनकर हँसे व कहने लगे कि अच्छा ! मैं धूर्त हूँ। अपनी धूर्तता क्या अब बतलाऊँ ?

इसे सुनकर मकरंदाजी एकदम सहम गई और कहने लगी कि आज आपकी गंभीरता किधर चली गई ? क्रीड़ा करनेकी इच्छा हो रही है। दरबारमें बैठनेपर तुम्हारे मुखसे दो चार शब्दोंका निकलना भी दुर्लभ हो जाता है। परंतु आज इस प्रकार वचनोंकी वर्षा क्यों हो रही है ?

भरतेश–तुम दुःखी हुई इसलिये मैं तुम्हें पुरस्कार देकर संतुष्ट करना चाहता था, परंतु तुम कुछ और ही समझ रही है।

मकरंदाजी–देखो ! फिर वही बात ! आप अपना हठ फिर भी छोड़ना नहीं चाहते। आपने पहिले जो पुरस्कार दिया वह भी मुझे भार हो गया है। "इसलिये लीजिये यह रत्नहार आपके सामने ही

उतार डालती हूँ" कहकर अपने कंठके रत्नहारपर उसे उतारनेके लिये हाथ लगाने लगी। आश्चर्यकी बात है कि यह कंठसे बाहर नहीं निकला। मकरंदाजी समझ गई कि सम्राट्ने रत्नहारको कंठमें स्तंभित कर दिया है, इसलिये वह विस्मित होकर राजाकी ओर देखने लगी एवं कहने लगी कि राजन् ! यह तुम्हारा हार मेरे गलेको क्यों नहीं छोड़ता है, यह भी तुमसरीखा ही हठग्राही मालूम होता है। देखो तो सही। उसे मैं 'छोड़ो' 'छोड़ो' कहती हूँ, परन्तु वह मुझे नहीं छोड़ता है। भरतेश बोलने लगे कि मकरंदाजी ! मैंने तुम्हें उस समय तीन आभूषण दिये थे। एक कंठके लिये, दूसरे हृदयके लिये व तीसरे मुखके लिये। परन्तु उनमें से दो रखकर एक ही तुम वापिस दे रही हो। इसलिए वह कंठहार तुम्हारे गलेसे नहीं निकलता है। दूसरी बात हम दिये हुए पदार्थको वापिस लेनेवाले नहीं हैं। इसलिये अब उस रत्न-हारको स्पर्श मत करो। वह तुम्हारा ही है। परन्तु ध्यान रहे आज हमारे साथ मनमाने ढंगसे उद्दण्डतापूर्वक बोल चुकी हो इसलिये इसका बदला लिये बिना नहीं छोड़ूंगा। मकरंदाजी ! छह महीना और ठहरो बादमें तुम्हारी सब उछल कूदको बंद कर दूँगा, तबतक सबर करो।

मकरन्दाजी --भावाजी ! क्या? आपने क्या विचार किया है मुझसे बोलिये तो सही।

भरतजी --क्या बोलूं ? सुनो ! तुम्हारी बड़ी बहिन कुसुमाजीके समान बना डालूंगा। समझी ?

इस बात को सुनकर वह लज्जाके मारे खंबेके पीछे दौड़ गई, साथमें उसको कुछ हर्ष हुआ।

तब इस वचनको सुनकर कुसुमाजीको हर्ष हुआ। वह मकरन्दाजी से कहने लगी कि बहिन ! हमारे पतिदेवकी बात असत्य कभी नहीं हो सकती। इसलिए कल ही पिताजीको बुलवाकर तुम्हारे लिए नये आनन्दकी व्यवस्था करूँगी। विशेष क्या ? सम्राट्के हाथमें तुम्हारा हाथ मिलाकर पिताजीके हाथसे जलधारा डलवाऊँगी जिससे तुम दोनों का परस्परका विवाद धुल जाय। इस प्रकार कहकर वह कुसुमाजी अपनी बहिनके पास जाकर कहने लगी कि बहिन ! अब तो मंगलोत्सव हो गया ऐसा समझ लो। परन्तु पुरुषोंको उत्तर देना स्त्रियोंका धर्म नहीं है, इसलिये जो दोष तुमसे हुआ है उसे अब किसी प्रकार दूर करो। इतनी देरतक तुम मेरे लिए उपदेश दे रही थी, परन्तु स्वयं तुम बुद्धि-मती होकर भी नहीं जानती हो। आश्चर्य है। आवो पतिदेवको

नमस्कार करो ! तुम्हारे सब दोष दूर हो जायेंगे। ऐसा कहती हुई उसके हाथ धरकर बुलाने लगी।

मकरन्दाजी लज्जाके मारे सामने नहीं आई, कुसुमाजीके बहुत आग्रह करनेपर फिर सामने आई।

अब उसके शरीरमें पहिलेके समान धृष्टता नहीं है। अपितु अब भरतको देखनेमें भी डरती है व लज्जित होती है। इसकी पहिले की बोल-चाल, लीला व मद अब सबके सब किधर चले गये समझमें नहीं आता।

कुसुमाजी फिर कहने लगी कि बहिन ! अब पतिदेवके चरणोंको नमस्कार करो व उनके पासमें जाओ। परन्तु मकरन्दाजीको लज्जा आ रही है। फिर भी बड़ी बहिनके बड़े आग्रहसे उसने नमस्कार किया।

कुसुमाजी--बहिन ! अब अपने दोषोंके लिए इनसे क्षमायाचना करो।

मकरन्दाजी --जाओ ! मैंने कोई दोष ही नहीं किया फिर क्षमा किस बात की मांगू ? मैंने नमस्कार किया यही बहुत हुआ।

मनमें हर्ष, शरीरमें उत्साहके साथ अपनेको नमस्कार करती हुई मकरन्दाजीको देखकर भरतेशको भी अत्यन्त हर्ष हुआ। वे भी बीती हुई सब बातोंपर मन ही मनमें हँस रहे थे।

इतनेमें कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन् ! इसके साथमें खेल बहुत हो गया। अब भोजनके लिये बहुत देरी हो गई है, इसलिये कृपया ऊपरके महलमें पधारियेगा।

पिंजरेमें बैठा हुआ अमृतवाचक! अभीतक सब बातोंको तटस्थ होकर सुन रहा था। अब सम्राट्ने उससे कहा अमृतवाचक ! तुम बड़े सरस हो, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ ऐसा कहकर उसके निवासके लिए एक नवरत्नमय पिंजड़ा मँगाकर दे दिया।

इसके बाद, जिनशरण, शब्दोच्चारणपूर्वक सम्राट् वहाँसे उठे व अपनी प्रिय रानीके साथ ऊपरके महलकी ओर चले गये।

भरतेशके आनंदका क्या ठिकाना, जहाँ जाते हैं वहाँ आनन्दविभोर हो जाते हैं, और वैसे प्रसंग उपस्थित होते हैं।

उनकी सदा यह भावना रहती है कि हे चिदंबर पुरुष ! आप रात्रि और दिनको सूर्य हैं, उड़ते हुए भी न उड़नेवाले हंस हैं, रागद्वेषसे रहित हैं, वीर हैं, मेरे अन्तरंगसे अलग न होकर सदा मेरे साथ रहियेगा।

हे सिद्धात्मन् ! आप सारासार विचारपरायण हैं, सातिशय आत्मा हैं, महात्मा हैं, सद्गुणशृङ्गार हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सदा सन्मति प्रदान कीजिये ।

इसीका फल है कि वे सदा आत्मानन्दमें मग्न रहते हैं ।

इति सरस संधि

अथ सन्मान सन्धि

सम्राट् भरत अपनी रानीके साथ जब महलके ऊपरके भागमें पहुँचे तब उस महलकी सजावटको देखकर वे चकित हुए । कुसुमाजीसे कहने लगे कि कुसुमाजी ! यह महल तुम्हारे नामके समान ही कुसुमोपहारों-से युक्त है । यह कुसुममालाओंसे युक्त चन्दोबा कितना अच्छा है ।

ये बीचके झालरदार सुन्दर कपड़े कहाँसे आये ? क्या हमारे श्व-सुरजीके घरसे आये हैं ? बोलो तो सही ।

मोती व माणिककी ये सुंदर लड़ कहाँसे आई है ? मेरी सासूने मेरी प्रसन्नताके लिए भेजी है क्या ?

यह ऊपरका सफेद बढ़िया चंदोबा कहाँसे आये ? क्या तुम्हारे बड़े भाईने तुम्हारे चित्तकी प्रसन्नताके लिये भेजा है ?

ये सब फूलकी मालायें आदि कहाँसे आईं ? क्या तुम्हारे छोटे भाइयोंने भेजी है ?

कुसुमाजी ! यहाँकी सजावट हर प्रकारसे सुन्दर हो गई है । इसे देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ । यह घर नवरत्नमय शोभित हो रहा है । मैंने तो तुम्हें इन पदार्थोंको कभी दिया नहीं, फिर तुम कहाँसे इनका संग्रह कर लाई ? बोलो तो सही । इस प्रकारसे भरत बड़े आग्रहके साथ पूछने लगे । बोलते समय प्रेमसे कभी उसे कुसुमि, कुसुमे, कुसुम, कुसुमाजी, कुसुमकोमले, कुसुमांगि, कुसुममालांगि, कुसुममाला, कुसु-मिति, कुसुमिनि इत्यादि अनेक तरहसे संबोधन कर वे उससे बोल रहे थे ।

तब कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन् ! मैं मायकेके घरसे इन पदार्थोंको क्यों मँगाऊ ? मेरे पतिदेवके भवनमें क्या कमी है ? जब यहाँ नवनिधि ही हैं, तब मुझे बाहरसे किस बातकी आवश्यकता है ?

इस प्रकार बोलती हुई कुसुमाजी हृदयमें इस बातसे प्रसन्न भी हो रही थी कि आज मुझपर प्रेमके कारण सम्राट्ने मेरे माता-पिता भाइयोंका भी नाम बड़े आदरसे लिया है। दुनियाके सभी राजाओंको एक वचनसे बुलानेवाला महाराजा आज मेरे जन्मदाताओंको बहुवचनसे स्मरण कर रहे हैं। सचमुचमें मैं भाग्यशालिनी हूँ। राजाओंको ये प्रभु सेवकोंके समान बुलाते हैं, परंतु इन्होंने मेरे मातापिताको सासु व श्वसुर कहा। सचमुचमें यह भाग्य और किसे मिल सकता है?

विचार किया जाय तो यहाँ एकांत होनेसे इस प्रकार सम्राट् बोल गये हैं। नहीं तो राजसभामें कभी भी इस प्रकार सन्मानके साथ नहीं बोलते। वहाँ तो तौलकर बात करते हैं। भरतेशने इस समय विचार किया कि कुसुमाजी मेरी अत्यंत प्रेमपात्र रानी है, इसलिये उसके साथ एकांतमें तो कमसे कम समयोचित व्यवहार करना चाहिये।

वे इसी विचारसे बोले। यदि किसी मूर्ख स्त्रीके साथ महाराजा भरतेश इस प्रकार कहे होते तो वह अभिमानके साथ भरतेशके सिरपर ही चढ़ती, परंतु कुसुमाजी बुद्धिमती थी, इसलिये ऐसा बोलनेसे उसका कोई बुरा परिणाम नहीं हो सकता है। इससे कहते हैं कि लोकमें विवेकी स्त्रीपुरुषोंकी जोड़ी ही सर्व प्रकार सुखप्रद है!

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! घरकी सजावटकी बात क्या है, यह सब आपकी ही कृपा है। अब आप मंगल आसनपर विराजमान हो जाइये।

भरतेश्वर नवरत्नमय आसनपर विराजे। वहाँ नवरत्नमय उपकरण जलकलश वगैरह रखे हुए थे।

अब कुसुमाजीने सब लोगोंको बाहर जानेके लिये कहा, केवल एक दासीको घंटा बजानेके लिये दरवाजेके बाहर खड़ी रहनेको कहा। फिर स्वतः जाकर दरवाजेको बंद कर आई। भरतेशने कहा कुसुमाजी! दरवाजा क्यों बंद कर दिया? कुसुमाजी कहने लगी स्वामिन्! इसका कारण पश्चात् कहूँगी। अभी आपको भोजनमें देरी होती है।

परंतु भरतेश अपने मनमें यह समझ गये कि यह देवी पहिले तोतेके साथ बोली हुई बात येन-केन प्रकारेण बाहर पड़ गई है यह जानकर डर गई है। इसलिये अब मैं इसके साथ जो कुछ भी बोलूँ वह किसीको भी मालूम न हो, सभी बातें गुप्त रहें यही इसके दरवाजा बंद करनेका अभिप्राय है।

इस प्रकार सब लोगोंको बाहर कर कुसुमाजी एकांतमें अपने पति-देवको उत्तमोत्तम भक्ष्य, पायस, शाक, पाक आदि ला-लाकर परोसने लगी। स्वर्गके देवोंको भी जो भक्ष्य दुर्लभ हैं, ऐसे दिव्य पदार्थोंको भरतेश्वरके सामने उसने उपस्थित किया।

तदनंतर अपने पतिदेवकी भक्तिसे आरती उतार कर पुष्पांजलि क्षेपण करती हुई हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! अब भोजण कीजिये।

उस समय भरतजीके शरीरमें तिलक, कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय व अन्तरीय वस्त्रके सिवाय और कोई अलंकार नहीं थे।

भरतजीने हस्तप्रक्षालन आदि भोजनाद्य क्रियाओंको की।

सिद्धोंकी स्तुति व पूजाकर उन्होंने उन्हें सिद्धलोकमें विदा किया। पूर्वोक्त क्रमसे परमात्माका स्मरण करते हुए सिद्धान्तप्रतिपादित क्रमसे आहार लेने के लिये प्रारम्भ किया।

सबसे पहिले सम्राट्ने एक घूंट जलका पानकर जलशुद्धि की, बाहर से मंगल घंटाध्वनि होने लगी। उसी समय सम्राट्ने भी अपने कर-कमलको उन दिव्य वस्तुओंसे युक्त थालीपर रखा। तदनन्तर पर-मात्माकी साक्षीपूर्वक उस शरीरको अन्नपान समर्पण करने लगे।

सम्राट्ने भेदविज्ञानके बलसे आत्माको उस शरीरके मध्यमें रख कर उसे पूछा कि हे चिन्मय परमात्मा! मैं इस शरीरको यह पौद्-गलिक अन्नको खिलाऊँ? तुम्हारी क्या आज्ञा है? तुम तो कार्माण वर्गणारूपी आहारको भी भार समझते हो। ऐसी अवस्थामें हे स्वर्मोक्ष-पति! तुमको इन कवलाहारों से क्या होगा? इनसे पुद्गलको ही लाभ है। आहार लेनेकी इच्छा करनेवाले मन, इन्द्रिय, शरीर, वचन आदि सबके सब पुद्गल हैं, इस पौद्गलिक शरीरको उपयोगी यह आहार है। तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध है?

हे आत्मन्। तुमने पूर्वजन्ममें जो पुण्य किया है उसके फलस्वरूप सुखको अब भोगकर छोड़ो। इस पुण्यको व्यय करनेके लिये मैं यह भोजन कर रहा हूँ। आज इस अन्नके सुखको अनुभव करो। कल तुम्हें आत्माके अनन्तसुखका अनुभव होगा। इस प्रकार अनेक तरहसे आत्मा को समझाते हुए भरतेश्वर भोजन कर रहे थे।

सम्राट्के पास ही कुसुमाजी इस कुशलताके साथ खड़ी थीं कि उनकी छाया भरतेश्वर या उनकी थालीपर न पड़े। बीच-बीच में वह

पंखेसे हवाकर गरम चीजोंको ठण्डी कर रही थीं। कभी-कभी चक्रवर्ती के ऊपर गुलाबजल छिड़ककर उनके शरीरको भी शांत कर रही थीं। बीचमें ही हाथ धोकर फिर थालीके अन्न व शाक मिलाकर देती थीं और बायें हाथसे शरीर सँवारती भी जाती थीं। और फिर भरतेश मुँहमें एखाद्य ग्रास दे रही थीं, पुनः हाथ धोकर अन्यान्य भक्ष्योंको परोस रही थीं। भरतजी यदि भोजनके बीचमें पानी पीनेकी इच्छा करें, उनके कहनेके पहिले ही वह जलकलशको उठाकर देती थीं। मालूम होता है कि भरतके हृदयमें ही वह प्रवेश कर चुकी हैं। अच्छे-अच्छे मधुर द्रव्योंको चुन-चुनकर वह भरतेशके हाथमें रखती हैं। भरतजी आनन्दके साथ उसे खाते जाते हैं। यदि मिठास अधिक हो गई, तो नमक देती हैं। इस प्रकार पतिदेवकी रुचिको ध्यानमें रखती हुई उनको तरह-तरहके रसोंका आस्वादन कराती जा रही हैं।

भरतजी अपने मनमें जिस पदार्थकी चाह करते हैं, उसे इशारेसे माँगनेके पहिले ही कुसुमाजी उनकी थालीमें अर्पण करती थीं। राजा भी इस बातसे सन्तुष्ट हो रहे थे। प्रेमकी पराकाष्ठा होनेसे शरीर दो होनेपर भी आत्मा तो एक ही है। इस वाक्यकी सत्यता सचमुचमें वहाँ दिखती थी।

जिन पदार्थोंसे सम्राट्‌को तृप्ति हो चुकी उन पदार्थोंकी थालीको एक ओर सरकाकर अन्य विशिष्ट पदार्थोंको परोसती हैं। भरतजी आँखोंसे इशारा करते हैं कि बस! अब मत परोसो! कुसुमाजी हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हैं कि स्वामिन्! थोड़ा और लीजिये। इस प्रकार कहकर तरह-तरह के पक्वान्नपानको बड़ी भक्तिसे परोसती जाती हैं। इतनेमें भरतेश पुनः अपना सिर हिलाने लगे। तब कुसुमा-जी बोली स्वामिन्! अब दो ग्रास और लीजिये। यह कहकर आग्रह करने लगी। दो ग्रासके बदलेमें कई ग्रास हो गये।

पुनः यह प्रार्थना करने लगी पतिदेव! आपके लिये जिन-जिन पदार्थोंको मैंने बनाया है उनका स्वाद आपको अवश्य लेना होगा। भरतेश भी उसकी विचित्र भक्तिपर हँसते हुए उनको जरा जीभपर लगाकर छोड़ते जाते थे।

इस प्रकार बहुत विनय-भक्तिके साथ कुसुमाजीने अपने पतिदेवको भोजन कराया। भरतेश भी तृप्त हो गये। उन्होंने हस्तप्रक्षालन कर भोजनांत्यकी क्रिया की।

आँखोंको बंद कर अन्त्यमंगल करते हुए परमात्माका स्मरण किया। तदनन्तर आँख खोल ली। कुसुमाजीने भी बहुत भक्तिसे नमस्कार किया। बाहरकी घण्टाध्वनि भी अब बन्द हो गई।

तदनन्तर 'जिनशरण' शब्द का उच्चारण करते हुए सम्राट् वहाँसे उठे व ऊपरके महलकी ओर चले गये। महलकी सीढ़ियोंपर चढ़नेमें भोजनके बाद पतिदेवको कष्ट होगा इस विचारसे कुसुमाजी उनको अपने हाथका सहारा देकर चढ़ने लगीं। ऊपर पहुँचकर वहाँपर पहिले से ही सजी हुई एक सुन्दर कोठरीमें सुसज्जित पलंगपर वे बैठ गये। कुसुमाजीने तांबूल, गुलाबजल व सुगन्धद्रव्य आदि देकर सत्कार किया। भरतेश वहींपर जरा लेटे। कुसुमाजी उनके पैर दबाने के लिये बैठीं। परन्तु भरतजीने कहा प्रिये! जाओ, बहुत समय हो चुका है। भोजन कर आओ। इस प्रकारकी आज्ञा पाकर वह सती अत्यन्त आनन्दसे भोजन करनेके लिये चली गईं।

भरतजी वहाँ पड़े-पड़े ही आँख मींचकर विचार करने लगे, मेरी आत्मा भिन्न है। यह भोजनादिक बाह्य उपचार शरीरके लिए है। आत्माके लिए नहीं। मेरी आत्मा क्षुधा से पीड़ित नहीं, यह सब कुछ मुझे शरीरके लिए करना पड़ता है। इस प्रकार विचार करते-करते उनको अन्नके मदसे जरा निद्रा आ गई। तकियाके ऊपर बाँयें हाथको रखकर उसपर उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दाहिने हाथको अपनी जंघाके ऊपर रखकर उस समय वे नींद ले रहे थे।

उस समय भी उनकी शोभा अपार थी। नींदके बीचमें कभी-कभी ओंठको हिला रहे हैं। कण्ठको हिला रहे हैं। कण्ठ व मुखपर थोड़ासा पसीना दिख रहा है, और कोई प्रकारका विकार नहीं है।

वीणाके तारसे जिस प्रकार सुस्वर निकलता हो उस प्रकारका स्वर उनके श्वासोच्छ्वाससे निकलते थे। दूरसे देखनेवालोंको उस समय वे सुलाई हुई सोनेकी पुतलीके समान मालूम होते थे।

कुसुमाजी भोजनको जाते समय पतिकी निद्रामें कोई बाधा न हो इस विचारसे बिलकुल धीरेसे गईं परन्तु फिर चक्रवर्तीके शरीरकी सुगन्धिपर मुग्ध होकर अनेक भ्रमर आकर वहाँ गुंजार कर रहे थे उनको कौन रोके? तो वे सुनते कहाँ? भ्रमरोंके सुमधुर गुंजनके वश होकर भरतजी हल्की नींद ले रहे थे। इधर कुसुमाजी उत्साह में मग्न थीं।

वह पतिदेवको सुलाकर सबसे पहिले रसोईघरमें पहुँची थीं। वहाँ जाकर हाथ पैर धोकर उसने भोजन किया। आज अपने घरमें पतिदेव

भोजनके लिये आये हैं इस हर्ष से ही उसका अर्धपेट तो भर गया था, फिर बाकी कुछ-कुछ अन्न-पानसे पेट भरकर उसने तृप्ति प्राप्त की, भोजनानन्तर वह विश्राममन्दिरमें गई। वहाँ झूलेपर जरा लेट गई। इधर-उधरसे दासियोंने आकर उसकी सेवा करना प्रारम्भ किया। उसे भी अन्नके मदसे जरा नींद लगी परन्तु उसने जल्दी आँख खोल ली। मनकी आकुलतामें सुखनिद्रा भी नहीं आ सकती।

ऊपर महलमें अकेले पतिको छोड़कर आई है वह फिर उसे निद्रा किस प्रकार आ सकती है? उसे तो हृदयमें ऐसा अनुभव हो रहा है कि मैंने कोई बड़ा भारी अपराध किया है। इसलिए जल्दी ही ऊपर जानेके विचारसे वह शय्यासे उठी।

इतनेमें नाटकका अभिनय करनेवाली दो स्त्रियां उसके पास आईं और कहने लगीं कि देवी! आज हम कोई नाटकका अभिनय करेंगी उसको देखनेके लिए आप महाराजसे प्रार्थना कीजिये। कुसुमाजीने कहा अच्छी बात! पतिदेवसे कहूँगी! आपलोग तैयार रहना।

इस तरह कहकर उन दोनोंको भेजकर उसने अपने अन्तःपुरके द्वार बन्द कर लिये और अपने शृङ्गारमंदिरमें जाकर उसने अपना शृङ्गार कर लिया।

दर्पणमें देखती हुई अपने तिलकको सुधारती हुई वह अपने आप एक बार हँसी। अच्छी तरह अपनी सजावट कर अनेक सुगंधद्रव्योंको साथमें भी लेकर ऊपर महलके लिये रवाना हो गई। आभरणकटि-सूत्रके 'झंझण' शब्दको करती हुई वह महलकी सीढ़ियोंपर चढ़ रही थी। ऊपर चढ़नेके बाद इस विचारसे कि पतिदेवकी निद्रामें कोई बाधा न हो, अत्यन्त निस्तब्धताके साथ जाने लगी। दूरसे झाँककर देखने लगी कि पतिदेव अभीतक जागे या नहीं। इस प्रकार जरा भी शब्द न करके वह पतिकी ओर जा रही थी। क्या इस प्रकारकी पति-भक्ति घर-घरमें हो सकती है?

इधर वह कुसुमाजी भरतेशकी ओर आ रही थी, उधर चक्रवर्ती थोड़ी सी निद्रा लेकर फिर जाग उठे एवं आत्मध्यानमें लीन हो गये थे। जिस प्रकार सूर्यको घेरनेवाला मेघ बहुत देरतक नहीं टिक सकता उसी प्रकार उस पुण्यपुरुषको घेरनेवाली निद्रा भी अधिक समयतक घेर नहीं सकी। कुछ ही देर बाद वे जागृत होकर उसी शय्यापर आत्मयोगमें मग्न हो गये। बाहरसे देखनेवालोंको यह मालूम हो रहा था कि भरतेश निद्रामें मग्न हैं परन्तु वे अपनी आत्मामें मग्न थे। आँखोंको बंद

करके मनको अपनी आत्मामें लगा सुज्ञान समुद्रमें गोते लगा रहे थे। धन्य हैं !

उस समय ज्ञानज्योतिमय आत्माका उस शरीरमें उन्हें दर्शन हो रहा था। जैसे-जैसे आत्माका दर्शन अधिकाधिक हो रहा है, वैसे-वैसे कर्मोंका अंश उतरता हुआ जा रहा है। जैसे-जैसे कर्मोंका अंश कम होता जा रहा है, वैसे-वैसे ज्ञानका अंश बढ़ता जा रहा है। ज्ञानका अंश जिस प्रकार बढ़ रहा है, उसी प्रकार सुखकी मात्रा भी वृद्धिगत हो रही है। उस समय स्वयं ही दर्शक थे, स्वयं ही दर्शनपात्र थे। स्वयं ही ज्ञायक थे, ज्ञेय भी स्वयं थे। अपने आप ही सुखका अनुभव कर रहे थे। इतनेमें वहांपर कुसुमाजी आई।

कुसुमाजी आ रही हैं यह ज्ञात होनेपर भरतेश्वरने ध्यानका समारोप किया अर्थात् परमात्मध्यानकी अन्तिम स्तुति की एवं वीतरागाय नमः इस शब्दका उच्चारण करते हुए अपने मुखचंद्रपर पड़े हुए वस्त्रको हाथसे सरकाया। उठकर देखते हैं तो कुसुमाजी दरवाजे के पास ही संकोचके साथ इसलिये खड़ी हैं कि पतिदेव अभी निद्रावस्थामें हैं।

भरतेश उठकर कहने लगे कि प्रिये ! आओ। संकोच मत करो। वह हँसती-हँसती पासमें आई। पासमें आकर उसने भरतेश्वरपर गुलाबजल आदि छिड़के तथा उनको तांबूल दिया, परन्तु उसकी मुखाकृतिके दर्शनसे मालूम होता था कि उसके मनमें कोई विचित्र भाव चक्कर लगा रहा है। कहनेमें बहुत संकोच भी होता है। भरतेशको इसे समझनेमें देरी न लगी।

उन्होंने समझ लिया कि यथार्थ बात क्या है ? मुग्धा या मध्यमा जातिकी स्त्रियोंसे संकोचको दूर करनेके लिये पहिले अन्य प्रकारका सरस व्यवहार करना पड़ता है, नहीं तो वह देखने व बोलनेमें भी लज्जित होती है।

भरतेश मनमें कुछ विचार कर कहने लगे कि कुसुमी ! आज कुसुमाजी हमारे पास क्यों आई ? जरा पता चलाकर बोलो तो सही।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन् ! वह आपके पास हँसती-हँसती न मालूम क्यों आई ? भगवान् ही जाने।

भरतेश कहने लगे कि उसके मुखको देखते समय तो ऐसा मालूम होता है कि वह हमसे आज कलह करनेके लिये आई है। क्या यह सच है ? उससे पूछकर बोलो तो सही।

घबड़ाकर वह कहने लगी स्वामिन् ! मैं झगड़ा करनेके लिये नहीं आई हूँ। इसमें कोई गूढ़ प्रयोजन है। उसे मैं पतिदेवके साथ विचार करनेके लिये आई हूँ।

गूढ़ प्रयोजन क्या है ? बोलो तो सही, ऐसा भरतेश्वरने कहा।

वह कहने लगी कि स्वामिन् ! उसे मूर्खोंको कहना चाहिये। आप सरीखे बुद्धिमानोंको उसे समझानेकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार बहुत गम्भीरतासे कहती हुई वह सम्राट्के चरण कमलको बहुत भक्ति-से दबाने लगी। पाँवको दबाती हुई देख चक्रवर्तीने पैर दबानेकी तुम्हारी कुशलता बहुत अच्छी है ऐसा कहकर दोनों पैरोंसे उसे दबाये।

स्वामिन् ! क्या आप मुझसे प्रसन्न हुए, इसीलिये पैरसे लात मारे ? कोई बाधा नहीं है। प्रसन्न होकर मुझे ठुकराया इसमें भी मुझे हर्ष ही है।

उसी समय हँसते-हँसते सम्राट् उठे, उसके बाद आगे क्या हुआ ? इसका वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसकी शोभाका वर्णन करने जायेंगे तो जरा हल्की बात हो जायगी।

वह बुद्धिमान् था, वह बुद्धिमती थी, दोनोंने मिलकर इस प्रकारका विनोद किया जिसे मुँह खोलकर कहना उचित नहीं।

ऐसे विषयोंको खोलकर कहनेकी आवश्यकता नहीं। रसिक दम्पति मिल गये इतना कहना ही पर्याप्त है। उन्होंने क्या रसीला व्यवहार किया इसे कहना ठीक नहीं है।

कलावान् व कलावती दोनों मिल गये इतना कहना पर्याप्त है। स्तनपीडन, जंघामिलन आदि बातोंके वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता ?

दोनों सुरतक्रीडा करने लगे इतना ही कहना पर्याप्त है। नखहति, दन्तहति आदियोंका वर्णन कर हिताहित परिज्ञानविरहित अज्ञानियोंका व्यर्थ ही लुभानेकी क्या आवश्यकता ?

धन्य पति-पत्नी खूब अच्छी तरहसे रमण करने लगे इतना ही कहना पर्याप्त है। उस बीचमें दैन्यवृत्तिसे, प्रणयकोपसे, हास्यकषाययुक्त अनेक वचनोंको परस्पर बोलने लगे यह कहना सौजन्य नहीं है।

पति-पत्नीका संयोग हुआ इतना ही कहना काफी है। उन्होंने पर-स्पर आलिंगन दिया इसे कहनेकी क्या जरूरत है ?

बहुत दिलचस्पीके साथ मिले इतना ही कहना चाहिये। बीच-बीच में आँख मींचकर उस सुखमें तन्मय होते थे, एवं मूर्छित हो जाते थे

फिर जागृत होते थे इसे कहनेकी क्या आवश्यकता है ? सुरतसुखका अनुभव कर तृप्त हो गये इतना ही संकेत पर्याप्त है। आंखोंमें चक्कर, बाहों में ढीलापना, एवं बातचीत बन्द होकर दोनों तकियेके सहारे टिक गये, यह लिखकर दूसरोंको भेद क्यों देवें ?

इस प्रकार भरतेश व कुसुमाजी सुख भोगकर तृप्त हो गये। रत्नाकरसिद्धने उन दोनोंके सुखके प्रकारको वर्णन कर भी दिया है। परन्तु वर्णन करनेकी मेरी इच्छा नहीं भी है यह भी बतलाया है। सचमुचमें यह कविका चातुर्य है। ऐसे विषयोंको विशद वर्णन करें तो कविका मस्तक सदोष या विकृत समझा जा सकता है ? कभी नहीं। ९६ हजार रानियोंके बीचमें रहते हुए भी कर्मोंकी निर्जरा करनेकी शक्ति भरतमें विद्यमान है तो क्या ऐसी बातोंकी रचना करते हुए भी उनसे दोषोंसे अलिप्त रहनेकी युक्ति रत्नाकरसिद्धमें नहीं होगी ? अवश्य होगी, परन्तु वह गुप्त पर्देका है। पर्देमें रहनेमें ही उसकी शोभा है, इसलिए उसे पर्देमें ही रखा है।

कुत्ता, घोड़ा व पशुओं का संसर्ग जिस प्रकार देखनेमें आता है उसी प्रकार हाथी व हथिनी का संयोग कहीं देखनेमें आ सकता है ? हीन स्त्रीपुरुषोंके संसर्गके वर्णनके समान क्या महापुरुषोंके संसर्गसुखका वर्णन किया जा सकता है ?

सामान्य पक्षियोंकी रति देखी जा सकती है, राजहंसकी रति देखने में आ सकती है ? इसी प्रकार दुर्जनोंके संभोग के समान गुणशीलयुक्त सज्जनोंके सम्भोग को वर्णन करना उचित है ? कभी नहीं।

लोकके अन्यग्रामीण व नगरवासी पुरुषोंकी कामक्रीड़ाको जिस ढंगसे वर्णन किया जा सकता है उस प्रकार भरत चक्रेश्वरके कामक्रीड़ा कौशल्यका वर्णन किया जा सकता है ?

लोककी अन्य स्त्रियोंके रतिसुखको जिस प्रकार कहा जा सकता है उस प्रकार महाशीलवती पतिव्रता कुसुमाजीका वर्णन करना उचित है ? नहीं।

सम्राट् भरतने उस अकेली कुसुमाजीको तृप्त किया इसमें आश्चर्य क्या है ? एक साथ ९६ हजार रानियोंके तृप्त करनेकी शक्ति उसमें मौजूद है। क्या वह कोई सामान्य राजा है ?

कामरूपी घोड़ेका लगाम भरतेशके हाथमें है। वह चाहे जैसे उसे ढीला कर सकता है। कस करके रख सकता है। उसकी चालको तेज व धीमी करनेमें अत्यन्त चतुर है।

सम्राट्का ख्याल है कि वे जिस सुखको भोग रहे हैं वह पापरहित सुख है। क्योंकि उसे भोगते हुए भी वे अपनेको भूल नहीं रहे हैं व उस सुखको बाह्य व हेय सुख समझ रहे हैं, इसलिए भोग भोगते हुए भी कर्मोंकी निर्जरा हो रही है। भरतेश अपने मनमें समझ रहे हैं एक मात्र परमात्मका सुख शाश्वत व उपादेय है। उसका अस्तित्व मेरी आत्माके साथ वज्रलेपके समान है।

जिस प्रकार पित्तोद्रेक होनेपर शरीरशोधन कर पित्तशांति की जाती है एवं उस अवस्थामें वह मनुष्य स्वस्थ रहता है उसी प्रकार भरतेश भी कामरूपी पित्तके उग्र होनेपर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर उसे शांत करते थे एवं बादमें स्वस्थ अर्थात् अपनी आत्मामें लीन होते थे।

उत्तम स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे भरतेशके कर्मोंका संवर तो होता ही था। साथमें वे पूर्ववेदनीयकर्मोंको भी उदयमें लाकर खिराते थे। सचमुचमें भरतेश एक वीतरागी भोगी हैं।

अन्य भोगियोंके भोगमें उदासीनता, उपेक्षा व मनमें अप्रसन्नतादि बातें भी रहा करती हैं परन्तु भरतेश व कुसुमाजीका संयोग पुष्प व भ्रमरके संयोगके समान है। आनंद समुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं। लीला-नदीमें तैरते हैं। या उन दोनोंकी क्रीड़ा झूलेपर चढ़े हुए मोर मोरनीके समान है।

पाँचों इंद्रियोंकी तृप्ति हुई। भरतेश व कुसुमाजीको किंचित् तंद्रा आई। दोनोंने आँख मींचकर मृदुतल्पमें थोड़ीसी निद्रा ली। दोनों अत्यंत प्रसन्नचित्तसे सो रहे थे। निद्रावस्थामें स्वप्न पड़ने लगा। स्वप्नमें भर-तेशको चिद्रूप परमात्मा दिख रहा है। कुसुमाजीको भरतेशका रूप दिख रहा है।

कुछ देरके बाद वह मूर्छा दूर हो गई। "निरंजनसिद्ध" शब्दको उच्चारण करते हुए भरतेश वहाँसे उठे। उसी समय कुसुमाजी भी उठीं।

उसी समय इधर-उधरसे बहुतसे दासदासी आये। उन लोगोंने गुलाबजल, कपूर, तांबूल, आदि आवश्यक पदार्थोंको लाकर सम्राट्की सेवामें उपस्थित किये। उनको सम्राट्ने ग्रहण किया।

तदनंतर मनोरंजनके लिये वीणावादन कराया गया। वीणा कलामें कुसुमाजी अत्यंत प्रवीण थीं। उन्होंने अनेक प्रकारके कौशल्यको बत-लाते हुए वीणावादन किया जिससे चक्रवर्तीका मन अत्यंत प्रसन्न हो

गया। पुनः उस प्रसन्नताके फलके रूपमें भरतेशने उसके साथ अनेक सरस व्यवहार किये।

तदनंतर कुसुमाजीने पतिदेवसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! संध्याके भोजनका समय हो गया है। अब चलिये। भरतेश उठे व वहाँसे जाकर शुद्धिविधान किया एवं पूर्ववत् आनंदके साथ भोजन किया। तदनंतर तांबूल आदिके द्वारा उनका सत्कार किया गया।

कुसुमाजी सम्राट्से प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्। आप मध्याह्न-को जब ऊपर पधारे तब दो स्त्रियाँ मेरे पास आई थीं।

सम्राट् कहने लगे कि क्या हुआ?

स्वामिन्! उन्होंने प्रार्थना की है कि आज रात्रिको वे नृत्यकला प्रदर्शित करना चाहती हैं। उसे देखनेके लिये आपसे प्रार्थना कर गई हैं। इसलिये कृपया इन्हें स्वीकृति दीजिये ताकि उनका उत्साह भंग न हो।

भरतेशने उसे सहर्ष स्वीकार किया। साथमें कुसुमाजीके व्यवहारसे अत्यंत संतुष्ट होकर उसे अनेक रत्ननिर्मित आभूषणोंसे सन्मानित किया।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! आप यहाँ पधारे यही मुझे स्वर्गसंपत्तिके आगमनके समान हो गया है। मैं आपकी दासी हूँ। इस प्रकारके बाह्योपचारकी क्या आवश्यकता है?

तब भरतेश कहने लगे कि देवी! वहींपर सभामें मैं तुम्हें देना चाहता था। परंतु वहाँपर सबके सामने तुम लेनेको तैयार नहीं होती इसलिये यहाँपर एकांतमें दे रहा हूँ। अब अस्वीकार मत करो। मेरी इच्छाकी पूर्ति करनी ही पड़ेगी।

कुसुमाजी—स्वामिन्! मेरे पास आभूषणोंकी अभी कमी नहीं है। बहुत अधिक है। अतः क्षमा कीजिये।

भरतेश्वरने उसी समय कुसुमाजीके हाथपर उन्हें धर दिए, वे कहने लगे कि तुम्हें मेरी शपथ है। अब कुछ भी मत बोलो। यह लेना ही पड़ेगा। पश्चात् उन्होंने आभूषणोंकी एक बड़ी भारी गठरी कुसुमाजी के हाथमें रखा। कुसुमाजीने भी उसे मुसकराते हुए स्वीकार किया।

उसके बाद कुसुमाजीकी बहिन और भी जो परिवार की स्त्रियाँ, दासियाँ वगैरह थीं, उन सबको उत्तमोत्तम आभूषणोंसे सन्मानित किया। इतनेमें सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया।

तदनंतर भरतेश शुद्ध होकर ऊपरके महलमें चले गये। वहांपर जिनेन्द्र व सिद्धपरमेष्ठियोंकी उचित रूपसे पूजाकर अचलित पद्मासनमें विराजमान हो गये। आंख मींचकर परमात्माके योगमें मग्न हो गये।

उस समय थोड़ी देर पहिले अपनी रानीके साथ जो सरस व्यवहार किया था उसे एकदम भूल गये। इतना ही नहीं उस प्रिय रानीका भी उन्हें अब कोई स्मरण नहीं।

उस समय भरतेश केवल अपनी आत्माको जान रहे हैं। इसके सिवाय और किसीका वहाँ पता नहीं है।

भोगोंको खूब भोगकर जब योगमें रत होते थे तब उनमें भोगोंकी वासना बिलकुल भी नहीं रहती थी। यही उनकी विशेषता है। एक कपड़ा छोड़कर दूसरे कपड़ेको पहननेवालेके समान उस समय उनकी अवस्था थी।

उन्होंने दोनों नेत्रोंको बंद कर लिया व एकमात्र अन्तर्दृष्टि खोल ली। उस समय पौद्गलिक शरीर भी उनका नहीं था। वे अष्टगुणात्मक शरीरसे उस इष्ट परमात्माका अच्छी तरह दर्शन करने लगे।

शरीर जिनमंदिर था, मन सिंहासन था, उसके ऊपर विराजमान निर्मल आत्मा जिनेन्द्र भगवान् थे।

इस प्रकार उस समय सर्व प्रकारकी बाह्य चिंताओंको छोड़कर वे अपने शरीरमें ही जिनेन्द्र भगवान्‌का अनुभव कर रहे थे।

इसी समय कर्म बराबर खिरते जाते हैं जैसे-जैसे कर्म खिरता जा रहा है वैसे ही आत्मामें उल्लास बढ़ता जाता है। उल्लासके साथ-साथ प्रकाशकी भी वृद्धि हो रही है। कभी प्रकाश व कभी अंधकार उस समय तरह-तरहसे उन्हें आत्मसुखका दर्शन हो रहा है।

अपनी कल्पनामें उन्होंने एक सिद्धबिंबकी रचना की व उसकी ही पूजा करने लगे। तदनंतर उसको भी गौण कर वे 'सिद्धोऽहं' इस प्रकारके अनुभवमें मग्न हो गए। सचमुचमें उस समय उनका सुख जिन व सिद्धोंके समान था।

इस प्रकार सब बाह्यविकल्पोंको हटाकर उन्होंने आत्मयोगमें चार घटिका प्रमाण समयको व्यतीत किया। चार घड़ीके बाद आँखें खोल लीं। सामने कुसुमाजी खड़ी हैं। कहने लगीं स्वामिन्! समय हो गया है। अब नाट्यशालामें पधारिये उसी समय सम्राट् 'जिनशरण' शब्दका उच्चारण करते हुए वहाँसे उठे और योग्य शृङ्गार कर नाट्य-

शालाकी ओर गये, वहाँ पूर्वसे ही सब तैयारी थी। नाट्यशाला तो स्वर्ग विमानके समान थी।

रात्रिके बारह बजेतक उन्होंने नाट्यकला देखी, नेत्रमोहिनी, चित्तमोहिनी आदि स्त्रीपात्रोंने अपना अभिनय बहुत उत्तमतासे करके बतलाया।

बारह बजेके बाद आगत परिवारको उपचारके साथ भेजकर सम्राट् स्वयं शय्यागृहकी ओर चले गये। शय्यागृहमें जानेके बाद अपने ९६ हजार रूप बनाकर अलग रनिवासमें भेज दिया व बादमें सुख-निद्रा में अनेक प्रकारके सुख भोगते-भोगते विश्रांति ली।

सुरतसुखके बादकी निद्रा भी सुखमय हो जाती है। उस समय उस निद्रामें भी भरतेशको स्वप्नमें परमात्मा दिख रहा है। उन सब रानियोंको स्वप्नमें भरतेश दिख रहे हैं। न मालूम वे कितने पुण्यपुरुष होंगे ?

इधर-उधर ही स्त्रियाँ सोयी हुई हैं। परंतु भरतेश उनसे अलग ही हैं। क्योंकि उन्हें स्वप्नमें वे स्त्रियाँ नहीं दिख रही हैं, परंतु अपनी प्रिय-वस्तुका ही उन्हें दर्शन हो रहा है। आत्माका दर्शन होनेसे स्वप्नमें ही आनंदसे कभी-कभी चौंक जाते हैं, कभी हँसते हैं! कभी रोमांच होता है।

भरतेशकी निद्रा भी दीर्घ नहीं है। कुछ ही देरके बाद जागृत होकर उसी शय्यापर वे बैठ गये।

सभी रानियाँ सो रही हैं, परन्तु आप अकेले बैठकर ध्यान करने लगे। संध्याको उन्होंने ध्यान किया था। उसके बाद उन्होंने नाटकनृत्य देखनेमें अपना समय लगाया था। बादमें आकर अपनी देवियोंके साथ सुख भोगा। बादमें निद्रा ली। इन सबके सम्बन्धसे आये हुए कर्मोंके खातेको बराबर करनेके लिये अब उनका उद्योग चालू है।

वे जिस समय उठे उस समय पलंग जरा भी हिल नहीं सका। एक शब्द भी बोले नहीं। उनको पूरा-पूरा ध्यान था कि मेरे उठनेसे इन देवियोंकी निद्रा भंग न हो जाँय।

उसी समय उठकर सर्वप्रथम उन्होंने जल लेकर कुल्ला किया। फिर पल्यंकासनमें बैठकर आत्मानुभव करने लगे।

वह ब्राह्ममुहूर्त था। किसीका भी हल्ला नहीं था। इसलिए अत्यन्त तन्मयताके साथ वे आत्मयोगमें लगे रहे। मस्तकसे लेकर पादपर्यन्त उस समय उन्हें अपना ही अनुभव हो रहा था।

उस मुहूर्तका नाम ब्राह्मणी था ही, क्योंकि ब्रह्म नाम आत्माका है। वह उस समय उस ब्रह्मके दर्शनके लिये अनुकूल था। इसलिये सबसे पहिले उन्होंने शरीरके पवनोंको ब्रह्मरंध्रको दौड़ाया और शरीरके अन्दर ब्रह्मका दर्शन करने लगे। उस समय सम्राट् हंसतूलतल्प पर विराजमान थे। हंसके समान ही इनकी महती वृत्ति थी। जिस प्रकार पानीको छोड़कर हंस दूध ग्रहण करता है, उसी प्रकार सम्राट् भी शरीरको छोड़कर आत्माका ही ग्रहण करने लगे।

आत्मा वचनके अगोचर है, आँखोंसे देखनेमें नहीं आ सकता है क्योंकि वह जड़स्कंध नहीं है। परन्तु भरतजी बड़े चतुर थे। उन्होंने उसे देख लिया। इतना ही नहीं, उस आत्माको साक्षात् ग्रहण कर लिया। क्या वह कोई दीनतपस्वी हैं? नहीं, जिसने अपने भावमें इतनी तैयारी की है कि वह ऐसी शून्यसदृश आत्माका भी साक्षात्कार कर ले, वह राजयोगी भरत सचमुचमें दीनहीन नहीं हैं। अन्य राजा तो धन-युक्त होते हुए भी गुणदरिद्र हैं।

लोकमें शरीरको धोकर तथा उसेही सुखकर बाह्यजनोंका अनुरंजन करनेवाले तपस्वी बहुत हो सकते हैं। परन्तु यह भरतेश वैसा है नहीं। यह तो मनको धोकर निर्मल करता है। और उसी मनको सुखाता है। भरतेश्वरको बाह्य बातोंकी अपेक्षा अन्तरंगके गुण बहुत प्रिय है।

चारों ओर स्त्रियोंका समूह रहा तो क्या हुआ? क्या आत्मानुभवके हृदयमें विकार उत्पन्न हो सकता है? पासमें कुसुमाजी सोई थीं, फिर भी सम्राट् अपने आत्मामें मग्न थे।

वे प्रकाशमय, चिन्मय समुद्रमें बराबर डुबकी लगाते जा रहे हैं समय-समयपर आनन्दकी वृद्धि होती जा रही है। आत्माका आनन्द तो बढ़ रहा है, परन्तु कर्मोंका तीव्र अपमान हो रहा है। इसलिये वे कर्म अपने मानभंगसे दुःखी होकर निकलते जा रहे हैं। अभीतक व्यावहारिक विकल्पमें व भोगोंके बीचमें मैं कर्मोंका कर्ता हूँ, मैं कर्मोंका भोक्ता हूँ, इस प्रकारके विचार प्रकट हो रहे थे। तब वे कर्म अपने सत्कारसे प्रसन्न होते थे, परन्तु सम्राट्के विकल्पमें वह बात नहीं है। उनको विश्वास हो गया कि मैं कर्मोंका कर्ता नहीं हूँ और न भोक्ता हूँ, इसलिये कर्म भी बहुत लज्जित हुए हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण बाह्यविचारोंको छोड़कर भरतजी परमहंसको देख रहे हैं। क्षणक्षणमें कर्मराज निकलता जा रहा है। ज्ञान व सुखका

अंश बढ़ता जाता है। इस प्रकार आत्माराम सम्राट् अत्यधिक सुखमें मग्न हो रहे थे।

इधर चक्रवर्ती ध्यानमें मग्न हैं, उधर सूर्योदयका समय हो गया है। सम्राट् व सम्राज्ञियोंको जगानेके लिये बाहर कुछ स्त्रियाँ मधुर गान कर रही थीं।

पुष्करावती, बेळावळि, भूपाळि, गुर्जर आदि अनेक रागोंके आश्रय ले उन स्त्रियोंने कोकिलसे भी अधिक मधुरकण्ठसे गाकर उन सब सम्राज्ञियोंको जगाया।

उदयरागको लेकर वे अरुणोदयका वर्णन करने लगी, उनके गायन का विषय था स्वामिन् ! अरुणोदय हुआ ! किरणोदय भी हुआ। अब आप कृपाकर स्त्रियोंके बाहुपाशसे बाहर तो आइये ! स्वामिन्। लोग सूर्यको लोकबन्धु कहते हैं। सचमुचमें जगत्के उद्धार करनेवाले लोक-बन्धु तो आप हैं। सूर्य मस्तकको ऊँचे उठाये इससे पहिले ही आप बाहर आकर जगत्का उद्धार कीजिये।

स्वामिन् ! आपके राज्यमें कोई चिन्ताकी बात नहीं है। अतएव आपको भी किंचिन्मात्र भी चिन्ता नहीं है। फिर भी आप बड़े राज्यका पालन कर रहे हैं, एवं निश्चित वैभवसम्पन्न हैं। सर्वजनकी चिंताको दूर करनेके लिये आप राजाके वेषमें चिंतामणि हैं। शीघ्रबाहर आइये।

आप शत्रुरहित राज्यका पालन करनेवाले हैं। हजारोंकी संख्यामें रहनेपर भी आपकी स्त्रियोंमें तनिक भी ईर्ष्या नही है। रातदिन राज्य-पालन करनेसे जो सन्तप्त हैं उनको भी आप हर्षित करते हैं। स्वामिन् ! जरा बाहर तो आइये।

भोगसे पागल होकर जो धर्मयोगको भूल जाते हैं वे जाकर अधो-गतिमें पड़ते हैं। उनकी वृत्तिपर आप हँसते हैं। भोगोंमें रहकर भी योगियोंके समान रहनेवाले हे भोगियोंके राजा ! उठिए तो सही।

वृत्तकुचवाली स्त्रियोंके अन्तरंगको आप अच्छी तरह जानते हैं, इसमें आश्चर्य नहीं है। परन्तु चैतन्यस्वरूपके अनुभव व रहस्य भी आपको अवगत हैं। इस राज्यका आप रातदिन पालन करते हैं। राजोत्तम ! हमें दर्शन तो दीजिये।

स्वामिन् ! आप शुद्धोपयोग सम्पन्न हैं, निरंजनसिद्धकी आराधनामें चतुर हैं। शुद्धनिश्चय मार्गमें संलग्न है। इतना ही नहीं, आप रत्ना-करसिद्धके प्रिय नरेन्द्र हैं। जागिये।

हम जानती हैं कि आपका शरीर लेटा है। परन्तु आत्मा नहीं सोया है। मन तो आपका आत्मामें ही लगा हुआ है तो निद्रादेवी आपपर अधिक प्रभाव नहीं दिखा सकती। हम तो उपचारवश उठा रही हैं।

जो बाहरके सूर्यको देखते हैं परन्तु अपने शरीरमें स्थित आत्मसूर्य का दर्शन ही नहीं करते हैं उन अन्धमनुष्योंको आत्मदृष्टि देनेवाले हे प्रत्यक्ष देव ! भव्योंको बाहर आकर दर्शन दीजिये।

राजन् ! सूर्योदय हो गया, आज भाद्रपद वदि चतुर्दशीका दिन है। आप बाहर आकर जिनपूजाके लिये मंदिरकी ओर पदार्पण तो कीजिये।

इस प्रकार स्त्रियोंके प्रभातकालीन गीतको सुनकर भरतेश्वरने भी हजारों पलंगोंपर पड़े हुए अपने प्रतिरूपोंको अदृश्य कर लिया। पश्चात् भावदृष्टिसे आत्माका एक बार दर्शन कर पुनः विसर्जन किया। "श्रीवीतराग" यह शब्द उच्चारण करते हुए वहांसे उठे।

लोग तो प्रातःकाल उठते ही अपने मुखको दर्पणमें देखनेकी चिन्ता करते हैं, परन्तु भरतेश्वर उसे अपने आत्मदर्पणमें देखते हैं। देखिये। क्या विचित्रता है !

भरतजी अपने पलंगपरसे उठे व अपनी स्त्रीसे देवि ! तुम भी शुचिर्भूत होकर जिनमन्दिरको आओ, कहते हुए बाहर आये और जिनाभिषेकके लिये मन्दिर जानेकी तैयारीमें लग गये।

इति सन्मानसंधिः।

— ० —

अथ वीणासंधि

कुसुमाजीके उस वीणावादनका वर्णन कैसे करूं ? वीणादेवीकी वह शायद सखी ही होगी इस कौशल्यके साथ वह वीणा बजा रही थी।

अपनी गोदपर वीणाको रखकर, बांयें हाथसे उसे धरकर, और दांयें हाथसे जिस चातुर्यसे उस कलाका प्रदर्शन कर रही थी वह दृश्य अपूर्व था, नानाप्रकारके कौशल्यसे, समय व शास्त्रको जानकर विविध रागोंका वह प्रदर्शन कर रही थी, श्रीरागके आलापनेके बाद मालव आदि अनेक रागोंके आधारसे वह गा रही है। भरतेश उस नादलहरीमें मग्न हुए हैं। इसके बाद परमात्मकलाका वर्णन उस गायनमें होने लगा

है, सरसीमें सागरको किंवा गागरमें सागरको जिस प्रकार भरते हैं, एवं आकाश मिट्टीमें जिस प्रकार डूबता है उस प्रकार यह आत्मा इस शरीरमें अटककर पड़ा है।

इसके अंतरंगका अभ्यास अथवा अवलोकन करना कठिन है। बाहरकी स्त्रियोंके चित्तको समझना बहुत कठिन भी नहीं, आश्चर्य भी नहीं।

घोड़ेके समान चारों ही तरफ दौड़नेवाले चित्तको स्थिर कर आत्म-दर्शन करना कठिन कार्य है। मदोन्मत्त स्त्रियोंको प्रसन्न करना कोई कठिन कार्य नहीं। इस प्रकार उस गायनमें आत्मकलाका वर्णन हो रहा है।

योगविद्यामें आत्मतत्व ही सर्वश्रेष्ठ व अन्तिम साध्य है। भोगमें स्त्रीभोग अंतिम है, इस प्रकार योग व भोगशास्त्रोंकी तुलना कर वह कुसुमाजी गा रही हैं।

रतिकार्यमें उपेक्षा कब होती है, रतिकार्यकी इच्छा कब होती है, हृतसुख क्या है, हितसुख क्या है इन सबका विश्लेषण कर वह उस गीतमें वर्णन कर रही हैं। जिस प्रकार योगशास्त्रके विविध अंगोंका कुशलताके साथ वह वर्णन करती है उसी प्रकार भोगशास्त्रका भी सांगोपांग विवेचन चातुर्यसे कर रही हैं। कुसुमी! बहुत सुन्दर! शाहबास! पुनः बोलो! उसके गानचातुर्यको सुनकर उससे नाना प्रकारसे विनोद-व्यवहार भी कर रहे हैं। दोनोंके परस्परके विनोद व्यवहार चालू हैं। तांबूलादिका आदान-प्रदान चालू है। गुलाबजल, अत्तर, फुलेल वगैरह सुगन्धद्रव्य एक दूसरेको दे रहे हैं। दोनोंको उस समय रतिसुखकी इच्छा हो रही है। यह भी दोनोंने जान लिया, तद-नंतरके रतिसुखका वर्णन करना अशक्य है। उस दंपतिने विविध विनोदपूर्ण पद्धतिसे कामसागरमें यथेच्छ विहार किया इतना ही कहना पर्याप्त है।

इस प्रकार सुखविहारमें रहते हुए ही शंखनादका शब्द सुनाई दिया। कुसुमाजीने समय जानकर कहा कि स्वामिन्! संध्याकालके भोजनका समय हो गया है। अब अपन भोजनशालाकी ओर जावें।

भरतेश्वर—कुसुमि! अब मैं उधर जाना नहीं चाहता हूँ। अन्न-पानकी सर्व सामग्री इधर ही मँगा लेना, यहींपर अपन भोजन करेंगे। तदनुसार भोजन सखियोंके द्वारा वहीं उपस्थित हो गया। दोनोंने वहींपर भोजन किया, तृप्त हुए एवं तांबूल भक्षण भी किया।

शय्यागृहको लगकर एक दिवानखाना है। उस दिवानखानेमें बैठकर ही दोनोंने भोजन कर लिया। भरतेश्वर भोजनकर अब आनंदसे बैठे हैं।

योग्य समयको जानकर कुसुमाजी उपायसे निवेदन करने लगीं कि नाथ! दुपहरको आप विश्रांति ले रहे थे, उस समय मेरे पास दो स्त्रियाँ आई थीं।

फिर क्या हुआ? सम्राट्ने बीचमें पूछा।

स्वामिन्! आज रातको वे नृत्यकला प्रदर्शित करनेवाली हैं, उसे आप अवश्य देखें। कृपया इस बातकी स्वीकृति देवें जिससे उनका उत्साह भंग न हो। भरतेश्वरने उसे सहर्ष स्वीकृति दे दी। उसके साथ ही कुसुमाजीके अनेक प्रेम-व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर उसे अनेक रत्न-निर्मित आभरणोंसे उसका सन्मान किया।

कुसुमाजी—स्वामिन्! आप मेरे महलमें आये यह मेरे अहोभाग्य की बात है। मुझे तो स्वर्गसंपत्ति मिलने का आनन्द हुआ है। मैं आपकी दासी हूँ। इस बाह्योपचारकी इस समय क्या आवश्यकता है?

भरतेश—देवी! तुम्हें वहाँ दरबारमें ही आभूषणोंको देनेकी इच्छा थी। परन्तु लोगोंके सामने तुम लेनेसे संकोच करती। इसलिए यहाँ एकांतमें दे रहा हूँ। इसे अस्वीकार मत करो। मेरे कामनाकी पूर्ति करनी पड़ेगी।

कुसुमाजी--मेरे पास आभूषण भरे पड़े हैं। मुझे जरूरत नहीं। क्षमा कीजिये नाथ! और कोई बात नहीं है।

भरतेश्वरने उसी समय उसके हाथपर रखते हुए कहा कि तुम्हें मेरी शपथ है। अब कुछ भी नहीं बोलना। इसे लेना ही पड़ेगा। इस प्रकार उसके हाथपर आभरणोंका एक बड़ा बोझा ही रख दिया। कुसुमाजीने हँसते-हँसते ही उसे स्वीकार किया।

उसी प्रकार उस समय भरतेशने कुसुमाजीकी बहिन, सखी, दासी वगैरह जो भी थीं उन सबका वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया। इतनेमें सूर्यदेवने अस्ताचलकी ओर प्रयाण किया।

भरतेश्वर हाथ-पैर धोकर शुचिर्भूत हुए एवं ऊपरके महलकी ओर गये। वहाँपर जिनेंद्र भगवंत व सिद्धोंकी यथाविधि पूजा कर अचलित पद्मासन लगाकर बैठे। आँख मींचकर परमात्मयोगमें लीन हुए।

कुछ समय पहिले अपनी रानियोंके साथ सरस व्यवहार किया था इस बातको वे अब बिलकुल भूल गये हैं। इतना ही नहीं, अब उन्हें

उन प्रिय रानियोंका स्मरण भी नहीं है। इस समय उन्हें केवल अपनी आत्माका ही स्मरण है। उसके अलावा उनकी दृष्टिमें किसी भी अन्य वस्तुके अस्तित्वका ध्यान नहीं है।

भोगवासनाको खूब भोगकर योगसाधनामें जब मग्न होते हैं, उनके हृदयमें भोगवासनाका अस्तित्व बिल्कुल भी नहीं रहता है। यही उनकी विशेषता है। एक कपड़ा छोड़कर अन्य कपड़ेको धारण करनेवालेके समान निर्विकार परिणतिकी उनकी उस समय स्थिति है।

उन्होंने दोनों ही नेत्रोंको बंद किया व अंतर्दृष्टिको खोला। उस समय पौद्गलिक शरीर भी उनका नहीं था। उस समय उन्हें अष्ट-गुणात्मक शरीरको धारण करनेवाले इष्टपरमात्मका दर्शन वहांपर हो रहा था।

शरीर जिनमंदिर था, मन सिंहासन था, उसपर बैठा हुआ निर्मल परमात्मा भगवान् जिनेंद्र देव हैं। इस प्रकार उस समय सर्व बाह्य-चिंताओंको दूर करके अपने शरीरमें अपने ही अवधानसे अपने लिए अब अपने जिनेंद्रका वे साक्षात् दर्शन कर रहे हैं। आश्चर्यकी बात है कि अब उनके कर्मोंकी निर्जरा बराबर हो रही है। जैसे-जैसे कर्मोंकी निर्जरा हो रही है वैसे-वैसे आत्मामें उत्साह व निर्मलता बढ़ रही है। उल्लासके साथ उन प्रदेशोंमें प्रकाश भी बढ़ रहा है। कभी प्रकाश, कभी अंधकार इस प्रकार विभिन्न रूपसे सुखका दर्शन हो रहा है। अपनी कल्पनासे उन्होंने चांदनीमें एक सिद्धबिंबकी रचना की व उसकी पूजा वे करने लगे। तदनंतर उस कल्पनाको गौण कर 'सिद्धोहं' इस अनुभवमें वे मग्न हुए। वास्तवमें उनका सुख उस समय जिन व सिद्धोंके समान था।

सूर्यदेव अस्ताचलकी ओर गये। अंधुक अंधःकारका अनुभव होने लगा। आकाशमें नक्षत्रोंका दर्शन होने लगा है। भरतेश्वर सायंकालीन सामायिकमें मग्न हैं।

भरतेश्वर किसी भी आनंद-विलासके समय भी आत्मजागृतिसे च्युत नहीं होते हैं। आत्मविस्मृति न होने देना उनकी विशेषता है। कारण कि कुछ समयतक भोग-विलासमें रत होनेपर भी पुनश्च वे आत्मलीन होते हैं। उस आत्मलीनतामें उनकी सदा यह भावना रहती है कि:—

हे चिदंबर पुरुष! गुरुदेव! तुम रत्नाकरसिद्धके मनके शृंगार हो। हे पापहर! मेरे अंतरंगमें सदा निवास करते रहो। हे परमात्मन्!

जगत्के सर्व खेलोंको देखते हुए अपने मनमें इष्ट-अनिष्ट कल्पना न हो एवं आपके दर्शन मैं उदासीन भावसे कर सकूं ऐसा विवेक मेरे हृदयमें सदा जागृत रहे। ऐसी सुबुद्धि मुझे दीजिये।

*इति वीणा संधि

अथ पूर्वनाटक संधि

सम्पूर्ण विश्वको भूलकर अपने आत्मयोगमें चार घटिकातक भरतेश्वर तल्लीन हो गये थे, तदनन्तर उन्होंने नेत्र खोला, सामने कुसुमाजी खड़ी हैं।

स्वामिन् ! नाट्यशालामें जानेका समय हो गया है, भरतेश्वर 'जिनसिद्धशरण' पदका उच्चारण करते हुए उठे, और उचित शृंगार कर नाट्यशालाकी ओर प्रस्थान किये। अपनी रानियाँ व उनकी सखियोंके साथ भरतेश नीचे उतर रहे हैं उस समय साक्षात् चन्द्रमा तारागणोंके साथ आ रहा हो इस प्रकार मालूम हो रहा है। नाना-प्रकारके उत्तमोत्तम वस्त्र व आभूषणोंको धारण कर वे जब आ रहे थे तब परिचारिकायें विनयसे कह रही हैं कि नरलोकचन्द्र ! राजमन्य ! चतुरदेव ! भोगदेवेन्द्र ! भरतेश्वर आ रहे हैं। सावधान ! अपने शरीर सौगन्ध व शरीर तेजसे चारों ही दिशाओंको दीप्त करते हुए उस नाटकशालामें भरतेशने प्रवेश किया, और एक सुसज्जित सिंहासनको उन्होंने अलंकृत किया।

उस नाटकके सौंदर्यका वर्णन मैं किसलिए करूँ ? करोड़ों रत्नोंसे निर्मित देवविमान भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता है, इतना ही कहकर छोड़ देता हूँ। उस नाट्यभवनमें सर्वत्र कलापूर्ण शृङ्गार दिख रहा था, अनेक प्रकारके चित्र, मोती, माणिक आदि रत्नोंकी झालरी

---

*अत्यधिक वर्णनात्मक भाग होनेसे पाठकोंको अरुचि न हो इस दृष्टिसे पहिलेके संस्करणोंमें यह वीणा संधि, आगामी पूर्वनाटक संधि, उत्तरनाटक संधि, ताण्डवविजय संधि और शय्यागृह संधि ये प्रकरण छोड़ दिये गये थे। परंतु अनेक वाचकोंसे शिकायत आनेसे उन प्रक-रणोंका सारांश मात्र इस संस्करणमें दिया गया है। सो हेयोपादेय-विवेकसे रसग्रहण करें। —संपादक

पताका, स्तम्भचित्र, स्त्रीपुरुषोंका रूप, धर्मचक्र, जिन महोत्सव आदि नाना प्रकारकी कलामय आकृतियोंका वहाँ दर्शन हो रहा था।

इस प्रकारके आश्चर्यकारक नाटक शालामें आकर भरतेश्वर सिंहासनारूढ़ हुए थे। उस समय वहाँपर कलाकार आदि सभी आ रहे हैं।

रसिक, कलाकार, राजकुमार, विद्वान्, राजगण, कवि, गायकवीर वगैरह क्रम-क्रमसे आ रहे हैं। वेश्याजन, नाट्यशास्त्रकोविद, भावरंजक, गुणीजन, मन्त्रीगण आदि आकर भरतेश्वरको नमस्कार कर रहे हैं एवं अपने योग्य स्थानमें बैठ रहे हैं।

कुटिल नायक, शठनायक, दक्षिणनायक, धटनायक, अनुकूलनायक विट, विदूषक, पीठमर्दक आदि सर्व आकर उपस्थित हुए। वृद्धविवेकी, स्वामीकार्यपरायण, बुद्धिसागर मन्त्रीने आकर भरतेश्वरको नमस्कार किया एवं सामनेके नियोजित स्थानपर बैठ गया। परदेके अन्दर भरतेश्वरके पीछे दोनों ओर भरतेश्वरकी रानियाँ बैठी हुई हैं, इधर-उधर दण्डधारी स्त्रियाँ संचार करती हुई लोगोंके बैठनेकी व्यवस्था कर रही हैं। सावकाश! सावधान! इधर बैठिये, उधर न जाइये इत्यादि कहती हुई वह नजर आ रही हैं।

तालधारी ताल लेकर नृत्यकलाके अनुकूल ताल-वादन कर रहे हैं, उसकी ध्वनि अश्रुतपूर्व थी, तालधारी लोग करीब १०० थे, उन्हें ताल शास्त्रका तंत्र मालूम था, मध्य, विलंब और द्रुत वगैरहका क्रम उन्हें मालूम था, उसे मृदंगका साथ मिल गया है। उनके मधुर शब्दोंसे सबको रोमांच हो रहा है। उसके साथ ही अनेक चर्मवाद्योंके शब्द तधिकट, तरकिट, तोकिट, तोंगि, धिक्कट आदिके रूपमें अत्यन्त आकर्षक पद्धतिसे सुननेमें आ रहे हैं।

उस गायनमें विविध शास्त्रानुसार, विविध वाद्योंके आधारसे ब्रह्मरंध्रपर स्वर चढ़ाकर वे गा रही हैं, उस समयमें वास्तवमें ब्रह्मानंद ही आ रहा था, उस गायनका विषय भी अत्यन्त आकर्षक था।

भगवान् आदिनाथ, सिद्धपरमात्मा, साधुसन्त आदिका वर्णन करके परमात्माकी स्तुति करने लगी। उस गायनके साथमें नाना-प्रकारके नृत्य भी चालू हैं।

नाटकका वृद्ध सूत्र सुसज्जित वेषभूषामें भरतेश्वरादिके समक्ष आकर प्रार्थना करने लगा कि देव! आप विविध विद्याओंके परीक्षक हैं, इसकी प्रसिद्धि स्वर्गमें भी है, इसलिए स्वर्गमें भी आपको प्रसन्न

करनेकी कला है या नहीं, हम नहीं कह सकते हैं। तथापि मैंने आपको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया है। यहाँपर नृत्य करनेवाली नेत्रमोहिनी व चित्तमोहिनी यह दोनों मेरी कन्यायें हैं। इसलिए उनकी कलाओंका अवलोकन कीजिये। यह निवेदन कर वह अंतर्धान हुआ।

अनेक परिवार, पार्श्वस्थ, वाद्यसमूह, ताल, मृदंग, वीणा आदिके साथ नेत्रमोहिनी व चित्तमोहिनी वहाँ उपस्थित हुई। सबसे पहिले नेत्रमोहिनी सम्राट्को नेत्रसुखको प्रदान करने लगी तो चित्तमोहिनी चित्तसुखको उत्पन्न करने लगी। नेत्रमोहिनी व चित्तमोहिनीकी नृत्य-कला, गानकला अपूर्व थी। उसमें उन्होंने आत्मतत्वका सुन्दर निरूपण किया। भरतेश्वर भी उस कलाका अवलोकन कर बहुत प्रसन्न हुए।

नृत्यविद्याधर सामने आकर निवेदन करने लगा कि स्वामिन्! नृत्यकला आपको पसंद हुई! गायनकलामें रस आया? दक्षिणांकने उस समय तत्काल उत्तर दिया कि सुन्दर कार्यक्रम हुआ। उन्हें चित्त-मोहिनी व नेत्रमोहिनी यह नाम सार्थक रखा गया है। इसी प्रकार सर्व दर्शकोंने उनकी प्रशंसा की। भरतेश्वरने उन्हें विचित्र वस्त्राभूषणों को देकर सत्कार किया। उन दोनोंकी तृप्ति हुई। उपस्थित सबको आनन्द हुआ।

सर्व सभाजन वहाँसे उठकर जाने लगे। बुद्धिसागर मंत्रीको वहीं ठहरनेका संकेत मिल गया है। बाकी के लोग सम्राट्को नमस्कार कर जाने लगे हैं। दक्षिणांक आदि सर्व मित्रोंको भी उन्होंने रवाना किया। इतनेमें घंटानाद हुआ। सूचना है कि परिवार सतियाँ मुख्य नाटककी तैयारी कर रही हैं। नाट्यगृहका शृङ्गार कर नाटककी सर्व तैयारी हो गई है। भरतेश्वर बुद्धिसागर मंत्रीके साथ नाटककी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भरतेश्वरकी वृत्ति अपूर्व है। जहाँ जाते हैं वहाँ उस वातावरणमें मग्न हो जाते हैं। सर्वत्र उन्हें आनंद ही आनंद मिलता है। बाहरके लोगोंको उनके विषयमें शंका हो सकती है कि आत्मविज्ञानी सम्राट् बाह्यविषयोंमें इतना रस क्यों लेते हैं? परंतु मानव हर समय निश्चित रहे इसकी आवश्यकता है। इसलिए वे जहाँ भी हो उस परमात्माका स्मरण करते रहते हैं। अतः उनके हाथसे कहीं भी प्रमाद होनेकी चिंता नहीं है।

वे सतत उस चिदंबर परमात्माका स्मरण करते हुए कहते हैं कि हे परमात्मन्! जिस समय परिणामोंमें भेद करके तुम्हारी तरफ

देखता हूँ। उसी क्षण तुम बाह्य चिंताओंको भूलनेके लिए मदद करते हो। इसलिए हे अमृतस्वभावी वीतराग ! मेरे हृदयमें सदा निवास करो। कहीं भी मत जाना।

हे निरंजनसिद्ध ! संसार नाटकका दर्शन करते हुए भी बोधावतंस नाटकमें सदा नर्तन करनेवाले तुम सदा सुखी व दुःखविध्वंसी हो। इसलिये मुझे सदा सद्बुद्धि प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वर सर्व वातावरणमें आनंदका अनुभव करते हैं।

इति पूर्वनाटक संधि

—o—

अथ उत्तरनाटक संधि

पूर्वनाटक समाप्त हो गया है। उत्तरनाटक देखनेकी इच्छासे भरतेश्वर प्रतीक्षा कर रहे हैं। उत्तरनाटककी पात्र स्त्रियाँ आ रही हैं। उसमें भाग लेनेवाली १६ स्त्री पात्र हैं। परदेके सामने खड़े होकर मृदंगवादक भरतेश्वरको नमस्कार कर मृदंगवादन करने लगा। उस समय तरिकिट, तदिकिट, रिक्कटि, रिक्कट, दिमि, दिर्दिमि इस प्रकारका आवाज आ रहा है। उसके साथ तालधारी भी खड़े हैं। मृदंगके लयानुसार तालधारी तालवादनके लिए सन्नद्ध हैं।

वाद्यध्वनिको बंद करके रंगशेखर नामका सूत्रधार सामने आया। उसने भरतेश्वरके सामने प्रार्थना की कि सकलकलाधर ! सार्वभौमोत्तम ! सुकविजनांभोजभानु ! मकरांक निर्जितरूप ! षट्खंडनायक स्वामिन् ! एक निवेदन है। मुझे विशेष कुछ भी मालूम नहीं है। आपको देखनेके लिए देवलोकसे १६ देवांगनायें आई हुई हैं, ऐसी १६ स्त्रियाँ दिख रही हैं। अथवा १६ मनुओंकी सम्पत्ति एकत्रित होकर आई हो, ऐसी दिखती हैं। उन १६ नारीपात्रोंका अवलोकन कीजिये, हे १६वें मनु पुरुषोत्तम ! आप देवेन्द्र हैं, आपके मन्त्री बुद्धिसागर सुरगुरु हैं। ये स्त्रियाँ देवांगनायें हैं। इस नाटकमें कितना रंग आता है मुझे देखना है। यह कहकर वह अन्दर चला गया।

तदनन्तर १६ नारीपात्रोंने आकर विविध वाद्य व साधन लेकर गायन करना प्रारम्भ किया, सबसे पहिले शिखरिणी व सिंजिनी नामक पात्र उपस्थित हुए। उन्होंने नानाप्रकारके पदकौशल्यसे भगवान् सिद्ध-

परमेष्ठी व पंचपमेष्ठियोंकी स्तुति की, इसी प्रकार अन्य पात्र भी सामने आये, उन्होंने भी अनेक प्रकारके कौशल्योंका प्रदर्शन किया, उपस्थित सभाजन आनन्दसागरमें डुबकी लगाने लगे, आनन्दके उल्लास में ही भरतेश्वरने नाटक समाप्त करनेका संकेत किया, भगवान् आदि-नाथके अन्तमंगलके साथ नाटककी समाप्ति हुई। तदनन्तर रंगशेखर व पात्रोंका सत्कार भरतेश्वरने किया। नानाप्रकारके वस्त्राभरण उन स्त्रियोंको देकर सन्मान किया गया। तदनन्तर बुद्धिसागर मन्त्रीके तरफ देखकर सम्राट्ने कहा कि मन्त्री! बहुत थक गये होंगे, अब विश्रांति लो। उत्तरमें बुद्धिसागरने कहा कि स्वामिन्! आपके दर-बारमें थकावट दूर हो गई है, यह पुण्य नाटक है। स्वामिन्! यह विवेकशरण्य नाटक है। मण्य नाटक है, जिनकुल चक्रवर्तीका लावण्य नाटक है, यह नाटक बाहरसे भोगांगका दर्शन कराता है, परन्तु अन्त-रंगसे योगांगका दर्शन दिलाता है। गायनके राग-रागांगको व्यक्त करते हैं, तथापि परिणाममें वीतरागत्वका निर्माण कराते हैं। लोगोंके लिए नृत्य तांडव है, परन्तु हंसावलोकन करनेवालोंके लिये तत्व है। स्वर्ग-लोकके सुखका अनुभव हुआ है, उसी प्रकार मोक्षसुखकी कल्पना भी आने लगी है। जिन! जिन! आपने यह सब कहाँ सीखा? आपका अनुभव विचित्र है, आप आज मनुजेन्द्रपदमें ही देवेन्द्रपदका अनुभव कर रहे हैं। उसी प्रकार मुनियोंके समान मोक्षमार्गका भी अनुभव ले रहे हैं। स्वामिन्! आप विवेकी हैं। आपके नाटकके ये स्त्रीपात्र कितने चतुर हैं? इन्होंने कहाँ नैपुण्य प्राप्त किया? समझमें नहीं आता, इनके चातुर्यको देखकर आश्चर्य होता है! देव! आप आत्मा-रूपी आकाशमें विहार करते हैं। ये स्त्रियाँ आकाशमें नृत्य कर रही हैं, इसमें आश्चर्य क्या है?

इतर राजाओंको यह प्रयोग आश्चर्यकारक मालूम होगा, आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तोता अगर सफेद हो गया तो आश्चर्य होगा, परन्तु राजहंस शुभ्र होगा तो जगत्को कोई आश्चर्य नहीं हो सकता है। इसलिए इतर राजाओंको यह आश्चर्य है, आपको नहीं।

राजन्! इस कला-कौशल्यका कितने वर्णन करें? दिक्कन्यका नाट्य, जलकन्यका नृत्य आदि देखने लायक ही थे, अमरकांता नृत्य, नागकांता नृत्य, तारांगना नृत्य, पुष्पलता नृत्य, कल्पलता नृत्य, विद्यु-ल्लता नृत्य, पुष्पक नृत्य आदिको देखते हुए आँखोंसे आनन्दबाष्प झर

रहा था, दश पथलास्य, विंशति पथलास्य आदिकी कुशलता देखनेपर वास्तवमें अद्वितीय आनन्द हो रहा था, इसका रहस्य स्वामिन् ! आप ही जान सकते हैं।

बुद्धिसागर मन्त्रीके वचनको सुनकर भरतेशने कहा कि मन्त्रिवर्य ! इसमें क्या विशेष है ? तुम इसे बढ़ाकर बोल रहे हो। इस जगत्‌में स्वानुभवसुखकी अपेक्षा बढ़ाकर क्या है ? पात्र, गान, नृत्य आदि सुखका मूल्य उस आत्मीय सुखके सामने क्या है ? मन्त्री ! मुक्ति परम सुखमय स्थान है। उसके बीचमें विरक्ति सुख है। उसमें व्यक्त आत्मभावना मुख है, इन सब सुखोंमें विषय संयुक्तिका क्या मूल्य है ? उसे सुख कौन कहेंगे ? सातिशयपुण्यसे प्राप्त सुखको उदासीन भावसे भोगकर मैं छोड़ देता हूँ। इतर समयमें अपनी आत्मभावनामें मस्त रहता हूँ।

इस बातका परिचय तुम्हें नहीं है क्या ? केवल लोकरंजनके लिए मेरी प्रशंसा कर दी। बस ! अब बंद करो, यह भेंट ले लो। यह कहते हुए वृद्ध मंत्रीको अनेक वस्त्राभूषणोंसे सन्मान करनेके लिए हाथ बढ़ाया। परंतु बुद्धिसागरने उसे स्वीकार न करते हुए जानेका प्रयत्न किया। परंतु सम्राट्‌ने शपथ डालकर उन्हें रोका व अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभरण उसे प्रदान किये।

बुद्धिसागर मनमें विचार करने लगा कि इस लोकमें किसीको भी न दिखाने योग्य अंतःपुर नाटकको मुझे बताया। मेरे प्रति भरतेशका बड़ा अंतरंग-अनुग्रह है। इस आनंदसे उसका हृदय नाच रहा था। भरतेश्वरके द्वारा प्रदत्त वस्त्राभरण उन्होंने उन कलाकारोंको प्रदान किया। स्वयं निस्पृह होकर वहाँसे चले गये। सर्व सभाजन उसकी प्रशंसा करने लगे।

इधर बुद्धिसागर मंत्री चले गये। अब उन पात्रोंके सत्कार करनेका विचार भरतेशने किया। इतनेमें रातके १२ बजे थे। तथापि भरतेश्वर आनंद-मुद्रामें ही बैठे थे।

वाचकोंको आश्चर्य होता होगा कि सम्राट् भरतेशको वारंवार आनंदके ही प्रसंग क्यों आते हैं ? और वे सदा सर्वदा-आनंदमें ही क्यों रहते हैं ? इसका एकमात्र कारण कि उन्होंने अनेक जन्मोंसे जो आत्मसाधना की है उसका यह फल है। वे सदा आत्मचिंतन करते रहते हैं कि हे चिदंबर पुरुष ! ऊपर-नीचे अंदर-बाहरका भेद न करते हुए सर्वत्र सदा प्रकाशमान तेजःपुंज ! तुम मेरे हृदयमें सदा प्रज्वलित होकर रहो।

हे सिद्धात्मन् ! तुम्हारे अंतरंगको जाननेके क्रमको जानकर आत्मदृष्टिसे तुम्हें देखा जाय तो प्रकाशपुंज कायसे तुम दर्शन देते हो। इसी प्रकार व्यक्त होकर मुझे सदा सद्बुद्धि प्रदान करो।

इति उत्तरनाटक संधि

—○—

अथ तांडवविनय संधि

बाहरके अन्य लोग जब वहाँसे निकल गये तब भरतेश्वरके पीछेका परदा सरकाया गया। अब सर्व रानियाँ सामने दिखने लगीं और उन्हीं में १६ स्त्री पात्र रानियाँ भी थीं। भरतेश्वरने उनकी ओर देखकर कहा कि परदेके अंदर बैठकर अभीतक उपसर्ग हुआ होगा ? तब रानियोंने कहा कि स्वामिन् ! हमें स्वर्ग मिल गया था। वहाँ उपसर्ग कहाँसे आवे ? हमें स्वप्नमें भी उपसर्ग नहीं है। आपका संसर्ग किसे सुख नहीं देगा ? व्याकरणमें उपसर्ग पद वकाररहित है। अगर उसमें वकार जोड़ दिया जाए तो उपस्वर्ग बन जाता है। हमें तो सचमुचमें उपस्वर्ग हो गया है। आपके बोलनेमें वह वकार रह गया होगा। उन स्त्रीपात्रोंके अनेक प्रकारके नैपुण्यको देखकर हम लोग आनंदित हुई हैं। आप ही देखिये, हम लोग स्वर्गके पासमें बैठे नहीं क्या ?

पात्र—स्त्रियाँ थक गई हैं। उनको बुलाकर प्रसन्न कीजिये। इस प्रकार संकेत पाकर भरतेशने उन्हें बुलाया। सभी पात्र-स्त्रियाँ सामने आईं। उनकी भरतेशने बड़ी प्रशंसा की।

शाबाश ! बहुत उत्तम नाटक कर बताया। भगवान् आदिनाथकी शपथ ! बहुत सुन्दर हुआ। बुद्धिसागर मंत्री थे इसलिए नाटकमें शोभा आई। सबके आनंदमें समृद्धि हुई।

स्वामिन् ! बुद्धिसागर मंत्री वास्तवमें बुद्धिमान् हैं, चतुर हैं, वृद्ध हैं। उनकी उपस्थितिसे जरा संकोच जरूर मालूम होता था। तथापि हमने अपनी कुशलतासे ही सर्व कलाओंका प्रदर्शन किया। बहुत गंभीर बनाया नहीं। अन्य लोगोंके सामने कुलवधुओंको नृत्य करनेमें संकोच होना साहजिक है।

आप अकेले रहते तो हमें निस्संकोच होकर नृत्य करनेमें अनुकूलता होती। आज मंत्री सामने थे, इसलिए थोड़ा विचार आया। स्वतःके

पुरुषोंके सामने भी अपने गोपनीय अंगोंको ढककर ही स्त्रियोंको नृत्य करना चाहिये । परपुरुषोंके सामने किस प्रकार नृत्य करें इसे कहनेकी क्या आवश्यकता है ? उसमें भी राजन् ! आप बड़े बुद्धिमान् हैं । आपके मन्त्री विवेकी हैं । इन बातोंका विचार कर हमने बहुत सावधानतासे व्यवहार किया ।

भरतेश्वर कहने लगे कि देवियों ! तुमने अच्छा कहा व अच्छा किया, तुम्हारी कलासे मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ । इसलिये तुम्हें क्या चाहिये सो कहो, मैं सब कुछ देनेको तैयार हूँ ।

स्वामिन् ! हमें कुछ भी नहीं चाहिये, हमारे पास सबकुछ है । सर्व सौभाग्य है । उसे पूछो, इसे पूछो, यह कहती हुई सब १६ पात्रोंकी ओर देखने लगीं तब मालूम हुआ कि उनमें दो स्त्रियाँ कम हैं, रूपाणी और पद्मिनी वहाँपर नहीं हैं, वे दोनों नाराज होकर खंभेके पीछे खड़ी हैं, नाराज होनेका और कोई कारण नहीं है, परन्तु जिस समय वे दोनों नृत्य कर रही थीं उस समय भरतेश्वरने अपने मुखको कोई कारणसे अन्यत्र फेर लिया था, उससे ये दोनों नाराज हो गईं ।

भरतेश्वरने उन्हें देखकर अन्दाज किया कि ये नाराज हो गई हैं । इन्हें मेरी तरफसे क्या कष्ट हुआ ? अथवा मेरी अन्य स्त्रियोंने इनके प्रति कोई अपराध किया ? उनको मेरी तरफ बुलाओ, मैं समझता हूँ । उन्हें बुलानेके लिए दासियाँ गईं, आपको स्वामीने बुलाया है, यह उनसे कहा गया ।

जाओ, जाओ ! तुम्हारे मालिकको हमारी नृत्यकला पसन्द नहीं आयी, जिनकी कला पसन्द पड़ी हो उन्हें बुलानेके लिए कहो, हमें बुलानेकी क्या आवश्यकता है ? उन दोनों देवियोंने भरतेश्वर पर्यन्त आवाज जावे इस स्वरसे कहा । पुनः कहने लगीं कि हम जिस समय नृत्य कर रही थीं उस समय वे मन्त्रीकी दाढ़ीकी ओर देख रहे थे, और उन्हें जो प्रिय स्त्रियाँ थीं, वे जिस समय नाच रही थीं, उस समय उन्हींकी ओर देख रहे थे, हम गरीब पात्र हैं, यह जानकर उनकी दृष्टि श्रीमन्त पात्रोंकी ओर गई थी, अब हमें बनानेके लिये बुला रहे हैं । हमें जो दुःख हुआ है उसे तुम दासियोंके सामने बोलकर क्या उपयोग है ? जाओ, हम नहीं आयेंगी, जाकर उनसे कहो, भरतेश्वरके कानमें वे शब्द पड़ रहे थे ।

ओहो ! मेरी ओरसे इनको कष्ट है । अब इनको समझाना जरूरी

है। ऐसा विचारकर भरतेश कहने लगे कि रूपाणी ! पद्मिनी इधर आओ मेरे पास आओ, तुम्हारे मनके दुःखको दूर कर दूंगा।

देव ! आप हमें क्यों बुलाते हैं ? आपके मनको प्रसन्न करनेवाले पात्र हम हैं क्या ? किस मुंहसे हम आपको आकर मिलें ? आँखोंको पसन्द पड़ा तो मनको भी पसन्द पड़ सकता है। आँखोंको ही आकर्षक न रुचा तो मनकी बात ही क्या है, हमें अब समझानेके लिये क्यों बुला रहे हैं ? बड़े दुःखके साथ वे दोनों कहने लगीं 'सुनो' तुम्हारे नृत्यको देखते हुये मेरे मनमें कोई उपेक्षा नहीं थी, उस समय तांबूल लेनेके लिए मुख फेर दिया था, इसमें दूसरा कोई भी हेतु नहीं था, सामने बैठे हुये मन्त्रीकी ओर न देखकर तुम्हें ही देखते बैठता तो 'यह राजा स्त्रियोंकी ओर ही टकटकी लगाता है, बड़ा कामी दिखता है।' इस प्रकारकी समझ मन्त्रीकी हो जाती, विचार करो, तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें प्रेम है वह सबके सामने बतानेका होता है क्या ? कोमल अन्तःकरणको पत्थरके समान कठोर मत बनाओ, इधर आओ। भरतेश्वरने समझाकर कहा।

'राजन् ! वचन-चातुर्यसे हमें फंसाना नहीं, हमें आपकी पद्धति मालूम है। बनावटी बातें बन्द कीजिये, योग्य समयमें हमारा तिरस्कार कर अब हमको बनाते हैं, उत्तर नाटकके लिये शोभने योग्य नृत्य हमने किया, आपने उसे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा ना ? हमारी उस नाटकमें कोई अपवृत्ति नहीं थी, कोई अशोभनीय व्यवहार नहीं था, शास्त्रको छोड़कर कुछ किया ही नहीं था, हमने अपने अभिनयसे सर्व उपस्थितों को प्रसन्न किया परन्तु आपको प्रसन्न नहीं कर सकी। उसी समय अलग सरककर खड़ी होनेकी इच्छा मनमें आ गई थी परन्तु सामने बुद्धिसागर महामन्त्री बैठे थे। इसलिए गंभीर व्यवहारकी जरूरत है, समझकर उपेक्षा की। अब आप हमें बनाने लगे हैं, अब यह खेल बन्द कीजिये। बस ! बहुत हो गया !' उन दोनों रानियोंने दुःखसे कहा।

भरतेश्वर --नहीं जी, इतने क्रोधित होनेके लिए मेरा कोई इसमें अपराध नहीं है। बिनाकारण मेरे प्रति दोष देना उचित नहीं है।

राजन् ! सबसे मीठी-मीठी बात कर नरम करनेकी कला आपके पास है, इसे हम जानती हैं। पत्थरको भी पिघलानेकी शक्ति आपमें है यह भी हमें मालूम है। अभिनयके समय हमसे उपेक्षा की। अब हमें कष्ट देना उचित है क्या यह पूछकर हमें ही फिर कष्ट दे रहे हैं, क्या यह उचित है ?' उन दोनोंने स्पष्ट व बेखट उत्तर दिया।

भरतेश्वर - देवी ! दुःख हुआ होगा ! मेरी ओर से उस प्रकार हुआ भी होगा। जाने दो, अब उस संतापकी शांति करता हूँ। तुम मेरे पास आओ। तुम जो माँगेगी वह दूँगा। अब दुःखी मत होओ। इधर आओ !

'अय्यय्यय्या ! हमेंआप कौन समझ रहे हैं ? क्या क्षुद्र इच्छा करने-वाली हम दासी हैं क्या ? शरीरके प्रति हमारा मोह नहीं। परमात्मा-की भक्ति हमारे हृदयमें है। यह बात क्या आपको मालूम नहीं ? उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण आपका देना क्या, हमारा लेना क्या ? इसमें बड़ी बात क्या है ? पत्थर, मिट्टी, महल, वस्त्र, आभूषण, अभिमान व अभिलाषा जब एक बार दूर हुई तो फिर इन चीजोंकी कीमत क्या है ? अनेक उत्तमोत्तम गुणगण ही हमारे आभूषण हैं। स्वाभिमान ही हमारे वस्त्र हैं। हमें इन बातोंका समाधान है। इस स्थितिमें मधुर वचनोंसे हमें प्रलोभन नहीं दिखाइये। हम इसमें फँसनेवाली नहीं हैं' इस प्रकार स्वच्छ कहकर वहींपर खड़ी रहीं।

भरतेश्वर अब इतर रानियोंको संकेत कर उन्हें बुलानेकी प्रेरणा करने लगे। चंदनावती ! जाओ, मंगलावती जाओ, उन दोनोंको तुम जाकर बुला लाओ। आजके दुःखको उन्हें भूलने दो। आगे जैसा कहेंगी मैं चलूंगा।

ऐसा है क्या ? आगे ऐसा नहीं होगा ना ? इस प्रकार दोनों रानियोंने पूछा। भरतेशने कहा कि विश्वास रखो कि आगे ऐसा नहीं होगा।

राजाके वचनको होकार देकर अन्य दो रानियाँ उनके पास गईं। व कहने लगीं कि जाने दो। अब नाराज मत हो जो कुछ हुआ सहन करो। पतिदेव कह रहे हैं। अब आग्रह मत करो। हमारे साथ चलो।

बहिन ! तुम लोग आये क्यों ? तुम्हारी ओरसे हमें कोई कष्ट नहीं हुआ है। जिनकी ओरसे हमारा तिरस्कार हुआ उनकी तरफ हमें बुलाने तुम आई हो, क्या यह उचित है ? उन दोनोंने कहा।

बहिनो ! राजाने इतनी दीनतासे कहा तब तो भूल जाना चाहिये। यही राजसतियोंका लक्षण व गुण है। आग्रह मत करना। पुनः समझाया।

'ये गुण तुम्हारे पास होंगे। हमें तो कोप आता है। तुम हमपर कोप मत करो। इस प्रकार उन दोनोंने हाथ जोड़कर कहा।

भरतेश्वर - सुप्पाणी, पुष्पाणी और कट्टाणी तुम तीनों जाओ। उन्हें समझाकर ले आओ। वे तीनों गईं। उनको भी समझाकर उन दोनों रानियोंने वापिस कर दी।

चूडाणि, मकराणी, मुकराणी, मधुराणी, चंद्राणी, द्राणी, आदि अनेक रानियां गईं। नाना प्रकारसे समझाकर कहा। पर सब व्यर्थ। उन रानियोंको इन दोनोंका स्त्रीहठ देखकर दुःख व क्रोध उत्पन्न हुआ। कहने लगी कि इतना अहंकार बढ गया है। हम सबने कहा। सुनती नहीं। पतिदेवकी कीमत नहीं। पतिदेवके सामने थोड़ीसी गम्भीरता रखना आवश्यक है! नहीं तो हम दिखा देतीं कि हम क्या कर सकती हैं?

इतनेमें इन सबके मनको समझकर रूपाणी सामने आई व सबकी प्रेरणासे पतिदेवके चरणोंमें नमस्कार किया, उसी समय भरतेश्वरने उसे पकड़ लिया, व कहने लगे कि देवी! वास्तवमें तुम्हें दुःख हुआ है, अब उस दुःखको दूर करता हूँ। यह कहते हुए उसे आलिंगन दिया, उसे राजाकी इस वृत्तिसे बड़ी प्रसन्नता हुई तथापि किसी तरह उसके बाहुपाशसे छुड़ाकर पासमें ही खड़ी रही।

रूपाणी आई, पद्मिनी आई नहीं, इसलिये सबने उसे बुलानेका आग्रह किया, बस करो तुम्हारा क्रोध। अब सामने आ जाओ! सबने आग्रह किया।

पद्मिनी आप सब लोगोंने मुझे दोष देनेका विचार किया मालूम होता है, पतिदेवके दोषोंका आप लोग समर्थन कर रही हैं। सब लोग मिलकर मेरी अकेलीपर दोषारोपण कर रही हैं। तुम लोगों पर मेरा बड़ा विश्वास था, परन्तु तुम लोग पतिका पक्ष ले रही हो, अच्छा हुआ, समुद्रको न दबाकर समुद्रसे पानी लेनेवाले एक घड़ेको तुम दबा रही हो। राजेश्वरको न दाबते हुए मुझे दाबनेकी पद्धति आप लोगोंकी है, वाह! ठीक है।

भरतेश समझ गये कि इसे प्रणयकलहकी इच्छा हुई है, इसलिए इसी मार्गसे इसे वशमें करना चाहिये, देवियों! तुम ठहरो, मैं इसको समझाऊँगा।

बाकी स्त्रियोंने सबको शांत रहनेका संकेत किया, उसे राजाके साथ वाद करनेकी इच्छा दिखती है, हमें क्या? हम स्वस्थ रहकर उनके वाग्वादको देखेंगी ऐसा सब रानियोंने निश्चय किया।

इस प्रकार जब सब स्त्रियोंने मौन धारण किया तो भरतेश आगे

आये उन्होंने पद्मिनीके मानसिक प्रवृत्तिका विचार किया, स्त्रियोंमें अनेक भेद हैं। बाला, विदग्धा, मुग्धा आदि अनेक भेदोंमें यह नहीं आती है, यह मध्यमा है। इसके अन्तरंग बहुत गूढ हैं, लीलाचातुर्य है, वचनकौशल्य है, अनुभवविलास है, जातिसे पद्मिनी है, नाम भी पद्मिनी है, कामशक्तिकी तीव्रता इसमें कितनी है यह भी उन्होंने जान लिया। किसी भी उपायसे इसे वशकर नमस्कार कर लेना जरूरी है। इस प्रकार विचार कर भरतेश बोलने लगे कि पद्मिनी! इस प्रकार हठ करना ठीक नहीं है। तुम्हारी मंत्रिणीने जब आकर क्षमा माँग ली तो तुम्हारी इस प्रकारकी वृत्ति उचित नहीं है।

अहो! रूपाणी निर्लज्ज होकर तुम्हारे पास आई व उसने तुम्हें नमस्कार किया तो क्या हुआ, क्या मैं कोई सामान्य स्त्री हूँ ? पद्मिनी-के महत्वको आपने अभीतक नहीं देखा क्या ? इस प्रकार जरा गर्वपूर्ण वचनसे वह बोलने लगी राजन्! अच्छी बातके लिए दस बार नमस्कार किया जा सकता था, क्षमा भी माँगी जा सकती है। परन्तु कोई गलती न होते हुए किसलिए नमस्कार करूँ ? इसलिये मैं अपने निर्धार से नीचे आनेवाली नहीं हूँ।

भरतेश्वर—तुम्हारे अन्दर उतना मनोधैर्य है क्या ? मेरी तरफ जरा देख करके बोलो, भ्रष्ट लोगोंके समान नीचे देखकर क्यों बोलती हो ? तुम्हारे अन्दर अतुल धैर्य होनेपर घबरानेकी आवश्यकता क्या है ?

भरतेश्वरके वचनको सुनकर पद्मिनी विचार करने लगी कि उनके मुखको देखूँ तो बिगड़ेगा ? देखूँ तो सही, इस प्रकार भरतेश्वरके प्रति सरल दृष्टिसे देखने लगी तो मनके सर्व दुःख दूर हुए। ओष्ठमें हास्य रेखा आई, हँसते-हँसते ही नीचे देखने लगी, मनमें आनन्दित हो रही है। परन्तु सबके समक्ष अपनी गलती स्वीकार कर क्षमा माँगनेका धैर्य नहीं है। संकोच मालूम होता है।

उसके निमित्तसे नाना प्रकारके वाद चालू हैं, परन्तु वह आगे सरक नहीं रही है। भरतेश उपायसे कहने लगे कि पद्मिनी! अब तुम वहीं ठहरी तो तुम्हें मेरी शपथ है। आगे आओ, मेरे पास आओ, रसिकसम्राट्ने शपथ पूर्वक कहा। शपथ डालनेपर दस पैर आगे बढ़-कर वह आई परन्तु सामने नहीं देखकर नीचे मुख कर खड़ी हो गई, बुद्धि चातुर्यसे न जीतकर मुझे अब सौगन्ध खाकर बुला रहे हैं, अब क्या करूँ, वह मनमें सोचने लगी है।

इतनेमें भरतेश कहने लगे कि पद्मिनी! यदि तुम वहीं ठहर गई

तो तुम्हें सिंहासनारूढ भरतेश्वरकी शपथ है। आगे आओ। इसपर वह पतिके सामने न आकर पतिके दाहिने भागपर आठ पैर आगे बढ़कर आई। भरतेश्वरने पुनः कहा देवी ! तुम इधर गई तो तुम्हारे साथ बोलनेवाले स्वामीकी शपथ है। यह सुनकर वह बांयीं तरफ आकर खड़ी हो गई। इस प्रकार इधरसे उधर उधरसे इधर होती हुई उस पद्मिनीके नवीन नृत्यका आभास होने लगा। देवी ! उस समयका नृत्य सुन्दर था। परन्तु इस समयका नृत्य उससे भी बढ़कर सुन्दर है। भरतेशने पुनः विनोद से कहा।

पद्मिनी अन्दरसे हँस रही थी। गरदन झुकानेपर भी मनमें आनंद है। कारण कि भरतेश्वर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है। सर्व रानियोंने मिलकर अब पद्मिनीको समझाया। पद्मिनी ! बिनाकारण हठ करना नहीं, पतिदेवके मनको दुखाना नहीं। कल्याणीने हमारी बात मान ली। तुम भी उसी प्रकार करो। उन सबकी बात सुनकर पद्मिनी अब पासमें आ गई और भरतेश्वरके चरणोंमें नमस्कार करने लगी। उसी समय भरतेश्वरने कपड़ेसे अपना मुख ढक लिया। सबको आश्चर्य हुआ। सबने पुन; विनयसे पूछा कि प्राणनाथ ! मुख ढकनेका क्या कारण है ? वह अब आकर नमस्कार कर रही है। और क्षमायाचना कर रही है। फिर नाराज होने का क्या कारण है ?

भरतेश्वर - उसे मेरा मुँह दिखानेकी इच्छा नहीं। उसका मुँह मुझे देखनेकी इच्छा नहीं है। जो शपथकी परवाह नहीं करती है उसे मुँह दिखाना यह मेरी न्यूनता है।

स्वामिन् ! शपथकी परवाह उसने नहीं की यह कैसे कहा जा सकता है ? शपथ डालते ही वह चलकर आगे आ गई। सब स्त्रियोंने पद्मिनीका पक्ष लेकर कहा।

भरतेश्वर - दांये व बांये तरफ गई तो क्या मेरी तरफ आई क्या ? उसका सब ढोंग मुझे मालूम है। तुम लोग चुप रहो। मैं सब देख लूंगा।

पद्मिनी ! पहिले ही हम लोगोंने कहा था कि पतिदेवके साथ अतिवाद डालना योग्य नहीं है। तुमने सुनी नहीं। अब किसी भी तरह पतिदेवका समाधान करो। पद्मिनीको सर्व रानियोंने समझाकर कहा।

पद्मिनी किंकर्तव्यविमूढ़ा होकर बैठ गई है। अब क्या करें ? उनमें कुछ अनुभवी स्त्रियां थीं। उन्होंने भरतेश्वर व उसके अंतरंगको जान-कर कहा कि देवी ! घबराना नहीं। यह कौनसे महत्वका कार्य है ?

हम परिस्थितिको जल्दी सुधार लेंगी। पुनः उन्होंने राजाकी ओर देख-कर कहा कि राजन्! आप अपने मुखका परदा निकालिए। उसके अपराधका परिमार्जन हम लोग कर देंगी। इस धूर्तके लिए आप मुंह ढक लें यह क्या उचित है?

भरतेश्वर--उसकी तरफसे दंड क्या दिलाती हो यह पहिले बोलो। स्त्रियाँ कहने लगी कि उसे पहिले आपके हवाले कर देते हैं। फिर आपको जो करना हो करो। पुरुषोंके प्रति अपराध करनेवाली स्त्री यदि पतिदेवके शरणमें जाकर उनकी आज्ञानुवर्तिनी होती है तो वही उसे सबसे बड़ा दंड है। आज यह आपके शय्यागृहमें आयेगी। हम सबकी इसमें सम्मति है। अब तो मुखवस्त्रोद्घाटन कीजिये पतिदेव! यह कहती हुई सब स्त्रियोंने भरतेशके चरणोंमें नमस्कार किया।

भरतेश्वर तुम्हारी बात मानना जरूरी हो तो मेरी भी एक बात आप लोगोंको माननी होगी।

सब स्त्रियोंने उत्साहके साथ कहा कि हम सब तैयार हैं। क्या आदेश है? फरमाइये। उसी समय मुंहका वस्त्र भरतेश्वरने सरका दिया। मेघाच्छादित चंद्र अब मेघमंडलके बाहर आनेके समान मालूम होने लगा है। हाय! आज हमारे राजाने बिनाकारण मुंह ढक लिया। यह योग्य नहीं हुआ। इसलिए सब स्त्रियोंने मोतीकी अक्षता लगाकर आरती उतारी। भरतेश्वर स्त्रियोंकी भक्ति देखकर आनंदित हुए।

उन सबको बुलाकर भरतेशने यथेच्छ वस्त्राभरण प्रदान किया; उन्होंने लेनेके लिए संकोच किया तो कहा कि तुमने मेरी बात सुन-नेका वचन दिया है।

सबको क्रमशः देनेमें देरी होगी इस विचारसे अपने अनेक रूप बनानेके लिए आंख मींच लिया और परमात्माका स्मरण किया। उत्तम अपराजित मन्त्रका जाप्य दिया, उसी समय भरतेश वहां अनेक रूपोंमें दिखने लगे। सर्व स्त्रियोंके साथ अब अलग-अलग भरतेश दिख रहा है, भरतेश रहित एक भी स्त्री वहांपर नहीं है। भरतेश्वरके अतिशयको देखकर सभी स्त्रियां आश्चर्य चकित हुई, उसके साथ ही उन्हें परमानन्द भी हुआ।

सिंहासनमें मूल शरीर है, अनेक उत्तर शरीर शाखाके रूपमें हैं। अनेक शरीरोंमें वह आत्मा है, परन्तु आत्मा एक ही है। इस प्रकारका अनुभव सबको हो रहा है, स्यात्कारका विरोध करनेवाले ब्रह्माद्वैतका

साक्षात्कार होनेके समान दिख रहा है। मूलशाखा, उपशाखा आदिमें जिस प्रकार वृक्षका अस्तित्व है उसी प्रकार मूलदेह, शाखादेह आदिमें व्याप्त होकर वे विक्रियांग भरतेश्वर सुखका अनुभव करने लगे हैं। नानारूप धारण कर नानाप्रकारके वस्त्राभरण वे उनको दे रहे हैं। उसी प्रकार उन्हें जोरसे आलिंगन भी दे रहे हैं। उनकी लीला अपार है। इधर-उधर भरतेश ही भरतेश दिख रहे हैं। उत्तम वस्त्र-आभूषणोंको देते हुए आलिंगनके साथ एक चुंबन भी दे रहे हैं। वहां अन्य कोई नहीं है। स्त्रियोंके सिवाय कोई नहीं होनेके कारण उनकी लीला अविरत चालू है। किसीका चुंबन ले रहे हैं तो किसीको तांबूल देकर ही छोड़ रहे हैं। किसीका स्तनमर्दन कर छोड़ देते हैं। एक पुरुष एक स्त्रीको जिस प्रकार सन्तुष्ट करता है उसी प्रकार उन्होंने सब स्त्रियोंको सन्तुष्ट किया। उस भरतेश्वरके पौरुषको सर्वज्ञ ही जाने, प्रणयसुखमें सब स्त्रियाँ परवश हो गईं, उस समय उनका कामवेग बढ़ने लगा। भरतेश्वर के ध्यानमें यह बात आई, उन्होंने कहा अब शय्यागृहकी ओर चलो। बस आदेशानुसार शय्यागृहकी ओर प्रस्थान किया, उनके साथमें भरतेश भी गये।

भरतेश जहाँ जाते हैं वहाँ आनन्द ही आनन्द-समुद्र निर्माण करते हैं। सबके हृदयमें आनन्दका प्रकाश डालते हैं, इसका कारण क्या है? यह उनके पूर्वोपार्जित पुण्यका फल है। वे सतत परमानन्दमय, प्रकाशपुंज परमात्माका इन शब्दोंसे स्मरण करते हैं कि हे चिदंबर पुरुष! अन्धकारको दूर कर प्रकाशपुंजमें दरबार लगाओ, और कहीं भी न जाकर मेरे हृदयमें सदा निवास करते रहो! हे सिद्धात्मन्! अगणित अनन्त सद्गुणोंसे सुशोभित हे महादेव! सदा मुझे सन्मति प्रदान कीजिए एवं मेरी वाक्शक्तिमें बल प्रदान कीजिये।

इति तांडवविनय सन्धि

— ० —

अथ शय्यागृह संधि

राजहंस जिस प्रकार राजहंसीके साथ एक सरोवरसे अन्य सरोवरकी तरफ जाता है, उसी प्रकार भरतेश्वर उस नाटकगृहसे निकलकर अपनी रानियोंके साथ शय्यागृह की ओर जा रहे हैं।

उस नाटकशालाका नाम वर्धनावती वहांसे निकलकर पुष्करावती नामके शय्यागृहकी ओर वे जा रहे हैं। जाते हुए मार्गमें अत्यन्त वैभव

विनोद, विलासमें हास्य–व्यवहार करते हुए जा रहे हैं, अपने स्वतःके नाना रूप बनाकर अलग-अलग स्त्रियोंके साथ वे विनोद वार्तालाप कर रहे हैं। एक स्त्रीके साथ एक पुरुष जिस प्रकार जा रहे हों, उसी प्रकार हजारों स्त्रियोंके साथ भरतेश्वर जा रहे हैं तथापि वहाँपर सौत–मत्सर नहीं है, कारण कि किसी भी रूपसे क्यों न हो पुरुषोत्तम भरतेश्वर उनके साथ हैं। मूल शरीर पद्मिनीके साथ है। बाकीके शरीर पंक्तिबद्ध होकर इतर स्त्रियोंके साथ है। इस प्रकार बड़े आनन्दसे उन सुन्दरी स्त्रियोंके साथ शय्यागृहमें प्रवेश किया। वह शय्यागृह विशिष्ट शृंगार-विलास साधनोंसे सुसज्जित है। वहाँपर सुवर्णमंच, माणिकमंच, श्रीगन्धमंच, रजतमंच, पंचरत्नमंच, नवरत्नमंच, आदि पलंग दिख रहे हैं। विशेष क्या? नूतन शृंगार नगरके समान ज्ञात हो रहा है। जगह-जगहपर आमोद-प्रमोदके साधन रखे हुए हैं। कहीं गुलाबजल, कहीं कस्तूरी, कहीं श्रीगन्ध, कर्पूर आदि सुगन्ध द्रव्य हैं तो कहीं पंखा, तांबूल, पलंग, दूध, पानी आदि पदार्थ विद्यमान है। नवरत्ननिर्मित उस शय्यागृहका विशेष वर्णन क्या करें? सर्व विलासकी सामग्री वहाँपर तैयार है, इतना कहना पर्याप्त है। उक्त सर्व शृंगारसहित शय्यागृहमें सुसज्जित सिंहवाहिनी नामक पलंगपर भरतेश्वर विराजमान हुए। सर्व स्त्रियोंने अपने पहिलेके वेषभूषाओंको बदलकर शय्यासमयोचित वस्त्रोंका परिधान किया। अब अनेक प्रकारसे शृंगार विनोद करती हुई भरतेश्वरके पास बैठी हुई हैं। भरतेश्वरने नानारूप धारण किया है। हर एक रानीके साथ एक-एक भरत है। मूल भरत पद्मिनीके साथ हैं। आज पद्मिनीको प्रसन्न करनेका उन्होंने निश्चय किया है। पद्मिनी नाना प्रकारके शृंगार–व्यवहार कर भरतेश्वरको कामप्रचोदना करनेमें उद्यत है। भरतेश्वरको अधरामृत पानके लिए आह्वान दे रही है। अपने सुन्दर मुखको देखनेके लिए प्रेरित कर रही है। परन्तु भरतेश्वर आँख मींचकर बैठे हैं।

प्राणनाथ! नेत्र खोलियेगा। हृदयेश्वर! मुझसे बोलो। मुझे आनन्द दीजिये। बड़े प्रेमसे पतिके चेहरेपर हाथ फेरती हुई पद्मिनी बोल रही है। तोतेके समान बोलती है, लताके समान आलिंगन दे रही है, नदीके समान इधर-उधर हिलाकर आँख खोलनेके लिए विनती कर रही है।

इस प्रकार नानाविधिसे भरतेश्वरको आकृष्ट करनेका प्रयत्न होनेपर भी भरतेश्वर अपने आत्मविचारमें मग्न हैं। क्या आश्चर्यकी बात

है ? स्त्रियोंके पासमें रहते हुए भी निश्चलताके साथ आत्मसाधना करनेका उन्होंने अभ्यास किया है। पद्मिनीको आतुरता व अधीरता हुई है। अब सहनशीलता नहीं रही। अब भरतेशके चरण स्पर्श कर दीनतासे प्रार्थना कर रही है कि प्राणेश्वर ! मुझे आनन्दित कीजिये। तथापि भरतेश आँखें नहीं खोल रहे हैं। आत्मयोगमें मग्न हैं। इसे देख-कर 'इसे भी उपाय है, मुझे वह मालूम है' यह कहकर पद्मिनी भरतेश-की चित्तवृत्तिको अनुभवसे कहने लगी।

राजन् ! आँखें खोलिये, नहीं तो आपको चिदंबरपुरुषकी शपथ है। पतिदेव ! अब तो इधर देखिये।

अब भरतेशने मृदु-हास्य करते हुए नेत्र खोले। सद्गुरुके शपथका उल्लंघन वे कैसे कर सकते हैं ? आँखें खोलते ही उसे एक चुम्बन दिया एवं गाढ आलिंगन देकर उसे रोमांचित कर दिया। पद्मिनीको अब स्वर्ग दो अंगुल ही रह गया है। अब दो ओढ़नी नहीं है। दोनों ही एक ही ओढ़नीके अंदर आये हैं। परस्पर आलिंगन देकर रतिक्रीड़ा कर रहे हैं। उससे आगेका वर्णन स्पष्ट रूपसे करना बुद्धिमत्ता नहीं है। वह भरतेश बुद्धिमान् है। वह बुद्धिमती है। बुद्धिमान् व बुद्धि-मतीने परस्पर गाढ आलिंगन किया इतना कहना पर्याप्त है।

उत्तम नायक उत्तम नायिकासे जब मिलता है तब परस्परके उत्तम चित्तको पवत्र किये बिना छोड़ता है क्या ? प्रिय व प्रेयसी जिस समय मिलते हैं उस समय कोमल मोटे स्तन, ओष्ठ, मुख परस्पर संघट्ट हुए बिना रह सकते हैं क्या ? सुन्दर स्त्री पुरुषोंके संसर्गकार्यमें कपड़े इधर उधर हो ही जाते हैं तो एकमेकके अंग-प्रत्यंगोंको वे देखे बिना रहते हैं क्या ? उस समय उनका चित्त आनन्दसे नाचता नहीं क्या ? जिस समय दम्पति प्रेमालिंगनमें मग्न होते हैं उस समय आभूषणोंकी ध्वनि, शय्यासनके शब्द परस्परके सीत्कारमें मिलकर नवीन सुस्वरको उत्पन्न करते हैं।

विशेष क्या ? उस समयका वातावरण ही अलग होता है परस्परा-लिंगन, चुम्बन, कुचमर्दन, मृदुलहास्य, परस्पर कामप्रचोदन आदि सर्व व्यवहार उन राजदंपतियोंमें हुए, इसके वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है ?

भरतेश्वर उस पद्मिनीके साथ खूब क्रीड़ा कर तृप्त हुए, वह उनके साथ मनसोक्त संगमकर मूर्छित हुई, फिर एकदम दोनों ही उठे। हाथ पैर धोकर वस्त्र बदल लिये तदनन्तर परस्पर आलिंगन देकर दोनों ही उस मंचपर निद्रित हुए अब उन्हें मंगल निद्रा आई है।

यहाँ पद्मिनीके साथ जिस प्रकार भरतेश्वरने क्रीडाकी उसी प्रकार अन्य सर्व रानियोंके साथ भी राजमोही भरत क्रीड़ा कर रहे हैं। सब जगह उनका वैक्रियिक शरीर काम कर रहा है।

स्त्रियोंमें मुग्धा, बाला, विदग्धा प्रगल्भा आदि नामसे अनेक भेद हैं। उनकी रुचि भी अलग-अलग प्रकारकी है। बालाको प्रेमसे, मुग्धाको मरसालापसे, मध्यमाको खिलाकर और प्रगल्भाको कामप्रचोदनासे वश करना पड़ता है। उस प्रकार भरतेशने सबको आनन्दित किया।

इसके अलावा स्त्रियोंमें हस्तिनी, चित्रिणी, पद्मिनी, शंखिनी आदि अनेक भेद हैं। कोमल संगमसे पद्मिनी, कठिन संगमसे शंखिनी, मध्यम रतिसे चित्रिणी और मन्द रतिसे हस्तिनी स्त्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं। उन सब कलाओंको जानकर भरतेश्वरने उनको संतुष्ट किया।

कोई शरीरसे मोटी है तो कोई पतली है, कोई मध्यम है, उन सबको उपायसे आलिंगन देकर भरतेश्वरने तृप्त किया।

स्थूल स्तनोंको दृढ़ हस्तावलंबनसे, कलश कुचोंके बीच मुख रखकर, उन्नतस्तनोंको नानाप्रकारसे मर्दन कर एवं कोमल स्तनोंको थपथपाकर उनका संसर्ग किया।

विशेष क्या कहें? लाट देशकी स्त्री, काश्मीर देशकी स्त्री, कर्नाटक देशकी स्त्री, भोट महाभोटकी स्त्री इन सबकी मनोकामनाको जानकर उस प्रकार सन्तुष्ट किया।

तुळु देशकी तरुणी, मलयाळ देशकी युवती, बंगाल देशकी कांता, गौळ देशकी नारी, सिंहल देशकी वधू, इन सबकी मनोकामनाको जानकर तृप्त किया।

भरतेशके अन्तःपुरमें नाना देशकी स्त्रियाँ हैं। अंग देशकी स्त्रियोंका अंगलावण्य जानकर, कलिंग देशकी स्त्रियोंकी कला अवगत कर एवं वंग देशकी स्त्रियोंकी रीतिसमझकर वह प्रेमी उनसे प्रेमसे मिला।

जो रानी बोलनेमें चतुर है उसके साथ बोलते हैं, जो कम बोलती है उसके साथ मौनसे क्रीड़ा करते हैं। रतिकला जिसे अच्छी तरह मालूम है उसके साथ बड़ी प्रसन्नतासे क्रीड़ा करते हैं और जिसे रतिकला नहीं आती है उसे वे सिखाते हैं वे स्त्रियाँ परवश होती हैं। मूर्च्छित होती हैं। जागृत होती हैं। उन सबको समयोचित व्यवहारसे वे सन्तुष्ट कर रहे हैं। काममय दृष्टि, शृङ्गारपूर्ण वचन, नखहति, दन्तहति आदिसे कामप्रचोदन कर उनको नवरति नाटकका दृश्य उन्होंने बताया।

रतिक्रियाके प्रारम्भमें क्या हुआ ? बीचमें क्या हुआ और अन्त-में क्या हुआ ? इसका वर्णन करना बहुत हल्की बात होगी उसमें गम्भीरता नहीं रह सकती है। उन्होंने आनन्दसे क्रीड़ा की। इतना कहना पर्याप्त है।

सब कुछ कहना ठीक नहीं है, गम्भीरता चाहिये इसलिये रति-क्रीड़ाका सामान्य वर्णन किया है।

रतिक्रीड़ाके ८४ आसन बन्ध हैं। ९६ रानियोंके उन कामबन्ध व कामासनोंमें क्रीड़ा करके उन सबको तृप्त किया। एकको एक बार भोगते हैं। दूसरीको पुनः भोगते हैं। इस प्रकार प्रत्येक रानीके साथ भरतेश्वर हैं। यंत्र निर्मित प्रतिमायें वहाँ बहुत हैं। वे बीच-बीचमें गुलाब-जल, तांबूल, सुगन्धसेचन, पादमर्दन आदि देते हैं। उनकी सेवाओंको स्वीकार कर भरतेश्वर सुखनिद्रामें मग्न हैं। वहाँपर अनेक मंच हैं। मंच दोनों साथमें लगे हैं। एकपर भरतेश और अन्य मंचपर रानी सोई हुई है।

सुरतसुखांत निद्रा थकावटको दूर करनेवाली है। विवेकजागृतिके कारण है। हर्षको उत्पन्न करनेवाली है और उल्लासको भी जागृत करनेवाली है। इसलिये अपनी स्त्रियोंके साथ भरतेश्वर निद्रित हैं।

स्त्रियोंके बांये हाथपर उन्होंने मस्तक रखा है। अपने बांये हाथसे उनके शरीरको पकड़ रखा है। और अपने दाहिने हाथको और पैरको उनके शरीरपर रख छोड़ा है। इस प्रकार वह सुखनिद्रा चालू है।

दृष्टि निमीलित है, ओष्ठ मुद्रित है। मंद श्वासोच्छ्वास चालू है। रतिसुखकी मूर्च्छा मस्तकतक चढ़ गई है। इसलिए परवश होकर वे सोये हुए हैं। चारों ही तरफसे रत्नदीपक व मोतीके परदे हैं। पंक्ति-बद्ध होकर शय्यामंच है। उनपर भरतेश्वर सोये हैं।

जिन ! जिन ! क्या आश्चर्यकी बात है। भरतेश्वरको गाढ निद्रामें स्वप्न पड़ रहे हैं। स्वप्नमें भरतेश आत्मदर्शन कर रहे हैं। परन्तु उन स्त्रियोंको जो स्वप्न पड़ रहे हैं उनमें भरतेश्वर दिख रहे हैं। पुण्य-जीवोंका यह लक्षण है। स्वप्न कभी दिखता है, कभी अदृश्य, इस प्रकार परम आनंदमें वे मग्न है।

उनकी निद्रा लघु है, गाढ़ नहीं। हंसतूलसदृश मृदुतल्पमें वे सुख-निद्रामें मग्न हैं। सब जगह शाखादेहसे युक्त भरतेश्वर सोये हैं। मूल देह जागृत हुआ।

मंचको कंपित न कर, कमलाक्षीका निद्राभंग न हो इस प्रकार धीरे से तकिया उसके मस्तकके नीचे सरकाकर वे उठे। वे चतुर हैं। कुल्ला किया। तांबूल सेवन किया। पुनः मुखशुद्धि कर पद्मासनमें आत्मचिंतन के लिए बैठे।

उस समय गड़बड़ नहीं, हल्लागुल्ला नहीं। प्रातःकाल पाँचका समय है। शरीरमें आपादमस्तक आत्मदर्शन हो रहा है। वह ब्राह्म-मुहूर्त है। ब्रह्मयोगके लिए योग्य समय है। उस समय भरतेश्वरने प्राणवायुको ब्रह्मरंध्रकी ओर चढ़ाया। उसी समय उन्हें परब्रह्म पर-मात्माका दर्शन हुआ।

तरुणियोंके साथ मनमोक्त क्रीडा करके इंद्रियोंमें जड़ता आई थी। अब वह दूर हो गई है। अब पटुत्व आया है। इसलिए अब उन्हें पर-मात्मदर्शन हो रहा है। हंसतूल तल्पपर बैठे हुए भरतेश्वर जिस प्रकार राजहंस पानीको छोड़कर दूध ग्रहण करता है उसी प्रकार शरीर छोड़कर आत्माका ग्रहण कर रहे हैं।

परमात्माके स्वरूपको शब्दोंसे वर्णन नहीं कर सकते हैं। उसका वर्णन देखनेमें नहीं आता है। वह पकड़नेमें नहीं आ सकता है। वह शून्यस्वरूप है। तथापि भरतेश्वर उनसे बोलने लगे, उसे देखने लगे। विशेष क्या? उसे पकड़ भी लिया। भरतेश क्या सामान्य हैं? नहीं, भावतपस्वी हैं।

केवल शरीरको धोकर, शरीरको सुखाकर बाहरके विषयोंमें लुब्ध होनेवाला क्या वह अधम जीव है? मनको धोकर, मनको ही सुखाकर अंतरंगको पावन करनेवाला वह उत्तम पुरुष है।

स्त्रियोंका संसर्ग है तो क्या बिगड़ा? हससंधानीको (आत्म-विज्ञानीको) वह सम्मोहित कर सकती है क्या? पद्मिनी पासमें ही सोई हुई है। परन्तु भरतेश अपनी आत्मामें हैं।

प्रकाशपुंजमें डूबकर, सुखसागरमें स्नान कर कर्मके अहंकारको नष्ट किया है। इसीलिये उनके हृदयमें मैं प्रभु हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, इत्यादि प्रकारके विकल्प भी उस आत्मचिंतनमें नहीं हैं। समस्त चिन्ताओं को दूर कर जिस समय वे आत्मनिधिका दर्शन कर रहे हैं समय कर्मरज अपने आप जर्जरित होकर पड़ रहे हैं। उसी समय आत्मारामरत भरतेशको सुज्ञान व सुखकी समृद्धि सम्पन्न हो रही है।

भरतेश ध्यानमें मग्न हैं। उन्हें एकाग्रचिंतनमें रहने दीजिये। इधर उदयाचलसे सूर्यका उदय हो रहा है। उसकी सूचना देनेके लिए नियुक्त

अनेक स्त्रियाँ आकर गीत गा रही हैं। अंतःपुरके प्रत्येक द्वारपर वे खड़ी हैं और उदयरागमें गायन कर रही हैं। वेलावलि, भूपाली, गुजरी आदि रागोंमें सुन्दर आलापन करती हुई वे सोई हुई उन रानियोंको कुशलतासे जगा रही हैं।

भगवान् अरहंतके स्मरण करनेसे पापांधकार दूर होता है। इस अर्थमें उनका गायन हो रहा है। राजन्! गुरुभक्तिके समान अरुणोदय हो रहा है। ताराओंका प्रकाश अस्तंगत है। शीतल पवन बह रहा है। हे वैरिनृपनभोभानु राजन्! स्त्रियोंके बाहुपाशोंसे अब बाहर आनेकी कृपा कीजिये।

अरुणोदय होकर किरणोदय भी हो गया है, हे पुरुदेव अग्रकुमार! सूर्यदर्शनके पहिले जगत्को अपने सुन्दर रूपके दर्शन देकर जगत्का उद्धार कीजिये।

चिन्तारहित दीर्घराज्यको पालन करनेवाले हे निश्चिन्त वैभव राजन्! प्रजाजनोंको चिन्तित पदार्थोंको देनेके लिए आप समर्थ हैं। इसलिए राजवेशमें आप चिन्तामणिरत्न हैं। आपका दर्शन दीजिये। शत्रुरहित निष्कंटक राज्यको पालन करते हुए अनेक स्त्रियोंको भी समान रूपसे सन्तुष्ट करनेवाले हे राजमनोज! हँसते हँसते उठो, समय हो गया है। धर्मको भूलकर भोगमें आसक्त होनेवाले अधम योगियोंके विषयमें आप हँसते रहते हैं।

भोगोंमें रहकर भी योगियोंके समान सुखानुभव करनेवाले हे भोगराज! आप उठो, वृत्तकुच धारण करनेवाली स्त्रियोंके अंतरंगको जाननेवाले आप पुरुषोत्तम हैं। स्वामिन्! नेत्र खोलो, चित्तत्वके अनुभवरूपी राज्यको पालन करनेवाले आप राजोत्तम हैं। आप उठो।

हे शुद्धोपयोगसंपन्न! निरंजनसिद्ध आराधनाशील! रत्नाकरसिद्धके प्रिय शुद्धनिश्चयमार्गरत! राजन्, उठो।

आपका शरीर सोया हुआ है, चित्त आत्मकलामें मग्न है। इसे हम जानती हैं। तथापि हमारा नियोग होनेसे औपचारिक रूपसे हम यह कार्य कर रही हैं। और कोई बात नहीं।

बाहरके सूर्यको देखकर अपने शरीरमें स्थित आत्मसूर्यको न देखनेवाले अन्धोंको सुदृष्टि देनेवाले आप प्रत्यक्ष देव हैं। हे राजन्! अब आप बाहर आइये।

सूर्योदय हो गया है, राजन्! आज भाद्रपद बदी चतुर्दशीका दिन

है। हे राजयोगीन्द्र ! निज मन्दिरसे जिनमंदिरकी ओर प्रस्थान कीजिये।

इस प्रकार गानेवाली उन गायिकाओंके सुख गीतको सुनकर विभिन्न महलमें स्थित अपने विभिन्न रूपको एकत्रित कर लिया। और भरतेश मूलरूपमें आये, प्रत्येक पलंगपर सोये हुए भरतेश अब अदृश्य हो गये, इसे देखकर वे स्त्रियाँ भी आश्चर्यचकित होकर उठकर बैठी हैं एवं अपनी नित्यक्रियामें लग गई हैं।

भावदृष्टिसे परमात्माकी भाववन्दना कर भरतेश्वरने भी वीतराग पदका उच्चारण करते हुए नेत्रोंको खोला।

प्रातःकालमें उठकर सर्वप्रथम खड्ग, दर्पण, घी आदिका दर्शन करना कोई शुभ मानते हैं। परन्तु भरतेश्वर प्रातःकालमें परमात्म-दर्शनको परमशुभ मानते हैं।

सुप्रभातको सुनकर वह पद्मिनी भी उठकर बैठी हुई थी, भरतेश्वरने कहा कि हे प्रिये ! मैं आगे होता हूँ, तुम जिनमन्दिरको बादमें आना, यह कहते हुए तत्काल वहाँसे उठे।

उन अन्तःपुरके शय्यागृहको छोड़कर अब भरतेश्वर बाहर आये हैं। सूर्य उदयाचलपर आया है। गुणनिधि राजसूर्य भरतेश्वर उदयाचलपर स्थित उस सूर्यको देखकर आगे बढ़े।

हमारे प्रिय वाचकोंको आश्चर्य होगा कि ऐसे शृंगार विलास भोगमें रत भरत आत्म वैभवमें भी रत होते हैं, यह विषय सम्भवनीय हो सकता है क्या ? उनके अन्दर भोगरोगादिकोंकी वासना दूर कर आत्म समृद्धि करनेकी साधना कैसे आ सकती है, यह प्रश्न वास्तवमें विचारणीय है। परन्तु उन्होंने अनेक जन्मोंसे जो साधना की है उसका ही यह फल है, इसे भूलना नहीं होगा। वे सतत आत्मचिन्तन इस प्रकार करते हैं कि—

हे मोक्षरसिक चिदंबरपुरुष ! क्षुधा, तृषा, निद्रा आदि दुःखोंको दूर करनेकी सामर्थ्य तुझमें है। तुम्हारा वैभव अतुल है। तुम मेरे अन्तरंगमें सदा निवास करते हो।

हे निरंजनसिद्ध सिद्धात्मन् ! आँख बन्द कर आत्मदर्शन करनेपर आत्मसुखको प्रदान करनेवाले आप परमानन्दस्वरूपी हैं। इसलिए हे पुण्यपुरुषाधिपति ! सदा मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति शय्यागृह सन्धि

——o——

अथ पर्वाभिषेक संधि

आज पर्वका दिन है। सम्राट् जिन मंदिरमें जाकर बहुत वैभवके साथ जिनाभिषेक करेंगे।

सम्राट्के चातुर्यका कौन वर्णन कर सकता है ? यद्यपि वे अत्यंत पवित्र देहको धारण करनेवाले हैं। उनके शरीरके लिये आहार तो है, नीहार नहीं है। फिर भी उन्होंने विचार किया कि मैं बहुत समयसे अपनी पत्नियोंके साथ था। इसलिये पूजनसे पहिले एक दफे स्नान अवश्य कर लेना चाहिये। इस विचारसे वे पूजनके पूर्व स्नानगृहकी ओर चले।

भरतेश दो प्रकारका स्नान किया करते थे। एक भोगस्नान दूसरा योगस्नान। शरीरको निर्मल तथा सुन्दर बनानेके लिये अर्थात् भोगके प्रयोजनसे स्नान करना भोगस्नान है। देवपूजा, ध्यान, पात्रदान आदिके लिये स्नान करना वह योगस्नान है।

भोगस्नानके लिये मालिश करनेकी आवश्यकता होती है। तेल, अंगराग व अन्य सुगंध द्रव्योंकी भी आवश्यकता रहती है। पानी भी अधिक लगता है। अतएव उसमें समय भी अधिक लगता है। परंतु योगस्नानके लिये इन सब बातोंकी आवश्यकता नहीं होती है इसलिये वह बहुत शीघ्र हो जाता है।

सम्राट् प्रतिदिन स्नान किया करते थे। एक दिन योगस्नान, दूसरे दिन भोगस्नान इसी क्रमसे स्नान होता था। वे प्रतिनित्य स्नान किया करते थे।

आज पर्वका दिन होनेसे उन्होंने भोगस्नान नहीं किया। क्योंकि आज उन्हें भोगसे कोई प्रयोजन ही नहीं है।

बहुत जल्दी स्नान गृहमें प्रवेश कर उन्होंने योगस्नान किया। तद-नंतर वहांसे श्रृङ्गारशालाकी ओर चले।

श्रृङ्गारशालामें प्रवेश कर उन्होंने अपने शरीरका श्रृङ्गार किया।

श्रृङ्गार भी उनका दो प्रकारसे होता था। एक मोहन श्रृङ्गार, दूसरा मोक्ष श्रृङ्गार। अपनी स्त्रियोंको प्रसन्न करनेवाले वस्त्र व आभू-षणोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करना मोहनश्रृङ्गार है। मोहरहित मोक्षलक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले जिनपूजाके योग्य वस्त्र आभूषणोंसे शरीरको सुसज्जित करना मोक्ष श्रृङ्गार है। क्योंकि जिनपूजा मोक्षांग क्रिया है। उस समय चटकमटकरहित निर्मोह अलंकारोंकी ही प्रधानता रहनी चाहिये।

सम्राट्ने जिनपूजाको चलते समय मोक्षशृङ्गारको धारण किया।

उन्होंने सबसे पहिले दीर्घ केशोंको झटकाकर अच्छी तरह बाँध लिया। ललाटमें श्रीगंधका स्थूल तिलक लगाया, वह साक्षात् धर्मचक्रके समान मालूम होता था, अथवा कहीं कर्मपुंजको तिरस्कृत करनेवाला चक्र तो नहीं है, ऐसा मालूम होता है। उसी प्रकार उन्होंने हृदय, भुजायें, कंठ आदि स्थानोंमें भी श्रीगंधसे षोडशाभरणोंकी रचना की।

रत्नोंसे निर्मित कुंडल, कंठहार, कटिसूत्र आदि उस समय उनके शरीरमें अच्छी शोभा दे रहे थे। हाथकी अँगुलियोंमें सुवर्ण व रत्ननिर्मित अँगूठी, हाथमें सुन्दर कंकण व शरीरमें मोतीसे निर्मित यज्ञोपवीत आदि बहुत सुन्दर मालूम होते थे। उन्होंने अब शुद्ध रेशमी वस्त्रको पहिन लिया है। पैरमें चाँदीके खड़ाऊ हैं। इस प्रकार अत्यंत शुचिर्भूत होकर शांत चित्तसे जिनमंदिरकी ओर रवाना हुए। अब उनकी कठोर आज्ञा है कि जिनमंदिरको जाते समय मार्गमें उनकी कोई प्रशंसा न करे, इतना ही नहीं, कोई हाथ भी नहीं जोड़े। अब उनके साथ कोई राजकीय वैभव नहीं है। छत्र नहीं, चामर नहीं और कोई सेवक नहीं। राजा होनेका अभिमान भी नहीं है। उन सब बातोंको छोड़कर उन्होंने अब केवल संसार भय व प्रभुभक्तिको अपना साथी बना लिया है। वे एक शुद्ध श्रावकके समान जिनमंदिर जा रहे हैं। अपने अपने महलसे निकलकर उनकी रानियाँ भी मार्गमें उनके साथ हो रही हैं।

रानियोंको पहिलेसे मालूम था कि आज पतिदेवके संयमका दिन है। इसलिये हम लोगोंको भी उचित है कि हम भी संयमपूर्वक दिन बितानेके लिये जिन मन्दिरको जावें। इस विचारसे सभी रानियाँ उनके समान ही योगस्नान एवं मोक्षशृंगार कर मार्गमें पतिके साथ होने लगीं। रानियोंने भी जो मोहनशृङ्गार नहीं किया है। जिनसे विकार उत्पन्न न हो ऐसे ही वस्त्र आभूषणोंको पहिनकर वे आई। विशेष क्या? भरत व उनकी देवियाँ सामान्य चतुर नहीं हैं। परस्पर देखनेपर जरा भी कामविकार उत्पन्न न हो इसकी व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी। सचमुचमें पुण्य दिनमें पुण्यमय विचारोंसे रहना वे पुण्य-पुरुषका कर्तव्य जानते थे।

आश्चर्य है! ये पतिपत्नी एक दूसरेको देखते थे परन्तु किसीके मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता था। निर्विकारता व विनयभावकी ही वहाँपर मुख्यता थी।

यद्यपि उनको मालूम था कि पूजन व अभिषेकके लिये विपुल

सामग्री आनेवाली है। फिर भी प्रभुके दरबारमें खाली हाथसे जाना शिष्टाचार नहीं है, इस विचारसे उन्होंने एक-एक फल अपने हाथमें ले लिया था।

चारों ओरसे रानियाँ जा रही हैं। बीचमें सम्राट् जा रहे हैं। उनके हाथमें मातुलिंगका फल है। इधर-उधरसे बहुतसी स्त्रियाँ आध्यात्मिक गान गाती हुई जा रही हैं। अनेक परिवारकी स्त्रियाँ तरह तरहकी पूजा सामग्रीको लेकर सम्राट्के पीछेसे चल रही हैं। दोनों ओर गायन व आगे शंखध्वनि सहित बहुत वैभवके साथ सम्राट् जा रहे हैं।

राजमहलके पासमें ही उद्यान वनके बीचमें भगवान् श्री आदि प्रभुका मन्दिर है। वहींपर जाकर चक्रवर्ती जिनयज्ञ-क्रिया करते हैं।

बाह्य परकोटेके बाहर उन्होंने खड़ाऊ उतारकर भीतर प्रवेश किया। सबसे पहिले मानस्तंभकी प्रदक्षिणा कर अपनी पवित्र देवियोंके साथ-साथ आकाशचुंबित और सुवर्णसे निर्मित तीन परकोटोंको पार किया और जिनेन्द्रमन्दिरका दर्शन किया।

उस जिनेन्द्र मन्दिरके सौंदर्यका क्या वर्णन करें? भरतेश्वरके रहनेका महल सुवर्ण व रत्नोंसे निर्मित है। उन्होंने अपने स्वामी आदि-प्रभुके मन्दिरको भी रत्न व सुवर्णसे अपने महलसे भी अधिक सुन्दर बनाया है, यह कहनेकी क्या आवश्यकता है?

राजमन्दिरको निर्माण करनेवाला सुरशिल्पी क्या जिनमन्दिरका निर्माण नहीं कर सकता है? उसका वर्णन इस लेखनीसे नहीं हो सकता, उसे कल्पविमान कह सकते हैं अथवा कहीं वह मन्दराचल तो नहीं है? समवशरण तो नहीं? नहीं नहीं। वह तो सर्वार्थसिद्धि विमानके समान है, अथवा अनेक सुवर्णरत्नोंसे निर्मित सुन्दर पर्वत है।

अच्छा रहने दो! हमारे मनमें तो एक दूसरी कल्पना आती है कि वह जिनमन्दिर जिनेन्द्र भगवान्के पंचकल्याणको अच्छी तरह सूचित कर रहा था। उसके ऊपर लगे हुए मोती व माणिक्यके कलशोंका प्रकाश इस प्रकार फैल रहा था, मानों वे साक्षात् सूर्य-चन्द्रको स्पष्ट कर रहे हैं कि तुम्हारी इधर आवश्यकता नहीं है, तुम लोग उधर ही रहो। हम यहांपर अच्छी तरह प्रकाश कर रहे हैं।

ध्वजा-पताकाओंके हिलते समय ऐसा मालूम होता है कि वे आकाशसे देवोंको जिनदर्शनके लिये बुला रही हों। इतना ही नहीं,

अनेक रत्नमयघंटा सुन्दर शब्दों द्वारा उन देवोंको उच्चध्वनि कर इधर आकर्षित कर रहे हैं।

स्थान-स्थान पर अनेक शासन-देवताओंकी पुतलियां खड़ी हैं। उनको देखनेपर मालूम होता है कि वे हंस रही हैं या बोलनेके लिये आतुर हैं या किसीकी ओर उत्साहके साथ देख रही हैं।

जिनेन्द्रदेव व सिद्धोंकी मूर्तियां बहुत जगमगाहटके साथ शोभित हो रही हैं। उनमें शांतिरस ओतप्रोत भरा हुआ है।

समवशरणमें भगवान् आदिनाथ स्वामी चतुर्मुख होकर विराजमान हैं। उसी प्रकारकी इस मन्दिरमें भगवान्की चतुर्मुख प्रतिकृति (मूर्ति) है। मालूम होता है कि यह साक्षात् समवशरण ही है और उसके समान ही अत्यन्त सुन्दर है।

समस्त सम्पत्तियोंके आधारभूत पवित्र जिनमन्दिरको सम्राट्ने निष्कलंक चारित्रको धारण करनेवाली अपनी रानियोंके साथ त्रिकरण-शुद्धिपूर्वक हाथ जोड़कर तीन प्रदक्षिणा दी।

तदनंतर अपने चरणोंको धोकर भीतर प्रवेश किया और समक्ष विराजमान श्री आदिनाथ भगवान्की मूर्तिका दर्शन किया। उनने सबसे पहिले दृष्टिसे दर्शनांजलि की, पश्चात् सुवर्णपुष्पको समर्पण कर वे हाथ जोड़कर खड़े हुए एवं श्री भगवान्की स्तुति करने लगे।

केवलज्ञानरूपी महाराज्यके स्वामी देवाधिदेव श्री भगवान् आदि-नाथ प्रभुकी प्रतिकृतिकी जय हो। मुक्तिके अधिपति, सिद्धांतके प्रति-पादक, इच्छितसिद्धिदायक मेरे स्वामीकी प्रतिमाकी जय हो!

कोटि सूर्य व कोटि चंद्रके प्रकाशको धारण करनेवाले, तीन लोक-के राजाओंके राजा, चिन्मय मेरे पिताकी प्रतिकृतिकी जय हो!

इत्यादि अनेक प्रकारसे स्तुतिकर सबने अत्यन्त भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया। उस समय भरतका शरीर उस मंदिरमें था परन्तु चित्त वहांपर नहीं था। चित्त तो कैलास पर्वतमें जाकर भगवान् आदि-नाथ स्वामीका साक्षात् दर्शन कर रहा था। यही यथार्थ भक्ति है।

तदनंतर सम्राट् दर्भासनपर विराजमान हो गये तथा संपूर्ण आद्यक्रियाओंको करके उन्होंने जैनशासन देवताओंको अर्घ्य प्रदान किया।

स्तुतिके बाद जप किया। तदनंतर आंख मींचकर आत्मामें भगवान् आदिनाथको स्थापन किया। अब उनको शरीरके अन्दर ही भगवान् साक्षात् दिख रहे हैं। या यों कहिये कि भरतके आत्मप्रदेशोंमें भगवान्के

रूपको किसीने चित्रित कर दिया है। भरतेश्वर कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं। वे शुद्ध वंशोत्पन्न, सत्कुलप्रसूत क्षत्रिय जातिके हैं। उसमें भी योगीके समान हैं। इसलिये उनको आँख मींचते ही भगवान्‌के दिव्य-स्वरूपका दर्शन होने लगा है।

इधर वे बहुत तन्मयताके साथ अपने देहमें ही भगवान्‌का साक्षात्कार कर रहे हैं, उधर भरतेश्वरकी देवियाँ क्या कर रही हैं, जरा यह भी देखें। सभी सतियाँ श्री देवाधिदेव भगवान्‌के मन्दिरमें पहुँचकर त्रिलोकीनाथकी बड़ी भक्तिके साथ स्तुति कर रही हैं।

अत्यंत सुन्दर स्वरके साथ जिस समय वे उस विशाल मंदिरमें गा रही थीं, उस समय उनकी स्तुतियोंकी प्रतिध्वनि वहाँपर गूँज उठी।

प्राकृत, संस्कृत, कर्नाटक, पैशाचिक, मागधी शैशव और शौरसेनी आदि अनेक भाषाओंमें उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की।

हे देवोत्तम! आपका दिव्य शरीर रत्नके समान अत्यन्त उज्ज्वल है, आपकी जय हो।

हम लोग जन्ममरणरूपी संसारके फंदेमें पड़कर अत्यन्त कष्ट पा रही हैं। उसे दूर कर हे स्वामिन्! आप हमारी रक्षा करें।

स्वामिन्! आपके पुत्रके समान हमें शुद्धात्मयोगका अनुभव नहीं होता है, फिर भी इन आपके चरणोंमें श्रद्धा रखनी हैं।

स्वामिन! अभेदभक्तिसे युक्त ध्यानमें हमारा मन नहीं लगता है। उसमें चित्त चंचल होता है। इसलिये हमें उसके लिये शक्ति व योग्यता दीजिये। कृपा कीजिये।

यह स्त्रीवेष परमकष्टका है। यदि आपने हमें आत्मयोगके मार्गको दिखलाया तो हम अवश्य ही इस स्त्रीजन्मको नष्ट करेंगी, इस प्रकार तरह-तरहसे स्तुति करने लगीं।

इतनेमें भरतेशने अपने ध्यानको पूर्ण किया एवं अपनी स्त्रियोंके साथ मुनिवासकी ओर गये। वहाँपर मुनियोंके चरणोंमें अत्यन्त विनयके साथ मस्तक रखा। बादमें उन योगिराजोंकी साक्षीपूर्वक दिग्व्रत, देशव्रत आदि व्रतोंको ग्रहण किया। साथमें आज हम लोगोंको अनशन (उपवास) व्रत रहे यह भी निवेदन किया। आज हमारे निष्पाप धर्मांग-संबंधी बोलना व देखना रहेगा। आज कामकी आवश्यकता नहीं, इसलिये हमें ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कीजिये। यह कहकर अपनी स्त्रियोंके साथमें ब्रह्मचर्य व्रतके कंकणसे बद्ध हुए।

तदनंतर उन तपोधनोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन् ! महाभिषेक व पूजाके दर्शनार्थ पधारिये। उनकी सम्मति पाकर सम्राट् वहाँसे रवाना हुए। श्री भगवान् आदिनाथके मन्दिरमें जाकर महाभिषेक प्रारंभ किया।

अभिषेक करनेवाले आद्य महापुरुष सम्राट् भरत हैं। अभिषेक करने योग्य प्रतिमा भगवान् आदिप्रभुकी है। ऐसी अवस्थामें उस अभिषेकका वर्णन क्या करें ? वह जिनमंदिर चतुर्मुखी था, यह पहिले ही कह चुके हैं ? अतः भरतेशने भी चार रूपधारण कर लिये और वे अत्यन्त भक्तिसे अभिषेक करने लगे।

बाहरसे अनेक तरहके वाद्यघोष होने लगे। चारों दरवाजोंमें योगि-गण, अर्जिकायें, श्रावक, श्राविकायें व रानियाँ अभिषेकको देख रही हैं एवं जयजयकार शब्द कर रही हैं।

मूर्ति पाँच सौ धनुष ऊँची है एवं अभिषेक करनेवाले सम्राट व उनकी साम्राज्ञियाँ भी पाँचसौ धनुष ऊँची हैं। अब पाठक स्वयं अनुमान करें कि उस अभिषेकमें कितना आनंद आया होगा।

अत्यन्त विशाल शरीर होनेपर भी सम्राट्का शरीर विकृत नहीं मालूम होता था। उसकी लम्बाई, मोटाई, ऊँचाई आदि यथावस्थित होनेसे सर्व-अंग अच्छी तरह शोभा दे रहे थे। उस दीर्घ मन्दिरमें दीर्घ-देही भरतने दीर्घ प्रतिमाका जिस दीर्घ वैभवसे अभिषेक किया उस महत्ताको श्री आदिभगवान् ही जानें।

जलाभिषेक--जैसे आकाशमें बादलोंके फूटनेसे निर्मल जलवर्षा मेरु पर्वतके ऊपर होती है उसी प्रकार श्री भगवान् आदिनाथका सम्राट्ने अनेक कुंभोंसे भरकर निर्मल जलाभिषेक किया।

नालिकेरसाभिषेक—मानों आकाश गंगाके पानीको हरे रत्नोंसे निर्मित घड़ोंमें भरकर स्नान करा रहे हों इस प्रकार कच्चे नारियलके पानीसे भगवान्का अभिषेक किया।

तदनन्तर नारियलकी गरीसे श्री भगवन्तका अभिषेक किया वह ऐसा मालूम होता था मानों आकाशसमुद्रके फेन सबके सब इकट्ठे होकर सम्राट्के हाथमें आन पड़े हों।

कदलीफलाभिषेक यह क्या है ? ताड़के फूल तो नहीं हैं ? ऐसा भ्रम उत्पन्न करते हुये भरतेश केलेके फलसे अभिषेक कर रहे थे।

शर्कराभिषेक--अच्छी तरह हाथमें पकड़नेमें भी नहीं आती और

पकड़े भी तो इधर-उधर सरकती है ऐसी शुद्ध शक्कर को हाथमें लेकर भरतेश्वरने बहुत भक्तिसे अभिषेक किया।

इक्षुरसाभिषेक—कामदेवको जिनेन्द्र भगवान्के सामने लज्जा उत्पन्न हो गई, उसने समझा कि सब इक्षुदण्डमें माधुर्य नहीं है, अतएव उसने इक्षु लाकर भगवान्के सामने डाल दिया है एवं लोकको कह रहा है कि सचमुचमें इस कामसेवनमें कोई सुख नहीं है। आप सब श्री त्रिलोकीनाथ श्री भगवान्की सेवा करें। इस भावको बतलाते हुए सम्राट् इक्षुरसका अभिषेक कर रहे हैं।

आम्ररसाभिषेक—सम्राट् अगणित घड़ोंमें भर भर कर जिस समय उत्तम जातिके आम्ररससे अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालूम होता था कि कहीं इस प्रतिमाको दोरंगवाला परिधान तो नहीं धारण कराया गया है।

यह कल्पना पसन्द नहीं आई, जाने दो, जिस समय भरतेश्वरने उस काकम्बी (फल जाति विशेष) के रससे अभिषेक किया उस समय वह सुवर्णकी मूर्ति ही हो गई।

घृताभिषेक—संभवतः ठण्डे सोनेके शुद्ध रसको ही ये धाराप्रवाह रूपसे छोड़ रहे हैं, इस प्रकारके भावको प्रकट करते हुये सम्राट् शुद्ध गोघृतका अभिषेक कर रहे थे।

जिस समय उन्होंने घृताभिषेक किया उस समय ऐसा मालूम होता था मानों कोई सोनेकी नदी बह रही हो।

दुग्धाभिषेक—कहीं आकाशसे क्षीर समुद्र तो नहीं आया, नहीं तो इतना दूध कहाँसे आया? इस प्रकार लोग बातचीत कर रहे थे। भरतेश अगणित कुंभोंमें भर-भरकर दूधका अभिषेक कर रहे थे। बड़े बड़े कुंभोंको दीर्घ बाहुओंसे उठाकर जिस समय अभिषेक करते थे उस समय "बुडबुड", "भुल्ल भुल्ल" इस प्रकारके शब्द हो रहे थे।

दधिअभिषेक—नारियलकी गरीके समान शुभ्रदधिसे सम्राट्ने अत्यन्त भक्तिसे अभिषेक किया। क्षीर समुद्रमें ही दही डालकर और दही जमाकर लाये या दधिवर समुद्रको ही यहाँपर उठाकर लाये, अहा! हा! कितना अच्छा हुआ! इस प्रकार सम्राट्के वैभवकी प्रशंसा उस समय हो रही थी।

इस प्रकार सम्राट्ने पंचामृतके असंख्य कुंभोंसे अभिषेक किया। मुनिगण अभिषेकको देखकर जयजयकार शब्द कर रहे हैं। देखनेवालोंको

मालूम होता है कि शायद आकाशमें अमृतका समुद्र तो नहीं है। असंख्य घड़ोंसे जिस समय उन्होंने अभिषेक किया उस समय मंदिरकी जमीन व पाया घुलकर बह जाता. परंतु वह रत्ननिर्मित था। अतः कुछ नहीं हो सका। सामग्री पहाड़के समान एकत्रित हो रही है। उसे परिवार की स्त्रियाँ उठा-उठाकर ले जा रही हैं।

कितनी ही रानियां सम्राट्को अभिषेकके लिये सामग्री उठाकर देती हैं। कोई-कोई आरती उतारती हैं। कोई जयजयकार शब्द कर रही हैं। वे स्त्रियां बड़-बड़ अमृत घड़ोंको उठाकर राजाको सौंपती हैं, बहुत बड़े घड़े हों तो कई मिलकर उठाती हैं। सम्राट् विचारते हैं कि इनको इस कुंभको उठानेमें बड़ा कष्ट होता है। उसी समय वे अपने अनेक रूप बनाकर उन स्त्रियोंके बीचमें खड़े होकर उनको उठानेमें सहायता करते हैं। कभी-कभी अपने आप अनेक रूपोंसे उठाते हुए उन स्त्रियोंसे कहते हैं कि आप लोग अभिषेक देखती हुई खड़ी रहें। भगवान्की स्तुति करें। मैं सब करता हूँ। ऐसा कहकर स्वयं अभिषेक करते थे।

भरतेशको किस बातकी कमी है ? इच्छा करनेकी देरी है। जब इच्छा करें उसी समय उनके हाथमें अमृतके घड़े आ जाते हैं, फिर अत्यन्त भक्तिसे वे अभिषेक करते जायें इसमें आश्चर्य क्या है ?

चाँदी, सोना व रत्नोंसे निर्मित घड़ोंमें भरे हुए अमृतसे जिस समय वे अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालूम होता था कि सम्राट् अनेक वर्णकी गेंदोंसे खेल रहे हैं।

कुम्भोंको उठानेका क्रम, सावधान व भक्तिसे भगवान्के अभिषेक करनेकी रीति, गांभीर्ययुक्त गति आदिसे सम्राट् उस समय देवेन्द्रको भी तिरस्कृत कर रहे थे। भरतेश जिस रसोई घरमें भोजन करते थे वहाँपर भोजनके लिए उत्तम जातिकी तीन करोड़ गायोंका दूध लाया जाता था। ऐसी अवस्थामें आज भरतेश्वरने एक करोड़ दूधके कलशोंसे अभिषेक किया इसमें आश्चर्यकी बात क्या है ? उस मंदिरके निर्माणमें नीचेसे दूध-दही जानेके लिए मार्ग रखा गया था। नहीं तो भरतेशने जो अभिषेक किया उससे उस समय दूध-दहीसे ही वह मंदिर डूब जाता।

पाण्डुकनिधिका कार्य ही यह है कि वह इच्छित रसोंको देवें, इसी अवस्थामें चक्रवर्तीने वहाँपर घीकी नदी बहाई व शक्करका पहाड़ ही लगा दिया इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

शक्कर, फल आदिसे उन्होंने जो अभिषेक किया उन्हें परिवार-स्त्रियाँ उसी समय उठाकर ले गईं, नहीं तो उनसे बड़े पहाड़ भी ढक जाते। गृहपति नामक रत्न अनेक प्रकारके पदार्थोंको लाकर देता था तब फिर भला क्या देरी लगती है ?

भगवान्के जन्माभिषेक कल्याणमें स्वर्गके देवोंने क्षीरसमुद्रको लाकर अभिषेक किया था। आज सम्राट्ने क्षीर, इक्षु, दधि, घृत इस प्रकार चार समुद्रोंको लाकर अभिषेक किया। क्या इस प्रकारका भाग्य देवोंको मिल सकता है ?

इस प्रकार पंचामृताभिषेक अत्यन्त भक्ति, विनय तथा मंत्रोच्चारण विधिपूर्वक करनेके बाद सम्राट्ने लाजांग चूर्ण व कुंकुमचूर्णसे अभिषेक किया। तदनंतर अत्यन्त सुगन्धित सर्वौषधिसे अभिषेक किया। सर्वौषधि अभिषेक करनेके बाद करोड़ कुम्भोंमें चंदन भरकर अभिषेक किया एवं करोड़ों कुम्भोंमें गुलाबजल भरकर अभिषेक किया।

तदनन्तर पूर्ण कुम्भको उठाकर सर्व लोकमें शांति हो इस प्रकार शुद्ध उच्चारणपूर्वक शांतिमन्त्र पढ़कर पूर्ण कुम्भाभिषेक किया। बादमें १०८ कलशोंसे भरे हुए अनेक वर्णके पुष्पोंकी वृष्टि की। उस समय सभी भव्यगण जयजयकार करने लगे।

इसके सिवाय सोना, चांदी व रत्नोंसे निर्मित पुष्पोंकी भी वृष्टि की। जयजयकार शब्दसे मन्दिर गूँज उठा।

तदनन्तर अत्यन्त भक्तिसे अष्टविधार्चन पूजन की। विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात् १०८ प्रफुल्लित कमलोंसे मंत्र पुष्प (जाप) कर साष्टांग नमन किया। उसी समय वाद्यघोष बंद हुआ।

उस मन्दिरमें अत्यन्त वृद्ध पूजेन्द्र पूजक था, उसे सम्राट्ने सूचना दी। उसने अनेक मन्त्र व विधिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्के व शासन-देवताओंकी पूजा की, सम्राट् खड़े-खड़े देख रहे थे।

पूजा व अभिषेकके समय सम्राट्ने अपने अनेक रूप बना लिये थे। अब उन्होंने मनको अदृश्यकर एक बना लिया, एवं वहाँसे तपोधनोंके पासमें आकर अपनी सद्धर्मिणियोंके साथ उनके चरणोंमें नमोस्तु किया। आचार्य परमेष्ठिने भरतेशको "परमात्मसिद्धिरस्तु" एवं अन्य मुनियोंने "धर्मवृद्धिरस्तु" आशीर्वाद दिया।

अभीतक भरतेशने इधर-उधर नहीं देखा था, उनका एकमात्र चित्त श्री भगवान्की सेवामें लगा हुआ था। अब उन्होंने अपनी दृष्टि फेरकर पूजा व अभिषेक दर्शनार्थ आये हुए भव्योंको देखा।

वह राजमहलका मन्दिर है। वहाँ बाहरके लोग नहीं आ सकते, वह एकांत पूजा है। लोगोंकी भीड़ बहुत नहीं है। गणना करनेपर केवल बारह लाखकी संख्या है।

भरतेशकी रानियोंकी संख्या चार हजार कम एक लाख है। एक-एक रानीके साथ ९-१० परिवार स्त्रियाँ रहती हैं। इस प्रकार कुछ कम दस लाखकी संख्या हुई। अब भरतेशकी दासियाँ, गायकियाँ, गुरु-गुण, अजिकायें, परिचारक स्त्रियां, वृद्धव्रतिक आदि मिलकर लगभग डेढ़ लाख हैं। सम्राट्के अभिषेक व पूजनको देखकर उपस्थित १२ लाख जनताको हर्ष हुआ। कैलाश पर्वतपर भरतेश्वर जब भगवान् आदिनाथका पूजन करेंगे तब उसे देखनेको ढाई द्वीपके समस्त भव्य आयेंगे व प्रसन्न होंगे, तब फिर आज १२ लाखकी संख्यामें आगत भव्य प्रसन्न हुए इसमें आश्चर्य ही क्या है?

कैलाश पर्वतपर ७२ जिनमन्दिरोंका निर्माण कर, उनमें पाँचसौ धनुष ऊँचे जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करती है। उस प्रकार कार्य करनेवाले भरतेश्वरको इस पूजनमें क्या बड़ी बात है?

भगवान् आदिनाथ स्वामी जब मुक्ति जायेंगे उस समय १४ रोज-तक भरतेश्वर जो भगवान्की पूजा करेंगे वह लोकमें दुर्लभ हैं। उस समय देवलोक, नरलोक व नागलोकके सर्व भव्य भरतेशके वैभवको सिर झुकायेंगे। दो आँखें तो उसे देखनेके लिये पर्याप्त नहीं हैं। यह केवल पर्व दिनमें की गई सामान्य संकल्प-पूजन है। अन्तमें सम्राट्ने सबको गन्धोदक दिलाया।

अब १२ बजेका समय हो गया। गायक आदि भरतेशकी आज्ञा पाकर चले गये। वृद्धव्रतिक भी भरतेशके चरणोंको नमस्कार कर चले गये।

आज अपनी रानियोंके साथ सम्राट् इसी मन्दिरमें जागरणसे रहने वाले हैं। यह जानकर मुनिगण "हे भव्य! सुखसे रहो" इस प्रकार आशीर्वाद देकर नगर मध्यके अन्य मन्दिरमें चले गये। इसी प्रकार अजिकायें भी चली गईं। अपनी रानियोंको छोड़कर शेष सबको सम्राट्ने आज्ञा दी कि अब आप लोग चले जाइये। अब एकाशनके लिए बहुत देरी हो गई है।

अब मन्दिरमें लोकांत नहीं रहा है। एकांत हो गया है। आज सम्राट् व्रतसतियोंके साथ धर्मचर्चा आदिसे ही समय व्यतीत करेंगे।

वाचकोंको आश्चर्य होगा कि भरतेश्वर धर्म कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो उसमें भी सर्व राजवैभवको भूलकर तन्मय हो जाते हैं। इस प्रकारकी एकाग्रताको धारण करनेकी सामर्थ्य उनमें विद्यमान है। आश्चर्य है।

वे सदा परमात्माके चिन्तवनमें इस प्रकार लगे रहते हैं कि हे चिदंबरपुरुष! आप व्यापारशून्य हैं, महाशून्य हैं, सुज्ञान दीपक है, लोकमें एक मात्र प्रतापस्वरूप है। निर्लेप हैं, परन्तु मेरे हृदयमें लेपित-के समान बने रहे। हे सिद्धात्मन्! जिधर देखें उधर प्रकाशके स्वरूपमें आप दिखते हैं, आप ही मोक्षके बीज हैं। इसलिए मेरे चित्तमें भी प्रकाश देकर सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि सर्व कार्योंमें उनकी तन्मयता होती है।

इति पर्वाभिषेक संधि

--०--

अथ तत्वोपदेश संधि

सम्राट् भरत विधिपूर्वक त्रिलोकीनाथका अभिषेक कर चुके हैं। अब आदिप्रभुकी वंदना कर वे अपनी देवियोंके साथ स्वाध्यायशालामें चले गये। यह स्वाध्यायशाला अत्यंत विस्तृत व प्रकाशमय है। वहाँ-पर सूखे घाससे निर्मित संयम आसन बिछे हुए हैं। सभी आसनोंके बीचमें एक सोनेकी चौकी रखी हुई है।

राजयोगी भरत मध्यवर्ती आसनपर विराजमान हुए। इधर-उधरके आसनोंपर उनकी सभी देवियाँ विराजमान हो गईं। उस समयका दृश्य ऐसा मालूम होता था कि मानों ये सब योगीके द्वारा सिद्ध विद्या की अधिदेवतायें हैं। उस स्वाध्याय गृहमें सुगन्धित गुलाब जल नहीं है। कोई हवा करनेवाले भी नहीं हैं और न कोई चामर ही ढार रहे हैं। उन लोगोंके मुखसे भी कामसंबंधी कोई वचन नहीं निकलते और भोगके नामका भी स्मरण नहीं है। केवल मोक्षमार्गमें ही उस समय उनका चित्त था।

यदि वे लोग परस्पर बोलते तो धार्मिक विषयोंपर ही बोलते थे। यदि परस्पर एक दूसरेको देखते तो मद कामसे रहित शांतदृष्टिसे ही देखते थे। जब किसी धर्मचर्चामें आनन्द आता तब ही वे हँसते थे,

अन्य कारणसे नहीं। उस दिन वे एक दूसरेके शरीरको स्पर्श नहीं करते थे। कदाचित् वैयावृत्य करनेके विचारसे स्पर्श करते भी तो भरतको एक तपस्वी समझकर ही स्पर्श करते।

विचार करनेकी बात है। उन लोगोंका सुख किस श्रेणीका है? आजका उपवास किस प्रकारका है? इतना ही नहीं, पति-पत्नी एक साथ रहनेपर भी मनमें जरा भी विकारका अंश नहीं है। इसे ही वास्तविक तप कहते हैं।

लोकमें स्त्री और पुरुष अलग रहकर अपने ब्रह्मचर्य व्रतको बतला सकते हैं। परन्तु एक साथ रहकर भी मनमें कोई विकार उत्पन्न न होने देना यह तलवार की धारपर चलना है।

ऐसे भी बहुतसे देखे जाते हैं जो पहिले व्रत तो ले लेते हैं फिर स्त्रियोंको देखकर विचलित होते हैं। परन्तु लोगोंके भयसे किसी तरह रुके रहते हैं। उनको थोडा ब्रह्मचारी कहना चाहिये।

कोई कोई भरी सभामें व्रत तो लेते हैं, फिर सुन्दर स्त्रियोंको देखकर मन ही मन काशीफलके समान सड़ते रहते हैं। क्या यह व्रत है या आडंबर है? इस व्रत संकल्पके ग्रहण करनेके बाद उसे सर्पके समान अत्यंत मजबूतीसे पकड़ रखना चाहिये। कदाचित् हाथको ढीला करे तो जिस प्रकार वह सर्प काटकर अपना सर्वनाश करता है उसी प्रकार व्रत भी सर्वनाश करता है।

जिस समय किसी पदार्थको हम लोग भोगते हैं उस समय तन्मय होकर उसे अच्छी तरह भोग लेना चाहिए। जिस समय उसका त्याग करते हैं उसके बाद उसका स्मरण भी नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं, उसकी हवा भी न लगने पावे इस प्रकारकी चतुरता रखनी चाहिये।

एक बार स्त्री त्याग करनेके बाद फिर वह स्त्री आकर आलिंगन करे तो भी अपने हृदयमें कोई विकार न होने देना असली ब्रह्मचर्य है। सामने स्त्रियोंको देखकर मनमें पिघलना नकली ब्रह्मचर्य है।

जिनके हृदयमें दृढता है, भावमें शुद्धि है, वे स्त्रियोंसे बोलें तो उनका क्या बिगड़ना है? उनकी ओर देखें तो क्या होता है? हँसें तो क्या होता है? इतना ही नहीं, स्पर्श करें तो भी क्या है? उनके मनमें जरा भी विकार उत्पन्न नहीं होता है।

पानीके स्पर्शसे केलेके पत्ते भीग सकते हैं। परन्तु क्या कमलके पत्ते भीग सकते हैं? इसी प्रकार स्त्रियोंके संबंधमें निर्बल हृदयवाले

विकारी हो सकते हैं। धीरोंके हृदयमें उसका कोई प्रभाव नहीं हो सकता है। राजा भरत व उनकी स्त्रियाँ व्रतशूर थे। चित्तको अपने वशमें करनेमें प्रवीण थे, इसलिए उस दिन घोर ब्रह्मचर्यको लेकर चित्तमें जरा भी ढिलाई न लाकर अपने व्रतमें दृढ़ थे। इसलिये उन्हें धर्मवीर कहना चाहिये।

सचमुचमें देखा जाय तो बात भी यही है। लोकमें जो चोरीसे भोजन करता है, यदि उसे किसीने बीचमें ही रोक लिया तो मनमें बड़ा दुःखी होता है। किसी मनुष्यका पेट पूर्ण रूपसे नहीं भरता हो तो उसे खानेकी आकुलता रहती है। परन्तु इन लोगोंको सुखकी क्या कमी है! अत्यन्त तृप्त होकर सुखको प्रतिदिन भोगनेवालोंने यदि एक दिनके लिये उसका परित्याग किया तो उन्हें क्या कष्ट हो रहता है? कुछ भी नहीं। जिस प्रकार सूर्यके उष्णप्रतापमें तृप्त होनेपर भी नीचे शीतल जल रहनेसे कमल सूखता नहीं, उसी प्रकार उपवासकी गर्मी रहनेपर भी धर्मकथारूपी शीतल अमृतके होनेसे उन्हें उपवासके तापका अनुभव बिलकुल नहीं हो सका।

बीचके दर्भासनपर चक्रवर्ती विराजमान हैं। वे बीच बीचमें इधर-उधर बैठी हुई अपनी देवियों की ओर देखते हैं। परन्तु आज ये उनकी स्त्रियोंके रूपमें नहीं दिख रही हैं, अपितु ये सब तपस्विनी हैं, इस प्रकार वे समझ रहे हैं।

इसी प्रकार वे स्त्रियाँ भी जब कभी भरतेशकी ओर देखतीं या उनके साथ बात करतीं तो अपना पति समझकर नहीं बोलतीं अपितु आचार्य हैं, इस प्रकार समझकर देखतीं व बोलती हैं।

सम्राट् भरतेशने सोचा, कुछ धर्मचर्चा करनी चाहिये। इस अभिप्रायसे वे अपनी स्त्रियोंसे कहने लगे कि तुम लोगोंको आज बड़ा कष्ट हुआ होगा। हमारे संसर्गसे कहीं उपवास व्रतसे ही तो ग्लानि नहीं हुई? उन देवियोंने सम्राट्से प्रार्थना की, स्वामिन्! हम लोगोंको उपवासका कोई कष्ट ही नहीं हुआ है। अब जिस समय आपका उपदेश सुननेको मिलेगा, उस समय हमें उपरिम स्वर्गके देवोंसे भी अधिक सुखका अनुभव होगा। फिर ग्लानि कहाँकी?

हम लोगोंने उदरपोषणके लिये अनन्त जन्म बिताये। परन्तु गुणनिधि! आत्मपोषणके लिये तो आपके पवित्रसंसर्गसे यही एक जन्म मिला है। हे राजयोगी! अंतरंगको नहीं जानकर बाहरके विषयोंमें

भटकती हुई हमने अनन्त भव-भ्रमण किया, परन्तु आपके संसर्गसे हमें यह सन्मार्ग प्राप्त हुआ है।

स्वामिन्! स्त्रियोंकी स्वाभाविक इच्छायें पुत्रोंको पानेकी, अच्छे अच्छे वस्त्रोंको पहननेकी एवं सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेकी हुआ करती हैं। परन्तु उन इच्छाओंको छुड़ाकर आपने हमें नित्य सुखके मार्गको बतलाया। सचमुचमें आप मोक्षरसिक हैं।

हे पर्वदिनाचार्य! उपवासके कष्ट तो रहने दीजिये! अब आप कुछ धर्मामृतका पान कराइयेगा, यही हम लोगोंकी प्रार्थना है। यह कह कर विनयवती व विद्यामणि नामक दो रानियोंको आगे बैठाकर सभी स्त्रियोंने धर्मोपदेश सुना।

भरतेश्वरने उपदेश प्रारम्भ करते हुए कहा विद्यामणि! सुनो! मैं भगवान् जिनेन्द्रके शासनको संक्षेपमें कहूँगा।

अनन्त आकाशके बीच तीन वातवलय अत्यन्त दीर्घरूपसे व्याप्त हैं।

जिस प्रकार तीन पैतरेकी थैलीमें हम कुछ भरकर रखते हैं उसी प्रकार तीन वातोंके बीचमें यह सर्व लोक है। जो ऊपर दिखता है, सो सुरलोक है। उस सुरलोकके अग्रभागमें मोक्षशिला है। उसपर अविनश्वर, अविचल, अनन्तसिद्ध विराजमान हैं। हम जहाँ रहते हैं वह मध्य लोक है। हे श्राविकी! इस मध्यलोकके नीचे अधोलोक है। इन ऊर्ध्व, मध्य व अधो नामक तीन लोकमें जीव सर्वत्र भरे हुए हैं एवं सुख दुःखका अनुभव करते हैं।

ऊर्ध्वलोकवासी देवोंको आदि लेकर नीचे के जीव हैं वे सब जन्म-मरणके दुःखको अनुभव करते हैं। परन्तु सुनो! सिद्धोंको जन्ममरणादि दुःख नहीं है।

कभी नर सुर बनते हैं, सुर नर बनते हैं, कभी वे ही नारकी बनते हैं। एवंच हाथी, पशु, फणि व वृक्ष आदि अनेक योनियोंमें जाकर कर्मवश भ्रमण करते हैं। इस प्रकार जीवोंको अनेक प्रकारकी पर्याय कर्मके कारणसे प्राप्त होती है।

यह जीव कभी दरिद्र कहलाता है, कभी धनिक कहलाता है, कभी स्त्री होकर उत्पन्न होता है और कभी पुरुष। इस प्रकार कर्मके संयोगसे यह अनेक प्रकारके दुःखोंका अनुभव करता है।

इतनेमें विद्यामणि हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और पूछने लगी कि स्वामिन्! आपने कहा कि संसार दुःखमय है। सिद्ध लोकमें सुख है।

उस अविनाशी सुखको प्राप्त करनेका क्या उपाय है ? हम लोगोंको उसका मार्ग बतलाइये ।

सम्राट्ने कहा देवि ! कर्मके जालको जो नष्ट करते हैं वे सब सिद्धोंके समान ही सुखी होते हैं।

फिर उसने प्रश्न किया कि स्वामिन् ! आपने यह तो ठीक कहा परंतु यह बतलाइये कि कर्मको नाश करनेका उपाय क्या है ? इसका मर्म भी हमें जरा समझा दीजिये ।

देवी ! सुनो ! जिनेंद्र भक्ति, सिद्ध भक्ति आदि सत्क्रियाओंसे उस कर्मका नाश किया जा सकता है। विचार करनेपर वह जिनेंद्रभक्ति तथा सिद्धभक्ति भेद व अभेदके रूपसे दो प्रकारकी है। अपने सामने जिनेंद्र भगवान् व सिद्धोंकी प्रतिकृतिको रखकर उपासना करना भेदभक्ति है। अपनी आत्मामें ही उनको विराजमान उपासना करना अभेद भक्ति है। विशेष क्या ? पहिले तो भक्तिके ही अभ्यासकी आवश्यकता है। भेद-भक्तिका अच्छी तरह अभ्यास होनेके बाद अभेद भक्तिका अभ्यास करें तो कर्मका नाश हो सकता है। कर्मको नाश करनेके लिये अभेदभक्ति-पूर्वक आराधनाकी ही परमावश्यकता है।

तदनंतर वह विद्यामणि खड़ी होकर पुनः प्रार्थना करने लगी स्वा-मिन् ! आपकी दयासे हमें भेदभक्तिके स्वरूपका ज्ञान व अभ्यास है। परंतु अभेदभक्तिमें चित्त नहीं लगता है। उस दिव्य भक्तिके विषयमें हमें अवश्य समझा दीजिये।

देवी ! जिस प्रकार तुम जिनवास (जिनमंदिर) में सामने भगवान् को रखकर उनकी उपासना करती हो उसी प्रकार तनुवासमें यदि अपनी आत्माको रखकर उपासना करो तो वही अभेदभक्ति है।

यह आत्मा वर्तमान शरीर प्रमाण है। शरीरके भीतर रहनेपर भी उससे अलग है। पुरुषाकाररूप है। चिन्मय है, इसे ऐसा जानकर देखें, तो उसका दर्शन होता है।

एक स्फटिककी शुद्ध प्रतिमा जिस प्रकार धूलकी राशिमें रखनेपर दिखती है, उसी प्रकार इस देहरूपी धूलकी राशिमें यह शुभ्र आत्मा ढका हुआ है इस प्रकार जानकर उसे देखनेका यदि प्रयत्न करें तो वह अंदर दिखता है। स्फटिककी प्रतिमाको चर्मचक्षुओंसे देख सकते हैं, हाथोंसे स्पर्श कर सकते हैं, परंतु वह कोई विलक्षण मूर्ति है। इसे न चर्मचक्षुसे देख सकते हैं और न हाथसे स्पर्श कर सकते हैं। इसे तो आकाशके रूपमें बनाई हुई स्फटिककी मूर्ति समझो। उसे ज्ञानचक्षुसे ही

देखना पड़ेगा। संसारका लोभ बहुत बुरा है। पर पदार्थोंके मोहने ही इस आत्माको उस अभेद भक्तिसे च्युत किया है इसलिये सबसे पहिले आशा-पाशको तोड़ो। आशाओंको कम करनेके बाद एकांतवासमें जाकर आँख मींचकर उसका चिंतवन करो तो उस अवस्थामें वह अत्यंत शुभ्ररूप होकर सामने अवतरित हो दिखता है।

उसे देखनेका प्रयत्न करें तो भी वह एक ही दिनमें नहीं दीख सकता है। अभ्यास करते करते क्रमसे उसका दर्शन होता है। परंतु यह अवश्य है कि एकाध दिनमें वह न दिखे, तो भी आलस्य न कर बराबर प्रयत्न करना चाहिये। अध्यात्मका अभ्यास करना चाहिये।

हे सुखकांक्षिणि ! इस प्रकारकी अभेदभक्तिसे कर्मोंका नाश होता है। मुक्तिकी प्राप्ति होती है। सभी धर्मोंमें यही उत्कृष्ट धर्म है। सज्जन इसे स्वीकार करते हैं। जिनका होनहार खराब है ऐसे अभव्य इसे स्वीकार नहीं कर सकते।

विद्यामणि देवी फिर उठकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर अत्यंत भक्तिसे प्रार्थना करने लगी स्वामिन् ! इस अभेदभक्तिका अभ्यास पुरुषों को ही होता है या स्त्रियोंको भी हो सकता है इसका रहस्य जरा हमें समझा दीजियेगा।

देवी ! सुनो ! वह भक्ति दो प्रकारकी है। एक धर्म व दूसरा शुक्ल। यद्यपि कहनेमें दो प्रकार दिखती है, परंतु विचार करनेपर दोनों एक ही है, कारण दोनोंका अवलम्बनरूप आत्मा एक ही है।

भक्तिका अभ्यास करते समय या ध्यान करते समय यदि आत्म-प्रकाश अल्प प्रमाणमें दिखा, तो उसे धर्म ध्यान समझना चाहिये। यदि विशिष्ट प्रकाश हुआ, तो उसे शुक्ल ध्यान समझना चाहिये। देवी ! एक तो वर्षाकालकी धूप है, और दूसरी ग्रीष्मकी धूप है। इतना ही दोनोंमें अंतर है।

जो इसी भवसे मुक्तिको प्राप्त करनेवाले हैं उनको शुक्ल ध्यानकी प्राप्ति होती है। जो क्रमसे अपनी कर्मसंतानको नाशकर मुक्ति जायेंगे उनको धर्म्ययोगकी प्राप्ति होती है।

स्त्रियोंको इस जन्मसे ही मुक्ति नहीं होती है। इसलिये उन्हें शुक्लध्यानकी प्राप्ति स्त्रीपर्यायमें नहीं होती। किन्तु, निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है, धर्म्ययोगको स्त्रियां भी धारण कर सकती हैं। इसपर विश्वास करो।

देवी ! समवशरणमें कितनी ही अजिकायें व संयमी श्राविकायें श्री भगवान् ऋषभदेवके उपदेशसे इस धर्म्ययोगको धारण करती हैं।

इस धर्म्ययोगसे स्त्रीपर्यायका नाश होता है, निश्चयसे देवगतिकी प्राप्ति होती है, एवंच क्रमसे मोक्षकी भी प्राप्ति होती है। यह जिनेन्द्र की आज्ञा है इसपर निश्चयसे विश्वास करो।

उपर्युक्त उपदेशसे प्रसन्न होकर विद्यामणि बैठ गई। उसी समय विनयवती नामकी रानी उठकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी स्वामिन् ! देवगतिमें जाकर जन्म लेनेके लिये कौनसे भावकी जरूरत है और किन भावोंसे मनुष्य होकर उत्पन्न होते हैं। इस बातोंको जरा हमें समझा दीजिये।

सम्राट्ने कहा कि देवि ! पुण्यमय भावोंसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। पाप विचारोंसे नरक व तिर्यंचगतिकी प्राप्ति होती है। पुण्य व पाप दोनों विचारोंकी समानतासे मनुष्य गतिकी प्राप्ति होती है।

इतनेमें विनयवती फिर हाथ जोड़कर कहने लगी कि वह पुण्यभाव किन साधनोंसे प्राप्त होता है और पाप विचारके कारण क्या है ? इन बातोंको स्पष्टकर समझानेकी कृपा करें।

देवी ! सुनो, दान देना, पूजा करना, व्रतोंका आचरण करना, शास्त्रोंका मनन करना आदि पुण्य प्राप्तिके साधन हैं। अभिमान, मायाचार, क्रोध, लोभ, भोगासक्ति आदि सब पापके कारण हैं। इसी प्रकार कुलजातिकी मर्यादाका उल्लंघन न करके चलना, जीवदया, तीर्थक्षेत्रकी वन्दना करना आदि पुण्यके कारण हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व अतिकांक्षा आदि बातोंसे पापका बंध होता है।

एक बात विचारणीय है। जो आत्मा पाप और पुण्यके आधीन होकर क्रिया करता है वह संसारमें परिभ्रमण करता है। जो पाप पुण्यको समदृष्टिसे देखकर अपनी ही आत्मामें ठहरता हो वह अधिक समय यहां न ठहरकर सिद्ध शिलापर चला जाता है।

विनयवती फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन् ! स्वर्गसुखका अनुभव करनेवाले पुण्य व दुर्गतिको ले जानेवाले पापको समदृष्टिसे देखनेका उपाय क्या है ? इसे भी जरा अच्छी तरह समझा दीजिये।

देवी ! स्वर्गका सुख भी नित्य नहीं है, और नारकियोंकी वेदना भी नित्य नहीं है। दोनों अवस्थाएँ दो स्वप्नके समान हैं। इससे अधिक और भ्रम क्या है ? जिस प्रकार एक मनुष्य वृक्षपर चढ़कर आनन्दसे

हँसता है, फिर नीचे गिरता है उसी प्रकार देव स्वर्गमें दिव्य सुखोंको अनुभव कर नीचे भूतलपर पड़ते हैं। जिस प्रकार कोई बच्चा किसी गड्ढेमें गिरकर रोते-पीटते ऊपर चढ़ आता है उसी प्रकार नारकी जीव भी नरकके दुःखोंको अनुभव कर ऊपर आते हैं। जन्म-मरण स्वर्गमें भी हैं, नरकमें भी हैं। शरीरभार भी दोनों जगह है। स्वर्गका शरीर चार दिन सुन्दर दिखता है। वहाँ चार दिन सुख मालूम होता है। नरकका शरीर चार दिन दुःखमय प्रतीत होता है। इतना ही अन्तर है।

देवी ! नारकी देह क्या और देवोंका देह क्या ? एक तो लकड़ी का बोझ है तो दूसरा चन्दनकी लकड़ीका बोझा है। दोनोंमें वजन की दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है। इतना ही स्वर्ग व नरकमें भेद है। ज्ञान-रूपी शरीरको धारण कर पौद्गलिक शरीरभारसे रहित हो अपने स्वाधीनरूपमें ठहराना ही मुक्ति है। ऐसा न करके उच्चनीच शरीरके आधीन होकर भटकनेसे पुण्य पापका बन्ध अवश्य होता रहेगा।

देवी ! देखो ! दर्पणपर कीचड़का लेपन करो, चाहे चन्दनका लेपन करो। दोनों प्रकारसे दर्पणकी स्वच्छता नष्ट होती है। वह प्रतिबिंबको दिखानेका काम नहीं कर सकता है। इसी प्रकार पुण्य व पाप दोनोंके सम्बन्धसे आत्माकी स्वच्छता नष्ट हो जाती है।

जिस प्रकार दर्पणपर लिप्त चंदन व कीचड़को घिसकर निकालने-से दर्पण स्वच्छ होता है, उसी प्रकार पाप व पुण्यको आत्मयोगरूपी पानीसे धोकर निकालनेसे आत्मा अपने स्वरूपमें अर्थात् मुक्तिमें लीन हो जाता है।

देवी ! पाप पुण्यका त्याग एकदम नहीं किया जा सकता है। पहिले मनुष्यको पापक्रियाओंको छोड़नी चाहिये। पुण्य क्रियाओंमें अपनी प्रवृत्ति करनी चाहिये फिर आत्मयोगको साधन करनेके लिए अभ्यास करना चाहिये। जब उसकी सिद्धि हो जाय, तब पुण्य क्रियाओंका भी त्याग कर देना चाहिये। जिस प्रकार धोबी कपड़ेको साफ करनेके लिये पहिले उसे मसालेके पानीमें भिगोकर रखता है, तदनंतर स्वच्छ पानीसे धोता है तब कहीं वस्त्र निर्मल होता है। केवल मसालेके पानी-में डुबे रखनेसे ही वह कपड़ा स्वच्छ नहीं हो सकता है। इसी प्रकार पहिले पुण्यवासना द्वारा पापवासनाका लोप करना चाहिये। केवल इतनेसे ही काम नहीं चलेगा। यदि उस पुण्य वासनाको भी आत्मयोग-से नहीं धोवें, तो आत्मा जगत्पूज्य कभी नहीं बन सकता है। यहाँपर

वस्त्रके मलके स्थानपर पाप है। मटमैले पानीके स्थानपर पुण्य है। स्वच्छ पानीके स्थानपर आत्मयोग है। पहिले कुछ पुण्य संपादन करना उचित है। आत्मयोगमें जो रत है, उसे पुण्यकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये मैंने तुम्हें कहा भी था कि पुण्य व पापको समदृष्टिसे देखो। देवी ! यह जिनेन्द्रका वाक्य है। इसपर श्रद्धा करो।

विनयवती प्रसन्न हुई। अब चंद्रिकादेवी नामकी रानी अन्य कुछ रानियोंकी शंकाको लेकर खड़ी हुई व प्रार्थना करने लगी, स्वामिन् ! आपने हमें अभीतक यह उपदेश दिया कि पुण्य व पापको समदृष्टिसे देखकर छोड़ देना चाहिये, परन्तु इसमें कितना तथ्य है यह समझमें नहीं आता। कारण यदि ऐसा नहीं होता तो आप पुण्य कृत्यको क्यों कर रहे हैं ? जिनेन्द्रभगवान्की पूजा करना, मुनियोंको आहारदान देना, शास्त्रोंका स्वाध्याय व मनन करना, सज्जनोंकी रक्षा व दुर्जनोंकी शिक्षा, उपवास आदि बातें क्या पुण्यबंधकी कारण नहीं हैं ? इनको आप क्यों कर रहे हैं ? केवल हमें ही उपदेश देना है क्या ?

चंद्रिकादेवी ! ठीक है। तुमने बहुत सूक्ष्मदृष्टिसे विचार कर यह प्रश्न किया है। तुम्हारे हृदयमें जो शंका उपस्थित हुई वह साहजिक है। अब तुम अच्छी तरह सुनो, मैं तुम्हें समझाऊँगा, भरतेश्वरने कहा।

देवी ! मैं पुण्य क्रियाओंको करता हूँ, क्योंकि मैं घरमें रहता हूँ। जबतक मैं घरमें रहूँ, तबतक गृहस्थोंकी मर्यादाका मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। षट्कर्मोंका पालन करना मेरे लिये अनिवार्य होगा। दिगंबर दीक्षाको ग्रहण करनेके बाद पुण्यकर्मकी अपेक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, फिर पुण्यक्रियाओंको एकदम छोड़ना चाहिए, परंतु राज्य शासन करते हुए पुण्यक्रियाओंको छोड़ देना राजाका लक्षण नहीं।

देवी ! मान लो, मैं कदाचित् आत्मानुभव होनेसे पुण्यवृत्तिको छोड़ भी दूँ, परन्तु इस विषयमें लोग भी मेरा अनुकरण करेंगे अर्थात् वे भी पुण्य विचारोंको छोड़ देंगे। उन्हें आत्मयोग तो प्राप्त नहीं है। वे पुण्य क्रियाओंको छोड़ ही देंगे, फिर तीव्र पापबन्ध करके व्यर्थ ही दुःख उठायेंगे इसलिये पुण्यवृत्तिके मार्गको दिखाता हूँ।

चंद्रिकादेवीने पुनः प्रार्थना की स्वामिन् ! आपने कहा पुण्य पाप दोनों बंधके कारण हैं। दोनों हेय हैं। अब कहते हैं कि दूसरोंका अहित न हो इसलिए मैं पुण्याचरण कर रहा हूँ। अब आप ही कहियेगा कि दूसरोंके लिये भी यदि मनुष्य हेय कार्यको करें तो उससे बंध

होगा या निर्जरा होगी। निर्जरा तो हो नहीं सकती, कर्मबंध ही होगा। इसलिए आप ऐसा कार्य क्यों करते हैं? इस बातको हमें अच्छी तरह समझाइये।

भरतेश्वरने कहा देवी! सुनो! चित्तको अपनी आत्मामें स्थिर कर बाहरकी सब क्रियाओंको ज्ञानी उदासीन भावसे करता है। वैसा करनेपर भी उसे कोई बंध नहीं होता है। यह ध्यानका प्रभाव है, उसे जरा अच्छी तरह समझो।

जैसे सौतेली स्त्रीको प्रेम व इच्छासे यदि रहनेको कहें तो रहती है उसे यदि उपेक्षा भावसे कहें तो अपने पास नहीं रह सकती है। इसी प्रकार जो कर्मको अच्छा समझकर आदरपूर्वक स्वागत करते हैं उनके पास तो वह रहता है, अच्छीतरह बंधको प्राप्त होता है। जो उसे तिरस्कार दृष्टिसे देखते हैं उनके पास वह क्यों रहने चला? इससे वह शीघ्र ही निकल जाता है।

गीली मिट्टीके घड़े या तेलके घड़ेके ऊपर पड़ी हुई धूलके समान शुद्धात्मयोगको नहीं जाननेवाले अज्ञानी प्राणियोंका बन्ध है। नवीन सूखे मटकेपर पड़ी हुई धूलके समान तो आत्मरसिकोंका बन्ध है। ज्ञानीको भोग करनेपर भी कर्मबन्ध नहीं है। सागार धर्ममें रहनेपर भी वह अनगारके समान रहता है।

तब फिर आपको उपवास आदि झंझटमें पड़नेकी क्या आवश्यकता है! क्योंकि भोगनेपर भी आपको बन्ध तो होता ही नहीं। फिर आरामसे महलमें क्यों नहीं रहते! चन्द्रिकादेवीने थोड़ा हँसकर कहा।

देवी! इतने जल्दी भूल गई मालूम होता है। मैंने कहा था कि भोगमें अत्यासक्ति करना कर्मबन्धका कारण है। इसलिये कुछ समयके लिये ही क्यों न हो, भोगको त्यागनेके लिये इन उपवासादिकको मैं करता हूँ; और कोई बात नहीं है।

चन्द्रिकादेवी कहने लगी कि स्वामिन्! यह सब आपके परिचित विषय हैं, इसलिये सब प्रकारसे आत्मसाधन आप करते है, हमें वह आत्मभावना नहीं आती है। उसका उपाय क्या है? उसे तनिक समझा दीजियेगा।

देवी! किसीको भी परमात्मयोगकी प्राप्ति नहीं होगी ऐसा मत कहो! किसी किसीके हृदयमें वह आत्मभावना प्रकट होती है। जिनको उसका अभ्यास है, वे आत्मध्यान करती रहें, जिनमें शक्ति नहीं वे उन

ज्ञानकारोंकी वृत्ति देखकर प्रसन्न होती रहें। परमात्मध्यान ही मुक्तिका साक्षात् कारण है, इस बातपर श्रद्धाकर सभी लोग पुण्याचरणको पालन करें, अवश्य ही मुक्तिका मार्ग भविष्यमें तुम लोगोंको दिखेगा।

चन्द्रिका देवी प्रसन्न होकर बैठ गई। इतनेमें ज्योतिर्माला नामकी रानी उठकर राजर्षि भरतसे प्रश्न करने लगी कि स्वामिन्! शास्त्रोंमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी रत्नत्रय मुक्तिका साधन है ऐसा कहा है; परन्तु आप कहते हैं कि आत्मयोग ही मुक्तिका साधन है। यह आगम-विरोधी उपदेश आपने क्यों दिया?

भरतेश कहने लगे कि ज्योतिर्माला! तुमने रहस्यको जानकर ही यह प्रश्न किया है। अच्छी बात है, तुम्हारे विवेकपर मुझे प्रसन्नता हुई। अब सुनो मैं समझाता हूँ। तीन रत्न और आत्मामें कोई अन्तर नहीं है। आत्माके स्वरूपको ही रत्नत्रय कहते हैं। दर्शन व ज्ञान ये आत्माके स्वरूप हैं। दर्शन ज्ञान स्वरूपमें स्थिर भावसे रहनेको चारित्र कहते हैं। इसलिये ये तीनों बातें आत्मासे भिन्न नहीं हैं।

देवी! रत्नत्रय दो प्रकारका है। आप्तागमगुरुओंका श्रद्धान व जानकर व्रतादिकोंमें लगे रहना व्यवहार रत्नत्रय है। गुप्तरूपसे आत्माका ही श्रद्धान करना, जानना तथा लीन रहना यह निश्चय रत्नत्रय है। पहिले तो व्यवहार रत्नत्रयका आश्रय करना चाहिये। बादमें निश्चयमें ठहर जाना चाहिये। देवी! उसी समय आत्माका संसार संबंधी दुःख नष्ट होता है और मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

इतनेमें ज्योतिर्मालाको एक शंका उत्पन्न हुई। कहने लगी स्वामिन्! आपने यह कहा कि भगवान्की श्रद्धा करना व्यवहार और आत्माकी श्रद्धा करना निश्चय है तो क्या भगवान्से भी बड़ा आत्मा है? यह बात तो हमारी समझमें नहीं आई। आप अच्छी तरह समझाइये।

भरतेश अपने मनमें विचार करने लगे कि अध्यात्मयोग अनुभवमें ही आने योग्य विषय है। वह दूसरोंको कहने में नहीं आ सकता है। यदि नहीं कहें, तो मुक्तिकी प्राप्ति भी नहीं होती है। इन अबलाओंका व्यर्थमें अकल्याण नहीं होना चाहिये, इनको किसी उपायसे समझाना चाहिये।

सचमुचमें सम्राट् अत्यन्त विवेकी थे। वे हर एकके अन्तरंगको अच्छी तरह जानते थे। इसलिये वे प्रकट रूपसे कहने लगे।

देवी! शुद्धात्मयोग भगवान्से भी बढ़कर है यह अभी कहना उचित नहीं है। इस बातकी यथार्थताको तुम आगे जाकर ठीकठीक समझोगी।

अभी तो श्रीपंच-परमेष्ठियोंकी उपासना करो। भगवान् या पंचपरमेष्ठी आत्मासे भी बढ़कर हैं, परन्तु आत्मासे भिन्न रखकर उनकी पूजा करें तो वह उत्कृष्ट नहीं है। भगवान् अपनी आत्मामें हैं ऐसा समझकर उपासना करना यही उत्कृष्ट धर्म है।

देवी ! भगवान्‌को बाहर रखकर उपासना करोगी, तो उससे पुण्यबंध होगा। उससे स्वर्गादिक सुखकी प्राप्ति होगी। यदि भगवान्‌को अपनी आत्मामें रखकर उपासना करोगी तो सर्व कर्मोंका नाश होकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होगी।

कांसेमें, पीतलमें, सोनेमें, चाँदीमें व पत्थरमें भगवान्‌की कल्पना कर उपासना करना वह व्यवहारभक्ति है, भेदभक्ति है दूसरे शब्दमें इसे कृत्रिमभक्ति भी कह कहते हैं। अपनी निर्मल आत्मामें भगवान्‌को रख कर यदि उपासना करें तो वह अभेदभक्ति है, निश्चयभक्ति है या उसे ही परमार्थभक्ति कह सकते हैं।

देवी ! तुम्हें अब ज्ञात हुआ होगा कि व्यवहारमार्गको ही भेदमार्ग कहते हैं। निश्चयमार्गको अभेदमार्ग कहते हैं।

अभेदमार्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह कर्मरूपी सर्पके लिये गरुड़के समान है। इसलिये हमने तुम्हें कहा भी था सम्पूर्ण दुर्भावोंको अलग कर शुभभावको धारण करो, और उस शुभभावसे, उस अभेदमार्गकी प्राप्ति करो जिससे तुम्हें मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है।

वह ज्योतिर्माला देवी प्रार्थना करने लगी स्वामिन् ! यह आपका कहना बिलकुल ठीक है। उस पवित्र मार्गको ग्रहण करना आपके लिये सरल है, परन्तु यह हमारी स्त्रीपर्याय है। हमारा वेष व आकार भी स्त्रीत्वसे युक्त है। आपने यह कहा था कि वह आत्मा पुरुषाकार रहता है, तो ऐसी अवस्थामें हम स्त्रियोंको उस पुरुषाकारी आत्माका ध्यान कैसे हो सकता है ? जरा यह समझानेकी कृपा करें।

देवी ! सुनो ! आत्माकी भावना करते समय उसे स्त्रीके रूपमें ध्यान करनेकी जरूरत नहीं, और न उस समय अपनेको स्त्री समझनेकी जरूरत है। जिस प्रकारके भावसे उसे भावना करो उसी प्रकार वह दिखता है। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी अर्थात् जिसकी जैसी भावना है उसको वैसी ही सिद्धि होती है यह क्या तुम्हें मालूम नहीं है ?

देवी ! पहले पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत इस प्रकार चार

योगोंमें अपनेको लगाकर फिर स्वयं अपने आपमें ठहरना चाहिये ! उसका क्रम कहता हूँ, सुनो !

देवी ! पंचनमस्कार मंत्रके जो ३५ अक्षर हैं उनको अपने हृदयमें पाँच पंक्तियोंमें लिखकर देखो। वह पाँच मोतीके हारोंके समान मालूम होते हैं। इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं।

चंद्रकांतमणिसे निर्मित एक उज्ज्वल प्रतिमा स्फटिकके घड़ेमें जिस प्रकार रहती है उसी प्रकार यह आत्मा इस देहमें रहता है ऐसा एकाग्रचित्तसे विचार करना पिण्डस्थयोग है।

कोटिसूर्य व कोटिचंद्रके समान प्रकाशको धारण करनेवाले श्री आदिनाथ भगवान् हैं इस प्रकार ध्यान करना। हे देवी ! वह रूपस्थ ध्यान है।

सर्व कर्मोंसे रहित, निरुपम, निर्मल, निश्चल, चिद्रूपस्वरूप अनंतसुखी ऐसे सिद्ध भगवंत हमारे शरीरमें हैं ऐसी कल्पना कर एकाग्र चित्तसे चिंतवन करना रूपातीत ध्यान है।

देवी ! पहिले इन चारों ध्यानोंका अभ्यास कर बादमें तीन ध्यानोंको छोड़कर केवल पिण्डस्थ ध्यानसे ही ठहरनेकी आवश्यकता है, ज्ञानीगण इसी ध्यानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करते हैं।

पिण्डस्थ ध्यानमें ही बाकीके सब ध्यान पिण्डित होकर रहते हैं। इसी पिण्डस्थ ध्यानसे ही कर्म खण्डित होते हैं और आत्माको अखण्डित सुखकी प्राप्ति होती है।

देवी ! जप, स्तोत्र, दीक्षा, व्रत, स्वाध्याय, तप आदि दूसरे सब सहायक हैं। इतना ही नहीं, इस पिण्डस्थ ध्यानके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि यह मुक्तिके लिए साक्षात् बीज है। जिनेन्द्र भगवान्का प्रियमार्ग है। इसे निर्भेदभक्ति भी कहते हैं।

देवी ! लोकमें दो प्रकारके प्राणी हैं। एक भव्य दूसरे अभव्य। जो लोग कभी मुक्तिको नहीं प्राप्त कर सकते और इस संसारके दुःखोंको अनुभव करते हुए अनाद्यनंत काल व्यतीत करते हैं वे अभव्य हैं। वे आत्मयोगकी अनेक प्रकारसे निन्दा करते हैं। इसको भव्य स्वीकार कर अनन्त सुखको पा लेते हैं।

देवी ! वे अभव्य जीव शास्त्रोंका पठन करते हैं। उपवासादिककर शरीर व पेटको सुखाते हैं। परन्तु उनका हृदय कठोर रहता है। वे पापी आत्मयोगको ढकोसला समझते हैं।

उनको तो आत्मयोगकी प्राप्ति नहीं होती, जिनको उसकी प्राप्ति होती है उनकी वे अभव्य निन्दा करते रहते हैं। कभी किसीने उन्हें उस विषयको समझाया भी तो उनसे विसंवाद करते हैं कि यह ध्यान स्त्रियों को प्राप्त नहीं हो सकता है। गृहस्थोंको प्राप्त नहीं हो सकता है। इत्यादि।

देवी! शास्त्रोंमें कहा है कि स्त्रियोंको व गृहस्थोंको शुक्ल ध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती है परन्तु ये अज्ञानी लोगोंको भड़काते हैं कि इनको धर्मध्यान भी नहीं हो सकता है। व्यवहार धर्मको तो ये मानते हैं, परन्तु निश्चय धर्मको ये स्वीकार नहीं करते हैं।

देवी! उन्हें कोई ध्यान शास्त्रका उपदेश देने जावे तो कई प्रकार का बहाना करते हैं और कहते हैं कि आत्मयोगको धारण करनेके लिये बहुतसे शास्त्रोंके अध्ययन करनेकी आवश्यकता है और निर्ग्रन्थ दीक्षाकी भी आवश्यकता है। ये बातें हममें नहीं हैं। इसलिये हम इस आत्मयोगको धारण नहीं कर सकते। परन्तु देवी! आश्चर्य है कि वे बहुतसे शास्त्रोंका पठनकर, निर्ग्रन्थ दीक्षासे दीक्षित होनेपर भी वे संसारमें भटकते रहते हैं।

देवी! आत्मध्यान अपनेसे हो सके तो अवश्य करना चाहिये, यदि उतनी शक्ति न हो ध्यानतत्वपर श्रद्धान तो अवश्यमेव करना चाहिये। केवल अपनेसे नहीं बने, तो ध्यानकी निन्दा करते रहना अभव्योंका कार्य है। इसलिये आप लोग इसपर अच्छीतरह श्रद्धान करो। आप लोगोंको ध्यानका उदय न होवे, तो भी कोई हानि नहीं है। सन्तोषके साथ भेदभक्तिका अभ्यास करती रहो, उसीसे आगे जाकर तुम लोगोंको मुक्तिकी प्राप्ति होगी। भगवत्पूजा, मुनिदान शासन-देवतासत्कार, जीवदया आदि सत्क्रियाओंका अनुष्ठान करो और आत्मकलापर श्रद्धान करो। आप लोगोंको अवश्य आगे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

देवी! जिस समय सूतक काल है या मासिक धर्म सदृश अशुभ समय है, उस समय उपर्युक्त शुभक्रियाओंका आचरण करना उचित नहीं है। उस समय अशुचित्वानुप्रेक्षाकी भावना करती हुई मौनसे रहना चाहिये।

इस प्रकार आप लोग उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करेंगी तो आप लोगोंका यह स्त्रीवेष दूर हो जायेगा और स्वर्गको पाकर अवश्य मुक्तिको भी प्राप्त करेंगी। यह सिद्धांत है, इसे अवश्य श्रद्धान करो।

इस प्रकार सम्राट् भरतेशके उपदेशको सुनकर ज्योतिर्माला आदि

सभी रानियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। इतना ही नहीं, उनको साक्षात् मुक्ति मिली हो इस प्रकार हर्ष हुआ। वे सब आनन्दके साथ कहने लगीं कि स्वामिन्! आपकी कृपासे हमें आज उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है, जो किसी भी जन्ममें नहीं प्राप्त हुआ था। अब हमें मुक्ति प्राप्त होनेमें क्या कठिनता है? स्वामिन्! आपके संगमें हम कृतकृत्य हो गई हैं। यह कहकर सभी रानियोंने भरतेश्वरके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया।

जब भरतेशने सबको उठनेके लिये कहा तब सब उठकर खड़ी हो गईं।

सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया है। सबने जान लिया कि अब जिनवंदनाका समय हुआ है। उसी समय वे रानियाँ उस विशाल जिन-मंदिरकी ओर चली गईं। इधर भरतेश स्वाध्यायशालामें ही रहे।

भरतेशकी रानियोंको उस जिनमन्दिरके मार्ग व भरतेशको स्वाध्याय मन्दिरमें छोड़कर हम अब जरा अपने प्रेमी पाठकोंके हृदयमन्दिर में जाते हैं। वे अपने मनमें विचार करते होंगे कि दिनभर उपवासयुक्त रहते हुए भी दोपहरसे लेकर सन्ध्यातक बराबर तत्वचर्चा चल रही है। भरतेश व उनकी रानियोंको उपवासका कोई कष्ट नहीं हो रहा है। बात क्या है! विचार करनेपर मालूम होगा कि भरतेश रात-दिन परमात्माके प्रति इस प्रकारकी भावना करते थे कि हे परमात्मन्! संसार में एकमात्र आशापाश ही सर्व दुःखोंका कारण है। वही आत्माको दुःख समुद्रमें फँसाती है। इसलिये उस आशापाशको दूर करनेके लिये तुम्हारे सान्निध्यकी आवश्यकता है। एक क्षणभर भी मुझे नहीं छोड़कर मेरे पास ही बने रहो। मैं इधर उधरकी चिंता हटाकर सदा तुम्हारी भावना करता रहूँ। यही नहीं मुझे खाने पीनेकी ओर भी उपयोग लगानेका अवसर न मिले, जिससे सदाके लिये मेरे क्षुधादिक दुःख दूर हो जायेंगे। ऐसी अवस्थामें उनको उपवासका कष्ट क्यों कर हो सकता है? भरतेशसदृशकी सत्संगतिमें रहनेवाली रानियोंको भी वह कष्ट क्यों कर होने लगा? यह सब पूर्व जन्ममें अर्जित पुण्यका फल है।

जब कि इस तत्व चर्चाको अध्ययन करनेवाले हमारे पाठक भी थोड़ी देरके लिये भूखप्यासादिको भूलकर उसमें तन्मय हो जाते हैं तो उस चर्चामें साक्षात् भाग लेनेवाले उन पुण्यपुरुषोंको अलौकिक आनन्द आकर वे इतर विषयों को भूल जावें इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है?

इसीलिए पर्वाभिषेकके बाद तत्वोपदेशमें लगे हुए भरतेश व उनकी रानियोंको कोई भूख प्यासकी बाधा नहीं है। उसका कारण यह है कि उन्होंने अनेक भवोंसे भावना की थी कि अतृप्त चित्तको तृप्त करनेवाले हे परमात्मन्! क्षणमात्र भी अलग न होकर मेरे हृदयमें बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप सहज शृङ्गारके धारक हैं, सुज्ञान कलाके धारक हैं, अभंग भाग्यके नाथ हैं। इसलिए मेरे साथ रहकर मंगलमतिका दर्शन कीजिए।

इति तत्वोपदेश संधि

—o—

अथ पर्वयोगसंधि

उधर भरतेश्वरकी रानियां जिनेन्द्र मंदिरकी ओर चली गईं, इधर भरतेश भगवान्को अर्घ्यप्रदान कर ध्यान करनेके लिए बैठ गये। कभी कभी भरतेश्वरजी ध्यानके लिये कायोत्सर्गसे खड़े हो जाते हैं और कभी कभी पद्मासनसे बैठ जाते हैं। जब जैसी इच्छा होती है उसी प्रकार ध्यान करते हैं। आज वे पल्यंकासनसे बैठकर ध्यान करेंगे।

वज्रासन, कुक्कुटासन, वीरासन आदि कठिनसे कठिन आसन वज्रदेही भरतेशके लिये कोई कठिन नहीं है। फिर भी आज वे अपनी इच्छानुसार पद्मासनमें विराजमान होकर वज्रनिर्मित मूर्तिके समान हैं।

भरतेश्वरने पहिले ध्यानसाधनके प्रतिपादक प्राणावाय पूर्व नामक शास्त्रको जैन मुनियोंके स्वाध्याय करते समय सुना था। उसीके आधारपर आज वे ध्यानकी एकाग्रताके लिये वायुका संचार करने लगे।

शरीरमें दस प्रकारके वायु कौन-कौनसे स्थानमें रहते हैं यह वे जानते थे। इसलिए उन दसों वायुओंको एक-एकमें एक-एकको मिलाकर उनकी चंचलवृत्तिको हटाने लगे।

मूलाधार बंध, ओड्याण बंध, जालंध्र बंध आदि योग साधन कर, क्रमसे पतंगके डोरेको ऊपर चढ़ानेके समान अपनी वायुको ब्रह्मरंध्रपर चढ़ाने लगे हैं।

कुण्डल प्रदेशमें वातको चढ़ानेसे कामदेवका मद कम हो गया और मध्यप्रदेशमें वातके स्थिर होनेसे चंचलित एक स्थानमें स्थिर हो गया। कपोल स्थानमें वायुके स्तंभन करनेसे निद्राका विलय हो गया।

ललाट प्रदेशमें उस वायुके ठहरनेसे प्रमाद एकदम दूर हो गया। जब भरतेशने उस वायुको मस्तकमें ठहराया तब शरीरमें एकदम प्रकाश हो गया। अंधकार दूर हुआ। उस पवनके अभ्यासका क्या वर्णन करें? बहुत तीव्र क्षुधा, तृषा आदि एकदम कम हो जाती है। इतना ही नहीं विषभक्षण कर भी पवनाभ्यासके बलसे उसे जीर्ण कर सकते हैं।

इन सब रहस्योंको सम्राट् अच्छी तरह जानते थे। इसलिये उस राजयोगीने सबसे पहिले पवनसचारको स्तंभितकर आंखको आधी मींचकर नाकके अग्रभागमें धवल बिन्दुको देखा। उस समय उनकी आत्मामें और भी विशुद्धि बढ़ गई। अर्थात् वातसंचारको रोकनेसे अधिक एकाग्रता उत्पन्न हो गई।

अब अच्छी तरह आंख मींचकर भव्यकुलरत्न भरतेशने अपने शरीरमें पंक्तिबद्ध विकसितदल छह कमलोंको देखा। वे कमल ललाट, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिंग, पाद इन छह स्थानोंमें थे। क्रमसे उनके दलकी संख्या सोलह, बारह, दस, छह, पांच, चार थी। छह कमलोंके पचास दलोंमें सम्राट् पचास अक्षरोंकी स्थापना कर अत्यन्त एकाग्रतासे ध्यान करने लगे।

उन्होंने ह क्ष ये दो अक्षर और सोलह स्वर, क से लेकर ठ तक बारह अक्षर एवं पाक्षरसे लेकर लाक्षर तक, व साक्षर व काक्षरको उन दलोंमें स्थापित किया। उन कमलोंकी कर्णिकामें अर्हंकार व ओंकारकी कल्पनाकर एकाग्रचित्तसे पदस्थ ध्यानका चिंतवन किया।

वे भुज, पाद, मस्तक आदि शरीररूपी भुजपत्रयन्त्रमें अनेक अजित मन्त्रोंको लिखकर मनन करने लगे। उन दलोंपर स्थित अक्षर, यह मोतीका माला तो नहीं है, या निर्मल पानीकी बूंदें हैं? अथवा चांदनी के बीजकी राशि है? इस प्रकार विचार उत्पन्न करते थे।

अक्षरावलीपर ध्यानको स्थगित कर उसी समय सम्राट्ने भगवान् आदिनाथका दर्शन किया, उस समय भगवान् समवशरणमें विराजमान थे। भरतेश समवशरण सहित भगवान्का दर्शन अपने शरीरमें ही कर रहे हैं। भगवान् आदिप्रभुके समवशरणमें उनका परमौदारिक दिव्य शरीर, तेजयुक्त देवोंकी पंक्ति, दिव्यध्वनि आदि अतिशय भरतेशको साक्षात् दिख रहे थे। उस समवशरणका दर्शन कर उन्होंने भावपूजा की एवं उसी समय सिद्धलोककी ओर अपनी आत्माको भेज दिया। वहांपर तीन वातवलयोंको स्पर्श न कर केवलज्ञान दर्शन व सुखके ही

आधारमें रहनेवाले श्री सिद्धपरमात्माकी अत्यन्त भक्तिसे पूजन की व उनका ध्यान किया।

उन अनन्त सिद्धपरमात्माओंकी भक्ति कर अब सम्राट्ने ध्यान के अभ्यासको स्थगित किया। वे एकदम अब अभेद भक्तिकी ओर गये। अब उन्होंने इन्द्रिय व मनकी गति रोककर शरीररूपी जिनगृहके अन्दर तत्क्षण परमात्माका दर्शन प्रारम्भ किया मानों हाथपर रखे हुये दर्पणको ही देखते हों। अब भरतेश्वरको अपने शरीरके अन्दर प्रकाश ही प्रकाश दिखता है। जहाँ देखते हैं ज्ञान है, दर्शन है, सुख है, तीन लोकमें परम सुन्दर उस आत्माको उन्होंने उस समय साक्षात्कार किया।

परमात्मा इस शरीरके अन्दर ही है, परन्तु जो लोग बाह्य पदार्थोंको जानकर बाह्यपदार्थोंकी ओर ही उपयोग लगाते हैं उनको वह परमात्मा कभी दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह मापने व तौलनेमें नहीं आ सकता है। गिननेमें भी नहीं आ सकता है, ऐसा विचित्र पदार्थ है वह। भरतेशने उसे देख ही लिया। जिस प्रकार अनन्त आकाशको लाकर एक घड़ेमें भर दिया हो उस प्रकार अंगुष्ठसे लेकर मस्तकपर्यन्त आत्माको पूर्णतः देख लिया या यों कहिये कि भरतेशने तत्वोंका अन्त ही देख लिया।

उस समय भरतेशके विचारमें कोई चंचलता नहीं, शरीर जरा भी इधर उधर हिलता नहीं। मनमें कोई चंचलता नहीं है। इधर उधरका विकल्प नहीं, केवल अपनी आत्मामें मग्न हो गये हैं। शरीरका स्पर्श रहनेपर भी नहीं के समान है, जैसे सिद्धपरमात्मा तनुवातवलयसे स्पृष्ट होनेपर भी उससे बिलकुल पृथक् हैं।

भरतेशको उस समय यह अनुभव हो रहा था कि मैं चन्द्र मण्डलमें प्रवेश कर चुका हूँ। उसी प्रकार वह आत्मकांति न दिखने पर उन्हें ऐसा मालूम होता था कि अब चन्द्रमण्डल मेघोंसे आच्छादित हो गया है। उस समय कुछ अन्धकार मालूम होने लगता था। उसी समय फिर वह अपने विचारोंमें दृढ़ता लाते थे। तत्क्षण वह अन्धकार दूर होता था। परमात्माके प्रकाशकी जागृति होती थी। एक क्षणमें वहाँ अन्धकार फिर प्रकाश इस प्रकार क्रम क्रमसे होता था। जिस प्रकार स्वप्न व अर्धनिद्राकी अवस्थामें होता हो उसी प्रकार उस समय भरतेशको आत्मसाक्षात्कार हो रहा था।

जिस समय उन्हें प्रकाश दिख रहा था उस समय परमात्माको

दर्शन होता था और उस समय उनको आनंद भी होता था। जिस समय चंचलता आती थी उस समय एकदम अंधकार होता था और उसी समय कुछ दुःख भी होता था अर्थात् भरतेश एक ही समय मोक्ष व संसारकी दशाका अनुभव करते थे।

अब उनके चारों ओर प्रकाश हैं, ज्ञान है, सुख है, शक्ति है। जैसे कोई आकाशको देख रहे हो, वैसे ही अपने शरीरस्थ आकाशरूप आत्माको वे देख रहे हैं। आकाशमें चित्र खींचनेके समान वहांपर भी आत्माके स्वरूपको चित्रित कर रहे हैं।

उनको अपने शरीरके अंदर सूर्यसे भी अधिक प्रकाश दिख रहा है परन्तु उसमें उष्णता नहीं है। आश्चर्य यह है कि उसमेंसे कर्म बराबर जलकर निकल रहे हैं। उष्णतासे रहित अग्नि कर्मको जला रही है इस आश्चर्यप्रद घटनाको सम्राट् देख रहे हैं।

जिस प्रकार आकाशमें अनेक वर्णके मेघपटल इधर उधर संचार करते हैं उसी प्रकार सम्राट्के ध्यानसे कर्मकी जड़ ढीली होकर वे बराबर नष्ट हो रहे थे। उनको भरतेश देख रहे हैं। जिस प्रकार कोयलेके पानीसे स्नान करनेपर कोयला उतरता हुआ पानी दिखता है उसी प्रकार पापवर्गणायें उतरती हुई दिखती थीं। लाल या पीले पानीसे स्नान करते समय उतरते हुए पानीके समान पुण्यकर्म निकलते जा रहे थे।

जिस प्रकार पानी पहाड़को कोरता है उसी प्रकार कर्मरूपी पहाड़को सम्राट्का ध्यानरूपी पानी कोर रहा है। जिन ! जिन ! आश्चर्य है ! ध्यानतत्वकी बराबरी करनेवाला लोकमें क्या है।

जिस प्रकार सूर्यकी धारके समान पानी बरसें तो गीली मिट्टीका घड़ा पिघलकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार ध्यानवर्षासे तैजस व कार्मण शरीर बराबर पिघलकर जा रहे थे।

गरुड़को देखनेपर सर्पका विष अपने आप उतर जाता है, उसी प्रकार भरतेशके ध्यानमें जैसी एकाग्रता आती जाती थी उसी प्रकार कर्मरूपी विष उतरता जाता है साथमें अपनी आत्मामें ज्ञान तथा सुखकी मात्राकी वृद्धि होती है।

जिस प्रकार ध्यानकी गठरीकी रस्सीको ढीला करनेपर उससे ध्यान बाहर गिर जाता है उसी प्रकार कर्मकी गठरीकी रस्सीको ढीला करनेपर कर्मरेणु भी बाहर गिरते हैं। केवल ध्याताको ही दिखते हैं।

इस रहस्यको उसके सिवाय अन्य कोई जान नहीं सकते।

जिस प्रकार हाथको पीछे मोड़कर मजबूत बांधे हुए चोरका जैसे जैसे बंधन ढीला होता जाय वैसे-वैसे सुख बढ़ता है, उसी प्रकार कर्मका बंधन जैसे-जैसे शिथिल होते जाय वैसे ही सुखकी वृद्धि होने लगी।

क्षण-क्षणमें जैसे जैसे आत्माको देखते जाते हैं, वैसे वैसे कर्म संतानका ह्रास होता जाता है। जैसे जैसे कर्मका नाश होता जाता है वैसे ही परमात्माके गुणोंकी वृद्धि होती जाती है।

कर्मोंको धीरे धीरे कम करके सम्राट् एक विशाल व सुन्दर आत्मभवन तैयार कर रहे हैं जैसे कि एक चतुर कारीगर टाँकीसे पत्थरको उकेरकर सुन्दर मंदिरका निर्माण करता हो। कभी कभी आत्माको ज्ञान व कांतिके साथ देख रहे हैं और कभी केवल ज्ञानरूप ही देख रहे हैं। अर्थात् कभी निर्विकल्पकरूपसे उसका अनुभव होता है और तत्क्षण विकल्पकी उत्पत्ति होती है। विकल्पके बाद निर्विकल्प, उसके बाद विकल्प इस प्रकार बराबर परिवर्तन होता है। जैसे जलमें पवनके संचार होनेसे उसमें तरंगें उठती हैं एवं पवनके स्थिर होनेसे जल भी शांत रहता है उसी प्रकार इस आत्माकी भी अवस्था है। चित्तमें चंचलता होनेसे विकल्पोंकी उत्पत्ति और चित्तमें स्थिरता होनेसे निर्विकल्पक अवस्था होती है। निर्विकल्पक अवस्था बहुत देरतक रह नहीं सकती, क्योंकि ध्यानका उत्कृष्ट समय अंतर्मुहूर्त बतलाया है। इसलिये उसके बाद तो विकल्पकी उत्पत्ति होनी ही चाहिये।

कभी भरतेश विचार करते हैं मैं भिन्न हूँ, मेरा शरीर भिन्न है उससे कर्म भिन्न है। उसी समय मैं शब्दको वे भूल जाते हैं, एकदम सिद्धोंके समान परमानंदमें मग्न हो जाते हैं। ध्यानकी अवस्थामें आत्माको देख रहे हैं और साथ ही कर्मोंके पतनको भी देख रहे हैं। उन्हें कर्मोंका नाश करनेवाली इस अद्भुत विद्यापर प्रसन्नता भी होती है। प्रसन्नता के मारे अन्दर ही अन्दर कभी कभी भरतेश गुनगुनाते हैं कि हे परमगुरु परमाराध्य गुरु हंसनाथ। तुम्हारी जय हो। कभी इसे भी भूलकर वे फिर एकाग्रावस्था में मग्न होते हैं। फिर उसमें भी आनंद आनेपर एकदम कह उठते हैं श्री निरंजनसिद्ध! सिद्धान्तसार नित्यानंद तुम्हारी जय हो! उनका यह कहना उन्हींको सुननेमें आता है। दूसरा कोई भी उसे सुन नहीं सकता।

उस समय भरतेश साक्षात् ऐसे मालूम होते थे मानो उज्ज्वल अदृष्ट व अश्रुतपूर्व चाँदनीमें एक उज्ज्वल मूर्तिकी स्थापना की हो। इतना ही

क्यों ? कहीं वे चन्द्र व सूर्योंके समूहमें ही जाकर बैठे तो नहीं हैं, या जिनेन्द्रकी समवसरणादिक सम्पत्ति ही वहाँ एकत्रित नहीं हुई अथवा अनन्तसिद्धोंके बीचमें जाकर तो नहीं बैठे ? इस प्रकार राजयोगीद्रको उस समय अनुभव हो रहा था ।

उस समय पंचेन्द्रियका सम्बन्ध नहीं है। यही क्या ? देवेन्द्रके सुख-को भी सामने रखे तो वह भी फीका पड़ता है। इस प्रकार भरतेश प्रमादरहित होकर अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करने लगे ।

जब निर्विकल्पक विचारसे स्थिरता आ जाती थी तब सर्वांगमें शांति का अनुभव होता था। इतना ही नहीं स्व और परका भी विकल्प वहाँपर नहीं रहता था। आनन्दसागरको अब भरतेश एक छोटेसे पात्र-में भरकर पीने लगे। जैसे-जैसे वे पीते जाते थे वैसे-वैसे वह समुद्र उमड़ता ही जाता था। उस समुद्रमें तरंग नहीं है, फेन नहीं, पानी नहीं वह लोकके समुद्रके समान नहीं है। मगर, मत्स्य, सर्प आदि दुष्ट जानवर उस समुद्रमें नहीं हैं। भूमिका स्पर्श वह नहीं करता है। ध्यानीके सिवाय और किसीको भी देखनेमें वह समुद्र नहीं आ सकता है। भरतेश्वर उस समुद्रमें बराबर डुबकी लगा रहे हैं। वहाँ पहिले भोगे हुए पंचेन्द्रिय-विषयसम्बन्धी भोग अत्यल्प प्रमाणमें दिखते हैं। केवल श्री आदिप्रभु ही उस आनन्दसागरको जानते हैं। वहाँपर यह वीर जलक्रीड़ा कर रहे हैं। वह कितना उच्च सुख होगा।

उस आत्मसुखको भोग सकते हैं, परन्तु दूसरोंको उसकी व्याख्या कर कहना अशक्य है। आकाशमें चारणमुनियोंका विहार हो सकता है, परन्तु जिस मार्गसे वे गये उस मार्गमें भला उनके पदोंके चिह्न मिल सकते हैं ? कभी नहीं।

उस समय सम्राट् अपनेमें अपने लिये, अपनेको ठहराकर और अपने द्वारा ही अपनेको देखकर अपनेमें उमड़े हुए सुखको बराबर भोग रहे थे। बाहरकी क्रीड़ासामग्रीके बिना ही क्रीड़ा कर रहे हैं। रस्सी आदि वगैरहके बिना ही झूला झूल रहे हैं। स्त्रीके बिना ही रतिसुख-का अनुभव कर रहे हैं। सुखकी अपेक्षा न करते हुए चिद्गुणान्नका आहार कर रहे हैं, शरीरके बिना ही रूपका दर्शनकर रहे हैं। ऐश्वर्य-के बिना ही आज वे अत्याधिक श्रीमान् हैं। क्या ही विचित्रता है।

बाहरसे जो उन्हें देखते हैं उनको वे राजाके समान दिखते हैं। किन्तु भीतर अन्दर वे राजयोगी हैं। साथमें निजानन्दरसको भी बरा-बर भोग रहे हैं। इसलिये भोगी भी हैं।

बाहरसे देखें तो आभरण हैं, वस्त्र हैं परन्तु अन्दरसे ध्यानके सिवा और कुछ भी नहीं। ऐसा मालूम होता है कि वास्तविक सिद्धपरमेष्ठिको वस्त्र व आभरणसे सजाकर बैठा दिया हो।

कभी-कभी आभरणोंको निकालकर केवल धोती पहनकर वे ध्यान करनेके लिए बैठते थे और कभी आभूषणोंको वैसा ही रखकर ध्यान करते थे। परन्तु बाहरसे ही सब कुछ रहता था। अन्दरसे उनका कुछ भी प्रभाव नहीं था।

भरतेश्वरका शरीर सग्रन्थ है, परन्तु आत्मा उस समय निर्ग्रन्थ है। इस विचित्र दशामें उन्हें अलौकिक सुखका अनुभव हो रहा है।

अब भरतेशके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बह रहा है। सम्भवतः वह आत्मानन्द उमड़ कर बाहर आ रहा है। सारे शरीरमें रोमांच हो गया है, परन्तु वे अपने ध्यानमें मग्न हैं। परमात्मसुखको भोगकर भरतेश कुछ पुष्ट हो गये हैं, इसलिये गलेके मोतीका हार जरा अब तंगसा हो गया है।

भेदभक्तिमें उन्होंने पहिले ध्यानका अभ्यास किया था तदनन्तर वे अभेद भक्तिमें आरूढ़ हो गये। उस समय वे पहिलेके सर्व सुखको भूलकर अपने स्वरूपमें लीन हो गये। यदि कोई युवती आकर भरतेशको आलिंगन दे तो भी उनको मालूम नहीं हो सकता है। अर्थात् वे इतनी एकाग्रतासे बाह्य सब विषयोंको भूलकर अपनी आत्मामें मग्न हो गये हैं।

जिस प्रकार मूसलाधार पानी बरसते समय लोग स्तब्ध होकर अपने मकानमें बैठे रहते हैं, उसी प्रकार बाहरके सब विषयोंको भूलकर भरतेश अपने आत्मराज्यमें लीन हो गये हैं।

क्या वे स्वर्गलोकमें हैं? ज्योतिर्लोकमें हैं? बहिर्लोकमें हैं? नरलोकमें हैं या नागलोकमें हैं? नहीं! नहीं! वे अंतर्लोकमें विद्यमान हैं।

भेद विज्ञानरूपी छेनीद्वारा शरीरको भेदकर वे वहांपर परमात्माकी स्थापना कर उसकी उपासना कर रहे हैं। इस प्रकार भरतेश अत्यन्त एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न हो गये हैं।

उधर चतुर्मुख मन्दिरमें सायंवन्दनके लिये गई हुई भरतेश रानियाँ उत्तम अभिप्रायके साथ भगवान् आदिप्रभुकी स्तुति प्रारम्भ करेंगी इसकी सूचना देनेके लिए ही मानो सूर्यदेव अस्ताचलकी ओर चला गया। उस समय सायंकालकी लालिमा दिखने लगी मानो वह चन्द्रमुखी स्त्रियोंकी जिनभक्तिका ही बाह्य चिह्न है। इनके लिये आकाश

हो पुण्यके रूपमें मानो परिणत हुआ हो इस प्रकार तारायें आकाशमें चमकने लगीं।

समवशरणमें दिव्यध्वनिके खिरनेका यही समय है, ऐसा समझकर उन स्त्रियोंने भगवान् ऋषभदेवके चरणकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

उस समय उन स्त्रियोंमें न आलस्य था, न प्रमाद और न इधर-उधरकी कोई बातचीत थी। उन्होंने सन्तोष, शांति व भक्तिके साथ श्री जिनेन्द्र भगवन्तकी स्तुति की।

वंदनाष्टक

स्वामिन्! आप जन्म जरा मृत्युको दूर कर चुके हैं! तपोधनरूपी कमलके लिए आप सूर्यके समान हैं। कामदेवको आप जीत चुके हैं। कामदेव बाहुबलीके आप पिता हैं। ज्ञानस्वरूप हैं। प्रथम तीर्थंकर हैं।

भगवान्! दिव्यध्वनिरूपी लक्ष्मीके आप पति हैं। आपके पादकमलोंकी दश दिक्पालक देव उपासना करते हैं। आप ही आदि ब्रह्मा हैं। केवलज्ञान व केवल दर्शन ही आपका स्वरूप है।

त्रिलोकदीप! आपका ध्वज सत्यस्वरूप है। सदा आनन्दमें आप मग्न रहते हैं। सर्व प्रकारके बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहोंसे आप रहित हैं और सद्बोधसे सहित हैं। आप किसीके अवलंबनमें नहीं। त्रिभुवनके प्राणियोंके द्वारा आप स्तुत्य हैं।

पवित्रात्मन्! आप अपनी अत्यन्त धवलकीर्तिसे तीन लोकको व्याप्त कर चुके हैं, कोटिचन्द्र सूर्यके समान आपका तेज है। आप अत्यन्त निष्पाप हैं। आपकी जय हो!

स्वामिन्! आपके दरबारमें देवगण उपस्थित होकर आपकी रात-दिन स्तुति करते हैं एवं भक्तिवश सुरपटह, अशोकवृक्ष, भामण्डल आदि अतिशयोंको उत्पन्न करते हैं! इस प्रकार आप अत्यन्त वैभवसे युक्त हैं।

भगवन्! आपके वचन उत्तम तरंगोंसे युक्त गंगानदीके जलसे भी अधिक शीतल हैं। उसके अंगप्रविष्ट, अंगबाह्य आदि भेद होते हैं। वही जैनशास्त्र है।

त्रिलोकीनाथ! आप कर्मोंके लेपसे रहित हैं। आपकी सेवामें देवेंद्र भी हाथ जोड़कर सदा खड़ा रहता है, आपकी वन्दना व भक्ति करता है, स्वामिन्! अपने कल्याण करनेवालेकी स्तुति कौन न करेगा? आप

शरीरको लोप करनेके लिये संजीविनीका दान करते हैं। आपकी जय हो।

दयानिधि ! आपका लांछन वृषभ है, इसलिए आप वृषभचिह्नसे युक्त हैं। वृषध्वज आप हैं। वृषभमुख नामक यक्षके आप अधिपति हैं। आप वृषभ तीर्थंकर हैं। वृषभ जिनेश्वर हैं। वृषभ नायक हैं। वृषभके अधिपति हैं। इत्यादि प्रकारसे अनन्त भक्तिपूर्वक भगवान् आदिप्रभु की स्तुति करती हुई वे रानियाँ जिनमन्दिरमें शुभोपयोगसे अपने समय को व्यतीत कर रही थीं। इतनेमें उस स्वाध्यायशालामें एक अद्भुत घटना हुई।

जिस समय भरतकी रानियाँ जिन मंदिरमें संध्यावंदनके लिये चली गई, उस समय भरतेश एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न हो गये। यह विषय हम पहले विवेचन कर चुके हैं। उस समय भरतेशके आतिशय ध्यानकी महिमाको देखनेके लिये वहाँपर वनदेवी, नगरदेवी, जलदेवी आदि शासनदेवियाँ उपस्थित हुई व मनुवंशतिलक सम्राट् भरतके ध्यानको देखकर वे चकित हो गईं।

आत्मारामको साधन करनेवाले राजयोगीके अचल ध्यानको देखकर उन व्यंतर देवताओंके हर्षका पारावार नहीं रहा। अंगुष्ठसे लेकर मस्तकतक वे बारीकीसे सम्राट्को देखती हैं, परंतु वे पत्थर जैसे ध्रुव हैं। कभी वे देवियाँ उनको हाथ जोड़ती हैं, कभी हर्षसे सिर झुकाती हैं, कभी पूजा करती हैं, कभी चामर लेकर ढार रही हैं, तो कोई पुष्प-वृष्टि कर रही है और कोई भक्तिसे आरती उतार रही है।

वे देवियाँ धीरे धीरे भरतेशकी स्तुति करने लगीं। साथमें झांक झाँककर रानियोंके मार्गको भी देख रही थीं। कुछ देवियाँ आश्चर्य-चकित होकर दूरसे खड़ी खड़ी भरतेशको देख रही हैं।

बाहरसे यह सब उत्सव हो रहा है। इन सबको भरतेश जानते हैं या नहीं ? जिस समय वे ध्यानमें एकाग्रतासे लीन हैं उस समय तो उनको इन बाह्यक्रियाओंका अनुभव नहीं होता है, परंतु यदि बीचमें चंचलता उत्पन्न हो जाय तो ध्यान भी विचलित हो जाता है। विचलित अवस्थामें उनको बाहरके देवताओंका उत्सव भी दिखता था, परंतु इससे सम्राट्को कोई हर्ष नहीं होता था। वे अत्यंत उदासीन भावमें उनको देखते थे, कारण कि भरतेश आत्मतत्वके प्रभावको जानते थे। जो लोग अविवेकको छोड़कर आत्मस्वरूपका दर्शन करते हैं, उनके चरणमें तीन लोकतक शिर झुकाता है, तो व्यंतर देव आकर सेवा करें

इसमें आश्चर्य क्या है ? इस प्रकार समझकर अत्यंत शांतभावसे अपनी आत्माका चिंतन कर रहे थे।

कर्मकी गति अत्यंत विचित्र है। भरतेशको इससे संतोष हुआ कि सभी रानियाँ जिनदर्शनके लिये चली गईं। अब मैं अकेला बैठकर अच्छी तरह ध्यान कर सकूँगा, परंतु एकाकी रहनेको पूर्व पुण्य कहाँ छोड़ता है ? स्त्रियोंके चले जानेपर भी व्यंतरदेवियाँ भरतेशकी सेवामें उपस्थित हुईं। सचमुचमें उस समयके दृश्यका क्या वर्णन करें ?

वह स्वाध्यायमण्डप नवरत्नमय था। उस नवरत्नमय मंदिरमें भरतेश भगवान्‌के समान मालूम होते थे। अनेक देवियाँ वहाँपर श्री भगवान्‌की पूजा व भक्ति कर रही थीं. रात्रिका एक प्रहर बीत गया।

भरतेश बाहरके विषयोंसे अपने विकल्पको हटाकर अपनी आत्मामें मग्न थे। अब उनकी रानियाँ मंदिरसे स्वाध्यायमण्डपकी ओर जानेके लिये निकलीं। संध्याकालमें वृद्ध पूर्जेंद्रके द्वारा की गई पूजाको अत्यंत भक्तिसे देखकर श्रद्धांजलिसे त्रिलोकीनाथको नमस्कार करती हुई लोकोद्धारक अपने पतिकी सेवामें वे स्त्रियाँ अब आ रही हैं।

उस दिन उनके साथमें कोई दासी नहीं है। इतना ही नहीं उनके शरीरमें कोई भी आभरण नहीं है। अत्यंत पवित्र तपस्विनियोंके समान वे मालूम होती हैं। प्रतिदिन वे यदि कहीं जाती हैं तो उनके साथ दीपकको ले चलनेवाली दासियाँ भी रहती हैं। परंतु उनके साथ आज कोई दीपकवाली दासी नहीं है। क्या वे स्वत:अपने हाथमें दीपक लेकर चल नहीं सकती हैं ? नहीं ! नहीं ! उनको दीपककी आवश्यकता ही नहीं है। बहुमूल्य रत्नजड़ित अँगूठियोंके प्रकाशसे ही वे बराबर मार्गको देख रही थीं। यह भी जाने दो। मोती व पद्मराग मणियोंसे निर्मित मंदिरके कलश, परकोटा आदिके रत्नोंकी कांतिसे सहसा भ्रम होजाता था कि कहीं यह दिन तो नहीं है ?

इन सतियोंको दूरसे ही आती हुई देखकर व्यंतर देवियाँ एकदम अदृश्य हो गईं। भरतेश ध्यानमें मग्न है, देवताओंने उनकी पूजा की, अब मनुष्यस्त्रियाँ आकर उनकी पूजा करेंगी। वे रानियाँ दूरसे ही खड़ी ही ध्यानस्थ सम्राट्‌को देखने लगीं। ऐसा प्रतीत होता था कि मेरुपर्वत ही साक्षात् पुरुषके आकारमें इस स्वाध्यायमण्डपमें विराजमान है।

सोनेकी चौकीके दोनों ओर निर्मित जिन व सिद्धकी मूर्तिसे वह स्वाध्यायशाला शोभित हो रही थी। भृङ्गार, कलश, दर्पण, चामर,

रत्न, तोरण आदि मंगलद्रव्य भी यत्र तत्र रखे हुए हैं। रत्नदीपककी पंक्ति भी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही थी। भरतचक्रवर्तीकी योग-शाला उस समय हर तरहसे रत्नमय ही हो गई थी। पाठक भूले न होंगे कि यह सब अतिशय व्यन्तरदेव कर गये हैं।

सूर्यलोकसदृश उस रत्नमण्डपमें प्रवेश कर उन रानियोंने योगि-राज भरतेश्वरको तीन प्रदक्षिणा दी तथा वहाँ बैठ गई।

अब उन लोगोंने विचार किया कि कुछ धर्मचर्चा करनी चाहिये। यद्यपि भरतेश ध्यानमें बैठे हैं, तो भी इनकी बातचीतसे उनको कोई विघ्न नहीं हो सकता है; कारण जिसने प्रारम्भके ध्यानका अभ्यास किया है, इधर-उधरसे हल्ला गुल्ला होनेपर उसके चित्तमें क्षोभ हो सकता है; परन्तु ये तो स्वरूपध्यानी हैं, इसलिये इनके चित्तमें बाह्य विषयोंसे क्षोभ उत्पन्न नहीं हो सकता है। अतएव उन लोगोंने विचार किया कि अपने लोग आध्यात्मिक चर्चा करें।

जिस शास्त्रमें परमात्मरत्नका वर्णन हो उसे स्त्रियोंने रत्नोंके प्रकाशसे पढ़ना प्रारम्भ किया। वह भोजनकथा नहीं है, वह जार व चोर कथा भी नहीं है। संसारकी विषय-वासनाओंकी ओर खींचनेकी कथा भी नहीं है। वह तो आत्मसाधनकी कथा है।

भरतचक्रवर्तीने पहिले भगवान् आदिप्रभुके समवशरणमें जाकर आत्मतत्त्वके विवेचनको जानकर उसे सर्व साधारणको समझने योग्य भाषामें आत्मप्रवाद नामक ग्रन्थकी रचना की थी। उसीका स्वाध्याय ये स्त्रियाँ कर रही हैं। कलियुगमें कुंदकुंदाचार्य परमयोगीने जिस प्रकार प्राभृतशास्त्रका निर्माण किया, उसी प्रकार सत् युगमें भरतयोगीने उस शास्त्रका निर्माण किया था।

कलियुगमें जिस प्रकार अमृतचन्द्रसूरिने समयसार नाटककी रचना कर आत्मकलाका प्रदर्शन किया, उसी प्रकार कृतयुगमें चक्रवर्ती भर-तेशने उक्त ग्रन्थमें परमात्मकलाका अच्छीतरह दिग्दर्शन कराया था।

योगीन्द्रस्वामीने प्रभाकर भट्टको जिस प्रकार बहुत मृदुशब्दोंमें परमात्मकथाको सुनाया है, उसी प्रकार भरतयोगीने अज्ञानियोंको भी परमात्मतत्त्वमें रुचि उत्पन्न हो जाय इस विचारसे उक्त ग्रन्थमें सुन्दर व मृदुशब्दोंसे विषयविवेचन किया था।

पद्मनन्दि योगीके द्वारा निर्मित स्वरूपसम्बोधन, पूज्यपाद स्वामी विरचित समाधिशतकके समान ही उक्त ग्रन्थमें तत्त्वविवेचन किया

गया था। ज्ञानार्णव, योगरत्नाकर, रत्नपरीक्षा, आराधनासार आदि सिद्धांतोंके समान ही उक्त ग्रन्थमें आत्मतत्त्वका प्ररूपण किया गया था। विशेष क्या ? इष्टोपदेश, अष्टसहस्री व कुंदकुंदाचार्यकृत अनुप्रेक्षा शास्त्रके समान ही आत्माको आह्लादित करनेवाला वह महान् ग्रन्थ था। संक्षेपसे विचार किया जाय तो वह नियमसारके समान था। विस्तारसे वह प्राभृतशास्त्रके समान था।

भरतेशने उन स्त्रियोंको सिखाया था कि आप लोग इधर-उधरके बहुतसे शास्त्रोंको, जिनसे आत्महित होनेकी कोई सम्भावना ही न हो, पढ़कर अपना अकल्याण न कर लेवें, केवल अपने आत्महितके साधक इस अध्यात्मसारका अध्ययन करें।

लोकमें अगणित शास्त्रोंको पढ़नेपर भी आत्म-कल्याण करनेकी भावना उत्पन्न न हुई तो उन शास्त्रोंके पढ़नेका क्या प्रयोजन है। इसलिये ऐसे ही शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये, जिससे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हो सके। जो लोग ध्यानके साधक शास्त्रोंका अध्ययन नहीं करते और ख्याति, लाभ व पूजाके लिये अन्य अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं, सचमुचमें वे मूर्ख हैं। वे नीच प्रकृतिके हैं, वे कृत्रिम नेत्ररोगसे युक्त रीछके समान हैं। लोकमें उनकी हँसी होती है।

सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार अध्यात्मचिंतन है और वही निष्कलंक तपश्चर्या है। वही मुक्तिका बीज है इत्यादि अनेक प्रकारसे भरतेशने उनको उपदेश दिया था। इसलिये उन सब बातोंका स्मरण करती हुई अत्यन्त एकाग्रताके साथ वे स्वाध्यायमें दत्तचित्त हो गई हैं। कोई भी आपसमें इधर-उधरकी बातें नहीं करती हैं। केवल आध्यात्मिक चर्चा करती हुई ही वे पर्वोपवासी साध्वियाँ अपने समयको व्यतीत कर रही हैं।

वे रानियाँ भरतेशके द्वारा निर्मित अध्यात्मसारको पढ़ रही हैं। क्या उस पुस्तकमें आत्मा मौजूद है ? नहीं, नहीं, पुस्तक तो यह कहती है कि आत्मा तुम्हारे शरीरमें है, तुम अपने ही स्थानमें देखो।

वे स्त्रियाँ विचार कर रही हैं कि अभीतक हम लोग बाह्यमें ही मोहित होकर स्वरूपबाह्य हो रही थीं, हमें अब प्राह्य अध्यात्म मिल गया है। हमारा अब कल्याण होगा।

इस समय उनमेंसे कुछ स्त्रियाँ कई तरहके वाद्योंको लेकर उनके साथ प्राभृत शास्त्रके अर्थोंको गाने लगीं। कोई-कोई वीणाके साथ

अत्यन्त मधुर स्वरके साथ गा रही हैं। उस समय रात्रिके १२ बजे हैं। इसलिए उस समयके लिए उचित देसि, रामाक्षि, भैरवि, कुरुंजिका आदि रागोंके क्रमको जानकर ही वे अत्यन्त मृदुमधुर शब्दोंसे गा रही थीं, जिससे सब लोगोंका आलस्य दूर हो जाय।

लोकमें और कोई स्त्रियाँ उपवास करें, तो वे उठ ही नहीं सकती हैं। किसी तरह उठती पड़ती दिन और रात पूरा करती हैं, परन्तु ये रानियाँ इस चातुर्यसे आलाप कर रही थीं कि सात बार भोजन किये हुए गायक भी उतना अच्छी तरह नहीं गा सकता था। अर्थात् उन स्त्रियोंको उपवासका कोई आयास नहीं था, वे अत्यन्त उत्साहसे आत्मकार्यमें मग्न हैं।

इस प्रकार उनमेंसे कुछ स्त्रियाँ साहित्य और संगीतरसमें मग्न थीं, कुछ जप करनेमें दत्तचित्त थीं, और कुछ जिनसिद्धबिम्बोंको अपने हृदयमें स्थापन कर दाहिने हाथमें जपमालाको सरकाती हुई पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूपको चिंतन करती थीं। कुछ स्त्रियाँ पंचमंत्रका जप कर रही थीं और कुछ अपने चंचलचित्तमें निश्चलता लाकर ध्यानका प्रयत्न करने लगी थीं। जिस प्रकार भरतेशने ध्यानके लिए आदेश दिया है उसी प्रकार वे निश्चलतासे बैठकर आँखोंको बंद कर, अक्षरात्मक ध्यानको करने लगी हैं, उस ध्यानमें वे कभी कमलासन आदि-ब्रह्मा भगवान् आदिनाथका दर्शन करती हैं, और कभी लोकाग्रवासी सिद्धोंका दर्शन करती हैं। इनके ध्यानमें निश्चलता नहीं। एक क्षणमें भगवान्का दर्शन होता है, दूसरे क्षण विलय होता है। क्या वह ध्यानतत्व इतना सरल है कि भरतेशके समान सबको अवगत हो जाय? नहीं।

ध्यान साक्षात् रूपसे पुरुष ही करते हैं, स्त्रियाँ ध्यानकी भावना करती हैं। इधर-उधरके विकल्पोंको हटाकर यदि वे स्त्रियाँ निश्चल चित्तसे ठहरती हैं, तो वह ध्यान नहीं, अपितु ध्यानका स्मरण है। ध्यानकी भावना है।

इस प्रकार भरतकी सतियाँ कोई शब्दब्रह्मसे (स्वाध्याय) कोई गीतनादब्रह्मसे (गायन) और कोई योगब्रह्मसे (ध्यान) उस रात्रिको व्यतीत कर रही थीं। इस प्रकार जब वे स्त्रियाँ ब्रह्मत्रय पूजामें मग्न थीं, उस समय भरतेश अपने निश्चल परब्रह्ममें मग्न थे। कभी वे शुद्धोपयोगमें मग्न होते हैं, तो कभी शुद्धोपयोगके साधनभूत शुभोपयोगका अवलंबन लेते हैं।

इस प्रकार उपवासके आयामसे रहित होकर वे अत्यंत संतोषके साथ भीषण कर्मोंका नाश करते हुए अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं।

रात्रि बीत गई, अब सूर्योदय होनेके लिए पांच घटिका शेष है। भरतेश अभीतक ध्यानमें ही मग्न हैं।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि भरतेश्वर इतने सब राज्य प्रपंचके बीच रहकर भी इस प्रकार संयम व ध्यानमें कैसे मग्न हो जाते हैं? उनकी चित्तस्थिरता कैसे होती है? वे सदा परमात्माका स्मरण इन शब्दोंसे करते रहते हैं कि :–

हे चिदंबरपुरुष! परमात्मन्! सुवर्णकाय योगियोंके हृदयमें आप जिस प्रकार भरे हुए रहते हैं उसी प्रकार हे गुरु! मेरे हृदयमें भी स्थान पाकर रहिये, यह मेरी याचना है।

सिद्धात्मन्! आप गात्रमें रहते हुए भी गात्रातीत हैं। चित्र संसारका नाश करनेवाले हैं। पात्रके समान मुझे भी हे भानुनेत्र! सन्मार्गमें चलनेकी सुबुद्धि दीजिये।

इसी भावनाका यह फल है।

इति पर्वयोग संधि

— ० —

अथ पारणासन्धिः

भरतेश अभीतक ध्यानमें मग्न हैं। उनके ध्यानका क्या वर्णन करें? शांति, कांति व एकांतका आदर्श वहांपर था।

कोयलके शब्द, वीणाके स्वर व समुद्रके घोषके समान वह ब्रह्म-योग भरतेशके कानमें मीठी-मीठी आवाज उत्पन्न कर रहा है। उनको मोतीके धवल बिन्दुका भी दर्शन हो रहा है। कभी आनंदसे मैं इधर उधर जा रहा हूं, इस बातके सुखका अनुभव हो रहा है। वे रत्नमाला-के अंदर अक्षर पंक्तियोंको भी उस ध्यानमें देख रहे हैं। साथमें रत्न-त्रयसे युक्त आत्माको देखकर विरोधी कर्मोंको नष्ट कर रहे हैं। अंदर-से भरतेश शुक्लस्वरूप आत्माको देख रहे हैं, बाहरसे भी अब प्रकाश होने लगा है।

शीत पवनका संचार होने लगा। ताराओंकी कांति फीकी पड़ गई, जगत्‌का अंधकार कम हुआ। जिनमंदिरोंमें वाद्यघोष भी होने लगा,

सूर्यदेवसे रहा नहीं गया, मैं जल्दी जाकर आत्मयोगी भरतका दर्शन करूँगा एवं उसकी पारणा कराऊँगा इस विचारसे वह शीघ्रगतिसे अपने रथको चलाते हुए उदयाचलपर आरूढ हो गया। उस समय उसके आगमनकी सूचना जिनमंदिरके उन्नत शिखरके कलशपर पड़े हुए अरुणकिरण दे रहे थे।

भरतेशके रानियोंने आकर प्रार्थना की, स्वामिन्! अब सूर्योदय हो गया है, अब तो आप आँख खोलनेकी कृपा करें। सम्राट्ने अंतरंगमें ही शांतिभक्तिका पाठ किया एवं चिदंबरपुरुष परमात्माको नमस्कार कर शांतभावसे आँखें खोलीं।

उसी समय रानियोंने आकर सविनय नमस्कार किया। उनको आशीर्वाद देते हुए सबके साथ वे स्नानगृहमें गये। वहाँ योगस्नान कर जिनमंदिरको चले गये।

सबसे पहिले मंदिरमें शासनदेवताओंको अर्घ्य प्रदान कर श्री भगवंतका स्तोत्र व जप किया, तदनन्तर अपनी देवियोंके साथ श्री जिनेंद्र भगवंतकी पूजा की।

जल, गंध, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल व अर्घ्यके साथ जिस समय भरतेश्वर भगवान्की पूजा कर रहे थे, उस समय वह जिनमंदिर अनेक मंगल-वाद्योंसे गूँज रहा था।

उन्होंने अर्घ्यप्रदानके बाद शांतिधारा छोड़ी एवं अनेक अनर्घ्य रत्नोंसे जयजयकार शब्दके साथ पुष्पांजलि-वृष्टि की।

-तदनंतर भरतेशने अपनी देवियोंके साथ गंधोदकको अत्यंत आदरके साथ ग्रहण किया। भगवान्के सामने खड़े होकर कहने लगे कि कल हमने जो व्रत लिए उनकी पूर्ति हुई, अब हम उन व्रतोंका विसर्जन करते हैं। इस प्रकार कहते हुए उनके पहिले दिनके बँधे हुए व्रतकंकणको उतारकर वहींपर रखा। इसी प्रकार सब स्त्रियोंने भी कंकण उतार दिया। तदनंतर भरतेशने अपनी स्त्रियोंके मुखकी ओर देखा।

कुछ स्त्रियोंके मुख प्रसन्न दिख रहे हैं और कुछ स्त्रियोंके मुख म्लान दिख रहे थे। भरतेश्वर समझ गये कि जिनके मुख म्लान हुए हैं, वे स्त्रियाँ प्रथम उपवासवाली हैं। उनको उपवास करनेका अभ्यास नहीं। जिनको पहिलेसे उपवास करनेका अभ्यास था उन स्त्रियोंका मुख प्रसन्न दिख रहा था। भरतेश अपने मन ही मन विचार करने लगे कि हा! इन बेचारी स्त्रियोंने उपवासव्रतको सरल समझकर ग्रहण किया, परन्तु इनको कष्ट मालूम होता है। तदनंतर प्रकट रूपसे कहने

लगे कि देवी ! बहुत देरी हुई अब आप जल्दी जाकर पारणा करो। तब उन स्त्रियोंने सासको प्रणाम कर पारणा करनेका विचार प्रकट किया।

सम्राट्ने कहा देवी ! आज आप लोग सासकी वंदना करती हुई विलंब न करें। नवीन संयमिनियोंके साथ मिलकर सब शीघ्र पारणा करें। साथमें इस बातका ध्यान रखें कि जो अनभ्यस्त उपवासिनी हैं, उनके पास कोई अभ्यस्त उपवासिनी खड़ी रहकर उनको योग्य रीति से पारणा करावे, यही सज्जनोंका कर्तव्य है।

उन स्त्रियोंने कहा स्वामिन् ! आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही हम करेंगी, परन्तु हम अपने नियमानुसार एक बार अपनी सासको प्रणाम कर आयेंगी। स्वामिन् ! हम लोगोंके प्रति इस प्रकारका विचार आपके मनमें क्यों हुआ ? हमें उपवासका कोई कष्ट नहीं हुआ है।

सम्राट् कहने लगे देवी ! मैं जानता हूँ कि आप लोग धैर्यवती हैं, परन्तु अधिक धूप होनेसे पित्तका प्रकोप होता है, इसलिए उसका ध्यान जरूर रखें। उन देवियोंने कहा स्वामिन् ! हमेशा हम लोग सासकी वन्दना करती हैं। आज तो पर्व दिन है, इसलिये आज हम उनके समीप गये बिना कैसे रह सकती हैं ?

देवी ! तुम लोग प्रतिदिन सासका दर्शन करो और आज नहीं करो तो कोई बात नहीं है। जाओ ! जल्दी पारणाकी तैयारी करो।

स्वामिन् ! प्रतिदिनके समान हम लोग आज सासके दर्शनके लिये नहीं जाएँ तो उनके मनको क्या कष्ट नहीं होगा ?

देवी ! यदि मेरी आज्ञाको आप लोग नहीं मानेंगी तो क्या तुम्हारी सासके बेटेको कष्ट नहीं होगा ! जरा विचार करो ! जाओ।

यह सुनकर वे स्त्रियाँ हँसकर कहने लगीं, कि आज हम लोग माता यशस्वती देवीके दर्शनसे वंचित हो गई। अस्तु, हम पारणाके लिये जाती हैं।

देवी जाओ ! चिन्ता मत करो। पुत्रकी बात सुननेसे माता यशस्वती तुम लोगोंसे प्रसन्न हो जायेंगी। कुछ लोग नवीन उपवासियों-को भोजन कराने जाओ और कुछ लोग माताकी वन्दनाके लिये जाओ। देखो ! कोई चिन्ता मत करो। आज मातुश्री हमारे महलमें भोजन करें ऐसी व्यवस्था करेंगे इससे सबको दर्शन करनेका मौका मिल जायगा। इस बातको सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न होकर जाने लगीं। उनमेंसे पारणाके लिये आनेवाली स्त्रियोंको बुलाकर सम्राट्ने कहा

देवी ! सुनो ! पहिले पहल उपवास करना महान् कष्टप्रद है। उदरमें आग लग जाती है, परन्तु पीछे अभ्यास होनेपर यह उपवास सरल हो जाता है। उसी उपवासकी आगमें कर्म भी भस्म हो जाता है।

एक दिनका उपवास भी कर्मको अच्छी तरह सताता है। आगे उससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। जन्ममरणका संकट टल जाता है। देवी ! मुक्तिकी प्राप्तिके लिये अभेद भक्तिकी आवश्यकता है। अभेद भक्तिके लिये विरक्तिकी आवश्यकता है। विरक्तिके लिये यथाशक्ति तपकी आवश्यकता है, तपके लिये युक्तिकी आवश्यकता है। उपवास किया हुआ शरीर अत्यन्त उष्ण रहता है, इसलिये बहुत सावधानीसे भोजन करना चाहिये। दो चार ग्रास लेनेके बाद एकदम चक्कर आता है। अतः उस समय सावधान रहना चाहिये।

अन्न एकदम उतरता नहीं, पानी पीना अत्यधिक भाता है। प्यास अधिक लगती है परन्तु एकदम पानी पीना ठीक नही है। पहिले किसी तरल अन्नको ग्रहण कर बादमें धीरे धीरे पानी लेना चाहिये। पहिलेसे पानी नहीं पीना चाहिये।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

देवी ! जैसे नवीन मटकेपर पानी डालनेपर चुय् शब्द होता है उसी प्रकार नवीन ग्रास लेनेपर एकदम शरीरमें भी चुय् होता है। चारों तरफसे पीलापना दिखने लगता है। उस समय घबराना नहीं चाहिये। पहिले पहल उपवास कष्टप्रद मालूम होनेपर भी बादमें उससे महान् सुखकी प्राप्ति होती है। कर्म शिथिल होता है, मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह भगवान् आदिनाथकी आज्ञा है। इत्यादि अनेक प्रकारसे सम्राट्ने उन स्त्रियोंको पारणा करनेका विविध उपदेश दिया एवं कुछ स्त्रियोंको पारणाके लिये जानेको कहा ! कुछ स्त्रियोंको माता यशस्वनीके पास भेजकर और कुछ स्त्रियोंके साथ स्वयं महलकी ओर चले। जो स्त्रियां माता यशस्वतीकी ओर जा रही थीं, उन स्त्रियोंसे भरतेशने कहा कि आप लोग माताजीके पास रहें। मैं शीघ्र ही मुनिदानकी क्रियासे निवृत्त होकर उधर आता हूं, तबतक आप लोग मेरी प्रतीक्षा करें।

उन्होंने अपने साथकी स्त्रियोंसे कहा आप लोग शीघ्र महलमें जाकर मुनिदानकी तैयारी करें। मैं बाहर द्वार पर जाकर मुनियोंका प्रतिग्रहण करता हूं। ऐसा कहकर भरतेश मुनियोंकी प्रतीक्षाके लिये गये। कुछ स्त्रियां पारणा करनेके लिए गईं, कुछ मुनि दानकी तैयारीके लिये गईं और कुछ सासकी वन्दनाके लिये गईं। उधर यशस्वती महा-

देवीका भी उपवास था। उन्होंने भी अजिकाओं के साथ जागरणसे रात्रिको व्यतीत किया था। अब मुखमार्जन आदिके बाद देवपूजाकर मण्डपमें आकर बैठी हैं।

आज माता यशस्वती देवीकी पारणा है, इस उपलक्ष्यमें उनके पुत्रोंने अपने स्थानसे बहुमूल्य अनेक उपहार भेजे हैं। उन सबको देखती हुई यशस्वती महादेवी विराजी हैं।

यशस्वती महादेवीको सौ सुन्दर पुत्र हैं। उनमेंसे छह पुत्र तो पहिलेसे दीक्षा ले गये थे। शेष ९४ पुत्र भिन्न-भिन्न राज्योंका पालन कर रहे हैं। उन सभी पुत्रोंने मातुश्रीकी पारणाके उपलक्ष्यमें वस्त्र, कपूर, गंध, गुलाबजल आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थ भेजे हैं। अयोध्यानगरके अधिपति सम्राट् भरत है और युवराज बाहुबलि हैं, जो पौदनपुरका राज्य पालन कर रहे हैं। उन्होंने भी अनेक अनर्घ्य वस्त्र रत्नादिक पदार्थोंको माताजीके लिए भेंटमें भेजे हैं।

बाहुबलि सुनंदा देवीके पुत्र हैं। वे कृतयुगके कामदेव हैं। अपनी मौसीके उपवासकी पारणाके हर्षके उपलक्ष्यमें उन्होंने रत्ननिर्मित पलंग मोतीके पंखे, माणिकनिर्मित जलपात्र एवं अगणित उत्तमोत्तम वस्त्र आदि उपहारमें भेजे हैं। बाहुबलिकी प्रधानदासी इन सब उपहारोंको लेकर माता यशस्वतीकी सेवामें उपस्थित हुई और बहुत भक्तिसे नमस्कार कर खड़ी हो गई। माता यशस्वती देवीने उस दासीसे प्रश्न किया कि दासी! हमारा छोटा बेटा कैसा है? उसकी रानियाँ कुशल तो हैं न? बड़े भाईके समान वह भी उपवास करता है या नहीं?

उस दासीने उत्तर दिया कि माता! बड़े स्वामीके समान हमारे स्वामी अधिक व्रत नहीं करते हैं। उनको केवल एकभुक्तिका व्रत रहता है। उनके समान ही उनकी देवियाँ भी अल्प चारित्रमें ही रहती हैं।

तब माता यशस्वती देवीने फिर पूछा कि दासी! बहिन सुनंदा देवीका क्या हाल है? उसकी प्रवृत्ति किस प्रकार है? वह दासी कहने लगी कि माता! माता सुनंदादेवी तो व्रत, जप, उपवास व शरीर दमन आदि कार्यमें सदा लगी रहती हैं। इसे सुनकर यशस्वती देवीने कहा, यह अच्छा हर्षप्रद समाचार सुनाया, अपनी दासियोंको बुलाकर आज्ञा दी कि इस पौदनपुरसे आई हुई दासीको अजिकाओंका आहार होते ही भोजन कराओ। सब तथास्तु कहकर वहाँसे चली गई।

अब यशस्वतीने देखा कि बहुएँ उनके दर्शनके लिये आ रही हैं।

बहुओंने भी सासको दूरसे ही देख लिया। सासको देखनेपर उनको भोजन करनेके समान ही हर्ष हुआ।

सास उनको देखकर हँस रही थीं, वे भी सासके मुखको देखकर आनंदसे हँसती हुई पासमें आ रही हैं।

सासके निकट आकर सबसे पहिले सासके समक्ष जिनपूजा व अभिषेकके प्रसादरूप गंधोदक व पुष्पको रखा व प्रार्थना करने लगीं मातुश्री ! हमने जो अभिषेक व पूजन देखा था, उसपर आप भी प्रसन्नता व्यक्त करें। गंधोदक व पुष्पको ग्रहण करती हुई माता यशस्वतीने "इच्छामि" शब्दका उच्चारण किया। बादमें सर्व सतियोंने अपनी पूज्य सासके चरणोंमें मस्तक रखा ! तब माताने उनको आशीर्वाद दिया। आप लोग अखण्ड सौभाग्यवती रहें तथा सुखसे चिरकाल जीती रहें।

उन सतियोंने पुनः एक बार नमस्कार कर कहा, माता ! हमारी कुछ बहिनें पतिकी आज्ञासे अन्य कार्यमें चली गई हैं। वे यहाँ नहीं आ सकीं, इसलिये उनकी ओरसे यह नमस्कार है। इसे भी स्वीकार कीजियेगा।

तदनंतर वे सतियाँ सासको घेरकर बैठ गईं और धर्मचर्चा करने लगीं।

माता यशस्वती देवीने विचार किया कि बहुओंका परिणाम किस प्रकार है यह देखना चाहिये, इसलिये वह जरा हँसकर पूछने लगीं कि बेटी ! तुम लोगोंको कुछ काम नहीं दिखता है, तुम्हारे पतिको भी विवेक नहीं है। इस नवीन तारुण्यमें उपवास आदि कर शरीरको व्यर्थ क्यों कष्ट दे रहा है ? यदि भरतको विवेक होता तो वह कभी भी तुम लोगोंको उपवास व्रत ग्रहण नहीं कराता। उसके विवेकका नमूना तो देखो। राज्यपालन करते हुए मुनियोंके समान आचरण करता है, यह अविवेक नहीं तो क्या है ? कदाचित् उसे भोगमें इच्छा न हो, तो न सही; परन्तु हमारी प्रिय बहुओंको भूखी रखकर कष्ट क्यों देता है ? समझमें नहीं आता। जिन ! जिन ! परम कष्ट है।

इसे सुनकर वे सतियाँ कहने लगीं कि माता ! हमें किस बातका कष्ट है ? एक मासमें हम एक उपवास करती हैं। इससे ज्यादा हम क्या करती हैं। तरुणकालमें शक्तिके रहते हुए व्रत करना क्या उचित नहीं ? माता ! हमारे प्राणनाथको अविवेकी आप कह सकती हैं; क्योंकि वे आपके पुत्र हैं। स्वर्गके देव भी आपके पुत्रकी बड़े गौरवके साथ प्रशंसा करते हैं। लोकमें सर्वत्र उनकी कीर्ति गाई जा रही है,

इसलिये माता ! आपका पुत्र न अविवेकी है और न हमें कोई कष्ट है, हमें तो महासुख है।

इस बातको सुनकर माता यशस्वती बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगीं कि आप लोगोंसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गई हूँ। अपने पतिके गौरव के प्रति आप लोग भी अभिमान रखती हैं यह हर्षका विषय है। इसी प्रकार धर्माचरण करती हुई आप लोग सुखसे रहो। बेटी ! अब देरी हो चुकी है। पारणाके लिए जल्दी जाओ। अब विलंब मत करो।

तब उन देवियोंने कहा माता ! आज पतिदेव आपकी पंक्तिमें ही बैठकर अपने महलमें पारणा करनेवाले हैं। मुनियोंको आहारदान देकर वे आपको बुलानेके लिये यहाँ आयेंगे। तबतक हम लोगोंको यहीं पर रहनेके लिए आज्ञा हुई है।

इस बातको सुनकर यशस्वती विचार करने लगी कि हाँ ! मेरा पुत्र उपवासमें ही यहाँ तक आयेगा, उसे व्यर्थ ही कष्ट होगा, प्रकट रूपसे कहने लगी कि देवी ! अपन ही उधर चलें। भरतेशको व्यर्थ क्यों कष्ट हो ? यदि वह हमारे महलमें पारणा करता तो यहाँ आनेकी आवश्यकता थी, नहीं तो व्यर्थ ही उसे कष्ट क्यों दिया जाय ? इस कहती हुई एक विश्वासपात्र सतीको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अर्जि-काओंको आहारदान देनेका कार्य अच्छी तरह करो। मैं भरतेशके महलकी ओर जाती हूँ !

माता यशस्वती देवी अपने बहुओंके साथ मिलकर अब भरतेशके मन्दिरकी ओर आईं। भरतेश भी मुनियोंको आहार देकर उधर ही जानेको निकले थे कि मार्गमें मातुश्रीको आती हुई देखकर दुःखी हुए कि माताजीको कष्ट हुआ। मैं जाता तो इनको योग्य वाहनपर बैठाकर लाता। फिर प्रकट रूपसे अपनी स्त्रियोंसे बोलने लगे कि मैंने आप लोगोंको आज्ञा दी थी कि मैं वहाँपर जरूर आऊँगा, तबतक आप लोग वहींपर ठहरें, अब आप लोगोंको कांता कहूँ या भ्रांता कहूँ समझ-में नहीं आता। उन स्त्रियोंने कहा स्वामिन् ! हम लोगोंने उसी प्रकार विनती की थी, परन्तु अपने बेटेको कष्ट होगा इस पुत्रमोहसे माता एकदम उठीं, उस समय उन्हें कौन रोक सकता था ?

माता यशस्वतीने कहा बेटा ! व्यर्थ दुःखी मत हो। मैं अपनी इच्छासे ही आ गई हूँ। जब तुम्हारी स्त्रियाँ आ गईं तब तुम्हारे ही आनेके समान हो गया।

सम्राट्ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक माताके चरणोंमें मस्तक रखा। मातुश्रीने पुत्रके मस्तकपर हाथ रखकर "इन्द्रो भव! पुन: इन्द्रपूज्यो भव! सांद्रसुखी भव! आशीर्वाद दिया। चलती-चलती पूछने लगी कि बेटा! सुन लिया? अपने छोटे भाईका हाल! वह उपवास नहीं करता है। कभी वह एकभुक्ति कभी उपवास करता रहता है। तुम व्यर्थ ही क्यों उपवास करते हो?

भरतेश्वर बोले—माता! मैं क्या अधिक करता हूँ। चार पर्वके दिनोंमेंसे किसी एक पर्वमें उपवास करता हूँ। वह भी मेरा नियमव्रत है, यमव्रत नहीं। यमव्रतका आचरण करना कठिन है। नियमव्रत चाहे पालन कर सकते हैं। चाहे छोड़ सकते हैं। हमारे लिए इसमें कोई कष्ट मालूम नहीं होता है।

माताने कहा, बेटा! यदि तुम्हें कोई कष्ट नहीं मालूम होता हो, तो भले ही करो, परन्तु मेरी बहुओंको भी जबर्दस्ती यह व्रत कराकर कष्ट क्यों देते हो, यह तो कहो?

माताकी इस बातको सुनकर भरतेशको हँसी आई। वे बोले, माता! क्या आपकी बहुयें आपके पुत्रसे भी अधिक प्रेमपात्र हैं? बड़ी बहिनके पुत्रसे भी छोटे भाइयोंकी बेटियाँ अधिक हैं? बड़ी बहिनका पुत्र जब भूखा रहता है तब छोटे भाइयोंकी बेटियाँ भूखी नहीं रह सकती हैं? बड़ी बहिनसे भी छोटे भाई अधिक हैं। माता! मैं स्वत: अपनी इच्छासे उपवास करता रहता हूँ। आपकी बहुओंको उपवास करनेके लिये कभी बाध्य नहीं करता हूँ, वे ही अपने आप उत्साहसे उपवास करती हैं इसमें मैं क्या करूँ? माता! ये स्त्रियाँ महीनेमें एक उपवास करती हैं तो कौन बड़ी बात है? जब वे शरीरके भोगमें बहुत समय लगाती हैं, तो क्या धर्मके लिये एक दिन भी नहीं लगावें? शरीरके भोगमें ही यदि अत्यन्त आसक्त हो जायँ, तो पापका बंध होता है, उससे नरकादि दुर्गतिकी प्राप्ति होती है। माता! जिस व्रतके लिये थोड़ा बहुत कष्ट उठाना पड़ता है उससे आगे जाकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। माता! मनुष्य जन्मको प्राप्त करनेके बाद यथाशक्ति अधिक-से अधिक व्रतोंका पालन करना चाहिये। भोगमें उन्मत्त होना बुद्धिमानोंका कर्तव्य नहीं है।

इन बातोंको सुनती हुई माता यशस्वती बोल उठीं बेटा! ठीक है, इसे रहने दो, तुमने मुनिदानकर भोजन करनेका जो व्रत लिया है वह

कैसा है ? भरतेश्वर कहने लगे माता ! वह भी नियमव्रत है, यमव्रत नहीं। युद्धको जाते समय, चिता व सूतकके समय इस व्रतका पालन नहीं होता है। हाँ ! सानंद महलमें रहते हुए इस व्रतका निरन्तर पालन करता हूँ। माता ! मैं अभेदभक्तिकी उपेक्षा नहीं करता। बाह्य आचरणका कभी पालन करता हूँ, कभी नहीं भी करता हूँ। माता ! राज्यकी झंझटके होते हुए जो पल सके उसी व्रतको ग्रहण करना चाहिये। बड़े व्रतको ग्रहण कर बीचमें चितामें पड़ना यह पागलोंका कार्य है।

माता ! विशेष क्या कहूँ ? देवाधिदेवकी रानी यशस्वतीके गर्भसे उत्पन्न यह भरत बिलकुल मूर्ख नहीं है। आप चिता न करें। मैं अपनी शक्ति देखकर ही व्रतका पालन करता हूँ।

इन बातोंको सुनकर माता यशस्वती कहने लगीं कि बेटा ! असीम राज्यको पालन करनेवाले मुझे व्रतादिकके पालन करनेमें बड़ा कष्ट होता होगा। इस बातकी मुझे चिता जरूर थी, किन्तु अब वह दूर हो गई है। मैं कई बार सोचती थी कि बेटेको बुलाकर एकबार सम-झाऊँ फिर उसी समय मनमें विचार आता था कि मेरे पुत्रकी वृत्तिकी देवेन्द्र प्रशंसा करता है, मैं उसे क्या कहूँ ? बेटा ! इस युवावस्थामें अगणित सुन्दरी स्त्रियोंके बीचमें रहनेपर भी अपनेको नहीं भूलकर जागृत अवस्थामें रहनेकी तुम्हारी वृत्तिको देखनेपर मेरा मन प्रसन्न होता है। मेरे पुत्रको हजारों झंझटे हैं। उनमें यह व्रत व उपवास आदि की एक और चिता लग गई, इसकी मुझे कभी-कभी चिता होती है, परंतु तुम्हें उन सब बातोंसे अलग देखते हुए मुझे परमहर्ष होता है। बेटा भरत ! तुम्हारी शपथपूर्वक कहती हूँ कि तुम्हारे राज्य, भोग, स्त्रियाँ तथा तुम्हारे व्रतोंको देखनेपर मनमें विशेष चिन्ता होती थी। आज तुम्हारी बातें सुननेसे वह चिता दूर हो गई।

भरतेश कहने लगे माता ! आप मेरी इतनी चिता करती हैं, इससे मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है, अन्यथा मुझे इस प्रकारकी सम्पत्ति कहाँसे प्राप्त होती ? यह सब आपका ही प्रसाद है।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सब मिलकर महलके द्वारपर पहुँचे, उस समय भरतेशने माताके पादकमलोंका शुद्ध जलसे प्रक्षालन किया। फिर अंदर जानेके बाद उच्च आसनपर माताको बैठाकर पूजाकी तैयारी करने लगे।

माता यशस्वती कहने लगी बेटा ! मुनियोंकी पूजा करना सिद्धांत-विहित मार्ग है, मेरी पूजा करना उचित नहीं है। जरा विचार करो।

भरतेश कहने लगे कि माता ! आप मुनियोंकी जननी हैं। वृषभसेनाचार्यकी आप माता हैं। क्या वीरमुनि, अनंतविजयमुनि, अच्युतमुनि, सुवीरमुनि और अनन्तवीर्यमुनिकी आप जन्मदात्री नहीं हैं ? लोकमें यक्षयक्षियोंकी पूजा की जाती है, आप तो साक्षात् ब्रह्मचारिणी हैं, आपकी पूजा करनेमें कौनसा विरोध है ?

माताने कहा बेटा भरत ! तुम्हारी वृत्तिको लौकिक लोग पसन्द नहीं करेंगे। वे कुछ न कुछ बोले बिना नहीं रह सकते। मेरी पूजाकी आवश्यकता क्या है ? तुम इस प्रकारके कार्यको मत करो। लोकापवादको देखकर चलना चाहिये।

फिर भरतेशने कहा कि माता ! जब सब लोग मेरी पूजा करते हैं तब मैं अपनी माताकी भक्तिसे पूजा करूँ, इसमें दोष क्या है ? अविवेकियोंके वचनपर हमें ध्यान देना नहीं है। आप शांतचित्तसे बैठी रहें। हम तो पूजा करेंगे ही।

इस प्रकार कहकर दूसरी ओर देखकर कहा सामग्री लाओ। उन्होंने अपनी रानियोंको पूजाके लिये बुलाया। तत्क्षण सभी रानियाँ सामग्री सहित उपस्थित हो गईं और सब मिलकर बहुत भक्तिसे पूजा करने लगे।

भरतेश मन्त्र बोलते हुए सामग्री चढ़ाते जा रहे हैं। वे स्त्रियाँ सामग्री थालीमें भरकर देती जा रही हैं। जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल व अर्घ्य इस प्रकार अष्टद्रव्योंसे माताकी पूजा सम्राट्ने की। कोई स्त्रियाँ चामर ढारती हैं, कोई पुष्पवृष्टि करती हैं। कोई कुछ, कोई कुछ, इसप्रकार वे तरह-तरह से भक्ति कर रही हैं। माता चुपचाप बैठकर इनकी लीला को देख रही हैं। पूजा की समाप्तिमें उन रानियोंने नवरत्नसे निर्मित आरती उतारी। भरतेशने अपनी देवियोंके साथ माताको नमस्कार किया। फिर माताकी बाँयीं ओर वे बैठ गये। इसी प्रकार सब रानियाँ पंक्तिबद्ध होकर बैठ गईं।

माताने बहुओंको बुलाकर अपनी पंक्तिमें भोजन करनेके लिए कहा व सबने एक साथ पारणा की। भरतचक्रवर्तीके महलके भोजनका क्या वर्णन करें ? क्षीरसमुद्रमें डुबकी लगानेपर जैसा हर्ष होता है उसी प्रकार अत्यन्त आनन्दके साथ उन्होंने भोजन किया।

बादमें पारणाके श्रमकी निवृत्तिके लिये भरतेश माताको हाथका सहारा देते हुए विश्रांतिभवनमें ले आये, झूलेपर वहाँपर उन्होंने माताको

बैठनेके लिये प्रार्थना की और उस झूलेकी डोरीको हाथमें लेकर झोंका देने लगे। माताने बाल्यावस्थामें उसे जो झुलाया है सम्भवतः यह उसका बदला है। फिर भरतेशने माताके ऊपर गुलाबजल छिड़का। माताने उन्हें बाल्यावस्थामें जो दूध पिलाया है उसका मानो अब ऋण चुका रहे हैं। इस प्रकार अपनी रानियोंके साथ माताकी अनेक प्रकार-से सेवा करते हुए कहने लगे माता ! आपको बहुत कष्ट हुआ। आप-का शरीर थक गया है। आप इस बुढ़ापेमें उपवास क्यों करती हैं ?

माता पुत्रकी बात सुनकर कुछ भी नहीं बोली और मनमें विचार करने लगी कि आज भरत मेरे कारणसे विश्रांति नहीं ले रहा है, इस-लिये यहाँसे अब जाना चाहिये। प्रकटरूपसे कहने लगी कि बेटा ! मुझे अपनी महलको गये बिना नींद नहीं आती है, इसलिये मैं वहाँ जाती हूँ। तुम यहाँ विश्रांति लेलो। यह कहकर उठी, भरतेशने हाथका सहारा दिया।

उसी समय माताकी दासियोंको अनेक वस्त्र आभूषण भेंटमें दिये। तब माताने विनोदमें कहा तुमने मुझे कुछ भी नहीं दिया। भरतेशने कहा कि माता ! आपको देनेवाला मैं कौन हूँ ! यह सब सम्पत्ति आप-की ही तो है।

तदनन्तर माता अपनी महलमें आकर पारणा कर गई, इस हर्षो-पलक्ष्यमें सम्राट्ने सैकड़ों पेटियोंको भरकर वस्त्र आभूषण आदि भेजे। माताके साथ कुछ दूरतक पहुँचानेके लिये भरतेश गये। इतनेमें दर-वाजेपर पालकी तैयार थी। माता उसपर चढ़ गई। पुत्रने भक्तिसे नमस्कार किया। माता प्रेमसे आशीर्वाद देकर अपने महलकी ओर गईं। इधर भरतेश अपनी महलमें सुखपूर्वक भोगयोगमें मग्न हैं।

कल दिग्विजयके लिये प्रस्थान करनेका सम्राट् निश्चय करेंगे। परन्तु आज उनके मनमें उसकी कल्पना भी नहीं है, विचार भी नहीं है। वे निराकुलतासे सुखमें मग्न हैं, क्योंकि महापुरुषोंकी वृत्ति अलौ-किक है।

वह भरतेश सारभव्य हैं, उनकी रानियाँ सारभव्य हैं, उसी प्रकार उनकी माता भी निकटभव्य हैं, ये सब भव्य उपवासकी पारणा कर सुखसंवादमें थे।

भरतेश संपत्समृद्ध कोशलदेशके अयोध्यानगरमें सुरभोगमें मग्न थे। इस पारणासंधिके साथ यह भोगविजय नामक प्रथम कल्याण भी पूर्ण हो रहा है।

—इति पारणासंधि—

भोगविजयनामक प्रथमकल्याणं समाप्तम्

दिग्विजय

नवरात्रि संधि

करोड़ों सूर्य और चंद्रके किरणोंके समान प्रकाशमान उज्ज्वल ज्ञानको धारण करनेवाले देवेंद्र चक्रवर्ती आदि से पूज्य भगवान् हमारी रक्षा करें।

सज्जनोंके अधिपति सुज्ञान सूर्य, तीन लोकको आश्चर्यदायक एवं अष्टकर्मरूपी अष्ट दिशाओंको जीतकर (दिग्विजय) अखण्ड साम्राज्यको प्राप्त करनेवाले भगवान् सिद्ध परमात्मा हमें सुबुद्धि प्रदान करें।

कृतयुगके आदिमें आदि तीर्थंकरके आदिपुत्र आदि (प्रथम) चक्रवर्ती भरत बहुत आनंदके साथ राज्यका पालन कर रहे हैं। उनके राज्य में किसी भी प्रजाको दुःख नहीं, चिंता नहीं, प्रजा अत्यन्त सुखी है। रात्रिदिन चक्रवर्ती भरतकी शुभ कामना करती है कि हमारे दयालु राजा भरत चिरकालतक राज्य करें। उनको पूर्ण सुख मिले।

भरतेशके मनमें भी कोई प्रमाद नहीं, बड़े भारी राज्यभारको अपने सिरपर धारण किया है, इस बातकी जरा भी उन्हें चिंता नहीं। किसी बातकी अभिलाषा नहीं। प्रजाहितमें आलस्य नहीं। सुत्राम (देवेन्द्र) जिस प्रकार क्षेमके साथ स्वर्गका पालन करते हैं, भरतेश उसी प्रकार प्रेम व क्षेमके साथ इस पृथ्वीको पालन कर रहे हैं। इस प्रकार बहुत आनन्द व उल्लासके साथ भरत राज्यका पालन करते हुए आनन्दसे काल व्यतीत कर रहे हैं।

एक दिनकी बात है कि भरतेश आनन्दसे अपने भवनमें विराजे हुए हैं। इतनेमें अकस्मात् बुद्धिसागर मंत्री उनके पास आये। उन्होंने निम्नलिखित प्रार्थना भरतेशसे की जिससे भरतेशका आनन्द द्विगुणित हुआ।

स्वामिन्! अब वर्षाकालकी समाप्ति हो गई है, अब सेनाप्रयाण के लिए योग्य समय है। इसलिए आलस्यके परिहारके लिए दिग्विजय का विचार करना अच्छा होगा।

हे अरितिमिरसूर्य! शस्त्रालयमें बालसूर्यके समान चक्ररत्नका उदय हुआ है। अब आप प्रस्थानका विचार करें।

राजन्! आप दुष्टोंको मर्दन करनेमें समर्थ हैं। शिष्ट ब्राह्मण, तपस्वी व सदाचारपोषक धर्मकी रक्षा भी आपके द्वारा ही होती है।

ऐसी अवस्थामें अब इस भूमिकी प्रदक्षिणा देकर सर्व राजाओंको वशमें करें।

स्वामिन् ! आप जंबूद्वीपके दक्षिणभागमें सूर्यके समान हैं। अनेक द्वीपोंमें मदोन्मत्त होकर रहनेवाले राजसमूहोंको अपने चरणरजस्पर्श से पवित्र करें। राजन् ! गिरिदुर्ग, जलदुर्ग और वनदुर्ग में जो अहंकारी राजा हैं उनके अभिमानको मर्दनकर भरतषट्खण्डको वशमें करें जिससे आपका भरत नाम सार्थक हो जायेगा।

जहाँ जहाँ उत्तम पदार्थ हैं वह सब आपको भेंट करनेके लिये लोग प्रतीक्षा देख रहे हैं। उन सबकी इच्छाको पूर्ति करते हुए आप देश-देशकी शोभा देखें। दूर-दूर देशके जो राजा हैं उनके घरमें उत्पन्न कन्यारत्नोंकी भेंटको ग्रहणकर लीलाके साथ विहार करनेका विचार करें। अब देरी क्यों करते हैं ? राजन् ! छह खण्डकी प्रजा आपके दर्शनके लिये तरस रही है। उनको आपके रूपको दिखाकर कृतार्थ करें। जिस प्रकार वनमें शृंगार करनेसे वसंत शोभाको बढ़ाता है उसी प्रकार आप अपने विहारसे इस भूतलकी शोभाको बढ़ावें।

बुद्धिसागर मंत्रीके समयोचित निवेदनपर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। मंत्रीके कर्तव्यपालनके प्रति प्रसन्न होकर भरतेशने बुद्धिसागरको अनेक वस्त्र व आभूषणोंको भेंटमें दिये और यह भी आज्ञा दी कि दिग्विजय प्रयाणकी तैयारी करो। सब लोगोंको इसकी सूचना दो। बुद्धिसागरने प्रार्थना की स्वामिन् ! नौ दिनतक जिनेन्द्र भगवन्तकी पूजा वगैरह उत्सव बड़े आनन्दके साथ कराकर दशमीके रोज यहाँसे प्रस्थानका प्रबन्ध करूँगा।

इस प्रकार निवेदनकर वहाँसे अपने कार्यमें चला गया।

अयोध्यानगरके जिनमन्दिरोंकी मंत्रीकी आज्ञासे सजावट होने लगी। बाजारोंमें भी यत्र-तत्र उत्सवकी तैयारी हो रही है। सब जगह अब दिग्विजय प्रयाण की चर्चा चल रही है।

मन्दिरोंकी ध्वजपताका आकाश प्रदेशको चुम्बन कर रही थी तब उस नगरका नाम साकेतपुर सार्थक बन गया।

अयोध्यानगरके बड़े-बड़े राजमार्ग अत्यन्त स्वच्छ किये गये थे एवं सुगंधित गुलाबजल आदिसे उनपर छिड़काव होनेसे सर्वत्र सुगन्ध ही सुगन्ध फैला था, उस सुगन्धके मारे भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

अयोध्या नगरीमें अगणित जिन मन्दिर थे, उनमें कहीं होम चल रहा है। कहीं मुनिदान चल रहा है। इस प्रकार उस समय वह पुण्यनगर बन गया था। किसी मन्दिर में वज्रपंजराराधना कर रहे हैं। कहीं कलिकुंड यंत्राराधना हो रही है। कहीं गणधर वलययज्ञ और मृत्युंजय यज्ञ चल रहा है। इतना ही क्यों? कितनेही मन्दिरोंमें बलसिद्धि, जयसिद्धि व सर्वरक्षा नामक अनेक यज्ञ बहुत विधिपूर्वक हो रहे हैं।

नित्य ही अनेक धर्मप्रभावनाके कार्य व नित्य ही रथयात्रा महोत्सव, महाभिषेक, पूजा चतुस्संघसंतर्पण आदि कार्य बुद्धिसागर मंत्रीकी प्रेरणासे हो रहे हैं। जिनपूजापूर्वक नौ दिनतक बराबर चक्ररत्नकी भी पूजा हुई। साथमें सेनाके अन्य योद्धाओंने भी अपने-अपने शस्त्र-अस्त्रों की अनुरागसे पूजा की।

गोमुख यक्ष व चक्रेश्वरी यक्षिणीकी पूजा कर घोड़ेको रक्षक यंत्र का बन्धन किया। घोड़ेको यक्षदेवताके नामसे कहनेकी पद्धति है। वह इसलिए कि उस समय बुद्धिसागरने यक्ष व यक्षिणी की पूजा कर उसको रक्षित किया था। इसी प्रकार हाथी, रथ वगैरहका शृंगार कर बहुत वैभव किया। सारांशतः महानवमीके नौ दिनके उत्सवको भक्तोंने जिस प्रकार मनाया उससे सर्वलोकको आश्चर्य हुआ।

नवमीके दिन की बात। दिनमें भरतेश नगरके बीचके जिन मन्दिरमें जाकर पूजा महोत्सव देख आये हैं। रात्रिके समय दरबारमें आकर विराजमान हुए। भरतेश मस्तकपर रत्नकिरीटको धारण किये हुए हैं। उसके प्रकाशसे रात्रि भी दिनके समान मालूम हो रही है।

भरतेश बीचके सिंहासनपर विराजे हुए हैं। इधर-उधरसे मंत्री, सेनापति, सामन्त वगैरह बैठे हुए हैं। सामने अगणित प्रजा बैठी हुई है। इनके बीचमें अनेक विद्वान् कवि, गायक वगैरह भी उपस्थित हैं।

राजा भरतको देखनेके लिये ही लोग तरसते हैं। इसलिये झुंड के झुंड आकर वहाँ जम रहे हैं।

काकीनी रत्नको एक खंबेके सहारे खड़ा कर दिया गया। एक कोस तक बराबर अन्धकार दूर होकर प्रकाश हो गया। इतना ही क्यों? अयोध्यानगरीका विस्तार १२ कोसका है। अयोध्या नगरीमें सब जगह प्रकाश ही प्रकाश हुआ।

उस विशाल दरबारमें कहीं डोंबर लोग, कहीं गानेवाले, कहीं ऐंद्रजाली, कहीं महेन्द्रजाली, इत्यादि अनेक तरहके लोग अपनी-अपनी कला प्रदर्शन करनेकी इच्छासे वहाँपर एकत्रित हुए थे।

जिस प्रकार सूर्यका किरण जिधर भी पड़े उधर ही कमल खिल आता है उसी प्रकार राजा जिधर भी देखें उसी तरफ विनोद, खेल व कला को लोग बता रहे हैं।

कितने ही पहलवान सामने कुस्ती खेल रहे हैं।

एक इन्द्रजालिया राजाके चित्तको आकर्षण करते हुए एक बीजको वहाँ पर बोया। तत्क्षण ही वह बीज भूज (वृक्ष) हो गया उसमें कच्चे फल लग गये। इतना ही नहीं, उस समय वे पक भी गये। सब दरबारियोंको उसे देखकर आश्चर्य हुआ।

एक मंत्रकार और सामने आया, आकर एक घासके टुकड़ेको मंत्रितकर रखा। बहुतसे सर्प उस घाससे निकलकर इधर-उधर भागने लगे। एक इंद्रजाली सामने आकर प्रार्थना करने लगा कि दयानिधान इंद्रावतारको आप देखें। उसी समय उसने अपनी कलाके द्वारा देवेन्द्रके अवतारको बतलाया। एक महेन्द्रजालीने समुद्रका दृश्य बतलाया। इसी प्रकार गंधर्व लोग अपनी नृत्यकलाको बतला रहे थे।

उस दिन अयोध्यानगरके प्रत्येक गलीमें जिधर देखें उधर आनंद ही आनंद हो रहा है। हाथी, घोड़ा व रथोंका शृंगार कर राजमार्गोंमें बड़े ठाटबाटके साथ जुलूस निकाली जा रही है।

पट्टके हाथीपर भगवान् जिनेंद्र की प्रतिमा विराजमान कर विहारोत्सव मनाया जा रहा है। उस हाथीका नाम विजयपर्वत है। उसपर जिनेंद्र भगवंतकी प्रतिमा अत्यंत शोभाको प्राप्त हो रही है। राजाने दूरसे ही हाथीपर जिनेंद्रबिंबको देखा। उसी क्षण भक्तिसे उठकर खड़े हुए। जब सब हाथियोंने भरतेशका दर्शन किया तब कुछ झुककर व अपनी सूँड़को उठाकर चक्रवर्तीको प्रणाम किया। सम्राट्के रानियोंने भी दरवाजेके अंदरसे ही त्रिलोकीनाथ भगवंतका दर्शन किया एवं बहुत भक्तिसे आरती उतारी।

रथ आगे चला। चंद्रमार्ग, सूर्यमार्ग आदिपर भी भगवान्का रथ-विहार हो रहा था। इस प्रकार प्रतिपदासे लेकर नवमीतक अनेक प्रकारसे धर्मप्रभावना हो रही थी।

प्रतिदिन भिन्न भिन्न प्रकारके शृंगार, शोभा, प्रभावना व रथयात्रा आदि देखनेमें आते थे।

कहीं शांतिक्रिया, कहीं दान, कहीं त्याग, कहीं वैयावृत्य आदि शुभकार्योंसे सब अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

कहीं राजाओंका सन्मान हो रहा है। कहीं विद्वानोंका आदर हो रहा है इस प्रकार नौ दिनतक सम्राट्ने बहुत आनन्दके साथ काल व्यतीत किया।

नवमीके दिन दरबार बरखास्त करनेके लिये अब कुछ ही समय अवशेष है। इतनेमें एक सुन्दर व दीर्घकाय भद्रपुरुषने दरबारमें पदार्पण किया। सबसे पहिले चक्रवर्तीके सामने कुछ भेंट समर्पण कर उसने साष्टांग प्रणाम किया। भरतेशने भी उसे योग्य स्थानमें बैठनेके लिए अनुमति दी।

यह अभ्यागत कौन है? भरतेशके लघु भ्राता युवराज बाहुबलीके हितैषी मंत्री प्रणयचन्द्र हैं। जैसा उसका नाम है वैसा ही गुण है, अतिविवेकी हैं, दूरदर्शी हैं।

भरतेश कुछ समय इधर उधरकी बातचीतकर उससे पूछने लगे कि प्रणयचन्द्र! मेरा भाई बाहुबली कैसा है? और किस प्रकार आनंदसे अपने समयको व्यतीत करता है? उसकी दिनचर्या क्या है? एवं हमारे दिग्विजय प्रयाणके समाचारको सुननेके बाद क्या बोला? वह कुशल तो है?

भरतेशके प्रश्नको सुनते ही प्रणयचन्द्र उठकर खड़ा हुआ और बहुत विनयके साथ हाथ जोड़कर कहने लगा कि राजन्! आपकी कृपासे आपके सहोदर कुशल हैं। उन्हें कोई चिंता नहीं और कोई बाधा भी नहीं। सदा वे सुखसे ही अपना काल व्यतीत कर रहे हैं। क्योंकि वे भी तो भगवान् आदिनाथके पुत्र हैं न?

स्वामिन्! कभी कभी काव्य, नाटकका श्रवण व अवलोकन कर आनन्द करते हैं, कभी नृत्य देखते हैं और कभी कामिनियोंके दरबारमें काल व्यय कर हर्ष प्राप्त करते हैं।

कभी कभी वे शृंगारवनमें क्रीड़ा करने के लिये जाते हैं। कभी कभी महलमें अपनी प्रिय रानियोंके साथ साथ बैठकर ठण्डी हवा खाते हुए कोकिल पक्षी, भ्रमर, तोता आदिके विनोदको देखकर आनंदित होते हैं। भोगोंको सदा भोगते हैं परन्तु उसमें एकदम मग्न न होकर योगका भी अभ्यास करते हैं। राजन्! वे भी तो आपके सहोदर हैं न? यह हमारे राजाकी दिनचर्या है। अस्तु, आपके दिग्विजय प्रयाणकी वार्ता उन्होंने सुनी है। उसे सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई है।

इस संबंधमें बोलते हुए उन्होंने हमसे कहा है कि मेरे बड़े भाईने

जो दिग्विजयका विचार किया है यह स्तुत्य है। उनकी वीरताके लिए वह योग्य कार्य है उनका सामना करनेवाले इस पृथ्वीमें कौन है ?

साथमें अभिमानके साथ उन्होंने यह भी कहा कि "इस पृथ्वीमें देवोंमें पिताजी, राजाओंमें मेरे भ्राताजीकी बराबरी करनेवाले कौन हैं ? हम लोग तो उन दोनोंको स्मरण करते हुए जीते हैं" प्रणयचन्द्र मंत्रीने कहा। स्वामिन् ! आपके सहोदर इस अवसरपर स्वयं आशीर्वाद लेनेके लिए आनेवाले थे। परन्तु वे अनिवार्य कारणसे आ नहीं सके। कारण कि वे एक शास्त्रको सुननेमें दत्तचित्त हैं। आचार्य महाराज आत्मप्रवाद नामक शास्त्रका प्रवचन कर रहे हैं। बहुत संभव है कि कल परसोंतक यह ग्रन्थ पूर्ण हो जायेगा। स्वामिन और एक गूढ़ार्थ आपसे निवेदन करनेका है। उसे भी सुननेकी कृपा करें।

"गूढ़ार्थ" शब्दको सुनते ही बुद्धिमान् लोग वहांसे उठकर चले गये। वहाँ एकांत हो गया। प्रजा, परिवार, सामन्त, मांडलिक, मित्र विद्वान्, नृत्यकार आदि सबके सब क्षणमात्रमें जब वहांसे चले गये तब प्रणयचन्द्र बहुत धीरे-धीरे कुछ कहने लगा। बुद्धिसागर मंत्री पासमें ही बैठा है।

स्वामिन् ! विशेष कोई बात नहीं, आपकी मातुश्री जगन्माता यश-स्वती महादेवीको पौदनपुरमें ले जानेकी इच्छा आपके सहोदरने प्रद-शित की है। बहुत देरी नहीं है, कल या परसों तक शास्त्रकी समाप्ति हो जायगी। उसके बाद वे स्वयं ही यहाँ पधारकर मातुश्रीको पौदन-पुरमें ले जायेंगे, इस बातकी सूचना देनेके लिये उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है।

राजन् ! जब तक आप दिग्विजय कर वापिस लौटेंगे तबतक माता यशस्वती देवीको अपने नगरमें ले जानेका उन्होंने विचार किया है, मातासे पुत्र विमुक्त रह सकता है क्या ?

प्रणयचन्द्रके इस प्रकारके वचनको सुनकर चक्रवर्तीने कहा कि पुत्रके घरमें माताका जाना, माताको पुत्रका बुला ले जाना कोई नई बात है क्या ? ऐसी अवस्थामें इस संबंधमें मुझे पूछने की जरूरत क्या है? मैं भी मातुश्रीके लिये पुत्र हूँ। वह भी पुत्र है, इसलिये उसे भी माता-जीको ले जानेका अधिकार है। मैं माता की आज्ञाके अनुवर्ती हूँ। मातुश्रीकी आज्ञाका सदा पालन करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। पूज्य माता ही मुझे हमेशा सन्मार्गका उपदेश देती रहती हैं। शिक्षा

देती है, मैं माताजीको कुछ भी कह नहीं सकता। भाईकी इच्छा हो तो वह ले जाए। मैं इसपर क्या कहूं ?

इसे सुनकर प्रणयचन्द्रने फिर कहा कि स्वामिन् ! आपने जैसा विचार प्रकट किया उसी प्रकार आपके सहोदरने भी कहा था कि इस कामके लिये पूछनेकी क्या जरूरत है ? परन्तु उनसे मैंने निवेदन किया कि यह ठीक नहीं है। सूचना तो जरूर देनी ही चाहिये। इसलिये खासकर आपको सूचित करनेके लिये मैं आया हूं।

भरतेश प्रणयचन्द्रकी बात सुनकर मन ही मनमें कुछ हँसे व कहने लगे कि प्रणयचन्द्र ! तुम बहुत बुद्धिमान् हो। तुम्हारे कर्तव्यपर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम बाहुबलीके पासमें रहो, ऐसा कहकर उसको उत्तम वस्त्र आभूषणोंको दिया। प्रणयचन्द्र भी भरतेशको प्रणाम कर वहांसे निकल गया।

प्रणयचन्द्रके बाहर जानेके बाद राजा भरत बाहुबलीकी वृत्तिपर मन ही मनमें कुछ हँसे। फिर प्रकट रूपसे बुद्धिसागरसे कहने लगे कि बुद्धिसागर ! देखा ? मेरे भाईकी उद्दण्डताको तुमने देख ली न ? मनमें कुछ मायाचार रखकर यहां आना नहीं चाहता है। इसीलिये बहाना-बाजी बनाकर इसे भेजा है, वह भी शास्त्र सुननेका बहाना है। क्या ही अच्छा उपाय है। उसे मैं कामदेव हूं इस बातका अभिमान है। वह यह समझता है कि उसके बराबरी करनेवाले कोई नहीं है। इसीको हुण्डावसर्पिणीका प्रभाव कहते हैं। प्रणयचन्द्रने असली बातको छिपा-कर रंग चढ़ाते हुए बातचीत की। मैं इस बातको अच्छी तरह जानता हूँ कि भाई बाहुबली मेरे प्रति भाईके नाते भक्ति नहीं करेगा, उसकी मर्जी, मैं क्या करूं ? बाहुबली तो युवराज है। इसलिए उसे इतना अभिमान है। परन्तु उससे छोटे भाई क्या कम हैं। जिस प्रकार सूर्यको देखनेपर नीलकमल अपने मुखको छिपा लेता है उसी प्रकार मेरे साथ उनका व्यवहार है। पूज्य पिताजी व माताजीके प्रति मेरे भाइयोंको अत्यधिक भक्ति है। परन्तु मुझे देखनेपर नाक-मुँह सिकोड़ लेते हैं। क्या परब्रह्म श्री आदिनाथके पुत्रोंका यह व्यवहार उचित है ?

मैं हमेशा इन लोगोंके साथ अच्छा व्यवहार करता हूँ। उनके चित्तको दुखानेके लिये मैंने कभी भी प्रयत्न नहीं किया। परन्तु ये मात्र मुझसे भेद रखते हैं। न मालूम मैंने इनको क्या किया ? ये इस प्रकार

मनमें मेरे प्रति विरोध क्यों रखते हैं। मंत्री ! क्या तुम नहीं जानते हो ! बोलो तो सही !

बुद्धिसागर ! जिनेन्द्रका शपथ है ! मैंने तुमसे ही अपने भाइयोंके व्यवहारको कहा है और किसीसे भी आजतक नहीं कहा है। यहाँ-तक कि पूज्य मातुश्री भी अपने पुत्रोंकी हालत जानकर दुःखी होंगी इस भयसे उन लोगोंकी प्रशंसा ही करता आ रहा हूँ।

छह भाई दीक्षा लेकर मुनि हो गये। वे मेरे भाई होनेपर भी अब गुरु बन गये। परन्तु इनको तो देखो ! इनको अनुज कहूँ या दनुज कहूँ ? समझमें नहीं आता।

स्वामिन् ! बुद्धिसागर बोले। आप जरा सहन करें, वे आपसे छोटे हैं। आपके साथ उन्होंने ऐसा व्यवहार किया तो आपका क्या बिगड़ा है ? वे मूर्ख हैं। आपके साथ प्रेमसे रहनेके लिए अत्यधिक पुण्यकी जरूरत है।

तीन लोकमें जितनेभर बुद्धिमान् हैं, विवेकी हैं, वे सब तुम्हारे चातुर्यको देखकर प्रसन्न होते हैं। यदि छह कम सौ मनुष्य तुम्हारे साथ नाक-भौं सिकोड़कर रहें तो क्या बिगड़ता है ?

राजन् ! सूर्यकी उन्नतिको देखकर जगत्को हर्ष होता है। यदि नीलकमल मुकुलित होवें तो उसमें सूर्यका क्या दोष है ?

यह भी जाने दीजिये ! असली बात तो और ही है। तुम्हारे भाई उद्धत नहीं हैं। मैं उनको अच्छी तरह जानता हूँ। वे तुम्हारे पासमें आनेके लिये डरते हैं। क्या तुम्हारी गंभीरता कोई सामान्य है ?

राजन् ! इस जवानीमें अगणित संपत्तिको पाकर न्यायनीतिकी मर्यादाको रक्षण करनेके लिये तुम ही समर्थ हो गये हो। तुम्हारे भाइयोंको यह कहाँसे आ सकता है। अभीतक उन्होंने उसको नहीं सीखा है। इसलिए वे तुम्हारे पासमें आनेके लिये शर्माते हैं।

राजन् ! तुम्हारे जितने भी सहोदर हैं वे अभी छोटे हैं। उनकी उमर भी कुछ अधिक नहीं है। ऐसी अवस्थामें वे अभी बचपनको नहीं भूले हैं। इसीलिये ही वे बाहुबलीसे डरते नहीं, अपितु आपसे डरते हैं।

बाहुबलीके साथ किसी भी प्रकार अविवेक व हँसी-खुशीसे बर्ताव करें उससे बाहुबली तो प्रसन्न ही होता है। परन्तु तुम पागलपनेको कभी पसंद नहीं करोगे यह वे अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये तुम्हारे सामने नहीं आते हैं। वे अपने ही बर्तावसे स्वयं लज्जित हैं। इसलिये उस लज्जाके मारे तुम्हारे पास नहीं आते हैं। अभिमानसे तुम्हारे पास

नहीं आते हैं यह बात नहीं। कल ये अपने आप आकर तुम्हारी सेवा करेंगे, आप चिंता क्यों करते हैं ?

मंत्रीके चातुर्यपूर्ण वचनको सुनकर चक्रवर्ती मन ही मन हँसे व ठीक है ! ठीक है ! मंत्री ! तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो ! इस प्रकार कहते हुए बांधवोंमें प्रेम संरक्षण करनेके मंत्रीके तंत्रके प्रति मनमें ही बहुत प्रसन्न हुए।

इतनेमें मध्यरात्रिका समय हो गया था। उस समय "जिनशरण" शब्दको उच्चारण करते हुए भरतेश वहांसे उठे व मन्त्री और सेवकोंके साथ शस्त्रालयकी ओर चले।

उस समय शस्त्रालयकी शोभा कुछ और थी। अनेक शस्त्र वहांपर व्यवस्थित रूपसे रखे हुए थे। उनकी बलि, पुष्प, चंदन इत्यादिक पूजाओंसे वहांपर वीर रस बराबर टपक रहा था। पंचवर्णके अनेक भक्ष्यविशेष व अनेक नैवेद्य विशेषोंसे शस्त्रपूजा हो रही थी इसी प्रकार होम भी हो रहा था जिसमें अनेक आज्य अन्न आदिकी आहुति भी दी जा रही थी। धूपसे धूम निर्गमन, दीपसे प्रज्वलित ज्वाला व अनेक वर्णके पुष्प, अनेक फल आदि विषयोंसे वहां अनुपम शोभा हो रही थी। माला, खड्ग, कटारी, गदा आदि अनेक अस्त्र-शस्त्रोंको देखनेपर एकदम राक्षस या मारिके मंदिरका भयंकर स्मरण आता था। खड्ग, गदा व चंद्रहास आदि दण्डरत्नोंको जिस प्रकार वहांपर रखा गया था उससे सर्प मण्डलका ही कभी कभी स्मरण होता था।

रतिहास आदि कितने ही आयुध वहांपर अग्निको ही वमन कर रहे थे।

सानन्दक नामक एक खड्ग (असि) रत्न तो इस प्रकार मालूम हो रहा था कि कब तो चक्रवर्ती दिग्विजय के लिए प्रयाण करेंगे, कब हमें शत्रुओंका भक्षण करनेके लिये अवसर मिलेगा इस प्रकार जीभको बाहर निकालकर प्रतीक्षा कर रहा है।

कालकी डाढ़के समान अनेक खड्गोंके बीचमें सूर्यके समान तेजःपुंज चक्ररत्न वहांपर प्रकाशित हो रहा है। चक्रवर्तीने खड़ा होकर उसे जरा देखा।

चक्रवर्तीसे मंत्रीने प्रार्थना की स्वामिन् ! आजतक इस चक्ररत्नकी महावैभवसे पूजा हो गई। कल वीरलग्न है, योग्य मुहूर्त है। इसलिये दिग्विजयके लिये आप प्रस्थान करें।

इस वचनको सुनकर चक्रवर्तीने उस चक्ररत्नपर एक कमलपुष्पको

रखा। उसे देखकर मन्त्रीने कहा कि राजन् ! सूर्यको कमल मिल गया यही तुम्हारे लिये एक शुभ शकुन है।

चक्रवर्ती उस शस्त्रालयसे लौटे। मंत्रीको उन्होंने भेजकर अपने महलमें प्रवेश किया।

इति नवरात्रि संधि

—०—

पत्तनप्रयाण संधि

आज दशमीका दिन है। राजोत्तम भरतेशने शृङ्गारकर योग्य मुहूर्तमें दिग्विजयके लिये प्रयाण किया।

सबसे पहिले भरतेश मातुश्रीके दर्शनके लिये यशस्वतीकी महलकी ओर चले। स्तुति पाठक भरतेशकी उच्च स्वरसे स्तुति कर रहे हैं।

दूरसे आते हुए पुत्रको माता यशस्वती हर्ष भरी आँखोंसे देखने लगीं। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रको देखकर समुद्र उमड़ आता है उसी प्रकार सत्पुत्रको देखकर माता यशस्वती अत्यधिक हर्षित हुई।

बहुतसी स्त्रियोंके बीचमें माणिककी देवताके समान सुशोभित अकलंक चारित्रको धारण करनेवाली माताकी सेवामें भेंट रखकर भरतेशने प्रणाम किया। "बेटा ! समुद्रमें पृथ्वीको लीला मात्रसे जीतनेमें तुम समर्थ हो जाओ ! जिनभक्ति व भोगमें तुम देवेंद्र हो जाओ" इस प्रकार माताने पुत्रको आशीर्वाद दिया।

साथमें माताने यह भी पूछा कि बेटा ! आज क्या तुम्हारा प्रस्थान है ?

भरतेशने उत्तर दिया कि माता ! आलस्य परिहार व विनोदके लिये जरा राज्य विहार कर आनेका विचार कर रहा हूँ। शीघ्र ही लौटकर आपके पुनीत चरणोंका दर्शन करूँगा।

माताजी ! बाहुबली कल या परसोंतक यहाँपर आनेवाला है एवं आपको मेरे दिग्विजयसे लौटनेतक पौदनपुरमें ले जायेगा। देखिये तो सही मेरे भाईकी सज्जनता ? वह विवेकी है। मैं यहाँपर नहीं रहूँ तब अकेली आपको कष्ट होगा इस विचारसे वह आपको ले जा रहा है। वह मेरे छोटे भाई नहीं, बड़े भाई हैं। माता ! मेरी अनुपस्थितिमें आपका यहाँपर रहना उचित नहीं है। इसलिए आप बाहुबलीके महल-

में जाकर आनन्दसे रहें। मैं जब दिग्विजय कर वापिस आऊं तब यहां-पर पधारें।

अच्छा! अब रहने दीजिये! मैं अब दिग्विजयके लिये जा रहा हूँ। मुझे मेरे योग्य उपदेश दीजियेगा, जिससे मुझे दिग्विजयमें सफलता मिले।

भरतेशकी बात सुनकर यशस्वती देवीको जरा हँसी आई और कहने लगी कि बेटा! तुम्हें मेरे उपदेशकी क्या जरूरत है? क्या तुम दूसरोंके उपदेशके अनुसार चलनेके योग्य हो? सारे जगत्को तुम उपदेश देते हो, वह तुम्हारे उपदेशके अनुसार चलती है। ऐसी अवस्थामें तुम्हें उपदेश वगैरह की क्या जरूरत है। जाओ दिग्विजय कर आनन्दसे वापिस आओ। बेटा! माताके उपदेशकी पुत्रको जरूरत है। परन्तु किस पुत्रको? जो पुत्र दुर्मार्गगामी है उसे माताकी शिक्षाकी आवश्यकता है। दूधको लेकर पानीको छोड़नेवाला हंसके समान जिस पुत्रका आचरण है माता उसे क्या शिक्षा दे? तुम ही बोलो। बेटा! मैं समझ गई कि मैंने तुमको जन्म दिया है, इसलिये तुमने मुझसे उपर्युक्त बात पूछी। यह तुम्हारी शालीनता है। बेटा! क्या कहूँ! तुम्हारी वृत्तिसे तुम्हारे पिता भी अत्यंत संतुष्ट हैं। मेरा चित्त भी अत्यधिक प्रसन्न हुआ है। इसलिये प्रिय भरत! तुम मत पूछो। तुम आनन्दसे पृथ्वीको वश कर आओ। तुममें अखंड सामर्थ्य मौजूद है।

माताके मिष्टवचनोंको सुनकर भरतेश बहुत प्रसन्न हुए। आनंदके वेगमें ही पूछने लगे कि क्या माता! आपको विश्वास है कि मुझमें उस प्रकारकी बुद्धि व सामर्थ्य मौजूद है?

यशस्वतीने तत्क्षण कहा कि हाँ! हाँ! विश्वास है। तुम जाओ!

"तब तो कोई हर्ज नहीं" ऐसा कहकर भरतेशने माताका चरणस्पर्श कर बहुत भक्तिसे प्रणाम किया। उसी समय माताने पुत्रको मोतीका तिलक किया। साथमें पुत्रको आलिंगन देकर आशीर्वाद दिया कि बेटा! मनमें कोई आकुलता नहीं रखना। तुम्हारे हाथी घोड़ोंके पैरमें भी कोई काँटा नहीं चुभे। षट्खंडमें राज्य पालन करने वाले राजागण तुम्हारे चरणमें मस्तक रखेंगे। कोई संदेहकी बात नहीं है। जाओ! जल्दी दिग्विजयी होकर आओ। इस प्रकार बहुत प्रेमके साथ पुत्रकी विदाई की।

माताकी आज्ञा पाकर भरतेश वहाँसे चले। इतनेमें मातुश्री यशस्वतीके दर्शनके लिए भरतकी रानियाँ आईं।

अनेक तरहके शृंगारोंको धारण कर रानियोंने झुण्डके झुण्ड आकर अपने पतिकी प्रसविश्रीके चरणोंको नमस्कार किया। यशस्वती देवीने भी आशीर्वाद दिया कि देवियों ! तुम लोग दुःखको स्वप्नमें भी नहीं देखकर हमारे पुत्रके साथ आनन्दसे वापिस लौटना। दिग्विजय प्रयाण-में आप लोगोंको कोई कष्ट नहीं होगा। आप लोग प्रसन्न चित्तसे जाएँ।

तब उन बहुओंने पूज्य साससे प्रश्न किया कि माता ! हमें इस समय योग्य सदुपदेश दीजियेगा। इस बातको सुनकर यशस्वती देवी कहने लगी कि विवेकी भरतकी स्त्रियोंको मैं क्या उपदेश दे सकती हूँ। आप लोगोंके पतिकी बुद्धिमत्ता लोकमें सर्वत्र विश्रुत है। हमसे पूछनेकी क्या जरूरत है। अपने पतिकी आज्ञानुसार चलना यही कुलस्त्रियोंका धर्म है।

आप लोग अविवेकिनी नहीं हैं और न एकमेकके प्रति आप लोगों-में ईर्ष्या है। ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंको अब उपदेश देनेलायक बात कौनसी रही है यह समझमें नहीं आता। इसलिये मुझे आप लोगोंके संबंधमें कोई चिंता नहीं है, आनन्दसे आप लोग जाएँ व दिग्विजय कर पतिके साथ लौटें।

इतनेमें सभी शीलवतियोंने साससे प्रार्थना कि आज हम सब पतिके साथ दिग्विजयविहार में जा रही हैं। ऐसी अवस्थामें हमें प्रतिनित्य आपके चरणोंका दर्शन नहीं मिल सकता। इसलिए पुनः जब आकर आपके पूज्य पादोंका दर्शन हमें हों तबतक कुछ न कुछ व्रत लेनेकी आज्ञा दीजिएगा। तदनुसार सभी सतियोंने भिन्न-भिन्न प्रकारके व्रत लिये किसीने भोजनके रसोंमें नियम लिया। किसीने पुष्पोंमें अमुक पुष्पका मुझे त्याग रहे इस प्रकारका व्रत लिया। किसीने तांबूलका त्याग किया। किसीने वस्त्रोंका नियम किया। एक स्त्रीने मल्लिका पुष्पका त्याग किया। एकने जाई पुष्पका त्याग किया। एक सतीने दूधका त्याग किया, एकने केलेका त्याग किया। एकने फणीका त्याग किया। दूसरी-ने गोरोचन और दूसरीने कस्तूरीका त्याग किया। एक स्त्रीने रेशमी वस्त्रोंका त्याग किया। एकने मोतीके आभरणोंका त्याग किया। इस प्रकार अनेक स्त्रियोंने तरह-तरहसे अनेक नियमोंको लिये। यह सब नियमव्रत है। यम नहीं। क्योंकि सासके पुनर्दर्शनपर्यंत इनका काल-नियम है। बहुओंकी भक्तिको देखकर माता यशस्वतीको बहुत हर्ष हुआ और कहने लगीं कि बहुओं ! आप लोग परदेशको गमन करने जा रही

हैं। इसलिए प्रयाणके समय व्रतोंकी क्या आवश्यकता है? आप लोग वैसे ही जाएँ। "माता! भरतराज्य (षट्खण्ड) हमारे ही हैं, वह परदेश नहीं है। इसलिए हम स्वदेश गमन ही कर रही हैं। सो इन व्रतोंकी हमें आवश्यकता है" ऐसा आग्रहपूर्वक कहकर सब स्त्रियोंने सासके चरणोंमें भक्तिपूर्वक मस्तक रखा। सासने भी "तथास्तु" कहकर आशीर्वाद दिया।

सासकी आज्ञाको पाकर वे सब स्त्रियाँ बहुत आनन्द व उल्लासके साथ वहाँसे चलीं। उन लोगोंका पारस्परिक प्रेम, लोकमें ईर्ष्या व मत्सरसे जानेवाली एक पतिकी अनेक स्त्रियोंके दुःखमय जीवनको तिरस्कृत कर रहा था। सदा परस्पर झगड़ा कर एकमेकको गाली व शाप देकर, सवतमत्सरके साथ जीनेवाली स्त्रियोंसे नारकियोंके जीवन कदाचित् अधिक सुखमय हैं। इस बातको स्वकृतिसे व्यक्त करती हुई वे बहुत आनन्दके साथ जा रही थीं।

सोनेकी पालकियाँ तैयार थीं उसपर आरूढ़ होकर रानियोंने प्रस्थान किया। उनकी दासियोंने चाँदीकी पालकियोंपर चढ़कर उनका अनुसरण किया।

रमणियोंकी पालकियोंकी बीच एक सोनेका रथ जा रहा है जिसमें अर्ककीर्तिकुमारका सुन्दर झूला सुशोभित हो रहा है।

राजा भरत अनुकूल नागरांक, दक्षिणांक आदि मंत्री व मित्रोंके साथ सोनेके खड़ाऊँ पहनकर जिनमन्दिरकी ओर चले। रास्तेमें ज्योतिषी, स्तुतिपाठक, गायक आदि अनेक तरहके लोग भरतेशके दिग्विजय प्रस्थानके समय शुभकामना कर रहे हैं।

ज्योतिषी लोग पंचांगशुद्धिको देखकर योग्य मुहूर्त व लग्नको निवेदन कर रहे हैं। शास्त्र पाठक श्री भरतेशको यश व जयकी सिद्धि हो, इस प्रकार उच्च स्वरसे घोषणा कर रहे हैं। गायन करनेवाले श्रीराग मधुमाधवीराग आदि अनेक रागोंमें आत्मविवेचन करनेवाले पदोंको गा रहे हैं। इसके अलावा अनेक प्रकारके वाद्योंके मधुर शब्द और प्रबल शंखोंके भों-भोंकार हो रहे हैं। उन सबको सुनते हुए भरतेश जा रहे हैं।

भरतेश माताकी महलसे जब बाहर निकले उस समय दो कौवे देखनेमें आये। उसी प्रकार बाँयीं ओरसे पाल रुदन करने लगे। आकाश प्रदेशमें सामनेसे एक गरुड़ बराबर भाग रहा था। अनुकूल नायकने समयकी अनुकूलता देखकर भरतेशको उसे इशारेसे बतलाया।

आगे जानेपर एक पालतू प्राणी भरतेशको देखकर अत्यधिक भयभीत होकर देख रहीं था। उसे देखकर नागरांकने कहा कि स्वामिन्! शत्रुवीर आपसे इसी प्रकार भयभीत होंगे, इसकी यह सूचना है।

सामनेसे एक सांड़ धूल उड़ाते हुए आ रहा है। मुँहसे शब्द भी कर रहा है। दक्षिणांकने उसे वीरसूचना कहकर भरतेशको दिखाया।

इस प्रकार मित्रगण अनेक प्रकारके शुभशकुनोंको दिखाते हुए जा रहे हैं। भरतेश भी अन्दर-अन्दरसे ही हँसते हुये एवं बहुत उत्साहके साथ परमात्माका स्मरण करते हुए नगरके मध्यस्थित जिनमन्दिरमें आये।

बाहरके परकोटेके बाहर ही उन्होंने खड़ाऊँ उतार दी। उसके बाद अप्रमादवृत्तिसे पाँच सुवर्णके परकोटोंको पार किया। सबसे पहिले उन्होंने भद्रमण्डपमें प्रवेश किया। भगवान् आदिनाथ स्वामीकी प्रकृतिका वहाँपर दर्शन मिला। भरतेशने उस भद्रमण्डपमें योग्य द्रव्योंकी भेंट चढ़ाकर बहुत भद्रभावसे भगवान्के चरणोंमें साष्टांग प्रणति की। तदनन्तर चिद्रूपभावनाको धारण करनेवाले योगियोंको नमोस्तु किया। निरंजन सिद्धभावनाको धारण करनेवाले योगियोंने भी आशीर्वाद दिया कि "सिद्धदिग्विजयकार्योभव, हे भूप! समृद्धसुखी भव"।

तदनन्तर भरतेशने सिद्धपूजाकी शेषाको मस्तकपर व मृत्युञ्जय, सिद्धचक्रआदिके होमभस्मको कण्ठमें लगाकर भक्तिको व्यक्त किया।

बुद्धिसागरने प्रार्थना की कि स्वामिन्! होमकर्मको बहुत विधिपूर्वक निष्पन्न किया गया। मुनियोंको आहारदान नवधा भक्तिपूर्वक दिया गया। महास्वामी श्री आदिनाथ भगवन्तकी पूजा बहुत वैभवके साथ की गयी है। प्रतिपदासे लेकर दशमीतक अद्वितीय उत्साहके साथ आपने जो पूजा की व कराई है, वह अब इस लोकमें आपकी पूजा करायेगी इसमें कोई संदेह नहीं। स्वामिन्! धर्मपूर्वक राज्यपालन करनेकी पद्धति, धर्मांग भोगक्रम इत्यादि बातोंके मर्मको तुम्हारे सिवाय और कौन जान सकता है? अब आप यहाँपर किरीट धारण करें।

मंत्रीकी प्रार्थनाको स्वीकार कर भरतेशने अपने मस्तकपर रत्नमय किरीटको धारण किया। तदनन्तर किरीट भरतेशने "भूयात्पुनर्दर्शनं" यह पद उच्चारण करते हुए जिनेन्द्र भगवंतको नमस्कार किया। बादमें मुनियोंके चरणोंमें मस्तक रखकर वहाँसे जयघोषणाके साथ वापिस लौटे।

रास्तेमें जाते समय बहुतसे कुलवृद्धजन भरतेशको आशीर्वाद दे रहे हैं। विद्वान् लोग मंगलाष्टकका उच्चारण कर भरतेशके ऊपर अक्षतक्षेपण कर रहे थे। बहुतसे लोग बीच-बीचमें आकर फल, पुष्प आदिकी भेंट रखकर नमस्कार करते थे एवं राजन्! आपका भला हो। आपकी जय हो, इत्यादि शुभभावना करते थे।

जिस समय भरतेश अत्यन्त आनन्दके साथ जिनमन्दिरसे बाहर निकले उस समय अकस्मात् ही उनके दाहिने भुज, जंघा व आँखमें स्फुरण होने लगा, जो निकट भविष्यमें अद्वितीय सम्पत्तिकी सूचना थी।

बहुत वैभवके साथ आप पाँचों परकोटोंसे बाहर आये। वहाँपर पट्टका हाथी तैयार था। पर्वतके समान उस सुन्दर हाथीपर "जिन-चरण" शब्दको उच्चारण करते हुए भरतेश आरूढ़ हो गये। उसी समय सेवकोंने मोतीके छत्रको ऊपर उठाया व इधर उधरसे चामर ढुलने लगे। इतना ही नहीं चारों ओरसे ध्वजपताकायें उठीं व करोड़ों तरहके बाजे बजने लगे।

सामनेसे स्तुतिपाठक जा रहे थे। वे अनेक प्रकारसे राजाकी स्तुति करते हुए शुभभावना करते थे।

स्वामिन्! आप अनेक वैरी राजाओंके पति हैं। शत्रुरूपी अंधकार-के लिए सूर्यके समान हैं। जयलक्ष्मीके आप पति हैं। आपकी जय हो! इत्यादि स्तुतियोंको सुनते हुए भरतेश नगरके विशाल मार्गोंमें जा रहे हैं। उस समय दूरसे भरतेशका किरीट सूर्यके समान मालूम हो रहा था। शरीर सोने के पुतलेके समान मालूम हो रहा था। भरतेशके ऊपर जो प्रकाशमान मोतीका छत्र रखा गया था उसके प्रकाशसे ऐसा मालूम हो रहा था कि अनेक नक्षत्रोंके बीचमें चन्द्रदेव आ रहा हो। बत्तीस चामर जो इधर-उधरसे ढुल रहे हैं उनको देखने पर मालूम होता है कि राजा भरतेश क्षीरसमुद्रमें हाथी चलाते हुए आ रहे हैं।

हाथीके आगे दो सुन्दर उज्ज्वल-ध्वज मौजूद हैं, जिनका नाम क्रमसे चन्द्रध्वज व सूर्यध्वज है। उनकी शोभाको देखनेपर ऐसा मालूम हो रहा है कि चन्द्र व सूर्य ही भरतेशको आकर ले जा रहे हैं। इस प्रकार अनेक वैभवोंके साथ आप दिग्विजय प्रस्थानके लिए जा रहे हैं।

पुरुषोत्तम भरत आज अयोध्या को छोड़कर दिग्विजयके लिए जा रहे हैं, यह सबको मालूम ही था। सब लोग उनकी विहार शोभाको

देखनेके लिए भागे आए हैं। आ रहे हैं। अपनी महलके ऊपर चढ़कर देख रहे हैं।

स्त्रियोंकी बात कहना ही क्या ? वे उमड़-उमड़कर भरतेशको देखनेके लिए उत्सुक हो रही हैं। किसी भी पुरुषके मनमें भी हमारी स्त्रियाँ भरतेशको नहीं देखें इस प्रकारका विचार उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि भरतेश परदारसहोदर हैं। भाईको बहनें देखें तो क्या बिगड़ता है ?

कहीं कहीं पुरुष अपनी स्त्रियोंके साथ खड़े होकर देख रहे हैं। कहीं स्त्रियाँ अकेली ही देख रही हैं। अनेक वेश्यायें षट्खण्डाधिपतिकी शोभाको देख रही हैं। कितनी ही स्त्रियाँ हड़बड़ीसे दौड़ी आ रही हैं और भरतेशको देखनेके लिए उत्सुक हो रही हैं। चूल्हेपर दूध गरम करनेके लिए रखा हुआ है। उसे उतारनेकी चिन्ता नहीं। सामनेसे बच्चा रो रहा है उसकी ओर लक्ष्य नहीं। सबको वैसे ही छोड़कर बाहर आ रही हैं।

जो स्त्रियाँ अनेक विनोदलीला करती थीं, उन्हें अर्धमें ही छोड़कर एवं संगीतको भी अर्धमें ही बन्द कर भरतेशको देखनेके लिए गईं।

एक स्त्री तोतेको पढ़ा रही थी। अब तोतेको पिंजड़ेमें रखकर जानेमें देरी होगी इस हड़बड़ीसे तोतेको भी साथ लेकर आयी और जुलूशकी शोभा देखने लगी। कितनी ही स्त्रियाँ हाथमें दर्पण लेकर कुंकुम लगा रही थीं। उधरसे बाजोंके शब्दको सुनते ही कुंकुम लगाना भूलकर दर्पणसहित ही बाहर आईं और बहुत आनंदके साथ देखने लगीं।

एक स्त्रीकी वेणी व साड़ी ढीली हो गई थी। तो भी वेणीको तो दाहिने हाथसे व साड़ीको बाँयें हाथसे सम्हालती हुई बाहर दौड़कर आई।

एक वेश्या विटके साथ क्रीड़ेके लिये स्वीकृति देकर अन्दर जा रही थी। उतनेमें बाजेके शब्दको सुनकर वह उस विटको आधेमें ही छोड़कर बाहर भाग गई। बहुत दिनसे अपेक्षित विटपुरुषको घरपर आनेपर बहुत-बहुत हर्षित होनेवाली वेश्यायें जुलूसके शब्दको सुनते ही विटके प्रति निस्पृह होकर भाग आयी। विशेष क्या कहें ? पान खानेके लिये जो बैठी थी वह पान खाना भूल गई। जिनका पदर सरका था उसे भी ठीक करना भूल गई। एकदम परवश होकर वेश्यायें भरतेश-को देखने लगीं।

भरतेशके सौंदर्यका क्या वर्णन करें ? जिन स्त्रियोंने भी वहाँपर उनको देखा तो सब अपनेको भूल गई थी और बराबर स्तब्ध पुतलीके समान खड़ी थी।

अधिक क्या ? जिनके बाल सोलह आने पक गये हैं ऐसी बुढ़ियाँ भी भरतेशको देखकर हक्का-बक्का हो गई एवं आधे मुँह खोलकर देखने लगीं एवं भ्रमित होकर दिवालके सहारे टिक गई तो तरुणियोंके हृदयमें किस प्रकारके विचारका संचार हुआ होगा यह पाठक ही कल्पना करें।

स्त्रियाँ भरतेशको देखकर भरतेशके प्रति मोहित हो गई, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वहाँके नगरवासी पुरुष भी भरतेशके सौंदर्यसे मन हारकर भ्रांत हुए। ऐसी हालतमें स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है ? उनका तो हृदय स्वभावतः ही कोमल रहता है।

स्त्रियाँ सब भरतेशको बहुत ही चाहसे देख रही हैं। परन्तु भरतेश की दृष्टि गजरत्नके गण्डस्थलकी ओर है, वे इधर-उधर देख नहीं रहे हैं। यह गम्भीरता भरतेशने कहाँ सीखी होगी ? जिस महापुरुषने तीन लोकमें सारभूत श्री चिदंबरपुरुष परमात्माके अतुलवैभवका दर्शन किया है, क्या उसका चित्त इधर-उधरके क्षुद्र विषयोंसे क्षुब्ध हो सकता है ? कभी नहीं। इसलिये भरतेश भी मदगजके ऊपर बहुत गम्भीरता-से आरूढ़ होकर जा रहे हैं।

करोड़ों पात्रोंका शृङ्गार होकर आगेसे वे नृत्य करते हुए जा रहे हैं एवं स्तुतिपाठक अनेक सुन्दर शब्दोंसे स्तुति करते हुए जा रहे हैं।

आदिजिनपुत्र ! कामदेवाग्रज ! भरतषट्खण्डअधिनाथ ! गुरुहंस-नाथभावक ! तुम्हारी जय हो। समस्त भूपतियोंके पति ! अहंकारी व विरोधी राजगणरूपी जंगलके लिये दावानल ! प्रतिस्पर्धा करनेवाले राजगिरिके लिये वज्रदण्डके रूपमें रहनेवाले हे राजन् ! आपकी जय हो ! राजन् ! लोकमें अनेक राजा ऐसे हैं जो अपने कर्तव्यको नहीं जानते हैं। उनकी वृत्ति उनको शोभित नहीं होती है। आत्मकला व विवेक उनमें नहीं है। फिर भी बाह्यरचनाओंसे अपनी प्रशंसा करा लेते हैं। ऐसे राजाओंके ऊपर भी आप अपने आधिपत्य रखते हैं।

संपत्ति, शील, तेज, आज्ञा, प्रभुत्व, वीरता आदि गुणोंमें, इतना ही क्यों त्याग और भोगमें आप इस नरलोकमें सुरपतिके समान हैं। आप-की जय हो ! इत्यादि अनेक प्रकारसे भरतेशकी स्तुति हो रही है।

सामनेसे बहुतसे खिलाड़ी तरह-तरहके खेल बता रहे हैं। कितने ही पुष्पांजलिक्षेपण कर रहे हैं। बार-बार लोग सामने आकर भरतेश-की आरती उतारकर शुभकामना कर रहे हैं। अनेक तरहके सुगंधित पुष्पोंको हाथीपर क्षेपण करके जयघोषणा कर रहे हैं।

एक तरफसे वीरावली है। दूसरी ओर दारावली है। एक तरफ वीरगुणावली है। दूसरी ओर शृङ्गारावली है। इन सबकी शोभासे सबको अपूर्व आनन्द आ रहा था। स्तुतिपाठकोंको, नर्तन करनेवालोंको एवं खिलाड़ियोंको अनेक प्रकारसे इनाम दिलाते हुए भरतेश इस प्रकार के तेजसे जा रहे हैं कि जैसे मन्दराद्रिके ऊपर चढ़कर सूर्य ही आ रहा हो।

दिग्विजयमें शुभकामना व भरतेशके स्वागत करनेके लिये नगरमें यत्र-तत्र तोरणबंधन किया गया है। कहीं वस्त्रका तोरण, कहीं पुष्पका तोरण, कहीं कोमलपत्तोंका तोरण। इन सब तोरणोंको पारकर जब सम्राट् आगे बढ़ रहे हैं, उस समय ऐसा मालूम हो रहा है मानो सूर्य अनेक वर्णके आकाशमें आगे बढ़ रहा हो।

आगे जाकर कहीं काँसेका तोरण है। कहीं सुवर्णका है। यही क्यों कहीं रत्नसंचयका तोरण है। इन सबको पार करते हुए भरतेश ऐसे मालूम हो रहे हैं जैसे चंद्रमा अनेक चमकीले नक्षत्र व बिजलीको पार करते हुए जा रहा हो।

उन तोरणोंकी रचनामें यह विशेषता थी कि कहीं-कहीं उनमें पुष्पोंकी पोटली बाँधकर रखी गई थी। भरतेश उनमें जब प्रवेश कर रहे थे तब दोनों ओरसे दो दीर्घ डोरोंको खींचनेपर भरतेशके ऊपर पुष्पवृष्टि होती थी। तब सब लोग जयजयकार करते थे।

इस प्रकार पत्तनप्रयाणकी शोभा अपूर्व थी। जिस प्रकार शृङ्गार-वनमें मन्मथराज बहुत वैभवके साथ प्रवेश करता है, उसी प्रकार भर-तेश भी अयोध्यानगरके राजमार्गोंमें बहुत वैभवके साथ जा रहे हैं।

इस प्रकार बहुत बड़े राजवैभवके साथ योग्य समयमें भरतेशने अयोध्याके परकोटेके बाहर पदार्पण किया।

नगरके बाहर बड़े भारी मैदानमें प्रस्थानके लिये विशाल सेना तैयार होकर खड़ी है। सेनापतिरत्न सम्राट्की आज्ञाकी प्रतीक्षामें है। भरतेश भी बहुत प्रसन्नताके साथ गजरत्नपर आरूढ़ होकर उसी ओर जा रहे हैं। सेनाको देखकर उन्हें हर्ष हुआ।

पाठकोंको आश्चर्य होता होगा कि आदि सम्राट् भरतको इस प्रकारका वैभव क्यों कर प्राप्त हुआ ! उन्होंने पूर्वमें ऐसे कौनसे कर्तव्यका पालन किया है, जिससे उनको इस भवमें इस प्रकारके वैभव प्राप्त हुए। संसारमें इच्छित सुखकी प्राप्ति सहज नहीं है। उसके लिये पूर्वभवोपार्जित बड़े भारी सुकृतकी आवश्यकता है। भरतेश्वरने ऐसा कौनसा पुण्य सम्पादन किया जिससे उन्हें यह सब सहज साध्य हो रहे हैं। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि उन्होंने अनेक भवोंसे इस सुकृतका संचय किया है। उन्होंने अनेक भवोंमें इस प्रकारकी भावना की थी कि

हे परमात्मन् ! तुम सुखनिधि हो। लोकमें जो पदार्थ श्रेष्ठ कहलाता है उससे भी तुम श्रेष्ठ हो ! जो अत्यधिक निर्मल है उससे तुम अधिक निर्मल हो ! जो मधुर है उससे अनंतगुण अधिक तुम मधुर हो ! इसलिये मधुर अमृतको सिंचन करते हुए मेरे हृदयमें चिरकालतक वास करो।

परमात्मन् ! भव्य कमलके लिये तुम सूर्यके समान हो ! धीर हो ! जो लोकमें सत्यप्रकृतिके हैं उनको अत्यंतभोग व अधिक सौभाग्यको प्राप्त करानेमें तुम प्रधान सहायक हो। अतएव स्तुत्य हो, तुम मेरे हृदयमें बने रहो।

उसी भावनाका यह मधुर फल है।

इति पत्तनप्रयाण संधि.

—:o:—

दशमीप्रस्थान संधि

भरतेश्वर गजारूढ़ होकर बहुत वैभवके साथ आगे बढ़ रहे हैं। अयोध्यानगरके बाहर ही कुछ दूरमें सामनेसे एक विजय वृक्षपर चक्ररत्नका प्रकाश दिखने लगा।

सिंहलग्नमें जब महलसे सिंहासनाधीशने प्रस्थान किया तब सेनापतिको आज्ञा दी कि चक्ररत्नको आगे चलाओ। उनके संकेतसे ही उसका श्रृङ्गार किया गया था। अनेक प्रकारकी झालरी, वस्त्र व भूषणोंसे उस विजयवृक्षकी भी शोभा की गई थी।

विजयवृक्षको कन्नड़में "बन्नी" कहते हैं। "बन्नी" शब्दका दूसरा अर्थ आओ ऐसा होता है। जिस समय उस वृक्षके सुन्दर पत्ते हवासे

हिल रहे थे, उससे ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद वह वृक्ष वृक्ष लोगोंको अपने पास बुलाते (आओ) ऐसा कह रहा हो। उस विजय वृक्षकी वेदिकाके चारों तरफ अनेक चामर, झालरी आदिकी शोभा है और गाजे बाजोंका सुन्दर शब्द हो रहा है।

राजा भरत भी उस वृक्षके पास चले गये। एक बार उन्होंने हाथी को ठहराकर अंकुशपर हाथ रखकर वीरदृष्टिसे चारों ओर देखा। जिधर देखते हैं उधर हाथी हैं, घोड़े हैं, रथ हैं, अगणित सेनायें हैं। अपनी अपनी विशाल सेनाओंको लेकर छप्पन देशके राजागण उपस्थित हैं।

भरतेश्वरका सेनापति जयराज है, उसे अयोध्यांक भी कहते हैं। उसने सारी सेनाकी व्यवस्था की है। वह कुलीन है, [illegible] विवेकी है और अमल क्षत्रिय है। वह सम्राट्के पासमें ही है।

दुपहरको तीसरे प्रहरमें राजदरबार लगा। सेनापति जयराजके इशारेको पाकर वहां उपस्थित सब राजाओंने आकर सम्राट् भरतेश-का दर्शन किया।

अनेक शृंगारसे युक्त घोड़े पर चढ़कर अंग देशके राजा आये और उन्होंने बहुत आदरके साथ राजा को नमस्कार किया। इसी प्रकार पल्लव, केरल, कन्नौज, करहाट, सौराष्ट्र, काशी, तिगुळदेश, तेलगूदेश, हुरमंजि, पारसी, चेर, सिन्धु, कलहरि, ओड्रि पांड्य, सिंहल, गुर्जर, नेपाल, विदर्भ, चीन, महाचीन, भोट्ट, महाभोट्ट, लाट, महालाट, काश्मीर, तुरुक, कर्णाट, कांभोज, बंग, वृत्त, चित्रकूट, पांचाल, गौल, कालिंग, मालव, मलका, बंगाल, साम्राणि, कुंतल, हम्मीर, गौड़, कोंकण, तुळु देश, बर्बर, मलय, मगध, हैव, महाराष्ट्र, दुपारी, मले-याळ, कोडगु, शालिहर, मले, मधुर, चोल, कुरुजांगल, मथुरा आदि अनेक देशोंके राजा अपने अपने अद्वितीय वैभवके साथ आये व भरतेश-को बहुत आदरके साथ नमस्कार कर एक तरफ खड़े हुए। विशेष क्या? छह खण्डके राजाओंमें आर्य खण्डके समस्त राजा वहां उपस्थित थे। पांच म्लेच्छ खण्डके राजा वहांपर नहीं थे।

आर्यखंडके अधिपति तो सम्राट्के अधीन हो चुके। अब म्लेच्छ-खंडके राजाओंको वशमें करनेके लिए इस सेनाको एकत्रित किया है।

तीनों समुद्रोंके अधिपति तीन व्यन्तरेन्द्र हैं। उनको वशमें करनेके बाद पांच म्लेच्छ खंडोंकी ओर भरतेश बढ़ेंगे।

उनके साथ अगणित सेना मौजूद है। अपनी मदजलधाराको बहाते हुए जृंभण करनेवाले मंगलहाथी उस सेनामें चौरासी लाख हैं। इसी प्रकार अपनी सुन्दर चाल व चीत्कारसे बड़े बड़े पर्वतको भी शिथिल करनेवाले सुन्दर रथ चौरासी लाख हैं।

सामान्य घोड़ोंकी संख्या हमें मालूम नहीं। वह अगणित थे, परंतु उत्तम व सुन्दर लक्षणोंसे युक्त घोड़े अठारह करोड़की संख्यामें थे।

सामान्य सेवकोंकी बात जाने दीजिये। परन्तु उत्कृष्ट क्षत्रिय जातिमें उत्पन्न जातिवीरोंकी संख्या चौरासी करोड़ थी।

इसी प्रकार रणभूमिमें शोभा देनेवाले व सम्राट्के अंगरक्षण के लिए सदा कटिबद्ध व्यन्तर कुलोत्पन्न देव सोलह हजार थे।

इस प्रकार चतुरंग सेना से युक्त होकर भरतेशने उस विजय वृक्षसे आगे बढ़नेकी तैयारी की। उनके इशारेको पाकर करोड़ों बाजे बजने लगे। उस विजय वृक्षको अपनी दाहिनी ओर कर विजयपर्वत हाथीको चक्रवर्तीने चलाया। उस हाथीके आगेसे ध्वजसहित चक्ररत्न चमक रहा था।

दाहिनी ओर, आगे और पीछे सब जगह सेना ही सेना है। बीचमें सुमेरुके समान सम्राट् बहुत शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

भरतेश्वरके आश्रित राजागण अपनी अपनी सेना व वैभवके साथ उनका अनुकरण कर रहे हैं और सब लोग जयजयकार करते हुए उनकी शुभभावना कर रहे हैं।

इस प्रकार अचिन्त्य वैभवके साथ भरतेश अयोध्यानगरसे कुछ ही दूर गये हैं। वहांपर मय (व्यन्तर) के द्वारा रचित मुक्कामके स्थानको उन्होंने देखा। वहांपर भरतेश्वरने अपने दीर्घ हस्तसे सब सेनाओंको इशारा कर दिया कि सब लोग यहींपर ठहरें।

सब राजाओंके लिए हैसियतके अनुसार विश्वकर्मा रत्नने सबको अलग अलग महलोंका निर्माण कर रखा है। सब लोग बिना किसी प्रकारके कष्टके उन महलोंमें प्रवेश कर गये। पर्वतपरसे उतरने के समान सम्राट् स्वयं हाथीपरसे उतरे। विद्वान् व वेश्याओंको उन्होंने भेज दिया एवं अपनी महलकी ओर गये। उनके साथ बहुतसे लोग थे। महलके बाहर खड़े होकर सब साथियोंको कहा कि अब शामके भोजनका समय हो चुका है। अब आप लोग चले जाइयेगा। इस प्रकार बुद्धिसागर, सेनापति व गणबद्ध देवोंको वहांसे बिदा देकर

भरतेश अपने लिये निर्मित सुन्दर भद्रमुख नामक महलमें प्रवेश कर गये।

उस महलमें प्रविष्ट होकर जब भरतेशने वहांपर शृङ्गारसे युक्त एक विवाह मण्डपको देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे उसी दृष्टिसे उसे देखने लगे थे। वहांपर पासमें ही रानी कुसुमाजी खड़ी थी। उसने कहा कि स्वामिन्! यह आपके लिये भविष्यकी मंगल सूचना है। आज मेरी बहिनका विवाह इस मण्डपमें आपके साथ होगा। तब सम्राट्ने प्रश्न किया कि देवी! नगरमें रहते हुए यह कार्य तुमने क्यों नहीं किया? बाहर इसकी तैयारी क्यों की गई है।

स्वामिन्! मैंने पिताजीको पहिलेसे ही सूचना भेजी थी। परन्तु उनके आनेमें कुछ देरी हुई। इसलिये विवाहका योग इस स्थानपर आया। आजही रातको विवाहके लिये योग्य मुहूर्त है, इस प्रकार ज्योतिषियोंसे निर्णयकर पिताजी आये हैं। मेरी बहिन भी पूर्ण यौवन व सौंदर्यसे युक्त है। इस प्रकार बोलती हुई राजाके साथ ही अन्दर गई। वहांपर भरतेशने अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर एक पंक्तिमें निरन्तराय भोजन किया और कहने लगे कि यह हमारे लिये भविष्यमें होनेवाली विजयकी सूचना है। जयलक्ष्मी भी इस दिग्विजय प्रयाणमें इसी प्रकार मेरे गलेमें माला डालेगी, जिस प्रकार कुसुमाजीकी बहिन डालेगी।

इतनेमें सूर्य अस्ताचलपर चला गया। संध्याराग यत्रतत्र दिखने लगा। भरतेशने सायंकालके संध्यावन्दनको किया। बादमें अर्ककीर्ति कुमारके पास जाकर उसे प्यार किया। अनन्तर विवाह योग्य वस्त्रादिकसे शृङ्गार कर स्त्रियोंके साथ विनोद वार्तालाप कर बैठे थे। विवाहका मुहूर्त अतिनिकट है, इसकी सूचना पाकर भरतेश विवाह मण्डपमें दाखिल हुए। वहांपर अखण्ड अक्षतोंकी पंक्ति शोभित हो रही थी। उसपर आप खड़े हो गये।

पासमें ही श्वसुरके साथ कुसुमाजीका सहोदर कमलांक खड़ा था। उसके साथ विनोद करनेके विचारसे भरतेश बोले कि कमलांक! तुम्हारी यह बहिन कुसुमाजीके समान नहीं है। इसने बहुत क्रोधके साथ मेरा तिरस्कार किया था।* वह लोकमें अपनेको असमान समझती है। ऐसी अवस्थामें फिर भी लाकर मेरे साथ ही उसका विवाह करना क्या यह बुद्धिमत्ता है? तब कमलांक बोला कि राजन्! लोकमें

*प्रथमभागकी सरस संधिको देखें।

तुम भी असमान हो और मेरी बहिन भी असमान है। असमान पुरुषको असमान स्त्रीकी जोड़ कर देना बुद्धिमत्ता नहीं तो और क्या है? राजा उसे सुनकर कुछ मुस्कराये व कहने लगे कि अब विवाहका समय हो गया है। तुम्हारे साथ बहुत विनोद वार्तालाप करनेके लिये यह समय नहीं है। इस प्रकार कहकर मंगल प्रसंगके मंगलाष्टक शोभनपद वगैरहको सुनते हुए खड़े हुए। इतनेमें बीचका पर्दा हटा दिया गया। गजांकुश राजाने गुरुमंत्रसाक्षिपूर्वक जलधाराको छोड़नेपर श्री सम्राट्ने होमसाक्षी पूर्वक मकरन्दाजीको ग्रहण किया।

राजेन्द्र भरत उस मकरन्दाजीको लेकर अपनी महलमें चले गये। कुसुमाजीने अपने पिताको विश्रांतिके लिये भेज दिया। राजा भरत सुखांगमें मग्न हो गये।

सेनामें इस आकस्मिक विवाहकी चर्चा होने लगी। सब लोग कहने लगे कि भरतेशका पुण्य अचिन्त्य है! इससे दिग्विजयसे यह षट्खंड पृथ्वी वशमें होगी। इसके लिये यह विवाह ही पूर्व सूचना है। कल एकादशी है। अपन आगे जायेंगे। इत्यादि अनेक प्रकारके विचारोंसे सेनाने भी विश्रांति ली।

पाठकोंको भी आश्चर्य होता होगा कि भरतेश्वरका भाग्य इतना विशाल क्यों है? जहाँ जाते हैं उनको आनन्द मिलता है। महलमें रहते हैं तो सुख, बाहर निकले तो वहाँपर भी सुख। इस प्रकारका भाग्य संसारमें अतिविरल मनुष्योंका ही हो सकता है। भरतेश्वरने पूर्वमें ऐसा कौनसा कार्य किया होगा जिसके द्वारा उन्हें इस भवमें अनन्य दुर्लभ वैभवोंकी प्राप्ति हो रही है। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि पूर्वजन्मका संस्कार, पूर्वजन्मका धर्माचरण। उन्होंने पूर्वभवमें व वर्तमानभवमें इस प्रकार आत्मभावना की है कि:-

हे आत्मन्! ज्ञान व दर्शन ही तुम्हारा स्वरूप है। उस ज्ञान व दर्शनका प्रकाश तुम्हारे रूपमें उज्ज्वलरूपसे प्रतिभासित हो रहा है। वही संसारमें मोहांधकारमें पड़े रहनेवाले प्राणियोंको भी मोक्षपथ-प्रदर्शक है। इसलिए हे परमात्मन्! तुम भव्योंके हितैषी हो। इसलिये छिपो मत! मेरे शरीरकी आड़में बराबर बने रहो।

उसी भावनाके मधुर फलको वे प्रति समय सुखस्वरूपमें अनुभव करते हैं।

इति दशमिप्रस्थान संधि.

—:o:—

पूर्वसागरदर्शन संधि

आज एकादशीका दिन है। भरतेश प्रातःकाल अपनी नित्य-क्रियाओंसे निवृत्त होकर बाहर आये। माकाल नामक व्यंतरको बुला-कर आज्ञा दी कि हमारे लौटनेतक अयोध्यानगरीकी रक्षा करनेका कार्य तुम्हारा है। इसलिये इस कार्यमें संलग्न रहना। फिर सेनापति-को आज्ञा दी गई कि अब प्रस्थानभेरी बजाई जाय।

आज्ञा होनेकी देरी थी कि प्रस्थानभेरीकी आवाजने आकाश प्रदेशको व्याप लिया। उसी समय सेनाने जो पहिलेसे प्रस्थानभेरीकी प्रतीक्षा कर रही थी, प्रस्थान किया। चक्ररत्न भी सामनेसे प्रकाशमान होते हुए चलने लगा। सम्राट् भरत भी उत्तमरत्नोंसे निर्मित पालकी-पर बिराजमान होकर पधार रहे थे। भरतेश्वरके ऊपर श्वेतकमलके समान छत्र व चारों तरफसे राजहंसोंके गमनके समान धीरे-धीरे डूलनेवाले चामर अत्यंत शोभाको दे रहे थे।

बहुतसे गायक लोग समयको जानकर योग्य रागोंमें गाते हुए वाद्य वगैरह बजा रहे हैं। उनमें परमात्मकलाका वर्णन है। उसे सुनकर सम्राट्का चित्त भी प्रफुल्लित होता है। सम्राट् मन-मनमें ही हर्षित होकर उसका अनुमनन कर रहे हैं। भरतेश्वरकी पालकीके चारों ओर-से अनेक वीर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित अगणित गणबद्ध देव आ रहे हैं।

केवल सम्राट्के अंगरक्षकोंके कार्यमें कटिबद्ध दो हजार गणबद्ध वीर हैं। साथमें रानियोंकी पालकियोंके पीछेसे उनकी रक्षाके लिये सात हजार गणबद्ध देव मौजूद हैं। हाथी, घोड़ा, रथ व पदातियोंकी चतुरंग सेना मीलों क्यों कोसोंतक फैली हुई है। इसके बीचमें अर्क-कीर्तिकुमारका सुन्दर झूला आ रहा है।

भरतेश्वरकी सेनामें इस प्रकार व्यवस्था है कि आगेकी सेना भर-तेशकी है और पीछेकी सेना (अंतःपुरसेना) सब अर्ककीर्तिकी है। क्योंकि स्त्रियां बच्चोंके साथमें आ रही हैं, अर्ककीर्तिकी सेनाके कुछ पीछे एक करोड़ वीरोंके साथ भरतपादुक नामके दो गोपाल राजा आ रहे हैं, जो अत्यंत वीर हैं। शत्रुओंको बहुत तेजीसे दमन करनेवाले हैं।

पूर्वाह्णकालके समय पूर्व (आदि) तीर्थंकरके पूर्व (प्रथम) पुत्र पूर्वयुगके पूर्व (प्रथम) चक्रवर्ती पूर्वाभिमुख होकर अपनी अगणित सेनाके साथ जा रहे हैं। उस समयकी शोभा अपूर्व थी। वैभव व सम्भ्रम अपूर्व था। उसका वर्णन कहाँतक करें। इस प्रकार अत्यंत

वैभवके साथ सम्राट्ने अपनी सेनाको बीच-बीचमें अनेक स्थानोंमें विश्रांति देकर गंगानदीके सुन्दर किनारेपरसे प्रस्थान कराया। आगे अब पूर्वसमुद्रकी ओर जा रहे हैं।

देवगंगाके दक्षिणमें उपलवण समुद्र मौजूद है। उसे दाहिनी ओर कर भरतेश अपनी सेनाके साथ जा रहे हैं। अनेक स्थानोंमें सेनापति श्री जयकुमारके इशारेसे मुक्काम करते-करते पूर्वसमुद्रको गाठ लिया। पूर्वसागरके दर्शन करते ही सभी सेनाओंमें एक नवीन उल्लास छा गया।

बुद्धिसागरने आकर समयोचित विनती की कि राजन्! इस समुद्रका अधिपति मागधामर नामक व्यंतर है। वह अत्यंत कोपी है पर वीर है, उसको सबसे पहिले वशमें कर लेना चाहिए। बादमें आगेके कार्यके संबंधमें विचार करेंगे। बुद्धिसागरके वचनको सुननेके बाद सम्राट्ने कहा कि क्या मागधामर कोपी है? उसके क्रोधको मैं भस्म कर दूंगा। उसे शायद समुद्रमें रहनेका अभिमान होगा। उसे मैं क्षणभरमें वशमें कर लूंगा। रहने दो। उसे पहिले मैं एक पत्र भेजकर देखूंगा। पत्र पढ़कर भी वह यदि नहीं आवे तो फिर उसे योग्य बुद्धि सिखाऊँगा, अभी उससे बोलनेसे क्या प्रयोजन?

उसी समय आज्ञा दी गई कि वहींपर सेनाका मुक्काम हो जाय। पूर्वसागरके तटमें सेनासागरने अपनी विशालताको व्यक्त किया।

३६ योजन चौड़ाई व ४० योजन लम्बाईके उस विशाल प्रदेशको सेनाने अपना स्थान बनाया। विशेष क्या, वहांपर बाजार, अश्वालय, गजालय, वेश्यागली आदि समस्त रचनायें विश्वकर्माके वैचित्र्यसे क्षणमात्रमें हो गई। राजगण, राजपुत्र, राजमित्र, मंत्री व मंत्रिपरिवार, आदि सबको योग्य स्थानोंका प्रबंध किया गया था। उस नगरके बीचमें अनेक परकोटोंसे वेष्टित राजमहल निर्मित हो गया था। साथमें भरतेशकी रानियोंको अलग-अलग रनिवास, शयनगृह, जिनमन्दिर आदि सबकी सुन्दर व्यवस्था की गई थी।

भरतेशने सबको अपने अपने स्थानमें जानेके लिए आज्ञा दी व जयकुमारसे सेनाको बहुत होशियारीके साथ सम्हालने के लिए कहकर स्वयं जाने लगे, इतनेमें अर्ककीर्तिकी सेना आ गई और सन्तोषके साथ उसने महलमें प्रवेश किया। सम्राट्ने भी पालकीसे उतरकर अंदर प्रवेश किया।

अन्दर जाते समय बुद्धिसागरसे कहा कि मंत्री! अभी तुम भी जाकर विश्रांति लो! आगेका विचार कल करेंगे। इस प्रकार कहते हुए सम्राट् अंदर गये व वहाँ नवभद्रशाला मण्डपमें जाकर एक सिंहासनपर विराजमान हुए। सबसे पहले अर्ककीर्तिकुमारको बुलाकर उसके साथ प्रेमव्यवहार विनोद किया। उसे विश्वस्त दासीके हाथ सौंपनेके बाद सामने खड़ी हुई अपनी रानियोंके तरफ कुछ मुसकराते हुए देखा। पिछले मुक्कामकी अपेक्षा उन देवियोंकी मुखचर्यामें थकावट अधिक दिख रही है। जहाँ जहाँ मुक्काम करते हैं, वहाँ सबसे पहिले रानियोंसे सम्राट् पूछते रहते हैं कि आप लोगोंको कोई कष्ट तो नहीं है। आज रानियोंका मुख म्लान हुआ है। पसीना आया हुआ है। इसलिए मनमें कुछ खिन्न होकर कहा कि देवियो! आप लोग बैठ जावें। आप लोगोंको देखनेपर मालूम होता है कि आज बहुत-बहुत थक गईं। जरा विश्रांति लो। भरतेशकी बातको सुनकर उन रानियोंको भी हँसी आई, हँसती-हँसती ही बैठ गईं। फिर भरतेश कहने लगे कि क्या आप लोगोंकी पालकियोंको बहुत वेगसे लेकर आये? उसीसे शरीर हिलकर आप लोगोंको यह कष्ट हुआ होगा। आप लोगोंका मुख म्लान हो गया है। धूपसे कष्ट हुआ मालूम होता है। मेरे साथमें आनेसे लोगोंकी अधिक भीड़से आप लोगोंको कष्ट होगा, इस विचारसे आप लोगोंको पीछेसे अलग ही आनेकी व्यवस्था की गई थी। फिर भी कष्ट हुआ ही। हाँ! क्या आप लोगोंको किसीने गुलाबजल वगैरह भी नहीं दिया? मान लो! आप लोग चुप रहीं। आपके साथ जो दासियाँ नियुक्त हैं वे चुप क्यों बैठीं? उनको तो विचार करनेका था। क्या प्राण जानेपर वे काममें आतीं? क्या करें! दुःख हुआ, इस प्रकार सम्राट् बहुत दुःखके साथ कहने लगे। तब रानियोंने कहा कि स्वामिन्! आप इन बेचारी दासियोंपर क्यों रुष्ट होते हैं? उनका क्या दोष है? आज पूर्वसागरको देखनेकी हमें उत्कट इच्छा हो गई थी। हम लोगोंने ही जल्दी चलनेकी आज्ञा दी थी। हमारी आज्ञाके अनुसार उन लोगोंने कार्य किया। इसमें उनका क्या दोष है?

इन दासियोंने व विश्वस्त लोगोंने हमें कहा कि जरा धीरेसे चलनेसे ही ठीक होगा। नहीं तो स्वामी भरतेश्वर हम पर रुष्ट होंगे। तब हम लोगोंने ही उनकी बातको न सुनकर जल्दी चलनेके लिए कहा। यह हमारा अपराध है। इसके लिए आप क्षमा करें। आपको मालूम होगा कि इसी मुक्कामके लिए ही हम लोग आतुरताके साथ आईं।

आजतक इस प्रकारका अपराध हम लोगोंसे नहीं हुआ था। इसलिए क्षमा करें। प्राणनाथ! आपके दर्शन करने मात्रसे हम लोगोंकी थका-वट दूर हो गई है। इसलिए आप चिंता न करें। अब आगेका कार्य करें। भरतेशने कहा तब तो ठीक है। अभी हम लोग स्नान-देवार्चन वगैरह करके बादमें भोजनसे निवृत्त होकर दुपहरको समुद्रकी शोभा देखें। तब वहांसे उठकर सभी ऊपरके महलमें चले गये।

मय नामक व्यंतरने क्षणभरमें भरतेश्वर व उनकी रानियोंके लिए लाखों स्नान घरोंका निर्माण कर रखा था। गृहपतिरत्नकी प्रेरणासे वहांपर उत्तम जलका भी निर्माण हो गया। एकएक घरमें एक एक रानीने प्रवेशकर स्नान किया। भरतेश्वरने भी उनके लिये निर्मित स्वतंत्र स्नानगृहमें प्रवेश कर स्नान किया।

देवोंके द्वारा निर्मित उन स्नानघरोंमें किसी भी प्रकारकी अड़चन नहीं है। आग लगाओ, लकड़ी लाओ, उसे बुलाओ, इसे बुलाओ इत्यादि किसी भी प्रकारकी झंझट वहाँ नहीं है। सभी गृहपतिरत्नकी व्यवस्थासे क्षणभरमें हो जाते हैं। स्नान करनेके बाद धारण करनेके लिये उत्तमोत्तम वस्त्रोंकी स्मरण करने मात्रसे पद्मनिधिनामक रत्न दे देता है। उसकी सहायतासे सब लोगोंने दिव्यवस्त्रोंको धारण किया। इसी प्रकार इच्छित आभूषणोंको पिंगलनिधिनामक रत्न दे देता है। उसके बलसे इच्छित आभूषणोंको धारण किया अर्थात् सब लोग स्नान कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हुए। देवतंत्रसेही वस्त्राभूषणोंको धारण कर श्री भरतेश्वर देवालयको सपरिवार चले गये। वहांपर उन्होंने बहुत भक्तिसे पूजा की। उससे निवृत्त होकर अपनी रानियोंको साथ लेकर दिव्य अन्नपानको ग्रहण किया। बादमें तांबूल व सुगंध द्रव्योंको लेकर कुछ देरतक अपने श्रमपरिहारके लिये सुखनिद्रा की। निद्रादेवीने अपनी कोमल गोदमें सबको स्थान दिया।

मध्याह्न तीसरे प्रहरमें भरतेश्वर अपनी स्त्रियोंके साथ समुद्रकी शोभा देखनेके लिये ऊपरकी महलपर चढ़ गये। भरतेश्वरकी स्त्रियोंने इससे पहिले समुद्रको कभी नहीं देखा था। बहुत उत्सुकताके साथ देखने लगीं और भरतेश्वर भी बहुत समझाकर उन्हें दिखा रहे थे। स्त्रियोंने नाकपर उँगली दबाकर समुद्रकी शोभा देखी। समुद्रका अन्त उनकी दृष्टिसे भी परे है। उसमें अगाध जल है। अनन्त तरंग एकके बाद एक आ रहे हैं। एक तरंग आ रहा है। वह नष्ट होता है, इस

प्रकार हजारों, लाखों, करोड़ों क्या अगणित तरंग आ रहे हैं। बीच बीचमें बहुतसे पर्वत हैं। कहीं-कहीं नाव, जहाज, लांच वगैरह देखनेमें आते हैं।

इस प्रकार अनेक प्राकृतिक शोभाओंसे युक्त समुद्रको देखकर वे सब देवियाँ बहुत प्रसन्न हुई। सम्राट्ने कहा कि आप लोग आजसे रोज समुद्रको देख सकती हैं। आज इतना ही बहुत है। अपन सब नीचे चलें। ऐसा कहकर सब लोगोंको साथ लेकर नीचेकी महलमें आये। वह दिन बहुत आनन्दके साथ व्यतीत हुआ। राग व भोगके साथ चक्रवर्तीने पूर्वसागरके तटमें निवास किया।

शायद हमारे प्रिय पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरको भी रानियोंके समान ही उन समुद्रको देखकर अत्यधिक सन्तोष हुआ होगा। नहीं! उनको समुद्रको देखनेसे हर्ष नहीं हुआ। उनके पास ही समुद्र है। ज्ञानसमुद्रका दर्शन वे रोज करते हैं। उनको किस बातकी परवाह है? यदि सन्तोष हुआ तो केवल इस बातका कि पूर्वसागर सदृश सुन्दर स्थानमें बैठकर उस ज्ञानसागर परमात्माका विशेष रूपसे निराकुलतासे दर्शन करेंगे। बाह्यसुन्दरतापर वे मुग्ध नहीं हुआ करते हैं। बाह्य वैचित्र्य यदि अन्तरंगके लिए सहायक हो तो उसीका अनुभव कर लेते हैं। इसलिये ही उनकी सदा भावना रहती है कि :—

हे परमात्मन्! समुद्रको लोग गम्भीर है ऐसा वर्णन करते हैं। तुम्हारी गम्भीरताके सामने उसकी गम्भीरता कोई चीज नहीं है। तुम्हारा गांभीर्य उसे तिरस्कृत कर देता है। समुद्रका जल अगाध है। वह अपार है। उसी प्रकार तुम्हारी महिमा भी अगाध व अपार है। इसलिये परमात्मन्! मेरे हृदयमें तुम्हारा अध्यवसाय निरवच्छिन्नरूपमें बना रहे।

सिद्धात्मन्! आप भव्योंके संपूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाले हैं। भव्योंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। संपूर्ण कर्मोंको दूर कर चुके हैं। अतएव अनन्त सुखके पिण्डमें मग्न हैं। आप सर्व कल्याणकारी हैं। मुनि, महामुनियोंके हृदयमें भी ज्ञानज्योतिको उत्पन्न करनेके लिए आप साधक हैं। इसलिये स्वामिन्! हमें भी सुबुद्धि दीजिये ताकि हम मधुरवचनके द्वारा संसारका कल्याण कर सकें।

इति पूर्वसागरदर्शन संधि.

—o—

राजविनोद संधि

दूसरे दिन भरतेश्वर, अपने महलमें मंत्री, सेनापति आदि प्रमुख व्यक्तियोंको बुलाकर, आगेके कार्यको सोचकर बोलने लगे कि मागधामरको वश करनेमें क्या बड़ी बात है। सेनानायक व मंत्री ! तुम सुनो ! उस व्यन्तरको वश करनेके लिये कोई चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं है। परन्तु मुझे इस समुद्रके तटपर एक दफे ध्यान करनेकी इच्छा हुई है। कल जबसे मैंने इस समुद्रको देखा है तभीसे मेरे हृदयमें ध्यान करनेकी उत्कट भावना बार-बार उठ रही है। ऐसी अवस्थामें उस इच्छाकी पूर्ति करना मेरा धर्म है। ध्यान करनेके लिये जंगल, समुद्रतट, नदीतट, पर्वतप्रदेश आदि उत्तम स्थान हैं, इस प्रकार अध्यात्म शास्त्रोंमें वर्णित है। वही वचन मुझे स्मरण हो आया है। जबसे अयोध्या नगरसे हम आये हैं तबसे मनको तृप्त करने लायक कोई ध्यान हमने नहीं किया है। इसलिये समुद्रतटमें रहकर एकदफे ध्यान कर परमात्माका दर्शन कर लेना चाहिये।

भरतेश्वरके इस वचनको सुनकर बुद्धिसागर मंत्रीने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! हमारी विनती है कि ध्यान करनेके लिये समुद्रतट उपयुक्त है यह मुझे स्वीकार है। परन्तु पहिले हम जिस कार्यके लिये यहाँ पर आये हैं वह कार्य पहिले करना अपना धर्म है। सबसे पहिले शत्रुको अपने वशमें करें। बादमें आप निराकुल होकर ध्यान करें, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है।

मंत्री ! भरतेश्वर बोले, तुम इतना डरते क्यों हो ? क्या मागध मेरे लिये शत्रु है ? सूर्यके लिये उल्लूकी क्या परवाह है ? मैं ध्यान करनेके लिये बैठूं तो वह अपने आप आकर मेरे वशमें होगा। आप लोग तृणको पर्वत बतानेके समान उसकी बढ़वारी कर रहे हैं। क्या गणबद्ध देवसेवकोंको आज्ञा देकर उसे यहाँपर बाँधकर मँगाऊँ ? वह भी जाने दो ! वज्रखंड नामक मनुष्यको अग्निवर्षक बाणका संयोगकर उसके नगरमें भेजकर भस्म कराऊँ ? वह भी जाने दो ! मयदेवको आज्ञा देकर पर्वतको गिरवाऊँगा एवं इस समुद्रके बीच में पुल बँधवाकर अपनी सेनाको वहाँ पर भेजूंगा और उस भूतोके राजाको अपने नौकरोंके हाथसे यहाँपर मंगाऊँगा। उसके लिये चक्रकी जरूरत नहीं, धनुषकी जरूरत नहीं, मेरे साथ जो राजपुत्र हैं उनको भेजकर उनकी वीरतासे उसे यहाँ खिचवा लाऊँगा। मंत्री ! तुम विचार क्यों नहीं

करते ? यदि आज हम इससे डरें तो आगे विजयार्ध गुफामें रहनेवाले बड़े-बड़े राजाओंको किस प्रकार जीतेंगे। फिर तो उस विजयार्धके उस पार तो हम नहीं जा सकेंगे। आप लोग इस प्रकार निरुत्साहित क्यों होते हो ? मेरे लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है। एक दफे इस समुद्रतट में परमात्मसंपत्तिका दर्शन कर लूंगा। बुद्धिसागर ! मेरे लिये तो उस मागधको जीतना डोंबरके खेलके समान है। तुम लोग इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? मैं परमात्माके शपथपूर्वक कहता हूँ कि उसे मैं अवश्य वशमें कर लूंगा, तुम लोग चिन्ता मत करो। जिस समय मैं परमात्माका दर्शन करता हूँ, उस समय कर्मपर्वत भी झर जाते हैं। फिर यह मागध किस खेतकी मूली है ? कल ही लाकर अपनी सेवामें उसे लगा दूंगा। आप लोग देखें तो सही। एक बाणको भेज कर उसके अन्तरंगको देखूंगा। नाखूनसे जहाँ काम चलता है वहाँ कुल्हाड़ीकी क्या जरूरत है ?

उसके लिये आप लोग इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? वह आवे तो ठीक है ! नहीं आवे तो भी ठीक है। क्योंकि मेरी वीरताको बताने के लिये मौका मिलेगा।

कर्मसमूहोंको जीतनेके लिये मुझे विचार करना पड़ता है। परन्तु इस समुद्रमें कूर्मके समान रहनेवाले उस मागधामरको जीतनेके लिये इतनी चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है ? आप लोग मर्मज्ञ हैं, जाइयेगा।

मैं तीन दिनतक ध्यानमें रहकर बादमें उसके पास एक बाण भेज कर यहाँ पर आऊँगा। यह राजयोगांग है। आप लोग सेनाकी रक्षा होशियारीसे करें। इस प्रकार कहते हुए भरतेश्वरने मंत्री व सेनापति को अनेक वस्त्राभूषणों को उपहारमें देकर विदा किया। तदनंतर स्वयं समुद्रतटमें गये। वहांपर पहिलेसे ही विश्वकर्मारत्नने भरतेश्वरको ध्यान करने योग्य प्रशस्त योगालयका निर्माण कर रखा था। उसमें प्रवेश कर राजयोगी भरतेश योगमें मग्न हो गये।

योगशास्त्रमें ध्यानके लिये आठ अंग प्रतिपादित हैं। यम, नियम, पासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, कोमलधारणा और सुसमाधि इस प्रकार अष्टांगयोगमें भरतेश्वर एकाग्रचित्तसे मग्न हो गये।

किसी व्यक्तिको कोई निधि मिली हो, उसे वह जिस प्रकार लोगों के सामने नहीं देखकर एकांतमें लाकर देखता है, उसी प्रकार भरतेश्वर भी उस आत्मनिधिको समुद्रतटके एकांत में लाकर देख रहे हैं।

भरतेश्वर पहिले भी अनेक बार ध्यान करते थे। परन्तु उस दिन का योग तो कुछ और ही था। उस दिन योगमें आनन्द, उल्लास, उत्साह व एकाग्र अधिक था। इसलिये भरतेश्वर अपने आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। विशेष क्या? पर्वयोगसंधिमें जो ध्यानका वर्णन किया है उसी प्रकार भरतेश्वर ध्यानमग्न हो गये और दुर्वार कर्मोंकी उन्होंने सातिशय निर्जरा कर अपूर्व आत्मसुखका अनुभव किया। तीन दिनके ऊपर तीन घटिका और व्यतीत हो गई। परन्तु भूख, प्यास वगैरहकी कोई बाधा भरतेश्वरको नहीं हुई। तीन लोक में सार कहलानेवाले आत्मसुखामृतका सेवन करनेपर लौकिक भूख-प्यास क्योंकर लगेगी। तीसरे दिन पारणाके बाद विश्रांति ली। तदनंतर दुपहरके समय सोनेके रथपर आरूढ़ होकर समुद्रमें धीरवीर चक्रवर्तीने प्रयाण किया।

ध्वज, घंटा, कलश, पुष्पमाला इत्यादिसे उस अजितंजय नामक रथका खूब शृंगार किया गया था। एक गणबद्ध देव उस रथका सारथी है। वह अपने चातुर्यसे भूमिपर जिस प्रकार रथ चलाता हो उसी प्रकार उसे जलपर भी चला रहा है। अनेक तरंग एकके बाद एक आ रहे हैं। उन सबको पार कर वह रथ आगे बढ़ रहा है।

इस प्रकार बारह योजन तक प्रयाण करनेके बाद जहाजके मुक्काम के समान उस रथने भी मुक्काम किया। रथ आगे न बढ़कर जिस समय ठहर गया उस समय ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद समुद्र ने भरतेश्वरसे प्रार्थना की है कि स्वामिन्! अब आप आगे न बढ़ें। क्योंकि और भी आप आगे बढ़ेंगे तो शत्रुगण डरके मारे भाग जायेंगे। इसलिये आपका यहीं ठहरना उचित है।

चक्रवर्तीने वहींपर खड़े होकर अपने धनुष व बाणको तान दिया। जिस प्रकार भरतेश्वर योग करते समय कर्मके स्थानको ठीक पहिचान कर काम करते हैं उसी प्रकार यहाँ भी ठीक शत्रुके स्थानको पहिचान कर बाणका प्रयोग किया। उस बाणगर्जना से आकाशमें, भूमिमें व जल में एक विप्लवसा मच गया। उस बाणको प्रयोग करते समय राजा भरतेशने हुंकार शब्द किया, बाण ने टंकार किया, इन दोनोंके भीषण शब्दोंसे जगत् में सब जगह त्राहि-त्राहि मच गई। सेना के हाथी, घोड़े वगैरह सब डरके मारे इधर-उधर भागने लगे। समुद्र तो अपने तीर को भी पारकर दहीके घड़ेके समान बाहर फैल गया। इसी प्रकार

ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक व पाताललोक सभी कंपायमान हुए। विशेष क्या ? मागधामरके नगर में समुद्रके पानीने उमड़कर लोगोंको भय उत्पन्न किया। वह नगर कंपायमान हुआ। इस प्रकार वह बाण अपने वेगसे जाकर मागधामर जिस दरबारमें विराजमान था वहींपर एक खंभेमें लगा। उसका शब्द उस समय अत्यन्त भयंकर था।

एकदम दरबारके सब मनुष्य भयभीत हो गये, जैसे किसी शेरको देखनेपर सामान्य प्राणियोंकी झुण्ड भयभीत होती है। परन्तु मागधामर अत्यन्त गम्भीर है। वह अपने सिंहासनपर ही बैठकर विचार करने लगा कि यह किसकी करतूत है ? सब लोगोंको उसने समझाया कि आप लोग घबरायें नहीं और अपने पासके एक सेवकको कहा कि उस बाणके साथ जो चिट्ठी लगी हुई है उसे इधर ले आओ। उसी समय एक सेवकने डरते-डरते उस पत्रको लाकर दिया। उसे पासमें खड़े हुए पत्रवाचकको पढ़नेकी आज्ञा हुई। उसे पढ़ना प्रारम्भ किया।

श्रीमन्महाराज, आदिनाथ तीर्थङ्करके प्रथमपुत्र, गुरुहंसनाथ-भावक, उन्मत्तराजगिरिवज्रदंड, प्रचण्डदुर्मुखराजनाशक, अरिराज-मेघझंझानिल, कर्मकोलाहल, मृत्युकोलाहल, [illegible], [illegible], भरतचक्रेश्वरकी ओरसे सेवक मागधामरको निरूप दिया जाता है कि तुम सीधी तरहसे आकर कलतक हमारी सेवामें उपस्थित होना। यह हमारी ओरसे राजाज्ञा है।

इस पत्रको सुनते ही मागधामर क्रोधसे अत्यन्त लाल हो गया। एकदम दाँतोंको पीसते हुए कहने लगा कि उस पत्रको फाड़ो, जलाओ। कहाँका यह भरत, गिरत, मैं नही जानता हूँ। हमारे समुद्रमें यह आया कैसे ? कहाँ है अपनी सेना, बुलाओ ! मैं अभी इसे मजा चखाऊँगा। देखो तो सही ! पत्रमें क्या लिखता है ? मैं क्या इसका सेवक हूँ। मुझे आज्ञा देने आया है। समुद्रमें रहनेवाले कैसे होते हैं सो इसे अभी पता नहीं। सो बताना होगा कि वे इतने भोले नहीं कि इसके झाँसेमें आ जायँ। वह आखरको भूचर है, हम व्यंतर हैं। हमारे सामने वह कहाँ तक अभिमान बतला सकता है ? हमारे सामने यह क्या चल सकता है ? भूतनाथोंकी वीरता अभी उसे मालूम नहीं है। रहने दो ! मैं क्या उसके वश हो सकता हूँ ? कभी नहीं। सेनापति ! बुलाओ ! हमारे वीर कहाँ हैं ? उस भरतको जरा गरत करेंगे।

मागधामरका क्रोध बढ़ ही रहा था। उसके पास ही मंत्री, सेना-पति आदि परिवार भी उपस्थित हैं। उन लोगोंने बहुतसे नीतिपूर्ण

वचनों से प्रयत्न किया कि किसी तरह इसका क्रोध शांत हो जाय। स्वामिन्! आप क्रोधित नहीं होइएगा। आपके लिए वह क्या बड़ी बात है। हम सब उसकी व्यवस्था करेंगे। आप शांतचित्तसे विराजे रहियेगा। दरबारको बर्खास्त करने की आज्ञा दीजियेगा। तदनन्तर एकांतमें इस संबंधमें विचार करें।

इतनेमें दरबारके इतर सब लोग चले गये। कुछ मुख्य-मुख्य लोग बैठकर विचार करने लगे एवं कहने लगे कि राजन्! तुम धीर हो! प्रौढ़ हो! गंभीर हो! तुम्हारी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन है? ऐसी अवस्थामें तुम्हारे विशाल भाग्यके अनुसार ही तुमको चलना चाहिए। क्षुद्रलोगोंके समान चलना उचित नहीं है। तुम महलमें रहो। क्रोधको छोड़कर हमारी बातको सुनो। हमारे कार्यको देखते जाओ। लोक सब तुम्हारी प्रशंसा करें, उस प्रकार हम कर लेंगे। इस प्रकारकी बात सुनकर मागधामरने मंदहासकर कहा कि अच्छा! आप लोग क्या कहना चाहते हैं कहिये तो सही।

अब उन मंत्रिमित्रोंने समझ लिया कि इसका मन कुछ शांत हुआ है। अब बोलनेमें कोई हर्जकी बात नहीं। आगे कहने लगे कि स्वामिन्! भरतचक्रेश्वर सामान्य नहीं हैं, वह देवाधिदेव भगवंतका पुत्र है। उसकी महत्ताको तुम सरीखे ही जान सकते हैं। पागल व्यंतर किस प्रकार जान सकते हैं? भरतेश्वर अद्भुत संपत्तिके स्वामी हैं। उसको किसी-का भी किंचित् भय नहीं है और तद्भवमोक्षगामी है। उसकी विभूतिको देखनेपर तुम्हें प्रसन्नता हुए बिना नहीं रह सकती। भरत षट्खंडको पालन करनेके पुण्यको प्राप्तकर उसका जन्म हुआ है। फिर उस भाग्यको कौन छीन सकते हैं? तुम विवेकी हो। इस बातका विचार करो!

वह इतना वीर है कि विजयार्ध पर्वतके वज्रकपाटको मिट्टीके घड़े-के समान क्षणमात्रमें फोड़ डालेगा। वह भरत सामान्य नहीं बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर समुद्रमें पुल बांधकर समुद्रको पार करेगा। देखो! वह कितना बुद्धिमान् है। बाणका प्रयोग किया कि सीधा आकर वह उस खंभेमें लगा है। जैसाकि उसके लिए यह कोई अनुभूत ही स्थान हो। उसकी बुद्धिमत्ताके लिए इससे अधिक और साक्षीकी क्या जरू-रत है। हाथ कंगनको आरसी क्या?

समुद्रमें ही खड़े होकर उसने बाणको आज्ञा दी कि खंभेमें आकर लगो तो वह बाण खंभे पर आकर लगा। यदि किसी शत्रुके हृदयको

चीरनेके लिए आज्ञा देता तो वह शत्रुका प्राण लिए विना क्या लौट सकता था ? कभी नहीं। वह मंत्रास्त्र है। और भी विचार करो। बाणके साथ जो व्यक्ति पत्रको भेज रहा है क्या वह अग्निकी ज्वालाओं को नहीं भेज सकता है ? उसका परिणाम क्या हो सकता था, जरा विचार तो करो।

खंभेपर लगे हुए बाणको दिखाकर उपर्युक्त प्रकार जब समझाया तब मागधामरको विश्वास हुआ कि सचमुचमें भरत वीर है। जब उसने यह सुना कि भरत विजयार्ध पर्वतके वज्रकपाटको मिट्टीके घड़के समान फोड़ेगा उससे और भी घबराया। मुंह खोलकर हक्का बक्का होकर सुनने लगा।

मंत्रियोंने कहा कि राजन् ! सामनेकी शक्ति और अपनी शक्तिको देखकर एवं विचारकर युद्ध करना यह बुद्धिमत्ता है। यदि अभिमान-वश होकर हम आगे बढ़ें, फिर हार जावें तो लोकमें परिहास होता है। युद्ध करना वीरोंका कर्तव्य है, परन्तु उसका विचार न कर अपने से अधिकके साथ यदि युद्ध करें तो श्रेयस्कर कभी नहीं हो सकता।

अपने लिये जो समान है उसके साथ युद्ध करना ठीक है। अपनेसे अधिकके साथ युद्ध करना तो स्वयंका सामना स्वयं करना है। यह वचनतो मागधामरके हृदयमें अच्छी तरह जम गया। वह मन मनमें ही भरतेशकी वीरतापर अभिमान कर रहा था।

राजन् ! शायद तुम समझोगे कि हम लोगोंने अपने स्वामीकी इच्छाके विरुद्ध दूसरोंकी प्रशंसा की। परन्तु वैसा विचार नहीं करना चाहिए। दर्पणके समान परिस्थितियोंको ज्योंका त्यों वर्णन किया है। यह तुम्हारे अच्छेके लिए है। अपने स्वामीकी निन्दा कर दूसरोंकी प्रशंसा करना यह सचमुचमें नीचवृत्ति है। हम लोगोंने अन्तमें जीत-नेके उपायको कहा है। आपके कार्यको बिगाड़नेका उपाय हम लोग नहीं कह सकते। आज जरा आपको हमारे वचन कठिन मालूम होते होंगे। परन्तु इसका फल अच्छा होगा। हम लोगोंने आपके हितके लिये ही उचित निवेदन किया है। यदि आपके मनमें आवे तो स्वीकार करें नहीं तो छोड़ देवें।

कुलवृद्धोंके हितपूर्ण वचनोंको सुनकर मागधामरको पूर्ण निश्चय हुआ कि भरतेश सचमुचमें असाधारण वीर है। उसे मैं जीत नहीं

सकता। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ। सिर खुजाते हुए कहने लगा कि फिर अब आगे क्या करना चाहिये ? यह तो बोलिये। तब वे कहने लगे कि आगे क्या करना ? यही कि बहुत सन्तोषके साथ आकर भरतेश चक्रवर्तीके चरणोंकी वन्दना करना। वह आदितीर्थंकर का पुत्र ही तो है न ? फिर क्या हर्ज है। उसके चरणोंकी वन्दना करनेसे अपनी इज्जत घट नहीं सकती। छहखंड भूमिमें उसके साथ विरोध करनेवाले कौन हैं ? उसके गुणोंपर मुग्ध होकर उसकी वन्दना कौन नहीं करते ? विशेष क्या ? वह तद्भवमोक्षगामी है। इसलिए उसकी वन्दना करनेमें क्या दोष है। हम चलें।

भक्तिसे जो उसे नमस्कार नहीं करते हैं वह कल ही शक्तिसे कराता है। ऐसी अवस्थामें पहिलेसे जाकर नमस्कार करना यह महा-युक्ति है। इस वचनको सुनकर मागधामरने उसकी स्वीकृति दी। हितैषियोंके वचनको स्वीकृत करनेके उपलक्ष्यमें उन लोगोंने मागधा-मरकी हृदयसे प्रशंसा की। नीतिमान् राजाकी प्रशंसा कौन नहीं करेगा ?

राजन् ! कल आनेके लिए चक्रवर्तीने आज्ञा दी है, इसलिए कल ही आयेंगे। आज सायंकाल हो गया है। इस प्रकार विचार कर वे बहुत आनन्दमें मग्न हो गये।

० ० ० ०

इधर भरतेश्वरने जब बाणका प्रयोग किया था, उसके बाद ही उन्होंने अपनी सेनाकी तरफ जानेके लिये तैयारी की। सारथीको आज्ञा देते ही उसने रथको वापिस घुमा लिया।

अनेक प्रकारकी घंटियाँ बज रही हैं। उसकी पताकायें आकाशमें फड़क रही हैं। उस रथको देखनेपर ऐसा मालूम होता है कि शायद मेरुपर्वत ही आ रहा हो। घोड़े भी अब वापिस जानेके कारण जरा तेजीसे जाने लगे हैं। उस रथमें वज्रदंड एक तरफ शोभाको प्राप्त हो रहा था। भरतेश्वर अपने दाहिने हाथको टेककर रथपर बहुत वीरता के साथ विराजे हुए हैं। बाँयें हाथमें पंचरत्नसे निर्मित बाण है। उसे देखनेपर ऐसा मालूम होता था कि शायद इन्द्रधनुष ही है। उस समय भरतेश्वर भी इन्द्रधनुष सहित हिमालय पर्वतके समान मालूम होते थे। दोनों ओरसे भरतेश्वरको चामर ढुल रहे हैं।

जिस समय भरतेश्वर वापिस लौटे हैं, यह समाचार सेनाको मिला उसके आनंदका पारावार नहीं रहा। सभी वीर हर्षध्वनि करने

लगे। सभी जयजयकार करने लगे। सेनास्थान अब निकट आया। बाणको रथमें ही छोड़ दिया। सारथिको सन्मान करनेके लिये एक रथिकको आज्ञा देकर भरतेश्वर चले गये। सामनेसे मंत्री, सेनापति, राजपुत्र आदिने आकर बहुत भक्तिसे नमस्कार किया। इसी प्रकार अन्य वीर, व्यापारी, वेश्यागण, हाथीके सवार, घुड़सवार वगैरह सब लोग भरतेशको नमस्कार कर रहे थे। कविगण कविता कर रहे थे। स्तुतिपाठक स्तोत्र कर रहे थे। भट्टगण हाथ उठाकर आशीर्वाद देते थे। वेत्रधारीगण सावधान आदि सुन्दर शब्दोंका उच्चारण कर रहे हैं। इन सबको सुनते हुए, देखते हुए भरतेश्वरने अपने महलमें प्रवेश किया। भरतेश्वरकी रानियोंने बहुत भक्तिके साथ प्राणेशकी आरती उतारी। उसके बाद पुत्र चरणोंमें मस्तक रखा।

रानियोंको भरतेश्वरका वियोग चार दिनसे हुआ है। परन्तु उनको चार युगके समान मालूम हो रहा है। ऐसी अवस्थामें पतिके घरमें आनेपर उनको कितना हर्ष हुआ होगा यह पाठक स्वयं विचार करें।

अपनी स्त्रियोंके साथ भरतेश्वरने सायंकालका भोजन किया एवं सायंकालमें करने योग्य जिनवंदनासे निवृत्त होकर महलमें बहुत लीलाके साथ रहे। वह रात प्राय: समुद्रप्रयाण व ध्यानकी चर्चामें ही व्यतीत हुई। पतिकी जीतपर उन रानियोंको भी बड़ा हर्ष हुआ।

पाठक भूले न होंगे कि भरतेश्वरने मंत्री, सेनापतिसे कहा था कि मागधामरको जीतनेके संबंधमें आप लोग चिंता मत करो। मैं थोड़ासा ध्यान कर लेता हूँ। फिर आप लोग देखियेगा उसे मैं अपने पास मंगाऊँगा। उसी प्रकार भरतेश्वरको उस व्यंतरको वश करनेमें सफलता मिली। एक ही बाणके प्रयोगसे उसका गर्व जर्जरित हो गया। क्या इतनी सामर्थ्य उस ध्यानमें है? हाँ! है। परंतु आत्मविश्वास होना चाहिये।

भरतेश्वरको भरोसा था कि मैं आत्मबलसे सब कुछ कर सकता हूँ। वे रात दिन इस प्रकार चिंतवन करते थे कि :-

अगणित दु:खोंको देकर सतानेवाली कर्मरूपी बड़े भारी सेनाको केवल एक दृष्टि फेंककर ही जीतनेकी सामर्थ्य इस परमात्मामें है। इसलिये हे परमात्मन्! तुम मेरे हृदयमें बराबर बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीके लिये आप सिंहके समान हैं। ज्ञानसमुद्रको उमड़ानेके लिये आप चन्द्रके समान हैं। कर्म-

पर्वतको आप संहार कर चुके हैं। इसलिये हमें भी उसी प्रकार की सामर्थ्य दीजियेगा। ताकि हम भी कर्मसे कायर नहीं बनें।

ऐसी अवस्थामें भरतेश्वर सदृश वीरोंको लौकिकशत्रुओंकी क्या परवाह है?

इति राजविनोद संधि

—:o:—

आदिराजोदय संधि

प्रातःकालमें उठकर भरतेश्वर नित्यक्रियासे निवृत्त हुए। स्नान व देवार्चन कर उन्होंने अपना शृङ्गार किया। अब उनको देखनेपर देवेन्द्रके समान मालूम हो रहे हैं। उसी प्रकारके शृङ्गारसे आकर उन्होंने दरबारको अलंकृत किया।

बहुतसे राजा व राजपुत्र आज दरबारमें एकत्रित हुए हैं। उन लोगोंने सम्राट्को अनेक उत्तम उपहारोंको समर्पणकर नमस्कार किया व अपने-अपने स्थानमें विराजमान हो गये।

विचारशील मंत्री, प्रभावशाली सेनापति, भरतेश्वरके पास ही बैठे हुए हैं। पीछेकी ओरसे गणबद्ध देव हैं। पासमें ही मित्रगण हैं। कुछ दूर वेश्यायें हैं। सामने वीरयोद्धाओंका समूह है।

इसी प्रकार कविगण व विद्वान् लोग सामने खड़े होकर अनेक कविताओंका पाठ कर रहे थे। दोनों ओरसे चामर डुल रहे हैं। कोई गायक प्रातःकालके रागमें गायन कर रहे हैं। उसे भरतेश्वर चित्त लगाकर सुन रहे हैं। कोई तांबूल दे रहे हैं। उसे भी स्वीकार कर रहे हैं। एक दफे सम्राट्की दृष्टि क्षत्रियपुत्रोंपर पड़ती है तो दूसरी बार राजाओंकी ओर जाती है। दीर्घसेनाको देखते हुए साथमें गायनभी सुनते जा रहे हैं। ललित रागका गायन बहुत अच्छा हुआ। उसमें भी आत्मकलाका वर्णन था। राजन्! आप कलाको अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये आप प्रसन्न होंगे। इस प्रकार अनुकूलनायकने कहा। स्वामिन्! एक-एक अक्षरको अच्छी तरह भिन्न-भिन्न कर अत्यन्त सुस्वरके साथ गा रहा था, इस प्रकार दक्षिणनायकने कहा। नहीं! नहीं! शक्कर और दूध मिलाकर पीनेमें जो आनन्द आता है, वह इस गायनमें आया है। इस प्रकार कुटिलनायकने कहा। शठः—तान,

आलाप व गायकका गांभीर्य वह सब भरतेश्वरके हृदयको प्रसन्न करने काबिल है। जानेदो जी! आप लोग सबके सब एक रागकी ही प्रशंसा करते जा रहे हैं। हम तो यही कहना चाहते हैं कि श्री गुरुहंसनाथको उसने कोयलके समान गाकर बतलाया, इस प्रकार नागरने कहा। बहुत पटुत्वके साथ उसने मलहारि रागके द्वारा निष्कुटिल आत्मतत्वका वर्णन किया। सरस्वतीने ही शायद चक्रवर्तीका दर्शन किया, इस प्रकार विटने कहा। जिस प्रकार मत्स्य जलमें चमकता है उसी प्रकार चमकीले गायनको उसने गाया, इस प्रकार पीठमर्दकने कहा। महीजी! शुष्क मुखवीणामें अध्यात्म औषधरसको भरकर वैषय रोगियोंके कानको ठीक किया है, इस प्रकार विदूषकने कहा।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकारके वचनोंको सुनते हुए भरतेश्वर मनमें ही सन्तुष्ट हो रहे थे एवं गायनको सुनते हुए जिनके गायनसे प्रसन्न होते थे, उनको अनेक प्रकारसे इनाम भी दे रहे थे।

एक-एक कलासे प्रसन्न होकर व आत्माको विचार करते हुए सिंहासनपर विराजमान हैं। इतनेमें मंदाकिनी नामक दासीने अर्ककीर्तिकुमारको लाकर सम्राट्के हाथमें दे दिया।

स्वामिन्! राजदरबारमें आनेके लिये कुमारने हठ किया है। इसलिये मैं यहांपर लाई हूँ। इतनेमें सभाका हल्ला-गुल्ला सब बन्द हो गया। सभी लोग उस बच्चेकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर देखने लगे।

सम्राट्ने बच्चेको अपनी गोदपर बैठाकर उसके साथ प्रेम संलाप करनेको प्रारंभ किया। वह बालक उस समय बहुत सुन्दर मालूम होने लगा। उत्तम जातिका रत्न जिसप्रकार रत्नोंमें कोई विशेष स्थान रखता है, उसी प्रकार यह रत्न भी कुछ खास विशेषताको लिये हुए था।

पिताका ही सौन्दर्य है, पिताका ही रूप है। पिताका ही स्वरूप है, पिताकी ही दृष्टि है। सब कुछ एक ही सांचा है। ऐसा सुन्दर पुत्र गोदपर आनन्दसे बैठा हुआ है। उस कुमारने अनेक रत्ननिर्मित आभरणोंको धारण किये था। उससे उसका सौन्दर्य और भी द्विगुणित हो गया था।

एकदफे भरतेश्वर बच्चेकी ओर देखकर हँसते हैं, तो एक बार चुंबन दे रहे हैं। एकदफे उसे उठाते हैं। इस प्रकार अनेक तरहसे उसके साथ प्रेमव्यवहार कर रहे हैं। भरतेश्वर बच्चेको कह रहे हैं कि बेटा! आदितीर्थंकर शब्दको उच्चारण तो करो। तब वह "आदिकर" कहने लगा! भरतेश्वर हँसने लगे। आत्माका वर्णन करते हुए बच्चेसे कहा

कि अच्छा ! चिदंबरपुरुष ऐसा बोलो। कहने लगा कि चिंबरपुस। भरतेश्वर जोरसे हँसने लगे। अच्छा ! गुरुनिरंजनसिद्ध, बोलो। कुमार कहने लगा कि निजसिद्ध। पुनः भरतेश्वरको हँसी आई।

फिर भरतेश्वर सब राजाओंको दिखाते हुए पूछने लगे कि बेटा ! सामने बैठे हुए ये लोग कौन हैं ? तब उस बच्चेने हाथको आगे न कर अपने बाँये पैरको ही आगे किया।

तब सब राजाओंने आपसमें बातचीत की कि देखो तो सही बच्चेकी बुद्धिमत्ता ! हम लोगोंको अपने पादसेवकोंके रूपमें समझ रहा है। इसलिये पैरको आगे कर रहा है। आदिचक्रवर्तीके पुत्रके लिये यह साहजिक है।

अर्ककीर्ति कुमार अपने मुखको भरतेश्वरकी कानके पास ले गया। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद पितासे पुत्र कुछ गुप्त-मंत्रणा ही कर रहा हो। तब बुद्धिसागर कहने लगा कि स्वामिन् ! अब मुझे मंत्रित्वकी जरूरत नहीं है। पिता राजा है, पुत्र मंत्री है। फिर आप लोगोंकी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन हैं ?

उतनेमें सब राजाओंने आकर उस बच्चेको अनेक प्रकारके उप-हारोंको समर्पण किया। क्योंकि वे बुद्धिमान् थे, अतएव वे समझते थे कि यह हमारा भावी रक्षक है। भरतेश्वरने कहा कि बच्चेके लिये उपहारकी क्या जरूरत है। आप लोग इस झगड़ेमें पड़ें नहीं। ऐसा कहनेपर राजाओंने बहुत विनयसे कहा कि स्वामिन् ! हम लोगोंकी इतनी सेवाको अवश्य स्वीकृत करनी चाहिये।

तदनन्तर राजपुत्र व राजाओंने आकर उस पुत्रको अनेक रत्न, सुवर्ण वगैरह समर्पण किया। वहाँपर सुवर्ण व रत्नका पर्वत ही खड़ा हुआ। भरतेश्वरका भाग्य क्या छोटा है ?

सब लोग भेंट समर्पणकर बालकको देखते हुए खड़े थे। भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! सब लोग आज्ञा लेनेके लिये खड़े हैं। जरा उनको अपने स्थानमें जानेके लिये कहो तो सही ! तब बालकने अपने मस्तक व हाथको हिलाया। तब सब लोगोंने समझ लिया कि अब जानेके लिये अनुमति दे रहा है। तब भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! ऐसा नहीं ! सबको तांबूल देकर भेजो, खाली हाथ भेजना ठीक नहीं। तब सब बच्चेने तांबूलकी थालीको अपने हाथसे फैला दी। सब लोगोंने बहुत हर्षके साथ तांबूलको ग्रहण किया।

भरतेश्वरने फिर पूछा कि बेटा ! इस सुवर्णकी राशिको किसे देवें ?

तब उसने सामने खड़े हुये सेवकोंकी ओर हाथ बढ़ाया। तब राजाको उसकी बुद्धिमत्तापर आश्चर्य हुआ।

स्वामिन्! क्या कल्पवृक्षके बीजसे जंगली पेड़की उत्पत्ति हो सकती है? क्या तुम्हारे पुत्रमें अल्पगुण स्थान पा सकते हैं? कभी नहीं। इस प्रकार विद्वानोंने उस समय प्रशंसा की।

इस प्रकार अनेक विनोदसे विद्वान् व सेवकोंको सुवर्णदान देकर जब भरत बहुत आनन्दसे विराजमान थे उस समय गाजेबाजेका शब्द सुननेमें आया। आकाश प्रदेशमें ध्वजपताका, विमान इत्यादि दिखने लगे। वह व्यन्तरोंकी सेना थी। समुद्रकी ओरसे आ रही है। मन्दाकिनी दासीको बुलाकर उसे कुमारको सौंप दिया और महलकी ओर ले जानेके लिये कहा और स्वतः मेरुके समान अचल व समुद्रके समान गंभीर होकर विराजमान हुये।

मागधामर आकाश मार्गसे ही भरतेश्वरकी सेनाओंको देखते हुए आ रहा था। उसे उस विशाल सेनाको देखकर आश्चर्य हुआ। उसका पराक्रम जर्जरित हुआ। मनमें ही विचार करने लगा कि इसको मैं कैसे जीत सकता था? इसके साथ वक्रता चल सकती है? कभी नहीं। समुद्रके तटपर ही विमानसे उतरकर स्वामीके दर्शनके लिये भरतेश्वरके दरबारकी ओर पैदल ही चला।

इतनेमें बीचमें ही एक घटना हुई। चुगलीखोरने आकर भरतेश्वर की सेनाके एक योद्धाके साथ कुछ कहा। वह मागधके नगरमें रहता है। परन्तु भरतेश्वरका भक्त है। इसलिये पहिले दिन मागधामरके दरबारमें जो बातचीत हुई उन सबको उसने उससे कह दी।

चक्रवर्तीके प्रति मागधामरने पहिले दिन जो तिरस्कार युक्त वचनों का प्रयोग किया था वह सब उसे मालूम हुआ। वह योद्धा उससे अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने चुपचापके जाकर भरतेश्वरकी कानमें सब बातोंको कहा व चला गया।

मागधामर छत्र, चामर इत्यादिक वैभवके चिह्नोंको छोड़कर चक्रवर्तीके दर्शनको आगे बढ़ रहा है। वह दीर्घमुखी है। आयत नेत्रवाला है। दीर्घशरीरी है। साहसी है व अनेक रत्नमय आभरणोंको उसने धारण किये हैं।

अपने साथके सब लोगों को बाहर ही ठहरनेके लिये आज्ञा देकर स्वयं व मंत्रीने हाथमें अनेक प्रकारके रत्न आदि उत्तमोत्तम उपहारोंको लेकर दरबारमें प्रवेश किया। दरवाजेमें बहुतसे रत्नदण्डको लिये हुए

द्वारपालक मौजूद हैं। उनकी अनुमतिको पाकर मागधामरने अन्दर प्रवेश किया।

अन्दर जाकर एक दफे तो वह हक्का-बक्कासा हो गया। बाहर कोसोंतक व्याप्त हाथी, घोड़े, रथ इत्यादिको देखकर तो उसके हृदयमें आश्चर्य उत्पन्न हो गया था। अब अन्दर अगणित प्रतिभाशाली राजा व राजपुत्र भरतेश्वरकी सेवामें उपस्थित हैं। उन सबके बीचमें रत्नमय सिंहासनपर आरूढ़ होकर विराजे हुए भरतेश्वर कुलगिरियोंके मध्यमें स्थित मेरुके समान सुन्दर मालूम होते थे। उनके शरीरके रत्नमय-आभरण वगैरहके तेजसे वे साक्षात् पूर्वदिशामें उदय होनेवाले सतेज सूर्यके समान मालूम होते थे। भरतेश्वरका सौन्दर्य तो लोक-मोहक था। पुरुष देखें भी मोहित होना चाहिए। इस प्रकारकी सुन्द-रताको देखकर मागधामर मुग्ध हुआ यह कहें तो फिर जो स्त्रियाँ एकदफे तो देख लेती हैं उनकी क्या हालत होती होगी ?

बीच-बीचमें ठहरते हुए और बहुत विनयके साथ स्वामीके पास सेवक जिस प्रकार आता हो मागधामर चक्रवर्तीके पास आ रहा है। चक्रवर्तीने उसके प्रति क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखकर पासमें खड़े हुए संधि-विग्रहियोंसे पूछा कि क्या यही मागध है ? तब उन लोगोंने उत्तर दिया कि स्वामिन् ! यही मागध है, बड़ा आदमी है, आपके सामने है, देखें। तब चक्रवर्तीने 'अरे मागध ! कल तू बहुत जोशमें आया था न ? गुलाम ! क्या तुम्हें समुद्रमें रहनेका अभिमान है ? अच्छा !" कहा।

इतनेमें मागधामर डरके मारे काँपने लगा और स्वामिन् ! मेरे अपराधको क्षमा करो। इस प्रकार कहते हुए वह भरतेश्वरके चरणोंमें गिर पड़ा। चक्रवर्तीको हँसी आई। कहने लगे कि उठो ! घबराओ मत। इतनेमें एकदम उठ खड़ा हुआ।

'स्वामिन् ! तीन छत्रके धारी त्रिलोकाधिपतिके पुत्रके साथ किसका अभिमान चल सकता है ? हम लोग तो कूँएमें जिस प्रकार मेंढक रहता है उस प्रकार पानीके बीच एक द्वीपमें रहते हैं। ऐसी अवस्थामें देव ! आपके तेजको हम किस प्रकार जान सकते हैं। राजन् ! तुम्हारा सौन्दर्य कामदेवसे भी बढ़कर है। तुम्हारी प्रसन्नताको पानेके लिए पूर्वजन्मके सुकृतकी आवश्यकता है। हम क्या, व्यन्तर तो भूत हुआ करते हैं। भूत क्यों भ्रांत हैं ! ऐसी अवस्थामें हम तुम्हारे महत्वको क्या जानें ? इस लोकमें एक छोटीसी नदी समुद्रकी निन्दा करे, उल्लू हंसकी निन्दा करे और मागध भरत चक्रवर्तीकी निन्दा करे तो क्या

बिगड़ता है ? अद्भुत सौन्दर्य, बहुत यौवन, आश्चर्यकारक बुद्धिमत्ताको धारण करनेवाले चक्रवर्तीके सामने हमने जो व्यवहार किया इसके लिये धिक्कार हो। मेरे [illegible] सौन्दर्य प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह नहीं मिलता हो तो आपकी प्रसन्नताको प्राप्त करना यह भी बड़े भाग्यकी बात है। भोग और योगमें रहकर मुक्त होने वाले मोक्षयोगी-की बराबरी इस लोकमें कौन कर सकता है। इत्यादि अनेक प्रकारसे स्तुतिपाठक भट्टोंके समान मागधामरने भरतेश्वरकी प्रशंसा की।

मागधके वचनसे राजागण व राजपुत्र वगैरह प्रसन्न होकर कहने लगे कि शाबाश ! मागध ! स्वामीके गुणको तुमने यथार्थ रूपसे वर्णन किया है। तुम सचमुचमें स्वामीके हितको चाहनेवाले हो।

तदनन्तर चक्रवर्तीने उसे बैठनेके लिए एक आसन दिलाया व कहा कि मागधामर ! तुम दुष्ट नहीं हो। सज्जन हो। उस आसनपर बैठो।

स्वामिन् ! मैं बच गया। इस प्रकार कहते हुए मागधामरने साथमें लाए हुए अनेक उपहारोंको भरतेश्वरके चरणोंमें समर्पण कर मंत्री-सहित पुनः नमस्कार किया। दरबारमें बैठे हुए सभी सज्जनोंने मागधामर की सज्जनताके प्रति प्रशंसा की। बुद्धिसागर पासमें ही बैठा हुआ है। उसके तरफ भरतेशने देखा। वह सम्राट्के अभिप्रायको समझकर कहने लगे कि स्वामिन् ! मागधामर सज्जन है। व्यन्तर लोकमें यह वीरश्रेष्ठ है। शीघ्र ही आपकी सेवाके लिए आने योग्य है। देशाधिपतियोंके संसर्गसे जिनेंद्रके पुत्रको प्रसन्न करनेका भाग्य जिसने पाया है, वह सचमुचमें कृतार्थ है। इसलिए यह मागध भी धन्य है।

तब मागधामर कहने लगा कि मन्त्री ! तुमने बहुत अच्छा कहा। तुम्हारी बुद्धिमत्ताको मैंने बहुत बार सुनी है। परन्तु आज प्रत्यक्ष तुम्हें देख लिया। सचमुचमें तुमने मेरा उद्धार किया।

बुद्धिसागरने मुसकराते हुए कहा कि स्वामिन् ! इस मागधको वापिस आनेकी आज्ञा दीजियेगा। फिर आगेके मुक्काममें यह अपने पास आवे। भरतेश्वरने उसी समय मागधामरको पास बुलाकर अनेक प्रकारके उत्कृष्ट वस्त्र व आभूषणोंको उसे दे दिये। मागधदेवने भेंटमें जिन अमूल्य रत्नोंको समर्पण किये थे उनसे भी बढ़कर उत्तमोत्तम रत्नोंको चक्रवर्तीने उसे दे दिये। चक्रवर्तीको किस बातकी कमी है ? केवल अपने चरणोंको नमस्कार करानेकी एक मात्र अभिलाषा उसे

रहती है, बाकी धनकनक आदिकी इच्छा नहीं। इसलिये मागधामरका उसने यथेष्ट सन्मान किया। साथमें भरतेश्वरने यह कहते हुए कि मागध ! तुम्हारा मंत्री भी बहुत विवेकी है ऐसा हमने सुना है। उसे भी अनेक प्रकारके उत्तम वस्त्र व आभूषणोंको दिये और दोनोंको जानेकी आज्ञा दी गई।

"स्वामिन् ! मैं कल ही लौटकर आऊँगा। तबतक आपकी सेवामें मेरे प्रतिनिधि ध्रुवगति देवको छोड़कर जाता हूँ" इस प्रकार कहते हुए मागधने एक देवको सौंपकर चक्रवर्तीको नमस्कार किया, व मंत्रीके साथ चला गया। राजसभाको आनंद हुआ। सब उसीकी चर्चा करने लगे।

भगवन् ! इतनेमें और एक घटना हुई। राजमहलसे एक सुन्दर दासी दौड़कर आई और हाथ जोड़कर कहने लगी कि स्वामिन् ! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है। इस हर्ष समाचारको सुनकर उसे एक मोतीके हारको इनाममें दे दिया। पुनः उस दासीको पासमें बुलाकर धीरेसे पूछा कि कौनसी रानीको पुत्र प्रसूत हुआ है। तब उत्तर मिला कि कुसुमाजी रानीने कुमारको प्राप्त किया है। इतनेमें सम्राट्ने उसे संतोषके साथ एक हार और दिया। पासके खड़े हुए लोगोंको परम हर्ष हुआ। चक्रवर्ती भी मन ही मनमें संतुष्ट हुए। उस समय भी प्रजाजनोंमें हर्षसमुद्र उमड़कर आया। अनेक तरहके बाजे बजने लगे। इधर-उधरसे आनंद-भेरी सुनाई देने लगी। मंदिर वगैरह तोरणसे सुशोभित हुए। लोकमें सब लोगोंको मालूम हुआ कि आज सम्राट्को पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।

सम्राट् भी सिंहासनसे "जिनशरण" शब्दको उच्चारण करते हुए उठे एवं दरबारको बरखास्तकर महलमें प्रवेश कर गये। तत्क्षण प्रसूति-गृहमें आकर नवजात बालकको देखा। पासमें ही सौ. कुसुमाजी लज्जाके मारे मुख नीचा कर बैठी हुई हैं। बालक अत्यंत तेजस्वी है। उसे भरतेश्वरने देखकर "सिद्धो रक्षत" इस प्रकार आशीर्वाद दिया। फिर वहाँसे रवाना हुए। महलमें जहाँ देखो वहाँ हर्ष ही हर्ष है। कुसुमाजी रानीको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है, इसपर सभी रानियोंको हर्ष हुआ है। सबने आकर भरतेश्वरके चरणोंमें मस्तक रखकर अपने-अपने आनंदको व्यक्त किया।

बुद्धिसागर मंत्रीने सब देशोंमें दान, पूजा, अभिषेक आदि पुण्यकार्य कराये। भरतेश्वरकी सेनामें सेनापतिने अनेक हर्षसूचक मंगल कार्य कराये। भरतेश्वरकी संपत्ति क्या कम है ? मयव्यंतरके द्वारा रचित

दिव्य देवालयमें राजगण, राजपुत्र, प्रजाजन, सेनाके योद्धा आदिने बहुत भक्तिके साथ जिनेंद्रकी पूजा की, जिसे देखकर सभी जयजयकार करते थे।

उस दिन जातकर्म संस्कार, फिर बारहवें दिन नामकरण संस्कार किया। भरतेश्वरकी इच्छासे बालकका भगवान् आदिनाथका दिव्य नाम "आदिराज" रखा गया।

नामकर्म संस्कारके रोज मागधामरने अनेक संभ्रम, संपत्ति व सेनाके साथमें उपस्थित होकर चक्रवर्तीका दर्शन किया।

चक्रवर्तीने उसके आगमनके संबंधमें हर्ष प्रकट करते हुए कहा कि मागधको आगेके मुक्काममें आनेके लिये कहा था, परंतु वह जल्दी ही लौटकर आया, इससे मालूम होता है कि यह हमारे लिये हमेशा हितैषी बना रहेगा। इसे सुनकर मागधामर हर्षित हुआ। कहने लगा कि स्वामिन्! आपसे आज्ञा लेकर गया तब समुद्रके तटपर ही मुझे समाचार मिला कि आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है। मेरा विचार वहींसे लौटनेका हुआ था। फिर भी राज्यमें जाकर वहांसे इस प्रसंगके लिये योग्य भेंट वगैरह लानेके विचारसे चला गया और सब तैयारीके साथ लौटा।

चक्रवर्ती कहने लगे कि मागध! तुम्हारे लिये मैंने भरी सभामें तिरस्कारयुक्त वचन बोले थे। तुम्हारे मनको कष्ट पहुँचा होगा। उसे भूल जाओ।

स्वामिन्! इसमें क्या बिगड़ा? आपने मुझे दबाकर सद्बुद्धि दी। आप तो मेरे परमहितैषी स्वामी हैं। इस प्रकार कहते हुए मागधने चक्रवर्तीके चरणोंपर मस्तक रखा।

भरतेश्वर मागधामरपर संतुष्ट हुए व कहने लगे कि मागधामर! जाओ! अपने आधीनस्थ राजाओंके साथ तुम आनंदसे रहो। मेरा तो कार्य उसी दिन हो गया, अब तुम स्वतन्त्र होकर रह सकते हो।

स्वामिन्! धिक्कार हो! उस राज्य व उन आधीनस्थ राजाओंको। उस राज्यमें क्या है? तुम्हारी सेनामें रहकर पादसेवा करना ही मेरे लिए परमभाग्य है। अब आपके चरणोंको मैं छोड़ नहीं सकता। सचमुचमें जो लोग भरतेश्वरको एक दफे देख लेते थे फिर उन्हें छोड़कर जानेकी इच्छा नहीं होती थी।

नवजात बालक कुछ बड़े इसके लिये उसी स्थानमें सम्राट्ने छह महीनेका मुक्काम किया। उनका दिन वहांपर बहुत आनंदके साथ

व्यतीत हो रहा है। साहित्यकला, संगीतकलासे प्रतिनित्य अपनी तृप्ति करते थे। किसी भी प्रकारकी चिंता उन्हें नहीं थी।

हमारे प्रेमी पाठकोंको भी आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरका भाग्य बहुत विचित्र है। वे जहाँ जाते हैं वहाँ आनन्द ही आनन्द है। किसी भी समय दुःख उनके पास भी नहीं आता है। इस प्रकार होनेके लिये उन्होंने ऐसा कौन सा कार्य किया होगा? क्या प्रयत्न किया होगा? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि भरतेश्वर रात दिन इस प्रकारकी भावना करते थे कि···

सिद्धात्मन्! आप लोकैकशरण हैं! जो भव्य आपके शरणमें आते हैं, उनको पुण्य संपत्तिको देकर उनकी रक्षा करते हैं। इतना ही नहीं पापमय भयंकर जंगलके भयसे उन्हें मुक्त करते हैं। इसलिये आप लोकमें श्रेष्ठ हैं। स्वामिन्! अतएव मुझे भी सद्बुद्धि दीजियेगा।

परमात्मन्! तुम जहाँ बैठते हो, उठते हो, सोते हो, सब जगह तुम अपनी कुशललीलाको बतलाते हो, इसलिये परमात्मन्! मेरे हृदयमें बराबर सदा बने रहो जिससे मुझे सर्वत्र आनंद ही आनंद मिले।

इसी चिरंतन भावनाका फल है कि चक्रवर्ती सर्वत्र विजयी होकर उन्हें सुख मिलता है।

इति आदिराजोदय सन्धि

---o---

वरतनुसाध्य संधि

छह महीने बीतनेके बाद सेनाप्रस्थानके लिये आज्ञा दी गई। उसी समय विशालसेनाने प्रस्थान किया। पूर्वसमुद्रके अधिपति मागधामर को साथ लेकर भरतेश्वर चतुरंग सेनाके साथ दक्षिण समुद्रकी ओर जा रहे हैं। एक रथमें छोटे भाईका झूला व एक बड़े भाई अर्ककीर्तिकुमार-का है। बीच-बीचमें मुक्काम करते हुए सेनाको विश्रांति भी दे रहे हैं। कभी भरतेश्वर पालकीपर चढ़कर जा रहे हैं। कभी हाथी पर और कभी घोड़ेपर। इस प्रकार जैसी उनकी इच्छा होती है विहार करते हैं। इसी प्रकार गर्मी, बरसात आदि ऋतुमानोंको भी देखकर सेनाजनोंको कष्ट न हो उस दृष्टिसे जहाँ तहाँ मुक्काम करते हुए आगे बढ़ रहे हैं। कई मुक्कामोंके बाद वे दक्षिणसमुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ-

पर सेनाने मुक्काम किया। पूर्वोक्त प्रकार वहाँपर नगर, घर, महल, जिनमंदिर आदिकी व्यवस्था हो गई थी।

समुद्रतटपर खड़े होकर मागधको बुलाओ ऐसा कहनेके पहिले ही मागधामर हाथ जोड़कर सामने आकर खड़ा हो गया। भरतेश्वरने कहा कि मागध ! इस सुमुद्रमें वरतनुनामक व्यंतर भेड़ियेके समान रहता है न ? उसे तुम जानते हो ? चुपचाप आकर वह हमारी सेवा-में उपस्थित होगा या अभिमानके साथ बैठा रहेगा ? बोलो तो सही, वह किस प्रकारके स्वभावका है ?

मागधामर कहने लगा कि स्वामिन् ! लोकमें आपके सामने कौन अभिमान बतला सकते हैं व किसका अभिमान चल सकता है ? इसके अलावा वरतनु सज्जन है। आपकी सेवामें उसे साथमें लेकर कल ही उपस्थित होऊँगा। स्वामिन् ! यह क्या बड़ी बात है।

भरतेश्वर मागधके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए, कहने लगे कि तब तो ठीक है, अभी तुम जाओ। कल उसे लेकर आओ। ऐसा कहकर उसे व बाकी लोगोंको भेजकर स्वयं महलमें प्रवेशकर गये।

स्नान, देवार्चन, भोजन, शयन आदि लीलाओंमें वह दिन व्यतीत हुआ। पुनः प्रातःकाल होते ही नित्यक्रियासे निवृत्त होकर दरबारमें आकर विराजमान हुए।

दरबारमें यथाप्रकार सर्व परिवार एकत्रित है। कविगण, विद्वद्-गण, वेश्याएँ, गायक वगैरह सभी यथास्थान विराजमान हैं। सभी लोग भरतेश्वरका दर्शनकर अपनेको धन्य समझ रहे थे।

अनेक गायक अनेक रागोंका आश्रयकर गायन कर रहे हैं। कोई उस समय मंगलकौशिक रागका आश्रयकर मंगलशरण लोकोत्तम पर-मात्माके गुणोंको गा रहे हैं। उसे चक्रवर्ती बहुत प्रेमके साथ सुन रहे हैं। कोई नाराणि, गुर्जरि, सौराष्ट्र आदि रागोंमें आत्मा और कर्मके कार्यकारण संबंधको वर्णन करते हुए गा रहे हैं। उसे चक्रवर्ती सुनकर प्रसन्न हैं। पुण्य गानको बाहरसे सुनते हुए अंदरसे परमलावण्य पर-मात्माको स्मरण करते हुए, पुण्यमय वातावरणमें राजाग्रगण्य सम्राट् विराजमान हैं।

भगवान् आदिनाथको स्मरण करते हुए परमात्माको भी भेद विचारसे स्मरण कर रहे हैं। गंधमाधवी नामक दासीने आदिराजको लाकर चक्रवर्तिके हाथमें दे दिया। भरतेश्वरने बहुत आनंदके साथ उस बच्चेको लेकर प्रेमालाप करनेको प्रारंभ किया।

कभी बालकको देखकर हँसते हैं। कभी महाराज ! कहाँसे आपकी सवारी पधारी है ? इस प्रकार बहुत विनोदसे पूछ रहे हैं। कैलास पर्वतसे आये हुए यह आदिनाथ नहीं हैं। मेरुके अग्रपर खड़े रहकर मुझे करुणासे देखनेके लिये आया हुआ आदिराज है।

भरतेशके हाथमें सुवर्णरक्षा बंधी हुई है। उसे देखकर बालक हठ करने लगा वह मुझे मिलनी चाहिये। तब भरतेश्वर कहने लगे कि बेटा ! इस रक्षाकी क्या बात है। थोड़ा बड़ा हो जाओ। तुम्हारे लिये आभूषण ढेरके ढेर बनवाकर दूंगा।

भरतेश्वर-गोदपर आदिराज बहुत आनंदके साथ बैठा हुआ है। इतनेमें अर्ककीर्ति वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर उस दरबारमें आया।

उसके पीछेसे मंदाकिनी दासी भी आ रही है। अर्ककीर्तिके दरबारमें प्रवेश करते ही दरबारी लोग उठकर खड़े हुये व उसे नमस्कार करने लगे। सबको बैठनेके लिये हाथसे इशारा करते हुये भरतेश्वरकी ओर वह जा रहा था। भरतेश्वरको भी आते हुए पुत्रको देखकर हर्ष हुआ। आदिराजसे कहने लगा कि बेटा ! तुम्हारा बड़ा भाई आ रहा है, खड़े होकर उसका स्वागत तो करो। इतनेमें वह बालक खड़ा हो गया। जब भरतेश्वरने उसे हाथ जोड़नेके लिये कहा तब हाथ जोड़ने लगा। अर्ककीर्ति उसे देखकर प्रसन्न हुआ। स्वयं भरतेश्वरके चरणमें एक रत्नको भेंटमें समर्पण कर सिंहासनके पास ही खड़ा हो गया।

भरतेश्वरको उसकी वृत्ति देखकर आश्चर्य हुआ। वे पूछने लगे कि मंदाकिनी ! अर्ककीर्ति कुमारको यह किसने सिखा रखा है ? बोलो तो सही। स्वामिन् किसीने भी सिखाया नहीं है और न जरूरत ही है। स्वयं ही पिताकी सेवा करनेके लिये उपस्थित हुआ है। दूध शक्करका सेवन करते हुए माता-पिताओंके ऋणसे बद्ध क्यों होना चाहिये ? उससे मुक्त होनेके लिये वह यहाँपर आया है और कोई बात नहीं। इस प्रकार मंदाकिनीने कहा।

अर्ककीर्ति कुमार उस सिंहासनके पासमें अत्यंत गम्भीर होकर खड़ा है। उसे देखकर आदिराजको भी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी बड़े भाईके समान पिताकी सेवा करूँ। इसलिये सबसे पहिले अपने पहने हुये वस्त्राभूषणोंको उठाकर फेंक दिये व हठ करने लगा कि अर्ककीर्तिने जिस प्रकारके वस्त्राभूषणोंको धारण किये हैं वैसे ही मुझे भी चाहिये। भरतेश्वरने उसे बहुत समझाया। परंतु वह मानता नहीं।

इतनेमें उस बालकके हठको देखकर एक गणबद्ध देवने विक्रियाशक्तिसे उसका अर्ककीर्तिके समान ही शृंगार किया।

तब कहीं आदिराज संतुष्ट हुआ एवं सम्राट्के दाहिनी ओर जाकर अर्ककीर्तिके समान ही खड़ा हो गया। उस समयकी शोभा कुछ और ही थी। दोनों ओरसे बालसूर्य हैं और बीचमें हिमवान् पर्वत है, अथवा दो हाथीके बच्चोंके बीचमें एक सुन्दर हाथी है। बालकोंकी सुन्दरताको देखकर सब लोग मुग्ध हो गये। सब लोग उठकर खड़े होकर उनकी शोभाको देखने लगे। भरतेश्वर उनकी आतुरताको देख-कर कहने लगे कि ये दोनों बालक हैं। उनके खड़े होनेसे आप लोग खड़े क्यों हुये। बैठ जाइये।

राजन्! हम लोग इस भाग्यको और कहाँ देख सकते हैं? आपके ये दोनों क्या कुमार हैं? नहीं-नहीं! ये दोनों सुरकुमार हैं। उनके खड़े होनेका प्रकार, बचपनके खेलसे रहित गंभीरता, आदि बातोंको देखनेपर इन्हें बालक कौन कह सकता है?

आपमें जिस प्रकार गंभीरता है उसी प्रकार आपके पुत्रोंमें भी गंभीरता है, आपका गुण आपके पुत्रोंमें भी उतर गया है। यह साहजिक है। लोकमें बीजके समान अंकुरोत्पत्ति होती है यह कथन जो अनादिसे चला आ रहा है उसकी सत्यता प्रत्यक्षमें आज देखनेके लिये मिली। विशेष क्या? हम विशेष वर्णन करनेके लिये असमर्थ हैं। हम लोग उनको देखते-देखते थक गये। वे भी बहुत देरसे खड़े हैं। उनको बैठने-के लिये आज्ञा दीजियेगा। तब भरतेश्वरने पूछा कि एक घड़ीभर इन दोनोंने खड़े होकर हमारी सेवा की, इसके उपलक्ष्यमें इनको क्या वेतन दिया जाय? मंत्री बोलो! सेनापति तुम भी कहो।

स्वामिन्! बुद्धिसागरने कहा—बड़े राजकुमारको एक घटिकाको एक करोड़ सुवर्णमुद्राके हिसाबसे देना चाहिये। इसी समय सेनापतिने कहा कि छोटे कुमार श्री आदिराजको अर्धकरोड़ सुवर्ण मुद्राके हिसाब-से देना चाहिये। तब भरतेश्वरने तथास्तु, कहकर आज्ञा दी कि अभी इनको डेढ़ करोड़ सुवर्ण मुद्राको देनेकी व्यवस्था कर आगे जब कभी ये मेरी सेवा करें तब इसी हिसाबसे उनको वेतन देनेका प्रबन्ध करना। फिर दोनों कुमारोंको बैठनेके लिये आज्ञा दी। दोनों राजपुत्र बैठ गये। वहांपर उपस्थित सर्व दरबारियोंने उनको नमस्कार किया व अपने-अपने आसनपर विराजमान हुए। इतनेमें गाजेबाजेका शब्द सुनाई देने लगा।

वरतनु व्यन्तर अपने परिवारके साथ आ रहा है। यह मालूम होते ही भरतेश्वरने आदिराजको गन्धमाधवीको सौंप व अर्ककीर्तिको मंदाकिनी दासीको सौंप दिया व स्वयं बहुत गंभीरताके साथ बैठ गये। वरतनु समुद्रतटतक तो विमानपर आरूढ होकर आया। बादमें अपने वैभवके चिह्नोंको छोड़कर पैदल ही भरतेश्वरकी ओर आने लगा। वह हँसमुखी है, दीर्घदेही है, सुवर्णवर्णी है। सचमुचमें उसको वरतनु नाम शोभा देता है। उसके कंधेपर एक दुपट्टा शोभित हो रहा है। हाथमें अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम उपहारके योग्य वस्तुओंको लेकर अपने मंत्रीके साथ आ रहा है। आगे मागधामर है, पीछेसे वरतनु है। दोनों व्यंतरोंने बहुत विनयके साथ दरबारमें प्रवेश किया।

दरबारमें वेत्रधारीगण अनेक प्रकारके शब्दोंका उच्चारण कर रहे हैं। युद्धभूमिमें वीर! मदोन्मत्त शत्रुओंके मानखण्डनमें तत्पर! शरणागतोंके रक्षक! राजन्! वरतनु व्यंतर आ रहा है, दृष्टिपात कीजियेगा। इत्यादि शब्दोंको वरतनु सुन रहा है। दूरसे ही उसने भरतेश्वरको देख लिया। उनके दिव्य शरीरको देखकर वरतनु विचार करने लगा कि यदि राजा होकर उत्पन्न होवें तो इसी प्रकार होवें। इस प्रकार भावना करते हुए दोनों भरतेश्वरकी ओर आये। दरबारमें दोनों ओरसे राजागण विराजमान हैं। बीचमें उच्च सिंहासनपर भरतेश्वर विराजमान हैं। मागधामरने आकर हाथ जोड़ते हुए कहा कि स्वामिन्! वरतनु आया है। देखिये! आगे और कहने लगा कि मैंने उसके पास जाकर कहा कि तुम्हारे समुद्रके तटपर श्री सम्राट् भरतेश्वर आये हैं। इतना सुनते ही उसने बड़ा हर्ष प्रकट किया और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उसी समय मेरे साथ चलकर यहाँपर आया। स्वामिन्! वरतनु कहने लगा कि भगवान् आदिनाथ स्वामीके पुत्रका दर्शन कौन नहीं करेगा? आत्मविज्ञानीके दर्शनसे कौन वंचित रहेगा? इस प्रकार कहते हुए वह बुद्धिमान् वरतनु आपकी सेवामें उपस्थित हुआ है।

वरतनुने बहुत भक्तिपूर्वक अनेक रत्न, वस्त्र वगैरह उपहारोंको समर्पण करते हुए भरतेशको अपने मंत्रीके साथ साष्टांग नमस्कार किया। स्वामिन्! आपके दर्शनसे हमारे दोनों नेत्र सफल हो गये। हृदय प्रसन्न हुआ। इससे अधिक मुझे और किस बातकी जरूरत है? इस प्रकार कहते हुए साष्टांग ही पड़ा था। भरतेश्वर मनमें ही समझ

गये कि वरतनु सज्जन है। वक्र नहीं है। प्रगटमें प्रसन्न होकर कहने लगे कि वरतनु! तुम आये सो अच्छा हुआ। अब उठो। इतनेमें वरतनु उठा व राजाकी ओर देखते हुए कहने लगा कि स्वामिन्! लोकमें सबकी आंखको तृप्त करनेके लिए आपका जन्म हुआ है। आपका रूप, आपका वैभव, आपका शृङ्गार यह सब लोकमें अन्यत्र दुर्लभ है। यह सब आप अपने लिए ही रहने दीजिए। हमें तो केवल आपकी सेवा करनेका भाग्य चाहिए। हम लोग कूपके मत्स्यके समान इस समुद्रमें रहते हैं। हमारे पापको नाश करनेके लिए दयार्द्र होकर आप पधारे। हम लोग पवित्र हो गये। हमारे प्रति आपने बड़ी कृपा की। मंदहास करते हुए उसे बैठनेके लिये भरतेश्वरने इशारा किया व आसन दिलाया। वरतनु भी आज्ञानुसार अपने मंत्रीके साथ निर्दिष्ट आसनपर बैठ गया। मागधामरको भी आसन देकर बैठनेके लिये राजाने इशारा किया। फिर बुद्धिसागरकी ओर देखा। बुद्धिसागर सम्राट्के अभिप्रायको समझकर बोला कि स्वामिन्! यह वरतनु व्यंतर आपके भोगके लिये योग्य सेवक है। वह विनीत है, सज्जन है और आपके चरण कमलके हितको चाहनेवाला है। साथ ही मागधामरने जो यह सेवा बजाई है वह भी बड़ी है। राजन्! ये दोनों आपकी सेवा अभेद हृदयसे करेंगे। इन दोनोंका संरक्षण अच्छी तरह होना चाहिये। इस प्रकार बुद्धिसागरके चातुर्यपूर्ण वचनको सुनकर वे दोनों कहने लगे कि मंत्री! सम्राट्को हमारी सेवाकी क्या जरूरत है? क्या उनके पास सेवकोंकी कमी है? फिर भी तुमने इस प्रकारके वचनसे हमारा सत्कार किया, उसके लिये धन्यवाद है। फिर बुद्धिसागर कहने लगे कि राजन्! वरतनुको अपने राज्यमें सुखसे रहनेके लिये आज्ञा दीजिये, उसे आज जाने दीजिये और आगेके मुक्कामको चाहे आने दीजिये।

भरतेश्वरने वरतनुको अपने पास बुलाया और उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, आभरण आदि विदाईमें दिये। साथमें उसके मंत्रीका भी सन्मान किया। वरतनुने भी भरतेशके चरणोंमें नमस्कार कर सुरकीर्ति नामक एक व्यंतरको उनकी चरणसेवाके लिये सौंपते हुए कहा कि "स्वामिन्! आज्ञानुसार मैं अपने राज्यको जाकर शीघ्र लौटता हूं। तबतक आपकी सेवाके लिये मेरे प्रतिनिधि इस सुरकीर्तिको रखकर जाता हूं"। फिर वहांसे अपने मंत्रीके साथ वह चला गया।

वरतनुके जानेके बाद भरतेश्वर मागधामरकी ओर देखकर बोलने लगे कि यह मागधामर अत्यधिक विश्वासपात्र है। कल यहांपर सेनाने

मुक्काम किया ही था, इतनेमें यह यहांसे वरतनुको लानेके लिये चला गया। यहां आनेके बाद विश्रांति भी नहीं ली, बहुत थक गया होगा।

भरतेश्वरके इस वचनको सुनकर बुद्धिसागर मंत्री कहने लगा कि राजन्! यह विवेकी है, आपके सेवाक्रमको अच्छीतरह जानता है। वह आपकी सेवासे पवित्र हुआ। इसी समय मागधामर भी कहने लगा कि स्वामिन्! आपकी सेवा करनेका जो सौभाग्य मुझे मिला है यह सचमुचमें मेरा पूर्वपुण्य है। आपके पादकी साक्षीपूर्वक मैं कह सकता हूँ कि मुझे कोई थकावट नहीं है। मैं चाहता हूँ कि सदा आपकी सेवा करता रहूँ।

भरतेश्वरने अस्तु! इधर आओ! ऐसा बुलाकर उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा कि मागध! तुमसे मैं प्रसन्न हो गया हूँ। आजसे अपनी व्यंतरसेनाके अधिपति तुम्हें बनाता हूँ। आजसे जितने भी व्यंतराधिपति हमारे आधीन होंगे, उनको तुम्हारे दरबारमें दाखिल करेंगे। सबसे पहिला मानसन्मान तुम्हारे लिए दिया जायगा। बादको उनको दिया जायगा। समुद्रमें रहनेवाले व्यन्तरोंको जो कुछ भी देनेके लिये तुम कहोगे वही दे दिया जायगा। जहां तुम उस सम्बन्धमें रोकनेके लिये कहोगे हम भी रोक देंगे। अर्थात् तुम्हारी सलाहके अनुसार सर्व कार्य करेंगे। मागध! सचमुचमें तुम अभिन्न हृदयसे मेरी सेवा कर रहे हो; ऐसी अवस्थामें भी उस दिन राजाओंके सामने तुम्हारे लिये जो कठोर शब्द बोल दिये थे, परमात्माका शपथ है कि मेरे हृदयमें उसके लिए पश्चाताप हो रहा है। इस प्रकार भरतेश्वरके वचनको सुनकर मागधामर कहने लगा कि स्वामिन्! आपने ऐसे कौनसे कठोर वचन बोले हैं। मैंने ही अपराध किया था। पहले दिन मूर्खतासे आपके प्रति तिरस्कारयुक्त अनेक वचन बोले थे, उसके लिये आपने प्रायश्चित्त दिया था। इसमें क्या दोष है? स्वामिन्? उसका मुझे अब जरा भी दुःख नहीं। आप भी उसे भूल जावें। इस प्रकार कहते हुये मागधामरने भरतेश्वरके चरणोंपर मस्तक रखा। उसी समय अपने कंठसे एक रत्नहारको निकालकर मागधामरको सम्राट्ने दे दिया और सर्वजनसाक्षीसे उसे "व्यंतराग्रणि" इस उपाधिसे अलंकृत किया।

दरबारके सबलोग कहने लगे कि स्वामिन्! यह बड़ा भारी उपाधि है, उसके लिये यह मागधामर सर्वथा योग्य है। उसने आपकी हृदयसे जो सेवा की है वह आज सार्थक हो गई है।

उसके बाद सम्राट्ने मागधामरको आज्ञा दी कि मागध! जाओ! अपने महलमें जाकर विश्रांति लो। मागध भी सम्राट्को नमस्कार

कर अपनी महलकी ओर चला गया। बाकीके दरबारियोंको भी उचित रूपसे बिदाकर सम्राट् मोतीसे निर्मित सिंहासनसे उठकर अपने महलमें प्रवेश कर गये। वहाँ पर सम्राट्ने अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ व अपनी संतानके साथ भोग व योगलीलासे मुक्त होकर कुछ दिन बहुत आनंदके साथ व्यतीत किया।

अर्ककीर्ति अब बढ़ गया है। इसलिये राजकुलके लिये अनुकूल मुहूर्त देखकर यज्ञोपवीत संस्कार कराया। उत्सवकी शोभाको देखकर सब लोग जयजयकार करने लगे। तदनंतर अर्ककीर्तिके लिये अध्ययनशालाकी व्यवस्था की गई और उसको आज्ञा दी गई कि अब तुम अपना निवास बोधगृहमें करो और परिश्रमपूर्वक विद्याध्ययन करो। साथ ही अर्ककीर्ति व उसकी दासीके लिये अलग निवासस्थानका भी निर्माण कराया गया। इसके पहिले अंतःपुरकी सर्व स्त्रियाँ अर्ककीर्तिकी सेना कहलाती थीं। अब अर्ककीर्ति विद्यार्थी हुआ है। विद्याध्ययन कर रहा है। इसलिये वह सेना अब आदिराजकी सेना कहलायेगी। इस प्रकार बहुत आनंद व विनोदके साथ भरतेश्वरका समय व्यतीत हो रहा है। पूर्व व दक्षिण समुद्रके अधिपतियोंको वशमें करनेके बाद अब सम्राट् पश्चिमदिशाकी ओर जानेका विचार करने लगे।

हमारे पाठकोंको उत्कंठा होती होगी कि भरतेश्वरको स्थान-स्थान पर विजय ही क्यों प्राप्त होती है? पूर्वसमुद्रमें गये, वहाँसे मागधामरको सेवक बना लिया। दक्षिणसमुद्रमें गये, वहाँ वरतनु आधीन हुआ। जहाँ भी जावें वहीं विजयी होते हैं। इसका कारण क्या है? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि यह पूर्वसंचित पुण्योदयका प्रभाव है। पूर्वजन्ममें भरतेश्वरने अनेक प्रकारकी शुभक्रियाओं द्वारा अपने आत्माको निर्मल बना लिया था। इस भवमें भी वे रात-दिन इस प्रकार परमात्माकी भावना करते हैं।

सिद्धात्मन्! आप चलते समय, बोलते समय, सोते समय, उठते समय स्मरणपथमें बिराजमान रहें तो प्राणियोंका सर्वकल्याण होता है। उनके सर्वकार्य सिद्ध होते हैं। इसलिये स्वामिन्! आप रत्नदर्पणके समान हैं। मुझे सद्बुद्धि दीजियेगा।

परमात्मन्! तुममें अचिंत्य सामर्थ्य मौजूद है। दशों दिशाओं व तीनों लोकोंको एकसाथ व्याप्त होनेकी सामर्थ्यको तुम धारण कर रहे हो। तुम्हारी महिमाको लोकमें बहुत विरले ही जानते हैं। इसलिये हे चिदंबरपुरुष! धीर! मेरे हृदयमें बने रहो।

इस शुभ भावनाका ही यह फल है कि भरतेश्वरका नित्य भाग्यो-दय होता है।

इति वरतनुसाध्य संधि

प्रभासामरचिन्ह संधि

प्रस्थान भेरीके शब्दने तीन लोक आकाश व दशों दिशाओंको व्याप्त किया। तत्क्षण सेनाने पश्चिम दिशाकी ओर प्रयाण किया। राजसूर्य भरतेश्वर पालकीपर आरूढ़ होकर जा रहे हैं। आदिराजकी सेना पीछेसे आ रही है। पासमें ही मागधामर ध्रुवगति व सुरकीतिके साथ आ रहा है। इसी प्रकार मगध, कांबोज, मालव, चेर, चोल हम्मीर, केरल, अंग, बंग, कलिंग, बंगाल आदि बहुतसे देशके राजा हैं। उनको देखते हुए भरतेश्वर बहुत आनंदके साथ जा रहे हैं। बीचमें कितने ही स्थानोंमें सेनाका मुक्काम कराते जा रहे हैं। फिर आगे सेनापतिके इशारेसे सेनाका प्रस्थान होता है। ठण्डे समयमें सेनाका प्रयाण होता है। धूपके समयमें सेनाको विश्रांति दी जाती है। अनेक पुत्रोंके पिताको जिस प्रकार पुत्रोंपर समप्रेम रहता है उसी प्रकार सेनापति जयकुमार भी सभी सेनाओं पर सदृश प्रेम करता था। इससे किसीको किसी प्रकारका भी कष्ट नहीं होता था। इतना ही नहीं सेनाके हाथी, घोड़ा वगैरह प्राणियोंको भी किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता था। वह विवेकी था। इसलिए सबकी चिंता करता था। इस-लिए उसे सेनापतिरत्न कहते हैं।

इस प्रकार मुक्काम करते हुए सुखप्रयाण करते हुए जब सेना आगे बढ़ रही थी, एक मुक्काममें भरतेश्वरकी रानी चंद्रिकादेवीने एक पुत्र-रत्नको प्रसव किया। इसी समय हर्षोपलक्ष्यमें जिनमंदिर वगैरह तोरण इत्यादिसे अलंकृत किये गये। हर्षको सूचित करनेवाले अनेक वाद्यविशेष बजने लगे। सर्वत्र भरतेश्वरको पुत्रोत्पत्तिका समाचार फैल गया। वरतनु भी बहुत हर्षके साथ भरतेश्वरकी सेवामें उपस्थित हुआ। भरतेश्वरका दर्शन करते हुए बहुत दुःखके साथ कहने लगा कि स्वामिन्! मैं बहुत ही अभागा हूं। मेरे नगरके पास आपको पुत्ररत्न-की प्राप्ति न होकर आगे आनेपर हुई है। सम्राट्को पुत्ररत्न होनेपर

अनेक देशके राजागण आकर आनन्द मनाते हैं। उन सब वैभवोंको देखनेका भाग्य मागधामरको प्राप्त हुआ है। पूर्वजन्ममें उसने उसके लिये अनेक प्रकारसे पुण्यसंचय किया है। इस प्रकार कहते हुए प्रार्थना करने लगा कि स्वामिन्! मैं बहुत शीघ्र ही अपने नगरको जाकर जातकर्मके लिये योग्य उपहारोंको लेकर सेवामें उपस्थित होता हूँ। भरतेश्वर कहने लगे कि वरतनु! कोई जरूरत नहीं! तुम यहीं रहो। उपहारोंकी क्या जरूरत है? अब आगेके कार्य बहुत हैं, उसके लिये तुम्हारी जरूरत है, तुम यहीं रहो। इसके बाद बहुत वैभवके साथ उन बालकको वृषभराज ऐसा नामकरण किया गया। इसी मुक्कामपर आदिराजको भी उपनयन संस्कार कर उसे गुरुकुलमें भेज दिया।

वृषभराज कुछ बड़ा हो इसके लिये छह महीनेतक वहींपर मुक्काम किया। बादमें वहांसे सेनाप्रस्थानके लिए प्रस्थानभेरी बजाई गयी, तत्क्षण सेनाने प्रस्थान किया। अर्ककीर्ति व आदिराज विद्यार्थी वेषमें अपने गुरुओंके साथ आ रहे हैं। पीछेसे वृषभराजकी सेना आ रही है। इधर उधरसे अनेक सुन्दर घोड़ोंपर आरूढ़ होकर राजपुत्र आ रहे हैं। उन सबकी शोभाको देखते हुए भरतेश्वर बहुत आनंदके साथ जा रहे हैं।

भरतेश्वर इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न हैं। उनके साथ जानेवाले राजपुत्र सबके सब इक्ष्वाकुवंशके नहीं हैं। कोई नाथवंशके हैं। कोई हरिवंशके हैं। कोई उग्रवंशके हैं। कोई कुरुवंशके हैं। उनको देखते हुए भरतेश्वर उनके संबंधमें अनेक प्रकारसे विचार कर रहे हैं। यह हरिवंश कुलके लिए तिलक है, यह कुरुवंशके लिए भूषणप्राय है, अमुक नाथवंशावतंस है, अमुक गंभीर है, अमुक पराक्रमी है, अमुक गुणी व सज्जन है, अमुक निरभिमानी है। इत्यादि अनेक प्रकारसे विचार भरतेश्वरके मनमें आ रहे हैं।

सूर्यके दर्शनसे कमल, चंद्रके दर्शनसे कुमुदिनीपुष्प जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार भरतेश्वरके दर्शनसे वे राजपुत्र अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं और उनके साथ बहुत विनयके साथ जा रहे हैं। वे बहुत बड़बड़ाते नहीं और कोई प्रकारकी अहितचेष्टा भी नहीं करते, वे उत्तम कुल व जातिमें उत्पन्न हैं। इतना ही क्यों? वे भरत चक्रवर्तीके साथ रोटी-बेटी व्यवहारके लिये योग्य प्रशस्त जातिक्षत्रिय वंशज हैं। केवल अंतर है तो इतना ही कि चक्रवर्तीके समान संपत्ति नहीं है। बाकी किसी भी विषय में कम नहीं हैं।

बीचबीचमें अनेक मुक्काम करते हुए कई मुक्कामके बाद भरतेश्वर पश्चिम समुद्रके तटपर पहुँचे, वहाँपर जाते ही मागधामर व वरतनु-को बुलाया, तत्क्षण वे दोनों ही हाजिर हुए। समुद्रतटपर खड़े होकर सम्राट्ने कहा कि मागध ! इस समुद्रमें प्रभास देव राज्य कर रहा है, वह कैसा है ? हमारे पासमें सीधी तरहसे आयेगा ? या कुछ ढोंग रच-कर बादमें वश होगा ? बोलो तो सही ! इस वचनको सुनकर मागध कहने लगा कि स्वामिन् ! प्रभास देव सज्जन है। वह आपके साथ विरोध नहीं कर सकता, हम लोग जाकर उसे आपकी सेवामें उपस्थित करेंगे। इस प्रकार कहते हुए जानेकी आज्ञा मांगने लगे, सम्राट् कहने लगे कि इस कार्यके लिये तुम लोग नहीं जाना। हमारे साथ तुम लोगोंके जो प्रतिनिधि मौजूद हैं उनको इस बार भेजकर देखेंगे, वे किस प्रकार कार्य करके आते हैं। उसी समय ध्रुवगति और सुरकीर्ति-को बुलाकर यह काम उनको सौंपकर उनको आज्ञा दी गई कि तुम लोग जाकर प्रभास देवको लेकर आना। दोनों देवोंने उस आज्ञाको शिरो-धार्य किया और चले गये।

मंत्री, सेनापति आदि सबको अपने-अपने स्थानमें भेजकर चक्रवर्ती अपने महलमें प्रवेश कर गये। अपनी रानियोंके साथ स्नान, भोजनादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर उस दिनको भोग और योगलीलामें चक्रवर्तीने व्यतीत किया। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यक्रियासे निवृत्त होकर दर-बारमें आकर विराजमान हुए। दरबारमें चारों ओरसे अनेक राजा, राजपुत्र वगैरह विराजमान हैं। गायन करनेवाले भिन्न-भिन्न सुन्दर रागोंमें गायन कर रहे हैं। उनमें परमात्मकलाका वर्णन किया जा रहा है। कोई धन्यासि रागमें, कोई भैरवीमें गा रहे हैं। चक्रवर्ती उनको सुन रहे हैं।

बाहरसे जिस प्रकार प्रातःकालका धूप दिख रहा हो उसी प्रकार अन्दरसे चक्रवर्तीको आत्मप्रकाश दिख रहा है। कान गान की ओर है, हृदय आत्माकी ओर है। चर्मदृष्टिसे दरबारको देख रहे हैं। अन्तरदृष्टि से (ज्ञानदृष्टिसे) निर्मल आत्माको देख रहे हैं। आत्मविज्ञानी का मनोधर्म बहुत ही विचित्र रहता है। उसे कौन जान सकते हैं ?

कीचड़में रहनेवाले कमलको सूर्यके प्रति प्रेम रहता है, न कि उस कीचड़पर। इसी प्रकार इस अपवित्र शरीरमें रहनेवाले विवेकी आत्मा-को अपने आत्मापर ही प्रेम रहता है, न कि उस शरीरपर। भव्योंका

खास लक्षण यही है कि वे अखण्ड भोगोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मा-की ओर ही उनका चित्त रहता है, भोगकी ओर नहीं। अनेक राग-रचनाओंसे गाये जानेवाले उन गायनोंपर सन्तुष्ट होकर उनको अनेक प्रकारसे इनाम भी देते जा रहे हैं, अन्दरसे परमात्मकलाकी भावना भी कर रहे हैं। इस प्रकार भरतेश योग और भोगमें मग्न होकर दरबारमें विराजमान हैं। इतनेमें चित्तानुमति नामक दासीने वृषभराजको लाकर सम्राट्के हाथमें दे दिया। भरतेश्वर वृषभराजके साथ अनेक प्रकारसे विनोद करने लगे। बेटा ! क्या भरतेश्वरके पिता वृषभनाथ ही साक्षात् आये हैं ? नहीं नहीं यह वृषभराज है। भरतेश्वरने जिस समय उस बच्चेको हाथसे उठाया, उस समय ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे कोई बड़ा रत्ननिर्मित छोटे पुतलेको उठा रहा हो। पिताके मुखको पुत्र, पुत्रके मुखको पिता देखकर दोनों हँस रहे हैं।

भरतेश्वर पुत्रके हाथकी रेखाओंके लक्षणको देखकर उनके शुभ फलको विचार कर रहे हैं। मंगलमय रेखाओंको देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। पिता जिस प्रकार उस बच्चेके हाथ देख रहे हैं, उसी प्रकार उस बच्चेने भी भरतेश्वरके हाथको देखनेके लिये प्रारम्भ किया व हँसने लगा। तब भरतेश्वर कहने लगे कि बेटा ! मैंने तुम्हारे लक्षणको देखा, क्या इसीलिये तुमने मेरे लक्षणको भी देखा ? मुझ सरीखे तुम, तुम सरीखे मैं, उसमें अन्तर क्या है ?

इस प्रकार एक बच्चेके साथ जब प्रेम कर रहे थे तब दरबारमें भरतेश्वरके दो पुत्र और आये, आगे अर्ककीर्ति हैं, पीछेसे आदिराज हैं, दोनों विनयी हैं, सद्गुणी हैं। इसलिये दरबारके बाहर छत्र, चामर, खड़ाऊँ आदिको छोड़कर अपने साथके सेवकोंको भी बाहर ही खड़े रहनेके लिये आज्ञा देते हुए अन्दर आ रहे हैं। अनेक प्रकारके रत्ननिर्मित आभरण, तिलक, गन्धलेपन आदिसे अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रहे हैं। भय व भक्तिके दोनों मूर्तस्वरूप थे। इसलिये पिताके प्रति भय व भक्तिके साथ दरबारमें आ रहे हैं। वेत्रधारीगण राजाको उच्च स्वरसे सूचना दे रहे हैं कि स्वामिन् ! सूर्यसे भी द्विगुण प्रकाशको धारण करनेवाले अर्ककीर्ति कुमार आ रहा है उसीके साथ आदिराज भी आ रहा है। एक घटिकाको एक करोड़ सुवर्णमुद्रा जिनका वेतन है ऐसे सुकुमार आ रहे हैं। सौजन्य, विनय, विवेकमें जिनकी बराबरी करने-वाले कोई नहीं, ऐसे दोनों कुमार आ रहे हैं। राजन् ! देखिये तो सही ! राजन् ! हुण्डावसर्पिणीके आदियुगमें षटखण्डमण्डलेशरूपी पर्वतसे

उत्पन्न सूर्यचंद्ररूपी दोनों पुत्रोंको देखिये तो सही ! इस वचनको सुनकर भरतेश्वरको भी हँसी आई। हँसते हुए ही उन्होंने उन वेत्रधारियोंको पास बुलाकर इनाम दे दिया। दोनों पुत्रोंको देखकर सभी दरबारी आकृष्ट हुए। सब लोग खड़े हो गये। अर्ककीर्ति और आदिराजने बैठनेके लिये इशारा किया। भरतेश्वरने वृषभराजसे कहा कि बेटा ! तुम्हारे बड़े भाई आ रहे हैं। खड़े होकर उनका स्वागत करो, उसी समय वृषभराज उठकर खड़ा हो गया। हाथ जोड़नेके लिये कहा तो हाथ जोड़कर नमस्कार किया। अर्ककीर्ति व आदिराजने बहुत विनयके साथ कहा कि स्वामिन् ! हमें उसके नमस्कार करनेकी क्या जरूरत है? "यह राजपुत्रोंका लक्षण है" ऐसा कहकर भरतेश्वरने समाधान किया। उसके बाद दोनों पुत्रोंने अनेक भेंट वगैरह समर्पण कर पिताके चरणोंमें नमस्कार किया एवं सिंहासनके दोनों ओर खड़े हो गये। उस समय भरतेश्वरकी शोभा कुछ और ही थी। एक पुत्र गोदपर दोनों इधर उधरसे खड़े हैं। उनकी शोभाको देखते हुए दरबारके सब लोग खड़े हैं। भरतेश्वरने सबको बैठनेके लिये कहा। फिर भी सब लोग खड़े ही रह गये और कुमारोंकी ओर देखते रहे। भरतेश्वरने अर्ककीर्तिसे कहा कि बेटा ! सबको बैठनेके लिये तुम बोलो। तब वे बैठेंगे। तब सबको अर्ककीर्तिने बैठनेके लिये कहा। फिर भी लोग खड़े खड़े ही देखते रहे। फिर "तुम लोगोंको पिताजीकी शपथ है। बैठ जाइये" ऐसा कहनेपर भी लोग बैठे नहीं। वे एकदम दोनों कुमारोंकी सौन्दर्यको देखनेमें ही मग्न हो गये थे। इतनेमें भरतेश्वरने आदिराजसे कहा कि बेटा ! सबको तुम बैठनेके लिये बोलो। तब आदिराजसे कहा कि प्यारे भाइयों ! आप लोग बैठ जाएँ फिर सब लोग खड़े रह गये। फिर "मेरे भाई अर्ककीर्तिकी शपथ है, आप लोग बैठ जाएँ" ऐसा कहनेपर सब लोग एकदम बैठ गये। अर्ककीर्तिने गम्भीरताके साथ कहा कि आदिराजको कुछ काम नहीं है, पिताजीके सामने मेरे शपथ खानेकी क्या जरूरत है ! क्या यह योग्य है? इसपर आदिराज कहने लगा कि भाई ! पिताजी तुम्हारे स्वामी हैं। मेरे लिये तुम ही स्वामी हो, इसमें क्या बिगड़ा ?

भरतेश्वर भी अपने पुत्रोंके विनयव्यवहारपर प्रसन्न हुये। दरबारी भी उनके जातिविनयको देखकर प्रसन्न होकर प्रशंसा करने लगे। भरतेश्वरने मंत्री और सेनापतिको बुलाकर पूछा कि क्या मेरी उस दिनकी आज्ञाके अनुसार इनको बराबर वेतन दिया जाता है? स्वामिन् !

आज्ञानुसार वेतन तत्क्षण दिया गया। परंतु उन्होंने ही खजानेमें रखनेके लिये आज्ञा दी। इन प्रचण्ड वीरोंको कौन रोक सकता है?

इसके बाद दोनों कुमारोंको बैठनेके लिये आज्ञा देकर आसन दिया गया। परन्तु वे बैठे नहीं। उन्होंने भरतेश्वरकी और एक सेवा करनेकी तैयारी की। पासमें ही खड़े होकर एक सेवक सम्राट्को तांबूल दे रहा था। उसके हाथसे तांबूलके तबकको अर्ककीर्तिने छीन लिया, व स्वतः तांबूल देनेकी सेवामें संलग्न हुआ। इतनेमें आदिराजने भी चामर ढोलने-वालेके चामरको छीन लिया व स्वतः चामर ढोलने लगा। उस समय उन दोनों पुत्रोंकी सेवाको देखते हुए दरबारके समस्त सज्जन भावना करने लगे थे कि "लोकमें पुत्रोंकी प्राप्ति हो तो ऐसोंकी ही हो। नहीं तो ऐसे भी बहुतसे पुत्र उत्पन्न होते हैं, जिनसे पिताकी सेवा होना तो दूर, पिताको ही उसकी सेवा करनी पड़ती है। कभी कभी पितृद्रोहके लिये भी वे तैयार होते हैं"।

तांबूल देनेके बाद और एक सेवा करनेके लिये अर्ककीर्ति सन्नद्ध हुआ। पिताकी गोदसे वृषभराजको लेकर स्वयं उसे खिलाने लगा। भरतेश्वरने कहा कि बेटा! वृषभराजको तुमने क्यों उठाया? अर्क-कीर्तिने बहुत विनयके साथ कहा कि स्वामिन्! बहुत देरसे वह आपकी गोदपर बैठा है, आपको कितना कष्ट हुआ होगा? इसलिये कुछ देरके लिये अपने भाईको मैं भी उठाऊँ, इस विचारसे मैंने लिया और कोई बात नहीं।

भरतेश्वरने सोचा कि मैंने जिस बच्चेको पहिले उठाया था उसको यह अब उठा रहा है। इसी प्रकार जिस षट्खण्ड भूभारको मैं अब धारण कर रहा हूँ उसे यह भविष्यमें धारण करेगा। यह इसके लिये पूर्ण समर्थ है। इसी प्रकार वहाँ उपस्थित बड़े-बड़े राजा, प्रजा, देव, आदियोंने अपने मनमें विचार किया। तदनंतर भरतेश्वरने "बेटा! मेरी शपथ है। मुझे बिलकुल कष्ट नहीं, लाओ, बच्चेको इधर लाओ, तुम दोनों यहाँ पासमें बैठे रहो" ऐसा कहकर दोनोंको पासमें बैठा लिया। पासमें बैठे हुए दोनों पुत्रोंके साथ भरतेश्वर बहुत आनंदके साथ विनोद कर रहे हैं।

बेटा! तुमलोग अब गुरुकुलमें विद्याभ्यास कर रहे हो। क्या वह कष्टमय है या सुखमय है? इस प्रकार भरतेशने अर्ककीर्तिसे पूछा।

अर्ककीर्ति कहने लगा कि स्वामिन्! विद्योपार्जनके समान अन्य

कोई सुख नहीं है। उस सुखको हम कहाँतक वर्णन कर सकते हैं? अभ्यास, अध्यवसाय आदि आलस्यको दूर करनेके लिये प्रधान साधन है, शास्त्राभ्यास ज्ञानका साधन है। राजकुलमें उत्पन्न वीरोंके लिये यह विद्यासाधन भूषण है। सुखसाधन है।

भरतेश्वरने पुत्रसे कहा कि बेटा! प्रारम्भमें विद्योपार्जन कुछ कठिन मालूम होता है, परन्तु आगे जाकर वह सरल मालूम होता है। धीर व साहसियोंके लिये वह साध्य है। डरपोकोंके पास वह विद्यादेवी भी नहीं आती। इसलिये उसकी कठिनाइयोंसे एकदम डरना नहीं चाहिये।

"पिताजी! हमें बिलकुल भी कष्टका अनुभव नहीं होता है। प्रत्युत हमें उसमें और भी अधिक आनंद ही आनंद आता है। हमें किसी बातकी जल्दी नहीं है। इसलिये धीरे-धीरे उसको साधन कर रहे हैं। इसलिये हमें कोई कठिनता नहीं होती है। उदयकालमें अभ्यास दुपहरको पठन और रात्रिके समयमें पठित पाठका चिंतन करना यह हमारे प्रतिनित्यका साधनक्रम है। हम मृदुमार्गसे व्यवस्थित रूपसे जा रहे हैं। इसलिये हमें उस मार्गमें कष्ट क्यों हो सकता है? पिताजी! आदिराजकी बुद्धिका मैं कहाँतक वर्णन करूँ? ग्रन्थपठन व अभ्यासमें वह आदर्शरूप है। जिस प्रकार कोई पहिले अभ्यास कर भूले हुए विषयोंको एकदम स्मरण करता हो, उसी प्रकारकी हालत नवीन ग्रंथोंके अभ्यासमें आदिराजकी है अर्थात् बहुत जल्दी सभी ग्रंथ अभ्यस्त होते हैं। स्वामिन्! आपने उसका नामकरण करते हुए भगवान् आदिनाथका नाम जो रखा है वह बहुत विचारपूर्वक रखा है। उसमें अन्यथा क्यों हो सकता है? विचार करनेपर वह सचमुचमें आदिराज है। अंत्यराज व मध्यराज नहीं है। इस प्रकार आदिराजकी अर्ककीर्तिने प्रशंसा की।

भरतेश्वरने प्रसन्न होकर कहा कि "बेटा! सचमुचमें तुम्हारे भाई साहसी हैं? वीर हैं? बुद्धिमान् हैं? तुमको उससे संतोष हुआ है? बोलो तो सही! "पिताजी! विशेष क्या कहूँ? अपने वंशके लिये वह आदिराज भूषणस्वरूप है" अर्ककीर्तिने कहा।

अर्ककीर्तिके मुखसे अपने वर्णनको सुनकर आदिराज कहने लगा कि भाई! क्या बड़े लोग छोटोंकी इस प्रकार प्रशंसा करते हैं? क्या राजपुत्रोंके लिये यह योग्य है? मुझमें इस प्रकारके गुण कहाँ हैं? आप व्यर्थ

ही मेरी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? इतनेमें भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! कोई बात नहीं। बड़े भाईने संतोषके साथ तुम्हारे विषयमें कहा, तुम दोनों ही भूषणस्वरूप हो। इसलिये शांत रहो अब दरबारको बरखास्त कर देते हैं। आप लोग अपने निवास स्थानको जाइये। इस प्रकार कहकर आभरणोंसे भरे हुए दो करण्डोंको उन पुत्रोंको भरतेश्वर देने लगे, तब उन दोनोंने लेनेसे इनकार किया। वे कहने लगे कि हमारे पास अभी आभरण बहुत हैं। अभी जरूरत नहीं। भरतेश्वरने बहुत आग्रह किया। फिर भी लेनेके लिये राजी नहीं हुए। तब वे कहने लगे कि बेटा ! तुम लोग आज बहुत उत्तम कार्य कर चुके हो। इसलिये मैं दिये बिना नहीं रह सकता। यदि तुम लोगोंने आज इसे नहीं लिया तो आगे कभी भी तुम लोगोंके हाथसे भी भेंट नहीं लूंगा। भरतेश्वरने विचार किया कि कदाचित् बड़े भाईने ले लिया तो बादमें छोटा भाई लेनेके लिये तैयार हो जायेगा। इसलिये अर्ककीर्तिके तरफ हाथ बढ़ाने लगे। परन्तु उसने भी नहीं लिया, तब आदिराजसे भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! तुम अपने भाईसे लेनेको बोलो ! तब आदिराजने अर्ककीर्तिसे लेनेकी प्रार्थना की। अब अर्ककीर्ति अपने भाईके वचनको टाल नहीं सका। अपने पिताजीसे प्रार्थना की कि हम इस उपहारको लेंगे। परन्तु वृषभराजके हाथसे दिलाइयेगा। उसके हाथसे लेनेकी इच्छा है। तदनुसार दोनों करण्डोंको भरतेश्वरने वृषभराजके सामने रखा। प्रथमतः वृषभराजने दोनों भाइयोंको नमस्कार किया। फिर उसने उन आभरणोंके करण्डोंको हाथ लगाकर सरका दिया। छोटे भाई बड़े भाइयोंको इनाम दे रहा है। उसमें भी विनय है। इस नवीन पद्धति को देखकर सब आश्चर्य चकित हुए। वे तद्भव मोक्षगामीके पुत्र हैं, एवं तद्भव मोक्षगामी हैं। इसलिये वे व्यवहारमें किस प्रकार चूक सकते हैं? उन आभरणोंको लेकर उनमेंसे एक-एक हार निकालकर दोनों कुमारोंने वृषभराजको पहना दिया। बाकीको लेकर जाने लगे।

इतनेमें एक विनोदकी घटना और हुई। बड़े भाई आभरणकी पेटीको बगलमें रखकर जाने लगा, तो छोटे भाई आदिराजने कहा कि भाई ! इस पेटीको आपके महल तक मैं पहुँचाऊँगा, आप क्यों कष्ट ले रहे हैं ?

आदिराज ! तुम पिताजीके सामने व्यर्थ गड़बड़ मत करो। जो

कुछ व्यवहार, विनय वगैरह बतलाना हो वह हमारे महलमें बतलाओ! यहाँ यह सब करना ठीक नहीं है । अर्ककीर्तिने कहा ।

भाई ! पिताजीके सामने ऐसा व्यवहार उचित क्यों नहीं ? क्या यह लुच्चे-लफंगों का आचार है ? या सज्जनोंका गौरव है ? हम क्या कोई बुरा काम कर रहे हैं ? जिससे कि पिताजीके सामने संकोच करें । आपको अपनी प्रतिष्ठा के समान ही चलना चाहिये और मुझे सेवा-कृत्यके लिये आज्ञा देनी चाहिये । मैं कह रहा हूं, यह ठीक है या गलत है ? इस बातका निर्णय पिताजीसे ही पूछकर कीजियेगा, अब तो कोई हर्ज नहीं है न ? इस प्रकार कहते हुए आदिराजने उस आभरण की पेटीको लेनेके लिये हाथ बढ़ाया, परन्तु अर्ककीर्तिने हाथको हटाया तो भी "मैं नहीं छोड़ सकता" इस प्रकार कहते हुए आदिराज पेटीको छीनने लगा । दोनोंका विनयविनोदयुक्त युद्ध होने लगा । पुत्रोंके वर्तन-पर भरतेश्वर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और कहने लगे कि बेटा ! पेटी दो ! उसकी भी इच्छा पूर्ति होने दो । तब आदिराजको और भी जोर मिला । उसने पेटी अर्ककीर्तिसे छीन ली और अपने बगलमें दबाया । फिर दोनों पुत्रोंने भरतेश्वरको भक्तिसे नमस्कार किया व अपनी महल-की ओर प्रयाण किया । इधर भरतेश्वर आनन्दके साथ विराजमान थे । आकाश प्रदेशमें गाजेबाजेका शब्द सुनाई देने लगा । मालूम हुआ कि प्रभासांक देव आ रहा है । चित्तानुमती दासीको बुलाकर वृषभ-राजको उसके हाथमें सौंप दिया और महलकी ओर भेज दिया । सम्राट् प्रभासांक की प्रतीक्षा करते हुए सिंहासनपर विराजमान हैं ।

पाठकोंको इस बातका आश्चर्य होगा कि चक्रवर्ती भरतेश्वरको बारंबार उत्सवके बाद उत्सवका प्रसंग क्यों आता है ? उनका पुण्य कितना प्रबल है ? उन्होंने इसके लिये क्या अनुष्ठान किया होगा ? इसका समाधान यह है कि पुण्यके जागृत रहनेपर मनुष्यका जीवन सुखमय बन जाता है । सम्राट्ने इस बातकी भावना अनेक भवोंमें की थी कि मेरी आत्मा सुखमय बने, इस भवमें भी वे हमेशा भावना करते हैं कि :—

सिद्धात्मन् ! षट्कमलोंके पचास दलों पर अंकित पचास शुभ अक्षरोंको ध्यान कर जो अपना आत्मसाक्षात्कार करते हैं, उनको आपका दर्शन होता है । हमें भी आपके दर्शनकी इच्छा है, इसलिये सुबुद्धि दीजियेगा । हे परमात्मन् ! जो तुम्हारी भावना करते हैं उनको

रात्रिदिन आनन्दके ऊपर आनन्द देकर संरक्षण आप करते हैं। क्योंकि आप नित्यानन्दमय हैं। इसलिये मेरे हृदयमें निरन्तर बने रहनेकी कृपा करें!

इसी भावनासे भरतेश्वरको नित्यानन्द मिल रहा है।

इति प्रभासामरचिन्ह संधि

—:o:—

विजयार्धदर्शन संधि

प्रभासामर अपनी सेना व विमान आदि वैभवके चिह्नोंको समुद्र तटपर ही छोड़कर चक्रवर्तीके पास बहुत आनन्दके साथ आ रहा है। प्रतिभास नामक प्रतिनिधि व मंत्री उसके साथ हैं। साथ ही सुरकीर्ति व ध्रुवगति भी मौजूद हैं। वह प्रभासामर बहुत सुन्दर है। अनेक रत्न-निर्मित आभरण व दिव्य वस्त्रोंके धारण करनेसे और भी सुन्दर मालूम होता है। गौरवर्ण है। इतना ही नहीं उसका मन भी शुभ्र है। बहुत ही भय भक्तिसे युक्त होकर वह सम्राट्के पास जा रहा है! इधर उधरसे चक्रवर्तीकी सेनाके घोड़े, हाथी, रथ व अगणित पायदल आदि विभूतियोंको देखते हुए उसे मनमें आश्चर्य हो रहा है। सभामें प्रवेश करनेके बाद भरतेश्वरका वैभव देखकर प्रभासामर आश्चर्यचकित हुआ। उस विशाल सभामें वेत्रधारीगण "रास्ता छोड़ो, बैठो, हल्ला मत करो" आदि शब्दोच्चारण करते हुए व्यवस्था कर रहे हैं।

प्रभासामरने सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्तीको देखा। देखते ही उसके मनमें विचित्र विचार उत्पन्न हुए। क्या यह चक्रवर्ती हैं? देवेंद्र हैं? या कामदेव हैं? चंद्र हैं या सूर्य हैं? इत्यादि अनेक प्रकारके विचार उसके मनमें उत्पन्न हुए। पासमें जानेके बाद ध्रुवगति और सुरकीर्तिने नमस्कार कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! प्रभासेन्द्र यही है। हम लोगोंने जाकर जब यह समाचार कहा कि सम्राट् समुद्रके तटपर विराजते हैं, तब यह बहुत ही प्रसन्न हुआ। कहने लगा कि मैं आज कृतार्थ हुआ, मेरा जन्म सफल हुआ। इससे पहिले जिसने मागधामर, वरतनुको पवित्र किया है ऐसे स्वामी मेरे उद्धारके लिए पधारे, मेरा परमभाग्य है इत्यादि अनेक प्रकारसे उन्होंने हर्ष प्रकट किया। इतना ही नहीं, स्वामिन् विशेष क्या? हमलोग आपके समाचार लेकर वहां

गये थे। इसलिये हम लोगोंसे कहने लगा कि बंधुवर ! पहिलेका बंधुत्व तो अपने साथ है ही। फिर भी आज आप लोग स्वामीके अभ्युदय समाचारको लेकर आये हैं। इसलिए आप लोगोंसे अधिक हितैषी हमारे और कौन होंगे ? ऐसा कहते हुए हम लोगोंको प्रेमसे आलिंगन दिया व हमारा यथेष्ट सत्कार किया। स्वामिन् ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ? आपके दर्शन करनेकी उत्सुकतासे वह यहांपर आया है। आपके सामने खड़ा है, इस प्रकार कहकर वे दोनों देव खड़े हो गये।

इसके बाद प्रभासेंद्रने चक्रवर्तीके ऊपर मोतीके पुष्पोंकी वृष्टि बहुत भक्तिसे की। अनेक वस्त्र, आभूषण, रत्न, मोती आदिको भेंटमें चक्रवर्तीके चरणोंमें समर्पण किया व अपने मन्त्रीके साथ साष्टांग नमस्कार कर चक्रवर्तीकी स्तुति करने लगा।

"आदितीर्थेशाग्रसुकुमार जय जय, आदिचक्रेश मां पाहि, भो देव ! धन्योऽस्मि" ऐसा कहते हुए सम्राट्के चरणोंमें नमस्कार किया। चक्रवर्तीने प्रसन्नताके साथ उसे उठनेके लिए कहा। प्रभासेंद्र उठकर खड़ा हुआ। पुनः भक्तिसे चक्रवर्तीकी स्तुति करने लगा। निमिषलोचनेंद्र ! कलंकरहितान्यूनचंद्र ! उष्णरहित सूर्य ! सशरीर कामदेव ! तुम राजाके रूपमें सबको सुख पहुँचानेके लिये आये हो। स्वामिन् ! अयोध्यानगरीमें रहनेपर समुद्रके अनेक व्यंतर उन्मत्त होकर दुर्मार्गगामी बनेंगे इसलिए हम लोगोंका उद्धार करनेके लिये आप यहां पधारे हैं, स्वामिन्! आप परमात्माको प्रसन्न कर चुके हैं, इसलिये इसी भवसे मुक्तिको पधारनेवाले हैं। हे मुमुक्ष ! आपकी सेवा करनेका भाग्य लोकमें सबको क्योंकर मिल सकता है ? हम लोग सचमुचमें भाग्यशाली हैं।

इतनेमें भरतेश्वरने प्रभाससे कहा "सुमुख ! तुम बहुत थक गये होगे अब बैठ जाओ", ऐसा कहते हुए एक आसनके प्रति इशारा किया अपने मंत्रीके साथ वह भी उचित आसन पर बैठ गया।

सुरकीर्ति व भुवगलिको भी बैठनेके लिये आज्ञा देकर सम्राट्ने बुद्धिसागरकी ओर देखा। बुद्धिसागर मंत्री सम्राट्के भावोंको समझकर कहने लगा कि स्वामिन् ! प्रभास देव अत्यन्त विवेकी है। मायारहित है, आपका परमभक्त है, आपके पादकमलोंकी सेवा करनेकी इच्छा रखता है, सचमुच में वह धन्य है कि आपकी सेवाके भाग्यको पाया है। इससे अधिक और कौनसी संपत्ति हो सकती है ? इससे पहिले मागधामर व वरतनु पुण्यभागी थे। अब ये तीनों ही पुण्यशाली हैं।

मंत्रीके वचनको सुनकर ये तीनों देव बहुत प्रसन्न हुए, बुद्धिसागरने

ध्रुवगति व सुरकीर्तिकी भी प्रशंसा की। साथमें यह भी कहा कि स्वामिन्! अब प्रभासेन्द्र अपने राज्यको जाना चाहे तो उसे जानेकी अनुमति दी जाय और आगे जिस स्थानपर आप मुकाम करें उसी स्थानपर आवें।

भरतेश्वरने भी प्रभासामरको मंत्रीसहित बुलाकर अनेक प्रकारके वस्त्र, आभूषण, रत्नोंको भेंटमें दिये। साथमें सुरकीर्ति व ध्रुवगतिका भी सन्मान किया। इतनेमें एक और संतोषकी घटना हुई।

राजदरबारमें जिस समय प्रभासदेवके मिलापमें हर्षसंलाप हो रहा था, उस समय उधर महलमें पाँच रानियोंने पांच पुत्र रत्नोंको प्रसव किया है। श्रीमाला, बनमाला, गुणदेवी, मणिदेवी और हेमाजी नामक पाँच रानियोंने अत्यन्त सुन्दर पाँच पुत्रोंको जन्म दिया है। जो कामदेव के पंचबाणोंको भी तिरस्कृत कर रहे थे। अन्तःपुरसे पंचपुत्रोंकी उत्पत्ति के समाचारको लेकर जो दासियाँ आई हैं वे बहुत चातुर्यके साथ आ रही हैं। क्योंकि उनको भेजनेवाली रानियाँ भी कम बुद्धिमती नहीं थीं। यदि क्रमसे दासियाँ जाकर कहेंगी तो अमुक रानीका पुत्र छोटा है, अमुकका बड़ा है, अमुकने पहिले जन्म लिया इत्यादि सिद्ध हो जायगा। इसलिये दासियोंको एक पंक्तिसे जाकर एक साथ कहनेके लिये उन रानियोंने आदेश दिया था। इसलिये वे दासियाँ एक पंक्तिमें ही खड़ी होकर भरतेश्वरके दरबारमें आनन्दसे फूलकर आ रही हैं। भरतेश्वरने दूरसे ही देखकर समझ लिया कि ये पाँचों दासियाँ पुत्र जन्मके हर्ष समाचारको लेकर आ रही हैं और कोई बात नहीं। पासमें आकर उन पांचोंने पाँच रानियोंको पुत्रोत्पत्ति होनेका समाचार सुनाया। भरतेश्वरको हर्ष हुआ। दासियोंको अपने कण्ठमें धारण किये हुये रत्न-निर्मित पाँच हारोंको इनाम दिया। उस दरबारमें उपस्थित राजा व प्रजाओंको यह समाचार सुनकर इतना हर्ष हुआ कि शायद उनके हाथ में ही चक्रवर्तीकी संपत्ति आ गई हो।

उसी समय प्रभासांक कहने लगा कि स्वामिन्! मैं अपने राज्यमें जाकर वहाँपर क्या कर सकता हूँ। यहाँ रहनेसे ये सब महोत्सव तो देखनेके लिये मिले। मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। उसी समय प्रभासांकने अपने मंत्रीको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम जल्दी अपने राज्यमें जाकर अगणित रत्न, वस्त्र, आभूषण वगैरह भेंटके लिये ले आओ। आज्ञा पाकर वह चला गया। भरतेश्वरने भी सबको दरबारसे विदा किया व निरं-

जनसिद्ध शब्दको उच्चारण करते हुए महलकी ओर गये। वहांपर सबसे पहले पांच पुत्रों को देखकर फिर उनका यथोचित जातकर्म संस्कार किया। फिर बादमें नामकर्मोचित दिनमें नामकरण संस्कार किया। उस दिन आधीनस्थ सब राजाओंने नामकरण संस्कारके हर्षोपलक्षमें अनेक रत्न, वस्त्र, उपहारोंको भेंटमें चक्रवर्तीकी सेवामें समर्पण किया। इसी प्रकार प्रभास देवने भी उत्तमोत्तम उपहारोंको भेंटकर अपने हर्ष और भक्तिको प्रगट किया। भरतेश्वरको परमात्मा प्रिय है। इसलिये उन पुत्रोंके नामकरणमें भी उन्होंने परमात्माका ध्यान रखा। उन पुत्रोंका क्रमसे हंसराज, निरंजनसिद्धराज, महांशुराज, रत्नराज, संमुखराज, इस प्रकार नाम रखा गया। छह महीनेतक भरतेश्वरने उसी स्थानपर मुक्काम किया। बादमें वहांसे सेनाका प्रस्थान हुआ।

हिमवान् पर्वतसे गंगाके समान ही उदय पाकर दक्षिणकी ओर बहती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलनेवाली सिंधुनामक महानदी मौजूद है। उसके दक्षिण तटको अनुसरण कर भरतेश्वरकी सेना जा रही है। जहाँ इच्छा होती है, मुक्काम करते हैं। फिर आगे चलते हैं। बीच-बीचमें जहाँ-तहाँ पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति हुई है या हो रही है उनको योग्य वयमें आनेके बाद उपनयनादि क्षत्रियोचित संस्कारोंको कराते हुए जा रहे हैं। कभी पर्वतोंपर चढ़कर जाना पड़ता है। कभी मैदानसे जाते हैं। कभी चढ़ते हैं। कभी उतरते हैं। इस प्रकार बहुत आनंदके साथ जा रहे हैं। कभी-कभी मार्ग न होनेके कारण कोई-कोई पर्वतोंको तोड़कर मार्ग बनाते जाते हैं। पर्वतोंको तोड़ते समय उनमें अनेक रत्न सुवर्ण वगैरह मिलते हैं। "उन सबके लिये सेनापति ही अधिकारी है" इस प्रकार भरतेश्वरकी ओरसे आज्ञा हुई है। सेनामें किसीको कोई प्रकारका कष्ट नहीं है। इतना ही नहीं। प्रयाणके समय किसी भी मनुष्यके पेटका पानी भी नहीं हिल रहा है। किसी भी प्राणीके पैरमें कांटे भी नहीं लगते हैं, इतने सुखसे प्रयाण हो रहा है।

इस प्रकार अत्यन्त सुखके साथ अनेक मुक्कामोंको तय करते हुए सम्राट् एक ऐसे पर्वतके पास आये जो चांदीके समान शुभ्र था। वह कोई सामान्य पर्वत नहीं है, विजयार्ध पर्वत है। आकाशको स्पर्श करने जा रहा हो जैसे ऊँचा है, पूर्व और पश्चिम समुद्रको व्याप्त कर चांदीके दीवालके समान अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहा है। उस पर्वतके दक्षिणमें एक सौ दस नगर हैं जिनमें विद्याधरोंका आवास है। उन नगरोंमें गगनवल्लभपुर व रथनूपुरचक्रवालपुर नामक दो नगर अत्यन्त

प्रसिद्ध और श्रेष्ठ है। वहाँपर क्रमसे नमिराज, विनमिराज दो भाई राज्य पालन कर रहे हैं। नमिराज विनमिराज सम्राट्के निकटबंधु हैं। भरतेश्वरकी माता यशस्वतीदेवीके भाई श्री कच्छ और महकच्छ राजाके वे पुत्र हैं। अर्थात् भरतेश्वरके मामाके पुत्र हैं। वे दोनों अत्यन्त प्रभावशाली हैं। सब विद्याधरोंको अपने आधीन बनाकर विद्याधर लोकका राज्यपालन कर रहे हैं।

विजयार्धपर्वतके दक्षिणोत्तर भागमें विद्याधरोंका निवास है, विजयार्धपर्वतके मस्तकपर विजयार्धदेव नामक राजा राज्यपालन कर रहा है। इसके अलावा किन्नर यक्ष आदि देव भी वहाँपर रहते हैं। इस प्रकार गंगा नदी और विजयार्धपर्वतके बीचमें एक खंड और सिंधु नदी और विजयार्धके बीचमें एक खंड ये दोनों म्लेच्छ खंड कहलाते हैं। विजयार्धके दक्षिणमें गंगा सिंधुके बीचका जो भाग है वह आर्या-खंडके नामसे कहा जाता है। इसी प्रकार विजयार्धपर्वतके उत्तर भागमें भी तीन म्लेच्छ खंड हैं, जिनको उत्तरसे हिमवान् नामक पर्वत पूर्व और पश्चिम समुद्रतक व्याप्त होकर सीमाका काम कर रहा है। दोनों पर्वत, दो समुद्र और दो महानदियोंके बीचमें छह खंडका विभाग है। इसीको भरत क्षेत्रका षट्खंड कहते हैं। उसे भरतेश्वर अपने शौर्यसे पालन करते हैं। विजयार्धपर्वततक तो भरतेश्वर आये। उनको अब यहाँपर विद्याधरलोकको वश करनेका है। फिर विजयार्धपर्वतको पार कर उत्तर भागके म्लेच्छखंडको भी वश करनेका है। विजयार्धपर्वतमें एक बड़े भारी अत्यंत मजबूत वज्रदार मौजूद है, जो हजारों क्या, लाखों वर्षोंसे बंद है। उसे अपने दण्डसे फोड़कर भरतेश्वर आगे बढ़ेंगे।

भरतेश्वरने आगेके कार्यको विचारकर सेनाधिपतिको बुलाया एवं विजयार्धपर्वतके इधर चार योजन प्रमाणमें एक खाई निकाली जावे। इस प्रकारकी आज्ञा उसे दे दी और साथमें यह भी कहा कि आज तो तुम विश्रांति लो और कल अपनी महल और सेनाके रक्षणके लिये तुम्हारे भाइयोंको नियुक्त करके तुम व्यंतरवीर व आवश्यक सेनाओंको लेकर जाओ। फिर खाई निकालनेका कार्य करो।

विजयार्धपर्वतका कपाट (द्वार) हजारों वर्षोंसे बंद है। उसे एक-दम तोड़नेसे उससे अग्नि निकलकर बारह कोसतक आगे उछलकर आयेगी। इसलिये आगे वह आकर बाधा न दे सके इस प्रकार होशि-यारीसे खाईका निर्माण करो। लोकमें एक सामान्य लोहेसे दूसरे

लोहेको कूटते हैं तो अग्नि निकलती है, फिर दण्डरत्नसे वज्रकपाटको कूटनेपर अग्नि नहीं उठेगी क्या ? एक लकड़ीको दूसरी लकड़ीके साथ घर्षण करनेपर उससे अग्निकी उत्पत्ति होकर जंगलका जंगल भस्म हो जाता है। पर्वतको दण्डरत्नसे कूटनेपर अग्नि प्रज्वलित होवें तो इसमें आश्चर्य क्या है। यह सब लौकिक दृष्टांत हैं। गुफामें अग्निका भरा रहना साहजिक है। इसलिये उस अग्निको रोकनेके लिये जलकी खाई ही समर्थ है। यदि इस प्रकारकी खाईकी व्यवस्था नहीं हुई तो वह अग्नि भयंकररूपसे प्रज्वलित होकर अपनी सेनाको दबाती हुई जायगी। सेना भयभीत हो पलायन करेगी। सभी सेनाने मिलकर उस अग्निको बुझानेके लिये प्रयत्न किया तो भी वह निष्फल हो जायगा। जैसे-जैसे सेना उस प्रलयके समान भयंकर अग्निको दबानेके लिये प्रयत्न करेगी वैसी ही वह और भी प्रज्वलित होकर सेनाको दबाती हुई बढ़ेगी। ऐसी अवस्थामें इन सब कष्टोंको सामना करनेसे क्या प्रयोजन ? एक जलकी खाई बनाई गई तो सब कष्ट दूर हो सकते हैं। अग्नि उस खाईसे इधर नहीं आ सकेगी। हम लोग निराकुलतासे इधर रह सकते हैं। यह अपनी तरफ आनेवाली अग्निको रोकनेका उपाय है। इसी प्रकार सिंधु नदीके पश्चिमभागमें कदाचित् वह अग्नि व्याप्त हो गई तो प्रलयकालकी अग्निके समान वह व्याप्त होकर वहांकी भूमिको जलायेगी, प्रजाओंको महाकष्ट होगा। इसलिये वहांपर भी एक खाईका निर्माण करो। उत्तरमें पर्वत है। वह अग्निको रोक सकेगा। दक्षिणमें सिंधु नदीके दोनों तटोंतक खाई होनेसे उसमें पानी भर जायेगा। वह पानी उत्तरभागके पर्वततक पहुँचे तो सबका संरक्षण होगा। इस प्रकार की व्यवस्था बहुत विचारपूर्वक करो। सेनापतिको आज्ञा देते हुए उसी समय वरतनु, प्रभासांक आदि व्यंतर राजाओंको भी बुलाकर उनको आज्ञा दी कि इस कार्यमें आप लोग भी योग देकर सेनानायक जैसा कहें उसकी इच्छानुसार सहायता देवें। उन लोगोंने सम्राट्की आज्ञाको शिरोधार्य किया।

तदनंतर सेनाका मुक्काम उस विजयार्धपर्वतके पास करनेके लिए आज्ञाभेरी बजाई गई। क्षणभरमें सब व्यवस्था हो गई। सब लोगोंको मकान, महल, मंदिर वगैरहकी व्यवस्था देखते-देखते हो गई। विशेष क्या ? एक विशालराज्यकी ही वहांपर स्थापना हो गई। भरतेश्वरने सब राजा-प्रजाओंको योग्य उपचारपूर्ण वचनोंसे संतुष्ट कर अपने अपने

स्थानपर भेज दिया और स्वयं अपने लिए निर्मित सुन्दर महलमें प्रवेश कर गये।

भरतेश्वरकी कितनी अद्भुत सामर्थ्य है ? जहाँ जाते हैं वहां अलौकिक वैभवको प्राप्त करते हैं। कैसे भी भयंकरसे भयंकर संकट क्यों न हो उसे बहुत दूरदर्शितापूर्वक विचारकर टाल देते हैं। अपनी प्रजाओंको कोई प्रकारका कष्ट न हो इसकी उन्हें सतत चिन्ता रहती है। उसके लिए वे बहुत शीघ्र व्यवस्था करते हैं। उन्हें सब प्रकारकी अनुकूलता भी मिलती है। इन सब बातोंका कारण क्या है ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि यह पूर्व पुण्यका फल है। उनकी सतत होनेवाली पुण्यमय भावनाका फल है। वे रात्रिदिन इस प्रकारकी भावना करते रहते हैं कि --

हे सिद्धात्मन् आप लोकमें मनको सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते हैं। जो लोग ध्यानरूपी करवतसे देह और आत्माके अन्योन्य मिलापको भिन्न करना जानते हैं उनको आपका रूप प्रत्यक्ष देखनेमें आता है। आप प्रकाशमान होकर दीखते हैं। इसलिए हे सिद्धात्मन् ! हमें आप नित्य दर्शन दीजियेगा।

हे परमात्मन् ! आप अक्षय सामर्थ्यको धारण करनेवाले हैं। अनुपम लावण्यकी आप मूर्ति हैं। मोक्षमें आप अग्रगण्य हैं, श्रेष्ठ हैं। इतना ही नहीं आपके द्वारा ही लोककी रक्षा होती है। इसलिए परमात्मन् ! आप साक्षात् मेरे हृदयमें बने रहें।

इस प्रकारकी भावना भरतेश्वर रात दिन अपने हृदयमें करते हैं। इसीका यह फल है कि उनको प्रत्येक काममें जय और सिद्धिकी प्राप्ति होती है।

इति विजयार्धदर्शन संधि

कपाटविस्फोटन संधि

आठ दिनके बाद भरतेश्वरकी सेवामें जयकुमार उपस्थित होकर निवेदन करने लगा कि स्वामिन् ! आपकी आज्ञानुसार जलभरित खाई का निर्माण हो गया है। आपको उस बातकी सूचना देनेके लिये मैं सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। भरतेश्वर उसके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए और

इस कार्यको करनेके लिये जिन्होंने योग दिया उन सब व्यन्तरेन्द्रोंका और जयकुमारका बहुतसे वस्त्र, आभूषणोंसे सन्मान किया। दूसरे दिन सम्राट्ने मंत्री और सेनापतिको अपनी महलमें बुलाया और वज्र-कपाटको तोड़नेके सम्बन्धमें वार्तालाप करते हुए कहा कि मंत्री ! सेना-पति ! सुनो, विजयार्ध पर्वतमें जो वज्रकपाट है उसे मैं कल ही खंड कर देता हूं। उस वज्रकपाटको तोड़ना कोई बड़ी बात नहीं और न इसका मुझे सचमुचमें आवश्यकता ही थी। फिर भी पूर्वोपार्जित कर्मको कौन उल्लंघन कर सकता है ? उसके फलको तो भोगना ही पड़ेगा। मेरा जन्म अयोध्यामें हो और सब राज्योंपर आधिपत्यको जमाकर मैं इस पर्वतको पारकर उधरके राज्योंको भी वश करूं यह मेरे विधिका आदेश है। उसका पालन करना तो मेरा कर्तव्य है। किसी कार्यमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। परमात्माकी भावना करते हुए हम प्रत्येक कार्य करते हैं। ऐसी अवस्थामें निराश होनेकी जरूरत नहीं है। इस प्रकार भरतेश्वरने कहा।

स्वामिन् ! परमात्माके स्मरणसे आप कर्मपर्वतको फोड़ सकते हैं। फिर इस मामूली पर्वतको तोड़नेमें आपको क्या कठिनता है। सब कुछ साध्य हो जायगा। इसमें हमें किसी प्रकारभी संदेह नहीं है। स्वामिन्। जो वज्रकपाट हाथी सिंहोंके समान भयंकर, आकाशके समान उन्नत है, उसको फोड़नेमें सफलता आपको ही हो सकती है। दूसरे लोग उसके पास भी नहीं जा सकते। इत्यादि प्रकारसे कहते हुए सेनापति व मंत्रीने भरतेश्वरकी प्रशंसा की।

उन दोनोंका सत्कार कर भरतेश्वरने उनको वहांसे अपने-अपने स्थानमें जानेके लिए कहा। फिर दसवें दिन प्रातःकाल भरतेश्वरने जिनेन्द्र भगवान्की पूजाकी, विजयार्धकी तरफ जानेके लिये निकले। वीरोचित वस्त्र व आभूषणोंसे अलंकृत होकर बाहर आये, वहांपर पवनंजय नामक घोड़ेको पहिलेसे श्रृंगार कर रखा था। वह अश्वरत्न है। उसपर भरतेश आरूढ हुए। उस समय भरतेश्वर उस सुन्दर अश्व पर चढ़कर उच्चैश्रव घोड़ेपर चढ़े हुए इन्द्रके समान मालूम हो रहे थे। कविगण वर्णन करते हैं कि सूर्य सात घोड़ोंपर आरूढ़ होता है। परन्तु तेजमें भरतेश्वर भी सूर्यसे कम नहीं हैं। यह सूर्य उन सात घोड़ों में से एक ही घोड़ेको लेकर आरूढ़ हुआ है। इस प्रकार देखनेवालोंके मनमें कल्पना होती है। भरतेश्वरने अपने यज्ञोपवीतको सम्हालते हुए श्री सर्वज्ञ भगवन्तका स्मरण किया। तदनन्तर दाहिने हाथको दबाकर

घोड़ेको चलनेके लिये इशारा किया, घोड़ा आगे बढ़ा। भरतेश्वरने सेनाकी ओर उस घोड़ेको चलाते हुए लय, धारा, गति, जव, भ्रामक नामक पाँच प्रकारकी चालोंसे अश्वविद्याका प्रदर्शन किया। अनेक तरह से घोड़ा अपनी चालको बदल रहा है। 'एक-एक दफे तो वह कितने ही योजनोंतक छलांग मारे परन्तु भरतेश्वर बराबर अचलरूप-से बैठे हुए हैं। घोड़ा अब सेना स्थानको छोड़कर पर्वतकी ओर चला गया, अब सेनापति व सेना सब उसी स्थानमें रह गये। भरतेश्वरके साथमें जो नियत गणबद्ध देव मौजूद हैं, वे और मागधामर आदि व्यन्तर हैं वे रुक न सके। वे साथमें ही आ गये।

कुछ लोग ऐसा वर्णन करते हैं कि भरतेश्वरने जयकुमार जो सेना-पति रत्न है, उसे भेजकर उसके हाथसे वज्रकपाटका विस्फोटन कराया। परन्तु यह ठीक नहीं है। चक्रवर्तियोंकी अश्वरत्न, गजरत्न आदि स्त्रीरत्नके समान है, उन रत्नोंका उपभोग वे स्वतः ही कर सकते हैं। रत्न चक्रवर्तीको छोड़कर अन्य सामान्य लोगोंको अपनी पीठ दे नहीं सकते। क्योंकि राजाके खड़ाऊँ, सिंहासन आदि उसके सेवकके भोगके लिये योग्य नहीं है।

भरतेश्वरने कुछ दूर चलनेके बाद दूरसे ही उस वज्रकपाटको देख लिया। वह पर्वत लम्बाईमें पच्चीस कोस प्रमाण है। उसमें आठ कोस ऊँचाई व बारह कोस चौड़ाईके प्रमाणमें व्यवस्थित वह वज्रकपाट है। अंदरसे क्रोधाग्निको धारण कर बाहरसे शांत दिखनेवाले क्षुद्रोंके समान वह पर्वत मालूम हो रहा था। भरतेश्वरने मागध, वरतनु, प्रभासांकको बुलाकर कहा कि देखो! यही तमिस्र नामक गुफा है। यही वज्रद्वार है। यह कैसे मालूम होता है देखो तो सही। जैसे कोई क्रोधी दंतकीलन कर बैठा हो इस प्रकार यह भी दिख रहा है। अब इसके दांतोंको तोड़कर मुंह खुलवा देता हूँ। देखो तो सही, इस प्रकार भरतेश्वरने हँसते हुए कहा। लोकमें ओसका समूह बच्चोंको पर्वतके समान मालूम होता है, उससे वे डरते हैं। परंतु मेरे लिये यह वज्रद्वार भी कोई बड़ी चीज नहीं, अभी देखते-देखते तोड़ डालूंगा। स्वामिन्! उन व्यंतरेंद्रोंने कहा कि लोकमें अमावस्याके अंधकारको दूर करनेके लिये सूर्य समर्थ है, मामूली दीपकोंमें वह सामर्थ्य कहाँ? इसी प्रकार यह कार्य लोकमें अन्य सर्व वीरोंके लिये अतिसाहसका है, परंतु आपके लिये तो अत्यंत सहज है।

भरतेश्वरने उन व्यंतरेंद्रोंको इशारा किया कि अब आप लोग उस जल खाईकी उस ओर चले जावें और स्वयं दण्डरत्नको वीरताके साथ सम्हालने लगे। उसके बाद सम्राट्ने पट्पद्य दन्गतअक्षरोंको देखकर भगवान् आदिनाथके चरणकमलोंका स्मरण किया। तदनंतर अपने निर्मल चित्तमें परमात्माका ध्यान किया। अपने बांयें हाथसे घोड़ेके लगामको वे लिये हुए हैं, दाहिने हाथसे दण्डको धारण किया है, अब उस वज्रकपाटको तोड़नेके लिये सन्नद्ध हुए। दण्डायुधको हाथमें लेकर उस वज्रकपाटपर जोरसे प्रहार किया। फालीं ईंटके समान वह दो टुकड़ोंमें विभक्त हुआ, उस समय कांसेके पर्वत टूटनेके समान सिद्ध हुआ, वह घोड़ा बिजलीके समान वहांसे दौड़ा। मेघ और वज्रमें अंतर नहीं है। यहाँ तो वज्रदण्डसे वज्रकपाटका संघट्टन हुआ है। मेघके टक्करमें जिसप्रकार भयंकर आवाज होती है इसी प्रकार दोनों वज्रोंके संघट्टनमें शब्द होने लगा। विशेष क्या? भरतेश्वरके वज्रप्रहार व उस वज्रकपाटका विभाग होते समय विजयार्ध पर्वत ही हिलने लगा। भूकंप होने लगा। समुद्र एकदम उमड़कर आने लगा। भरतेश्वरने एक निमिष मात्रमें वज्रद्वारको टुकड़ाकर रख दिया। वह कोई सामान्य नहीं था, फिर भी भरतेश्वरने उसे लीलामात्रसे तोड़ ही दिया। भरतेश्वरकी सेनाको पर्वत पार करनेके लिये वह द्वार प्रतिबंधरूप था, इसलिये भरतेश्वरने उसे तोड़ दिया। जब बड़ेसे बड़े वज्रकपाटको इस प्रकार एक ही प्रहारसे तोड़ते हैं तो फिर उनके सामने शत्रुगण किस प्रकार टिक सकते हैं? उनको दो चार मार पड़ने तक क्या वे उसे सहन कर सकेंगे? कभी नहीं। भरतेश्वरकी वीरता असाधारण है, अजेय है, उसकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकते।

उस गुफासे प्रलयकालकी ही अग्नि निकलकर आई। किसी पानीके द्वारको खोलनेपर जिसप्रकार पानी एकदम निकल आता हो उसी प्रकार उस गुफासे अग्नि निकलकर बाहर आई। वज्रकपाट दुर्र आवाजके साथ खुला, उस समय अग्नि बुस्स, बुर्र आवाज करती हुई प्रज्ज्वलित हुई। घोड़ा सुर्र आवाज करते हुए पलायन कर गया। अग्नि सर्वत्र व्याप्त हो गई, वर्षोंसे उस विजयार्ध गुफामें आवृत अग्निने बाहर निकलकर प्रचण्डरूपको धारण किया। सर्वत्र हाहाकार मच गया, पर्वत अग्निमय बन गया है, बड़े बड़े वृक्ष भस्म हो गये। विद्याधर लोग इस प्रलयकालकी अग्निको देखकर घबराये। विजयार्धदेव भर-

तेश्वरकी वीरतापर मुग्ध हुआ। दण्डायुधका प्रहार उस कपाटपर जिस समय किया उस समय एकदम भूकंप हो गया था। सब लोग बिजलीके पड़ने से जिस प्रकार घबराते हैं उसी प्रकार घबराने लग गये। मागधेंद्रादि वीर व्यंतर भी घबरागये! ऐसा समुद्रमें भयंकर कोलाहल मच गया है। परंतु भरतेश्वरकी सामर्थ्य व धैर्य अतुल है। वे खाईके पास खड़े होकर बहुत आनंदके साथ उस शोभाको देख रहे हैं। उनके आसपास ही व्यंतरवीर खड़े हैं।

इतनेमें वहांपर एक उत्सव और हुआ। विजयार्धदेव भरतेश्वरकी वीरतासे अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह अपने परिवार देवताओंके साथ आकर आकाश प्रदेशमें खड़े होकर भरतेशके प्रति जयजयकार शब्द कर रहा है एवं भरतेश्वरके ऊपर उसने पुष्पवृष्टि की। इतना ही नहीं, भरतेश्वरको उस अग्निकी गर्मी लगी होगी, इस विचारसे गुलाबजल, कर्पूर, चन्दन आदि शीतल पदार्थोंकी वृष्टि भी की। किन्नर, किंपुरुष जातिके देव भरतेशकी वीरताके गीत गाने लगे। पासमें ही गन्धर्वगणिकायें आनन्दसे नृत्य करने लगीं। तदनन्तर वह विजयार्धदेव अनेक उत्तमोत्तम वस्त्र, आभरण, रत्न आदि उपहार द्रव्योंको साथमें लेकर परिवारसहित भरतेश्वरके दर्शन के लिये आया। अनेक उत्तम उपहारोंको भरतेश्वरके चरणमें समर्पण कर भरतेश्वरको बहुत भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया व निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोगोंकी दृष्टि आज सफल हो गई। साथमें विजयार्ध देवने अपने सब परिवारसे भरतेश्वरके चरणोंको नमस्कार कराया। भरतेश्वरने मागधामरकी ओर देखा। मागधने सम्राट्के अभिप्रायको समझकर निवेदन किया कि राजन्! यह विजयार्ध देव है। यह इस विजयार्ध पर्वतका अधिपति है। वह बहुत सज्जन है। आपकी सेवाके लिये सर्वथा योग्य है। उसके प्रति आपका अनुग्रह होना चाहिये। उस समय विजयार्धदेव कहने लगा कि मागधामर! लोकमें मोक्षमार्गी व तद्भवमोक्षगामी स्वामीको प्रसन्न करनेका भाग्य सबको नहीं मिला करता है। सचमुचमें तुम हम कृतार्थ हुए कि ऐसे स्वामीको प्रसन्न किया। मागधामरने भरतेश्वरसे निवेदन किया कि स्वामिन्! अब इस विजयार्धदेवको अपने राज्यमें जानेके लिये आज्ञा दी जाय और अपन जिस समय उत्तर खण्डकी ओर प्रयाण करेंगे उस समय यह आ सकता है। भरतेश्वरने भी उसे पास बुलाकर उसे अनेक प्रकारके भेंट दिये। विजयार्धदेवने भी स्वामीकी आज्ञा पाकर उसे बहुत भक्तिसे नमस्कार कर अपने परिवार सहित

प्रस्थान किया। विजयार्ध देवके जानेके बाद उस तमिस्र गुफाके अधिपति कृतमाल नामक व्यन्तर देव आया। उसने भी अनेक रत्ननिर्मित उपहारोंको समर्पणकर भरतेश्वरके चरणोंको साष्टांग नमस्कार किया। मागधामरने कृतमालदेवका परिचय कराया कि स्वामिन्! यह अपने बन्धु कृतमाल देव हैं। जिस तमिस्र गुफाके वज्रकपाटको आपने अभी तोड़ा है उसी गुफाका यह अधिपति है। वह विनीत भावसे आपकी सेवा के लिये उपस्थित हुआ है। चाहे उसे फिलहाल अपने स्थानकी ओर जाने के लिये आज्ञा दी जाय, आगे सेनाप्रस्थानके समय आवे तो काम चल सकता है। भरतेश्वरने भी योग्य सत्कारके साथ उस कृतमालको रवाना किया।

भरतेश्वरने अब सेनास्थानमें जानेके लिये अपने घोड़ेको फिराया। सेनाकी ओर जाते समय भरतेश्वर ऐसे मालूम हो रहे थे कि जैसे कोई देवेन्द्र ही स्वर्गसे उतरकर आ रहा हो। एक निमिषमात्रमें वह अश्वरत्न भरतेश्वरको इच्छित स्थान पर लाया। सेनास्थानमें प्रवेश करते ही सेनाके आनन्दका पारावार नहीं रहा। राजा सुखी होनेपर राज्य भी सुखी है यह कहावत उस समय चरितार्थ हो रही थी। भरतेश्वर भी प्रजाओंके आनन्दको देखते हुए बढ़ रहे हैं। सामनेसे अर्ककीर्ति, आदिराज व वृषभराज अनेक भेंट अपने हाथमें लेकर पितृ-दर्शनके लिये आ रहे हैं। बहुत भक्तिसे भरतेश्वरको उन्होंने नमस्कार किया। भरतेश्वरने तीनों कुमारोंको एक-एक घोड़ेपर चढ़कर अपने साथ हो लेनेके लिये कहा। तीनों कुमार भी अश्वारोही होकर भरतेश्वरके साथ जाने लगे।

मंत्री, सेनापति, राजगण, राजकुमार वगैरह अगणित संख्यामें भरतेश्वरको मार्गमें नमस्कार कर रहे हैं। स्तुतिपाठक अनेक प्रकारसे भरतेश्वरकी स्तुति कर रहे हैं। कविगण अनेक रचनासे उनका वर्णन कर रहे हैं। इन सब आनन्दोंको देखते हुए भरतेश्वर अपने महलकी ओर आ रहे हैं। महलके बाहरके दरवाजेके पास अश्वरत्नको खड़ा कर दिया। वहींपर स्वयं उतर गये, अपने साथके व्यन्तर आदिकोंको अपने अपने स्थानमें जानेके लिये कहकर एवं अश्वरत्नको उसकी थकावटको दूर करनेके लिये योग्य सत्कार-उपचार करनेके लिये आज्ञा देते हुए स्वयं महलमें प्रविष्ट हो गये।

महलमें रानियोंके आनन्दका क्या वर्णन करें? वहांपर सन्तोष सागर ही उमड़कर आ रहा है। आज पतिराज एक बड़े भारी लोक-

विख्यात् कार्यमें सफलता पाकर आ रहे हैं। ऐसी अवस्थामें उनको आनंद होना साहजिक है। वे सब मिलकर भरतेश्वरके स्वागतके लिए आ रही हैं। उनके हाथमें मंगल आरती है। भरतेश्वरके चरणोंमें भक्तिसे नमस्कारकर भरतेश्वरकी उन रानियोंने आरती उतारी। इतनेमें हंसके बच्चेके समान सुन्दर हंसराज आदि पांच पुत्रोंने आकर भरतेश्वरके चरणोंमें नमस्कार किया। उस समय भरतेश्वरको कितना आनंद हुआ होगा। इस प्रकार सर्वत्र आनंद ही आनंद हो रहा है। राजमहल उस समय आनंदध्वनिसे गूंज रहा है। भरतेश्वरने स्नान, देवार्चन, भोजन आदि नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर उस दिन महलमें अपने कपाटविस्फोटनकी लीला-वृत्तांतको अपनी प्रियस्त्रियोंको कहते हुए अपना समय बहुत आनंदके साथ व्यतीत किया।

भरतेश्वरका पुण्य अतुल है। जहां जाते हैं वहींपर उन्हें सफलता मिलती है। विजयार्ध पर्वतपर स्थित वज्रकपाट जो कि सर्व साधारणके द्वारा उद्घाटनीय नहीं है, उसे भी भरतेश्वरने क्षणमात्रमें फोड़कर रख दिया, यह किस बातकी सामर्थ्य है। उनकी आत्मभावनाका फल है। वे प्रतिनित्य भावना करते हैं कि:-

हे सिद्धात्मन्! आप ध्यानरूपी दण्डरत्नसे कठोर कर्मरूपी वज्र-कपाटको तोड़नेवाले धीरोदत्त हैं। इसलिए हे स्वामिन्! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके दुःखको दूर करनेवाले हैं। इसलिए हमें सन्मति दीजियेगा।

हे परमात्मन्! मिथ्यात्वरूपी कपाटको फोड़कर उत्तुंग धैर्यके साथ मोक्षकी ओर जानेवाले आप चित्तसंधानी हैं। आप मेरी संपत्ति हैं। इसलिए मेरे हृदयमें बने रहें।

इसी प्रकारकी शुभभावनासे ही भरतेश्वरको सर्व अतिबल महा-बलापेक्ष कार्योंमें भी सफलता मिलती है।

इति कपाटविस्फोटन संधि

—०—

कुमारविनोद संधि

दूसरे दिन सम्राट्ने जयकुमार व उसके भाईको महलमें बुलाकर उनको कुछ काम सौंप दिया। जयकुमार! अग्निका वेग कम होनेके लिये करीब करीब छह महीनेकी अवधि लगेगी। इसलिये तबतक सेना-

को यहींपर मुक्काम करना पड़ेगा। आगे अपन लोग जा नहीं सकते। इसलिये तबतक आप लोग इधरके दो म्लेच्छ खंडोंके अधिपतियोंको वशमें कर आवें। पूर्वखंडके लिये तुम जाओ और पश्चिम खंडके लिये अपने भाई विजयांकको भेजो। इधर सेनाकी देखरेख तुम्हारे भाई जयंतांक करता रहेगा। आप लोगोंको जितनी सेनाकी जरूरत हो ले जावें। गंगानदीको सोपानमार्गसे पारकर जाना और सिंधुनदीके सोपान-में अभी अग्नि व्याप्त हो गई है। इसलिये सिंधुनदीको चर्मरत्नकी सहायतासे पार कर आगे जाना चाहिए। इस प्रकार उनको सब उपायों को बतलाकर दोनोंको विदा किया व सम्राट् बहुत आनंदके साथ समय व्यतीत करने लगे।

इधर विजयार्ध पर्वतमें गगनवल्लभपुरके अधिपति नमिराज चक्र-वर्तीकी वीरताको सुनकर अत्यंत चिंताक्रांत हुआ। रथनूपुरचक्रवाल-पुरके अधिपति विनमिराजको चक्रवर्तीकी वीरता व अग्निके वेगको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अत्यंत प्रसन्नताके साथ गगनवल्लभपुरमें अपने भाई नमिके पास चला गया। नमिराज चिंताक्रांत होकर मौनसे बैठा हुआ है। कोई गूढ विचार करनेके लिये उसने अपने मंत्रीको बुलाया है। उसीकी प्रतीक्षामें वह बैठा है। वहींपर विनमिराजने जाकर बहुत प्रसन्नताके साथ भाईको नमस्कार किया व कहने लगा कि भाई! जिस वज्रकपाटके बारेमें अपने लोगोंने बड़ी ख्याति सुनी है, उसे एक क्षणमात्रमें भावजी भरतेश्वरने टुकड़ा कर दिया। आकाशमें प्रलयकाल की अग्नि व्याप्त हो गई। जिस वेगसे भावाजीने दण्डरत्नका कपाटपर प्रहार किया उससे एकदम पर्वत कंपायमान हुआ, जिससे हमारे साथके राजा झूलेके बच्चोंके समान सिंहासनसे नीचे गिर गये। आकाशमें व्याप्त अग्नि मेघपंक्तिको जला रही है। देव भी आकाशमें भ्रमण करनेके लिये असमर्थ हो गये हैं। विजयार्ध देवने भरतेशकी भक्तिसे पूजा की है। भरतेशकी बराबरी कौन कर सकते हैं।

विनमिके वचनोंको सुनकर नमिराजको हँसी आई। तिरस्कार युक्त हँसी हँसकर विनमिको बैठनेके लिये कहा। परन्तु उसके चेहरेसे संतोष का चिह्न टपक नहीं रहा था। इतनेमें नमिराजाका मंत्री भी वहाँपर आ गया। विनमिराजको सन्देह उत्पन्न हुआ। कहने लगा कि भाई! सन्तोषके समय इस प्रकार संक्लेश क्यों? भावाजी भरतेश्वरको जो विजय हुई है वह हमारी ही तो है। उनकी जो सम्पत्ति है वह अपनी ही समझनी चाहिये। ऐसे समयमें चिन्ता करनेकी क्या जरूरत

है ? विनमिके इस प्रकारके वचनको सुनकर नमिराज कहने लगा कि विनमि ! अभी तुम्हें राजांगका ज्ञान नहीं है। इसलिये इस विषयमें अब अधिक मत बोलो। भावजीके पौरुषपर तुम प्रसन्न हुए। परन्तु अपने लिये वह अब भावजी नहीं हैं। यह षट्खण्डाधिपति होने जा रहा है। षट्खण्डके राजाओंको अपने आधीन बनानेके लिये उसकी तीव्र अभिलाषा हो रही है। अब अपन भी उसके सेवक कहलायेंगे। भाई ! अपन लोग अभीतक उसके साथ बैठकर सरसविनोद कर सकते थे। तू मैं की बात हो सकती थी। परन्तु अब उसके साथ बोलनेके लिये, उसका दर्शन करनेके लिये भेंट लेकर जाना पड़ेगा। 'आप' शब्द-का प्रयोग कर बहुत विनयसे बोलना पड़ेगा। सम्पत्ति व वैभवमें समानता हो तो बन्धुत्वका भी ख्याल रहता है। जब उसकी सम्पत्ति बढ़ गई ऐसी अवस्थामें वह अपने साथ बन्धुत्वका स्मरण नहीं रख सकता है। सेवकोंको बुलानेके समान अपनेको भी अरे, तुरे शब्दका प्रयोग कर वह सम्बोधन करेगा। बाल्यकालसे लेकर अपन उसके साथ खेल चुके हैं। उसका स्वभाव, गुण, चाल वगैरह सब अपनको मालूम ही है। उसके समानकी वृत्ति लोकमें किसीभी पुरुषमें पाई नहीं जा सकती। याद करो ! अपन गेंद खेलते थे, उसमें भी उसी की जीत होती थी। पढ़नेमें भी वही आगे रहता था। जो काम करनेको ठानता था उसे पूरा किये विना नहीं छोड़ता था। देखो तो सही ! आज भी वह षट्खण्ड विजयके लिये निकला है, उसे हस्तगत किये विना वह छोड़ नहीं सकता है। मुझे उसकी आदतोंका अच्छी तरह स्मरण है कि कभी खेलमें वह जीतता था, तो जीतनेके बाद चुपचापके वहाँसे निकल जाता था। परन्तु हम लोग जीतते थे तो हमें वहाँसे जाने नहीं देता था, फिर खेल खिलाकर अच्छी तरह हराकर भेजता था। भरतेशकी जीत होती है तो साथके लड़के सब आनन्दके साथ चिल्लाते थे। हमारी जीतमें वे लड़के चुपचाप खड़े रहते थे। भाई ! विचार करो, भुजबलि वृषभसेनादिके साथ खेलकर अपन गज (हाथी) के समान लौटते थे। परन्तु इसके साथ खेलनेके बाद अज (बकरी) के समान आना पड़ता था। ऐसा होनेपर भी अभीतक और ही बात थी। परन्तु अब सम्पत्ति, वैभव, पराक्रम, अधिकार वगैरह सभी बातोंमें उसकी वृद्धि हो गई है। इसलिये अब वह किसीकी भी परवाह नहीं कर सकता है, इसे अच्छी तरह विचार करो।

विनमिराज सभी बातोंको बहुत ध्यानसे सुन रहा था। कहने

लगा कि भाई ! ठीक है। अब क्या करें ? लोकमें सब कुछ पुण्यके उदयसे होते हैं। आज भरतेश्वरको भी यह सब पुण्यके तेजसे प्राप्त हुए हैं, उसे कौन इन्कार कर सकता है। कोई हर्जकी बात नहीं। भरतेश कौन है ? वह हमारा भावजी ही तो है। उसके लिये जो वैभव है वह हमारे लिये है, ऐसा समझकर अपन चलें। वह अपने पिताकी सहोदरीका पुत्र है। ऐसी अवस्थामें उसके साथ ईर्ष्या करनेसे क्या प्रयोजन ? नमिराजने कहा कि भाई ! वैसी बात नहीं है। मार्ग छोड़कर उसकी सेवा वृत्तिको ग्रहण करनेके लिये क्या अपन क्षत्रियपुत्र नहीं हैं ? अब अपन उसके पास जायेंगे तो पहिलेके समान उठकर खड़ा नहीं होगा। हाथ नहीं जोड़ेगा। क्या यह अपना तिरस्कार नहीं है ? अपन दोनों राजा हैं। परन्तु वह अपनेको राजाके नामसे नहीं कहेगा। बड़े अभिमानके साथ तुम, तू करके बुलायेगा। व्यन्तरगण, देवगण आदि अपनेको भरतेश्वरके सेवकोंकी दृष्टिसे देखेंगे। जिन्होंने अपनी कन्याओंको उन्हें दी हैं वे यदि हाथ जोड़ें तो भी उनको वह हाथ नहीं जोड़ेगा। बाकी लोगोंकी बात ही क्या है। केवल दिखावट के लिये आप कहकर पुकारेगा। परन्तु उन कन्याओंके सहोदरोंके साथ तो वह भी व्यवहार नहीं होगा। फिर भी मूर्ख लोग इस भरतेश्वरको कन्यां देनेके लिये कबूल होंगे व उसमें आनन्द मानेंगे। साथमें इस वचनको कहते हुए नमिराज कुछ चिंताक्रांत दिखते थे। उन्होंने मंत्रीसे कहा कि मंत्री ! तुमने एक दफे यह कहा था कि बहिन सुभद्रादेवीका पाणिग्रहण भरतेशके साथ कराया जाय तो ठीक होगा, उस बातको अब भूल जाओ। मेरी इच्छा अब बिल्कुल नहीं है। इसके लिए अब क्या उपाय करना चाहिये। बोलो ! यदि उसे मालूम हो जाय कि सुभद्रादेवी सुन्दरी है, वह जरूर उसे मांगेगा। परन्तु अब देना उचित नहीं है।

भाई ! मैं आकर उसका दर्शन नहीं करना चाहता। आप लोग जावें और उससे कहें कि नमिराज किसी एक विद्याको सिद्ध कर रहे हैं, इसलिये वे नहीं आ सके। साथमें दक्षिणभागसे विद्याधर राजाओंकी सुन्दरी कन्याओंको ले जाकर उनके साथ विवाह कर देवें। बहिन सुभद्रादेवीको उसे समर्पण करनेका अब मेरा विचार नहीं है। फिर भी हमारे खजानेसे जो कुछ भी उत्तम वस्तु आप लोग समझें उसे लेजाकर समर्पण करें। अब उत्तर भागकी तरफ वह आयेगा हम उसके विषयमें

विचार करेंगे, इत्यादि प्रकारसे समझाकर मंत्री व निमिको नमिराजने भेज दिया।

इधर चक्रवर्तीकी सेनामें एक विनोदपूर्ण घटना हुई। चक्रवर्ती कुमार वृषभराज अपने कुछ साथियोंको लेकर अश्वारोही होकर बाहर निकला। जाते समय उसने किसीको भी समाचार नहीं दिया। उसे न मालूम क्यों आज घोड़ेपर सवार होकर कुछ विनोद करनेका विचार उत्पन्न हुआ। जाते समय मार्गमें अनेक राजा-महाराजा उसे मिले। सम्राट्पुत्रको देखकर उन लोगोंने बहुत विनयके साथ वृषभराजको नमस्कार किया और साथमें आने लगे। वृषभराजने उनको नगरमें जानेके लिये इशारा किया। आगे बढ़ने पर दक्षिण व नागर मिले। उन लोगोंने नमस्कार कर प्रार्थना की कि कुमार! आज तुम अपने अपने भाइयोंको छोड़कर इस प्रकार अकेले क्यों आते हो? हमारे साथ वापिस चलो। नहीं तो हम जाकर स्वामीसे कहते हैं। तब वृषभराज-को बहुत संकोच हुआ। तथापि बड़ी दीनतासे कहने लगा कि राजन्! माफ करो, मुझे आज बाहर टहलनेके लिये जानेकी इच्छा हुई है। इसलिये मैं जाऊँगा ही। तुम लोग पिताजीको जाकर यह समाचार नहीं देना। यदि तुम्हें कुछ चाहिये तो मुझसे लो। इस प्रकार कहकर हाथके सुवर्ण कंकणको हाथ लगाने लगा। इतनेमें दक्षिण व नागर समझ गये कि इसे आज बाहर टहलनेकी बड़ी इच्छा हुई है। उन्होंने प्रकटमें कहा कि अच्छा तुम जाओ, हम नहीं कहेंगे। तुम्हारे कंकण-की हमें जरूरत नहीं। उसे हाथ मत लगाओ। यह कहकर वे दोनों आगे बढ़े। कुमार भी आगे गया। दक्षिण व नागरने विचार किया कि अगम जाकर चक्रवर्तीको समाचार देंगे एवं कुमारकी रक्षा के लिये कुछ सेना भेज देंगे।

इधर आदिराजको महलमें मालूम हुआ कि वृषभराज आज बाहर अकेला ही टहलने गया है। उसी समय सेवकको घोड़ा लानेके लिये आज्ञा दी और स्वतः अर्ककीर्तिको निम्नलिखित प्रकार पत्र लिखा—

श्रीमन्महाराजाधिराज आदिचक्रवर्तीके आदिपुत्र आदरणीय मूर्ति अर्ककीर्तिकी चरणोंमें! पादसेवक आदिराजका विनयपूर्वक साष्टांग-नमस्कारपूर्वक विनंतिविशेष:—स्वामिन्!

आज भाई वृषभराज अपने कुछ सेवकोंके साथ अकेला ही बाहर टहलनेके लिये गया है। इसलिये मैं जाकर उसको ले आऊँगा। आप कोई चिन्ता न करें, आप महलमें स्वस्थ रहें। आपका सेवक

आदिराज

उपर्युक्त पत्रको अर्ककीर्तिके पास भेजकर आदिराज अश्वारोही होकर चला गया। अर्ककीर्तिसे भी पत्र बाँचकर वहाँ रहा नहीं गया। वह भी उसी समय अश्वारोही होकर वहाँसे चला गया। इधर दक्षिण व नागरने आकर सर्व समाचार सम्राट्से कहा। तब सम्राट्ने भी पुत्रकी रक्षाके लिये अनेक सेना व विश्वस्त राजाओंको भेज दिया। वृषभराज बहुत उत्साहके साथ सेनास्थानको छोड़कर आगे बढ़ा। वहाँ जाकर एक विस्तृत प्रदेशमें अश्वारोहणकलाके अनुभव करनेके लिए प्रारंभ करने ही वाला था, इतनेमें आदिराजको आते हुए देखा। आदिराजको देखकर वृषभराज घोड़ेसे नीचे उतरकर भाईके पास आया और हाथ जोड़कर कहने लगा कि स्वामिन्! आपका यहाँपर आगमन क्यों हुआ? मुझे तो घोड़ेपर सवारी करनेकी इच्छा हुई, इसलिये मैं आया। इतनेमें अर्ककीर्तिकुमार भी आया। अर्ककीर्तिको देखकर दोनोंने नमस्कार किया। अर्ककीर्तिने दोनों भाइयोंको घोड़ेपर चढ़नेके लिये आदेश दिया, साथमें अश्वारोहण-कलाको देखनेकी इच्छा प्रकट की। इतनेमें सम्राट्के द्वारा प्रेषित सेना, राजा वगैरह आ उपस्थित हुए, देखते देखते वहाँपर हजारों लोग इकट्ठे हुए। अर्ककीर्तिने भाई वृषभराजसे कहा कि भाई! आज हम लोग अश्वारोहणकलाको देखना चाहते हैं। कुछ कमाल कर बताओ। तब वृषभराजने अपनी लघुताको व्यक्त करते हुए कहा कि स्वामिन्! मैं आपके सामने क्या कलाप्रदर्शन कर सकता हूँ। मैं डरता हूँ। अर्ककीर्तिने "डरनेकी कोई जरूरत नहीं है, हमें देखनेकी इच्छा हुई है।" इत्यादि शब्दोंसे उसके संकोचको हटाया। बादमें वृषभराजने घोड़ेपर सवार होकर उस कलामें उसने जो नैपुण्य प्राप्त किया था उसका प्रदर्शन किया। उस समय उसका घोड़ा प्रतिदिशामें वायु-वेगसे जाने लगा था। घोड़ेकी अनेक प्रकारकी चाल, लगामका परि-वर्तन, अनेक प्रकारका गमन इत्यादि बहुत प्रकारसे अपनी विद्याका दिग्दर्शन कराया। आकाशमें नीबूको रखकर तीव्रगतिसे जाते हुए अश्वसे ही उस नीबूपर ठीक बाण चलाना आदि अनेक प्रकारसे दूस-रोंको आश्चर्यान्वित किया। आदिराज व अर्ककीर्तिको भी महान् संतोष हुआ। अर्ककीर्तिने लीला बंद करनेके लिए इशारा किया। इतनेमें वृषभराज घोड़ेसे उतर कर भाईके पास आया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा। अर्ककीर्तिने प्रसन्न होकर कहा कि वृषभराज! तुम्हारी विद्याको देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ मुझे आज मालूम हुआ कि तुम अश्वा-

रोहणकलामें इतना प्रवीण हुए हो। इतना कहकर दोनों भाइयोंने अपने कंठके दोनों हारोंको निकालकर वृषभराजको पहना दिया। वृषभराजने भी दोनोंको बहुत भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। अर्ककीर्तिने आशीर्वाद देते हुए कहा कि अब खेल बंद करो, अब महलकी तरफ चलो। तीनों भाई अश्वारोही होकर परिवार सहित महलकी ओर चले। इधर महलमें भरतेश्वर भोजनका समय होनेपर भी भोजन न करके पुत्रोंकी प्रतीक्षामें बैठे रहे। उधरसे तीनों कुमार अनेक वाद्यध्वनिके साथ सेनाकी तरफ आ रहे हैं। भरतेश्वरकी आज्ञासे उनके स्वागतके लिये इधरसे भी बहुतसे राजा-महाराजा गये हैं। अनेक स्त्रियाँ आरती आदि मंगलद्रव्य लेकर स्वागतके लिये गईं। कितनी ही वेश्यायें कुमारोंको दरबारके समान ही नमस्कार करने लगीं। तीनों कुमारोंने उनके तरफ उपेक्षितदृष्टिसे दृष्टिपात किया। क्योंकि उनको बाल्यकालमें ही पर-दारसहोदर, गणिकापगतचेति, विरत इत्यादि नामोंसे लोग उल्लेख करते थे। भरतेश्वरको मालूम हुआ कि तीनों पुत्र क्रमशः अर्थात् सबसे आगे अर्ककीर्ति उसके पीछे आदिराज व बादमें वृषभराज इस प्रकार आ रहे हैं। उन्होंने उसी समय एक सेवकको बुलाकर उसके कानमें कुछ कहा। वह उसी समय उस जुलूसमें गया व भरतेश्वरकी इच्छाको वहाँ प्रकट न करके स्वतःही वृषभराज व आदिराजके घोड़ेको दाहिने ओर बाँयें तरफ करके और अर्ककीर्तिके घोड़ेको बीचमें किया। अनेक स्थानोंमें उनपर लोग चामर ढोल रहे हैं। कितने ही स्थानोंमें आरती उतार रहे हैं। इस प्रकार बहुत ही आदरको प्राप्त करते हुए वे तीनों कुमार बहुत समारंभके साथ राजभवन की ओर आ रहे हैं। सेनाके हर्षमय शब्दोंको सुनकर महलकी माड़ियोंपर चढ़कर रानियाँ अपने पुत्रोंके आगमनको देखने लगीं व मन-मनमें बहुत ही हर्षित होने लगीं।

इस प्रकार अतुलसंभ्रमके साथ आकर तीनों पुत्र महलके सामने घोड़ेसे उतरे और अंदर जाकर पिताजीके चरणोंमें मस्तक रखा। भर-तेश्वरने भी तीनों कुमारोंको आलिंगन देकर आशीर्वाद दिया। अर्क-कीर्तिसे कहा कि बेटा! क्या तुम भी इनके साथ लीलाविनोदके लिये गये थे? अर्ककीर्तिने बहुत विनयके साथ कहा कि स्वामिन्! मैं आपसे क्या कहूँ? वृषभराजने अश्वारोहणकलामें कमाल ही किया है। उसने उस कलाके अनेक प्रकारको जो दिखाया उसे देखकर हम सब आश्चर्य-चकित हुए। स्वामिन्! उसकी लीलाको देखनेके लिये श्रीचरण ही

समर्थ है। इसलिए आज उसे बंद करके मैं लाया हूँ। इस प्रकार अर्ककीर्तिने भाईकी प्रशंसा की। साथमें आये हुए राजाओंने भी अर्ककीर्तिके वचनका समर्थन किया। भरतेश्वर भी मनमें प्रसन्न होकर मौनसे अपने पुत्रकी प्रशंसा सुन रहे थे। फिर वृषभराजसे कहने लगे कि पुत्र ! अश्वारोहणकलामें इस प्रकार नैपुण्यको प्राप्त करनेपर भी उस दिन वज्रकपाटको फोड़ते समय तुम चुप क्यों रहे ? मुझसे भी पहिले जाकर तुमको ही उसे फोड़ना चाहिये था, इसे सुनकर वृषभराज हँसा। सबको योग्य सन्मानके साथ भेजकर सम्राट् अपने पुत्रोंको लेकर महलमें प्रवेश कर गये। वहाँपर तीनों कुमारोंको बैठा कर स्त्रियोंसे फिरसे आरती उतरवाई और उसे स्वतः प्रसन्न होकर देखने लगे। स्त्रियाँ अनेक मंगलपद गाने लगीं। साथ ही राजाने कुंतलावती, चंद्रिका देवी, कुसुमाजी आदि अपनी रानियोंको बुलवाकर सुपुत्रोंके वृत्तांतको कहा। उन पुत्रोंने भी माताओंके चरणोंमें मस्तक रखा, भरतेश्वरने उन रानियोंसे विनोदके लिए कहा कि देवी ! क्या अपने पुत्रोंको तुम लोग योग्य शिक्षा नहीं देती हो ? वे स्वेच्छाचार वर्तन करते हैं। उन रानियोंने भी विनोदसे ही उत्तर दिया कि स्वामिन् ! आपको जब हमारी पूज्य सास शिक्षा देंगी तब हम भी अपने पुत्रोंको शिक्षा देंगी। आपके पुत्र तो आपके समान ही हैं।

इसके बाद भरतेश्वरने उन पुत्रोंके साथ एक पंक्तिमें बैठकर बहुत आनंदके साथमें भोजन किया। बादमें उन तीनों पुत्रोंको उनके महलमें भेजकर हमेशाके समान लीलाविनोदके साथ अपनी रानियोंके साथ भरतेश्वर पुत्रोंके गांभीर्य, चातुर्य आदिकी चर्चा करते हुए अपने महलमें रहे। भरतेश्वर सदा आनंदमग्न रहते हैं। उनको हर समय हर काममें सुखका ही अनुभव होता है, इसका कारण तो क्या है ? यह उनके पूर्वमें सतत परिश्रमसे अर्जित आत्मभावनाका फल है। उनकी सदा भावना रहती है कि—

"हे सिद्धात्मन् ! आप अनंतसुखी हैं। क्योंकि अपने नित्य समाधिभावनाके बलसे सच्चिदानंद अवस्थाको प्राप्त किया है। जहाँ पर सुख दुःखकी हीनाधिक कल्पना ही नहीं, वहाँपर अनंत सुख ही सुखविद्यमान है। इसलिए हे स्वामिन् ! मुझे भी परमसुखकी प्राप्तिके लिए उस प्रकारकी सुबुद्धि दीजिए"।

"हे परमात्मन्! आप उपमातीत हैं। आपकी महिमा अपार है। मुनिजनोंके द्वारा आप वंद्य हैं। निरंजन हैं, अनन्तसुखोंके पिंड है। इसलिए

आप और कहीं न जाकर मेरे हृदयमें ही विराजे रहें"। इस प्रकारकी आत्मभावनाका ही फल है कि भरतेश्वरके हृदयमें बिल्कुल आकुलताको स्थान नहीं, अतएव दुःखका लवलेश नहीं। हमेशा प्रत्येक कार्यमें वे सुखका ही अनुभव किया करते हैं। कारण कि आत्मभावना मनुष्यके हृदयमें अलौकिक निराकुलताका अनुभव कराती है। वह व्यक्ति कभी भी किसी भी हालतमें मार्गच्युत होकर व्यवहार नहीं करता है। उसे संसारकी समस्तवस्तुस्थितिका यथार्थ परिज्ञान है। स्त्रियोंमें, पुत्रोंमें, परिवारमें, वह मिलकर रहनेपर भी वह अपनेको नहीं भूलता है, यही कारण है कि उसे इस संसारमें एक विचित्र आनन्द आता है। श्री भरतेश्वरने भी इसीका अभ्यास किया है।

इति कुमारविनोद संधि

—:o:—

खेचरीविवाह संधि

सुमतिसागर मंत्रीके साथ विमानारूढ होकर विनमिराज अनेक गाजे-बाजे सहित भरतेश्वरकी सेनाकी ओर आ रहा है। सेनाके पासमें आनेपर स्वर्गके देवताओंके समान विमानसे नीचे उतरा और सेनाकी शोभा देखते हुए महलकी ओर चला। भरतेश्वरको पहिलेसे मालूम था कि विनमिराज आ रहा है। सो इस समाचारके ज्ञात होते ही बुद्धिसागर आदि मन्त्रियोंके साथ अनेक राज्यकारभारके विषयमें परामर्श करते हुए दरबारमें विराजमान हुये। विनमिराजको सूचना दी गई कि वह स्वयं पहिले आवे, साथके आये हुये विद्याधर राजा बादमें आवें। उसी प्रकार विनमिराजने सब विद्याधर राजाओंको महलसे बाहर ही खड़ा कर दिया और स्वयं दरबारमें गया। भरतचक्रवर्तीके देवनिर्मित दरबारकी शोभा व सौन्दर्यको देखकर विनमिराज दंग रहा। उस आश्चर्यके मारे वह अपनेको भी भूल गया। भरतचक्रवर्तीके लिये विनय करनेका भी उसे स्मरण नहीं रहा। केवल पासमें आकर एक रत्नको भेंट रखकर नमस्कार किया। इसी प्रकार सुमतिसागर मंत्रीने भी भेंट समर्पण कर साष्टांग नमस्कार किया। सम्राट्‌ने पासमें ही एक आसन दिलाया और उनको बैठनेके लिये इशारा किया। दोनोंने अपने-अपने आसनको अलंकृत किया। "विनमि! तुम कुशल तो हो न? और घर-

में सर्व परिवार आनंदसे हैं न ?" भरतेश्वरने विनमिसे प्रश्न किया।

"आपकी कृपासे मैं कुशल हूँ, नमिराज भी क्षेमपूर्वक है, घरमें सब आनन्द मंगलमय है।" भगवान् आदिनाथके पुत्र होकर आप भरतखण्डके राज्यको पालन करते हुए हम सब बन्धुजनवनको वसन्तके समान हैं। फिर हमें आनन्द क्यों नहीं होगा ? विनमिने हँसते हुए कहा। "भाई नमिराज भी यहाँ आ रहे थे। परन्तु आपके पधारनेके पहिले उन्होंने भ्रामरी नामक एक विद्या सिद्ध करनेके लिये प्रारम्भ किया है। इसलिये उनका प्रयाण स्थगित हुआ। वे मंत्रयोगमें लगे हुये हैं। उनको मैं समाचार देकर मंत्रीके साथ चला आया" इस प्रकार विनमिने तंत्रके साथ कहा। भरतेश्वर मन-मनमें इस तन्त्रको समझकर भी मौनसे रहे। पुनः विनमिराज बोला। "आपके गम्भीर राज्यवैभव-ऐश्वर्यको देखकर लोकमें किसे सन्तोष न होगा इसलिये इस विजयार्धके अनेक विद्याधर राजा अपनी-अपनी सुन्दर उत्तम कन्याओंको आपको समर्पण करनेके लिये लाये हैं। अनेक राजा उत्तमोत्तम अन्य भेंट लेकर आये हैं। उनको अन्दर आनेके लिये आज्ञा होनी चाहिये।" इस सम्बन्धमें पहिलेसे सम्राट्ने दक्षिण नायकको सूचना दे रखी थी। इसलिये समयको जानकर दक्षिणांकने सुमतिसागर मंत्रीके साथ कहा कि मंत्री ! तुम्हारे राजाओंने जो सम्राट्को समर्पण करनेके लिये अपनी कन्याओंको साथ लाये हैं उनको पहिले अन्दर आने दो, बादमें बाकीके राजाओंको आकर भरतेश्वरको नमस्कार करने दो। सुमतिसागर मंत्रीने भी उसी प्रकार व्यवस्था की। उसी समय बहुतसे विद्याधर राजा सन्तोषके साथ दरबारमें प्रविष्ट हुए और उन्होंने चक्रवर्तीको नमस्कार किया, उनको योग्य आसन दिलाये गये। वे उनपर बैठ गये। उन्होंने आकर साष्टांग नमस्कार किया और उनको बैठनेके लिए नीचे आसन दिये गये। वे उनपर बहुत आनन्दके साथ बैठे। सम्राट्के मित्रोंने मन-मनमें ही विचार किया कि उत्तम रूपवती कन्याओंको उत्पन्न करना यह भी एक भाग्यकी ही बात है। सचमुचमें संसारमें स्त्री ही भोगांग है। इसलिए इन राजाओंका इस प्रकार हो रहा है। चक्रवर्तीके शरीर-सौंदर्यको देखकर वे विद्याधर राजा आश्चर्यचकित हुए। उनको ऐसा मालूम हुआ कि हम देवेंद्रकी सभामें प्रविष्ट हुए हैं। वे मनमें अपने जीवनको धिक्कारने लगे। इस उम्रमें यह शरीर, सौंदर्य, सम्पत्ति, गौरव, गांभीर्यको प्राप्त करना यह मनुष्यके लिये भूषण है। हम लोगोंका जीवन व्यर्थ है। सुमतिसागर मंत्री खड़े होकर कहने लगा

कि विद्याधर आपके दर्शनके लिए बहुत कालसे उत्सुक थे। पुण्यके संयोगसे आज उनकी इच्छाकी पूर्ति हुई। देव ! लोकमें सामान्य पदको प्राप्त करनेवाले बहुत हैं परन्तु षट्खण्ड पृथ्वीके राज्यभारको वहनेवाले कौन हैं ? कदाचित् षट्खण्ड भूमिको पालन करनेपर भी स्वामिन् ! आपकी सुन्दरता देवेन्द्र और नरेन्द्रोंमें किसने पाई है ?

मैं मुखस्तुति नहीं कर रहा हूँ। भगवान् आदिनाथके पदोंकी साक्षीपूर्वक कह रहा हूँ कि आपके शरीर सौंदर्यको देखकर मुग्ध न होनेवाले स्त्री-पुरुष क्या इस भूमण्डलमें मिल सकते हैं ?

स्वामिन् ! हमारे साथ आये हुए राजा तीन सौ सुन्दर कन्याओंको आपको समर्पण करनेके लिये लाए हैं। इसलिये विवाहके लिये आज्ञा होनी चाहिये। इत्यादि विषय बहुत विनयके साथ सुमतिसागरने निवेदन किया। भरतेश्वरने भी मुसकराकर सुमतिसागरको बैठनेके लिये कहा। बुद्धिसागर मंत्रीने समयको जानकर सुमतिसागरकी प्रशंसा की। साथमें अन्य मित्रोंने भी प्रशंसा की। बुद्धिसागरने सम्राट्से यह भी कहा कि विवाह कलकी रातमें हो। आज इन लोगोंको विश्रांति लेनेके लिये आज्ञा होनी चाहिये। सम्राट्ने भी बुद्धिसागरके वचनको सम्मति दी। सुखके आगमनकी प्रतीक्षा कौन नहीं करते हैं ?

आये हुए सज्जनोंको योग्य रीतिसे आदरसत्कार करनेके लिये सम्राट्ने बुद्धिसागरको आज्ञा दी। साथमें उन विद्याधर राजाओंको उसी समय अनेक रत्नवस्त्राभरणोंको भरतेश्वरने भेंट किया। साथमें विनमिराज व सुमतिसागरको भी उत्तमोत्तम रत्नोंको समर्पण किया और सबको उनके लिए निर्मित महलोंमें भेजा।

दूसरे दिन उस सेनाराज्यमें विवाहकी तैयारी होने लगी। सर्वत्र लोग आनन्द ही आनन्द मनाने लगे। मन्दिरोंमें तोरण, पताका वगैरह फड़कने लगे। करोड़ों प्रकारके वाद्यविशेष बजने लगे। परकोटा, राजद्वार, गोपुर आदि स्थान अत्यधिक सुशोभित किये गये। राजागण व व्यंतर भी अपने-अपने शृंगार करने लगे। साथमें सुवर्ण व रत्नमय तीन सौ विवाह मंडप भी निर्मित हुए, विशेष क्या ? महलका शृंगार हुआ, रानियोंने अपना शृङ्गार उत्साहके साथ किया। भरतेश्वरने अपना शृङ्गार कर लिया। वहाँपर बात ही बातमें एक महोत्सव भी हुआ।

विद्याधर राजाओंने अपनी पुत्रियोंको नवनिर्मित सुन्दर आभूषणोंका शृङ्गार कराया। उनकी दासियोंने सब प्रकारसे सुन्दर आभूषणों-

को धारण कराकर उन्हें विवाहकलोचित सर्व अलंकारों से अलंकृत किया।

लोकमें भरतेश्वर बुद्धिमान् हैं यह सब जानते थे। साथमें वह कामदेवके समान ही सुन्दर है यह जगजाहिर था। ऐसी अवस्थामें, भरतेश्वर भी प्रसन्न हो सके इसे दृष्टिकोणमें रखकर उन चतुरदासियोंने उन विद्याधर कन्याओंको विविध प्रकारसे अलंकृत किया। भरतेश्वरकी रानियाँ भी महा बुद्धिमती हैं। वे भी आज इन नववधुओंको देखेंगी, वे भी प्रसन्न हो जाय इसी प्रकार उनका शृङ्गार हुआ। सब शृङ्गार होनेके बाद स्वयं ही अपने द्वारा किये हुए शृङ्गारको देखकर वे दासियाँ प्रसन्न हुईं और विनोदसे कहने लगीं कि देवी! आजतक भूचर स्त्रियोंने भरतेश्वरके चित्त व नेत्रको प्रसन्न कर जो उनके हृदयको वश किया उसे आप खेचर स्त्रियाँ अपने सौंदर्य व प्रेममय व्यवहार से भुला देवें। उन कन्याओंने भी सुन लिया। वे पहिलेसे भरतेश्वरके जगद्विश्रुत गुणोंको जानती थीं। इसलिये मनमें विचार करने लगीं कि भरतेश्वरको जीतनेवाली स्त्रियाँ लोकमें कोई नहीं है। ऐसी अवस्थामें यह सब विचार व्यर्थ है। तथापि हम लोग पतिके अनुकूल वृत्तिको धारण कर रहेंगी। इस प्रकार सर्व शृङ्गार पूर्ण होनेके बाद दासियोंने उन कन्याओंकी आरती उतारी और "भरतेश्वर के मनको आप लोग प्रसन्न करें" इस प्रकार आशीर्वाद दिया। रात्रिके प्रथम प्रहरमें जब चक्रवर्तीके सेवकोंने आकर सब विद्याधर राजाओंको यह समाचार दिया कि अब विवाहका मुहूर्त अतिनिकट है, सभी राजा अपने-अपने विवाहके लिये सुसज्जित कन्याओंको पालकियोंपर चढ़ाकर गाजेबाजेके साथ विवाहमण्डपकी ओर गये। उस समय सेनानायकने भी अपनी सेना व परिवारके साथ इन राजाओंका स्वागत सामनेसे आकर किया। इस प्रकार बहुत आनन्दके साथ सभी विवाहमण्डपमें प्रविष्ट हुए। तीन सौ कन्याओंने तीन सौ खास निर्मित मण्डपोंको सुशोभित किया। साथकी स्त्रियाँ अनेक प्रकारसे सुन्दर मंगल गान कर रही हैं। वे कन्यायें मंडपमें खड़ी होकर भरतेश्वरका ध्यान कर रही हैं और उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। परन्तु भरतेश्वर जल्दी नहीं आ रहे हैं।

इधर भरतेश्वरने भी विवाहोचित शृङ्गार कर लिया और समय समीप आते ही जिनेन्द्र मन्दिरमें गये वहाँपर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रवन्दना की। परमहंस गुरु परमात्माका भी स्मरण किया। तदनन्तर आनन्दके

साथ आकर महलमें रहे। इधर-उधरसे उनकी रानियाँ बैठी हुई हैं। अपने पतिदेवके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर उनकी आँखें तृप्त नहीं होतीं, एक रानी विनोदसे कहने लगी कि—स्वामिन्! कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। एक हंसको हजारों हंसिनी पहिलेसे मौजूद हैं, फिर भी वह हंस अनेक हंसिनियोंको प्राप्त कर रहा है। ऐसी अवस्थामें पहिलेकी हंसिनियोंको दुःख होगा या नहीं? भरतेश्वरने हँसकर उत्तर दिया कि देवी! एक ही हंस जब हजारों रूपको धारणकर आगत व स्थित हजारों हंसिनियोंको सुख देता है तो फिर दुःखका क्या कारण है? इतनेमें दूसरी रानी कहने लगी कि राजन्! फूलके दुकानमें एक भ्रमर था। वह हर एक फूलपर बैठकर रस चूस रहा था। फूलारी नवीन पुष्पोंको दुकानमें लाया, ऐसी अवस्थामें उस भ्रमरको किन फूलोंपर इच्छा होगी, नवीन फूलोंपर या पुराने फूलोंपर?

भरतेश्वरने उसके मनको समझकर कहा कि देवी! वह भ्रमर कुत्सित विचारका नहीं है। वह परमपरंज्योति परमात्माका दर्शन रात्रिदिन करनेवाला भ्रमर है। ऐसी अवस्थामें उस भ्रमरको पुराने और नये सभी फूल समान प्रीतिके पात्र हैं। आत्मविज्ञानीकी दृष्टिसे सोना और कंकर, महल और जंगल जब एक सरीखे हैं फिर नवीन और पुराने पदार्थोंमें वह भेद क्यों मानेगा? उसी समय बाकीकी रानियोंने कहा कि देवियों! आप लोग इस मंगल समयमें ऐसी बातें क्यों कर रही हैं। पतिराजके हृदयमें कैसी चोट लगेगी? सरसमें विरस क्यों? इस समयमें आप लोग चुप रहें। लोककी सभी स्त्रियाँ आ जावें तो भी एक पुरुष जिस प्रकार एक स्त्रीका पालन करता है, उसी प्रकार अव्याहतरूपसे पालन करनेका सामर्थ्य जब पुरुषोत्तम पतिराजको मौजूद है, फिर हमें चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है?

भरतेश्वरने भी उन रानियोंको सन्तुष्ट करते हुए कहा कि देवियों! इस प्रसंगको कौन चाहते थे? हजारों रानियोंके होते हुए और अधिक स्त्रियोंकी लालसा मुझे नहीं है। फिर भी पूर्वमें जो मैंने आत्मभावना की है उसका ही फल है कि आज उस पुण्यका उदय इस प्रकार आ रहा है। आप लोग ही विचार करें कि मैंने आप लोगोंसे भी जड़ विवाह किया तब मैं चाह करके तो नहीं आया था? आजकी कन्याओंको भी मैं निमन्त्रण देने नहीं गया था। फिर भी उस पूर्वपुण्यने आप लोगोंको व इनको बुलाकर मेरे साथ सम्बद्ध किया। जबतक कर्मका सम्बन्ध है उसके भोगको अनुभव करना ही पड़ेगा, यह संसारकी रीत

है, यही परतन्त्रता है। भरतेश्वरके मनको तिलमात्र भी दुःख न होवें, ऐसी भावना करनेवाली उन रानीमणियोंने उसी समय उस बातको बदलकर कहा कि स्वामिन्! जाने दीजिये। अब विवाहका समय अत्यन्त निकट है। आप विवाहमण्डपमें पधारियेगा। भरतेश्वर भी वहाँसे उठकर विवाहमण्डपकी ओर चले गये।

उस समय भरतेश्वरकी शोभा देखने लायक थी। उस समय वे विवाहके योग्य वस्त्राभूषणको धारण किये हुए थे। रास्तेमें अनेक सेवक उनको देखते हुए हाथ जोड़ रहे हैं और आनन्दके साथ कहते हैं कि भोगसाम्राज्यके अधिपति, लोकागमग्रसुखी, कामदेव विजयी भरतेश्वरकी जय हो। इसी प्रकार गायन करनेवाले गा रहे हैं। स्तुतिपाठक स्तोत्र कर रहे हैं। इन सबको देखते हुए भरतेश्वर विवाहमंडपमें दाखिल हुए। उन विवाहमण्डपमें सब विद्याधरकन्यायें पश्चिममुखी होकर खड़ी थीं। भरतेश्वर जाकर पूर्वमुखी होकर खड़े हुए। आते समय भरतेश्वर अकेले ही आये थे अब उन्होंने अपनेको तीन सौ संख्यामें बना लिया अर्थात् अपने तीन सौ रूप बनाकर तीन सौ मण्डपमें खड़े हो गये। सामनेसे अनेक द्विजगण मंगलाष्टकका पाठ बहुत जोरसे कर रहे हैं। अनेक विद्वान् विवाह समयोचित सिद्धांतमंत्रका उच्चारण कर रहे हैं और उत्तमोत्तम मंगलवचनोंसे आशीर्वाद दे रहे हैं। अनेक सुवासिनी स्त्रियाँ मंगलपदगीतोंको गा रही हैं। इस प्रकार बहुत वैभवके साथ आगमोक्त प्रकारसे विवाहविधि संपन्न हो रही है। मंगलाष्टक पूर्ण होनेके बाद वधूवरके बीचमें स्थित परदा हटाया गया। उसी समय भरतेश्वरने उन सब कन्याओंका पाणिग्रहण किया। जिस समय भरतेश्वरने उनको हाथ लगाया उन देवियोंको एक दम रोमांच हुआ। उसके बाद उन वधुओंके साथ भरतेश्वर होमकुंडके पास आये और वहाँपर विधिपूर्वक पूजन कर नववधूसमूहके साथ होमकुंडकी तीन प्रदक्षिणा दीं। भरतेश्वर जिस समय उन पाणिगृहीत कन्याओंके साथ उस होमकुंडकी प्रदक्षिणा दे रहे थे, उस समयकी शोभा अपूर्व थी। चन्द्रदेव स्वयं अपने अनेक रूपोंको बनाकर साथमें रोहिणीको भी अनेकरूप धारण कराकर मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा दे रहा है, ऐसा मालूम हो रहा था। कन्याओंके मातापिताओंको बहुत ही हर्ष हुआ। उन्होंने भरतेश्वरको कन्या देकर अपनेको धन्य माना। विवाहका विधान विधिपूर्वक पूर्ण हुआ। भरतेश्वरने मंत्री, सेनाधिपति आदिको इशारा किया कि सर्व सज्जनोंको अपने-अपने स्थानोंमें पहुँचाकर

उनकी उचित व्यवस्था कीजिएगा। तदनुसार क्षणभरमें वह मण्डप रिक्त हो गया। भरतेश्वर भी उन विवाहित नारियोंको लेकर महलमें प्रवेश कर गए।

महलमें उन्होंने शयनागारमें पहुँचकर उन नववधुओंके साथ अनेक विनोद संकथालाप किए। साथमें अनेक प्रकारसे सुखोंका अनुभव किया एवं बादमें सुखनिद्रामें मग्न हुए। उनके साथमें जितने भी सुखोंका अनुभव किया वह पुण्यनिर्जरा है, इस प्रकार भरतेश्वर विचार कर रहे थे। प्रातःकालके प्रहरमें भरतेश्वर उन नारीमणियोंका निद्राभंग न हो उस प्रकार उठकर अपने तल्पपर ध्यान करनेके लिए बैठे। पापरहित निरंजनसिद्धका उन्होंने अपने हृदयमें अनुभव किया। बाद अरुणोदय हुआ। सुप्रभात मंगलगीतको गानेवाले वहाँपर उपस्थित होकर सुन्दर गायन करने लगे। भरतेश्वर अभी तक आत्मदर्शन ही कर रहे हैं। गायनको सुनकर वे नव स्त्रियाँ अपनी शय्यासे उठीं और भरतेश्वरकी ध्यानमग्नावस्थाकी शोभाको देखने लगीं। भरतेश्वरने ध्यानपूर्ण किया, साथमें अपने अनेक रूपोंको अदृश्य किया। नवविवाहित स्त्रियोंको आश्चर्य हुआ, भरतेश्वर अपने शय्यागृहसे बाहर आये व नित्यकर्ममें लीन हुए। इस प्रकार भरतेश्वरका तीन सौ विद्याधर कन्याओंके साथ विवाह हुआ। यह उनके पुण्यका फल है। उन्होंने पूर्व जन्ममें सातिशय पुण्यका उपार्जन किया था और अब भी अखंड साम्राज्यको भोगते हुए भी उसके यथार्थस्वरूपको जान रहे हैं, अपने आत्माको बिलकुल भूल नहीं जाते हैं। सुखोंके भोग करनेमें वे उदासीनतासे विचार करते हैं कि इतने समयतक मेरे पुण्यकर्मकी निर्जरा हुई। यह मुझे पुण्यकर्मके फलका अनुभव करना पड़ रहा है।

सतत उनकी भावना यह रहती है कि "हे परमात्मन्! तुम लोकमें सर्व सुख-दुःखके लिए साक्षीके रूपमें रहते हो। परंतु उनको साक्षात् अनुभव नहीं करते, क्योंकि तुम मोक्षके स्वरूपमें हो। इसी प्रकार मेरी आत्मा है। इन्द्रियजन्य सुखोंके लिए केवल वह साक्षी है। साक्षात् अनुभवी नहीं है। यह केवल पुण्यवर्गणाओंकी लीला है। हे सिद्धात्मन्! कर्मोंकी निर्जरा जितने प्रमाणमें होती जाती है उतना ही अधिक सुख आत्माको मिलता जाता है। इसका साक्षात्कार आप कर चुके हैं, इसलिए आप लोकपूजित हुए हैं। इसलिए मुझे भी उसी प्रकारकी सुबुद्धि दीजियेगा।"

इसी प्रकारकी भावनाका फल है कि भरतेश्वर विशिष्ट सुखका अनुभव कर रहे हैं।

इति खेचरिविवाह संधि

— o —

भूचरीविवाह संधि

दूसरे दिनकी बात है। विनमिराज आदि अनेक विद्याधरराजाओं-को महलमें बुलाकर भरतेश्वरने उनका सत्कार किया, उनको बहुत ही आदरके साथ देवोचित भोजन कराया। साथमें अनेक वस्त्राभूषण, रत्नोपहार आदिको समर्पण करते हुए यह भी कहा कि आजसे आप लोग यहाँ महलमें आकर भोजन करते हुए कुछ दिन तक हमारे आतिथ्यको ग्रहण करें। इसी प्रकार सर्व परिवार दासी, दास आदि जनोंका भी यथोचित सत्कार किया गया। पहिलेकी रानियोंके बीच बैठकर भरतेश्वरने नववधुओंको बुलाया और उनसे यह कहना चाहते थे कि अपने बड़ी बहिनोंको नमस्कार करो। परन्तु भरतेश्वरके कह-नेके पहिले ही उन चतुर वधुओंने उन रानियोंको नमस्कार किया। उन रानियोंने भी बहुत ही प्रेम व आदरके साथ उनका स्वागत किया और आलिंगन देकर अपने पास बैठा लिया। इस प्रकार अनेक विनोद संकथालाप करते हुए कुछ दिन वहींपर सुखसे काल व्यतीत कर रहे थे। इतनेमें और एक संतोषकी घटना हुई। पुण्यशालियों-को सुखोंके ऊपर सुख मिला करते हैं। पापीजनोंको दुःखोंपर दुःख आया करते हैं।

एक दिनकी बात है भरतेश्वर अपने मंत्री आदिके साथ अनेक राजा-प्रजाओंसे युक्त होकर दरबारमें विराजमान हैं। उस समय एक दूतने लाकर एक पत्र दिया। वह पत्र विजयराजका था। उसे खोल-कर भरतेश्वर बाँचने लगे। उसमें निम्नलिखित मंगलवाक्य उनको बाँचनेको मिले।

स्वस्तिश्रीमन्महानिस्सीमसामर्थ्य, विस्तारितोर्वरीतल दुस्तररिपु-राज वैर्याप्तिराजस्तोमसंतोषकरकामिनीजनपंचबाण, षट्खंडभूमंडलाग्र-गण्य, नाममात्रश्रवणसुक्षेमकर सुजनेंदुभरतभूपति भरतेशकी चरण-सेवामें—विजयके भयभक्तिपूर्वक साष्टांग नमस्कार।

स्वामिन् ! पश्चिमम्लेच्छखण्ड हस्तगत हुआ। विजयलक्ष्मीने आपके गलेमें माला डाल दी, इस देशके राजा लोग हे अध्यात्मसूर्य ! बहुत संतोषके साथ आपके चरणोंके दर्शनके लिये उत्सुक थे। कितने ही राजा आपके आगमनकी वार्ता सुनकर आपकी सेवामें, भेंट करनेके लिये कितने ही उत्तम हाथी-घोड़ोंकी तैयारी कर रहे थे। कितने ही राजाओंने हाथियोंके समान गमन करनेवाली मंदगजगामिनी कन्याओं-को शृंगार कर रखा था। वे लोग जातिक्षत्रिय हैं, इस विचारसे उन्होंने समझा था कि हमारी कन्याओंको सम्राट् झट स्वीकार कर लेंगे। परंतु मैंने उनको कहा कि हमारे स्वामी व्रतगात्र कन्याओंको ही ग्रहण करते हैं। व्रतरहितोंको वे स्वीकार नहीं करते हैं। व्रतोंको ग्रहण करने के लिये दीक्षकाचार्य मुनियोंकी आवश्यकता है, परंतु इस खण्डमें धर्म-पद्धति नहीं है। मुनियोंका अस्तित्व नहीं। ऐसी परिस्थितिमें उन लोगोंने स्वीकार किया कि हम लोग आर्यभूमिमें आकर योगियोंसे व्रतग्रहण कर लेंगे। परंतु आपके पुण्योदयसे संतोष व आश्चर्यकी एक घटना हुई। अपने इष्ट स्थानमें जानेवाले दो चारण मुनीश्वर आकर इस भूमिमें उतर गये। उनके हाथसे हमारे महलमें सबको चारित्र धारण कराया। हमारा कार्य हुआ। वे मुनिराज अपने मार्गसे चले गये। आगे निवेदन इतना ही है कि सुवर्णकी पुतलियोंके समान सुन्दर ऐसी तीनसौ बीस कन्याओंको लेकर वे राजागण बहुत हर्षके साथ आ रहे हैं। कलतक आपकी सेवामें उपस्थित हो जायेंगे।

भवदीय चरणसेवक—विजय

इस पत्रको सुनकर सबको हर्ष हुआ। सबने भरतेश्वरकी जय-घोषणा की। इस शुभ समाचारको लानेवाले दूतको बुद्धिसागरने अनेक वस्त्राभरणोंको इनाममें दिए। वह दिन व्यतीत हुआ, दूसरे दिनकी बात है। विजयराज बहुत संभ्रमके साथ सिंधु नदीको पार कर अपनी सेनाके साथ भरतेश्वरकी सेनाके पास आये। वाद्यध्वनि सुननेमें आई। भरतेश्वरने विजयांकको बुलानेके लिये अपने सेवकोंको भेजा। विज-यांकने भी उसी समय आकर भरतेश्वरका दर्शन किया। साथमें अनेक उत्तमोत्तम उपहार पदार्थोंको भेंटमें समर्पण किया। साथमें अनेक राजा-ओंने भी भरतेश्वरको अनेक उत्तम वस्तुओंको भेंटमें समर्पण करते हुए नमस्कार किया और भरतेश्वरके इशारे पर उचित आसनोंपर बैठ गये। विजयराजने सामने आकर कहा कि स्वामिन् ! ये जितने भी राजा हैं

वे सज्जन हैं। परन्तु इनमें मुख्य उद्दंड नामक भूपति है। ये अपनी दो कन्याओंको लेकर आये हुए हैं। मैंने इनसे कहा कि कलकी रात्रिको विवाहके लिये योग्य मूहूर्त है, आशा है कि आप लोग भी इसे स्वीकार करेंगे। उपस्थित सब लोगोंने उसका समर्थन किया। उस समय भरतेश्वरने सबको आदरसत्कारपूर्वक विदा किया। वह दिन गया। दूसरे दिन योग्य मुहूर्तमें उन राजाओंकी तीन सौ बीस कन्याओंके साथ सम्राट्का विवाह सम्पन्न हुआ। सर्वत्र उत्सव ही उत्सव हो रहा है। इसके बाद सम्राट् उन नवविवाहित वधुओंके साथ शयन गृहमें गये। वहाँ उनके साथ अनेक प्रकारसे आनन्द क्रीड़ा की। उन स्त्रियोंमें सभी स्त्रियाँ एकसे एक बढ़कर सुन्दरी थीं, परन्तु उनमें रंगाणि और गंगाणि दो स्त्रियाँ अत्यधिक सुन्दरी थीं, जिनको देखनेपर भरतेश भी एक दफे मोहित हुए।

प्रातःकाल नित्यक्रियासे निवृत्त होकर विजयराज आदि को लेकर सर्व परिजनोंको आनन्द भोजन कराकर सत्कार किया। कुछ समय तक बहुत सुखसे समय व्यतीत हुआ। पुनः एक दिन दरबारमें विराजमान थे, उस समय एक और आनन्दका समाचार आया। जयराज पूर्वखण्डकी ओर गया था, उस खंडको जीतकर वह बहुत आनन्दसे गाजे बाजेके साथ आ रहा है। दूसरे मंगल शब्द भी सुननेमें आ रहे हैं। उसके साथ असंख्यात सेना है। हाथी है, घोड़ा है, रथ है, एक राजकीय ठाटबाटसे ही वह आ रहा है। सचमुचमें जयराज एक राजाधिराज है। दुनियामें भरतेश्वरका ही सेवक है। बाकी और कोई राजा ऐसे नहीं जो उसे जीत सकें। वह जातिक्षत्रिय है। जाते समय जितनी सेनाको वह ले गया था उससे दुगुनी सेनाको अब साथ लेकर उस स्थानमें दाखिल हुआ।

जिन राजाओंने चक्रवर्तीको समर्पण करनेके लिए उत्तमोत्तम हाथी घोड़ा वगैरह ले आये थे, उनको व उनकी सेनाको एक तरफ स्थान दिया और जो कन्यारत्नोंको ले आये थे, उनको एक तरफ स्थान दिया। वेतंड नामक भूपति अपने साथ सुन्दरी दो कन्याओंको ले आया है। उसके साथ ही अन्य ४०० कन्यायें भी आई हैं। अपने खण्डसे जिस समय उन्होंने कर्मभूमिमें प्रवेश किया उस समय गुरुसंनिधिमें नियमव्रतोंको ग्रहण कराये। क्योंकि जयराज बुद्धिमान् है, उसे मालूम था कि सम्राट् व्रतसंस्कारहीन कन्याओंको ग्रहण नहीं करेंगे। विशेष क्या कहें? पूर्वोक्त प्रकारसे जयकुमार सम्राट्के पास गये। सम्राट्का उन

कन्याओंके साथ विवाह हुआ। पूर्वोक्त प्रकार भरतेश्वरने अपने महलमें उन देवियोंके साथ अनेक प्रकारसे क्रीड़ा की। उन स्त्रियोंमें सिन्धुरावती बन्धुरावती नामक दो स्त्रियाँ अत्यधिक सुन्दर थीं। ये दोनों वेतंड-राजाकी पुत्रियाँ हैं। इन दोनोंके प्रति सम्राट्के हृदयमें विशेष अनुराग हुआ। उनके सौन्दर्यको देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि ये दोनों परमसुन्दरी हैं। म्लेच्छ खण्डमें उत्पन्न होने-पर भी इनमें कुछ विशेषताएँ हैं। स्वच्छ रूपको धारणकर अत्यधिक कुशल युवतियोंके उत्पन्न होनेसे ही शायद इस खण्डको म्लेच्छखंड नाम पड़ा होगा। वहाँपर धर्माचरण नहीं है, इतने मात्रसे उसे म्लेच्छखंड कहते हैं। बाकी सौन्दर्य कामकलाकौशल्य आदि बातोंमें ये कर्मभूमिज स्त्रियोंसे क्या कम हैं। धर्माचरण इनमें और मिल जाय तो किसी भी बातमें कम नहीं हैं। कोई हर्जकी बात नहीं, इनको अब धर्मपालन क्रमको सिखाना चाहिये। मेरे भाग्यसे ही मुझे ऐसी सुन्दरियोंकी प्राप्ति हुई है। इस विषयको दूसरोंके साथ बोलना उचित नहीं है। अपने मनमें ही रखना चाहिये। यह मेरे परमात्माकी कृपा है। धन्य है पर-मात्मा! भक्तिपूर्वक जो तुम्हारी प्रार्थना करते हैं उन्हें कैवल्य सुखकी प्राप्ति होती है, फिर लौकिक सुख मिले इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? आये हुए सुखका त्याग नहीं करना चाहिये, नहीं आते हुये की अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। अपने शरीरमें स्थित आत्माको कभी भूलना नहीं चाहिये। उस व्यक्तिके पास दुःख कभी नहीं आ सकता। सांसारिक सुखका अनुभव करना कोई पाप नहीं, परन्तु उसके साथ अपनेको भुलाना यह पाप है। आत्मज्ञानी स्त्रियोंके भोगको भोगते हुए भी "पुवेयं वेदंतो" इस सिद्धान्तसूत्रके अनुसार वेदनीय कर्मकी निर्जरा ही करता है। इस रहस्यको विवेकी ही जान सकते हैं। हर एकको इसे समझनेकी पात्रता नहीं। यह परम रहस्य है। इसे लोगोंके सामने कहूँ तो वे हँसेंगे इत्यादि प्रकारसे मनमें ही विचार करने लगे एवं उन रमणियोंके साथ यथेष्ट सुख भोगने लगे। इतना ही नहीं, भरतेश्वरके व्यवहारसे सन्तुष्ट वे स्त्रियाँ अपने मातापिताओंको भी भूल गईं। इस प्रकार बहुत आनन्दके साथ उन्होंने समय व्यतीत किया। विवाहके उपलक्ष्यमें पहिलेके समान ही मंत्री, सेनापति एवं कन्याओंके पिता आदिका यथोचित सन्मान किया गया।

रात्रिदिन सेना—कटकस्थानमें उत्सव ही उत्सव होते रहते हैं। उस

स्थानमें छह महीनेसे भी कुछ दिन अधिक व्यतीत हुए परन्तु उत्साहसे बीतनेसे वह समय बहुत थोड़ा मालूम हुआ।

एक दिन भरतेश्वर दरबारमें विराजमान हैं। उस समय बुद्धिसागर मंत्रीने आकर नम्रशब्दोंमें निवेदन किया। "स्वामिन्! तीन खंडका राज्य वश हो गया, अब विजयार्धके आगेके तीन खंडोंको वशमें करना चाहिये। इस स्थानमें अपनेको ६ महीने व्यतीत हुए। विजयार्ध गुफाकी अग्नि भी शांत हो गई है। अब आगे प्रयाण करनेमें कोई आपत्ति नहीं। इसलिए अब आज्ञा होनी चाहिये! जिन राजाओंने आपके चरणोंमें स्त्रीरत्नोंको समर्पण किये हैं उनको भी अब यथोचित सत्कार करके सन्तोषके साथ अपने नगरोंको जानेके लिए आज्ञा देवें। क्योंकि उनको अपने साथ कष्ट होगा" इत्यादि। मन्त्रीके निवेदनको सुनकर उसी समय कुछ विचार कर भरतेश्वर महलकी ओर चले गये एवं अपने अनेक रूपोंको बनाकर उन नवविवाहित खेचर-भूचरकन्याओंके अंतःपुरमें प्रवेशकर गये। वहाँ जाकर उन्होंने उन स्त्रियोंसे कहा कि प्रियदेवी! तुम्हारे पिता अब अपने नगरको जा रहे हैं। अब आगे क्या होना चाहिए, बोलो। देवी! जाते समय तुम्हारे पिताका यथोचित सत्कार किया जायेगा। परन्तु तुम्हारी माता यहाँपर नहीं आई हैं। ऐसी हालतमें मैं उनको कुछ भेंट करना चाहता हूँ, बोलो। उनको क्या प्रिय है। कौनसे पदार्थमें उनकी इच्छा रहती है। आभूषणोंमें उनको कौनसा प्रिय है। वस्त्रोंमें कौनसी साड़ी उनको पसंद है एवं अन्य भोग्य पदार्थोंमें उन्हें कौनसा इष्ट है? उनको जो पसन्द है उसे ही मैं भेजना चाहता हूँ। आप लोग बोलो।

भरतेश्वरकी बातको सुनकर वे कुछ जवाब न देकर हँस रही हैं। फिर भरतेश्वर पूछने लगे कि तुम्हारी माताकी क्या इच्छा है, बोलो तो सही। पुनः वे हँसने लगीं। पुनः भरतेश्वर—'अच्छा हमारी सासकी क्या इच्छा है बोलो तो सही' कहने लगे। परन्तु वे स्त्रियाँ पुनः हँसने लगीं। जब भरतेश्वरने आग्रहपूर्वक पूछा तो उन्हें आखिर कहना पड़ा। भरतेश्वरने अपने सामने ही सभी वस्त्र, आभूषण भेंट आदिको बँधवाये व उनकी दासियोंको बुलाकर कहा कि इन्हें ले जाकर मेरी सासुओंके पास पहुँचाना एवं बहुत दिन वहाँपर नहीं लगाना। जल्दी यहाँपर लौट आना, नहीं तो सासुबाईकी पुत्रीको यहाँपर कष्ट होगा।

इस प्रकार महलके कार्यको करके भरतेश्वर पुनः दरबारमें आये।

वहांपर जो राजा थे उनमेंसे जिन्होंने कन्याओंको समर्पण किया था उनको अपनी-अपनी पुत्रियोंसे मिलकर आनेके लिए महलमें भेज दिया एवं बाकी बचे हुए राजाओंका यथेष्ट सत्कार किया। विद्याधरलोकके एवं म्लेच्छ खंडके राजाओंको बुलाकर सम्राट्ने कहा कि आप लोगों-का ही मैं पहिले सत्कार करता हूं, नहीं तो आप लोग कहेंगे लड़की देनेवालोंका सत्कार पहिले किया। इसलिए आप लोगोंका सत्कार पहिले कर बादमें उनका किया जायगा। सबका यथोचित सत्कार करने के बाद जयकुमारने समय जानकर कहा कि आप लोगोंमें कुछ लोग अपने-अपने राज्यमें जा सकते हैं। कुछ लोग यहांपर सम्राट्की सेवामें रह सकते हैं। जयकुमारकी बात सुनकर उन सबने उत्तर दिया कि सेनानायक ! हम लोगोंमें कुछ लोग राज्यमें जाकर क्या करें? हम लोगोंकी यही इच्छा है कि हमें सतत सम्राट्की चरणसेवा मिले। इसलिये हम यहींपर रहकर अपने समयको व्यतीत करना चाहते हैं। सम्राट् व जयकुमारने उसके लिए अनुमति दी। उनको परमहर्ष हुआ। उन सबने सम्राट्के चरणोंमें भक्तिके साथ नमस्कार किया।

अपनी पुत्रियोंके महलमें गये हुए सभी राजागण लौटे। उद्दण्डराज वेतण्डराज आदि लेकर सर्व राजाओंको भरतेश्वरने यथेष्ट सन्मान किया व मित्रोंकी ओर देखते हुए कहा कि अब आपलोग अपने-अपने राज्यमें जा सकते हैं? वहांपर सुखसे राज्यपालन करें। जब आप लोगोंको हमें देखनेकी इच्छा होगी उस समय हमारे पास आ सकते हैं।

मित्रोंने भी समय जानकर बहुत संतोषके साथ कहा कि स्वामिन्! इनका भाग्य बहुत बड़ा है। आपके राजमहलको बेरोकटोक प्रवेश कर सुखसे रहनेके बहुभाग्यको उन्होंने प्राप्त किया है।

बादमें सब राजाओंने भरतेश्वरको नमस्कार किया एवं भरतेश्वर-ने भी उनको सन्तोषके साथ विदाई की। उनके साथ सासुओंको भी अनेक उपहारकी पेटियोंको भेजे। बड़े-बड़े राजाओंको भी अरे, तुरे शब्दसे संबोधन करनेवाले सम्राट् अपनी स्त्रियोंको सासु शब्दसे उच्चा-रण किया, यह जानकर इन राजाओंको षट्खंड ही हाथमें आनेके समान संतोष हुआ। हर्षके साथ प्रयाण करते समय उद्दण्डराज व वेतण्डराज अपने सेनानायक व सेनाको भरतेश्वरकी सेवामें नियुक्त कर चले गये।

इस प्रकार आये हुए सभी राजा महाराजाओंको सम्राट्ने उनका यथोचित आदर सत्कार कर भेजा। अब केवल विनमिराज व विद्या-

धर मंत्री मौजूद हैं। उनको भी भेजनेके लिए भरतेश्वर विचार कर रहे हैं। आजकलमें भेजनेवाले हैं।

इस प्रकार भरतेश्वरके दिन अत्यन्त आनन्दोत्सवमें ही व्यतीत हो रहे हैं। नित्य नये उत्सव, नित्य नया मंगल, जहाँ देखो वहाँ आनंदके तरंग उमड़ रहे हैं। इसका कारण भी क्या है? इसका एकमात्र कारण यह है कि भरतेश्वरके हृदयमें रहनेवाला धैर्य, स्थैर्य व विवेक। संपत्ति मिलनेपर अविवेकी न होना, अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होनेपर भी अपने आत्माको न भूलना यही महापुरुषोंकी विशेषता है। भरतेश्वर परमात्माकी भावना इस हृदयसे करते हैं कि—

"हे परमात्मन्! आप प्रौढ़ोंके परमाराध्य देव हैं। पराक्रमियोंके परम आराधनीय हृदय हैं। अध्यात्मगाढ़ोंके अतिहृद्य हृदय हैं। गुढ़-स्थानमें वास करनेवाले हैं एवं लोकरूढ़ हैं, मेरे हृदयमें बने रहें। हे सिद्धात्मन्! आप परमगुरु, परमाराध्य परात्पर वस्तु हैं। इसलिये आपको नमोस्तु, आप सौख्यतत्पर हैं, अतएव हमें भी सुबुद्धि दीजियेगा।"

इसी सद्भावनासे उनको उत्तरोत्तर आनंदराशिकी प्राप्ति हो रही है।

इति भूचरीविवाह संधि

—०—

विनमिवार्तालाप संधि

एक दिनकी बात है, भरतेश्वर अपने मित्र व मंत्रीके साथ दरबार-में विराजमान हैं। विनमि भी अब अपने राज्यको जाना चाहता है, उसे सम्राट्के पास बहुत दिन हो चुके हैं। भरतेश्वरने भी अब जानेकी सम्मति देनेका विचार किया था। मौका पाकर भरतेश्वरने विनमिसे कहा विनमि! देखो नमिने अपनी बड़प्पन दिखला ही दिया। न मालूम उसने मुझे क्या समझ लिया हो। भगवन्! शायद उसे इस बातका अभिमान होगा कि मैं चाँदीके पर्वतपर (विजयार्ध) हूँ। रहने दो! देखा जायगा।

विनमि विनयके साथ बोला कि स्वामिन्! नमिराजने ऐसा कौनसा अभिमान बतलाया? आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? यह हमारे पूर्वजन्मके कर्मका फल है।

भरतेश—विनमि रहने दो। यह ढोंग क्यों रचते हो? यह सब कुछ झूठ है, वह मेरे पास क्यों नहीं आया? उसकी इस वक्रताको क्या मैं नहीं जानता?

विनमि—स्वामिन्! मेरे इधर आनेके २ दिन पहिलेसे वह एक विद्याको सिद्ध कर रहा था, उस कारणसे वह नहीं आ सका, नहीं तो जरूर आता।

भरतेश—क्या मैं इस तंत्रको नहीं जान सकता? विनमि! अपने भाईको बोलो कि मेरे साथ यह चाल चलना उचित नहीं है। मेरे साथ यह अभिमान नहीं चल सकता है। जाने दो जी। मैं विनोदके लिये बोल रहा हूँ। मैं भूल गया, वह मेरे मामाका पुत्र है। इसलिये वह अपने अभिमानको व्यक्त कर रहा होगा। आप लोगोंको ध्यान रहे। मैं आगे जाकर उसके साथ लीला विनोद करूँगा, आप लोग भी देखेंगे।

आगे क्यों? आज ही व्यंतरोंको भेजकर वह जिस विद्याको सिद्ध कर रहा है उसकी अधिदेवताओंको वापिस कराऊँ? व्यंतरोंको भी क्यों भेजूं? मैं ही अपने आत्मध्यानके बलसे उसकी विद्याका उच्चाटन कर डालूं? उच्चाटन भी क्यों करूँ? उन विद्याओंको आकर्षण कर अपनी विद्याके बलसे उनको दबा डालूं? परंतु यह सब करना उचित नहीं है, नहीं तो यदि मंत्रबलको देखना ही हो तो मैं अभी उस भ्रामरी विद्याको सिद्ध करनेवाले विनमिको भ्रम उत्पन्न कर सकता हूँ। विद्याके मायने भूत है, उसे सामान्य लोग मुझे सिद्धि है फिर किस बातकी कमी है। लोग विवेकरहित हैं, उस परमात्माकी शक्तिको नहीं जानते हैं। वह परममोक्षस्थानको प्राप्त करानेवाला है। फिर उसके ध्यान करनेवाले भव्योंके लिये क्या-क्या सिद्धि नहीं हो सकती है? मेरे लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, फिर भी मैं उसको विघ्न नहीं करूँगा। तुम्हारे लिये केवल सूचना दी है। समझ लेना।

विनमि—आपकी सामर्थ्य बहुत बड़ी है, यह हम जानते हैं। उस सामर्थ्यके प्रदर्शनको अपने मामाके पुत्रोंपर दिखाना उचित नहीं। उनके साथ तो हँसी खुशी मनानी चाहिये।

भरतेश—रहने दो, बातें बनाकर मुझे ठगनेके लिये आये हो, आप लोग मेरे मामाके पुत्र हैं। परंतु आप लोगोंका व्यवहार बहुत ही विचित्र दिखता है। आप लोगोंका नाम मामाजीने नमि व विनमि रखा है, फिर आप लोग मुझे नमन क्यों नहीं करते हैं? मुझे पिताजीने

भरतेश नाम रखा है, मैं भरतभूमिका ईश अवश्य बनूंगा। परंतु मुझे खेद है कि आप लोग अपने पिताकी इच्छाकी पूर्ति नहीं कर सके।

कच्छ महाकच्छ मामाके स्वच्छ गर्भमें उत्पन्न होकर तुम लोग स्वेच्छाचारी हो गये यह आश्चर्यकी बात है। इस प्रकार भरतेश्वरने कुछ तिरस्कारयुक्त वाणीसे कहा। कोरी बातोंसे विनय दिखाकर अपने मनकी बात छिपाकर मुझे फँसानेके लिये चले, क्या इस चालको मैं नहीं जानता? विनमि! क्या बुद्धिमानोंके साथ ऐसा करनेसे चल सकता है?

विनमि--भावजी! आप ऐसा क्यों कहते हैं यह समझमें नहीं आया। हमने कौनसी बात आपसे छिपाई, हमारे हृदयमें जरा भी कपट नहीं है। जब आप इस प्रकार बोल रहे हैं। हम तो परकीय हैं, ऐसा अर्थ निकलता है।

भरतेश विनमि! तुम परकीय नहीं हो। तुम आत्मीय हो, परन्तु तुम्हारे भाई नमि परकीय है। उसके हृदयको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसे कहने की जरूरत नहीं। अपने मनमें ही रखो। मौकेपर सर्व विदित हो जायगा। उसके अभिमानको छुड़ाना व उसके गूढ़को रूढ़ करना कोई मेरे लिये अवगाढ़ (कठिन) नहीं है। परन्तु अभी नहीं, आगे देखा जायेगा। इस प्रकार भरतेश्वरने रहस्ययुक्त वचनको कहा। भरतेश्वरने नागर, दक्षिण, विट, विदूषकादि अपने मित्रोंसे पूछा कि आप लोग भी कहें कि मैं जो कुछ भी बोल रहा हूँ वह ठीक है या नहीं, आप लोगोंको पसंद है या नहीं।

नागर--स्वामिन्। आपका वचन किसे अच्छा नहीं लगेगा? लोकमें सबको आपका वचन वशकर लेता है। यहाँ नहीं आया हुआ नमिराज भी अवश्य कल आ जायगा। यह आपके वचनमें सामर्थ्य है।

अनुकूलनायक--स्वामिन्! जब आपने विनमिराजको नमिराजके संबंधमें जो अपना विचार था कह ही दिया है, तब बुद्धिमान् विनमिराज जाकर इस मामलेको सुलझाये बिना नहीं रह सकता है।

विटनायक—उस नमिराजने सम्राट्के लिये भेंट क्या भेजी है? क्या वस्त्राभूषण सम्राट्के पास नहीं हैं? विशिष्ट व्यक्तियोंको किस चीज की आवश्यकता या इच्छा रहती है, यह समझकर भेंट भेजना यह बुद्धिमानों का कर्तव्य है।

जीवरत्नोंमें उत्कृष्ट पदार्थोंको न भेजकर अजीव रत्नोंको भेजनेसे क्या मतलब? (विनमि मनमें सोचने लगा।)

शठनायक—स्वामिन् ! अब विनमिराजको ही विजयार्धका पट्टाभिषेक करना चाहिये। नमिराजको बहुत ही मद चढ़ गया है। उसे इसका सेवक बना देना चाहिये। यह कोई सम्राट्के लिये बड़ी बात नहीं। ऐसा शासन होना ही चाहिये। जो हित करनेवाला है वह बन्धु है। बन्धु होकर भी जो अहित करनेवाला हो वह शत्रु है। ऐसी अवस्थामें शत्रुको योग्य दंड देना ही चाहिये।

कुटिलनायक—फँसानेवाले बन्धुको फँसाकर ही उसे राज्यच्युत कर किसी एक जगह रख देना चाहिये। भोले भाइयोंको फँसानेके समान हमारे विवेकी गूढ़ आत्मपरिज्ञानी सम्राट्को फँसानेका विचार कर रहा है ! उसके लिये उचित व्यवस्था करनी चाहिये। (विनमिराजका गर्व गलित हो रहा था।)

पीठमर्दक—वह सामान्य पर्वत नहीं है। विजयार्धपर्वत बहुत बड़ा पर्वत है। इसलिये ऊँचे पर्वतपर रखनेसे उसे मद चढ़ गया है। इसलिये उसे वहाँसे हटाकर समतल भूमिपर रख देना चाहिये।

विदूषक—उसे वहाँसे हटाना भी नहीं, नीचे रखना भी नहीं, जहाँ बैठा है वहींपर कीलित कर देना चाहिये। (सब लोग हँसने लगे।)

दक्षिण—आप लोग सब कर्कश ही बोल रहे हैं, क्या तर्कशास्त्रका पठन तो नहीं किया है ? क्या वह नमिराज सम्राट्के लिये कोई परकीय है ? उसके प्रति इस प्रकारके विरस वचनोंको बोलना क्या उचित है ? वह अवश्य सम्राट्के पास सन्तोषके साथ आयेगा। आप लोग चिंता न करें। अभी तो अपने भाईको उसने भेजा है और वह भी समय पर आयेगा ही। पहिले दूसरे सब राजाओंने आकर उत्तमोत्तम पदार्थोंको लाकर सम्राट्को समर्पण किये, अब वह भी उत्तमवस्तुको लाकर सम्राट्को समर्पण करेगा।

शठ—भेंटकी आशा तुमने क्यों दिखलाई है, हमारे सम्राट्को किसी चीजकी कमी है ? उनको किस बातका लोभ है ?

भरतेश—आप लोग सब शांत रहें, उनके देनेकी और हमारे लेनेकी कोई बात नहीं। वह तो होगी ही। परन्तु वह मेरे पास खुले हृदयसे नहीं आया इसीका मुझे दुःख है।

सम्राट्के अन्तःकरणको जानकर विद्याधर मंत्री हर्षके साथ उठकर कहने लगा कि स्वामिन् ! आप ठीक फरमा रहे हैं। हमारे राजा अवश्य आपके पास आ जायेंगे। आप जिस समय विजयार्धके उस ओर

पधारेंगे उस समय वे अवश्य ही विनयके साथ आपसे आकर मिलेंगे। स्वामिन्! आप व्यवहार-विनयके लिए हमारे राजाको मिलनेके लिए कहते हैं। आपको किस पदार्थकी इच्छा है? उसकी कौनसी बड़ी बात है, उसे मैं ही आगे लाकर आपको समर्पण कराऊँगा।

विनमि भी सम्राट्से कहने लगा कि आपके चित्तको दुखाना यह हमारी बुद्धिमत्ता नहीं है। आपके लिए जिससे सन्तोष होगा वैसा हम अवश्य करेंगे।

भरतेश—विनमि! उसकी कोई बात नहीं, परन्तु तुम्हारा भाई जो मेरे साथ अभिमान बतला रहा है क्या यह उचित है? केवल तुम्हारे लिये सहन किया और कोई बात नहीं। इतना ही नहीं इसमें एक गूढ़ रहस्य है। सुनो, तुम्हारी माता मेरी बाल्यावस्थामें मुझसे बहुत प्यार करती थी, मुझे खिलाती थी, उसके तरफ देखकर शांत रहा। अगर मैं इस समय कुछ करता तो मेरी मामीजी तो यही कहती कि मेरे पुत्रोंने अविवेकसे कुछ किया तो भी भरतेशने उनको परकीय दृष्टिसे देखा। आपलोगोंमें कौनसा गुण है। मामा-मामीके तरफ देखना चाहिये, उनके हृदयमें कोई भेद नहीं है। आप लोग मायाचार करते हैं। पासके मित्रगण विनमिराजासे कहने लगे कि विनमि! तुम्हारा भाग्य बहुत बड़ा है। तुम्हारे माता-पिताओंको जब सम्राट्ने मामी व मामाके नामसे संबोधित किया, इससे अधिक और सन्मान क्या हो सकता है? उत्तमोत्तम कन्यारत्नोंको समर्पण करनेवाले हजारों राजा हैं, परंतु सम्राट्ने आजतक किसीको मामी मामाके नामसे सम्बोधन नहीं किया है। यह भाग्य तो आप लोगोंने पाया है। फिर भी सम्राट् के साथ भेदभाव रखते हो यह आश्चर्यकी बात है। बुद्धिसागर मंत्रीने भी विनमिसे कहा कि विनमि! नमिराजसे जाकर मेरी ओरसे भी विनती करना कि शीघ्र ही वह सम्राट्से आकर मिले। उस समय अन्य मित्रोंने कहा कि विनमि! अब तो हद हो गई। सम्राट्का मंत्री बुद्धिसागर अपने स्वामीके सिवाय और किसीको विनती शब्दसे विनय नहीं कर सकता है। फिर भी नमिराजके लिये विनती शब्द का प्रयोग कर रहा है। इससे अधिक और कौनसे सन्मानकी आवश्यकता है? आज सम्राट्के पास बुद्धिसागरके सिवाय और किसका महत्व अधिक है, वह सम्राट्का प्रतिनिधि है। वह दूसरे बड़ेसे बड़े राजाओंके साथ भी इस प्रकार बोल नहीं सकता है। ऐसी अवस्थामें

तुम्हें ही विचार करना चाहिये कि सम्राट्के हृदयमें तुम्हारे लिये कौनसा स्थान है? दूसरे लोग कन्या वगैरह देकर बहुत अधिक उत्सुकता से सम्राट्के साथ सम्बन्ध बढ़ाते हैं। परन्तु आप लोग तो जन्मजात सम्बन्धी हैं। ऐसी अवस्थामें चक्रवर्तीके मनको दुखानेका साहस आप लोगोंको कैसे होता है। यह आश्चर्यकी बात है, इत्यादि रूपसे विनमिराजसे कहने लगे। विनमिराज भी विवश हुआ, उसने स्पष्ट कहा कि भावजी, आप उत्तरखण्ड को जिस समय आयेंगे उस समय नमिराज अवश्य ही आपका दर्शन करेंगे। अब विशेष बोलनेसे क्या प्रयोजन? आपको छोड़कर रहना क्या बुद्धिमत्ता है? आपके वैभव को सुनकर माताजी पहिलेसे ही प्रसन्न हो रही थीं ऐसी परिस्थितिमें हम क्या नहीं जान सकते हैं? आपसे बढ़कर हमें और बन्धु कौन है? आपके हृदयको हम दुखायेंगे नहीं। अब अवश्य आपको सन्तुष्ट कर देंगे।

भरतेश—विनमि! ठीक है। मैंने अपने मामाके पुत्र समझकर तुम लोगोंके साथ प्रेम किया। परन्तु लोगोंने मुझे परकीय समझ लिया, कोई बात नहीं, जो हुआ सो हुआ। साथमें भरतेश्वरने विनमिको पासमें बुलाकर अनेक वस्त्र-आभूषणोंको उपहार में दिये व साथमें नमिराज व अपनी मामीको भी योग्य उपहारोंको दिये। तदनंतर भरतेश्वरने प्रेमके साथ विनमिको आलिंगन दिया।

विनमिको ऐसा मालूम हुआ कि मैं बड़ा भारी भाग्यशाली हूँ। इस लोक में ऐसे बिरले ही होंगे जिनको अनेक राजाओंके सामने सम्राट् आलिंगन देता हो। मित्रोंने भी विनमिकी प्रशंसा की। विनमि ने हर्षके साथ भरतेशको नमस्कार किया। विद्याधर मंत्रीने भी साष्टांग नमस्कार किया व विमानमें चढ़कर आकाशमार्गसे दोनों चले गये। जाते समय आपसमें बातचीत करते जा रहे थे कि अब सुभद्रा देवी को नहीं देनेपर सम्राट् छोड़ेगा नहीं। इसलिये नमिराजको जाकर मनाना होगा।

इधर भरतेश्वरने सभा में उपस्थित मित्रोंको भी बुलाकर उनका यथेष्ट सन्मान किया। मित्रगणभी जाते हुए चक्रवर्तीके दूरदर्शिताकी प्रशंसा करते हुये जा रहे थे। सम्राट् बहुत बुद्धिमान् हैं। गंभीर हैं जिस दिन विनमि आया उसी दिन उसे न डराकर इतने दिन अपने मनमें गुप्तरूपमें इस विषयको रखा। वह इसलिये कि विनमि मनमें दुःखी होकर वह यहाँसे जल्दी चला नहीं जाय। परन्तु अब सब कार्य

होनेके बाद, मंगलविवाह होनेके बाद यह सब वृतांत विनमिने कहा। देखो ! क्या बुद्धिमत्ता है ? सुभद्रादेवी के साथ विवाह कर लेनेकी इच्छा है। उसके प्रति मोह है। परन्तु अपने मुखसे उसे न कहकर उसे अनायास पानेके मार्गको तैयार कर रहे हैं। कमाल है ! इतनेमें कृतमाल आया। जयकुमारने आकर प्रार्थना की कि स्वामिन् आगे की आज्ञा होनी चाहिये। सम्राट्ने भद्रमुखको बुलवाकर कहा कि यह कृतमाल तमिस्रगुफाके अधिपति हैं। इसके साथ जाकर उत्तरकी ओर जानेके लिये मार्ग तैयार करो। तदनंतर हम यहाँ से आगे प्रस्थान करेंगे। पानीकी खाईको निकालकर वज्रकपाटको फोड़ा और गुफाके अंधकारको मिटानेके लिये काकिणीरत्नकी प्रभासे काम लेना। गुफा के बीचमें सिन्धुनदी दक्षिणमुख होकर बह रही है। साथमें पूर्व व पश्चिममें दो भयंकर नदियाँ आकर मिल गई हैं। पश्चिमसे निमग्न और पूर्वसे उन्मग्न नामक नदी भयंकर तरंगोंके साथ आ रही हैं। निमग्न तो उसमें जो भी पड़ते हैं उनको पातालको ले जाती है और उन्मग्न गेंदके समान आकाश में उड़ा देती है। इसलिये होशियारीसे जाना। सभी नदियोंको चर्मरत्नसे पार कर सकते हैं, परन्तु इनको पार करना नहीं हो सकता है। इसलिए आवश्यकता पड़े तो उन दोनों नदियोंपर पुल बाँधना चाहिए। पानीको स्पर्श न कर ऊपर से ही पुल बाँधना चाहिए। इस कामके लिए भूचरियोंसे काम नहीं चल सकता। अंबरचर व्यंतरों से ही यह काम हो सकेगा। फिर उस तरफ जाकर उत्तर दिशाकी ओरके कपाटको फोड़कर निकालें और हमारे आनेतक कृतमाल सेनाको लेकर वहींपर रहें। पुल बाँधनेका काम भद्रमुखका है। गुफाके संरक्षणका कार्य कृतमाल करे और खाई बनवाकर अंतके कपाटको फोड़नेका काम जयकुमार करें। इस प्रकार तीनोंको काम सौंप दिया और व्यंतरश्रेष्ठोंको बुलाकर उनको मददके लिए उनके साथ जानेको कहा। बुद्धिसागर सम्राट्के ज्ञानको देखकर आश्चर्यचकित हुआ। उसने कहा कि स्वामिन् ! आपने पहिले देखा ही हो जिस प्रकार वर्णन किया। आपका ज्ञान सातिशय है। भरतेश्वरने कहा कि बुद्धिसागर ! वहाँ जाकर देखनेकी क्या आवश्यकता है, इसमें क्या आश्चर्यकी बात है ? जैनशास्त्रोंका स्वाध्याय करनेवाले इस बातको अच्छी तरह जान सकते हैं। तुम भी तो उसको जानते हो। बुद्धिसागरने कहा कि स्वामिन् ! हम जानते तो जरूर हैं, परन्तु उसी समय भूल जाते हैं। परन्तु आपकी धारणाशक्ति

विशिष्ट है। इत्यादि प्रकारसे प्रशंसा की। भरतेश्वरने भी समयोचित सन्मान कर बुद्धिसागरको अपने स्थानमें भेजा व स्वतः महलकी ओर चले गये। आज अनेक रानियाँ उनकी दासियों से वियुक्त हैं। इसलिए वे शायद कुछ चिंतातुर होंगी। इसलिए उन सबको संतुष्ट करनेके लिए भरतेश्वर उधर चले गये।

भरतेश्वरके व्यवहारको देखनेपर उनके चातुर्यका पता लगता है। किसीको भी वे अप्रसन्न नहीं करते। अप्रसन्नता उपस्थित होनेके समय में भी सरस विनोदसंकथालाप कर सामने के व्यक्तिको प्रसन्न कर देते हैं। विनमिराजके वार्तालापसे पाठक इस बातका अनुभव करते होंगे। यह उनका सातिशय पुण्यका फल है। इसके लिये उन्होंने क्या किया है? वे रात्रिदिन परमात्माकी भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन्! सरस, सुमधुर बातोंसे ही दुष्ट कर्मोंकी निर्जरा करनेका सामर्थ्य तुममें है। क्योंकि तुम सुखाकर हो, इसलिये मेरे हृदयमें तुम सदाकाल बने रहो। हे सिद्धात्मन्! आप गुणवानोंके स्वामी हैं, सुज्ञानियोंके राजा हैं। मुमुक्षुओंके लिये आदर्शरूप हैं। इसलिये प्रार्थना है, मुझे द्विगुण चतुर्गुण रूपसे सुबुद्धि दीजियेगा।

इसी भावना का फल है कि सम्राट्को सर्व कार्योंमें अनायास जयलाभ होता है।

इति विनमिवार्तालाप संधि

—:०:—

वृष्टिनिवारण संधि

एक महीनेके बाद जयकुमारने आकर चक्रवर्तीसे कहा कि स्वामिन्! आपकी आज्ञानुसार सर्व व्यवस्था की गई है। लोगोंको उत्तरखंडमें जानेके लिये योग्य मार्ग तैयार किया गया। निमग्न और उन्मग्ननदीके ऊपर पुल भी बाँध लिया है। भूतारण्य देवारण्य नामक बड़े प्रसिद्ध जंगलके वृक्षोंको लाकर इस काममें उपयोग किया गया। इसलिये इस कार्यमें इतनी देरी लगी। वह पर्वत दक्षिणोत्तर पचास योजन प्रमाण है, उसके बीचोबीच पुलकी व्यवस्था की गई है। तमिस्र गुफाने मारीके समान मुँह खोला। तथापि वीरतासे प्रवेशकर कपाट को तोड़ा। तो भी स्वामिन्! मैं समझता हूँ कि मैंने इसमें कोई वीरताका कार्य

नहीं किया है। प्राण गये हुए शेरके नखको तोड़ना कोई बड़ी बात नहीं। इसी प्रकार अग्नि की ज्वाला शांत हुए गुफाका मैंने कपाट तोड़ दिया इसमें कौनसी बड़ी बात है। सचमुचमें महावीरोंके लिए भी असदृश कार्यको आपने किया है। भयंकर अग्निज्वालारूपी प्राण भी घबराकर चला जाए इस प्रकारकी वीरतासे सामनेके विशाल वज्र-कपाटका आपने विस्फोटन किया है। परन्तु मैं तो एक गिरे हुए मकान के पीछेके छोटेसे दरवाजेको ही खोला है, इसमें क्या बहादुरी है? स्वामिन्! विशेष क्या कहूं? आपके ही पुण्ययोगसे वह दरवाजा अनायास खुल गया। कृतमाल भी सम्राट्की सेवा पाकर अपनेको धन्य मानता है। वह कृतकृत्य हो गया, स्वामीकी आज्ञानुसार वह व्यन्तर सेनाओंको साथ लेकर गुफामुखमें पहरा दे रहा है। भूचरोंसे खाईं खुदवाई और खेचरोंसे पुलका कार्य कराया गया। इस प्रकार सेनापति व विश्वकर्माने निवेदन किया।

एक महीनेके बाद प्रस्थानभेरी बजनेके बाद वहांसे सेनाका प्रस्थान हुआ। सबसे आगे जयकुमार अनेक राजाओंके साथ जा रहा है। तदनन्तर व्यंतरोंकी सेना आ रही है। बीचमें गणबद्ध देवों के साथ भरतेश्वर जा रहे हैं। भरतेश अपनी सेनाके साथ सोपान मार्गसे चढ़कर उस गुफामें प्रवेश कर गये और आगे जाकर सिन्धु नदीके तटपर जा रहे थे। वहांपर भयंकर अन्धकार है, तथापि एक कोसमें एक काकिणीरत्न रखा गया है। उसके प्रकाशमें जानेमें सम्राट्की सेनाको कोई कष्ट मालूम नहीं हो रहा था। दिन रात्रिका विभाग यहांपर मालूम नहीं हो रहा था। यहां दिनमें भी अंधकार ही अंधकार रहता था, तथापि घड़ीकी सहायतासे दिन रात्रिके विभागको जानकर सम्राट् सायंकालके भोजन वगैरह संध्याकृत्यको करते थे। विवेकी भरत किसी भी जगह किसी कारणसे फँसनेवाले नहीं हैं। गुरु हंसनाथ परमात्माका ध्यान करते हुए स्थान-स्थानपर मुक्काम करते जा रहे थे। हमेशा स्त्रियोंकी सेना पीछे रहती थी, परन्तु उस गुफामें शायद वे डर जायेंगी ऐसा समझकर उन्हें अपने साथ ही ले जा रहे हैं। अर्ककीर्ति आदि पुत्रोंको बुद्धिसागर-के साथ भेजकर स्वयं स्त्रियोंका योगक्षेम विचारते हुए जा रहे थे। इतना ही नहीं, उस भयंकर गुफामें स्त्रियां डर जायेंगी इस विचारसे अपने अनेक रूप बनाकर उनके साथ भरतेश्वर विनोद संकथालाप करते जाते हैं। संगीत करनेवाली स्त्रियां अध्यात्म गायन कर रही हैं। उनमें आत्मकलाका वर्णन है। उनका अर्थ समझाते हुए भरतेश्वरको

बड़ा हर्ष होता था। दुनियामें सब लोगोंको कहीं सुख और कहीं दुःख होता है परन्तु विवेकियोंको सब जगह सुख ही सुख है, इस बातका साक्षात् अनुभव उस गुफामें भरतेश्वर कर रहे थे। इस प्रकार बहुत उत्साहसे उस भयंकर पुल व गुफाको आनन्दके साथ सम्राट्ने सेना-सहित पार किया।

कृतमालने सम्राट्के स्वागतके लिये पहलेसे ही गुफाके अनेक द्वारोंमें तोरण-बन्धनको किया था, उन सबकी शोभाको देखते हुए सम्राट् आगे बढ़ रहे हैं। उस अन्धकारमय गुफाको पार करनेके बाद सबको बड़ा हर्ष हुआ। जिस प्रकार तबेलेमें बँधे हुए घोड़ेको मैदानमें लानेपर वह जिस प्रकार आनन्दसे इधर-उधर दौड़ता है उसी प्रकार अंधेरेसे प्रकाशमें आनेपर उन स्त्रियोंके हृदयमें भी हर्ष उत्पन्न हुआ। गुफाके बाहर सब रानियोंके सुरक्षित रूपसे आनेपर चक्रवर्तीने अपने अनेक रूपोंको अदृश्य कर एक ही रूप बना लिया। इसी प्रकार उस गुफासे सर्व सेना बाहर निकल आई। सबसे पहले सम्राट् अपने पुत्र, मंत्री, सेनापति, पुरोहित आदिसे मिलकर अनन्तर मित्रगण, विद्वज्जन, कवि गायक आदि सभीसे उन्होंने कुशल प्रश्न किया। सम्राट्ने सेनापतिसे प्रश्न किया कि क्या सेनाके सभी लोग सुरक्षित रूपसे आ गये? सेनापतिने 'आ गये' इस प्रकारका उत्तर दिया। सम्राट् निश्चिन्त व संतुष्ट हुए। इस प्रकार उस गुफासे बाहर निकलनेके बाद उस मध्य म्लेच्छखण्डमें मुक्काम करनेका निश्चय हुआ। सम्राट्की आज्ञासे सेनापतिने सर्व व्यवस्था की। कृतमालको गुफाकी सुव्यवस्थितिके उपलक्ष्यमें अनेक उत्तमोत्तम उपहारोंको भेंट में दिये। तब वहांपर एक विचित्र व अपूर्व घटना हुई।

उस मध्य म्लेच्छखण्डमें चिलातराज और आवर्तकराज नामक दो प्रमुख राज्यपालन कर रहे हैं। वे बड़े अभिमानी हैं। उनको सम्राट्के आनेका समाचार मिला। वे कहने लगे कि कभी इस खण्डमें चक्रवर्ती नहीं आता है! आज यह क्यों आया? हम लोग इसके आधीन नहीं हो सकते। परन्तु युद्ध कर इसे लौटाना कठिन है। अन्य उपायोंसे ही इसे यहांसे वापिस भेज देना चाहिये इस विचारसे उन्होंने इस आपत्तिके समय कालमुख व मेघमुख नामके अपने कुलदेवोंकी आराधना की। वे दोनों देव प्रकट होकर कहने लगे कि आपलोगोंने हमें क्यों स्मरण किया है। बोलो! हमसे क्या कार्यकी अपेक्षा करते हो? उन दोनोंने उत्तर दिया कि देव! हमलोग तो आप लोगोंके भक्त हैं, तब दूसरोंको नम-

स्कार करना क्या उचित है? कालमुख व मेघमुख भक्तिसे जाकर कालवंश नरपतिके चरणोंको नमस्कार किया यह घटना ही आप लोगोंको अपमानके लिए पर्याप्त है। इसका उपाय होना चाहिये। इस प्रकार उन दोनों देवोंके चरणोंमें चिलातक व आवर्तक राजाने प्रार्थनाकी। तब देवोंने आश्वासन दिया कि आप लोग उठो। सात-आठ दिन तक ठहर जाओ। तब सब आपलोग देखें। उनके साथ युद्ध करके जीतनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है। तथापि ७-८ दिनतक बराबर मूसलाधार वृष्टि करके उनको जिस रास्तेसे आये हैं उसी रास्तेसे वापिस भेजते हैं। आप लोग चिंता न करें। इस प्रकार उन देवोंके कहनेपर दोनों राजा निश्चित होकर वहांसे चले गये। उसी समय आकाश बादलोंसे छा गया। हाथियोंके समूहके समान मेघपंक्ति एकत्रित हुई। काल राक्षसोंने शायद युद्ध करनेके लिये आकाशमें अपनी सेना रखी हो, इस प्रकार कालमेघसे सर्व आकाशप्रदेश भर गया। सचमुचमें उस समय प्रलयकालका ही भय सूचित हो रहा था। क्या नीलपर्वत ही आकर आकाश प्रदेशमें खड़े तो नहीं हुए? अथवा तमाललताओंने आकाश प्रदेशपर आक्रमण तो नहीं किया? इस प्रकारकी शंका उस समय उत्पन्न हो रही थी। चंद्र सूर्य आच्छादित हुए। दिनमें रात्रि हो गई। सर्वत्र अंधकार ही अन्धकार छा गया। वे दोनों देव पहिलेसे आगेके अनिष्टको सूचित कर रहे हो, मानो उस प्रकार बिजली चमक रही है। बिजली व इन्द्र धनुषके सम्मेलनसे ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद वे दोनों देव अपनी आंखोंको लाल करके क्रुद्ध दृष्टिसे नीचे की ओर देख रहे हों। वज्रकपाटका विस्फोटन कर जिस चक्रवर्तीने दुनियाको हिलाया और भयभीत किया, उसकी सेनाको भय उत्पन्न करनेके लिये बड़े जोरसे मेघगर्जना होने लगी। एक तरफसे बिजली चमक रही है एक तरफ आंधी बह रही है। शायद वह आंधी इस बातकी सूचना दे रही है कि आप लोग जल्दी यहांसे चले जाएं। प्रलयकालकी ही वृष्टि आ रही है। वह बड़े-बड़े घड़ोंसे ही पानी नीचे फैला रही हो, इस प्रकारका भास उस समय हो रहा है। मेघरूपी मदगजोंसे मदजल तो नहीं झर रहा है। अथवा मेघरूपी राहु विषको तो नहीं थूंक रहा है। इस प्रकार उस वृष्टिका भास हो रहा है। उस वृष्टिको देखते हुए ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद प्रलयकालकी ही बरसात हो उसकी धारा नारियलके वृक्षोंसे भी अधिक प्रमाणमें मोटी थी। उस समय सारी पृथ्वी जलमय हो गई। चारों तरफसे पानी भरकर सेनाके स्थान-

में पानी आने लगा। सब लोग घबराने लगे। चक्रवर्तीने छत्ररत्न व चर्मरत्नको उपयोग करनेके लिये आज्ञा दी। छत्ररत्नको ऊपरसे लगाकर ऊपरके पानीको रोका व चर्मरत्नको नीचेसे लगाकर नीचेकी ओरसे आनेवाली पानीको बन्द कर दिया। चक्रवर्तीकी सेना ४८ योजन लंबे और ३६ कोश चौड़े स्थानमें व्याप्त है। उतने प्रदेशोंमें छत्र व चर्मरत्न भी व्याप्त है। चर्मरत्नको शायद लोग चमड़ा समझेंगे। परन्तु वह चमड़ा नहीं है, अत्यन्त पवित्र है, वज्रमय है। उसे वज्रमय होनेसे रत्नके नामसे कहते हैं। छत्ररत्नको सूर्यप्रभुके नामसे कहते हैं। ये दोनों रत्न पुण्यनिर्मित हैं, असाधारण हैं।

ऊपरके उपसर्गको छत्ररत्न रोककर दूर कर रहा है, नीचेके उपसर्गको चर्मरत्न निवारण कर रहा है। चक्रवर्तीका पुण्य जबर्दस्त रहता है। उस मूसलधार वृष्टिसे सेनाकी रक्षा दोनों रत्नोंसे हो तो गई परंतु सेनामें अंधकार छाया हुआ है। उसे काकिणीरत्नसे दूर किया। लोगोंमें उस समय अन्धकारसे जो चिन्ता छाई हुई थी उसे उस काकिणीरत्नने दूर किया, अतएव उसे उस समय चिताहृतिके नामसे लोग कहने लगे। सबके रूपको दिखानेके कारणसे चक्ररत्नको सुदर्शन नाम पड़ गया। पानी मूसलाधार होकर बराबर पड़ रहा है। सम्राट्ने सोचा कि शायद इस प्रदेशमें पानी अधिक पड़ता होगा। इसी विचारसे पानीकी शोभाको देख रहे हैं, जैसे कि एक व्यापारी जहाजमें बैठकर समुद्रकी शोभा देख रहा हो। देश व कालके गुणसे यह पानी बरस रहा है, कल या परसोंतक बंद हो जायगा, इस प्रकार भरतेश्वर प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु पानी सात दिनतक बराबर बरसता रहा। भरतेश्वर विचार करने लगे कि रात्रि दिन निरवकाश होकर बह रहा है। सात दिनोंसे बरसनेपर भी उल्टा बढ़ता ही जा रहा है, कम नहीं होता है। इससे सेनाके भयभीत होनेकी संभावना है। आकाश और भूमि पानीसे एकस्वरूप हो रहे हैं। जमीनको देखते हुए समुद्रके समान हो गया है। ताड़वृक्षसे भी अधिक प्रमाणमें स्थूल धारसे यह पानी पड़ रहा है। यह मनुष्योंका कार्य नहीं है। यह अवश्य दैवीय करतूत है। नहीं तो सात दिन तक बराबर नहीं बरसता। मागधामर व जयकुमारको बुलाकर कहा गया कि आप लोग जरा बाहर जाकर देखें कि क्या यह देवकृत चेष्टा तो नहीं है? जयकुमार और मागधामरने देखा कि ऊपर आकाशमें देवगण खड़े होकर यह सब कर रहे हैं। तब सम्राट्को नमस्कार कर दोनों आकाशमें चले गये, उनके पीछे अनेक व्यंतर भी

आकाश मार्गपर उड़ गये। इन स्वामिद्रोहियोंको पकड़ो! मारो! छोड़ो मत! इत्यादि शब्दोंको उच्चारण करते हुए उन देवोंका पीछा किया। देवोंने पानी बरसाना बंदकर युद्धके लिये प्रारम्भ किया। उसमें भी विद्याधरोंने उनको परास्त किया तो वे अग्निकी वर्षा करने लगे। विद्याधरोंने अग्निस्तंभविद्यासे उसको रोका। इस प्रकार व्यंतरों ने अनेक प्रकारसे उनको पराजित किया तो वे देव एक तरफ जाकर अपने परिवारके साथ खड़े हो गये। इधर मागधामर आदि व्यंतर उनको दबाते ही जा रहे हैं। उधरसे जयकुमार पीछेसे उनको दबा रहा है। भरतेशके साथमें द्रोह करना सामान्य काम नहीं है, व्यर्थकी उद्दंडता मत करो। इस प्रकार पहिलेसे कहनेपर इन लोगोंने नहीं माना, घमंडसे अनेक मायाकृत्योंको करने लगे। इन स्वामिद्रोहियोंको छोड़ो मत! मारो, कूटो, पीटो इत्यादि शब्द कहते हुए उधरसे जयकुमार दबा रहे हैं। जयकुमारको देखते ही मागधामर आदि चक्रवर्तीके पुण्यकी सराहना करने लगे।

अब देवोंने देखा कि हम लोग इनसे बच नहीं सकते हैं। इसलिये किसी तरह जान बचाकर भागना चाहिये, इस विचारसे कौवे जिस प्रकार आकाशमें उड़ते हैं उड़कर जाने लगे। उस समय जयकुमारने उस कालमुख और मेघमुखको पकड़ने के लिए आदेश किया। परंतु दोनों डरके मारे भाग गये। कहीं इनके हाथमें आयेंगे इस भयसे हिम-वान् पर्वतको उल्लंघन कर भागे और छिप गये।

अभीतक चिलातक राजा अपने कुलदेवोंके उपद्रवको देखते हुए बहुत ही प्रसन्न हो रहा था। परन्तु जब यह मालूम हुआ कि वे कुलदेव अब भयभीत होकर भाग गये हैं तो उसको भी भय मालूम हुआ, वह अब अपनी जान बचानेके लिए किसी गुप्त स्थानमें जाकर छिप गया। परन्तु आवर्तक तो यह सोच रहा था कि बरसात बंद हुई तो क्या हुआ? हमारे कुलदेव अभी युद्ध करके शत्रुओंको भगायेंगे। इस विचारसे वह बराबर उस ओर देख ही रहा था इतनेमें जयकुमार आदिने आकर उसे घेर लिया। चिलातक राजा यद्यपि जाकर जंगलमें छिप गया था, उसे व्यंतरगण जान सकते थे। तथापि डरके मारे छिपे हुएको पकड़ना उचित नहीं है। उसे जाने दो। उसकी खबर कल लेंगे। इस प्रकार कहकर आवर्तक राजाको पकड़कर ले गये। उस युद्धमें लड़नेवाले भूत अनेक वहाँपर थे। परन्तु जयकुमार केवल आवर्तक राजाके ही दोनों

हाथोंको बाँधकर उसे राजाकी ओर ले गया। उस समय सूर्य उदय हो गया था। भरतेश्वर दरबार लगाकर विराजमान हुए हैं। जयकुमारने कैदीको लाकर सम्राट्के सामने खड़ा कर कहा कि स्वामिन्! यही स्वामिद्रोही है। इसीने देवोंकी सहायतासे हमको कष्ट पहुँचाया है।

भरतेश्वर -सीधेसाधे मेरे पासमें न आकर उद्दण्डतासे युद्ध करनेकी भावना क्या इस दुष्टने की थी? इस पापीके मुकुटपर लात मारो, क्यों खड़े-खड़े देखते हो? इस प्रकार भरतेश्वरने क्रोधसे कहा! सेनानायक उसे लात मारनेके लिये आगे बढ़ा तो सम्राट्ने उसे रोका व एक चपरासीको आज्ञा दी की तुम लात दो! सम्राट् की आज्ञा पाकर चक्रवर्तीके पादत्राणको सम्हालनेवाले चपरासीने उसे अपने बांये पैरसे लात दिया। आवर्तकराजाका मुकुट ढंढण शब्द करते हुए जमीनपर पड़ गया, मानो वह शब्द शायद घोषित कर रहा था कि भरतेश्वरके साथ उद्दण्डता करनेवालोंकी यह हालत होती है। भरतेश्वरने सेनापतिको आज्ञा दी कि इस दुष्टको हमारे सामनेसे ले जाओ और नजर कैदमें रखो। आज्ञा पाते ही जयकुमारने उसके बँधे हुए हाथोंको खुलवाये व एक मकानमें ले जाकर कैद रखनेकी व्यवस्था की। भरतेश्वरने जयकुमार और मागधामरसे कहा कि आप लोगोंने बहुत अच्छा काम किया है। आज आप लोग जाएँ। कल मैं आप लोगोंका सत्कार करूँगा, सेनाको भी आज विश्रांति मिलने दो। इस प्रकार कहते हुए वे महलमें चले गये। इस प्रकार भरतेश्वरने दुष्टोंका निग्रह किया और शिष्टोंका संरक्षण भी करेंगे। यही उनका क्षात्रधर्म है।

भरतेश्वरका पुण्य जबर्दस्त है। विजयार्ध पर्वतके तमिस्र गुफा, सिन्धु आदि नदियोंको पारकर आगे बढ़ना कोई सामान्य कार्य नहीं है। वहाँपर उन्मग्न, निमग्न नामक दो भयंकर भौंवरे हैं। वज्रमय कपाटोंको तुड़वाकर उन भयंकर नदियोंपर पुल बँधवाकर उत्तर खण्डमें आप पहुँचे हैं। यहाँ पर आते ही यह आपत्ति खड़ी हो गई। उसे भी निरायास ही उन्होंने दूर किया तो यह सब उनके पूर्वसंचित पुण्यका ही फल है। भरतेश्वर सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि :--

हे परमात्मन्! शरीररूपी तमिस्र गुफामें रागद्वेषरूपी नदी मौजूद है। उसे पार करनेके लिए आप चिद्धन (ज्ञानधन) रूपी पुलको बाँधते हैं। उससे उस नदीको उल्लंघन करते हैं। इसलिए

हे दिव्यलोचन ! मुझे भी इस प्रकारकी सुबुद्धि दीजियेगा। भगवन् ! कृत्रिमवृष्टिकी तो मामूली बात है। कर्मके आस्रवरूपी वृष्टि अनंतानंत कार्माणवर्गणाके समूहसे प्रतिसमय हमपर पड़ती है। उसे आत्मध्यान-रूपी उत्कृष्ट छत्रसे आप निवारण करते हैं। इसलिए हे निर्ममाकर ! आप मेरे हृदयमें सदा बने रहें जिससे मैं किसी अकृतिम अलौकिक वृष्टिसे भी भयभीत न हो सकूँ।

इस प्रकारकी भावनाका ही फल है कि सम्राट्के संकट हरसमय लीलासे टलते जाते हैं।

इति वृष्टिनिवारण संधि

—०—

सिंधुदेविय्राशिर्वाद संधि

सात दिनतक भयंकर वृष्टि होनेसे भरतेश्वरकी रानियोंके चित्तमें एकदम उदासीनता छा गई थी। भरतेश्वरने दो दिनतक महलमें रह-कर उनके हृदयमें हर्षका संचार किया। जिस प्रकार ओस पड़कर मुरझाये हुए कमलोंको सूर्यसे प्रफुल्लित करता है, उसी प्रकार उन म्लान मुखी रानियोंको गुणशाली भरतेश्वरने आनंदित किया। अंदरसे स्त्रियोंको प्रसन्न करके बाहर दरबारमें आये व जयकुमार आदि वीरोंको सम्बोधन कर कहने लगे कि आप लोगोंने युद्धमें बहुत कष्ट उठाया, बड़ी मेहनत की। सम्राट्के वचनको सुनकर जयकुमार आदि वीर बोले कि स्वामिन् ! हमें क्या कष्ट हुआ ? आपके दिव्यनामको स्मरण करते हुए हम लोग युद्ध करते हैं। उसमें सफलता मिलती है। इसमें हमारी वीरता क्या हुई। सब कुछ आपकी ही कृपाका फल है। स्वामिन् ! हम झूठ नहीं बोल रहे हैं। आपका पुण्य अनुपम है। हम लोग जब उन मायाचारी देवताओंको इधरसे दबाते हुए जा रहे थे इतनेमें उधरसे अकस्मात् ही दो देव अपनी सेनाके साथ उनको दबाते हुए आ रहे थे, साथमें आपके नामको भी उच्चारण कर रहे थे। वे उधरसे आ रहे थे, हम इधरसे आ रहे थे। बीचमें फँसे हुए देवताओंने देखा कि अब बिलकुल बच नहीं सकते हैं, इसलिए वे एकदम जान बचाकर भाग गये। जयकुमारके निवेदनको सुनकर सम्राट्ने मागधामरसे प्रश्न किया कि मागध ! वे दोनों देव कौन थे। मागधामर कहने लगा कि स्वामिन् ! वे दोनों हमारे व्यन्तरोंके लिए माननीय

प्रतिष्ठित देव हैं, एक गंगादेव हैं और दूसरा सिंधुदेव है। उन दोनोंके आनेपर वे दुष्ट पिशाच एकदम भाग गये। दोनों देव कल या परसों तक आकर सम्राट्के चरणोंका दर्शन करेंगे। चक्रवर्तीको यह समाचार सुनकर हर्ष हुआ एवं दोनों देवोंके प्रति हृदयमें प्रेम उत्पन्न हुआ। उस समय युद्धमें गये हुए सर्व वीरोंका अनेक वस्त्राभरण वगैरह प्रदान कर सन्मान किया एवं कुरुवंशके तिलक सोमप्रभ राजाके पुत्र जयकुमार को उसकी वीरतासे प्रसन्न होकर अलौकिक उपहारोंको प्रदान किया एवं उससे कहा कि जयकुमार! आज तुमने मेघमुख देवताको परास्त किया है। इसलिए आजसे तुम्हें मेघेश्वरके नामसे उल्लेख किया जायगा। विशेष क्या ? तुम्हारे लिए मैं वीराग्रणी यह उपाधि प्रदान करता हूँ। तुम्हारी वीरतासे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। उस समय सभी विद्वानोंने इसकी अनुमोदना की। सम्राट्ने अपने कोमल हस्तसे जयकुमारकी पीठको ठोकते हुए प्रेमसे कहा कि जयकुमार! तुम मेरे लिए अर्ककीर्तिके समान हो। तुम्हारी वीरकृतिपर मुझे अभिमान है। जयकुमार भी प्रसन्न हुआ। हर्षसे चरणोंमें पड़कर कहने लगा कि स्वामिन्! मैं आज धन्य हुआ। स्वामिन्! आवर्तकके भाई माधव व चिलात राजा चरणोंके दर्शन करनेकी इच्छासे बाहर आकर खड़े हैं। परन्तु पहिले द्रोह करनेके कारणसे डर रहे हैं। इसलिए आज्ञा होनी चाहिए।

सम्राट्ने कहा कि वे दोनों द्रोही तो हैं। उन दोनोंको देखनेकी आवश्यकता नहीं है तथापि तुम्हारे वचनकी उपेक्षा करना भी ठीक नहीं है। इसलिए उनको मेरे सामने बुलाओ। इस प्रकार उदार हृदयी व मन्दकषायी भरतेश्वरने कहा। जयकुमारने दोनोंको लाकर सामने हाजिर किया। दोनों देवोंने हाथ जोड़कर भरतेश्वरके चरणोंको भक्ति से नमस्कार किया व प्रार्थना करने लगे कि स्वामिन्! आप शरणागतोंके लिए वज्रपंजर हैं। अतएव हमारी भी रक्षा करें। भरतेशने उनको पूर्ण अभयदान दिया। उन दोनोंने उठकर अनेक वस्त्राभूषणोंको भरतेश्वरकी सेवामें समर्पण किये। साथमें जयकुमारने सम्राट्के कानमें सूचित किया कि ये स्वामीकी सेवामें कुछ कन्याओंको भी समर्पण करना चाहते हैं। सम्राट्ने धीरेसे उत्तर दिया कि यह समय नहीं है, तब जयकुमारने उनको इशारा किया।

सम्राट्ने माधव व चिलातको बुलाकर उनको अनेक उत्तमोत्तम

वस्त्राभरणोंको देते हुए कहा कि आप लोग दोनों जावें और अपने राज्यमें सुखसे रहें। आवर्तककी उद्दण्डताके लिए हमने उसे उचित दण्ड दिया है। अब उसे देख नहीं सकते। माधव! तुम उसे ले जाओ, अपने राज्यमें उसको कुछ अलग सम्पत्ति देकर उसे रखो। मेरे हृदयमें अब कोई क्रोध नहीं है। आगे समय जानकर आप लोग मेरे पास आ सकते हैं। इस प्रकार उन दोनोंको भेजकर सेनापति जयकुमारसे सम्राट्ने कहा कि मेघेश्वर! तुम अब पश्चिमखण्डको वशमें करनेके लिए जाओ और विजयकुमारको सेनासहित पूर्व खण्डमें जाने दो। भरतेश्वरकी आज्ञानुसार वे दोनों चले गये।

इधर विजयार्धदेवने आकर भरतेश्वरको भक्तिसे नमस्कार किया व कहने लगे कि स्वामिन्! आप अद्भुत पुण्यशाली हैं, जहाँ जाते हैं वहीं सभी आकर शरणागत होते हैं। सम्राट्ने बीचमें ही बात काटकर कहा कि उसे जाने दो। विजयार्धदेव! हिमवन्त मेरे पास संतोषके साथ आकर शरणागत होगा या उसे कुछ भयभीत करनेकी आवश्यकता होगी? विजयार्धने कहा कि स्वामिन्! हिमवन्तदेव उग्र स्वभावका नहीं, मैं शीघ्र ही वहाँ जाकर उसे आपके पादमें ले आऊँगा। ऐसा कहकर वह वहाँसे चला गया। इतनेमें नाट्यमाल नामक देव आया। उसने सम्राट्को साष्टांग नमस्कार किया। मागधामरने परिचय कराया कि स्वामिन्! यह खंडप्रताप गुफाके अधिपति नाट्यमालदेव हैं। भरतेश्वरने भी उसका सन्मान कर कहा कि अब इसे संतोषसे हमारी सेनामें रहने दो। इस प्रकार सबको संतोषसे भेजकर पुनः दूसरे दिन दरबारमें आसीन हुए।

गंगादेव और सिन्धुदेव चक्रवर्तीके दर्शनार्थ आये हैं। उन्होंने पहिले आकर मागधामरसे कुछ कहा। मागधामर अपने साथ वरतनु आदि व्यन्तरोंको लेकर चक्रवर्तिके पास गया व वहाँपर चक्रवर्तीके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया। सम्राट्को आश्चर्य हुआ कि आज बात क्या है? मागध! प्रभास! वरतनु! आप लोग इस प्रकार क्यों कर रहे? बात क्या है? कहो तो सही! तब मागधने कहा कि स्वामिन्! हम सेवामें कुछ निवेदन करना चाहते हैं। उसे सुननेकी कृपा होनी चाहिये। आज तो स्वामीके दर्शनके लिये गंगादेव और सिन्धुदेव आ रहे हैं वे व्यंतरोंके लिये पूज्य हैं। जिनेन्द्रके परमभक्त हैं। आपके प्रति भी उनके हृदयमें पूर्णभक्ति है, इस बातको आप जानते ही हैं! अतएव उनको कुछ आदरपूर्वक आनेकी आज्ञा होनी चाहिए। अर्थात् वे केवल भेंटको

चरणोंमें रखकर खड़े-खड़े ही नमस्कार करेंगे। इसके लिये अनुमति मिलनी चाहिये।

भरतेश्वर हँसते हुए कहने लगे कि मागध! इतनी ही बात है! आप लोग इस मामूली बातके लिये इतने चिंतित क्यों होते हैं? तथास्तु। तुम्हारी बातकी मैं कभी उपेक्षा कर सकता हूँ? उनको आनेके लिए कहो। इतनेमें गंगादेव व सिन्धुदेव आये, चक्रवर्तीके सामने भेंट रखकर अपने लिये योग्य आसनपर बैठ गये। समय जानकर सम्राट्ने कहा कि गंगादेव! हमारे प्रति हित करनेवालोंको क्या मैं पहचानता नहीं? क्या आप लोगोंको मैं उपेक्षित दृष्टिसे देख सकता हूँ? इतने संकोचसे आनेकी क्या जरूरत थी? गंगादेव व सिन्धुदेवने कहा कि स्वामिन् हमने आपका क्या हित किया है। तीन लोकमें आपका सामना कौन कर सकते हैं? हमें कोई संकोच नहीं था। परन्तु आपके सेवक व्यंतरोंके हृदयमें जो पूज्यभाव हमारे प्रति है उसीने थोड़ा संकोच उत्पन्न किया। आप कोई सामान्य राजा नहीं हैं। षट्खंड भूमिको एक छत्राधिपत्यसे संरक्षण करनेवाले महापुरुषके दर्शनको एकदम लेनेमें हमें भी मनमें संकोच होने लगा था। अपरिचितावस्थामें यह साहजिक ही है। स्वामिन्! जो आपका विरोधी है वह स्वतःका विरोधी है। जो आपका हितैषी है वह स्वतःका भी हितैषी है। उद्दण्डोंके गर्वको तोड़नेकी, शरणागतोंको संरक्षण करनेकी सामर्थ्य जिसमें है, आप ऐसे भाग्यशाली का दर्शन बहुत पुण्यसे ही प्राप्त होता है। इस प्रकारके उनके विनयको देखकर व्यन्तरोंने कहा कि सचमुचमें आप लोगोंने सम्राट्के सहज गुणोंका ही वर्णन किया है। सचमुचमें ये अलौकिक महापुरुष हैं। भरतेश्वरने समय जानकर कहा कि विशेष वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है? आप लोगोंके विनयको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अधिक क्या कहूँ। आजसे आप लोग हमारे कुटुम्बवर्गमें गिने जायेंगे। आपलोगोंके साथ हमारे रोटी-बेटी व्यवहार तो नहीं हो सकेगा। परन्तु वचनसे ही बन्धुत्वका व्यवहार कायम हो सकेगा। आजसे आप लोग हमारी रानियोंको आपकी बहिन समझें और आपकी देवियोंको हम अपनी बहिन समझेंगे। भरतेश्वरकी इस विशिष्ट उदारताको देखकर पासके व्यन्तरगण कहने लगे कि गंगादेव और सिन्धुदेव महान् पुण्यशाली हैं जिन्होंने कि आज चक्रवर्तीके साथ बन्धुत्वका भाग्य पाया है। तदनंतर गंगादेव और सिंधुदेवको अनेक उपहारोंको देते हुए सम्राट्ने कहा कि आप लोग आज अपने स्थानमें जाएँ।

हम कल ही वहाँपर आयेंगे। आपके यहाँ जो जिनेन्द्र बिम्ब है उसके दर्शन करनेकी हमें अभिलाषा है। भरतेश्वरकी आज्ञा पाकर दोनों देव वहाँसे सन्तोषके साथ अपने स्थानपर चल गये।

दूसरे ही दिन भरतेश्वरने वहाँसे प्रस्थान किया। कई मुक्कामोंको तय करते हुये सिन्धु नदीके तटपर पहुँचे। सिन्धुदेवने वहाँपर भरतेश्वर का अपूर्व स्वागत किया। उत्तमोत्तम रत्न, वस्त्र आदिको समर्पण करते हुए भरतेश्वरका सन्मान किया। भरतेश्वरने विचार किया कि आजका दिन इसके उपचारमें बिताकर कल यहाँपर सिंधु नदीके तीर्थमें स्नान कर फिर आगे प्रस्थान करेंगे। सो सम्राट्ने आकाशको स्पर्श करनेवाले हिमवान् पर्वतमें उत्पन्न होकर दक्षिणाभिमुख होकर जमीनमें गिरने-वाली सिंधुनदीको देखा। जमीनपर एक वज्रमय छोटा पर्वत मौजूद है, जिसके ऊपर स्फटिकमणिसे निर्मित एक जिनबिंब है। उसके मस्तक पर यह नदी पड़ रही है। वह बिंब सिंहासनमें विराजमान है। उस-पर वह पानी पड़नेसे लोकमें भक्तगण ईश्वर अपने मस्तकपर गंगाको धारण करता है, इस प्रकार कहते हैं। द्विजोंके साथ युक्त होकर भरतेश्वरके मंत्री बुद्धिसागरने उस तीर्थमें स्नान किया एवं जिनेंद्र-बिंबकास्तोत्र करने लगा। इसी प्रकार वे सर्व भूसुर (ब्राह्मण) पुण्य-तीर्थमें स्नान कर सहस्रनाममंत्रके पाठको करते हुए श्री सर्वज्ञ प्रतिमा-का जप कर रहे थे। इस पुण्यशोभाको सम्राट् बहुत आनंदके साथ देख रहे हैं। अपनी नाकको हाथसे दबाकर कोई प्राणायाम कर रहे हैं। कोई आचमन कर रहे हैं और कोई सुन्दर मंत्रोंको उच्चारण करते हुए अर्हन्नामकी स्तुति कर रहे हैं। इन सबकी भक्तिको देखकर सम्राट् मन-मनमें ही प्रसन्न हो रहे हैं। मनमें विचार करते हैं कि ये पुरुनाथ (आदिप्रभु) की आदिसृष्टिके हैं, अतएव शिष्ट हैं। इस प्रकारकी परिणामशुद्धि सबमें कहाँसे आ सकती है।

इतनेमें वहाँ स्नान करनेवाले द्विज अब चक्रवर्ती तीर्थस्नानके लिए आयेंगे इस विचारसे जल्दी वहाँसे निकल गये। सम्राट् अपनी रानियों-के साथ उस तीर्थमें प्रविष्ट हुए। अपनी रानियोंको तीर्थकी शोभा दिखलाकर बहुत भक्तिसे जिनेंद्रबिंबकी स्तुति भरतेश्वरने की। स्नान करनेके बाद सभी द्विजोंको दान दिया। तदनंतर मंत्रीको आज्ञा दी कि इनको अच्छी तरह भोजन कराओ। विप्रोंने सम्राट्को "पुत्र पौत्रादिके साथ सुखजीवी बनो" इस प्रकार आशीर्वाद दिया।

इतनेमें सिंधुदेवने आकर सम्राट्के कानमें कहा कि स्वामिन्!

आपकी बहिन आपका दर्शन करना चाहती है। आज्ञा होनी चाहिये। तब चक्रवर्तीने सभी द्विजोंको वहाँसे भेजकर स्वयं महलमें प्रविष्ट हुए। वहाँपर अपनी रानियोंके साथ विराजमान हुए। इतनेमें वहाँपर अनेक देवांगनाओंके परिवारके साथ रत्नाभरणोंसे शृंगारित होकर सिंधुदेवी सम्राट्के पास आई, उसको देखनेपर वह सचमुचमें चक्रवर्तीकी बहिनके समान ही मालूम हो रही थी। अपने नवीन भाई के पास वह बहिन पहिले ही पहल आ रही थी। अतएव उसे कुछ संकोच हो रहा था। परंतु भरतेश्वरने, बहिन ! भय क्यों ? निस्संकोच आओ। इस प्रकार कहकर उसके संकोचको दूर किया। सिंधुदेवीने पासमें जाकर मोतीकी अक्षताओंको समर्पण करते हुए भाई ! चिरकालतक सुखसे जीते रहो, इस प्रकारकी शुभभावना की। साथ ही तुम अविचललीलासे षट्खंडराज्यकी संपत्तिको पाकर तुम सुखी हो जाओ। इस प्रकार कहती हुई सिंधुदेवीने तिलक लगाया। आकाश और भूमिपर तुम्हारी धवलकीर्ति सर्वत्र फैले। इस प्रकार आशीर्वाद देती हुई अपने भाईको दिव्य वस्त्रको प्रदान किया। इसी प्रकार "कोई भी तुम्हारे सामने आवे उसे अपने वशमें करनेकी वीरता तुममें अक्षय होकर रहे।" इस प्रकार कहकर भाईके हाथमें वीरकंकणका बंधन किया। इसी प्रकार भरतेश्वरकी रानियोंको भी "आप लोग एक निमिष भी" अपने पति-विरहके दुःखको अनुभव न कर चिरकालतक संततिके साथ सुखसे रहो" इस प्रकार आशीर्वाद देते हुए उनको भी देवांगवस्त्रोंको समर्पण किया। आप लोग कभी बुढ़ापेका अनुभव न करें, चिंता स्वप्नमें भी आपके पासमें न जाएँ। सदा जवानी बनी रहे, इत्यादि आशीर्वाद दिया।

उन रानियोंने विनयसे कहा कि हम आपके आशीर्वादको ग्रहण करती हैं, वस्त्रकी आवश्यकता नहीं। परंतु उसी समय भरतेश्वरने कहा कि मेरी बहिनके द्वारा दिये हुए उपहारको ले लेना चाहिये। तिरस्कार करना ठीक नहीं है। तब सब स्त्रियोंने सिंधुदेवीके उपहारको ग्रहण कर लिया। सिंधुदेवी कहने लगीं कि देवियों ! मेरे भाईने जब मेरे दिये हुए पदार्थको ग्रहण कर लिया तो आप लोगोंकी बात ही क्या है ? इस प्रकार कहती हुई सब रानियोंको एक-एक रत्नहारको समर्पण किया। इसी प्रकार उन सब रानियोंको तिलक लगाकर सत्कार किया, फिर भरतेश्वरसे कहा कि भाई ! आप लोग आये, हमें बड़ा हर्ष हुआ। अब यहाँपर एक दिन मुक्काम कर आगे जाना चाहिये,

बहिनकी इतनी प्रार्थनाको अवश्य स्वीकार करें। भरतेश्वरने संतोषसे उसे स्वीकार कर लिया। सिंधुदेवी कहने लगीं कि भाई हम व्रतधारी नहीं हैं। अतएव हमारे हाथसे आप आहार ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इसलिए मैं सब भोजनके सामानको तैयार कर देती हूँ। आप अपने परिचारकोंसे भोजन तैयार करावें। उसी प्रकार हुआ। दोनों समय भरतेश्वरने अपनी रानियोंके साथ आनंदसे भोजन किया। दूसरे दिन सिंधुदेवीको बुलाकर उसका सन्मान किया।

सिन्धुदेवी! बहिन! आओ, पहिले मेरी एक बहिन थी। उसका नाम ब्राह्मिलादेवी था। उसका शरीर और तुम्हारा शरीर मिलता-जुलता है। वह कैलासमें दीक्षा लेकर तपश्चर्या कर रही है। तुझे प्राप्तकर उसके वियोगके दुःखको मैं भूल गया हूँ। अब मेरे लिए तुम ही ब्राह्मिलादेवी हो।

इस प्रकार स्नेहभरे वचनोंको सुनकर सिंधुदेवी कहने लगी कि भाई! मैं आज कृतकृत्य हो गई हूँ। देवाधिदेव आदिप्रभुकी पुत्री, षट्-खण्डाधिपतिकी बहिन कहलानेका भाग्य मैंने पाया है, इससे बढ़कर और क्या चाहिये। इसके बाद सम्राट्ने नवनिधियोंकी ओर इशारा कर बहिनको नवरत्न-वस्त्र-आभरणादिसे यथेष्ट सत्कार किया। इसी प्रकार परिवार देवियोंको, सिंधुदेव आदिको कल्पवृक्षके समान ही विपुल उप-हारोंसे सन्मान किया। तदनंतर भरतेश्वरकी रानियोंने मोतीका हार, मुद्रिका आदिसे सिंधुदेवीका सत्कार किया। सिंधुदेवीने यह कहते हुए कि मैंने जब दिया था आप लोगोंने लेनेसे इन्कार किया था। अब मुझे क्यों दे रही हैं, लेनेके लिए संकोच किया। तब रानियोंने क्या हमने नहीं लिया था? यह कहकर जबर्दस्तीसे दिया। अन्योन्य विनयसे सदाकाल रहना अपना धर्म है, इसी प्रकार प्रेमसे सदा रहें। इस प्रकार कहते हुए सब लोगोंने विदाई ली।

भरतेश्वर जहाँ जाते हैं, उनको आनंद ही आनंद रहता है। मनुष्य, देव, व्यंतर आदि सभी उनके बंधु हो जाते हैं। मनुष्योंमें देखें तो भी उनके गुणोंपर मुग्ध हैं। देवगण जरासी देरमें उनके किंकर होते हैं। उन्होंने अपनी दिग्विजय यात्रामें कहीं भी असफलताका अनुभव नहीं किया। किसीने अदूरदर्शितासे उनके साथ प्रतिद्वन्दिता करनेके लिए प्रयत्न किया तो वे बादमें पछताये। दिनपर दिन उन्हें अपूर्व उत्सवों-का अनुभव होता है। सिंधुनदीमें तीर्थस्नान करनेका भाग्य एवं सिंधु-

देव व सिंधुदेवीसे प्राप्त सन्मानको पाठक भूले नहीं होंगे। यह उनके सातिशय पुण्यका फल है।

भरतेश रात्रिदिन इस प्रकारकी भावना करते हैं :—

हे परमात्मन्! तुम स्वपरहितार्थ हो! तुम तीर्थके रूप हो। संपूर्ण शास्त्रोंके सारार्थस्वरूप हो! मुक्तिके लिए मूलभूत हो! अतएव मेरे हृदयमें सदा बने रहो। हे सिद्धात्मन्! थके हुए इन्द्रियोंको शांत कर आगे तपश्चर्याके लिए समर्थ बनानेकी शक्ति आपमें मौजूद है। अतएव आप विशिष्ट बलवान् हैं। जगमें अति बलशाली हैं। मेरे हृदयमें भी सन्मति प्रदान करें।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वरका समय सदा सुखमय ही बना रहता है। अत्युत्कट संकट भी टलकर भरतेश्वर सिंधुके तीर्थमें स्नानकर श्रीजिनेन्द्रके दर्शनको भी कर सके।

इति सिंधुदेवि-आशीर्वाद संधि

—:o:—

अंकमाला संधि

सिंधुदेवसे आदरके साथ विदाई पाकर तथैव गुणसिंधु भगवंतको स्मरण करते हुए भरतेश्वरने आगे प्रस्थान किया। एक दो मुक्कामको तय करते हुए सिंधुके तटमें ही फिरसे मुक्काम किया। वहांपर हिमवंतदेव अपने परिवारके साथ आया। विजयार्धदेव उसे ले आनेके लिए गया था, पाठकोंको स्मरण होगा। विजयार्धदेव उसे लेकर आया है। भरतेश्वरसे "स्वामिन्! यह हिमवान् पर्वतके अग्रभागपर रहता है। सज्जन है, आपके दर्शनके लिए आया है।" इस प्रकार विजयार्धदेवने उसका परिचय कराया। हिमवंतदेवने आकर अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभरणोंको चक्रवर्तीके सामने भेंटमें रखकर साष्टांग नमस्कार किया। साथही चंदन, गन्ध, गोशीर्ष, महौषध आदि अनेक उत्तम पदार्थोंको समर्पण किया। भरतेश्वरने भी उसे उपचार सत्कारसे आदरके साथ योग्य आसन पर बैठा दिया। विजयार्धदेव भी बैठ गया।

भरतेश्वर अब पश्चिम दिशासे गंगाकूटकी ओर प्रयाण कर रहे हैं। उस समय उनको दाहिने भागमें सुन्दर हिमवान् पर्वत दिख रहा था। उसके सौंदर्यको देखकर मागधामरसे सम्राट् कहने लगे कि मागध!

इस पर्वतमें भी विजयार्धके समान ही एक दरवाजा होता तो अपने आगेकी शोभा देखनेके लिए जा सकते थे। आगे क्या-क्या स्थान हैं ? बोलो तो सही। मागधामर विनयसे कहता है कि स्वामिन्! आपका कहना सत्य है। परन्तु हिमवान् पर्वतके उस भागमें जो रहते हैं उनको हमारे समान आपकी सेवा करनेका भाग्य नहीं है। इस पर्वतकी उस ओर भोगभूमि है। वहांके मनुष्य भोगमें आसक्त हैं। वहांपर सम्यक्त्व नहीं, व्रताचरण नहीं, इतना ही नहीं व्रतिकोंकी संगति भी उनको नहीं है। स्वामिन्! उनसे तो हम व्यन्तरगण अधिक भाग्यशाली हैं। क्योंकि व्यन्तरों-को भी व्रत नहीं है। तथापि व्रतियोंकी संगति हमें मिल सकती है। अतएव हम आपकी सेवामें रहकर अनेक तत्वोपदेश वगैरह सुननेके अधि-कारी हुए। जिस प्रकार वे और हम व्रतरहित हैं, उसी प्रकार इस खंडमें रहनेवाले म्लेच्छ भी व्रतहीन हैं। तथापि वे आर्यभूमि पर आकर व्रतादिक ग्रहण करते हैं। अतएव वे महापुण्यशाली हैं। स्वामिन्! हम लोग तो समवसरणमें आकर जिनेन्द्रका दर्शन करते हैं, पूजा करते हैं, किसीने उत्तमदान दिया तो उसमें हर्ष प्रकट कर अनुमोदना देते हैं। परन्तु यह भाग्य हिमवान् पर्वतकी उस ओर रहने वाले जीवोंके लिए नहीं है केवल वे चिद्रूजक ऐसे साधुओंको आहार देकर उसके फल से उस भोग भूमिमें जाकर उत्पन्न होते हैं। वहांपर पुण्यकर्मका संचय नहीं करते हैं। साक्षात् जिनेन्द्रके प्रथमपुत्र, आपका दर्शन करनेका भाग्य इस क्षेत्रवालोंको जिस प्रकार प्राप्त हो सकता है, वह उस क्षेत्रवालोंको प्राप्त नहीं हो सकता है। स्वामिन्! भोगभूमिज जीवोंको आपके दर्शन करनेका भाग्य नहीं अतएव प्रकृतिने हिमवान् पर्वतपमें विजयार्धके समान दरवाजेका निर्माण नहीं किया गया। इत्यादि प्रकारसे मागधामरने बहुत बुद्धिमत्ताके साथ कहा। वरतनु आदि व्यंतर भी मागधामरके चातुर्य पर प्रसन्न हुए; स्वामीके हृदयको पहिचानकर वस्तुस्थितिका वर्णन करनेमें मागधामर चतुर है। भरते-श्वरने भी मागधामरसे कहा कि मैंने केवल विनोदके लिये कहा था। नहीं तो मैं जानता ही था उससे आगे अपनेको जानेकी आवश्यकता ही नहीं। इस प्रकार कहकर आगे प्रस्थान किया और गंगाकूटकी ओर जाने लगे। भरतेश्वर गंगाकूटकी ओर जिस समय आ रहे थे, उस समय मार्गमें उनके स्वागतके लिये स्थान-स्थान पर तोरण लगाये गये हैं। कहीं रत्नतोरण हैं, कहीं पुष्पतोरण हैं, कहीं पत्रतोरण हैं। गंगादेव

ने सम्राट्के लिए यह सब व्यवस्था की है। अब गंगानदी एक कोस बाकी है। गंगादेव अपने परिवारके साथ वहाँपर सम्राट्को लेनेके लिये आया है। चक्रवर्तीने गंगानदीके तटपर सेनाका मुक्काम करानेका आदेश दिया। उसदिन भरतेश्वरने गंगादेवके आतिथ्यको स्वीकार कर बहुत आनन्दसे समय व्यतीत किया। दूसरे दिन भरतेश्वरकी बहिन गंगादेव भाईके दर्शनके लिए अपने परिवारकी देवियोंके साथ आई। एक दम भाईसे आकर मिलनेमें उसके हृदयमें संकोच हो रहा था। परन्तु भरतेश्वरने "बहिन! आओ, संकोच क्यों? इस प्रकार कहकर उसको दूर किया। गंगादेवीने पासमें आकर भाईसे निवेदन किया कि भाई! तुम्हारा यहाँपर रहना ठीक नहीं है। मैंने तुम्हारे लिये ही खास महल का निर्माण कराया है। तुम्हारे लिये वह कुछ न के बराबर है। तथापि बहिनकी इच्छाकी पूर्ति करना तुम्हारा काम है। अतएव उस नवीन भवनमें प्रवेश करना चाहिये। आजके दिन आपका मुक्काम रहकर कल आप तीर्थवन्दना करें, बादमें आप आगे जा सकते हैं। बहिनकी इतनी प्रार्थना अवश्य स्वीकृत होनी चाहिये। भाई! हमलोग संपत्तिसे गरीब जरूर हैं, फिर भी भरतेश्वरकी बहिन कहलानेका गौरव मुझे प्राप्त हुआ है। अतएव मैं लोकमें सबसे श्रेष्ठ हूँ। इसलिए डरनेकी कोई जरूरत नहीं, इस प्रकार कहती हुई उसने भरतेश्वरके दुपट्टेको धरकर उठनेके लिए कहा। भरतेश्वरने भी बहिनकी भक्तिको देखकर प्रसन्नताको व्यक्त किया और कहने लगे कि बहिन! मैं अवश्य आऊँगा। तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध मैं चल नहीं सकता! तुम्हें अप्रसन्न करना मुझे पसंद नहीं है। तब उसने दुपट्टेको छोड़ा। साथमें भरतेश्वरकी रानियोंको भी उसने बहुत सन्मानके साथ बुलाकर कहा कि आप लोग भी मेरे भाईके साथ नवीन महलमें चलें। सभी प्रसन्नचित्तसे वहाँ जानेके लिए उठे। भरतेश्वर प्रसन्नताके साथ अपनी बहिनके यहाँ जा रहे हैं। उसे देखकर गंगादेवने अपने मनमें विचार किया कि देखो! मैं सम्राट्के पास जानेके लिए संकोच कर रहा था, परन्तु सम्राट् अपनी बहिनके साथ किस प्रकार निस्संकोच जा रहे हैं।

गंगादेवीने भरतेश्वरको उस नवीन महलके परकोटा, गोपुर आदिको दिखाकर अंदर प्रवेश कराया। वहाँपर भोजनशाला, चंद्रशाला आदि भिन्न-भिन्न स्थानोंके निर्माणको देखकर भरतेश्वर बहुत ही प्रसन्न हुए। कई शय्यागृह सुन्दर रत्ननिर्मित पलंगोंसे सुशोभित हैं। दिव्य अन्नके लिए योग्य अनेक पदार्थ और सोनेके बरतन और कर्पूर

तांबूल आदि रसोईघरमें रखे हुए हैं। इस प्रकार सर्व सुख-सामग्रियोंसे भरे हुए उस महलको देखकर अपनी रानियोंसे कहने लगे कि मेरी बहिनकी भक्ति आप लोगोंने देखा ? उसके मनमें कितना उत्साह है ? तब रानियोंने हँसकर उत्तर दिया कि इसमें आपकी बहिनने क्या किया ? यह सब हमारे भाईके कार्य हैं। आप व्यर्थ ही अभिमान क्यों करते हैं ? भरतेश्वरने रानियोंकी बात सुनकर अपनी बहिनसे कहा कि देखा बहिन ! इन औरतोंकी बात कैसी है ? गंगादेवीने उत्तर दिया कि भाई ! औरतें हमेशा अपनी मायकेकी प्रशंसा करती रहती हैं। इनका स्वभाव ही यह है। इत्यादि विनोद वार्तालापके बाद स्नान भोजन व विश्रांतिसे वह दिन व्यतीत हुआ। दूसरे दिन तीर्थवंदनाकी इच्छा हुई। तब गंगाकूटकी ओर सब लोग चले।

जिस प्रकार सिंधुनदी ऊपरसे नीचे जिन प्रतिमाके ऊपर पड़ रही थी उसी प्रकार गंगानदी भी अर्हंत्प्रतिमापर पड़ रही थी। उसे सम्राट्ने देखा। उस पुण्यगंगाको देखनेपर ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद अर्हत्की प्रतिमारूपी चन्द्रमाको देखकर हिमवान् पर्वतरूपी चन्द्रकांत शिला पिघलकर नीचे पड़ रही हो। जो लोग इस तीर्थमें भगवंतको अभिषेक कराते हुए आ रहे हैं एवं भक्तिसे स्नान करेंगे उनके पापको मैं दूर करूँगा, इस बातको वह घोषणापूर्वक कहता हुआ आ रहा हो मानो कि वह तीर्थ भोर्भोर, घुमघुम, झुल्लझुल्ल शब्दको करते हुए पड़ रहा था। मानसरोवरमें हंस जिस प्रकार स्नान करते हैं, उसी प्रकार बुद्धिसागर मंत्रीने अनेक द्विजोंके साथ उस तीर्थमें स्नान किया। तदनंतर अपनी रानियोंके साथ भरतेश्वरने उसमें प्रवेश किया। रानियोंको अर्हंत्प्रतिमाका दर्शन कराकर बहुत आनन्दसे उस तीर्थमें स्नान किया। बादमें भूसुरवर्गको दान देकर भोजनादिसे निवृत्त होनेके बाद सिंधुदेवीके समान गंगादेवीसे भी भरतेश्वरने आशीर्वाद प्राप्त किया।

उस दिन भरतेश्वरने अपने लिए निर्मित महलमें सुखसे समय व्यतीत किया। श्री परमात्माकी सेवा करके विपुल कर्मोंकी निर्जरा की। दूसरे दिन जब उन्होंने आगे प्रस्थान करनेका विचार किया तब गंगादेवीको बुलाकर उसका यथोचित सत्कार किया। कहने लगे कि बहिन ! मेरी दो बहनें थीं। परन्तु उन्होंने दीक्षा ली। उससे मेरे हृदयमें जो दुःख हो रहा था उसे तुमने और सिंधुदेवीने दूर किया है। मेरी बहिन ब्राह्मिलाके समान ही सिंधुदेवी है और सौंदरीके समान हो

तुम हो। इस प्रकार दोनोंसे मैं अपनी दोनों बहिनोंके स्थानकी पूर्ति कर चुका हूँ। जब भी अब मंगल प्रसंग उपस्थित होगा उस समय आप दोनोंको बिना भूले बुलवाऊँगा। गंगादेवीको भी भरतेश्वरके वचनसे परम संतोष हुआ। साक्षात् तीर्थंकरकी पुत्री, षट्खंडाधिपतिकी सहोदरी कहलानेका भाग्य प्राप्त होनेसे गंगादेवीके शरीरमें एकदम रोमांच हुआ। भरतेश्वरने चिंतामणिरत्नको आज्ञा दी। उसी समय नवीन भवनमें भरकर उसने दिव्यवस्त्र आभूषणोंका निर्माण किया। बहिनका इस प्रकार सत्कार कर गंगादेव (बहनोई) का भी सत्कार किया। सभी रानियोंने गंगादेवीको एक-एक हार दिया। गंगादेवीने उन रानियोंका सन्मान किया। इस प्रकार बहुत आनन्दके साथ उनसे विदाई लेकर सम्राट् आगे बढ़े। इतने में पूर्व व पश्चिम खण्डसे दो दूतों ने आकर समाचार दिया कि वे दोनों खण्ड वशमें आ गये हैं। तब भरतेश्वरने विचार किया कि अब उत्तर व पश्चिमाभिमुख होकर जाने की आवश्यकता नहीं है। अतएव दक्षिणाभिमुख होकर उन्होंने प्रस्थान किया। बीचके खण्डमें बीचोबीच वृषभादि नामक पर्वत है। उस ओर अब षट्खण्ड वश होनेपर भरतेश्वर जाने लगे हैं। भरतेश्वर बहुत वैभवके साथ प्रयाण करते हुए कई मुक्कामोंको तय कर उस पर्वतके समीप पहुँचे हैं।

वह पर्वत विशाल है। सौ कोस तो उसके प्रथम भागका विस्तार है। तदनंतर सौ कोस पुनः ऊँचा होकर पुनः क्रमसे वह नीचेकी ओर गया है। इस प्रकार देखनेमें बड़ा सुन्दर प्रतीत हो रहा है। हर एक काल-में जो षट्खण्डविजयी चक्रवर्ती होते हैं वे आकर इस पर्वत पर अपना शिलालेख लिखवाकर जाते हैं। भरतेश्वरने जाकर देखा तो वह पर्वत शिलालेखोंसे भरा हुआ है। तिल मात्र स्थान भी उसमें रिक्त नहीं है। इसे देखकर भरतेश्वरका गर्व गलित हुआ। मुझसे पहिले कितने चक्र-वर्ती हुए हैं ! उन सबके शिलालेखोंसे वह पर्वत भर गया है। भगवन् ! 'यह पृथ्वी मेरी है' इस बुद्धिसे अभिमान करना सचमुचमें मूर्खता है।

भरतेश्वरके मनको जानकर विदूषकने उस समय यह कहकर सब लोगोंको हँसाया कि यह गिरि कई बार पुरुषोंके साथ क्रीड़ाकर उनकी नखहति व दन्तहतिसे युक्त वेश्याके समान मालूम हो रही है। तब विटने उस बातको काटकर कहा कि यह बात जमती नहीं, यह पृथ्वी वेश्या है। यह गिरि वेश्याकी कलावन्त कुट्टिनी (वेश्यादलाल-दूती) है।

अपनी अंकमालाको लिखनेके लिए स्थान न होनेसे दूसरे किसीके शासनको दण्डरत्नसे उड़ाकर उस स्थानपर लिखनेके लिए भरतेश्वरने आज्ञा दी। आत्मतत्वविशिष्ट शासनोंकी प्रसन्नतासे उड़ानेके लिए सम्मति न देकर आत्मतत्वबाह्य शासनोंको ही रद्द करनेके लिए इशारा किया। इतनेमें उन शासनोंके रक्षक शासकदेवोंने प्रकट होकर चिल्लानेके लिए प्रारम्भ किया कि हम लोग पूर्व चक्रवर्तियोंके शासनोंको रद्द नहीं करने देंगे। हम उनके रक्षक हैं इत्यादि। तब भरतेश्वरको क्रोध आया। मागधामर आदि व्यंतरोंको उन्होंने आज्ञा दी कि इन दुष्टोंको मारो, बहुत बड़बड़ करने लगे हैं। उनके मुखपर ही मारो, तब चुप रहेंगे। आज्ञा पाते ही व्यंतरोंने जाकर उन देवोंको खूब ठोंका। उनके दाँत सबके सब पड़ गये। मागधेंद्रने व्यंतरोंको आज्ञा दी कि इन सब दुष्टोंके हाथ बँधवाकर हिमवान् पर्वतके उस ओर फेंक दो। तब उनकी स्त्रियोंने आकर चक्रवर्तीके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! हमारे पतियोंने अविवेकसे जो कार्य किया है उसके लिए आप क्षमा करें और हमारे लिए हमारे पतियोंका संरक्षण करें। स्त्रियोंकी प्रार्थनासे सम्राट्ने मागधामरको उन्हें छोड़नेकी आज्ञा दी। मागधामरने उनको छोड़ दिया। वे लोग किसी तरह अपनी स्त्रियोंकी कृपासे जान बचाकर आनंदसे भाग गये। परन्तु टूटे हुए दाँत फिरसे थोड़े ही आ सकते हैं?

विटनायक कहने लगा कि सामान्य लिपिके गर्वसे मार खाकर ये सेनावस्थामें अपमानित हुए। इतना ही नहीं, अपने दाँतोंको भी खोये।

दक्षिणांकने कहा कि क्या सूर्यके सामने चंद्रमाका प्रकाश टिक सकता है? हमारे सम्राट्के सामने इन पागलोंकी क्या कीमत है? व्यर्थ ही इन्होंने कष्ट उठाया। वहाँपर उन शासनदेवोंके अधिपति कृतमाल व नाट्यमाल भी थे। उन्होंने चक्रवर्तीसे कहा कि स्वामिन्! आप यदि इस प्रकार क्रोधित होते हैं तो आगे इन लिपियोंकी रक्षा कैसे होगी? क्योंकि ये देव तो रक्षण नहीं करेंगे। तब चक्रवर्तीने कहा कि आत्मतत्वविशिष्टलिपिको अर्थात् जिन्होंने आत्मसाधन कर लिया है ऐसे चक्रवर्तियोंकी लिपिको रद्द करनेके लिए कोई भी समर्थ नहीं हो सकते। आत्मतत्वसे बहिर्भूत चक्रवर्तियोंकी लिपिपर अभिमान करने की आवश्यकता ही क्या है? आप लोग देखें, मैं अब आत्मतत्वप्रधान लिपिको यहाँपर लिखवा देता हूँ उसे कौन नाश कर सकता है? यह जैनशासन है। इतर सब मिथ्याशासन है। जैनशासन अपने

आप रक्षित रहते है। मिथ्याशासनोंकी टिकाव कहाँतक हो सकती है। उस समय आकाशमें हजारों भूतगण खड़े होकर घोषणा कर रहे थे हम लोग इस लिपिका संरक्षण करेंगे। चक्रवर्तीने भी परमात्मनाम स्मरण करके सेवकोंको आज्ञा दी कि दंडरत्नसे उन दुष्टलिपियोंको उड़ा दो। तब उस प्रकार पहिलेके एक शासनको उड़ानेके बाद वज्र-शासन नामक कुशल करणिकने निम्नलिखित प्रकार वज्रसूचियोंसे उस पर्वतपर शासनका निर्माण किया।

अंकमालापंचकं

स्वस्तिश्रीमन्महात्रैलोक्यराजेंद्रमस्तकमणिगणकिरणप्रस्तारितां-घ्रिपयोज, पूतिकर्मस्तोममथनविक्रम, अजितवंशबर्हिरवगमेक्षण, त्रिजगवद्भुतशक्तियुत, अजरानंतसौख्ययुत श्री वृषभेश्वर, तस्याग्र-पुत्रो निरामय हंसोपमानसारग्राहि, हंसनाथेक्षणोत्साहि, संसेव्य, सन्मोहि, तद्भवकर्मविध्वंसि, सुज्ञानावगाहि, श्रृंगारयोगि, शुद्धात्मा-नुरागी, राज्यांगोपि संगत्यागि, अंगनाजनवनमधुमास, विषमुक्त्यं-गनाचित्तविलास, भरतचक्रेशचंद्र:हुण्डावसर्पिणीकालस्यादौ षट्-खण्डमण्डलेऽस्मिन् खण्डे अखंडभोगी बभूवेति मंगलं महाश्रीश्री मंडनमस्तु हि स्वाहा।

इस प्रकार रत्नमालाके समान सुन्दर अक्षरोंसे काकिणीरत्नसे उस अंकमालाको लिखाया। बादमें वहाँसे प्रस्थान कर पर्वतके पासमें ही मुक्काम करनेके लिए आज्ञा दी। स्वयं भी सब लोगोंको अपने-अपने स्थानपर भेजनेके बाद अपने महलमें प्रविष्ट हो गये।

पाठक भूले न होंगे कि अंकमालाको अंकित करनेमें भरतेश्वरको किस प्रकार विघ्न आकर सामने खड़े हुए। परन्तु वे आत्मविश्वासके बलसे वे विचलित नहीं हुए। उनको मालूम था कि षट्खण्ड जब मेरे वशमें हो गया है तो यह काम मेरे हाथसे होना ही चाहिए। क्योंकि उनको यह अभ्यस्त विषय था। वे रात्रिदिन अंकमाला लिखनेकी धुन-में रहते थे। वे सदा आत्मभावना करते थे कि:—

हे निष्कलंक परमात्मन्! पंकजषट्कोंमें ही नहीं, मेरे सर्वांगमें ही अंकमालाके समान लिपिको अंकित कर मेरे हृदयमें सदा बने रहो, जिससे मैं अंकमालामें सफल हो सकूं।

सिद्धात्मन्! आप मंगलमहिमाओं से संयुक्त हैं। मनोहर स्वरूप हैं। सौख्योंके सारके आप भंडार हैं! सरसकलांग हैं! इसलिए मुझे सन्मति प्रदान करें।

इसी भावना का फल है कि उनके कार्यमें कैसे भी विघ्न उपस्थित हों वे सब दूर होकर उन्हें सफलता मिलती है। यह अलौकिक पुण्य प्रभाव है।

इति अंकमाला संधि

—:o:—

अथ मंगलयान संधि

विजयप्रशस्तिको लिखानेके बाद षट्खंडविजयी चक्रवर्तीने उस स्थानपर आठ दिनतक मुक्काम किया। इतनेमें विजयार्धके पास सेना-को छोड़कर विजयराज सम्राट्के पास आया। सम्राट्ने विजयराजके अकेले आनेसे पूछा कि तुम अकेले कैसे आ गये? अपनी सेना वगैरह-को कहाँ छोड़ आये। तब विजयराजने विनयसे कहा कि स्वामिन्! पूर्व और पश्चिम खंडकी तरफ गये हुए सब आकर विजयार्धपर्वतके पास एकत्रित हुए हैं। खंडप्रपातगुफाके पास मध्यखंडकी गंगाके तटमें दोनों सेनाओंको एकत्रित कर मेघेश्वर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सम्राट् सुनकर प्रसन्न हुए। विजयराज! हमें आगे उसी रास्तेसे जाना है। अतः मेघेश्वर वहाँपर सेनाके साथमें खड़ा है यह अच्छा ही हुआ। परन्तु तुम यहाँपर किस कार्यसे आये? बोलो तो सही। स्वामिन्! पूर्व पश्चिमखंडके राजाओंमें कुछ लोग आपकी सेवामें कुछ उत्तमोत्तम भेंटको लेकर आ रहे हैं। कुछ लोग सुन्दर कन्याओंको लेकर उपस्थित हैं। पश्चिमखंडके अधिपति कलिराज हैं, पूर्वखंडके अधिपति काम-राज हैं। वे दोनों एक-एक सुन्दर कन्याओंको लेकर तुम्हें समर्पण, करने आ रहे हैं। उन्हींके समान मध्यखंडके अनेक राजा, कन्या, हाथी घोड़ा आदि उत्तमोत्तम उपहारोंको लेकर उपस्थित हैं। स्वामिन्! और एक बात सुनिये। उत्तरश्रेणिके अनेक विद्याधर राजाओंको परसों ही सुमतिसागर मेरे भाई मेघेश्वरके पास छोड़कर चला गया। एक-एक खण्डसे चार-चार सौ कन्याओंको लेकर वे उपस्थित हैं। कुल दो हजार कन्याओंको लेकर विद्याधर राजा उपस्थित हैं। स्वामिन्! यह आश्चर्यकी बात नहीं है और एक बात सुनियेगा। आपके साथ विवाह करनेके लिए जो कन्याएँ लाई गई हैं उनको व्रतसे संस्कृत करनेके लिये चारण मुनीश्वर सेनास्थान पर उतरे थे। उन्होंने सभी

कन्याओंको व्रतसंस्कार कराया था इसलिये आपका पुण्य अनुपम है। हम दोनों भाइयोंको परम हर्ष हुआ। सभी कन्यायें व्रती हैं। यह सूचित करनेके लिये मैं यहांपर आया हूँ विजयराजके वचनको सुनकर भरतेश्वरको मन में हर्ष हुआ। तथापि उसे छिपा कर कहने लगे कि विजयांक ! कन्याओंकी कौनसी बड़ी बात है। आप दोनों भाइयों ने जो परिश्रम किया है उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आगे चलो, मैं भी परिवारके साथ विजयार्ध की ओर ही आता हूँ।

नाटयमाल व विजयराजाको आगे भेजकर स्वतः चक्रवर्तीने भी विजयार्धकी ओर प्रस्थान किया। कहीं भी विलम्ब न कर बहुत वैभव के साथ मुक्कामोंको तय करते हुए विजयार्धके पास आ पहुँचे। सामने सम्राट्के स्वागतके लिये मेघेश्वर आगे हैं ! उन्होंने बहुत आदर के साथ सम्राट्का स्वागत किया। मेघेश्वरके साथ बहुत आनन्दके साथ बोलते हुए सम्राट् अपने लिये निर्मित महलकी ओर जा रहे हैं। जिस समय भरतेश्वर सेनास्थानपर प्रवेश कर जा रहे थे उस समय जिन कन्याओंके साथ विवाह होनेवाला है वे कन्यायें अपनी महलकी छतपरसे सम्राट्को छिपकर देखने लगीं। उनके हृदयमें अपने भावी पतिको देखने की बड़ी आतुरता है। बाहर दूसरोंको अपना शरीर न दिखे, इस प्रकार छिपकर सम्राट्की शोभाको वे देखने लगी हैं। उनके सामने तरह-तरहके विचार उत्पन्न हो रहे हैं।

क्या यही भरतेश हैं ? यह तो कामदेवसे बढ़कर हैं। परन्तु इस प्रकार स्पष्ट बोलनेसे उन्हें लज्जा आती थी। भरतेश्वरको जिस समय बहुत आतुरतासे वे देख रहीं थीं, उस समय कभी-कभी सम्राट्के ऊपर ढुलनेवाले चामरोंकी आड़ होती थी। तब उनको क्रोध आता था। परन्तु लज्जासे दूसरोंसे कह नहीं सकती थीं। परन्तु दूसरे शब्दसे बोलती थीं कि यह सम्राट् अकेले ही अपने स्थानकी ओर हाथी पर चढ़कर आ रहे हैं, तब धवल छत्र ही काफी है। फिर इस सफेद हुए बालके समान इस चामरकी क्या जरूरत है। (जो कि व्यर्थ ही हमें अपने प्रिय मुखको देखनेके लिये विघ्न डाल रहा है) चलते-चलते कहीं हाथी खड़ा हुआ तो उनको बड़ा आनन्द आता था। हाथी जिस समय धीरे-धीरे चले उस समय भरतेशके मुखको देखनेके लिये उनको अनुकूलता होती थी। परन्तु वह हाथी जब जरा वेगसे चलते तब उन्हें क्रोध आता था। वे कहती हैं कि हाथीके गमनको मन्दगमन कहते

है । परन्तु यह हाथी की क्रीडामात्री है । यह कन्या नहीं है । हाथी से उतरकर सब लोगोंको अपने-अपने स्थानों पर भेजकर सम्राट् अपने महलमें प्रवेश कर गये । उन कन्याओंके हृदय में "हम लोगोंका विवाह कब होगा" इस प्रकारकी उत्कण्ठा लगी हुई थी । उसी दिन मेघेश्वरने बाहरसे आये हुए राजाओंकी सम्राट्के साथ भेंट कराई । उन राजाओंने भी चक्रवर्तीकी भेंटमें उत्तमोत्तम हाथी, घोड़े, रत्न वगैरह समर्पण करते हुए सम्राट्का आदर किया । सम्राट्ने भी उनका यथोचित सत्कार किया । भरतेश्वरने तमिस्रगुफाके समान ही खण्ड-प्रपातगुफाको अपने दण्डायुधसे फोड़ा व दूसरे दिन बहुत आनंदके साथ महलमें आकर प्रवेश कर गये । आज सेनास्थानमें शृङ्गार हो रहा है । सब जगह सजावट होनेके बाद विवाह मंडपकी भी रचना हो गई है तदनंतर सम्राट्ने २००० (दो हजार) कन्याओंके साथ बहुत वैभवसे विवाह कर लिया । कलिराजकी कन्या राजमति, कामराजकी कन्या मोहिनीदेवी, इसी प्रकार माधवराज व चिलातकराजको मृदुमाधुर्ययुक्त अष्टकन्यायें भरतेश्वरके मनको प्रसन्न कर रही थीं । भरतेश्वरने तत्क्षण सब कन्याओंको अपनी मायकेको भुला दिया । वे देवियाँ भी अब स्वर्गीय सुखोंको अनुभव करती हुई अपने समयको व्यतीत कर रही हैं । उन कन्याओंके जनकोंका भरतेश्वरने योग्य रूप से सत्कार किया । भरतेश्वर आनंदमग्न हैं । अब अपने जरा नमिराजकी महलकी ओर जाकर आवें ।

नमिराज अपनी महलमें कुछ आप्त, मित्र व बंधुओंके साथ विराजे हैं । बंधुजन नमिराजसे निवेदन कर रहे हैं कि स्वामिन् ! आपकी बहिनका सम्राट्को समर्पण करना उत्तम है । इसपर आप अवश्य विचार करें इस बातका समर्थन सुमतिसागर मंत्री व विनमिराजने भी किया । नमिराजने उत्तर दिया कि आप लोग क्या कहते हैं ? क्या मैं सुभद्रा बहिनको देनेके लिए इन्कार करता हूँ ? नहीं, नहीं । जब वह हमारे नगरमें आयगा तब देना उचित है । व्यर्थ ही शराबियोंके समान अपनी कन्याको वहाँपर ले जाकर देना तो मुझे पसन्द नहीं है । मैं मानता हूँ कि उसकी संपत्ति बढ़ गई है । परन्तु राजवंशकी दृष्टिसे मैं उससे कम नहीं हूँ । उसको यहाँ आने दो, आप लोगोंकी इच्छानुसार मैं यह कार्य करूँगा ।

नमिराजके वचनको सुनकर वे कहने लगे कि राजन् ! हम लोग

बोलनेके लिए डरते हैं, नहीं बोलनेसे काम बिगड़ता है। इसलिए बोलना ही पड़ता है। जब लोकमें सब राजागण उनको अपनी कन्याओंको समर्पण करते हैं तब आप उनको अपने नगरमें बुलाते हैं, क्या यह योग्य है ? उनके समान आपको भी देना चाहिये। क्या वे क्षत्रिय नहीं हैं ? परन्तु सम्राट्के सामने गर्व दिखानेके लिए वे घबराये। अतएव उन्होंने अपनी कन्याओंको वहां ले जाकर विवाह कर दिया। उनके राज्यमें रहते हुए हम लोगोंका इस प्रकार बोलना क्या उचित हो सकता है ? आपके भाई व मंत्रीके साथ उस दिन भरतेश्वर क्या बोल रहे थे, उस बातको क्या भूल गये ? इसलिए यही अच्छा है कि आप अपनी कन्याको सम्राट्के पास ले जाकर देवें।

नमिराजको क्रोध आया। कहने लगा कि ठीक है ! उन राजाओं-को अपना गौरव, मानहानिकी कीमत मालूम नहीं। अतएव उन्होंने अपनी कन्याओंको ले जाकर सम्राट्को समर्पण किया। परन्तु मैं वैसा नहीं कर सकता। मेरे भाई व मंत्रीके साथ बोला तो क्या हुआ। वह क्या करेगा सो देखा जायगा। मैं जानता हूं कि आवर्तराजको राज्यसे निकालकर उसने उसके भाई माधवको राज्यपर बैठा दिया। यह सब मुझे डरानेके लिए किया है। परन्तु मैं ऐसी बातोंसे डरनेवाला नहीं हूं। दोनों श्रेणियोंके राजाओंको मैंने भेजा। उसके आते ही भेंटके साथ मेरे भाई व मंत्रीको भेजा। अब मेरा क्या दोष है ? वह क्या करेगा देखूंगा। जब बन्धुओंने देखा कि नमिराजको हम लोग समझा नहीं सकते, तब उन्होंने इस समाचारको नमिराजकी माता यशोभद्रा-से कहा। यशोभद्राने नमिराजको बुलवाया। नमिराज भी अपनी माता की महलमें पहुंचे। "बेटा ! मैंने सुना है कि भरतेश्वरके प्रति तुम बहुत गर्व दिखा रहे हो, यह ठीक नहीं है। उसे देनेके लिए जो कन्या पाल पोसकर बढ़ाई गई है, वह उसे ही देनी चाहिए। इसमें उपेक्षा दिखाने-की क्या जरूरत है ?" माता यशोभद्राने कहा। उत्तरमें नमिराज कहने लगा कि माताजी ! मैंने कन्या देनेके लिए इन्कार नहीं किया है। भरतेश षट्खंडाधिपति हुआ, इस गर्वसे कन्या लेना चाहे तो मैं मंजूर कैसे कर सकता हूं ? पहिले सगाई वगैरहकी विधि होनेके बाद कन्या-के घरमें आकर पाणिग्रहण करना, यह रीत है, परन्तु भरत यह नहीं चाहता है। वहां ले जाकर देना मुझे पसंद नहीं है। मंत्री विनमि आदि भी भरतेशके पास ले जाकर कन्या देनेके लिए कहते हैं। परन्तु मैंने

इसे स्वीकार नहीं किया। यशोभद्राने कहा कि बेटा! क्या चक्रवर्ती तुम्हारे घर पर आता है? उनका बोलना उचित ही था। इसलिए व्यर्थ ही क्यों हठ करते हो? इसमें तुम्हारे लिए कोई कमी नहीं है।

नमिराज—यदि लड़की की जरूरत हो तो सम्राट्को भी यहाँ आना पड़ेगा। फिर क्या हम अपनी महत्ताको खोकर दे सकते हैं? कन्याकी देन-लेनमें इस प्रकार चलना उचित नहीं है।

यशोभद्रा—बेटा! षट्खंडके समस्त राजा सम्राट्के सेवक हैं। फिर सम्राट् एकदम अपने घरपर कैसे आ सकते हैं? यदि अपने लोग ही ले जाकर कन्या दे दें तो इसमें क्या बिगड़ता है? वह भरत कौन है? वह खास तुम्हारी मामीका पुत्र है और उसके मामाका पुत्र तुम हो। इसलिये इस प्रकारके हठको छोड़कर उस मनुवंशतिलकको कन्या दो।

नमिराज—माता! मुझे इस बातपर मजबूर मत करो। मार्ग छोड़कर कन्या देनेकी मुझे इच्छा नहीं।

यशोभद्रा—क्या यह बात है? अच्छा! फिर अपनी बहिनको अपने घरपर रहने दो। मैं अब जाती हूँ। मेरे कैलासमें ब्राह्मी, सुन्दरीकी संगति चाहिए। उसीमें मुझे आनंद है। एक बेटीको पाकर मनमें उत्कंठा लगी थी कि भरतेशको देकर कब संतुष्ट होऊँ? परन्तु अब तुम्हारी इच्छा नहीं है। अब मैं अपने आत्मकार्यको साधन कर लूंगी। अब इसके लिए मंजूरी दो। इंद्रको भी तिरस्कृत करनेवाले भरतेश चक्रवर्तीको शची महादेवीके समान सुन्दर पुत्रीको देकर मैं प्रसन्न होना चाहती थी, परन्तु तुम उसे मंजूर नहीं करते। अब तुम संतुष्ट रहो, मैं कैलासकी ओर जाती हूँ।

नमिराज—माता! आपके जानेकी जरूरत नहीं है। आपके भानजेको आप और विनमि मिलकर कन्या प्रदानकर आनंदसे रहें। मैं ही तपोवनके लिये जाता हूँ। राजगौरवको भूलकर इस राज्यवैभव-में रहनेकी अपेक्षा जिनदीक्षा लेना हजार गुना श्रेयस्कर है। माताजी! मैंने मार्ग छोड़कर बात की है! अच्छा! मैं ही जाता हूँ। आप लोग आनन्दसे रहें।

यशोभद्रा घबरा गई। अतः परिस्थितिको सुधारनेके लिए कहने लगी कि बेटा! ऐसा क्यों करते हो! तुम्हारे घरपर चक्रवर्ती नहीं आयेगा। परन्तु सगाई यहाँपर हो जाय तो फिर देनेमें क्या हर्ज है।

वह यहाँपर इस प्रकार बुलाने पर नहीं आ सकता है। मैं जानती हूँ उसके मनको, तुम्हारे पिता होते तो............।

नमिराज--माता ! वह यहाँपर अपने मुख्य व्यक्तियोंको भेजकर सगाई करनेके लिए भी तैयार है। वहाँपर मुझे आनेके लिए कह रहा है। ऐसी हालतमें मैं कैसे जा सकता हूँ ! हाँ ! यहाँ आकर वह पूर्व-मंगलकार्य करे तो भी मैं उसे आनंदके साथ कन्या दे सकता हूँ।

यशोभद्रा--फिर कोई हर्ज नहीं, मैं अपनी प्रधान दासी व तुम्हारे मंत्रीको उसके पास भेजती हूँ। वे जाकर मेरी ओरसे मेरे भानजेको सब बात कहेंगे। वह मंजूर करेगा। अब तो दे सकते हो न ?

नमिराज—अच्छा ! मंजूर है।

यह कालिन्दी बाल्यकालसे ही उस भरतेश्वरको जानती है। साथ ही यह मधुवाणी अपनी मधुरवाणीसे भरतेश्वरको प्रसन्न करनेके लिए समर्थ है। इन दोनोंसे यह कार्य हो जायगा। इस प्रकार विचार कर सभी विषयोंको समझाकर मधुवाणी व कालिंदीको सुमतिसागर मंत्री-के साथ भेज दिया और साथमें सम्राट्के लिए उचित अनेक उपहारों-को भी भेजे। वे तीनों विमानपर चढ़कर सेनास्थानपर आये। भरते-श्वर दरबार लगाये हुए विराजमान थे। सुमतिसागर अकेला ही दर-बारमें गया। उन्होंने उपचार वचनके बाद सुमतिसागरसे आगमन-कारणको पूछा। सुमतिसागरने कानपर कुछ कहा।

"स्वामिन् ? कार्य क्या है, मुझे मालूम नहीं है, आपकी मामीजीने अपनी दोनों दासियोंको आपके तरफ भेजा है, उनके साथ मैं आया हूँ। विशेष वृत्तांत वे ही कहेंगी। वे दोनों कालिंदी और मधुवाणी बाहर खड़ी हैं।" भरतेश्वरने समझ लिया कि ये कन्यावृत्तांतको लेकर आई हैं। परन्तु बाहरसे किसीको मालूम होने नहीं दिया। साथमें सब दरबारी लोगोंको भेजकर अन्दरके दरबारमें जा विराजमान हुए। अंदरसे पंडिताको बुलाकर बाहरसे दोनोंको बुलाया। पंडिता उसी समय आई। दोनों विद्याधरी भी अंदर प्रवेश कर गई। कालिंदीने यह कहती हुई कि बहुत समयके बाद स्वामीका दर्शन हुआ, सम्राट्के चरणोंको नमस्कार किया। मैंने स्वामीके छोटे छोटे चरणोंको देखा था, परन्तु अब बड़े चरण हुए हैं, इस प्रकार कहकर चरणस्पर्श किया। स्वामिन् ! क्या आप पहिचान गये कि मैं कौन हूँ ? तब सम्राट्ने कहा कि क्या कालिंदी नहीं ? भरतेश्वरकी स्मरणशक्तिपर आश्चर्य

प्रकट करती हुई कहने लगी कि आप तो महान् बुद्धिमान् हैं। चिरकाल की बातोंको भी स्मरण रखते हैं। आपकी मामीजीने आपको भेंट भेजी हैं। उसे स्वीकार करें। इतनेमें एक-एक सुवर्णकमलको समर्पण करती हुई मधुवाणीने भी चक्रवर्तीको नमस्कार किया। कालिंदीने उसका परिचय कराया। यह तुम्हारी मामीकी विलासिनी, श्रीकलानिवासिनी, मधुवाणी है। इसके वचन अत्यंत मृदु मधुर होते हैं।

सम्राट्ने दोनोंको बैठनेके लिए इशारा करते हुए प्रश्न किया कि क्या मामीजी क्षेम हैं ? नमि, विनमि कुशल तो हैं महलमें सब आनंद मंगल तो है ? कालिंदी ! जरा कहो तो सही।

स्वामिन् ! आपकी मामी कुशल हैं। जबसे आपके इधर आनेका समाचार मालूम हुआ है, उनको बहुत आनंद है। इसी प्रकार नमि विनमिको भी बड़ा आनंद हो रहा है। वे भी आपके वैभवको सुनकर संतुष्ट हो रहे हैं। कालिंदीने कहा।

"मेरे आनेके समाचारसे मामाजीको संतोष हुआ है, यह तो सत्य है। परंतु शेष वार्ता सत्य नहीं है" भरतेश्वरने कहा।

"नहीं ! स्वामिन् ! सबको आनद है। सौभाग्यशाली आपके आने-पर गरीबोंको निधिप्राप्तिके समान, समुद्रको चंद्रदर्शनके समान हमारे स्वामियोंको भी परमानंद हो रहा है।" मधुवाणीने कहा। मधुवाणीने पुनः समय जानकर कहा कि लोग कहते हैं यह सम्राट् सभी राजाओंमें श्रेष्ठ है। परन्तु मुझे मालूम होता है कि यह महान् मायाचारी है। भरतेश्वरने हँसते हुए पूछा कि मैंने क्या मायाचार किया ? बोलो ! तब मधुवाणीने कहा कि आप ही सोचो। कुशल समाचारको पूछनेका आपका जो तरीका है वही मायाचारको सूचित करता है। मामीके कुशल समाचारको पूछा। मामीके पुत्रोंके क्षेम-वृत्तांतका प्रश्न किया और एक व्यक्तिका समाचार क्यों नहीं पूछा ? क्या यह आपकी चित्त-विशुद्धि है या मायाचार है ? आप ही कहियेगा।

और कौन हैं ? चक्रवर्तीने अनजान होकर पूछा।

'कोई नहीं है ? मधुवाणीने फिर पूछा। सम्राट् बोले कि "नहीं"।

"अच्छा ! वृत्तभारोन्नतकुचको धारणकरनेवाली आपकी मामीकी बेटी है। आप नहीं जानते हैं ?" मधुवाणीने कहा। "क्या हमारी मामीको एक बेटी भी है ? मुझे मालूम ही नहीं" भरतेश्वरने कहा।

"अच्छा ! आपको मालूम नहीं ! आप बड़े कुटिल मालूम होते हैं।

आपकी जीभसे नहीं ! हृदयसे पूछियेगा। आपके हृदयमें वह होनेपर भी मुझे फँसा रहे हो। सचमुचमें तुम कपटियोंके राजा हो। बोलो राजन् ! तुम्हारे हृदयमें वह है या नहीं। मधुवाणी ! जाने दो। मैंने पहिलेसे ही पूछा था कि महलमें सब आनंद मंगल तो है ? उसीमें सब अंतर्भूत हुए या नहीं ? फिर अलग पूछनेकी क्या आवश्यकता है? भरतेश्वरने कहा।

"हाँ ! हमारे स्वामीने पहिले ही पूछा था कि क्या महलमें सब आनन्द है ? मधुवाणी ! व्यर्थ प्रकरणको मत बढ़ाओ"। कालिंदीने कहा। स्वामिन् ! इस बातको जाने दीजिए। हमारी देवीने आपके सौंदर्यकी समानताको देखकर विनोदके लिए कुछ कहा क्षमा करें। एक रत्नका दो विभाग कर स्त्री और पुरुषरूपमें उसे बनाया। उन दोनोंमें आत्मा आकर आप दोनों बन गये ऐसा मालूम होता है। यहाँपर कोई नहीं है। एकांत है, सुनो। आपका सुंदर हृदय व हमारी देवीके पीनस्तन सचमुचमें पीनपुण्यनिर्मित है। आप लोगोंके मिलने पर न मालूम किस प्रकार भाग्योदय होगा ? सुवर्णलताके समान सुंदर आप लोगोंकी बहुलताको मैंने देखी। वे लतायें जब रत्नबिम्बके समान सुन्दर शरीरपर वेष्टित होवें तो न मालूम कितना सुन्दर मालूम होगी ? सुन्दर दाँत, लाल ओठ, हँसमुख व दीर्घनेत्रको देखो। कमलको कमल मिलनेपर दूसरोंकी चिन्ता क्यों हो सकती है ? पाद, जाँघ, कटि, उदर, छाती, बाहु, मुख, केशपाश, कण्ठ आदि सभी अवयवोंको देखनेपर दोनोंकी जोड़ी बहुत सुन्दर मालूम होती है। स्वामिन् आप तो अनेक पुजारियोंसे पूजित नवीन देवके समान मालूम होते हैं। परंतु वह देवी-देवताके समान मालूम होती है परंतु वह अभीतक किसीको पूजाके लिये मिली नहीं है। किसीकी पूजासे भी वह प्रसन्न नहीं होगी। तुम उसे अपने हृदयमें रखकर ध्यान करोगे तो वह अवश्य ही आये बिना नहीं रहेगी एवं तुम्हारे लिये महासुख देगी। तुम सचमुचमें महाभाग्यशाली हो मधुवाणीने कहा, भरतेश्वर सुनकर मुस्कराये। तब मधुवाणीने फिर कहा कि आपको हँसी आना साहजिक है। क्योंकि देवांगनाको भी तिरस्कृत करनेवाली जब रानी मिल रही है तो क्यों नहीं आनंद होगा ? तुम्हारी मामीने इस कन्याको अपने भानजेको देनेके लिये बहुत चितासे पालन किया था। अब वह सचमुचमें तुम्हारे मनको अपहरण करनेवाले रूपको धारण कर रही है। करोड़ों मन्मथोंके बाणको केवल अपनी दृष्टिमें जो

धारण करती है वह क्या सामान्य रमणी है ? इस समय वह सुन्दरी भर यौवनको प्राप्त है।

भरतेश्वरको मधुवाणीके वचनको सुननेमें आनन्द तो आ रहा था, परन्तु उसे छिपाकर वे कहने लगे कि अच्छा! जाने दो! अब आप लोग किस कार्यसे आई हैं वह कहो। राजन्! हमारा क्या कार्य है। आपकी मामीजीने हमें आपके पास इस सम्बन्धके समाचारको लेकर भेजी हैं। हम आ गईं। परन्तु उसके चातुर्यको तो जरा सुनो राजन्! विनमिराज, मन्त्री, विद्वान्, वगैरह सबने आपको ही देनेके लिए संमति दी है। परन्तु बड़े राजा नमिराज महान् भाग्यशालीको हम कन्या कैसे देवें इस प्रकारके विचारमें पड़ा। वह कहते हैं कि संपत्तिमें हम भरतेश्वरकी बराबरी नहीं कर सकते हैं तो क्या कुलमें भी हम बराबरी नहीं कर सकते ? जब वह भरतेश हमें नीच दृष्टिसे देखता है तो हम उसे कन्या देकर सेवक क्यों कहलावें ? हम उनसे कुलमें कम नहीं हैं। इत्यादि कहा। तब माताने पुत्रको बुलाकर अनेक प्रकारसे समझाया और भरतेशको ही कन्या देनेके लिये जोर दिया परन्तु नमिराजने फिर भी नहीं माना। उनका कहना था कि रीतसे भरतेश सगाई वगैरह करके बादमें आकर विवाह कर लें जायँ तो कन्या देनेमें कोई हर्ज नहीं है। ऐसा न कर केवल लड़की दो, लड़की दो इतना कहनेसे कौन कन्या देगा ? यह मैं मानता हूँ कि हमें भरतेशसे अधिक कोई बन्धु नहीं है, तथापि हमें जब वह बराबरीकी दृष्टिसे नहीं देखता तो फिर माता! तुम ही कहो कि उसे कन्या क्यों देनी चाहिए। तब नमिराजके वचनको सुनकर माताने यह कहा कि बेटा! उसके मामा होते तो वह यहाँपर अवश्य आता, परन्तु तुम्हारे पास वह कैसे आयेगा ? क्या वह चक्रवर्ती नहीं है ? मैं और एक उपाय कहती हूँ, सुनो। सगाईकी रीतको तो वह यहाँपर करावें और बादमें अपनी कन्याको वहाँ लेजाकर विवाह वहाँपर करावें। यह बात नमिराजको भी पसन्द आई। तब हम इसे कहनेके लिये आपके पास आई हैं। नमिराजकी राजनीति और मामीके गुणोंके प्रति भरतेश्वरके मनमें प्रसन्नता हुई तथापि उसे बाहर न बताकर वे कहने लगे कि पहिले सबने जैसे कन्या दी है उसी प्रकार लाकर देनेको कहो। यह सब इस प्रकार नहीं हो सकता है। तब मधुवाणीने कहा कि राजन्! यदि मामीजीने इस बातको सुन ली तो उन्हें बहुत दुःख होगा। सोचो। तब भरतेश्वरने कहा कि ठीक है।

मैं अपनी तरफसे प्रमुख राजाओंको भेजकर सगाईका कार्य कराऊँगा। तब उन दोनोंका मुख फिरसे खिल गया तदनन्तर उन दोनोंको स्नानादि करानेके लिए हुकुम देकर स्वतः पण्डिताके मन्त्रणाकर महलकी ओर गये। महलमें जाकर उदास चित्तसे खिन्नमुख होकर एक आसनपर चक्रवर्ती बैठे हैं। इतनेमें वहाँ सभी रानियाँ आकर एकत्रित हुईं। भरतेश्वरको देखकर सबको आश्चर्य हुआ। सुननेमें आया है कि आज हर्ष का समाचार आया है, परन्तु ये तो चितामें बैठे हैं। क्या कारण है ? सबको जाननेकी उत्कंठा हुई। सबने भरतेश्वरकी चिंताका कारण पंडितासे पूछा।

पंडिताने कहा कि सन्तोषका वृत्तांत अवश्य आया है। परन्तु उसमें तीन बातें ऐसी हैं जिनके कारणसे सम्राट्के चित्तमें चिंता उत्पन्न हो गई है। सम्राट् असमंजसमें पड़ गये हैं। उनको ग्रहण भी नहीं कर सकते, छोड़ भी नहीं सकते। बड़ी दिक्कत हो गई है।

जब वहाँ कन्या उत्पन्न हुई उस समय माता-पिताओंने संकल्प किया था कि इसका विवाह भरतेश्वरके साथ ही करेंगे उसी संकल्पसे सुभद्राकुमारीका पालन-पोषण हुआ। आज भी उसे भरतको ही देनेकी इच्छा है, परन्तु सगाई पहिले हो जानी चाहिए ऐसा उनका कहना है। एक शर्त और है। पट्टके मुकुटको धारण कर विवाह होना चाहिये, साथ ही पट्टरानी उसे बनानी चाहिए। ऐसा उनके कहनेपर चिंता पैदा हुई। सम्राट्ने कहा कि उसे पट्टरानी क्यों बनावें ? मेरी सभी रानियाँ जैसे रहती हैं वैसी ही इसे भी मेरे अंतःपुरमें सुखसे रहने दो। परन्तु उन लोगोंने इस बातको स्वीकार नहीं किया। क्योंकि सम्राट्के हृदयमें उनकी सभी रानियोंके प्रति कोई पक्षपात नहीं है। वे कभी भेदभावसे अपनी रानियोंको देख नहीं सकते। अतएव इतनी चिंता उत्पन्न हो गई है।

रानियोंको भरतेश्वरके मनोवृत्तिको देखकर हर्ष हुआ। चुपचापके उस सुभद्रादेवीको सबकी इच्छानुसार महत्व देकर लावें तो हमलोग क्या कर सकती हैं ? तथापि सम्राट्के मनमें हम लोगोंके प्रति कितना प्रेम है ? इस प्रकार वे सब विचार करने लगीं। अपनी माताके भाईकी वह पुत्री है, उसमें भी सम्राट्के लिए ही उसका संकल्प हो चुका है। फिर इतनी चिन्ता क्यों ? वे जो कुछ माँगते हैं उन सबको देकर सुखसे विवाह कर लेना चाहिये। इसमें हम लोगोंकी सबकी सम्मति

है। लोकमें सबकी यह रीत है कि राजाके लिए एक पट्टरानी रहती है। फिर इसके लिए हम क्यों इन्कार करेंगी? क्या हम लोग कोई गँवारकी स्त्रियाँ हैं? या शूद्रोंकी कन्यायें हैं? नहीं। हम सब क्षत्रियोंकी कन्यायें हैं। फिर क्यों उसके पट्टरानीपदके लिए इन्कार कर सकती हैं? उस सुभद्रादेवीको जो महत्व प्राप्त होगा वह सब हमारे लिए ही है ऐसा हम समझती हैं। क्योंकि वह क्षत्रियपुत्री है। हम भी सब उसी वर्णकी हैं। फिर क्यों हमें दुःख होगा। इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है। उनके सर्व शर्तोंको मंजूर कर विवाह कर लेना चाहिये। यह बात हम लोग बहुत सन्तोषके साथ कह रही हैं। यह भी जाने दीजिये। हम लोगोंका कर्तव्य है कि पतिके इच्छानुसार चलें। पतिके इच्छाके विरुद्ध जो जाती है क्या वह राजपुत्री हो सकती है? हम लोग हृदयमें एक रखकर मुखसे एक बोल नहीं सकतीं। सन्तोषके साथ सुभद्राबहिनको पट्टरानी बनाकर लावें। इस प्रकार रानियोंने हर्षपूर्वक सम्मति दी।

वह दिन आनन्दसे व्यतीत हुआ। दूसरे दिन सम्राट्‌ने कालिंदी व मधुवाणीका सत्कार किया एवं विद्याधर मन्त्रीका भी सत्कार कर उनको रवाना किया। भण्डारमती नामक बुद्धिमती स्त्रीके साथ लग्न निश्चयमुद्रिका व आभरणोंके करंडको देकर विजयार्धपर भेजनेकी तैयारी की। विशेष क्या? सेनाके संरक्षणके लिए जयन्तको रखकर बाकीके सभी व्यन्तर, म्लेच्छ व विद्याधर राजाओंको वहाँपर जानेकी आज्ञा दी गई। बहुत संतोषके साथ छप्पन देशके राजा व राजपुत्र व अपने मित्रोंको सम्राट्‌ने वहाँपर भेजा जिससे मामीजीको हर्ष हो जाय। मंगलोपहारके साथ समस्त राजगणोंको भेजकर इधर अपनी बहिनोंके तरफ भी समाचार भेजा।

भरतेश्वर सचमुचमें असदृशपुण्यशाली हैं। वे जहाँ जाते हैं वहाँ उनका आदर ही आदर होता है। प्रतिसमय उनको सुखसाधनकी ही प्राप्ति होती रहती है। षट्खंडविजयी होकर सर्वाधिपत्यको प्राप्त करनेका समाचार हम पिछले प्रकरणमें बाँच चुके हैं। परन्तु इस प्रकरणमें पट्टरानीकी प्राप्तिका संदेश है। इस प्रकार रात्रिदिन उनके आनन्दपर आनन्द हो रहा है। इसका कारण क्या है? भरतेश्वर रात्रिदिन उस आनन्दकी निधि परमात्माका जिस भावनासे स्मरण करते हैं उसीका यह फल है। उनकी भावना सदा यह रहती है कि—

"हे परमात्मन्! सागरमें जिस प्रकार तरंगके ऊपर दूसरा तरंग आता है उसी प्रकार सम्पत्ति व सन्तोषके ऊपर पुनः सम्पत्ति व संतोष-

के तरंगोंको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य तुममें है। तुम मनोहर व चरितार्थ हो। सुख के भंडार हो। अतएव मेरे अंतरंगमें बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! जो आपका ध्यान करते हैं उनको आप दिव्य भोगोंका संधान कर देते हैं। आपकी महिमा उपमातीत है। स्वामिन्! आप ज्ञानियोंके अधिपति हैं। फिर देरी क्यों? सम्पत्ति प्रदान कीजिये।"

इसी उत्कट भक्तिपूर्वक भावनाका फल है कि भरतेश्वर इस संसारमें भी सुखका अनुभव कर रहे हैं।

इति मंगलायन संधि

—०—

मुद्रिकोपहार संधि

भरतेश्वरकी ओरसे गये हुए राजाओंने बहुत वैभवके साथ विजयार्ध पर्वतके ऊपर आरोहण किया। मार्गमें चक्रवर्तीके मन्त्रीने मौका देखकर नमिराजके मन्त्रीसे कहा कि मन्त्री! एक बात सुनो, चक्रवर्तीकी ओरसे जो राजा आये हैं, वे नमिराजको नमस्कार करेंगे। परन्तु भेंट वगैरह समर्पण नहीं करेंगे। नमिराज भी उनको नमस्कार करेंगे। चक्रवर्तीके कुछ मित्र व मैं भेद रखकर नमस्कार करेंगे। क्योंकि मैं ब्राह्मण हूँ और मित्रगण चक्रवर्तीकी इच्छाके अनुवर्ती हैं। इसलिये हम तो उनको महत्व दे सकेंगे। बाकीके व्यन्तर विद्याधरराजा वगैरह मानी है। वे चक्रवर्तीको छोड़कर और किसीको भी नमस्कार नहीं करेंगे। विवाहके लिये जो आयेगा उनको नौकरोंके समान देखना क्या उचित होगा? हमलोग जो उसकी इच्छानुसार घरपर आते हैं यह कोई कम महत्वकी बात नहीं है। इसे स्वीकार करना ही चाहिये। सुमतिसागर मन्त्रीने भी उसे स्वीकार कर लिया। सुमतिसागरने आगे जाकर नमिराजको सर्व वृत्तान्त कहा, नमिराज भी प्रसन्न हुआ। कालिन्दी व मधुवाणीने जाकर यशोभद्रादेवीको समाचार दिया। यशोभद्रादेवीको भी परमहर्ष हुआ। नमिराजने अपने मन्त्रीके साथ अनेक राजाओंको स्वागतके लिये भेजा।

शठनायक—सम्राट्का मन्त्री आया है। उसके लिए अपने मंत्रीको, राजाओंके लिये राजाओंको स्वागतके लिये भेजा है क्या अपने भाईको भेजना नहीं चाहिये? यह कितना अभिमानी है?

दक्षिण—इससे क्या बिगड़ा, हमारे स्वामीके लिए कन्यासंधान

करनेका काम हमारा है। इन बातोंको विचार करनेका यह समय नहीं है।

नागर—नमिराज कैसा है? आप लोग नहीं जानते हैं? कन्या देनेकी इच्छा न होनेसे पहिलेसे ही अतिवक्र व्यवहार करता था। अब अपनेको सहन करना चाहिये।

कुटिलनायक इसे पहिलेसे बहुत अभिमान आ गया है, जिसमें उसकी बहनके प्रति चक्रवर्तीने नजर डाली तो और भी फूल गया। जाने दो। उसका मार्ग योग्य नहीं है। परन्तु इन सबके चित्तको शान्त करनेके लिये बुद्धिसागर मन्त्री कह रहा था कि आप लोग व्यर्थ क्यों बोलते हैं? यह सम्राट्के मामाके पुत्र हैं। चक्रवर्तीकी महत्ता तो हम लोगोंको नहीं है। इसलिये वे चक्रवर्तीका ही स्वागत करनेके लिए आ सकते हैं हम लोगोंको इस समय इन बातोंपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम लोग जिस कार्यके लिए आये हैं, उस कार्यको हमें करके जाना चाहिये।

सब लोगोंने गगनवल्लभपुरमें प्रवेश किया। राजमहलमें प्रवेश करके सब लोगोंने दरबारमें स्थित नमिराजको देखा। वेत्रधारी चपरासीने नमिराजको निम्नलिखित प्रकार सबका परिचय कराया।

स्वामिन्! यह भरतेशके सर्व भाग्यके लिए आधारभूत, सर्वलोकके लिये अनिमिषाचार्य बुद्धिसागर मंत्री हैं यह अमोघवीरताको धारण करनेवाले मेघेश्वर व विजयराज हैं। सम्राट्का प्रधान सेनाध्यक्ष है। यह भरतचक्रवर्तीके लिए परम विश्वासपात्र, चक्रवर्तीका परम मित्र व्यन्तरेंद्र मागधामर है, स्वामिन्! इनका स्वागत करो। यह वरतनुदेव दक्षिण समुद्रका अधिपति है, यह पश्चिम समुद्रके अधिपति प्रभासेन्द्र हैं; ध्रुवगति, सुरकीर्ति, प्रतिभास नामक ये तीनों देव मागधादि देवोंके प्रतिनिधि हैं। स्वामिन्! यह तमिस्रगुफाके अधिपति कृतमाल देव हैं, यह खण्डप्रपातगुफाके अधिपति नाट्यमाल हैं।

इस विजयार्ध पर्वतके मध्यप्रदेशमें हम लोग रहते हैं। परन्तु इस पर्वतके ऊपर यह विजयार्धदेव राज्य कर रहा है। यह नागेन्द्रके समान है। हिमवान् पर्वतकी उस ओर नाग, यक्ष आदि जातिके देवोंके अधिपति होकर यह हिमवन्त देव राज्य कर रहा है। हे राजन्! इसे जरा देखें। इसी प्रकार पश्चिम व उत्तर खण्डके राजा भी यहां मौजूद हैं। पश्चिम खंडके राजा कलिराज आदि राजाओंको देखें। ये मध्यमखंडके राजगण हैं। यह माधवेन्द्र हैं। यह चिलातेन्द्र हैं। नमिराजने आतंक-

मय दृष्टिसे उनकी तरफ देखा। दक्षिण व पूर्व खंडके राजा उद्दण्ड व वेतंड राजा हैं। इसी प्रकार आर्यखण्डके सूर्यवंशादि उत्तम वंशोंमें उत्पन्न इन छप्पन देशके राजाओंको एवं उनके राजपुत्रोंको आप देखें। राजन्! इधर देखिये! ये दक्षिणोत्तर श्रेणीके विद्याधर हैं। इसी प्रकार दक्षिण-नायक, शठनायक आदि चक्रवर्तीके मित्रोंको भी देखें। संख्यामें आठ होनेपर भी चक्रवर्तीको अष्टांगके समान रहते हैं। ये चक्रवर्तीके परम-भक्त हैं। बुद्धिसागर मंत्रीके अनुकूल हैं। लोकमें अद्वितीय बुद्धिमान् है। यह सुनकर नमिराजने उनको अपने पास बुला लिया। सबको यथा योग्य आसन प्रदानकर बैठनेके लिए कहा। बुद्धिसागर मंत्रीको अपने सिंहासनके पास ही आसन दिया। बुद्धिसागरसे बोलते हुए कहा कि मंत्री! ये राजा व्यंतरेन्द्र वगैरह सामान्य नहीं हैं। अहो 'जिनसिद्ध' भरतेश्वरकी सम्पत्ति बहुत बड़ी हुई है। इन एकेक व्यन्तर व राजाओं-को देखते हुए एकेक पर्वतके समान मालूम होते हैं। फिर इनके बीचमें न मालूम वह भरतेश्वर किस प्रकार मालूम होगा। कहाँ अयोध्या? व कहाँ हिमवान् पर्वत? इन दोनोंके बीचके षट्खण्डोंको वशमें करनेके भाग्यको भरतेश्वरके समान कौन प्राप्त कर सकते हैं? उसके लिए पूर्व पुण्यकी आवश्यकता है। सचमुचमें उसका भाग्य महान् है। उसकी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन है! श्री जिनेन्द्र ही जाने।

बुद्धिसागर मंत्रीने कहा कि राजन्! आप ठीक कहते हैं। आपके बहिनोंका भाग्य असदृश है। आपको हर्ष होना साहजिक है। भरतकी केवल सम्पत्ति ही बड़ी है ऐसी बात नहीं। उसकी बुद्धिमत्ता, सुन्दरता, शृङ्गार व वीरता आदि बातोंको देखकर देवलोक भी मस्तक झुकाता है। क्या तुम्हारा बहनोई इस नरलोकका राजा है? नहीं, सुरलोकका है। राजन्! पुरुषोंमें उसकी बराबरी करनेवाले दूसरे कोई नहीं हैं। स्त्रियोंमें तुम्हारी बहिन सुभद्राकी बराबरी करनेवाले कोई नहीं हैं। ऐसी हालतमें उन दोनोंका सम्बन्ध करानेका तुमने जो विचार किया है यह कर्म बुद्धिमत्ताकी बात नहीं है। अपनी पितृपरम्परासे आये हुये स्नेह सम्बन्धको न भूलकर उसे बराबर चलानेका विचार तुमने जो किया है, वह स्तुत्य है। नमिराज! ऐसी हालतमें तुम्हारी समानता कौन कर सकते हैं।

नमिराजने कहा कि मंत्री! मैंने क्या किया! भरतेशके पुण्यने ही मुझे इस कार्यके लिए प्रेरणा की। उस बातको सभी राजाओंके समाने रखनेकी इच्छा हुई। ये सब राजागण हमारे बन्धु हैं। परन्तु ये बुलाने-

पर भी हमारे महलमें नहीं आ सकते। इसलिये विवाहका बहाना करके इनको हमने बुलाया है। इस निमित्तसे तो यह आनन्दका समय देखूं इसलिये आप लोगोंको कष्ट दिया। नमिराजके चातुर्यको देखकर सबको हर्ष हुआ। नमिराजने सबको स्नान, भोजनादि कार्यके लिए उनके लिए निर्मित सुन्दर महलोंमें भेज दिया। मनुष्योंके लिए योग्य अन्न, पान, भक्ष्य, विशेष व वस्त्राभूषणोंसे सत्कार कर देवोंको सुगंध द्रव्य, वस्त्र व आभरणोंसे सन्मान किया। भंडारवती आदि देवियां जो आई थीं उनका भी यशोभद्रा देवीके द्वारा यथेष्ट सन्मान हुआ।

दूसरे दिन सब लोगोंने नमिराजसे कहा कि राजन्! हम सब जिस कार्यके लिए आये हैं उसे हमें करने दो, तब नमिराजने "गड़बड़ क्या है, चार दिन बीतने दो, आप लोग हमारे यहाँ कब आते हैं, इस विवाह के बहानेसे आ गये। इसलिए चार दिन तो मुझे आनंद मनाने दो, मेरी इच्छापूर्ति होनेके बाद आप लोग जाइयेगा।" इस प्रकार नमिराजने उन लोगोंका कई तरहसे सत्कार किया। कभी गायन गोष्ठीमें कभी साहित्य सम्मेलनमें, कभी नवीन नाटक-नृत्योंमें, कभी वाद्यवादनमें और कभी महेन्द्रजाल विद्यामें उन अभ्यागतोंको आनंदित किया। तदनंतर पुनः राजाओंने कहा कि सगाईका कार्य होने दीजिये। बादमें यह सब कार्य करें। नमिराज पुनः कहते हैं कि इतनी जल्दी क्या है, वह होनेके बाद आप लोग क्योंकर ठहर सकेंगे तब वे राजा उत्तरमें कहते हैं कि स्वामीके कार्यको भूलकर खेलकूदमें मस्त होना क्या सज्जनोंका धर्म है? उत्तरमें नमिराज कहते हैं कि मुहूर्त लग्न अच्छा मिले विना मैं क्या कर सकता हूँ? आप लोग जल्दी न करें। "व्यर्थ ही बहानाबाजी क्यों कर रहे हो? हमें देरी होती है। यह कार्य जल्दी हो जाना चाहिए।" वे कहने लगे।

"मैंने उद्दण्डराज व वेतंडराजको कहलाकर भेजा है, उनके आनेकी आवश्यकता है, उनके आनेके बाद यह कार्य मैं कर दूँगा" नमिराज ने कहा।

प्रतिनित्य तरह-तरहके वस्त्र आभूषणोंसे उनका सन्मान किया। अपनी महलमें बुलाकर रोज मिष्टान्न भोजनसे संतर्पण कर रहा है। मंत्री उसकी भक्तिको देखकर प्रसन्न हुआ। राजागण आश्चर्यचकित हुए। देव व्यंतरगण आनंदित हुए। सचमुचमें नमिराज उस समय जो अतिथिसत्कार कर रहा था वह अद्वितीय था।

उद्दंडराजा व वेतंडराजा आ गये। अब रोकनेके लिए कोई बहाना नहीं था। इसलिए नमिराज योग्य मुहूर्तमें इस मंगलकार्यको करनेके लिए उद्युक्त हुआ। दिनमें जिनेन्द्रभगवंतकी पूजा, मुनिदान, ब्राह्मणभोजन आदि कराकर रात्रिके समयमें सगाईके मंगलकार्यको संपन्न किया। नगरमें सर्वत्र श्रृंगार किया गया। रथ, विमान, हाथी, घोड़ा आदि सर्व राज्यांगकी शोभा की गई, मंगलमुखी नामक हथिनी जो कि सुभद्रादेवीके लिए अत्यन्त प्रिय थी, उसका श्रृंगार किया गया। उसके ऊपर कन्याके लिए अर्पण करने योग्य मंगलाभरण शोभित हो रहे थे। स्त्रियाँ हाथी पर चढ़ें तो विद्याधर लोग अपना अपमान समझते हैं। अतः स्त्रियोंके धारण करने योग्य आभरण भी हथिनीपर ही रखा है। क्योंकि वे क्षत्रिय-क्षत्रियोंकी प्रतिष्ठाको अच्छी तरह जानते थे। पुरुष यदि हाथीपर चढ़ा हो तो उसके साथ स्त्रियाँ भी हाथीपर चढ़ सकती हैं। परन्तु केवल स्त्रियाँ हाथीपर चढ़ नहीं सकतीं। अतः मंगलमुखको ही अलंकृत किया था। इस प्रकार मंगलमुखी हथिनीपर अनेक आभरणविशेषोंको रखकर बहुत वैभवके साथ उस गगनवल्लभपुरके प्रत्येक राजमार्गोंमें होते हुए राजालयमें प्रवेश किया।

राजालयमें प्रवेश करते ही सब लोगोंको वहींपर विनमिराज व मंत्रीके साथ ठहराकर स्वतः नमिराज अंदर चले गये और वहाँपर अनेक अलंकारोंसे विभूषित अपनी बहिनको हजारों परिवार स्त्रियोंके साथ परदेकी आड़में खड़ाकर, मंगलगृहमें स्थित अभ्यागतोंको बुलानेके लिए कहा। तदनुसार बहुत वैभवके साथ सब लोगोंने अंदर प्रवेश किया। जो आभरण कन्याको प्रदान करनेके लिये वे ले आये थे उनकी कांति सब दिशाओंमें पसर रही थी। एक विशाल मंगलगृहमें पहुँचकर जहाँ नमिराजने इस उत्सवकी सारी तैयारियाँ की थीं, उस आभरणकी थालीको एक रत्ननिर्मित आसनपर रख दिया। साथमें आए हुए राजागण बहुत विवेकी थे। उन्होंने उस अलंकारको अपने स्वामीकी पट्टरानीका है, समझकर उसके प्रति अनेक भेंट समर्पण किया। कन्याकी माता उस समय आनंदसे फूली नहीं समाती थीं।

सबको यथायोग्य आसन प्रदानकर नमिराज भी एक आसनपर बैठ गया। ब्राह्मण विद्वानोंने मंगलाष्टकका पठन किया। मंगलाष्टकके वे मंगलकौशिक आदि सुन्दर रागोंमें पठन कर रहे थे। मुहूर्तका समय आनेपर नमिराजने सबकी ओर देखा, उस समय भरतेश्वरकी

ओरसे प्रेषित आभरणोंको कन्याको प्रदान करनेके लिए बुद्धिसागर मंत्रीने प्रार्थना की। स्वामिन् ! आपके यहाँ आभरणोंकी कमी नहीं है। तथापि सम्राट्के द्वारा प्रेषित इसे अवश्य ग्रहण करना चाहिये ! लोकके सभी राजाओंसे जिसने भेंट ग्रहण किया उस सम्राट्ने तुम्हारी बहिनको भेंट भेजी है। तुम महान् भाग्यशाली हो, इस प्रकार सभी राजाओंने विनोदसे कहा। हर्षसे उस आभरणके तबकको उठाकर नमिराजने मधुवाणीको दिया। मधुवाणीने उसे परदेकी उस ओर ले जाकर सुभद्राकुमारीको उन आभरणोंको धारण कराया। उस समय सौभाग्यवती स्त्रियाँ अनेक मंगल गीतोंको गा रही थीं। मोतीके शिरोभूषणको उन लोगोंने जिस समय धारण कराया, उस समय उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया। शायद वह चक्रवर्तीके पुण्यसामर्थ्यको ही लोकको सूचित कर रहा है। कंठमें धारण किया हुआ आभरण चक्रवर्ती भी कल इसी प्रकार अपने हाथसे कंठको आवृत करेगा, इस बातको सूचित कर रहा था। हाथमें जो भरतेश्वरके रूपसे युक्त रत्नमुद्रिकाको उसने धारण किया था वह इस बातको सूचित कर रही थी कि इसी प्रकार भरतेश्वर भी तुम्हारे वश होकर चिरकालतक राज्य करेंगे। चक्रवर्तीने कैसे अमूल्य व अनर्घ्य वस्त्राभरणोंको भेजे होंगे ! इसे वर्णन करना क्या शक्य है ? व सुभद्राकुमारी स्वभावसे ही अलौकिकसुन्दरी है। उसमें भी चक्रवर्तीके द्वारा प्रेषित आभरणोंको धारण करनेके बाद फिर कहना ही क्या ? उसमें एक नवीन कांति ही आ गई है। माताने मोतीके तिलकको लगाते हुए "श्रीसुभद्रादेवी भरतेश्वरके अंतःपुरमें प्रधान होकर सुखसे जीए" इस प्रकार आशीर्वाद दिया। इसी प्रकार नमिराज व विनमिराजकी रानियोंने भी तिलक लगाकर आशीर्वाद दिया। नमिराजने सबको तांबूल, वस्त्र, आभूषणोंको प्रदान कर उनका सत्कार किया। मंत्रीने दरवाजेतक उनके साथ जाकर उनको भेजा। पुनः आकर चक्रवर्तीने जो वस्त्राभूषण नमिराजकी माता व स्त्रियोंके लिए भेजे थे, उन सबको प्रदान किया व महल ही उससे भर दिया। वह रात्रि बहुत हर्षके साथ व्यतीत हुई। प्रातःकाल होनेके बाद सबको महलमें बुलाकर नमिराजने बहुत आदरके साथ भोजन कराया और उन लोगोंसे कहने लगा कि आप लोग और एक बात सुनें। वह यह है कि चक्रवर्तीके मंत्री बुद्धिसागरको आगे जाने दीजियेगा। आप हम मिलकर सब चक्रवर्तीके पास जावें, इसे आप लोग

स्वीकार करें। इस बातको सबने स्वीकार किया। तदनंतर हिमवंत, मागधामर आदि व्यंतरदेवोंका उन्होंने सत्कार किया। तदनंतर महलके अंदर चंद्रशालामें बैठकर चक्रवर्तीके मंत्री व मित्रोंको बुलवाया। उनके आनेपर कहने लगा कि मंत्री ! कहो, अब तो तुम्हारे स्वामीकी जीत हुई या नहीं ? तुम लोगोंका कार्य तो हुआ। मंत्रीने उत्तर दिया कि राजन् ! षट्खंडाधिपति सम्राट्के आधीनस्थ राजाओंको अपने दरवाजेपर बुलवाया, फिर कहो कि जीत तुम्हारी है या हमारे स्वामीकी ? उत्तरमें नमिराजने कहा कि कल विनमि आकर विवाहकार्यको सम्पन्न कर देगा। आप लोग आनंदसे जाएँ, इस प्रकार विनोद करनेके लिए, अपितु गम्भीरतासे कहा। इसे सुनकर बुद्धिसागरको आश्चर्य हुआ। कहने लगा कि राजन् ! यह क्या कहते हो ? १६ दिनतक तुम्हारे कहनेके अनुसार हम लोग यहाँ रह गये। अब तुम्हें छोड़कर हम कैसे जा सकते हैं ? तुम्हारे विना विवाहकी शोभा नहीं है। नमिराज कहने लगा कि मैं कैसे आ सकता हूँ ? तुम्हारे राजा मुझे "नमि आओ" इस प्रकार एकवचनसे संबोधन करेंगे। मुझे बुलाते समय "नमिराज आइये" इस प्रकार बहुमानात्मक शब्दका प्रयोग करना होगा। राजवंशमें जो उत्पन्न हैं, उनको राजा कहकर नहीं बुलाना यह राजाके लिए अपमान है। मैं षट्खंडपतिको भेंट समर्पणकर एवं नमस्कार कर बैठ सकता हूँ। परन्तु मेरे साथ बोलते समय 'आप' शब्दका प्रयोग कर ही बोलना चाहिए एवं मुझे राजा कहकर बुलाना होगा।

मंत्रीने उत्तरमें कहा कि राजन् ! आजपर्यंत किसीको भी हमारे स्वामीने राजा शब्दसे नहीं बुलाया। परन्तु तुम्हें बुलवायेंगे। आओ, तुम्हारे साथ सन्मानपूर्वक बोलनेके लिये कहेंगे। परंतु आप कहकर वे नहीं बुलायेंगे जैसे अन्य कन्या देनेवाले पिताओंको बुलायेंगे, उसी प्रकार बुलाकर "आइये, बैठिये" यह कहेंगे। परन्तु 'आप' शब्दका प्रयोग कैसे होगा ? नमिराज कहने लगा कि आपलोग समझाकर इस आदतको छुड़ा नहीं सकते ? तब मंत्रीने कहा कि राजन् ! सम्राट्की गंभीरताके संबंधमें आपको क्या कहें ? हमें बोलनेकी ही जरूरत नहीं है। उनकी वृत्तिको देखनेपर देवेंद्रकी भी उसके सामने कोई कीमत नहीं है। "रहने दो एक नरपतिको सुरपतिसे भी ऊँचा दिखाकर आपलोग प्रशंसा कर रहे हो, यह केवल आप लोगोंकी चापलूसी है" नमिराजने कहा। उत्तरमें मंत्री कहता है कि राजन् ! बोलो, क्या देवेंद्र तद्भवमोक्षगामी हैं ? हमारे राजा तद्भवमोक्षगामी हैं। उनके गांभीर्यका क्या

वर्णन करें ? समुद्रके समान गंभीरताको धारण करनेवाले हमारे सम्राट् इंद्रकी वृत्तिको देखकर हँसते हैं ? जिनेन्द्रभगवन्तके सामने देवेन्द्र जिस समय आता जाता है उस समय नृत्य करने लगता है। परंतु सम्राट् कहते हैं कि वह नाचता क्यों है। क्या भक्तिसे स्तुति करनेपर उत्कट भक्तिका फल नहीं मिल सकता है! मत्तगभ्रांतिकी भक्तिमें आवश्यकता नहीं है। देवेंद्र अपनी देवीके साथ समवसरणको हाथीपर चढ़कर जाता है, इस प्रकार खुले रूपमें अपनी स्त्रीको सबके सामने प्रदर्शन करते हुए वह भक्ति करनेके लिये जाता है, या अपनी स्त्रीकी लाजको बेचनेके लिये जाता है। क्या अकेली ही स्त्रीको विमानमें लेकर वह देवसभामें पहुँचकर दर्शन व भक्ति नहीं कर सकता है। लुच्चे व लफंगे जैसे युद्धमें जाते समय अपनी स्त्रियोंको साथमें ही ले जाते हैं, उस प्रकार यह बहिरंग पद्धति क्या है! राजन्! उसकी गंभीरताके लिये लोकमें नहीं उदाहरण है। दूसरे नहीं मिल सकते हैं। इसलिये वह तुम्हें राजा कह-कर बोले तो भी तुम्हारा कम सन्मान नहीं हुआ। इसलिये व्यर्थ तुम आग्रह मत करो। तब नमिराजने बातको स्वीकार कर लिया। आप लोग आज आगे जावें। मैं कल आता हूँ, इस प्रकार कहकर उनको बिदा किया। इसी प्रकार भंडारवती आदि स्त्रीजनोंका भी सत्कार करनेके लिए माता यशोभद्रा देवीको कहलाकर भेजा। यशोभद्रा देवीने भी पुत्रोंकी इच्छानुसार उन स्त्रियोंका यथेष्ट वस्त्राभरणोंसे सन्मान किया। उन स्त्रियोंसे भी उनसे समयोचित विनोदालाप करती हुई अब भरतेशकी ओर जानेके लिए आग्रह किया। तदनंतर सब लोग मिलकर बुद्धिसागरके साथ रवाना हुए।

इधर नमिराज अपनी माताकी महलमें चला गया। मातुश्रीको नमस्कार कर कहने लगा कि माताजी! आप कहती थीं कि भरतेशको कन्या लेजाकर दो। परन्तु मैंने कहा था कि अपनी प्रतिष्ठाको खोकर कन्या देना यह उचित नहीं है। आखरको कौनसा मार्ग अच्छा हुआ? सभी राजाओंको अपनी महलमें बुलाकर प्रतिष्ठाके साथ कन्या न देते हुये स्वयं लेजाकर देनेके लिये हम क्या डरपोक व्यापारी हैं? अपनी कन्याके लिए जब बड़े-बड़े राजा सन्मानके साथ यहाँपर आनेके लिए तैयार हैं तो फिर वहाँपर लेजाकर देनेके लिए क्या वह लड्डू जलेबी है? कन्या देनेके पूर्व लोभका परित्याग कर बारातमें आये हुओंको खूब सन्मान करना चाहिये। वह सम्राट् स्वतः नहीं आया। यदि वह भी आता तो मैं उसकी सेना व उसका यथेष्ट सन्मान करता। उत्तरमें

यशोभद्राने कहा कि बेटा ! तुमने भरतेशकी ओरसे प्रमुख राजाओंका जो सन्मान किया वह श्लाघनीय है। मेरी इच्छा तृप्त हुई।

"माताजी इस प्रकार मैं प्रतिष्ठाके साथ उन सबको यहाँ न बुलाकर एकांतमें लेजाकर सबके समान कन्याको दे देता तो बहिन भी उसके अंतःपुरमें हजारों रानियोंके समान सामान्य रूपसे रहती। उसे हमेशा सबतमत्सरसे होनेवाले दुःखको अनुभव करना पड़ता। परंतु आज जिस ढंगसे मैंने कार्य किया उससे वह पट्टरानी हो गयी। इन सब बातोंको न सोचकर आप तो कहती थीं कि कन्याको लेजाकर भरतेशको दो, नहीं तो मैं घर छोड़कर जाऊँगी। कहिये अब कैसा हुआ ?" नमिराजने कहा।

यशोभद्रा देवी नमिराजके वचनको सुनकर हँस गई। कहने लगी कि बेटा ! लोकमें कहावत है कि औरतोंकी बुद्धि राखमें मिलती है, क्या यह झूठ है ? तुमने मेरे अविवेकको सम्हालकर सचमुचमें हमारे वंशका उद्धार किया है। बहिनके लिए परमसुख हुआ पट्टरानी बन गई। मुझे परम संतोष हुआ। राज्यांग गौरव हुआ इन सबके लिये तुम ही कारण हो, अतएव बेटा ! सुखसे जीते रहो।

नमिराजने मातुश्रीके चरणोंमें नमस्कार कर अपनी महलकी ओर प्रस्थान किया। मातुश्री आनंदसे वहींपर बैठी रहीं, बुद्धिसागर अपने कार्यको करके भरतेश्वरकी ओर चला गया।

भरतेश्वरकी इच्छायें निर्विघ्नरूपसे एवं निमिषमात्रसे पूर्ण होती हैं। इसके लिए पूर्वजन्ममें जो उन्होंने तपस्या की है और वर्तमानमें पुण्यमय भावना कर रहे हैं, वही कारण है। उनकी सतत भावना रहती है कि

हे परमात्मन् ! तुम निमिषमात्र भी दुःखका अनुभव नहीं करते हुए सुखसागरमें मग्न हो, अतएव महादेव कहलाते हो। हे सुखोत्तम ! उस अमृतको सिंचन करते हुए मेरे हृदयमें सदा बने रहो। हे सिद्धात्मन् ! तुम उत्साहवर्धक हो, उन्मार्गमर्दक हो, चित्सुखी हो, चित्रार्थचरित्र हो, सन्मुनिहृदयश्रीवत्स हो इसलिये स्वामिन् ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि उनको किसी भी कार्यमें दुःखांत फल नहीं मिलता है।

इति मुद्रिकोपहार संधिः

———०———

नमिराजविनय संधि

भरतेश्वरको बुद्धिसागर मंत्री रोज वहाँसे मंगल समाचारको भेज रहा है, उसे जानकर भरतेश्वर प्रसन्न होते हैं।

एक दिनकी बात है कि भरतेश्वर अपनी महलसे सुखसे बैठे हैं, प्रातःकालका समय है। आकाशप्रदेशमें अनेक वाद्यविशेषोंके शब्द सुनने में आये। भरतेश्वरने जान लिया कि यह गंगादेव व सिंधुदेव आ रहे हैं, जयंतांकको उन्होंने स्वागतके लिए भेजा। सब लोगोंने बहुत वैभवके साथ पुरप्रवेश किया। गंगादेवी व सिंधुदेवीने आकर अपने भाईको नमस्कार किया व उचित आसनपर बैठ गईं।

भरतेश्वरने हर्षके साथ पंडितासे कहा कि हमारी बहिनें मंगल समय में उपस्थित हुईं, देखा! पंडिताने उत्तर दिया कि क्या बड़े भाईके कार्यमें वे उपस्थित न हों तो फिर कब उपस्थित हों? स्वामिन्! स्त्रियोंका स्वभाव ही यह होता है कि वे मायकेमें कुछ विवाहादि मंगलकार्य हो तो उसमें उपस्थित होनेके लिए उत्कंठित रहती हैं। उसमें भी जब आपकाही गौरवपूर्ण मंगलकार्य है,उसे सुनकर वे कैसे रह सकती हैं? जिस विवाहमें सहोदरियाँ नहीं हैं वह विवाह ही नहीं है। भरतेश्वरने हँसकर पंडिताको कुछ इनाम दिये व बहिनोंकी ओर देख-कर कहने लगे कि आप लोग थक गई होंगी। गंगादेवी व सिंधुदेवीने कहा कि भाई! हमें कोई थकावट नहीं है, तुम्हारे महलकी ओर आते समय अनुकूलपवन था। कोई आँधी वगैरह नहीं थी। जिस समय हम आ रही थीं उस समय बहुतसी व्यंतरदेवियाँ हमें हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी थीं कि आप लोग बड़ी भाग्यशालिनी हैं। भरतराजकी भगिनियाँ हैं, आप लोग हमपर कृपा रखें। इसी प्रकार आगे जिस समय हम बढ़ीं तो कुछ देवियाँ दूरसे ही नमस्कार कर चली गईं। ये इस प्रकार चुपचापके क्यों जा रही हैं? ऐसा हमें संदेह हुआ। तलाश करनेपर मालूम हुआ कि आपके सेवकोंने अंकमालाको लिखते समय उद्दण्डता करनेसे उनके पतियोंके दाँतोंको तोड़ डाले थे। अतएव वे चुपचापके जा रही थीं। हमें अपने भाईकी वीरतापर हर्ष हुआ, उनकी मूर्खतापर दया आई। इधर चक्रवर्तीकी रानियोंने उन दोनों देवियोंका स्वागत किया व उन दोनोंको अंदर लिवा ले गईं। इधर जयंतांकने गंगादेव व सिंधुदेवका स्वागत किया। गंगादेव व सिंधुदेवने भी सेना-

स्थानकी शोभाको आश्चर्यके साथ देखते हुए अंदर प्रवेश किया। जयंतांकने विवाहके निमित्तसे उस समय सेनास्थानको स्वर्गपुरीके समान अलंकृत किया था। भरतेश्वरने उनके साथ सरस वार्तालाप करनेके बाद उनको देवोचित महलमें विश्रान्तिके लिये भेजा। गंगादेव सिंधुदेवने यह कहते हुये कि आपको किसी बातकी कमी नहीं है, तथापि हमलोगोंकी भक्ति है कि विवाहके समय इन उत्तमोत्तम वस्त्राभरणोंको धारण करें, भरतेश्वरको अनेक वस्त्र व रत्नाभरणोंको भेंटमें दिये। भरतेश्वरने भी संतोषके साथ ग्रहण किया। अनन्तर उनको उनके लिए निर्मित महलमें भेजकर, उनकी महलमें उत्तम वस्तुओंको भेजनेके लिये जयंतांकको सूचना दी गई। तदनन्तर गंगादेवी व सिंधुदेवी भी उनके योग्य महलमें गई। क्योंकि वे देवियाँ थीं, मानवीय स्त्रियाँ होतीं तो भाईके महलमें ही रहतीं। उनको भी यथेष्ठ वस्त्राभरणादि उपहार भेजे गये।

वह दिन आनन्दके साथ व्यतीत हुआ। रात्रिके समय बुद्धिसागर मंत्री अनेक गाजेबाजेके साथ आया व चक्रवर्तीको भक्तिसे नमस्कार किया। बुद्धिसागरके साथ गये हुए बहुतसे व्यंतर राजा व विद्याधर राजा थे। उन सबसे सम्राट्ने कुशल प्रश्न किया। मागधामर, प्रभासांक, हिमवंत आदिका उन्होंने नामोच्चारण करते हुए उनका कुशल समाचार पूछा एवं उन लोगोंको अनेक वस्त्राभरण प्रदान किए। उस समय सब लोगोंने भरतेश्वरको हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! हम लोग कुछ निवेदन करना चाहते हैं। वह स्वीकार होना चाहिए। भरतेश्वर विचारमें पड़ गये कि ये क्या कहनेवाले होंगे। कुछ भी हो, ये मेरे अहितके नहीं कहेंगे। फिर क्या हर्ज है। फिर उनसे कहने लगे कि अच्छा! क्या कहना चाहते हैं? कहिये, मैं अवश्य सुनूंगा।

स्वामिन्! और कुछ नहीं, वह नमिराज बहुत मानी है। वह यहाँ आनेके लिये तैयार नहीं था। परन्तु हम लोगोंने किसी तरह मनाकर उसे मंजूर कराया है। परन्तु आप उसे नमिराजके नामसे संबोधन करें। वह चाहता था कि आप उसके साथ 'आप' शब्दके साथ बोलें। परन्तु हम लोगोंने उसे स्वीकार नहीं किया। केवल नमिराज शब्दसे संबोधन करना मंजूर किया है। इसे आप स्वीकार करें। आपके मामाके पुत्रके लिए यह सन्मान रहने दीजियेगा। नमिराजके स्वाभिमानको देखकर भरतेश्वरको मनमें प्रसन्नता हुई सचमुचमें नमिराजके हृदयमें

क्षत्रिय कुलका अभिमान है। फिर भी उस प्रसन्नताको बाहर न बतलाकर कहने लगे कि मंत्री ! इस षट्खंडमें राजा मैं अकेला ही हूँ। तब क्या दूसरेको यह पद मिल सकता है ? फिर मैं उसे राजाके नामसे कैसे बुला सकता हूँ जब वह मेरे सामने आकर नमस्कार करेगा, फिर उसे स्वामित्व कहाँ रहा ? ऐसी अवस्थामें मैं राजा कैसे कह सकता हूँ। मंत्रीने प्रार्थना की कि आपकी पट्टरानीके बड़े भाईके लिये यह सन्मान देना चाहिये ! तब भरतेश्वरने कहा कि यद्यपि यह मान देना ठीक नहीं है। तथापि आप लोगोंकी बातको मानना भी मेरा कर्तव्य है। मैं उसे स्वीकार करता हूँ।

इतनेमें भंडारवतीने आकर सम्राट्को नमस्कार किया व कहने लगी कि स्वामिन् ! मैं सुभद्रादेवीको देखकर आ गई हूँ, सचमुचमें उसका सौंदर्य अप्रतिम है अब तो उसे देखकर आप षट्खंड राज्यको भी भूल जायेंगे। उसके प्रत्येक अवयवमें वह रूप भरा हुआ है जो अन्यत्र देखनेके लिये मिल नहीं सकता। वह अपने सौंदर्यसे स्वर्गीय तरुणियोंको भी तिरस्कृत करती है। पुरुषोंमें आप व स्त्रियोंमें वह एक सौंदर्यका भांडार है। इत्यादि प्रकारसे उसके रूपकी प्रशंसा कर जाने लगी। भरतेश्वरने उसे खाली हाथ न जाने देकर अनेक उपहारोंको साथ भेजा। इस प्रकार वह रात्रि भी आनंदके साथ व्यतीत हुई। दूसरे दिन प्रातःकालकी बात है। भरतेश्वर दरबार लगाकर बैठे हुए हैं। इतनेमें आकाश प्रदेशमें अनेक विमान आते हुए दिखाई दे रहे हैं। यह कोई और नहीं था। नमिराज अनेक राजा व परिवारको साथमें लेकर विवाह की तैयारीसे आ रहा है। यहाँसे गये हुए प्रायः षट्खंडके सभी राजा उसके साथ हैं। अपनी मातुश्री व बहिनको विमानमें रखकर एवं अपनी स्त्रियोंको अपने पुरमें ही छोड़कर आया है। इसमें राजांग रहस्य है। उसे मालूम था कि भरतेश्वर मुझे अब सन्मानकी दृष्टिसे नहीं देखेंगे। अतएव उनकी स्त्रियां भी मेरी स्त्रियोंको हीनदृष्टिसे देखेंगी। इस विचारसे उसने अपनी स्त्रियोंको अपने नगरमें ही छोड़ दी। यदि बंधुओंको बराबरीकी दृष्टिसे देखा तो उनसे मिलना ठीक है जो सेवकोंके समान बंधुओंको देखते हैं उनसे मिलना कदापि उचित नहीं है। आकाशप्रदेशमें आते हुए नमिराजने चक्रवर्तीके सेनास्थानके सौंदर्यको देखा। अनेक तोरणोंसे अलंकृत मंदिर, तरह-तरहकी शोभाओंसे शोभित ४८ कोस परिमाण सेनास्थान, रत्ननिर्मित महल, अन्यदुर्लभ सुगंधसामग्री आदियोंको देखकर नमिराज

आश्चर्यचकित हुआ। मनमें सोचने लगा कि बीचमें जहाँ मुक्काम किया है वहाँ इसकी यह हालत है, तो फिर इसकी साक्षात् नगरीमें क्या होगी ? सचमुचमें यह भाग्यशाली है। साक्षात् देवेन्द्र भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता है। प्रत्यक्ष देखे बिना कोई बात मालूम नहीं होती है। मैंने व्यर्थ ही गर्व किया। इसकी संपत्तिको देखते हुए मुझे धिक्कार होना चाहिये। "कुलमें मैं इससे कम नहीं हूँ" इस गर्वसे मैं अभीतक बैठा रहा। क्या मैं इसकी बराबरी कर सकता हूँ ? इसके साथ मैंने व्यर्थ ही छल किया। अब मैं अपनी बहिनको जल्दी ही उसे देकर विवाह कर दूंगा। मेरी बहिनका भाग्य भी अप्रतिम है। इत्यादि विचारसे नमिराजका मस्तक भरने लगा। यशोभद्रादेवी भी अपने दामादके भाग्यको विमानसे ही देखकर फूली नहीं समाती थीं।

नमिराज विमानसे उतरकर चक्रवर्तीकी महलकी ओर आ रहा है। चक्रवर्तीने भी उसके स्वागतके लिए मन्त्री आदि प्रमुख पुरुषोंको भेजे। उन्होंने जाकर बहुत सन्तोषके साथ नमिराजका स्वागत किया। नमिराजका सबके साथ बहुत हर्षसे महलकी ओर आ रहा है। वह भी परम सुन्दर है, बहुत वैभवके साथ आ रहा है। उसने दूसरे चक्रवर्तीको देखा, दरबार में प्रवेश किया।

वेत्रधारी लोग भरतेश्वरसे कह रहे हैं कि हे राजाधिराजा मार्तण्ड ! देखियेगा नमिराज पासमें आ रहे हैं। आपके मामाके पुत्र नमिराज आ रहे हैं। सम्राट्ने गायन वगैरह बन्द कराकर इस ओर देखा। नमिराजने अनेक भेंटोंको समर्पण कर चक्रवर्तीको नमस्कार किया। सम्राट्ने हर्षके साथ उसे आलिंगन दिया व अपने सिंहासनके साथ ही दूसरा एक आसन दिया। उसपर नमिराज बैठ गया। बाकीके लोगोंको भी उचित आसन दिए गये। बादमें सम्राट् कहने लगे कि नमिराज ! बहुत दिनके बाद तुम्हारा दर्शन हुआ, आज हमें हर्ष हो रहा है। उत्तरमें नमिराज कहने लगा कि भावाजी ! आप यह क्यों कह रहे हैं कि मैं बहुत समयके बाद देखनेको मिला, प्रत्युत् मुझे बहुत काल बाद भाग्यसे आपका दर्शन मिला। सचमुचमें उस समय नमिराजका हर्षसागर उमड़ पड़ा था। कारण सम्राट्ने उसे राजा शब्दसे सम्बोधन किया था। क्यों नहीं ? उसे हर्ष होना साहजिक है। उसका आसन छोटा होनेपर भी यह मान छोटा नहीं था।

भरतेश्वर—नमिराज ! तुमने मुझे देखनेकी इच्छा नहीं की, परंतु

तुम्हें देखनेके लिए मैंने अनेक तन्त्रोंसे प्रयत्न किया, क्योंकि स्नेह पदार्थ ही ऐसा है। वह सब कुछ कराता है।

नमिराज—क्या आपके प्रति मेरा प्रेम नहीं है ? आपको देखनेकी मेरी इच्छा नहीं होती थी ? जरूर होती थी। परन्तु आपके भाग्यकी महिमाको सुनकर मैं डरता था कि मैं आपसे कैसे मिलूं ? इसलिए मैं दूर ही था। क्या इसे आप नहीं जानते हैं ? भावाजी ! आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि लोकमें गरीब व्यक्ति श्रीमन्तोंको अपना बन्धु कहें तो लोग सब हँसते हैं। यदि श्रीमन्त गरीबको अपना बन्धु कहें तो उसकी शोभा होती है। बड़े आदमी चाहे जैसे ओढ़ें तो चलता है, उसके लिए कोई बाधा नहीं है अतएव मैं पहाड़के ऊपर ही रहा। अब आपकी आज्ञा हुई, झट यहाँपर चला आया।

भरतेश्वर—नमिराज ! तुम बोलनेमें बड़े चतुर हो, शाबास ! (चक्रवर्ती हर्षके साथ उसकी ओर देखते रहे)

नमिराज—स्वामिन् ! बोलनेकी चतुराई आपमें है या मुझमें है, यह साथके राजाओं से ही पूछ लिया जाये। हाथ कंगनको आरसी की क्या जरूरत है ?

इतनेमें मागधामरादि प्रमुख कहने लगे कि सचमुचमें हमारे स्वामी बोलने-चालनेमें चतुर हैं। परन्तु वह स्वयं ही जब आपको चतुर कह रहा है तो आप भी चतुर हो इसमें कोई शक नहीं है।

भरतेश्वर—नमिराज ! तुम मेरे मामाके पुत्र होनेके लिए सर्वथा योग्य हो, हजार बातोंसे क्या है ? तुम राजा कहलानेके लिये सर्वथा समर्थ हो। मैं चक्ररत्नको प्राप्त कर पराक्रमसे जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। परन्तु तुम क्षात्राभिमानको कायम रखकर उसी तेजसे यहाँ-पर आये। तुम ही सचमुचमें विक्रमान्वयशुद्ध हो। किसी भी बातको छोड़नेमें, पकड़नेमें, लेने, देनेमें, शरीरसौंदर्यमें, बोलने-चालने आदि बातोंमें, क्षत्रियोंमें कोई विशेषता रहनी चाहिये। खाली-बोली व चालपर मैं प्रसन्न नहीं हो सकता, तुम्हारी वृत्तिने मेरे मस्तकको डुलाया।

इतनेमें नमिराजने अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभरणोंको सम्राट्के सामने भेंटमें रक्खा। भरतेश्वर पुनः कहने लगे कि जब मैं तुमसे प्रसन्न हुआ तो तुम मुझे भेंट क्यों दे रहे हो। मुझे तुमको देना चाहिये।

नमिराज कहने लगा कि तुम्हारे वचनोंसे मेरा हृदय पिघल गया। अतएव विनयके चिह्नके रूपमें इनको स्वीकार करना ही चाहिये।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तदनन्तर भरतेश्वरने द्विगुणित रूपसे आगत बन्धुओंका सन्मान किया। नमिराजको भी उसी प्रकार उपहार दिये।

बुद्धिसागरने प्रार्थना की कि स्वामिन्! कलके रोज हम लोग विवाह-मंगलके आनन्दको मनायेंगे। आज इन सबको विश्रान्तिकी आज्ञा होनी चाहिये। तदनुसार भरतेश्वरने सबको दरबारसे बिदा किया। सबको जानेके लिये इशारा करके स्वयं भी महलकी ओर रवाना हुए। चक्रवर्तीके कुछ दूर जानेके बाद एक दासीने आकर कानमें कहा कि स्वामिन्! नमिराज अकेले ही आये हैं। उनकी देवियोंको वहींपर छोड़कर आये हैं। सम्राट् वहीं ठहर गये व नमिराजको अकेला ही आनेके लिए इशारा करनेपर वह अकेला ही पासमें आया। बाकीके नौकर-चाकर सब दूर चले गए। सम्राट्ने नमिराजके कानमें कहा कि नमिराज! तुम यहांपर आये, सो बहुत अच्छा हुआ। परन्तु तुम्हारी स्त्रियोंको तुम अपने गांवमें ही रखकर आये यह ठीक नहीं है उत्तरमें नमिराजने कहा कि माताजी आई हैं। बहनको लेकर आया ही हूं। फिर उनकी क्या आवश्यकता है? इसलिए छोड़कर आया हूं। आपको किस वैभवकी कमी है।

भरतेश्वर कहने लगे कि तुम व्यर्थकी बहानाबाजी मेरे साथ मत करो। मेरी बहिनोंको मुझे देखनेकी इच्छा हो रही है। उनके आये बिना विवाहमें शोभा ही नहीं है नमिराजने थोड़ा संकोच किया। पुनः सम्राट् कहने लगे कि नमिराज! इस प्रकार भेदभावसे क्यों विचार करते हो? मेरी बहिनोंसे मुझे मिलना ही है। आज ही रात्रिको उन्हें बुलवा लूंगा। तुम यहांपर आये। मामीजी आ गई। अब केवल मेरी बहिनें वहांपर रह गई। उनके मनमें न मालूम क्या विचार उत्पन्न होता होगा। मनमें कितना दुःख होता होगा। हमारी स्त्रियोंसे वे दो दिनके लिए मिलकर प्रसन्न हो जाती। स्त्रियोंको ऐसे कामोंमें बड़ा सन्तोष रहता है। इसलिये जरूर बुलवाओ। इतना कहकर सम्राट् महलकी ओर चले गये। नमिराजकी महलको पहिलेसे सम्राट्ने भोगोपभोग सामग्रीको भर दिया था। चक्रवर्तीने महलमें जाकर भोजन किया। नमिराज भी भोजनादि क्रियासे निवृत्त हुए। इस प्रकार वह दिन सुखसे व्यतीत हुआ।

पाठक देखें कि नमिराज चक्रवर्तीके पास आनेके लिए संकोच करता था। अभिमानसे अपनी बहिनको सम्राट्को देनेके लिए भी तैयार नहीं था। परन्तु सम्राट् पुण्यशाली हैं। उनके सातिशय पुण्यके

प्रभावसे कैसा भी कठोर हृदय क्यों न हो, वह पिघल जाता है। उनको सुख ही सुखका प्रसंग आता है। आगेके प्रकरणसे पाठक सुभद्राकुमारीके साथ भरतेश्वरका विवाह होनेके मंगलप्रसंगका दर्शन करेंगे। भरतेश्वर सदा संसारमें भी सातिशय सुख मिल सके इसके लिए आत्मभावना करते हैं। उनके हृदयमें सदा आत्मविचार बना रहा है।

"हे परमात्मन् ! जो व्यक्ति हृदयसे तुम्हें देखता है उसे तुम अविच्छिन्न सुखको प्रदान करते हो, वह सुख अनुपम है। क्योंकि तुम सुखसागर हो। अतएव सदा अचल होकर मेरे हृदयमें बने रहो। हे सिद्धात्मन् ! आपको उपासना करनेवाले व्यक्ति अनेक सिद्धियोंको साध्य कर अंतमें संसिद्धि (मुक्ति) युवतीके साथ विवाह कर लेते हैं जैसा कि आपने कर लिया है। इसलिए हे भव्यबांधव ! अगणित सुखको प्राप्त करने योग्य सुबुद्धिको प्रदान कीजियेगा।" इसी भव्य भावनाका यह फल है कि उनको बार-बार सुखसाधनोंकी प्राप्ति होती रहती है।

इति नमिराजविनय सन्धिः

—०—

विवाहसंभ्रम सन्धि

नमिराज अपने मनमें विचार करने लगा कि जब स्वयं सम्राट्ने जिनको अपनी सहोदरियोंके नामसे उल्लेख किया, ऐसी अवस्थामें वे अपनी स्त्रियोंको नहीं लाना यह उचित नहीं है। उसी समय उनको बुलवानेकी व्यवस्था की गई। विनमिराजकी माता शुभदेवी, उसकी पाँच सौ देवियोंके साथ आई व नमिराजकी आठ हजार रानियाँ भी आ गईं। सबका स्वागत किया गया।

यशस्वतीदेवी जो कि भरतेश्वरकी माता हैं, उसका भाई कच्छराज है। सुनन्दादेवीके भाई महाकच्छ हैं। दोनों सुखी हैं। कच्छराजको नमिराज व सुभद्रादेवी और महाकच्छको इच्छामहादेवी व विनमिराज इस प्रकार प्रत्येकको दो-दो संतान हैं। कामदेव बाहुबलिके साथ इच्छामहादेवीका विवाह हुआ है। पोदनपुरमें सुखसे अपने समयको व्यतीत कर रही है। सुभद्रादेवीके साथ आज भरतेश्वरके विवाहकी तैयारी हो रही है। अतएव इस मंगल प्रसंगमें सब लोग यहाँपर एकत्रित हुए हैं।

सब लोग यहाँपर आ गये हैं, यह समझकर भरतेश्वरको परमहर्ष हुआ। उन्होंने विवाहकी तैयारी करनेके लिए आदेश दिया। विवाह-समारंभके उपलक्ष्यमें सेनास्थानका श्रृंगार किया गया। एक नवीन जिनमंदिरका निर्माण हुआ। वहाँपर बहुत संभ्रमके साथ पूजाविधान होने लगे। करोड़ों प्रकारके गाजेबाजेके साथ, शुद्ध मन्त्रोच्चारणके साथ पूजाविधान चल रहा है। भरतेश्वर भक्तिसे उसे देख रहे हैं। पूजाविधानके अनंतर विप्रगणोंको अभ्यंगके साथ अनेक भक्ष्यभोज्यसे तृप्त किया एवं उत्तमोत्तम वस्त्राभरणोंको दानमें दिए। सम्राट्को किस बातकी कमी है? "सति सुभद्रादेवी व पति भरतेश बहुत सुखके साथ चिरकाल जीते रहें" इस प्रकार दान लेते समय विप्रोंने आशीर्वाद दिया। इसी प्रकार अन्य श्रेष्ठिवर्ग, वेश्यायें, परिवार आदि सबको परमाप्तसे सम्राट्ने तृप्त कराया। सेनास्थानकी प्रत्येक गलीमें भोजनका समारंभ हुआ। सेनाके एक-एक बच्चेको भक्ष्यभोज्यसे संतुष्ट किया। स्थान-स्थानपर वस्त्रके पहाड़ ही रखे हुए हैं। जिसे चाहे वह ले जाये। तांबूल, कर्पूर, इलायची वगैरह पर्वतोंके समान ढेरके ढेर रखे हुए हैं। जो महलमें जीम सकते हैं, उनको महलमें जिमाया। अन्य लोगोंको स्थान-स्थान पर पाकशालाका निर्माण कर भोजन कराया और जो अस्पृश्य है उनको पक्वान्न मिठाई वगैरह दिये गये। वे बाँधकर ले गये। इतना ही नहीं हाथी, घोड़ा, आदि जो सेनामें सजीव युद्धसाधन हैं उनकी भी तृप्ति की गई। परिवारको संतुष्ट किया। व्यंतरोंको दिव्य वस्त्राभरणोंसे संतुष्ट किया। नरपति, खगपति, व्यंतरपति आदि अपने मित्रोंका यथेष्ट सत्कार किया। हजारों राजकुमारोंको अपने महलमें बुलाकर भोजन कराया व उनका सत्कार किया। अपनी बहिन गंगादेवी व सिंधुदेवीका यथेष्ट सत्कार किया गया। साथमें देवपरिवारजनोंका भी सत्कार किया। अपनी दोनों मामी और नमिराजका उन्होंने जिस वैभवसे सन्मान किया उसका क्या वर्णन हो सकता है? नमिराजकी देवियोंका भी सन्मान किया। विशेष क्या? ४८ कोशपरिमित उस स्थानमें रहे हुए प्रत्येक प्राणीको सम्राट्ने तृप्त किया। परंतु मुनिभुक्ति मात्र नहीं हो सकी। इसका भरतेश्वरके मनमें जरूर दुःख हुआ। तथापि उन्होंने अपनी उत्कृष्ट भावनासे इस कार्यको भी पूर्ण किया।

इस प्रकार चक्रवर्तीके कार्यको देखकर सासके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ। मनमें सोचने लगी कि ऐसे महापुरुषकी महलमें पहुँचने वाली

मेरी पुत्री धन्य है। इस प्रकार प्रातःकालमें बड़े आनन्दके साथ भोजनादि कार्य हुये। बादमें दोपहरको चक्रवर्तीने सबको आनन्दसे बसंतोत्सव व कुंकुमोत्सव मनानेके लिये आदेश दिया।

तदन्तर गंगादेव व सिंधुदेव दोनों नमिराजकी महलपर गये व महादेवीके लिये उचित दिव्य वस्त्राभरणोंको देकर चले गये। इसे देखकर गंगादेवी व सिंधुदेवीकी भी बड़ी इच्छा हुई कि हम भी भाभीको कुछ भेंट दें। उन्होंने अपने पतिराजसे पूछा। उत्तरमें गंगादेव सिंधुदेवने कहा कि यदि तुम्हारे भाईने आज्ञा दी तो तुम लोग जा सकती हो। उसी समय गंगादेवी व सिंधुदेवी दोनों मिलकर भाईके पास आईं और कहने लगीं कि भाई! विवाहके लिये शृंगारकी हुई कन्याको हम देखना चाहती हैं। परवानगी मिलनी चाहिये। तब भरतेश्वरने कहा कि आप लोगोंको इतनी गड़बड़ क्या है? रात्रिमें विवाह मंडपमें आप लोग देख सकती हैं। दूसरोंके घरमें बिना बुलाये जाना क्या उचित है? भाई! परगृह कौनसा है? यह गगनवल्लभपुर तो नहीं है। अपने नगरमें आकर उन्होंने अपनी महलमें मुक्काम किया है। फिर वह परगृह किस प्रकार हो सकता है? ऐसा नहीं बहिन! दूसरे जब अपनको बुलाते नहीं, अपन ही स्वतः वहाँ पहुँचते हैं तो उसमें आदर नहीं रहता है। वे कह सकते हैं कि हमने क्या बुलाया था? वे क्यों आ गईं? इससे अपनी प्रतिष्ठा कम हो सकती है। भाई! तुमने हमें आदरकी दृष्टिसे देखा तो हमें दुनियाका सन्मान मिल गया। यदि तुमने आदर नहीं किया तो हमारी कीमत अपने आप कम हो जाती है। इसलिये वे क्या कर सकते हैं? हमें उनके सन्मानसे क्या? प्रयोजनविशेष क्या? षट्खंडाधिपति हमारे भाई की भाग्यशालिनी भावी पट्टरानी, उस हमारी भाभीको देखनेकी भव्यभावना हमारे मनमें हो गई है। इसलिये हमें अनुमति मिलनी चाहिये।

भरतेश्वरने बहिनोंकी बड़ी आतुरता देखी। उन्होंने कहा कि अच्छा! यदि आप लोगोंकी बहुत इच्छा हो तो एक दफे जाकर आवें। तब उनको बड़ा आनंद हुआ। वे दोनों बहिनें उसी समय नमिराजके महलमें गईं। यशोभद्रादेवीको मालूम हुआ कि भरतेश्वरकी बहिनें मिलनेके लिये आ रही हैं। तब देवीने सेवकियोंसे उन दोनों बहिनोंका पैर धुलवाया और योग्य आसन देकर बैठनेके लिये कहा। परन्तु उन बहिनोंने कहा कि हम लोग यहाँ नहीं बैठेंगी। हमारी भाभी कहाँ हैं? उसके पास जाकर बैठेंगी। तब यशोभद्रादेवी उनको ऊपरकी महलमें

ले गई। वहाँपर अनेक स्त्रियोंके बीच आनंदसे बैठी हुई उस सुभद्रा-देवीको देखा। यशोभद्राने पुत्रीसे कहा कि बेटी ! तुम्हारे राजा भर-तेश्वरकी बहिनें आ गई हैं, उनसे मिलो। तब सुभद्रादेवीने उठकर दोनोंको आलिंगन दिया। तदनंतर तीनों मिलकर वहाँ बैठ गई। पास-में ही यशोभद्रादेवी भी बैठ गई।

सुभद्रादेवीकी बोलचाल हावभावको देखकर गंगादेवी व सिंधुदेवी ने मनमें विचार किया कि सचमुचमें यह सामान्य लड़की नहीं है। सम्राट्की पत्नी होने योग्य है। यह चक्रवर्तीको मोहित किये बिना नहीं रहेगी। इसके शृङ्गार, अलंकार, सौंदर्य आदि देवांगनाओंको भी तिरस्कृत करते हैं। मनुष्यस्त्रियोंकी तो बात ही क्या है ! सुभद्रादेवी-के प्रत्येक अवयवके आभरण अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रहे थे। अनेक सखियां उसकी सेवामें खड़ी हैं। तांबूलदान आदि कार्यमें सदा सिद्ध रहती हैं वह सुभद्रादेवी बहुत गंभीरतासे उन देवांगनाओंकी ओर देखती हुई बैठी थी। देवियोंने प्रश्न किया कि हमारे भाईके मनको हरण करनेवाली क्या तुम ही हो ? सुभद्रादेवीने कुछ भी उत्तर न देकर मुसकराकर, शायद मौनसे यह कह रही है कि यह कौन सी बड़ी बात है। पुनश्च वे प्रश्न करने लगीं कि क्या यही तिलक भरतेश्वरके मन-को प्रसन्न करेगा ? क्या यह वेणी ही सम्राट्को मोहित करेगी। बोलो देवी ! तुम मौनसे क्यों बैठी हो ? तब सुभद्रादेवीने लज्जासे सिर झुकाया। वे दोनों बार-बार उसे बुलवानेकी कोशिश कर रही हैं परन्तु वह लज्जासे बोलती नहीं। फिर उसे चिढ़ानेके लिये कह रही हैं कि यह सुन्दरी तो जरूर है, परन्तु सरस नहीं है। क्योंकि जब हम स्त्रियोंसे नहीं बोलती है तो अपने पतिसे कैसे बोल सकती है ? केवल सुन्दरी रहनेसे क्या प्रयोजन ? देखने के लिये सुन्दर दिखनेवाले फल यदि सरस न हों तो क्या प्रयोजन ? तब मधुवाणी कहने लगी कि यह आज नहीं बोलेगी। कल या परसों आप देखें। आप लोगोंको एक दो बातोंमें ही निरुत्तर कर देगी। आप लोगोंकी बात ही क्या है ? आपके भाईकी बुद्धिमत्ता भी हमारी देवीके सामने कभी-कभी चल नहीं सकेगी। उनको भी किसी किसी समय निरुत्तर कर देगी। हमारी देवीकी बुद्धिमत्ताके सामने दूसरोंका चातुर्य नहीं चल सकेगा। आज रहने दीजिये। तब गंगादेवी व सिंधुदेवीने कहा कि मधुवाणी ! ठीक है ! शायद इस सुभद्रादेवीका नियम होगा कि अपने पतिके सिवाय

दूसरे किसीसे भी नहीं बोलेगी, इसलिए मौनसे बैठी है। अच्छा ! हम जाकर भाईसे बोल देंगी। तब यशोभद्राने कहा कि जानेदो जी ! तुम्हारे भाई व तुमको यह कन्या कैसे जीत सकती है। इसलिए व्यर्थ ही उसे क्यों बुलवानेका प्रयत्न आप लोग कर रही हैं ? तुम्हारे भाई इस लोक में सर्वश्रेष्ठ हैं और आप लोग देवस्त्रियाँ हैं। आप लोगोंको बातोंसे कौन जीत सकते हैं ? इसलिए आप लोग मेरी कन्यासे हाथ प्रेमसे मिलती रहें यही हमें चाहिए।

इस प्रकार विनयविलास कर वे दोनों बहिनें जानेके लिए निकलीं। जाते समय दोनों बहिनोंने सुभद्राकुमारीकी अँगूठी देखनेके लिए चाहनेपर उसने सहज ही निकालकर दी। तब वे दोनों कहने लगीं कि इसे तुम्हारे प्रेमचिह्नके रूपमें ले जाकर हम अपने भाईको देंगी। तब दोनों को अपनी दोनों हाथोंसे धरकर बैठा दिया। सचमुच उसकी शक्ति अपार थी। लोककी समस्त स्त्रियोंके मिलनेपर भी चक्रवर्तीको स्त्रीरत्नके सिवाय संतोष नहीं होता है। यह सुभद्रा स्त्रीरत्न है। शक्तिमें फिर उसकी बराबरी कौन कर सकते हैं ? उसने उन देवांगनाओंके हाथसे अंगूठी छीन ली। उसकी सामर्थ्यको देखकर उन देवियोंको भी आश्चर्य हुआ। उत्तरमें उन्होंने कहा कि कुमारी ! अपने घरमें तुम इतनी शक्तिको दिखला रही हो। अब अच्छा ! हमारे भाईके महलमें आओ ! वहाँपर देखेंगे तुम्हारी सामर्थ्य कितनी है ? इस प्रकार विनोद वार्तालाप करती हुई जानेके लिए निकली। तब यशोभद्रादेवीने अनेक मंगल पदार्थोंको देकर उनका सत्कार किया।

वहाँसे निकलकर दोनों देवियाँ भाईके पास गईं, वहाँ जाकर उन्होंने सुभद्राकुमारीकी बड़ी प्रशंसा की। भाई ! उसका रूप, शृङ्गार व गांभीर्य आदिको देखकर हम दंग रह गईं। उत्तरमें भरतेश्वर कहने लगे कि न मालूम आप व्यर्थ प्रशंसा क्यों कर रही हैं ? तब देवियोंने कहा कि भाई ! इसमें बिलकुल संदेह नहीं है। वह स्त्रियोंमें रत्नके समान है। उसकी सामर्थ्य अपार है। भाई ! हम लोगोंका चित्त प्रसन्न हुआ। यह बड़ा भारी समारम्भ है। ऐसे समयमें मातुश्री भी रहतीं तो बड़ा आनंद होता। उत्तरमें भरतेश्वर कहने लगे कि बहिन ! मैं भी यही सोच रहा था। माताजीको इस समय विमान भेजकर बुलवा लेता। परन्तु उसमें एक विघ्न है। माताजीको बुलाते समय छोटी माँ सुनंदादेवीको भी बुलाना चाहिए। उनका भी आना जरूरी है। परन्तु बाहुबलि उनको भेजनेके लिये मंजूर नहीं करेगा। क्योंकि मेरे

भाईका हृदय कैसा है मैं जानता हूँ। इसलिए आप लोग संतुष्ट रहें। आज रहने दो।

रात्रि हो गई, पूर्णिमा होनेके कारण शुभ्र चाँदनी फैल रही है। उस समय नरलोक ज्योतिर्लोकके समान मालूम हो रहा है। सेनास्थानमें विवाह समारम्भकी तैयारियाँ हो रही हैं। सेनाके प्रत्येक अंगका शृङ्गार किया गया है। हाथी, घोड़े आदि भी सजाये गये हैं। सर्वत्र आनंद ही आनंद हो रहा है। एक तरफ इस खुशीमें विद्याधरी देवियाँ आकाशमें नृत्य कर रही थीं तो दूसरी तरफ भूचरी देवियाँ भूमिपर नृत्य कर रही थीं। करोड़ों प्रकारके वाद्य बज रहे थे। सुभद्राकुमारीको अनेक देवियोंने मिलकर विवाहोचित शृङ्गारसे शृङ्गारित किया। भरतेश्वर भी देवेन्द्रके अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभारणोंसे अलंकृत हुए। सर्वत्र उनकी जयजयकार हो रही है।

भरतेश्वरका पुण्य अन्यासदृश है। उनको हर समय आनन्द व मंगलके प्रसंग आया करते हैं। वे संसारमें भी सुखका अनुभव करते हैं। उनकी सेवामें रहनेवाले सेवकोंको भी जब दुःख नहीं है तो फिर उनको स्वयंको दुःख किस बातका हो सकता है। जिस प्रकार दीपक दूसरोंको भी प्रकाश देता है व स्वयं भी प्रकाशित होता है उसी प्रकार भरतेश्वर स्वयं भी सुख भोगते हैं, दूसरोंको भी सुख देते है। वे परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि –

"हे परमात्मन्! तुम स्वयं सुखी हो एवं समस्त लोकको सुख प्रदान करते हो। क्योंकि तुम सुखस्वरूप हो। अतएव मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! मुक्तिलक्ष्मीके साथ विवाह करनेके पहिले आप लोकको मृदु, मधुर व गंभीर धर्मामृत पानसे सन्तुष्ट करते हो। हितोक्तिके द्वारा संसारके समस्त प्राणियोंको तृप्त करते हो। अतएव हे परमविरक्त! मुझे व्यक्तमतिको प्रदान करें।

इसी भावनाका फल है कि वे सदा सुख भोगते हैं व दूसरोंको सुख देते हैं।

इति विवाहसंभ्रम संधि

—०—

स्त्रीरत्नसंभोग संधि

विवाहकी सर्व तैयारियाँ हो चुकी हैं। करोड़ों प्रकारके गाजेबाजों के साथ कन्याने आकर विवाह मंडपमें प्रवेश किया। वहाँपर सुन्दर अलंकृत अक्षतवेदीपर आकर कन्या खड़ी है। अनेक विप्रजन मंगल मंत्र बोल रहे हैं। सम्राट् भी विवाहोचित वेषभूषासे युक्त होकर अपने परिवारके साथ आ रहे हैं। वहाँपर विवाह मण्डपमें प्रवेश कर अपने लिए निर्मित अक्षत वेदीपर वे खड़े हुये। वर और वधूके बीच एक सुन्दर पर्दा है। द्विजोंने मंगलाष्टक पढ़ना प्रारम्भ किया। उत्तम मंत्रोंका उच्चारण करते हुये उन्होंने उन दम्पतियोंको मोतियोंका तिलक लगाया। मंगलाष्टक पूर्ण होनेके बाद मंगलकौशिक रागमें गायन करने लगे। तदनन्तर जब पलमंजरि रागमें गा रहे थे तब वह बीचका पर्दा एकदम अलग हुआ। नमि, विनमि व सिन्धुदेव, गंगादेव ने सुभद्रादेवीसे पुष्पमाला डालनेके लिये कहा। तदनुसार सुभद्रादेवीने सम्राट्के गलेमें माला डाल दी। उस समय सम्राट्को इतना हर्ष हुआ कि मानो तीन लोकका भाग्य ही उनके गलेमें आ गया हो। सम्राट् स्वभावसेही सुन्दर हैं। उसमें भी देवलोकके वस्त्राभरणोंको उन्होंने धारण किया है जब उनके गलेमें पुष्पमाला आई उसका वर्णन फिर क्या करें। चारों भाइयोंने मिलकर सुभद्रादेवीके हाथको सम्राट्के हाथसे मिलाया। तब मधुवाणी विनोदसे कहने लगी कि नमिराज ! तुम बड़े आदमी हो, तुम तो समझ रहे थे कि तुम्हारी बहिनके हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं है। अब हमारे भरतेश्वरके साथ हाथ क्यों मिलवा रहे हो। उस समय सम्राट् हँसे। नमिराज भी थोड़ा लज्जित हुआ। धीरेसे उसने एक रत्नहारको निकालकर मधुवाणीके हाथमें रखा व कहने लगा कि चुप रहो, बोलो मत। सर्व प्रकारसे योग्य विधानके साथ विवाह हुआ। ५६ देशके राजा वहाँपर सम्राट्के विवाहके लिये उपस्थित थे। उस विवाहका कहाँतक वर्णन किया जाय।

विवाह विधिसे निवृत्त होकर भरतेश्वर राजमहलमें प्रविष्ट हुए। दरवाजेमें सिन्धुदेवी गंगादेवी खड़ी हैं। कहने लगीं कि भाई ! तुम हमारे घरपर बिना पूछे किस कन्याको ले आये हो। अब हम अन्दर नहीं जाने देंगी। पहिले यह कन्या हमें जीत ले, बादमें हमें उसे अन्दर जाने देंगे। फिर विनोदसे सुभद्राकुमारीसे पूछने लगी कि लड़की ! तुम्हारा नाम क्या है? कहाँसे आई है। अपने समस्त

कुटुंब परिवारको छोड़कर इसके पीछे क्यों जा रही हो ? यह हमारे भाई तुम्हें क्या लगता है। बोलो तो सही। हमारे भाईको हजार स्त्रियाँ हैं। उन सबसे छिपाकर हमारे भाईको एकान्तमें कहाँ ले जा रही है ? तुम बड़ी मायाचारिणी मालूम होती है। तुम्हारे घरपर आनेपर तुमने अपनी सामर्थ्यको बतलाया था। अब हम देखती हैं कि क्या करती है ? भाई ? उसकी अंगूठी लेकर हम तुम्हारे पास ला रही थी। उसने हम दोनोंको एक-एक हाथसे ही दाब दिया और अँगूठीको हमसे छीन ली। चक्रवर्तीको हँसी आई। बोलो लड़की अब चुप क्यों हो ? अब हम लोगोंको धक्का देकर अन्दर जाओ देखें। तुममें कितनी शक्ति है ? वे गंगादेवी व सिन्धुदेवी विनोदसे बोलने लगी। सम्राट्को बहिनोंके विनोदको देखकर मनमें हर्ष हो रहा था। बोलने लगे कि बहिन मेरे आदमियोंने जो अपराध किया वह मेरा ही अपराध समझना चाहिये। इसलिये अब आप लोगोंका मैं इस उपलक्ष्यमें सत्कार करूँगा इसे अन्दर जाने दो। तब दोनों बहिनें कहने लगीं कि अच्छा ! हमारा आदर किस प्रकार किया जायगा, बोलो। उत्तरमें सम्राट्ने कहा कि तुम दोनोंको रत्नका महल बनवाकर देंगे और साथमें सकल संपत्समृद्ध बारह हजार करोड़ ग्रामोंको भी प्रदान कर देंगे ! यह लो, वचन मुद्रिका। तब दोनों संतुष्ट होकर नवदम्पतियोंको आशीर्वाद देती हुई संतोषके साथ अन्यत्र चली गईं।

भरतेश्वर पट्टरानीके साथ अन्तःपुरमें प्रवेश कर गये। सर्व सुख-सामग्रियोंसे सुसज्जित उस शय्यागृहमें नववधूके साथ सुखका अनुभव कर सुख निद्रामें मग्न हो गये।

सुभद्रादेवी अपने पतिको आलिंगन देकर सोई है। परन्तु सम्राट् सच्चिदानन्द परमात्माको आलिंगन देकर सोये हैं। उस सुख शय्या पर उनके शरीरके रहनेपर भी उसका मन मात्र आत्मकलामें मग्न हो गया है। दो घटिका मंगलनिद्रामें समयको व्यतीत कर रानीको जागरण न हो, उस प्रकार धीरेसे उठे व भगवान् हंसनाथ परमात्मा के स्मरण करने लगे। परमात्मयोगमें जिस समय वे मग्न थे, उस समय कर्मपरमाणुओंकी निर्जरा हो रही थी। तदनन्तर थोड़ी देरमें सुभद्रादेवी भी उठी। दोनोंने बहुत देरतक अनेक प्रकारसे विनोद वार्तालाप किया। इतनेमें प्रातःकाल हुआ। गायकियोंने सूचना देनेके लिये उदय रागमें अनेक गायन गाये। सम्राट् भी अपनी नववधूके नवरागमें मग्न थे।

भरतेश्वर बड़े भाग्यशाली हैं। उनको इच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिमें देरी नहीं लगती है, संसारमें इष्टपदार्थोंका संयोग सबको नहीं हुआ करता है। जो महान् पुण्यशाली हैं उन्हींको उनकी मनोकामनाकी पूर्ति होती है। भरतेश्वर भी उन महापुरुषोंमेंसे हैं। वे परमात्माकी भावना करते हैं।

हे परमात्मन् ! तुम्हारा जो स्मरण करते हैं उनको उनके इच्छित सुखोंको तुम प्राप्त करा देते हो। क्योंकि तुम परमानन्द स्वरूप हो। इसलिये हे अमृतवर्धन ! तुम मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आपका मुक्तिश्रीके साथ जिस समय विवाह होता है उस समय लोकके समस्त जन आनन्दसे नर्तन करते हैं परन्तु आपको उस बातका विचार बिलकुल नहीं रहता है। आप उस नववधू मुक्तिकांताके साथ बिलकुल सुख भोगनेमें मग्न हो जाते हैं। इसलिये आप निरंजनसिद्ध कहलाते हैं। स्वामिन् ! मुझे सुबुद्धि प्रदान कीजिये।

इसी पुनीत भावनाका फल है कि सम्राट्को इस संसारसे उस प्रकारके सुख मिलते हैं।

इति स्त्रीरत्नसंभोग सन्धि.

— o —

अथ पुत्रवैवाह संधि

विवाहादि कार्यके दूसरे दिन विप्रोंने आकर भरतेश्वरको आशीर्वाद दिया। कवियोंने अनेक साहित्यिक रचनाओंसे उनको सन्तुष्ट किया। राजाओंने भेंट आदि समर्पण कर अपना आदर व्यक्त किया। सम्राट्ने भी सबको यथायोग्य वस्त्राभरणादिसे सन्मान किया। दोनों तरफके बन्धुओंमें कई दिनतक आनन्द ही आनन्द रहा। भरतेश्वरकी पुत्रियाँ और नमिराजकी देवियोंमें इस बीचमें कई बार आना जाना हुआ। परस्पर भोजनके लिये एकमेकके घर जाती रहीं। आपसमें विशेष प्रेम बढ़ने लगा।

एक दिनकी बात है सम्राट् व उनके चारों साले व अपनी रानियोंके बीच बैठकर विनोद वार्तालाप कर रहे थे। उस विनोदमें उनको चक्रवर्ती चिढ़ानेके लिये प्रयत्न कर रहे थे। नमिराजसे बोलते समय पहिले बीती बातोंको याद दिलाकर विनोद करने लगे। मधुवाणी बोलने लगी कि रहने दो सम्राट् ! हमारे राजाको आप क्या समझते

हैं ? उन्होंने आपके लिए क्या कम किया है ? लोकमें सबसे श्रेष्ठ पदार्थको आपको दिया है, इस बातका भी विचार आपको नहीं है ? उत्तम वस्तुको जिन्होंने दिया है उनके साथ बहुत नम्रतासे बोलना चाहिये। परन्तु आप तो उनकी हँसी कर रहे हैं। यह वृत्ति क्या आपको शोभा देती है ?

भरतेश्वर—मधुवाणी ! तुम्हारे राजाने मुझे क्या उत्तम वस्तुको लाकर दिया है। मेरी चीजको लाकर मुझे दी है। इसमें क्या बड़ी बात की ? व्यर्थकी डींग क्यों मार रही हो ?

मधुवाणी—राजन् ! व्यर्थकी बातें क्यों बना रहे हो ? हमारे राजाने लाकर जब तुम्हारे आधीन किया तब वह तुम्हारी चीज बन गई, उससे पहिले तो वह आपकी चीज नहीं थी।

भरतेश्वर—मधुवाणी ! तुम अभी जानती नहीं। मामाकी पुत्री भानजेके लिए ही पैदा हुआ करती है। इस बातको दुनिया जानती है। फिर तुम्हारे राजाने क्या दिया ? चक्रवर्तीने क्या लिया ? वह तो हमारे हककी चीज थी।

हमारी माताके बड़े भाई कच्छराज अपनी पुत्रीको अपने भानजेको नहीं देता ? यदि वह नहीं देता तो क्या यशस्वतीका ज्येष्ठ पुत्र उसे छोड़ सकता था ?

मधुवाणी—राजन् तुम्हारे मामा तो दीक्षा लेकर चले गये हैं। अब तो देनेके अधिकारी हमारे राजा नमिराज ही थे। यदि वे गुस्सेमें आकर देनेके लिए इन्कार करते तो क्या करते ?

भरतेश्वर—एक नमिराजने इन्कार किया तो क्या हुआ ? बाकी सबके सब अनुकूल तो थे ? फिर मेरे लिए किस बातका डर था ?

मधुवाणी—बाकी कौन-कौन तुम्हारे पक्षमें थे। बोलो तो सही।

भरतेश्वर—दोनों मामीजी, विनमिराज और यह मेरी आठ हजार पाँच सौ बहिनें ये सबके सब अनुकूल हैं। मेरी बहिनें तो मेरे पक्षमें ही रहनेवाली हैं। यदि नमिराजने कन्या देनेके लिए इन्कार किया तो यह भोजन भी नहीं परोसतीं। समझी ! मधुवाणी ! भरतेश्वरके विनोदको देखकर नमिराजकी देवियाँ बहुत प्रसन्न हुईं।

मौका देखकर नमिराज कहने लगे कि आज इस एक कन्याकी क्या बात है ? इससे पहिले हजारों सहोदरियोंको तुम्हें दे दिया है। मैंने हजारों सहोदरियोंके साथ तुम्हारा विवाह कर देने पर भी तुम जब हमारा उपकार नहीं समझते तो यह बिलकुल ठीक सिद्ध हुआ कि

श्रीमंत लोग गरीबोंको भूला करते हैं। बड़े लोग छोटोंकी परवाह नहीं करते। इस भरतेश्वरकी संपत्ति-शोभा हमारी बहिनोंसे बढ़ी नहीं तो क्या था? तब तीनों भाई एकदम हँस गये। नमिराज भी एकदम खिलखिलाकर हँसा।

सम्राट् कहने लगे कि यहाँपर मेरे पक्षकी केवल आठ हजार पाँच सौ बहिनें हैं। परन्तु तुम्हारे पक्षकी लाखों हैं। इसलिये आप लोग मुझे अधिक दबा रहे हो। बाहरकी दरबारमें तो मेरे पक्षके अधिक मिल सकते हैं। अन्दरकी दरबारमें आप लोगोंके पक्षके अधिक मिल सकते हैं। इसलिए आप लोगोंने यह मौका देखा होगा! अच्छा कोई हर्ज नहीं! आगे देखेंगे।

इतना हर्ष विनोदमें समय व्यतीत होनेके बाद आगत सर्व बंधुओंने सम्राट्का सन्मान किया। उन चारों भाइयोंने सन्मान किया, सासुओंकी ओरसे मधुवाणीने उपहारोंको समर्पण किया। गंगादेवी व सिंधुदेवीने सन्मान किया। नमि–विनमिकी देवियोंने भाईका आदर किया। तद-नन्तर सुवर्णकी पुतलियोंके समान सुन्दर नमिराजकी दो सौ कन्यायें व विनमिराजकी पचास कन्यायें सम्राट्को नमस्कार करनेके लिये आई। वर्ष-छह महीनेके अन्दर विवाहके योग्य वयको धारण करनेवाली उन कन्याओंको देखकर सम्राट्ने मधुवाणीसे प्रश्न किया कि ये कौन हैं? मधुवाणीने उत्तरमें कहा कि राजन्! ये आपकी बहिनोंकी कन्यायें हैं। चक्रवर्तीको परम संतोष हुआ। उन्होंने कहा कि सचमुचमें अर्ककीर्ति आदि मेरे पुत्र भाग्यशाली हैं, ये कन्यायें उनके लिए सर्वथा योग्य हैं। इतनेमें उन कन्याओंने भरतेश्वरके चरणोंको प्रणाम किया। भर-तेश्वरने उनको आसीर्वाद देते हुए उनकी हस्तरेखाओंको देख लिया। उत्तम लक्षणोंको देखकर उन्हें संतोष हुआ। कहने लगे कि आप लोगों-का यहाँ आना बहुत ही उत्तम हुआ। अर्ककीर्ति आदिराज पुत्रोंने आप लोगोंको देख ली तो वे कभी नहीं छोड़ेंगे और आप लोगोंने भी उन सुन्दर कुमारोंको देखा तो आप लोग भी उनको छोड़ना न चाहेंगी। यह कहते हुए अनेक वस्त्राभरणोंको प्रदान किया। कन्यायें लज्जित होकर परदेके अन्दर गईं।

नमिराज कहने लगा कि हमें पहिले जो सम्बन्ध हुआ है उतना ही काफी है। अब अधिक बढ़ानेकी जरूरत नहीं। तब भरतेश्वरने कहा कि नमिराज! तुम्हारी बहिनोंके हमारे घरपर आनेसे क्या कोई लड़ाई झगड़ा हुआ है। बोलो। खैर! इसके लिये अपनेको चिन्ता

करनेकी जरूरत नहीं है। तुम्हारी देवियां स्वयं सब व्यवस्था कर लेंगी, आज उसका विचार क्यों ? आगे समयपर देखा जावेगा।

इतनेमें भरतेशकी पुत्रियाँ देवकन्याओंके समान शृंगारित होकर आ रही हैं। पाँचसौ कन्याओंने आकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। सबको सम्राट्ने आशीर्वाद दिया। भरतेश्वरने उनको नमिराज आदि-को नमस्कार करनेके लिए कहा। कितनी ही कन्याओंने नमस्कार किया। कितनी ही लज्जासे भरतेश्वरके पास खड़ी रहीं। भरतेश्वर उन पुत्रियोंको आशीर्वाद देते हुए प्रेमसे कहने लगे कि बेटी ! तुम लोग अब वयमें आ गई हो। जल्दी वयमें आओगी तो तुमको यहाँसे भेजना होगा। तब हम लोगोंको पुत्री-वियोगके दुःखको सहन करना पड़ेगा। खैर ! कोई बात नहीं है। मेरी पुत्रियोंके लिए योग्य वर मौजूद हैं। वे इनको आनन्दित करेंगे। मैं सम्पत्तियोंसे उनको तृप्त कर दूंगा। भरतेश्वरके पास जितनी पुत्रियां खड़ी थीं वे लज्जासे उधर भाग गई। सब लोगोंके भागनेपर मधुराजी नामक छोटीसी कन्याने परदेकी आड़में खड़ी होकर कहा कि पिताजी ! अब आपकी तरफ हम लोग नहीं आयेंगी। कारण आपने हम लोगोंका सबके सामने अपमान किया है। तब भरतेश्वरने पूछा कि बेटी क्यों ? क्या बात हुई ? इतना गुस्सा क्यों ? तब मधुराजी कहने लगी कि छी ? जाने दो ! तुमने सबके सामने हम लोगोंका अपमान किया है। इस प्रकारके छिछोरपनेकी बात करना सम्राट् कहलानेवालेके लिए कभी शोभा नहीं देता।

"बेटी ! मैंने क्या कहा ! तुम सबके लिए एक-एक पतिकी आव-श्यकता है, इतना ही तो कहा और क्या कहा ? इसमें छिछोरपनेकी बात क्या हुई।" भरतेश्वरने कहा।

मधुराजी—देखो पुनः वही बात ! लज्जासे मुख नीचे करती हुई कहने लगी कि छी ! पिताजी ! आप क्यों ऐसी बात कर रहे हैं ? सब लोग हँसते हैं। यहाँ अन्दर सभी बहिनें आपकी वृत्तिको देखकर हँस रही हैं। देखिये तो सही।

तब भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! जो मेरी वृत्तिपर हँसती है, उनके पास तू मत रह, मेरे पास आ जा। परन्तु वह नहीं आई। रतिचन्द्रा नामक दासीसे उसे लानेके लिए कहा। दासीने जबर्दस्ती उसे लाकर चक्रवर्तीको सौंपा। फिर भी सबके सामने लज्जासे मुंह ढंककर वह सम्राट्की गोदपर बैठी हुई है।

भरतेश्वरने तरह-तरहसे उसे बुलवानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु

वह बोलती ही नहीं। बेटी इधर देखो तो सही! सब लोग प्रसन्न होकर तेरी तरफ देख रहे हैं। तू आँख मींचकर बैठी है। पगली। तुमने आँख मींच ली तो क्या हुआ? क्या लोग भी तुम्हें नहीं देख सकते हैं? भरतेश्वरकेअनेक प्रकारके वार्तालापोंको सुनकर भी वह मधुराजी मौनसे बैठीहै।

फिर सम्राट् कहने लगे कि इतना सब होते हुए भी मधुराजी क्यों नहीं बोलती? हाँ! समझ गया। आज मेरी बेटी ध्यान कर रही होगी। मधुराजी अन्दरसे हँस रही थी। बेटी मोक्षसिद्धिको तुम लोग अपने आत्मामें ही करनेके लिए प्रयत्न कर रही हो। मुझे भी थोड़ा समझा दो। कहो कि आत्मसिद्धिके लिए मुझे क्या क्या करना पड़ता है। मधुराजी मौनभंग नहीं करती है। भरतेश्वर और भी अनेक प्रकारसे उसे बुलानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु वह बोलती नहीं। भरतेश्वरने पुनः कहा कि बेटी! मुझसे क्या गलती हुई? क्षमा कर। उसके पैर छू रहे हैं। पहिलेके आभरणोंको निकालकर नवीन आभरणोंको धारण करा रहे हैं। मधुराजी और भी लज्जित हुई। एकदम वहाँसे निकलकर भाग गई। भरतेश्वरकी वृत्तिको देखकर रानियोंने विद्याधरदेवियोंके साथ कहा कि देखा! तुम्हारे भाईकी गम्भीरताको देख ली! तब विद्याधरियोंने कहा कि इसमें क्या हुआ? अपनी पुत्रीके प्रति प्रेम करना क्या यह पाप है? हमारे भाईने इससे अधिक क्या किया? यह लोककी रीति है। उस दिनकी विनोदगोष्ठी बन्द हो गई।

एक दिनकी बात है। पहिलेके समान ही महलमें सम्राट् सरस व्यवहार करते हुए बैठे हैं। इतनेमें कनकराज, कांतराज आदि नमिराजके तीनसौ पुत्रोंने शांतराज आदि विनमिके सौ पुत्रोंने आकर सम्राट्को नमस्कार किया। तब सम्राट्ने मधुवाणीसे पूछा कि मधुवाणी! ये कुमार बड़े सुन्दर हैं। इन लोगोंने क्या क्या अध्ययन किया है? तब मधुवाणीने कहा कि स्वामिन्! ये लोग शस्त्रशास्त्रादि अनेक विद्याओंमें निपुण हैं। विद्याधरोचित अनेक विद्याओंको इन्होंने सिद्ध कर लिया है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसे भी संयुक्त हैं। तब सम्राट्ने उनको वहाँपर बैठाकर अपने पुत्रोंको भी बुलवाया। तब भरतेश्वरके सैकड़ों पुत्र पंक्तिबद्धहोकरआने लगे। मधुराज विधुराज नामकदोपुत्रोंनेपहिले पिताके चरणोंमें नमस्कार किया। बाकी पुत्रोंने भी नमस्कार किया। सबको आशीर्वाद देकर बैठनेके लिए कहा। भरतेश्वरने पुनः अपने पुत्रोंसे

कहा कि बेटा ! आप लोग जरा अपने शास्त्रानुभवको बतलावें तो सही ! तब उन कुशल पुत्रोंने शास्त्र-कौशल्यको बतलाया। कभी व्याकरणसे शब्दसिद्धि कर रहे हैं तो फिर तर्कशास्त्रमें तत्वसिद्धि कर रहे हैं, लच्छेदार संस्कृत बोलते हुए आगमके तत्वोंको प्रतिपादन कर रहे हैं। भरतशास्त्र, नाटक, कविता, हस्तिपरीक्षा, अश्वपरीक्षा, रत्नपरीक्षा आदि अनेक शास्त्रोंमें उन पुत्रोंने अपने नैपुण्यको बताया। वे भरतेश्वरके ही तो पुत्र थे। तब भरतेश्वरको बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रश्न किया कि बेटा ! लोकरंजनकी आवश्यकता नहीं। मोक्षसिद्धिके लिये क्या साधन है। उसे कहो। भरतेश्वर उनके बोलनेके चातुर्यको देखकर खूब प्रसन्न हुए थे। परन्तु उसे छिपाकर कहने लगे कि गड़बड़ीमें हम लोगोंको तुम फँसाने जा रहे हो। परन्तु हमें बतलाओ कि कर्मोंका नाश किस प्रकार किया जाता है ? उसके बिना यह सब व्यर्थ है ! तब उन पुत्रोंने कहा कि पिताजी ! पहिले भेद रत्नत्रयको धारण करना चाहिये। बादमें अभेदरत्नत्रयको धारण कर उसके बलसे कर्मोंका नाश करना चाहिये। यही कर्मोंको नाश करनेका उपाय है। जब कर्मनाश होता है तब मोक्षकी सिद्धि अपने आप होती है।

फिर पिताने पूछा कि उस भेदरत्नत्रयका स्वरूप क्या है ? उसे बोलो तो सही ! तब पुनः पुत्रोंने कहा कि देव, गुरुभक्ति व अनेक आगमोंका चिन्तापूर्वक अध्ययन करना यह व्यवहार रत्नत्रय है और यही भेदरत्नत्रय है। केवल आत्मा, आत्मामें लगे रहना यह निश्चय या अभेद रत्नत्रय है। तब नमिराजने भी कहा कि बिलकुल ठीक है। तब चक्रवर्तीने नमिराजसे प्रश्न किया कि क्या यह ठीक है ? बोलो तो सही ! नमिराजने उत्तर दिया कि पहिले भेदरत्नत्रयमें प्रवीण होकर बादमें अपने आत्मामें लीन होना यही श्रेष्ठ मार्ग है। तब भरतेशने प्रश्न किया कि क्या व्यवहार ही पर्याप्त नहीं है ? निश्चयकी क्या जरूरत है। तब नमिराजने कहा कि व्यवहारसे स्वर्गकी प्राप्ति हो सकती है। मोक्षसिद्धिके लिये निश्चयकी आवश्यकता है। नमिराजके वचनको सुनकर चक्रवर्ती प्रसन्न तो हुए, परन्तु उसे छिपाकर कहने लगे कि तुम्हारी बात मुझे पसन्द नहीं आई। तुम ठीक नहीं बोल रहे हो। तब भरतपुत्रोंने कहा कि पिताजी ! मामाजी ठीक तो कह रहे हैं। इस सीधी बातको आप क्यों नहीं मान रहे हैं ? तब सम्राट्ने कहा कि शायद आप लोग अपने मामाकी बातको पुष्टि दे रहे हैं। जाने दो। यह जो और मेरे पुत्र

आ रहे हैं उनसे भी पूछेंगे। वे क्या कहते हैं, देखें। इतनेमें पुरुराज व गुरुराज नामक दो पुत्र आये। उनसे भरतेश्वरने प्रश्न किया। तब उन लोगोंने यही कहा कि मामाजी जो बोलते हैं वह सही है। परन्तु भरतेश्वर कहते हैं कि मैं उसे नहीं मानता। श्रीराज माराज नामक दो पुत्र आये। उनसे पूछनेपर उन्होंने भी वही उत्तर दिया। वस्तुराज, वर्णराज, देवराज, दिव्यराज, मोहनराज, वाचनराज आदि एक हजार दो सौ पुत्रोंसे प्रश्न किया, सबका उत्तर वही रहा। हंसराज, रत्नराज, महांशुराज, संसुखराज व निरंजनसिद्धराज नामक पांच पुत्रों को पूछा, उन्होंने भी वही कहा। इतनेमें अर्ककीर्ति, आदिराज, वृषभराज आये। उन लोगोंने पिताजी व मामाको नमस्कार कर योग्य आसनको ग्रहण किया। भरतेश्वरने प्रश्न किया कि बेटा! मेरे व तुम्हारे मामाके बीच एक विवाद खड़ा हुआ है उसका निर्णय आप लोगोंको देना चाहिये। अर्ककीर्ति आदि कुशल पुत्रोंने कहा कि आप और मामाजीके विवादमें हाथ डालनेका अधिकार हमें नहीं है। आप लोग आदिभगवंतकी दरबारमें जा सकते हैं। वहां सब निबटारा हो जायगा। तब सम्राट्ने कहा कि मामूली बात है। तुम लोग सुनो तो सही। बेटा! मुक्तिके लिए आत्मधर्मकी क्या आवश्यकता है? क्या व्यवहार या बाह्यधर्म ही पर्याप्त नहीं है? यह नमिराज कहता है कि स्थूलधर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, आत्मधर्मसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। तुम लोगोंका क्या मत है? बोलो! तब वे पुत्र आश्चर्यचकित हुए। मनमें सोचने लगे कि हमेशा पिताजी हमें कहा करते थे कि मुक्तिके लिए आत्मानुभव ही मुख्यसाधन है। आज मात्र उलटा बोल रहे हैं। इसका कारण क्या है? तब पुत्रोंके संकोचको देखकर भरतेश्वर कहने लगे कि आप लोग संकोच मत करो, जो सच है उसे बोलो। पुन: उनको संकोच हो रहा था। अर्ककीर्तिसे पुन: कहा कि घबराओ मत! मेरा शपथ है। तुम संकोच मत करो। जो तुम्हें मालूम है निस्संदेह कहो तब अर्ककीर्तिने कहा कि पिताजी इसमें सौगंध खिलानेकी क्या जरूरत है। मामाजी बिलकुल ठीक कह रहे हैं। आपको भी यह मंजूर होना चाहिये। अर्ककीर्तिकी बातको सुनकर चक्रवर्ती कहने लगे कि बेटा! मैंने सोचा था कि तुम्हारे भाइयोंने मामाके पक्षको ग्रहण किया तो भी तुम तो मेरे ही पक्षमें रहोगे। परन्तु तुमने भी मामाके ही पक्षको ग्रहण किया। अस्तु, तुम्हारी मर्जी। उत्तरमें अर्ककीर्ति कहने लगा कि, पिताजी! आपने

शपथ डाल दिया, फिर मैं झूठ कैसे बोल सकता हूँ ? आपको भी सत्य बातको स्वीकार करना चाहिये। रतिचंद्रा पासमें खड़ी थी। भरतेश्वरने प्रश्न किया कि रतिचंद्रे ! आज हमारे पुत्रोंने अपने मामाके पक्षको क्यों ग्रहण किया ? रतिचंद्राने कहा कि वे मामाकी बेटियोंको देखकर प्रसन्न हो गये हैं। इसलिए उनके तरफ देखकर ऐसा बोले होंगे। भरतेश्वरने भी कहा कि बिलकुल ठीक है। परन्तु इनको सोचना चाहिए था नमिराज कुछ सीधासाधा उनकी कन्याओंको देनेवाला नहीं है। मेरे मामा की पुत्रीको मुझे देनेके लिए उसने कितनी बातें बनाई थीं, आप लोग क्या नहीं जानते हैं ? इसी प्रकार मेरे पुत्रोंको भी कन्या यह सीधा नहीं दे सकता है। फिर मेरे पुत्रोंने व्यर्थ उसके पक्षका समर्थन क्यों किया ? तब नमिराजने कहा कि राजन् ! आप विशेष विचार मत करो। आपके पुत्र जो मेरे भानजे हैं उनको मैं अपनी कन्याओंको देता हूँ। आप कोई संदेह मत करो। भरतेश्वरने सोचा कि मेरे कार्यकी सिद्धि हुई। नमिराज भी क्यों नहीं कन्याओंको देगा ? उन पुत्रोंके रूपको देखकर प्रसन्न हुआ। विद्यानैपुण्यने उसे मुग्ध किया। नमि-विनमिकी देवियोंको भी यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। क्योंकि वे सब यही तो चाहती थीं। सम्राट्ने नमिराजसे कहा कि देखा ! साक्षात् पिता होते हुए भी मेरे पक्षको ग्रहण कर बात नहीं की। केवल मोक्षमार्ग जो है, उसीको उन्होंने कहा है। इसीसे उनकी सत्यप्रियता मालूम हुए बिना नहीं रह सकती। कच्छराजके बहिनके स्वच्छ गर्भमें उत्पन्न इस भरतके पुत्र स्वेच्छाचार-पूर्वक नहीं बोलेंगे, इस प्रकार भरतेश्वरने जोर देकर कहा। देखो वे कितने सुन्दर हैं। श्री भगवान् आदिनाथ स्वामीके पौत्रोंका वर्णन मैं क्या करूँ ? नमिराज ! परसों तुमने ही कहा था कि अब अधिक कन्या हम नहीं देना चाहते। आज तुम स्वतः देनेके लिये कबूल कर रहे हो। मेरी इच्छा तृप्त हुई। मैं यही चाहता था। नमिराज भी कहने लगा कि मेरी भी इच्छा पूर्ण हुई। गंगादेव सिंधुदेवने भी उन सब पुत्रोंको आशीर्वाद दिया। कहने लगे कि इनके कारणसे आज हमारा आत्म विश्वास दृढ़ हुआ। उपस्थित सर्व पुत्रोंको व दामादोंको सम्राट्ने उचित सन्मान कर वहांसे भेजा और इस संबंधमें अपने बहिनोंका क्या अभिप्राय है। यह पूछा। बहिनोंने कहा कि यह हमें पसंद तो है। परन्तु पुत्रियोंके प्रति हमारा बड़ा ही प्रेम है। उनके वियोगको हम कैसे सहन कर सकती हैं ! तब भरतेश्वरने कहा कि तुम्हारी पुत्रियोंसे हमारे पुत्रोंका विवाह होगा तो मेरी पुत्रियोंका तुम्हारे

पुत्रोंके साथ विवाह कर देंगे । फिर तो संतोष होगा । चक्रवर्तीसे कन्या माँगनेके लिये संकोच हो रहा था । इस बहानेसे भरतेशके मुखसे ही स्वीकार करा लिया । सबको हर्ष हुआ । फिर उन देवियोंने कहा कि जैसी भाई की इच्छा हो वैसा करें । हमें तो कबूल है । सब जगह विवाह मंगलकी जयजयकार होने लगी ।

सबका यथायोग्य सत्कार कर सम्राट्ने उस दिन अपने-अपने स्थानोंमें भेजा, दूसरे दिनकी बात है ।

सेनास्थानमें विवाहमंगलकी तैयारी होने लगी । जहाँ देखो वहाँ आनंद हो रहा है । चक्रवर्तीके पुत्रोंका विवाह ! यह किस वैभवके साथ हुआ, इसके वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं । भरतेश्वरने किसी बात की कमी नहीं रखी । नमिराजने अपने नगरमें जब भरतेश्वरकी ओरसे मंत्री आदि गये थे उस समय १६ दिन पर्यंत जो सत्कार वैभव किया था उसने दुगुना चौगुना वैभव सम्राट्ने इस विवाह मंगलके समय किया । जिनेन्द्रपूजा, समस्त सेनाको मिष्टान्न, भोजन, द्विजदान वसन्तोत्सव आदिसे सर्व नरनारी तृप्त हुए । सभी पुत्रोंका विवाह संस्कार विधिके अनुसार बहुत वैभवके साथ संपन्न हुए । कंजाजी नामक कन्याका विवाह अर्ककीर्ति कुमारके साथ, गुणमंजरीका आदिराजके साथ, कुंजरवतीका विवाह वृषभराजके साथ हुआ । इसी प्रकार गमनाजीका संबंध हंसराजके साथ, मनोरमाका रत्नराजके साथ, योग्य गुण और रूपको देखकर विवाह हुआ । भरतेश्वरके बारह सौ पुत्र थे, उनमें दो सौ पुत्रतो अभी वयसे विवाह योग्य नहीं थे। इसलिए उन दो सौ पुत्रोंको छोड़कर बाकी हजार पुत्रोंका विवाह हुआ । पुत्रियोंमें कुछ नमिकी थीं और कुछ विनमिकी थीं । कुल मिलकर १००० पुत्रोंका १००० कन्याओंके साथ संबंध हुआ। इसी प्रकार भरतेश्वरने अपनी ५०० पुत्रियोंका भी विवाह उसी समय किया । कनकराजाके साथ कनकावतीका, कान्तराजके साथ मनुदेवीका, शांतराजके साथ कनकपद्मिनीका विवाह हुआ । इसी प्रकार नलिनावती कुमुदावती, रत्नावली, मुक्तावली आदि लेकर पाँचसौ कन्याओंका विवाह हुआ । सिर्फ एक मधुराजी नामक एक छोटी कन्या रह गई जिसके प्रति भरतेश्वरका असीम प्रेम था । चार सौ कन्याओंका विवाह नमि-विनमि पुत्रोंके साथ व सौ कन्याओंका विवाह प्रतिष्ठित विद्याधर पुत्रोंके साथ हुआ । इस प्रकार सम्राट् भरतेश्वरने अपने हजार पुत्रोंका, ५०० पुत्रियोंका विवाह बहुत वैभवके साथ किया।

लोकमें देखा जाता है कि किसी सज्जनको १ पुत्र या पुत्री हो तो वह मनुष्य विवाहका समय आनेपर चिंताग्रस्त हो जाता है। परन्तु पाठकोंको यह देखकर आश्चर्य हुआ होगा कि भरतेश्वरके हजारों पुत्र हजारों पुत्रियोंका विवाह इच्छा करने मात्रसे योग्यरूपसे बहुत शीघ्र संपन्न हुआ, पुण्यात्माओंकी बात ही निराली है। वे जो कुछ सोचते हैं, उसके लिए अनुकूलता ही मिल जाती है। इसके लिए अनेक जन्मोपार्जित पुण्यकी आवश्यकता होती है। भरतेश्वर सदा इस प्रकारकी भावना अपने अंतःकरणमें करते हैं। उनकी भावना रहती है कि—

"हे परमात्मन् ! जो सदाकाल शुद्धभावसे तुम्हारी भावना करते रहते हैं, उनको तुम सौख्यपरम्पराओंको ही प्रदान करते हो। इसलिये हे देव ?-तुम मेरे अंतरंगमें बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! तुम नित्य मंगलस्वरूप हो ! नित्य शृंगार गौरवसे युक्त हो, तुम्हारे अंतरंगमें सदा अनंत आनंदके तरंग उमड़ते रहते हैं। सदा वैभवशाली हो, तुम सौख्यसाहित्य हो ! अतः स्वामिन् ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि उन्हें नित्य नये ऐसे मंगल प्रसंगोंके आनंद मिलते रहते हैं।

इति पुत्रविवाह संधि

—:०:—

अथ जिनदर्शन संधि

अपने पुत्र व पुत्रियोंका विवाह बहुत संभ्रमके साथ करके भरतेश्वर बहुत आनन्दसे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

एक दिनकी बात है। बुद्धिसागर मंत्रीने दरबारमें उपस्थित होकर सम्राट्के सामने भेंट रखकर कुछ निवेदन करना चाहा। भरतेश्वरको आश्चर्य हुआ, वे पूछने लगे कि मंत्री ! आज क्या कोई विशेष बात है ? उत्तरमें बुद्धिसागरने निवेदन किया कि स्वामिन् ! मेरी प्रार्थनाको सुनें। तीन समुद्रोंके बीच हिमवान् पर्वततकके षट्खंडोंको आपने वीरतासे वशमें किया। वृषभाद्रिपर अंकमालाको अंकित किया। चौदह रत्न सिद्ध हुए, पुत्रोंका विवाह हुआ। अब कोई विशेष कार्य नहीं है। बहुत काल व्यतीत हुए हम लोगोंको आपके साथ रहनेसे कोई भी

चिंता की बात नहीं है। तथापि अयोध्यानगरकी प्रजा आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे आपकी प्रतीक्षा कर रही है। श्रीपूज्य माताजी रोज दिन-कल्पना करती हैं। आपके भाई आपको शीघ्र देखनेकी इच्छा करते हैं। इसलिए नमि-विनमिको यहाँसे बिदाई कर अपनेको नगरकी ओर प्रस्थान करना चाहिये। उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि मंत्री! तुमने अच्छा स्मरण दिलाया। प्रजा व मेरे भाइयोंको मुझे देखनेकी इच्छा है, मैं उसे मानता हूँ। परन्तु मातुश्रीकी इच्छा अति प्रबल है। मैं उसे भूल गया था। अब चलनेकी तैयारी करेंगे।

मंत्रीको उचित सन्मान कर सम्राट्ने नमि-विनमिको बुलाकर कहा कि बंधुवर! आजतक आप लोगोंके साथ हमारा बंधुत्वका व्यवहार चला आ रहा था। अब अपने पुत्रोंका भी सम्बन्ध हुआ। यह बहुत हर्षकी बात है। तदनंतर नमिराज व विनमिराजको उत्तमोत्तम वस्त्राभरणोंसे सन्मान किया। इसी प्रकार अपने दामादोंको हाथी, घोड़ा, रत्न, वस्त्रादिसे सत्कार किया। सुमतिसागर मंत्री आदिका भी सत्कार किया गया। अपनी पुत्रियोंकी भी विदाई करते समय उनके साथ अनेक दासियोंको भी रवाना किया। उन प्रिय पुत्रियोंको विदा करते समय भरतेश्वरको भी मनमें थोड़ा दुःख हुआ। भरतेश्वरकी रानियाँ तो आँसू बहाती हुई पुत्रियोंके पास ही खड़ी थीं। भरतेश्वरने उस दृश्यको देखकर कहा कि देवियो! आप लोगोंने पुत्रियोंको क्यों प्रसव किया है। पुत्रोंको क्यों नहीं। नहीं तो यह परिस्थिति उपस्थित नहीं होती। पुत्रियोंकी आँखोंसे भी आँसू बह रहे थे। उनको सांत्वना देते हुए सम्राट्ने कहा कि पुत्रियों! आप लोग अभी जावें। मैं जल्दी ही आप लोगोंको लिवा लाऊँगा। चिंता न करें। इस प्रकार उनको विदा करते हुए भरतेश्वरको दुःख हुआ। जहाँ ममकार है, वहाँ दुःख है, यह तात्विक विषय उस समय प्रत्यक्ष हुआ। नमि-विनमि अपने परिवारके साथ दुःखको भी लेकर वहाँसे निकल गये। तदनंतर सम्राट्ने गंगादेव व सिंधुदेवका भी यथेष्ट सन्मान किया। इसी प्रकार अपनी बहिन गंगादेवी व सिंधुदेवीका भी सत्कार करते हुए कहा कि बहिन! आप लोग अब जावें। हमें आगे प्रस्थान करना है। सुरशिल्पीको आज्ञा देकर बहिनोंके लिए सुन्दर व उत्तमरत्नके द्वारा महलका निर्माण कराया। साथमें मध्यमखण्डके २४ करोड़ उत्तम ग्रामोंको चुन-चुनकर दिया व उनके अधिपतियोंको आज्ञा दी गई कि सदा इनकी सेवामें

रहें। कौनसी बड़ी बात है? भरतेश्वरके आधीनस्थ एक एक राजाके पास एक-एक करोड़ ग्राम हैं। इस प्रकार एक करोड़ ग्रामोंके अधिपति ऐसे ३२ हजार राजा उनके आधीन हैं। पुत्रोंके विवाहके समय इन बहिनोंने द्वाररोधन किया था, उस समय इन ग्रामोंको देनेके लिए सम्राट्ने वचन दिया था। स्वतःके विवाहके समय, पुत्रियोंके विवाहके समय जितने भी ग्रामोंको इनाममें देनेके लिये सम्राट्ने वचन दिये थे, उन सबका हिसाब करनेपर वह मध्यखंडके एक दशमांश हिस्सा हुआ। बाकीके नौ हिस्से तो रह गये। गंगादेवी व सिंधुदेवीने भी भाईको मंगलतिलक लगाया व अपने पतियोंके साथ वहांसे विदा हुईं। उसी समय मेघेश्वर व विश्वकर्मा दाखिल हुए। उनको आगेके मार्गको साफ करनेके लिये आज्ञा दी गई। खाइयाँ भर दी गईं। पुल बाँधे गये। माकालको पत्र लिखनेकी आज्ञा हुई। दोनों माताओंको उत्तमोत्तम उपहारोंको भेजनेके लिए हुकुम दिया गया। पोदनपुर व अयोध्याको दो विश्वस्त दूतोंको भेजनेके लिए आज्ञा की गई।

वह दिन इसी प्रकारकी व्यवस्थामें व्यतीत हुआ। दूसरे दिन प्रस्थानकी भेरी बजा दी गई। भरतेश्वरकी सेनाने बहुत वैभवके साथ वहांसे प्रस्थान किया। ध्वजपताका, विमान, गाजेबाजेके द्वारा उसमें विशेष शोभा आ गई थी। षट्खंडको जीतकर अपने धवल यशको तीन लोकमें फैलाते हुए भरतेश्वर जा रहे हैं।

जिस समय दिग्विजयके लिए भरतेश्वर निकले थे उस समय उनकी एक सेना व दूसरी अर्ककीर्तिकी सेना इस प्रकार दो ही सेना थी, परन्तु अब लौटते समय तीन सेना हो गई है। जिन पुत्रोंका विवाह हुआ है, ऐसे हजार पुत्रोंका एक साथ व्यंतरोंके साथ करके भरतेश्वरने उनको गमन कराया। उसका नाम अर्ककीर्तिसेना है। वह सबसे आगे जा रही है। उसके पीछे छोटे पुत्रोंकी सेना जा रही है। स्वतः भरतेश्वर उन गुफाओंको पार करते समय विमानपर चढ़कर जा सकते थे। परन्तु हाथी, घोड़ा, रथ वगैरहको छोड़कर वे अकेले ही जाना नहीं चाहते थे। अतः सबके हितकी दृष्टिसे उनके साथ ही जा रहे थे। जिस प्रकार खंडतमिस्र गुफाको उस दिन पार किया था, उसी प्रकार आज खंडप्रपात गुफाको पारकर दक्षिण भूमिका अवलोकन सम्राट्ने किया। नाट्यमालने पहिलेसे चक्रवर्तीके स्वागतके लिये स्थान-स्थान पर तोरण वगैरह बांधकर शोभा की थी। उसको बुलवाकर भरतेश्वरने उसका सन्मान किया। योग्य स्थानको जानकर उस पर्वतके पासमें ही गंगाके तटपर सेनाका मुक्काम कराया।

विजयार्धगिरिको पार करते ही सेनाके समस्त सैनिकोंको देखकर आनन्द हुआ। आर्यखण्डको देखकर उन आर्यवीरोंको हर्ष हुआ। अभी-तक युद्धके लिये प्रयाण था। परन्तु अब तो घरके लिये प्रयाण है। अतः सबका हृदय उत्साहसे भरा हुआ था। जाते समय सेनापति जहाँ कहता सबके सब झट मुक्काम करते। अब आते समय मुक्काम करनेके लिए कहें तो भी 'थोडी दूर और जावें' ऐसा कहते थे। सबके मनमें घर जानेकी उत्कंठा लगी।

इसी प्रकार कुछ मुक्कामोंको तय करते हुए वे दक्षिणकी ओर आये, तब अपनी बाँयें तरफ उन्होंने कैलाश पर्वतको देखा। सेनापतिको वहीं पर सेनाका मुक्काम करानेके लिये आज्ञा हुई। स्वयं भरतेश्वर सब परिवारको वहींपर छोड़कर कैलासकी ओर निकले। मागधामर, मंत्री आदिको सूचना दी गई कि वे सेना-परिवारकी तरफ नजर रखें। अपने साथ अपने बारह सौ पुत्रोंको लेकर वे निकले। विमानके द्वारा पवन-वेगसे कैलासपर पहुँचे। समवसरणके बाहरके दरवाजेपर द्वारपालक खड़ा था। उससे भरतेश्वरने प्रश्न किया कि क्या हम अन्दर जा सकते हैं? आज्ञा है या नहीं? द्वारपालकदेवने अपने मस्तकको झुकाकर कहा कि आप जा सकते हैं, आ सकते हैं। ऊर्ध्व, मध्य व अधोलोकके स्वामी आदिप्रभुके ज्येष्ठपुत्रको कौन रोक सकता है? आप कल मोक्ष साम्राज्यके अधिपति होंगे। आप जाइयेगा।

भरतेश्वरने पहिले परकोटेके अंदर प्रविष्ट होकर मानस्तंभके पास रखे हुए सुवर्णकुंडके जलसे पैर धो लिये। तदनंतर पुनः विनयके साथ अन्दर चले गये। भरतेशके पुत्र मनमें सोच रहे थे कि आज पिताजी अपने पिताके पास जिस विनय व भक्तिसे जा रहे हैं, उससे आगेके लिये वे सिखाते हैं कि हमें अपने पिताके पास किस प्रकार जाना चाहिये।

तदनन्तर दो सुवर्ण प्राकार, बाद एक रत्नप्राकार, तदनन्तर तीन सुवर्णके, तदनंतर दो स्फटिकके इस प्रकार आठ परकोटोंकी शोभाको देखते हुए आगे बढ़े। आठ द्वारोंपर द्वारपालक हैं। परंतु नवमें द्वारमें कोई द्वारपालक नहीं है। आठ द्वारपालकोंसे अनुमति लेकर भरतेश्वर अन्दर प्रवेश कर रहे हैं। अन्दर प्रविष्ट होनेके बाद वहाँपर व्यवस्थापक देवोंके शब्द सुननेमें आये। कोई कहता है धरणेंद्र! ठहरो देवेंद्र! आप पहिले वन्दना करें। दिक्पालक लोग बैठ जावें, योगिजन बैठनेकी कृपा करें। गरुड़ जातिके देव यहाँ बैठें, यक्ष गणोंका यह स्थान है, सिद्ध और

गन्धर्व यहाँ बैठ सकते हैं। यह रंभाका नृत्य हो रहा है, उर्वशीका खेल है, मेनकाका नृत्य भी सुन्दर है, इत्यादि शब्द भरतेश्वर वहाँ सुन रहे हैं। भगवान्के ऊपर देवोंद्वारा पुष्पवृष्टि हो रही है। मोतीका छत्र देवोंने लगाया है। ६४ चामर ढोल रहे हैं, पास हैं। अशोकवृक्ष है, भामंडलका प्रकाश सर्वत्र फैल रहा है। असंख्यात देवगण जयजयकार कर रहे हैं। हजार दलके कमलके ऊपर जो सिंहासन है उसे चार अंगुल छोड़कर प्रभु विराजमान हैं। उनका प्रकाश करोड़ों सूर्य व चंद्रोंको भी तिरस्कृत कर रहा है। समवसरणस्थित देवगणोंने दूरसे ही देख लिया। उनको आश्चर्य हुआ कि यह महापुरुष कौन है? इस प्रकारके सौन्दर्यको धारण करनेवाले सज्जनको हमने पहिले कैलासमें कभी नहीं देखा था। तीन लोकके रूपको सब अपनेमें व अपने पुत्रोंमें एकत्रित यहाँपर दिखावे के लिए आया मालूम होता है। इत्यादि कई तरहकी बातचीत करते हुए अपने आश्चर्यको व्यक्त कर रहे थे। पासमें आनेपर "यह भरतेश्वर हैं, देवोत्तमका पुत्र हैं। ठीक है। यह वैभव और किसको मिल सकता है? धन्य है" इस प्रकार मनमें विचार करने लगे।

भरतेश्वरने हर्षके साथ अन्दर प्रवेश किया। वेत्रधारियोंने कहा कि हे देवदेव! पुरुषनाथ! जरा आप देखें! भरतेश्वर आ रहे हैं। शरीरपर रत्नाभरणोंको धारण कर, आत्मामें गुणाभरणोंको धारण कर अत्यन्त सुन्दर शृङ्गारयोगी आ गये हैं। जरा देखिये तो सही देवकुमारोंसे भी सुन्दर सनिमिषनेत्रधारी अपने हजारों पुत्रोंको लेकर भरतेश्वर आये हैं। हे कोटिसूर्यचंद्रप्रकाश! सर्वेश! जरा अवधारण करें। इत्यादि प्रकारसे देवगण भगवान्से प्रार्थना करने लगे।

तीन लोकके अन्दरके बाहरके पदार्थोंके प्रत्येक द्रव्य गुणपर्यायको प्रतिसमय युगपत् जाननेवाले श्रीप्रभुको भरतेश्वरके आगमनको किसीके बतानेकी क्या आवश्यकता है? नहीं! नहीं! यह तो केवल देवों की भक्तिका एक नमूना।

भरतेश्वरने आदिप्रभुके चरणपर रत्नांजलिको समर्पण कर साष्टांग नमस्कार किया। पिता जिस समय साष्टांग नमस्कार कर रहे थे उस समय पुत्र भी साष्टांग नमस्कार कर रहे हैं। पिता जिस समय उठे वे भी उठते हैं। पिता जिस समय हाथ जोड़ें उस समय वे भी हाथ जोड़ते हैं। इस प्रकार उस समयकी शोभा ऐसी मालूम हो रही थी कि जैसे एक सूत्रमें बँधे हुये अनेक खिलौने एक साथ अपने सुन्दर खेल दिखा रहे हों।

तीन बार साष्टांग नमस्कार कर भरतेश्वर बहुत भक्तिसे भगवान् की स्तुति करने लगे। वे अत्यन्त पुलकित हो रहे थे। आनंदाश्रुधारा बह रही थी। मन्दस्मित होकर बहुत सुस्वरके साथ वे स्तुति कर रहे थे। वह निम्नलिखित स्तोत्र पाठ था—

कांचनभूभृदुदंचितगौरवाकुंचितभवस्वरूप !
पंचबाणानेकजित ! पुरुषाकार ! प्रांचित ! जय जय !
सुत्रामशतमुकुटानर्घ्यरत्नांशुचिश्रितचरणाब्जयुगल !
छत्रमुक्तांशुगंगामृतबहुजटासूश्रित जय जय !
शंग निस्संग सुरांग चिदंग मतंगजरिपुविष्टराढ्य !
सांगिकसुरकुसुमासारधूलिभस्मांगित जय जय !
पिंजरितोभकर्मारण्यदावधनंजय सुज्ञानभानु
भंजितजातिजरामयदुःखमृत्युकजय जय जय !
कंजकिंजल्कभुंजितमंजुलालिस्वरजितमंजुघोषाढ्य !
रंजितगीतपुष्पांजलिपूज्य परंज्योति जय जय !
श्राव्यविद्यालापकाव्यसंसेव्य सद्रूप्य निर्व्यक्तचिद्रूप्य !
अव्ययसिद्धीसुसंध्यस्तहितकाव्याढ्य जय जय !
सुज्ञानदर्शनसुखशक्तिकांतिमनोज्ञ श्रीअमलादिवस्तु !
प्राज्ञजनार्चित ! जय जय स्वामी ! सर्वज्ञ सदाशिवो देव !
भरतनप्पाजि शक्रन स्वामी कलिकालपरिचित रत्नाकरना !
परिपथ्य जय जय यंद्वेरगिद नर सुररेल्ल जय जय येनलु !

इस प्रकार बहुत भक्तिसे सम्राट्ने भगवंतकी स्तुति की। रत्नाकरने अपने पिताके स्थानमें श्रीमंदर स्वामीको व बड़े बापके स्थानपर श्री आदिप्रभुका उल्लेख किया है। इस प्रकारका भाग्य हर एकको कहाँ मिल सकता है ? इसके बाद भरतेश्वरने सुरक्षित जलसे स्नान किया। अपने शरीरका शृंगार किया। अनेक उत्तमोत्तम द्रव्योंसे जिनेंद्रकी पूजा की। भरतेश्वरको किस बातकी कमी है ? चिंतामणि रत्नने चिंतित पदार्थोंको लाकर दिया। तीर्थजल, मलयजचंदन, अक्षत, पुष्प, दीप, धूप, फल, अर्घ्य इस प्रकार अष्टद्रव्योंके साथ तीर्थेश्वरकी पूजा की। उस समय भरतकी भक्तिको देखकर भगवान्के समवसरणस्थित समस्त भव्य जय-जयकार कर रहे थे। पूजासे निवृत्त होकर भगवान्की तीन प्रदक्षिणा भरतेश्वरने दी। तदनंतर बहुत भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया। बादमें मुनियोंकी वंदना की। देवेन्द्रादियोंके साथ बातचीत की। गणधरकी आज्ञा पाकर ग्यारहवें कोष्ठमें वे

विराजमान हुए। आज समवसरणमें एक नई बात हो गई है। समवसरणस्थित सभी भव्य भरतेश्वरके आगमनसे हर्षित हो रहे हैं। भरतेश्वर दिव्यवाणीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भरतेशका जीवन धन्य है। जहाँ जाते हैं वहाँ परममंगल प्रसंगोंका ही अनुभव उनको होता है। दिग्विजय कर लौटते समय भगवान् त्रिलोकीनाथका दर्शन, यह कोई कम भाग्यकी बात नहीं है। ऐसे पुण्यशाली विरले ही होते हैं। जिन्होंने पूर्वजन्मसे ही आत्मभावनाके साथ अनेक पुण्यकार्योंको किये हों उन्हींको इस प्रकारके अवसर मिला करते हैं। भरतेश्वर उन्हीं महात्माओंमें से हैं, जो रात दिन इस प्रकारकी भावना करते हैं कि —

"हे परमात्मन् ! तुम्हारे अंदर वह सामर्थ्य है कि तुम अपने भक्तोंको सदा परममंगल स्थानोंमें ले जाते हो। इसलिए हे आनन्दमल्ल ! चिदम्बरपुरुष ! तुम मेरे हृदयमें ही रहो ! कभी अन्यत्र नही जाना, यही मेरी प्रार्थना है।

"हे सिद्धात्मन् ! गर्वगजासुरको आप मर्दन करनेवाले हो, दुष्कर्मरूपी पर्वतके लिए वज्रके समान हो, नरसुर नाग आदियोंके द्वारा वंद्य हो, अतएव हमें निर्विघ्नमतिको प्रदान कीजिए"।

इसी भावनाका यह फल है।

इति जिनदर्शन संधि.

अथ तीर्थागमन संधि

भरतेश्वर हाथ जोड़कर बैठे हैं। उनको दिव्यध्वनि कब खिरेगी इस बातकी उत्कंठा लगी हुई है। भरतके पुत्र भी भगवंतके प्रति भक्तिसे देखते हैं। हँसते हैं। हाथ जोड़ते हैं। अर्ककीर्ति अपने छोटे भाई पुरुराज, माणिक्यराज, वृषभराज, गुरुराज व आदिराजसे कहने लगा कि आप लोग बड़े भाग्यशाली हो। क्योंकि आप लोगोंने भगवान् आदिप्रभुके नामको पाये हैं। उत्तरमें वे भाई कहने लगे कि भाई ! ऐसा क्यों कहते हो ? दुनियामें जितने भी पवित्रनाम हैं वे सब श्री आदिप्रभुके हैं। उनमेंसे आपका अर्ककीर्ति नाम भी तो है। इत्यादि प्रकारसे वार्तालाप हो रहा था। इतनेमें भरतेश्वरने उनको इस विनोदगोष्ठीको बन्द करनेके लिए इशारा किया। उन्होंने हाथ जोड़कर

मनमें कुछ सोचा। इतनेमें दिव्यध्वनिका उदय हुआ। गम्भीर, मृदु, मधुरध्वनिसे युक्त सबके चित्त व कर्णोंको आनन्दित करती हुई वह दिव्यवाणी खिर रही है। समुद्रघोषके समान उसकी घोषणा है। उस दिव्यध्वनिमें १८ प्रकारकी महाभाषायें व ७०० लघुभाषायें अंतर्भूत हैं।

सबसे पहिले इस लोकाकाशमें व्याप्त तीन वातवलयोंका वर्णन उस दिव्यध्वनिमें हुआ। बादमें उस आकाश प्रदेशमें स्थित ऊर्ध्व, मध्य व अधोलोकका चित्रण हुआ। तदनंतर उस लोकमें स्थित षट्द्रव्य, सप्ततत्व, पंचास्तिकाय व नवपदार्थोंका वर्णन हुआ। भरतेश्वरको बड़ा ही आनंद हो रहा था। इसी प्रकार जब भगवंतने व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय, भेदभक्ति, अभेदभक्तिका वर्णन किया उस समय भरतेश्वरको रोमांच हुआ। हंसतत्व (परमात्मतत्व), हंसतत्वका सामर्थ्य व हंसमें ही जिनसिद्धकी स्थितिको जिस समय भरतेश्वरने सुना उस समय वे आनंदसे फूले न समाये, उनके सारे शरीरमें रोमांच हुआ।

भरतेश्वरने स्वतःको कब केवलज्ञान होगा यह पहले ही आदि-भगवंतसे पूछ लिया था। परन्तु उनकी इच्छा अबकी अपने पुत्रोंके संबंधमें पूछनेकी थी। सो उन्होंने प्रश्न कर ही दिया। हे भगवन्! ये हमारे एक हजार दो सौ पुत्र हैं, इसी जन्ममें मुक्त होंगे या भावी जन्ममें मुक्त होंगे? कृपया कहियेगा। तब उत्तर मिला कि ये सब इसी भवसे मुक्तिधामको प्राप्त करेंगे। भरतेशको संतोष हुआ। साथमें यह भी कहा कि इनमेंसे दो पुत्रोंको तो बाल्यकालमें ही वैराग्य उत्पन्न हो जायगा। परन्तु समझानेके बाद वे रह जायेंगे और फिर भोगोंको भोगकर वृद्धावस्थामें वे दीक्षित होंगे। भरतेश्वरने निश्चय किया कि इस जिनवाक्यमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। मैं इन पुत्रोंके साथ वृद्धाप्य कालतक राज्यभोगको भोगकर दीक्षित होऊँगा। भगवान्को नमस्कार कर उठा। उनके पुत्र भी साथमें ही उठे, वे आपसमें बातचीत कर रहे थे कि ये भगवंत हमारे दादा हैं, कोई कह रहे थे कि प्रपिता हैं। इस प्रकार मोहसे कई तरहसे बात कर रहे थे। जहाँ मोह है वहाँ ऐसी बात हुआ करती है। जिस भगवंतके समस्त मोहनीयका अभाव हो चुका है, उनके हृदयमें ऐसी कोई भी बात नहीं है। इसलिए इनके हृदयमें मोह रहनेपर भी उनके हृदयमें कोई ममत्व नहीं है। अतएव वे वीतरागी कहलाते हैं।

वृषभसेन गणधरने सम्राट्से कहा कि भरतेश! सबको रास्तेमें छोड़कर आए हो! इसलिये अब देरी मत करो! चले जाओ। भर-

तेश्वरने उत्तरमें कहा कि स्वामिन् ! यहांपर रहनेके लिये न कहकर आप जानेके लिए क्यों बोल रहे हैं ? आपको तो यहां रहनेके लिए आदेश करना चाहिये।

वृषभसेनस्वामीने कहा कि भरतेश ! हम जानते हैं। तुम कहीं भी रहो। तुम्हारी आत्मा यहींपर रहती है। इसलिये जाओ। तब भरतेश्वरने 'अगर ऐसा है तो मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन क्योंकर करूं ? मैं जाता हूं" ऐसा कहते हुए अपने पुत्रोंके साथ वहांसे प्रस्थान किया। वहांसे निकलते समय एक दफे पुनः आदिप्रभुका दर्शन "भूयात्पुनर्दर्शन" मंत्रके साथ किया। तदनंतर वृषभसेनाचार्य, अनंतवीर्य, विजय, वीर, सुवीर, अच्युतार्य इस प्रकार छह गणधरोंकी वंदना की। तदनंतर कच्छयोगी, महाकच्छयोगीको नमस्कार किया। बादमें बाकीके मुनिसमुदायको नमस्कार किया। देवेन्द्रके साथ प्रेमवार्तालाप किया। देवेन्द्र कहने लगा कि भरतेश ! कौनसे पुण्यके फलसे तुमने इन सुन्दर पुत्रोंको प्राप्त किया है ? देवलोकमें भी इस प्रकारके सौंदर्य धारण करनेवाले नहीं हैं। तुम्हारी संपत्ति अद्भुत है। एक दो पुत्र नहीं, सभी तुम्हारे समान ही परम सुन्दर हैं। तुम्हारे भाग्यकी बराबरी लोकमें कौन कर सकता है ? उत्तरमें भरतेश्वर लघुता बतलाते हुए कहने लगे कि क्या सुन्दर हैं ? स्वर्गके देव इनसे हजारों गुण अधिक सुन्दर रहते हैं। तब देवेंद्र कहने लगे कि आप लोग आदिप्रभुके वंशज हैं। इसलिये विनयगुण भी आपमें अत्याधिक रूपसे विद्यमान है। आपकी निरहंकारवृत्ति प्रशंसनीय है।

इस प्रकार देवेन्द्रके साथ वार्तालाप कर नागेंद्र आदियोंके साथ भी बोलते हुए चक्रवर्ती बाहर निकले। जाते समय द्वारपालकोंको उन्होंने रत्नहारादिकाको इनाममें दिये। समवसरणसे बाहर निकलकर विमानोंपर चढ़कर सेनास्थानकी ओर जाने लगे। एक विमानमें स्वयं सम्राट् व दूसरे विमानमें एक हजार प्रौढ़ पुत्र व तीसरे विमानमें दो सौ छोटे पुत्र बैठे हुए जा रहे हैं। सोलह हजार गणबद्ध देव भी साथमें हैं। सभी पुत्रोंके मुखमें इस समय समवसरणकी चर्चा है। आदिप्रभुके अपूर्व दर्शनके संबंधमें अनेक प्रकारसे हर्ष व्यक्त करते हुए सभी पुत्र जा रहे हैं। कभी पिताके साथ समवसरणके विषयमें बोल रहे हैं। भरतेश्वरके कहने पर आनंदसे सुनते हैं। हँसते हैं। लोकविस्मय करनेवाली तीर्थंकर प्रभुकी महिमाको देखकर मन-मनमें फूल रहे हैं।

इस प्रकार सब लोग जिस समय बहुत आनन्दके साथ जा रहे थे,

उस समय उन छोटे पुत्रोंमें दो पुत्र मौनके साथ जा रहे हैं। उनका नाम जिनराज और मुनिराज है। उन्होंने जबसे तीर्थंकर परमेष्ठीका दर्शन किया है तबसे उनके चित्तमें दीक्षा लेनेकी भावना हो गई है। परन्तु पितासे बोलनेके लिये डर लग रही है। इसलिये बडे विचारसे मौनसे जा रहे हैं। मनमें विचार कर रहे हैं कि अब कल ही हमारे भाइयोंके समान हमारा विवाह पिताजी करेंगे। इसलिये इस झंझटमें पड़नेके बजाय बाल्यकालमें ही दीक्षा लेना उचित है। हमें दीक्षा प्रदान करो इस प्रकार हमारे दादा श्री आदिप्रभुके चरणोंमें हम प्रार्थना करते। परन्तु हमारे पिताजी व भाई लोग नहीं छोड़ते। अब क्या उपाय करना चाहिये। धन्य है ! पुण्यजीवियोंका विचार बाल्यकालमें ही परिपुष्ट रहता है।

अभी प्रयत्न करनेपर किसी भी तरह ये लोग हमें भेज नहीं सकते हैं। इसलिये इनके साथ चुपचाप अभी जावें। बादमें जब घरपर पहुँचेंगे तब किसी तरह इनको बिना कहे चले आयेंगे, फिर दीक्षित होंगे। इस विचारसे दोनों पुत्र उनके साथ मौनसे जा रहे हैं।

सभी लोग सेनास्थानकी ओर देखते हुए जा रहे हैं। परन्तु ये दोनों पुत्र कैलासकी ओर देखते हुए जा रहे हैं। भरतेश्वरने देखा ! उनको दोनों पुत्रोंका अंतरंग मालूम हुआ कि दीक्षा लेनेकी भावनासे ये लोग इस प्रकार विकल हो रहे हैं। तथापि उसे छिपाकर कहने लगे, कि बेटा जिनराज ! मुनिराज ! आप लोगोंको क्या हुआ ! सब लोग बहुत आनन्दके साथ जा रहे हैं। आप लोग क्यों मौनधारण करके बैठे हो। इसका कारण क्या ? क्या माताका स्मरण हुआ ? या कैलासपर चढ़नेसे कुछ शरीरमें दर्दबर्द हो गई ? क्या बात है ? आप लोग मौनसे क्या विचार कर रहे हैं। बोलो तो सही। तब उन पुत्रोंने कहा कि पिताजी ! आपके साथ होते हुए माताजीकी याद क्योंकर हो सकती है ? क्या मातुश्री आपसे भी अधिक हैं क्या जिनेन्द्रके समवसरणमें जानेपर शरीरमें आलस्य आ सकता है ? कभी नहीं। आप और भाई वगैरह बोलते हैं। उसे हम सुनते जा रहे हैं। इतनी ही बात है और कुछ नहीं।

पुन: भरतेश्वर कहने लगे कि फिर आप लोग आगे नहीं देखकर पीछेकी ओर देखते हुए क्यों जा रहे हैं। तब वे कहने लगे कि हम लोग इस कैलासकी शोभाको देख रहे हैं और मनमें सोच रहे हैं कि इस पुण्यशैलका दर्शन फिर कब होगा ? जरा इस पर्वतकी शोभाको

देखियेगा। उसके ऊपर समवसरणके सौंदर्यको देखियेगा। स्वामिन्! यह तीन लोकके लिए अद्भुत है। आप देखियेगा। भरतेश्वरको भी पुत्रोंकी भक्तिपर प्रसन्नता हुई। अब वे प्रकट रूपसे कहने लगे कि बेटा! मुझसे क्यों छिपा रहे हो। आप लोगोंके मनके विषयको मैं समझ गया हूँ। अभीसे दीक्षा लेनेकी बात क्यों सोच रहे हैं। हम और तुम सब मिलकर दीक्षा लेंगे। इसमें गड़बड़ क्या है? कुछ दिन भोगमें रहकर बादमें आप लोग दीक्षा लेवें। अभी गड़बड़ न करें। इतना कहनेपर पुत्रोंको मालूम हुआ कि पिताजीको मालूम हुआ है। हम लोग पितासे बोलनेके लिये डर रहे थे। अब पिताजीने ही हमें संकोचसे दूर किया। हमने सोचा था कि इन लोगोंको धोखा देकर भाग आयेंगे। परन्तु अब उस तरह आना सहज नहीं है। इसलिए अब स्पष्ट बोलकर ही जाना चाहिए।

दोनों पुत्रोंने भरतेश्वरके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! हमारी तीव्र इच्छा है कि बाल्यकालमें ही दीक्षित होकर मुक्तिसाम्राज्यके अधिपति बनें। इसलिए आप कृपाकर अनुमति दीजिये। इस बातको सुनकर भरतेश्वरका हृदय कंपित हुआ। आंखोंमें पानी भरकर आया। "बेटा! मुझसे रहा नहीं जायगा। आप लोग इस प्रकारका विचार बिलकुल न करें। मेरी रक्षा करें" इत्यादि रूपसे कहते हुए भरतेश्वरने इन दोनों पुत्रोंको आलिंगन दिया। पुनश्च कहने लगे कि बेटा! आप लोग यदि नहीं हो तो मेरी सम्पत्ति किस कामकी? मुझे कष्ट पहुँचाना क्या आप लोगोंका धर्म है। इतनी गड़बड़ी क्या है? हम तुम सब मिलकर दीक्षा लेंगे। इस समय ठहर जाओ।

उत्तरमें दोनों पुत्रोंने कहा कि स्वामिन्! आपको क्या पुत्रोंकी कमी है? हजारों पुत्रोंमेंसे हम दोनोंने यदि दीक्षा लेकर यमको परास्त किया तो क्या वह कीर्ति आपके लिये ही नहीं होगी?

भरत—बेटा! मुझे उस कीर्तिकी आवश्यकता नहीं। यह कीर्ति ही पर्याप्त है। तुम सुखसे चार दिन रहो यही मैं चाहता हूँ।

पुत्र—पिताजी उस दुष्ट यमके बीचमें रहनेसे क्या प्रयोजन? हम लोगोंको आप आज्ञा दीजियेगा।

भरत—बेटा! वह यम अपनेको क्या कर सकता है? आप लोग इसी भवसे मुक्तिधामको प्राप्त करनेवाले हैं। भगवान् आदिप्रभुके उपदेशको इतना शीघ्र भूल गये। यदि तुम लोग तद्भव मुक्तिगामी नहीं तो तुम्हारे कार्यको मैं नहीं रोकता परंतु इसी भवसे मुक्ति जाना

जरूरी है। फिर चार दिन आनन्दसे संसारके भोगोंको भोगकर फिर जावें। बेटा! जरा विचार तो करो। तुम लोगोंने अभी हमारे नगरको भी नहीं देखा। हमारी मातुश्रीने तुम्हारे विनोदपूर्ण व्यवहारको भी नहीं देखा। ऐसी हालतमें तुम्हारा जाना क्या उचित है? तुम्हारे काकाओंने अभी तुमको देखा ही नहीं है। सबकी इच्छाकी पूर्ति कर बादमें जाइयेगा। मैं तुम लोगोंको बहुत सन्मानके साथ भेज दूंगा। चिन्ता क्यों करते हो? कुछ दिन रह जाओ।

पुत्र--स्वामिन्! दीक्षा लेनेकी इच्छा क्या बार-बार होती है? संसारकी संपत्तिमें फँसनेके बाद मनुष्यके चित्तकी परिणति क्या होती है, कौन कह सकते हैं? इसलिये हमारी प्रार्थना है कि हमे किसी भी प्रकार रोकना नहीं चाहिये। आप अनुमति दीजिये। पिताजी! हमारी दादी, काका, नगरी वगैरहको इस चर्मदृष्टिसे देखनेके लिये क्यों कहते हैं? हम तपश्चर्याके बलसे अनन्त ज्ञानको प्राप्त कर उनको ज्ञानदृष्टिसे एक साथ देखेंगे। इसलिये हमें अवश्य जानेकी अनुमति दीजियेगा।

भरत--बेटा! पुन: पुन: उसी बातको कहकर मुझे दु:खित करना तुम्हारा धर्म नहीं है। अत: इस विषयको छोड़ो। तपस्याकी बात ही मत करो।

पुत्र--पिताजी! आपको इस प्रकार दु:खित होनेकी क्या आवश्यकता है? क्या हम लोगोंने कोई दुष्ट कार्यका विचार किया है? कोई नीच काम करनेका संकल्प किया है? फिर आप क्यों दु:खी होते हैं व हमें क्यों रोक रहे हैं? आपको तो उलटा कहना चाहिये कि बेटा! आप लोगोंने अच्छा विचार प्रशस्त किया है। जाओ तुम लोगोंको जय मिले। परंतु आप तो हमें रोक रहे हैं। हमारी प्रार्थना है कि आप इस प्रकार हमें नहीं रोकें। हमें जानेकी अनुमति प्रदान करें। भरतेश्वरने देखा कि अब ये माननेवाले नहीं हैं। अब किसी न किसी उपायसे इनको मनाना चाहिये, इस विचारसे वे कहने लगे। बेटा! क्या आप लोग दीक्षाके लिये जाना ही चाहते हैं? कोई हर्ज नहीं। जा सकते हैं। परंतु आप लोग एक-एक चीज देकर जाएँ। उत्तरमें उन पुत्रोंने कहा कि पिताजी! हमारे पास ऐसी कौनसी चीज है जो हम आपको दे सकते हैं? भरतेश्वरने कहा कि सिर्फ देंगे ऐसा कहो, मैं फिर कहूँगा। तब उन पुत्रोंने कहा कि जब कि हम समस्त परिग्रहको छोड़कर दीक्षाके लिये उद्यत हुए हैं। फिर हमें किस बातका मोह है। आप बोलिये। हम देनेके लिये तैयार हैं। भरतेश्वर उनके सामने हाथ पसारकर कहा कि लाओ, एक

तो इस हाथपर कपूरको रखो, दूसरा उसपर तैल डालो। फिर खुशीसे दोनों जाओ। जिनेंद्र भगवंतकी शपथ है, मैं नहीं रोकूंगा। बोलते हुए भरतेश्वरकी आँखोंसे आँसू बह रहा था। दोनों पुत्रोंका हृदय कँपने लगा। सभी पुत्र कम्पित होने लगे। अर्ककीर्तिने कहा कि आप लोगोंके जीवनके लिए धिक्कार हो। पिताजीने हाथ पसारकर विषकी याचना की, इससे आधिक दुःखकी और क्या बात हो सकती है ? हम लोगोंने ऐसे अशुभ वचनको सुने। हा ! जिन ! जिन गुरुहंसनाथ !(कानमें उँगली डालते हुए अर्ककीर्तिने कहा) दोनों पुत्रोंके मनमें भय उत्पन्न हुआ। एक दफे पिताके मुखकी ओर देखते हैं और दूसरी दफे भाईके मुखकी ओर देखते हैं। आँखोंके पानीको निगलते हुए उनके चरणोंपर मस्तक रखकर कहा कि अब हम दीक्षाका नाम नहीं लेंगे। भरतेश्वरसे निवेदन करने लगे कि पिताजी ! हम लोगोंने अज्ञानसे बालकके विचारके समान यह विचार किया था। उसे आप भूल जाएँ। आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए क्षमा करें।

भरतेश्वरने दोनों पुत्रोंको सन्तोषके साथ आलिंगन दिया, क्योंकि संतानका मोह बहुत प्रबल हुआ करता है।

भरतेश्वरको बहुत सन्तोष हुआ दोनों पुत्रोंने क्षमायाचना की। पिताजी ! आपको कष्ट पहुँचाया। क्षमा करें। "बेटा ! ऐसा क्यों कहते हो ? मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ, उलटा इस समय मुझे आनंद आया" कहते हुए भरतेश्वरने उन बालकोंको समाधान किया।

इतनेमें अर्ककीर्तिकुमार अपने विमानसे उतरकर पिताके पास आया और उसने भरतेश्वरके धारण किये हुए वस्त्राभरणोंको निकलवाकर नवीन धारण कराये और गुलाबजलसे मुख धुलवाया। चंदनका लेपन शरीरको कराया। इसी प्रकार अनेक प्रकारसे शीतोपचार कर पिताकी सेवा की। भरतेश्वरने उन दोनों पुत्रोंसे प्रश्न किया कि जिनराज ! मुनिराज ! अब जो हुआ सो हुआ, घर जानेके बाद मुझे न कहकर तुम लोग गये तो क्या, बोलो। उत्तरमें पुत्रोंने कहा कि पिताजी ! हम आपसे पूछे बिना अब हरगिज नहीं जायेंगे। "मैं विश्वास नहीं कर सकता भरतेश्वरने कहा। तब पुत्रोंने कहा कि आपके पदकमलोंकी शपथ है, हम नहीं जायेंगे। पुनः भरतेश्वरने कहा कि इससे भी मुझे संतोष नहीं होता है। कुछ न कुछ जामीनके रूपमें देना चाहिए। नहीं तो मुझे विश्वास नहीं हो सकता है।

पुत्रोंने विनयसे कहा कि पिताजी ! जब आपके चरणकमलोंकी शपथपूर्वक हमने प्रतिज्ञा की है, फिर उससे अधिक जामीन क्या हो सकती है ? लोकमें आपसे अधिक और कौन है ? इसलिये हमपर विश्वास कीजिये।

भरतेश्वरने कहा कि मैं इस प्रकार विश्वास नहीं कर सकता। अपने बड़े भाई अर्ककीर्ति व आदिराजकी जामीन देकर हमें निश्चय कराओ कि आप लोग अब नहीं जाओगे। अर्ककीर्तिने कहा कि जामीन-की क्या आवश्यकता है ? आपके पादकमलोंसे अधिक और क्या जामीनकी कीमत हो सकती है ?

"नहीं ! अवश्य जरूरत है, इस तरह वचनबद्ध व जामीन पत्रबद्ध होनेसे फिर ये बिलकुल नहीं जा सकेंगे। इसलिये अवश्य जामीनपत्र होना चाहिये" भरतेश्वरने कहा। इतनेमें आदिराजने कहा कि व्यर्थं विवाद क्यों ? पिताजीकी जैसी इच्छा हो वैसा करें। अच्छा ! हम दोनों भाई इन दोनोंके लिए जामीन हैं। हम इनको जाने नहीं देंगे और ये नहीं जायेंगे, इस प्रकार लिखकर दोनोंने हस्ताक्षर किया। जिनराज और मुनिराजने दोनों भाइयोंके चरणोंमें नमस्कार कर कहा कि भाई ! आप लोग विश्वास रखें कि हम कभी बिना कहे नहीं जायेंगे। आप लोग विश्वास रखें।

"पिताजीके चरणस्पर्श ही पर्याप्त है" ऐसा कहते हुए दोनों भाइ-योंने उनका हाथ हटाया। जिनराज मुनिराजने विनयसे कहा कि पिताजी आपके लिए स्वामी हैं, हमारे लिए तो आप ही स्वामी हैं। इसी प्रकार अन्य हजारों पुत्रोंने कहा कि भाई ! आप दोनों तो इनके लिए जामीन हैं। परन्तु हम लोग सब पहरेदार हैं। फिर ये कैसे जाते हैं देखेंगे। मोक्षपथमें उन पुत्रोंका विनोद-व्यवहार कुछ विचित्र ही है। वह आनन्द सबको कैसे मिल सकता है।

सम्राट्को सन्तोष हुआ, सभी पुत्र अपने-अपने विमानपर चढ़कर सेनास्थानकी ओर जाने लगे। अर्ककीर्तिने भरतेश्वरसे कहा कि पिताजी ! आदिप्रभुने जो अपनी दिव्यवाणीमें कहा था कि दो पुत्रोंको बाल्यकालमें वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। उससे थोड़ा सबको दुःख होगा। प्रभुका वचन अन्यथा नहीं हो सकता है।

भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! अभी तुमसे यही बात कहना चाहता था। परन्तु तुमने उसी को कहा।

"पिताजी ! आपने जब इनका नामकरणसंस्कार किया था, उस

समय इनका नाम बहुत सोच समझकर रखा मालूम होता है। जिनराज मुनिराजके नामसे ये जिनमुनि होंगे ऐसा शायद आपको उस समय मालूम हुआ होगा। आश्चर्य है!" अर्ककीर्तिने कहा।

भरतेश्वरने कहा कि बेटा! जाने दो, मुझे चढ़ाओ मत! तुम्हारे भाइयोंने जिस प्रकार मुझे फँसानेके लिए सोचा था, उसे विचार करनेपर मुझे हँसी आती है देखो तो सही।

किस उपायसे हम लोगोंको धोखा दे रहे थे? हमने पूछा था कि आप लोग मौनसे क्यों आ रहे हैं? उत्तर देते हैं कि आप लोगोंकी बातको हम सुनते हुए आ रहे हैं। पीछेकी तरफ देखनेका कारण पूछनेपर कैलास पर्वतके पुण्यातिशयका वर्णन करने लगे। अर्ककीर्ति! देखो! तुम्हारे भाइयोंके चातुर्यको। इस बातको सुनकर सब लोग हँसे।

उन पुत्रोंमें सबसे छोटे माणिक्यराज व मन्मथराज नामके थे। उनका नाम जैसा था उसी प्रकार वे सुन्दर थे। उन्होंने आगे आकर निवेदन किया कि पिताजी अब आपके सहोदर वृषभसेनाचार्य आदि छह भाइयोंने दीक्षा ली उस समय आपने उनको क्यों नहीं रोका? उस समय आपने कुछ भी न बोलकर मौन धारण किया। परन्तु इनको रोका। क्या इस कार्यके लिये यह लोक प्रसन्न हो सकता है? इस प्रकार निर्भीक होकर कहने लगे।

भरतेश्वरने कहा कि ठीक है। उस समय मैं क्या करता? उत्तरमें उन पुत्रोंने कहा कि आप कुछ दिनके लिए उनको रोकते, जैसा हमारे भाइयोंको रोका।

भरतेश्वर—क्या मेरे रोकनेसे वे रुक सकते हैं?

पुत्र—पिताजी! आप ऐसा क्यों कहते हैं? बड़े भाईकी बातको वे कभी उल्लंघन नहीं करते। आपने उनको रोका नहीं।

भरतेश्वर—रहने दो तुम्हारे भाइयोंने अभी हम लोगोंको फँसाकर जानेका विचार कैसे किया था? यह तुम नहीं जानते। जब कि मेरे पुत्रोंने मुझे धोखा देनेका विचार किया तो मेरे भाइयोंकी तो बात ही क्या है? वे मेरी बातको कैसे सुनेंगे बेटा! तुम लोग अभी छोटे हो, इसलिए पिताजी, पिताजी कहकर मुझे पुकारते हो। परन्तु कल मुझे फँसाकर चल दोगे यह मैं कह नहीं सकता। तुम लोगोंपर भी विश्वास करना कठिन है। गर्भमें आते ही हम लोगोंको पुत्र उत्पन्न होगा, इस विचारसे हम हर्षित होते हैं व उस भाग्यके दिनकी प्रतीक्षा करते हैं।

परन्तु आप लोग हमें निर्भाग्य कर चले जाते हो यह मात्र आश्चर्यकी बात है। "पुत्रसंतान होना चाहिए" इस प्रकार तुम्हारी माताओंकी अभिलाषा है। उसकी पूर्ति तुम्हारे जन्मसे हो जाती है। परन्तु तुम लोग बड़े होकर दीक्षा लेकर भाग जाते हो, हम लोगोंकी रक्षा बुढ़ापेमें तुम करोगे, इस विचारसे अच्छे-अच्छे पदार्थोंको खिला-पिलाकर हम तुम्हारा पालन-पोषण करते हैं। परन्तु तुम लोग बिल्कुल उसके प्रति ध्यान नहीं देते हो। लुच्चे हो। कदाचित् हमसे कहनेसे हम जाने नहीं देंगे इस विचारमें बिना कहे ही तपश्चर्याके लिए निकल जाते हो। परन्तु ऐसा न कहकर जानेसे बाल्यकालसे पालन किया हुआ ऋण तुमसे कैसे छूट सकता है। देखो, मेरे पिताजीने मुझे राज्य में स्थापित कर जो काम मुझे सौंपा है उसे मैं कर रहा हूँ। मैंने अपनी माताके स्तनके दूधको पीया है, अतएव उनकी आज्ञानुसार सर्व कार्य करता हूँ। किसीका कर्जा लेकर उसे बाकी रखना यह महापाप है। माता-पिताओंके ऋणको बाकी रखकर जाना यह सत्पुत्रोंका कर्तव्य नहीं है। उसको तो मुक्ति भी नहीं मिल सकती है। तुम्हारे भाई और तुम इस बातपर विचार नहीं करते। तुम्हारी मातुश्री व हमको दुःखमें डालकर जाना चाहते हो। परन्तु क्या अपनी लिए उचित है! इस प्रकार पुत्रोंको भरतेशने अच्छी तरह डराया।

भरतेश यद्यपि जानते थे, सर्वज्ञने यह आदेश दिया है कि दो पुत्रों को छोड़कर बाकीके पुत्र तो भोगोंको भोगकर वृद्धावस्थामें ही दीक्षित होंगे तथापि विनोदके लिये ही उपर्युक्त प्रकार संभाषण किया। पुनः वे दोनों पुत्र कहने लगे कि पिताजी! हमारे भाई दीक्षाके लिये जाना चाहते थे। आपसे आज्ञा उन्होंने जानेके लिये माँगी, परन्तु आपने आज्ञा नहीं दी, वे रह गये। फिर आपने उसी प्रकार उन छह भाइयोंको नहीं जाने देते तो वे रह जाते। भरतेश्वर उत्तरमें कहने लगे कि बेटा! जब मेरे खास पुत्रोंका रोकनेके लिये मुझे इतना साहस व श्रम करना पड़ा, तब उन भाइयोंको रोकनेके लिये क्या करना पड़ता? मेरी बात को वे कैसे मान सकते थे?

पुनः वे पुत्र कहने लगे कि पिताजी! आप ऐसा क्यों कहते हैं? क्या आज हम लोग छोटे भैया आदिराज व बड़े भैया अर्ककीर्तिके वचनका उल्लंघन करते हैं? नहीं, हम तो उनके वचनको शिरसा धारण करते हैं। इसी प्रकार वे भी आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करते। परन्तु मालूम होता है कि आपने ही इस प्रकार प्रयत्न नहीं

किया। भरतेश्वरने अर्ककीर्तिकी ओर लक्ष्यकर कहा कि देखो बड़े भैया! अपने भाइयोंकी बात तो सुनो, ये किस प्रकार बोल रहे है। तब अर्ककीर्ति कहने लगा कि पिताजी! वे ठीक बोल रहे हैं, शायद आपने अपने भाइयोंको रोकने का प्रयत्न किसी कारणसे उस दिन नहीं किया होगा।

भरतेश्वरने उत्तरमें अर्ककीर्तिसे कहा कि बेटा! तुमने भी, तुम्हारे भाइयोंने जो उसे ही समर्थन किया। क्या उस दिन मैंने अपने भाइयों-को रोका नहीं होगा! परन्तु यह बात नहीं है। बेटा! आज तुम्हारे जितने भी सहोदर हैं वे तुम्हें देखते ही मेरे समान ही विनय करते हैं। मेरे भाइयोंकी वह दशा नहीं है क्योंकि तुम्हारे सदृश पुण्यको मैंने नहीं पाया है।

अर्ककीर्ति—परमात्मन्! यह आपने क्या कहा! आप ही लोकमें पुण्यशाली हैं। मैं अधिक पुण्यशाली कैसे हो सकता हूँ।

भरतेश—लोकमें भले ही मुझे बड़ा कहें, पुण्यशाली कहें, परन्तु सहो-दरोंकी भक्ति पानेमें तुम लोकमें सबसे बड़े हो। देखो तो सही, तुम्हारे भाइयोंको यह भी ख्याल नहीं है कि हम सब सौतेली माँ के पुत्र हैं। सबके सब प्रेमसे तुम्हारे साथ रहते हैं। परन्तु एकगर्भज होनेपर भी मेरे भाई तो मेरे साथ नहीं रहते। एक हजार दो सौ भाई तुम्हारी आज्ञाको शिरोधार्य करके तुम्हारे साथ रहते हैं। परन्तु मेरे तो सौ भाई होनेपर भी मेरे साथ प्रेमसे बर्ताव नहीं करते। मैं तो उनकी हित-कामना ही करता हूँ। परन्तु मेरे साथ उनको भलाईका व्यवहार नहीं है। तथापि मैं उस ओर उपेक्षा करके चलता हूँ। जिन छह भाइयोंने दीक्षा ली वे तो अत्यन्त विनयी थे और मुझपर उनकी अतिशय भक्ति थी। मैंने उनको अनेक प्रकारसे रोकनेके लिये प्रयत्न किया। परन्तु मुझे स्वपरोपकारकी अनेक बातें कहकर वे आदिप्रभुके साथ दीक्षित हो ही गये। क्या करें। उनको नमोस्तु अर्पण करता हूँ परन्तु अब बाकी जो रहे हुए भाई हैं उनके अंतरंगका क्या वर्णन करूँ? वे महा-गर्वी हैं। मेरे अनुकूल रहना नहीं चाहते हैं। इन बातोंको बाहर कभी नहीं बोलना। आप लोग मनमें ही रखकर समझ लेना। इत्यादि अनेक प्रकारसे बच्चोंको समझाया।

उत्तरमें अर्ककीर्ति कहने लगा कि अरहंत! क्या आपके और काकाओंके मनमें अनुकूल वृत्ति नहीं है यह बड़े दुःखकी बात है। इत्यादि प्रकारसे वार्तालाप करते हुए सेनाकी ओर आ रहे थे। सेना-स्थान अब बिलकुल पासमें है। सेनामें सभी सम्राट्की प्रतीक्षा कर रहे

थे। तीर्थगमनसे लौटे हुए चक्रवर्तीका, मंत्री, सेनापति, मागध हिमवन्त, देव, विजयार्धदेव आदि प्रमुखोंने अप्रमाण सेनाके साथ स्वागत किया। सर्वत्र जय-जयकार होने लगा। सर्वत्र शृङ्गार कराया गया था। समस्त सेनाओंके ऊपर जिनपाद गंधोदकको क्षेपणकर भरतेश्वरने यह भाव व्यक्त किया कि मेरे आधिन समस्त प्राणी मेरे समान ही सुखी होवें। सभी प्रजाओंने सम्राट्की प्रशंसा की। सेनाका उत्साह, विनय, भक्ति आदिको देखते हुए सम्राट् महलमें प्रवेश कर गये। वहांपर रानियोंका उत्साह और ही था। वे स्वागतके लिए आरती दर्पण वगैरह लेकर खड़ी थीं। उन्होंने बहुत भक्तिसे भरतेश्वरकी आरती उतारी। समवसरणकी पवित्रभूमिसे स्पृष्ट पवित्र चरणकमलोंको रानियोंने स्पर्श किया। पुत्रोंने भी माताओंके चरणोंमें ढोक देकर समवसरण गमन, जिनपूजन आदि सर्व वृत्तांतको कहनेके लिए प्रारम्भ किया। सब लोग इच्छामि इच्छामि कहते हुए सम्मति दे रहे थे। जिस समय माताओंके चरणोंमें वे पुत्र नमस्कार कर रहे थे, उस समय वे मातायें कह रही थीं कि आप लोग आज हमें नमस्कार न करें। क्योंकि आज आप लोग हमारे पुत्र नहीं हैं। तीर्थपथिक हैं। इसलिए तुम लोगोंको हमें नमस्कार करना चाहिये। इत्यादि कहते हुए रोक रही थीं। तथापि वे पुत्र नमस्कार कर रहे थे। भरतेश्वरको यह दृश्य देखकर आनन्द आ रहा था।

पुत्रवधुओंने भी आकर भरतेश्वरके चरणोंको नमस्कार किया। सबके ऊपर गंधोदक सेचन कर भरतेश्वरने आशीर्वाद दिया। इस प्रकार बहुत आनंदके साथ मिलकर नित्यक्रियासे निवृत्त होकर सबके साथ भोजन किया व संतोषसे वह दिन व्यतीत किया।

भरतेश्वरका भाग्य ही भाग्य है। षट्खंडविजयी होकर आते ही त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभुका दर्शन हुआ। समवसरणमें पहुँचकर वंदना की, पूजाकी, स्तोत्र किया। इस तरहका भाग्य सहज कैसे प्राप्त होता है? भरतेश्वरकी रात्रिंदिन इस प्रकारकी भावना रहती है। वे सतत परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि :-

हे परमात्मन् तुम सदा पापको धोनेवाले परमपवित्र तीर्थ हो, परमविश्रांत हो! इसलिए तुम मुझसे अभिन्न होकर सदा मेरे हृदयमें ही बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! तुम ज्योतिस्वरूप हो, तेजस्वरूप हो, लोक विख्यात हो, तुम्हारी जय हो! मेरे लिए नूतनमतिको प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि उनको तीर्थंकरपरमेष्ठिका दर्शन हुआ।

इति तीर्थगमनसंधि.

अंबिकादर्शनसंधि

भरतेश्वरकी आज्ञा पाकर सेनाने दूसरे दिन आगे प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर मुक्काम करते हुए बहुत विनोद-विलासके साथ अयोध्याकी ओर सेनाका प्रयाण हो रहा है।

पौदनपुरमें समाचार मिला कि सम्राट् अब दिग्विजयसे लौट रहे हैं। पुत्रके द्वारा प्रेषित वस्त्राभूषणोंको माता यशस्वतीने व उनकी बहिन सुनंदादेवीने बहुत संतोषके साथ धारण किया व पुत्रको देखने की इच्छा यशस्वती माताके हृदयमें हुई। अब ८-१० दिनमें भरतेश्वर अयोध्यापुरीमें पहुँच आयेंगे, तथापि तब तक ठहरनेकी दम नहीं है। आज ही जाकर पुत्रको आँख भरकर देखूँ, यह इच्छा यशस्वतीके मनमें हुई। बहिन सुनंदादेवीने कहा कि जीजी ! अभी गड़बड़ क्या है जब अयोध्यानगरमें सब लोग आ जावें तब अपन सब मिलनेके लिए जाएँगे। आज जानेकी क्या जरूरत है। उत्तरमें यशस्वतीने कहा कि बहिन ! मेरा भरत जहाँ रहता है वहीं मेरे लिए अयोध्यापुर है। इसलिए मैं तो आज जाती हूँ। आपलोग अयोध्यापुरमें पहुँचनेके बाद आवें। बाहुबलिने आकर मातासे कहा कि मैं आज दूतोंको आगे भेजकर समाचार कहला देता हूँ आप कल जाएँ। यशस्वतीने उत्तर में कहा कि नहीं, समाचार भेजनेकी आवश्यकता नहीं, मैं गुप्तरूपसे जाना चाहती हूँ। एकाएक अकस्मात् जानेसे भरतेश्वरको व उसकी रानियोंको आश्चर्य होना चाहिये। पहिलेसे समाचार भेजनेसे वह सेनाके साथ स्वागतके लिए आयेगा, यह मैं नहीं चाहती हूँ। साथमें विमानपर चढ़कर जाऊंगी। पालकीसे जानेमें देरी लगेगी इत्यादि प्रकारसे बाहुबलिको समझाकर कुछ सेवक, विश्वासपात्र आदिको लेकर आकाशमार्गसे गमन कर गई। अब सेनास्थान नजिकट है। आकाशप्रदेशसे ही भरतेशकी उस विशाल सेनाको देखकर यशस्वतीके मनमें अतिहर्ष हो रहा है।

आकाश प्रदेशमें आते हुए विमानको देखकर समस्त सेनाको भी आश्चर्य होने लगा। हम लोग दक्षिणकी ओर जा रहे हैं। दक्षिणकी ओरसे ये कौन आ रहा है ! बाजा नहीं, कोई खास निशान नहीं, केवल विमान ही रहा है, इत्यादि प्रकारसे जब आश्चर्यचकित होकर विचार

कर रहे थे तब पासमें आनेके बाद साथके वीरोंने कहा कि सम्राट्की माता आ रही हैं। एकदम सेनाके समस्त बाद्य बजने लगे। सब लोग हर्षसे जब जयजयकार करने लगे। कोई हाथीपर चढ़कर, कोई घोड़ेपर चढ़कर, रथपर और कोई विमानपर चढ़कर, माताके स्वागतके लिये गये। कोई आकाशमें नमस्कार कर रहे हैं तो कोई जमीनपर। इस तरह सारी सेनामें एकदम खलबली मच गई। साढ़े तीन करोड़ प्रकारके बाजे एकदम बजने लगी।

भरतेशको अकस्मात् उपस्थित इस घटनासे आश्चर्य हुआ। पासमें खड़े हुए सिपाहीको तलाश करनेके लिये इशारा किया। खुद मुख्य दरवाजेपर जाकर देखता है तो सेनामें एकदम खलबली मची हुई है। वहाँ कोई एक दूसरेका इस समय सुननेको भी तैयार नहीं है। दूतने आकर उत्तर दिया कि स्वामिन्! सेना आपेसे बाहर हो गई है। कोई भी उत्तर नहीं दे रहा है। सब लोग गड़बड़में पड़ गये हैं। तब भरतेशने विचार किया कि हम लोग दिग्विजयसे हर्षित होनेसे बेफिकर होकर जा रहे थे। कदाचित् कोई शत्रु इस मौकेको साधन कर हमला करनेके लिये तो नहीं आये हैं। अपनी रानियोंको अभय प्रदान कर सम्राट्ने सौनन्दक नामक खड्गको हाथमें लिया। उस एक खड्गको लेकर भरतेश बाहर आये। एक दफे उस खड्गको जोरसे फिराकर देखा तो एकदम प्रलयकालकी अग्निने जीभ बाहर निकाली हो ऐसा मालूम हुआ। भूकम्प हुआ। समुद्र उमड़ गया। करोड़ों भूत चिल्लाने लगे। लोकमें भय छा गया। भरतेश जिस ढंगसे आ रहे थे उससे अनुमान किया जाता है कि शायद उस समय वे मनमें विचार कर रहे होंगे कि यदि कोई राक्षस भी इस समय मेरे सामने आवे तो उसको पक्षीके समान भगाऊँगा। अर्थात् इतनी वीरतासे आ रहे थे।

इस प्रकार जगदेकवीर सम्राट् महलके मुख्य दरवाजेपर जब पहुँचे तब अर्ककीर्ति आदि पुत्रोंने आकर नमस्कार किया। तदनंतर गणबद्ध देवोंने आकर नमस्कार किया। उसके बाद अनेक शूरवीर आये। मालूम हुआ कि मातुश्री आ गई हैं।

भरतेश्वरके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा! हा! मेरी माताजी इस प्रकार आ गईं! इस प्रकार कहकर हँसते हुए खड्गको सेवकके हाथमें देकर उन शूरवीरोंका उचित सत्कार किया। इतनेमें विमानने आकर महलके आँगनमें प्रवेश किया। उसमेंसे देवांगनाके समान यशस्वती-

देवी उतर गईं। भरतेश्वरने जाकर साष्टांग नमस्कार किया। माताने रोका। परंतु भरतेशने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता, मैं नमस्कार करूँगा। यशस्वतीने कहा कि तथापि इस रास्तेमें क्यों? महलमें चलो! इस वादके बीचमें ही अर्ककीर्तिने एक कपड़ा वहाँपर बिछा दिया व कहा कि पिताजी! अब नमस्कार करो। भरतेश्वरने भक्तिभरसे नमस्कार किया। भरतेश्वरको हाथसे उठाकर माताने आशीर्वाद दिया कि बेटा! चढ़ती हुई जवानी न उतरे, एक भी बाल सफेद न हो, सुखसे बहुत दिनतक षट्खंडको अखंड रूपसे पालन करते हुए चिरकालतक रहो, बादमें क्षणमात्रमें मुक्तिलक्ष्मीको प्राप्त करो। उस समय दोनोंको रोमांच हुआ। आनन्दाश्रु बहने लगा। मातापुत्रका मोह अद्भुत है।

यशस्वतीदेवीने कहा कि बेटा! तेरा वियोग होकर साठ हजार वर्ष हुए। आज मुझे संतोष हुआ, आज मिले।

अरहंत! माता! साठ हजार वर्ष हुए? भरतेश्वरने आश्चर्यसे पूछा! उत्तरमें यशस्वतीने कहा कि बेटा! हाँ! बराबर है। मैं प्रतिदिन गिनती थी। तदनन्तर अर्ककीर्तिने आकर दादीके चरणोंमें नमस्कार किया, उसी प्रकार बाकी पुत्रोंने भी आकर नमस्कार किया। भरतेश्वरने कहा कि माताजी! जब दिग्विजयके लिये नगरसे निकले तब इसी अर्ककीर्तिका पालना हमारे साथ था। यह उस समय बच्चा था। ये सब बादमें उत्पन्न हुए उसके सहोदर हैं। तब माताने अर्ककीर्ति व अन्य पुत्रोंको आशीर्वाद देते हुए कहा कि बेटा! तुम सरीखे भाग्यशाली लोकमें कौन है? ये सब नरलोकके नहीं हैं, ये सुन्दर पुत्र सुरलोकके मालूम होते हैं। सुरलोकसे तो नहीं लाये हो न? बोलो तो सही। भरतेश्वरने उत्तरमें कहा कि माताजी! पुत्रोंकी बात जाने दीजिये, आप बिना सूचना दिये ही एकाएक कैसे आईं? इस प्रकार आना क्या उचित है? सेनास्थानका शृङ्गार नहीं किया, नृत्यवादकी कोई व्यवस्था नहीं की गई, आपके स्वागतके लिए मैं नहीं आ सका। बड़े-बड़े राजा सजधजकर नहीं आ सके, मैं चाहता था कि आपके स्वागत के लिए असंख्यात रथ व पल्लकियोंको लेकर आऊँ। स्थान-स्थानपर अनेक दृश्यपात्रोंकी व्यवस्था नहीं हो सकी। क्या कहूँ? मुझे आपकी सेवा करनेका भाग्य नहीं है। हमारी सेना इस सेवाके लिए योग्य नहीं है। यह गीत पात्र भी योग्य नहीं है। बड़ा दुःख होता है। मैं अनेक प्रकारसे सेवा करनेकी भावना कर रहा था, परन्तु उसे देखनेकी आकांक्षा आपके हृदयमें नहीं है। फिर आपने मुझे जन्म

क्यों दिया ? षट्खंडको पालनेके लिए दूध क्यों पिलाया ! कहिए माता जी ! माता यशस्वतीने उत्तरमें कहा कि बेटा ! इस प्रकार दुःख मत करो, मुझे यह सब लोकांत व्यवहार पसन्द नहीं है, इसलिए एकांतमें आकर तुमसे मिलना चाहती थी, उसीमें मुझे संतोष है। जब मैं इस प्रकार आ रही थी, तुम्हारी सेनाके वीर बड़े धूर्त मालूम होते हैं। उन्होंने एकदम हल्ला मचाया। साथमें मेरे साथ आये हुए तुम्हारे विश्वासपात्रोंने भी उनके साथ हल्ला मचाया। ये भी धूर्त हैं। तब उन वीरोंने कहा कि स्वामिन् ! छोटे मालिकने (बाहुबलि) वहींपर कहा था कि पहिलेसे हम समाचार भेजते हैं, आप बादमें जावें। परन्तु माताजीने माना नहीं। इसलिये हम लोगोंने सिर्फ कहा कि सम्राट्की माता आ गई हैं। इतनेमें सेना एकदम उमड़ गई। हम क्या करें ? सम्राट्ने उनसे प्रसन्न होकर कहा कि तुम लोगोंने अच्छा किया। नहीं तो माताजी गुप्तरूपसे ही आतीं। बादमें सम्राट्ने उनको अनेक उत्त-मोत्तम पदार्थोंको इनाममें दिये। माताजी ! आप तो एकांतमें आना चाहती थीं, परंतु आपका विचार लोकको मालूम नहीं था इसलिए उसने अपनी इच्छानुसार प्रकट कर ही दिया। हँसते हुए भरतेश्वरने कहा। लोकमें सर्वश्रेष्ठ आप जिस समय एक गरीब स्त्रीके समान आ रही थीं, इस विपरीत वर्तनसे भूकंप हुआ, सेनामें एकदम खलबली मच गई। विशेष क्या ? मैं स्वयं खड्ग लेकर यहांतक आया भरतेश्वर ने पुनः कहा।

उत्तरमें यशस्वती माताने भरतेशकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा कि बेटा ! बस ! तुम्हारे तेजको छिपाकर मेरी ही प्रशंसा करते जा रहे हो।

तदनन्तर भरतेशने हाथका सहारा देकर बाहरके आँगनसे अंदरके आँगनमें मातुश्रीको पधराया। साथ ही जाते समय छोटी माँ (सुनंदा) व छोटे भाई (बाहुबलि) का कुशल वृत्तांत भी पूछ लिया। आगे जाकर बीचका जो दीवानखाना आया वहांपर एक उत्तम आसनपर मातुश्री-को बैठा दिया और दोनों ओरसे अपने पुत्रोंको खड़ाकर भरतेश्वर माताकी भक्ति करने लगे।

इतनेमें भरतेश्वरकी रानियाँ माताके दर्शनके लिए बहुत उत्साहके साथ आईं। बहुओंको मालूम हुआ कि सासु आई हैं। सब लोग बहुत हर्षके साथ मंगल द्रव्योंको अपने हाथमें लेकर सासुके दर्शनके लिये आईं। यशस्वती महादेवीको भी अपनी हजारों बहुओंको देखकर बड़ा

ही हर्ष हुआ। मुखमें आनन्दकी हँसी, शरीरमें रोमांच व आँखोंमें आनंदाश्रुको धारण करते हुए उन रानियोंने बहुत भक्तिसे सासुके चरणोंको नमस्कार किया। सबको यशस्वतीने आशीर्वाद दिया। वंदना व कुशलपृच्छना होनेके बाद उन रानियोंने प्रार्थना की कि हम लोगोंने उस दिन दिग्विजय प्रस्थानके समय पुनः आपके चरणोंके दर्शन होने-तक जो नियम लिये थे वे सब आज पूर्ण हुए। आज हम उन नियमोंको छोड़ देती हैं। यशस्वतीने तथास्तु कहकर अनुमति दी। उन बहुओंने पुनः कहा कि देखा माताजी! आपसे हम लोगोंने व्रत ग्रहण किये थे। उसके फलसे हम सब लोग किसी प्रकारके कष्टके बिना सुरक्षित आई हैं। कभी शिरदर्दकी भी शिकायत नहीं रही। बहुत आनन्दके साथ हम लोग लौट आई हैं।

भरतेश्वर पूछा कि माताजी! इन्होंने क्या व्रत लिये थे? तब यशस्वतीने कहा कि किसीने फूलमें, किसीने वस्त्रमें और किसीने खाने-पीनेके पदार्थोंमें नियम लिये थे। मैंने उसी समय इन लोगोंको इनकार किया था। परंतु इन्होंने माना नहीं। व्रत ले ही लिये। भरतेश्वरने कहा कि ओहो! माताजी इनकी भक्ति अद्भुत है, मेरे हृदयमें इन सरीखी भक्ति नहीं है। मैंने कोई नियम ही नहीं लिया था। मैं कितना पापी हूँ? तब उत्तरमें यशस्वतीने कहा कि बेटा! दुःख मत करो इनकी भक्ति और तुम्हारी भक्ति कोई अलग-अलग नहीं है, इनकी भक्ति ही तुम्हारी भक्ति है।

रानियोंके नमस्कार करनेके बाद चक्रवर्तीके पुत्रवधुओंने आकर नमस्कार किया। विनोदसे उनका परिचय कराते हुए सम्राट्‌ने कहा कि माताजी! आपकी बहुओंको आपने उस दिन आशीर्वाद दिया था तो वे उनके फलसे बहुत आनन्दके साथ समय व्यतीत कर रही हैं। अब आप इन मेरी बहुओंको भी आशीर्वाद देवें ताकि वे भी सुखी होवें। तब यशस्वती हँसती हुई कहने लगी कि बेटा! अच्छी बात, मेरी बहुओंके समान ही तुम्हारी बहुएँ भी सुखसे समयको व्यतीत करें। सब लोग खिलखिलाकर हँसे।

सब रानियाँ आ गईं। परंतु पट्टरानी सुभद्रादेवी अभीतक क्यों नहीं आई, इस बातकी प्रतीक्षा सब लोग कर रही थीं। इतनेमें अनेक परि-वार स्त्रियोंके साथ युक्त होकर सुभद्रादेवी आ गईं। भरतवालीसे युक्त प्राकृतिक सौंदर्य, उसमें भी दिव्य आभरणोंका लावण्य आदिसे वह बहुत ही सुन्दर मालूम हो रही थी। सासुने आँख भरकर बहुको देखा।

परिवार स्त्रियाँ बिरुदावली बोल रही थीं। कच्छेंद्रपुत्री, सुभद्रादेवी, गुणरत्नगुच्छसे शोभित स्त्रीरत्न आ रही हैं। सावधान हो।

सभी रानियोंने पूछा कि जीजी! आपने देरी क्यों लगाई? जल्दी क्यों नहीं आई। उत्तरमें सुभद्रादेवीने कहा कि मैं अन्तमें आई हुई हूँ। ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंके बाद ही मेरा आना ही ठीक है। सुभद्रादेवीने अपने पिताकी सहोदरी यशस्वतीके चरणोंमें बहुत भक्तिसे नमस्कार किया। यशस्वतीको देखनेपर पिताको देखनेके समान उसे हर्ष हुआ। यशस्वतीको सुभद्रादेवीको देखनेपर अपने भाईको देखनेके समान हर्ष हुआ। बहुत हर्षसे सुभद्रादेवीको आलिंगन देकर आशीर्वाद दिया। देवी, तुमको मैंने बचपनमें देखा था। फिर बादमें अपन दूर हुई। अब जवानीमें फिरसे तुम्हें देखनेका योग मिला, अपने भाईको देखनेके समान हो गया। दोनोंके आँखोंसे आनंदाश्रु बहने लगा। इतनेमें घंटानाद हुआ। सूचना थी कि अब भोजनका समय हो गया है। सब लोगोंको उस समय यशस्वती माताके आनेसे महलमें महापर्वके समान आनन्द होने लगा। स्त्रियाँ वहाँसे जाकर स्नान, देवपूजा वगैरहसे निवृत्त हुईं व महाविभवके साथ भोजनगृहमें प्रविष्ट हुईं।

भोजनशालामें झूलेके ऊपर निर्मित एक सुन्दर आसनपर सब बहुओंकी प्रतीक्षामें यशस्वती महादेवी बैठी हैं। भरतेशकी इच्छा हुई कि माताजीकी पूजा करें। इसलिये पासमें ही ऐसे सिंहासन रखवाकर मातासे कहा कि आप इसपर विराजमान हो जाएँ। यशस्वतीने कहा कि उस दिन पर्वोपवासके बहानेसे पूजाके लिये स्वीकृति दी थी। आज मैं नहीं स्वीकार करूँगी। मेरी पूजाकी क्या जरूरत? भरतेशने कहा कि माताजी! एक दफे मेरी इच्छाकी पूर्ति और कीजिये। मुझे पूजा करने दीजिये। माताने इनकार किया व वहींपर बैठी रहीं। तब सम्राट्ने अर्ककीर्तिसे पूछा कि बड़े भैया! तुम बोलो! अब क्या उपाय करना चाहिये? उत्तरमें अर्ककीर्तिने कहा कि पिताजी! आज्ञा दीजिये। मैं उस आसनसहित दादीको उठा ले आता हूँ! भरतेश्वरने आदिराजसे पूछा तो उसने कहा कि पिताजी! अपको पूजा करनी है, दादीको वहीं बैठे रहने दीजिये। अपन वहींपर सामने बैठकर पूजा करेंगे। इस प्रकार भरतेशके कानमें कहा। अन्य पुत्रोंको भी उसी प्रकार पूछा तो उन्होंने कहा कि हमारे बड़े भाइयोंने जो उपाय कहा है उससे अधिक हम क्या कह सकते हैं? भरतेश्वरने अर्ककीर्ति व आदिराजसे कहा कि बेटा! तुम लोगोंने जो तंत्र कहा है, वह ठीक तो है। परंतु उस तंत्रसे

भी बढ़कर मंत्र है। उसका भी प्रभाव जरा देखें। तंत्रोंके प्रयोगके लिए सारे शरीरका उपयोग करना पड़ता है। परंतु मंत्रके प्रयोगके लिए केवल ओंठको हिलानेसे काम चल सकता है। मंत्रके रहते हुए तंत्रके झगड़ेमें पड़ना ठीक नहीं है। इसलिए आप लोग मंत्रके सामर्थ्यको देखें।

माताजी ! आप पूजाके लिए उठें व इस सिंहासनपर विराजमान हो जाएँ। माताने कहा ऐसा नहीं हो सकता।

"ॐ महा हंसनाथाय नमः स्वाहा, माताजी ! उठे, यदि नहीं उठो तो भवदीय भरत भैयाकी शपथ है स्वाहा" भरतेशने मंत्र पठन किया। माता एकदम उठकर खड़ी हो गईं।

"ॐ परमहंसनाथाय नमः स्वाहा, माताजी, धीरे-धीरे चलें, यदि नहीं चलें तो भवदीय चक्राधिपतिकी शपथ है स्वाहा" (दूसरा मंत्र) माता धीरे-धीरे चलने लगीं, सभी स्त्रियाँ हँसने लगीं।

'आपके, भरतेश्वरकी शपथ है, इस आसनपर बैठ जाइये स्वाहा' स्त्रियाँ हँसती हुईं हाथ जोड़ रही थीं, यशस्वती उस आसनपर चढ़कर बैठ गईं।

"माताजी ! भवदीय बड़े बेटेकी शपथ है, भरतेश्वरके बड़े बेटेकी शपथ है, मेरे छोटे बेटेकी शपथ है, आपके छोटे बेटेकी शपथ है आप स्वस्थ बैठी रहें, ठः ठः स्वाहा"।

ऊपरके शब्दोंको पुत्र व भाइयोंको बुलाते समय प्रेमसे भरतेश्वर प्रयोग करते थे। भरतेश्वरके मन्त्रको देखकर एकदम सबलोग हँस गये, यशस्वती भी हँसती हुई कहने लगी कि बेटा ! बहुत अच्छा मंत्र सीखे हो ? क्या अब किसीकी शपथ नहीं रही ?

भरतेश्वरने कहा कि नहीं ! नहीं ! अब आप विराजे रहें। अर्ककीर्तिसे कहा कि बेटा ! देखा ! मंत्रके सामर्थ्यको ? सब पुत्रोंने हँसते हुए कहा कि पिताजी ! आपके मंत्रको हमने देखा सचमुचमें आश्चर्यकी बात है। अर्ककीर्तिने अपने दुपट्टेको भरतेश्वरके चरणोंमें रखकर इस प्रसंगमें नमस्कार किया। आदिराजको आदि लेकर बाकी सभी पुत्रोंने अपने उत्तरीय वस्त्रोंको चरणोंमें रखकर नमस्कार किया। अपने बड़े भाइयोंको देखकर गुणराज नामक छोटे बालकने अपने पहने हुए शर्टको निकालकर वहाँ रखकर नमस्कार किया। गुरुराज नामक बालकके शरीरपर शर्ट भी नहीं था। उसने अपने दासीके हाथसे एक हाथरुमालको छीनकर उसे रखकर नमस्कार किया। सबको आश्चर्य

हुआ। इतनेमें सखराज नामक छोटा बच्चा आया। उसने हाथमें लिए हुए गिल्ली डंडेको वहाँ रखकर नमस्कार किया सब लोग हँसने लगे। सुखराज नामक बालकने उसके आधे खाये हुए केलेको रखकर नमस्कार किया।

इस प्रकार सभी पुत्रोंके नमस्कार करनेपर रानियोंसे भरतेश्वरने प्रश्न किया कि इस प्रकार पुत्रोंके नमस्कार करनेका क्या कारण है? तब देवियोंने कहा कि हम नहीं जानती हैं। "क्या सचमुचमें आप लोग नहीं जानती हैं? तुम्हारी सासुके चरणोंकी शपथ? भरतेश्वरने कहा। "इसमें शपथकी क्या जरूरत है? पिताके चरणोंमें नमस्कार करना क्या पुत्रोंका कर्तव्य नहीं? इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?" रानियोंने कहा। "तब इन छोटे बच्चोंने क्या समझकर नमस्कार किया होगा?" भरतेश्वरने पुनः पूछा। बड़े भाईने नमस्कार किया, इसलिए सब लोगोंने नमस्कार किया। यह सब बड़े भाई अर्ककीर्तिकी महिमा है! रानियोंने कहा। यह गलत बात है! आपलोग अपने बड़े बेटेकी प्रशंसा करती हैं। बस! और कोई बात नहीं, इस प्रकार भरतेश्वरने कहा।

यशस्वतीने बीचमें ही कहा कि बेटा! तुम विवेकी हो, इसलिए तुम्हारे पुत्र भी तुम्हारे ही समान हैं और कोई बात नहीं।

माताजी! उन्होंने अपने बड़े बेटेकी प्रशंसा की तो आपने अपने बड़े बेटेकी प्रशंसा की, यह मुझे पसन्द नहीं आई! यह सब भरतेश्वरकी माताकी महिमा है, और कोई बात नहीं है। भरतेश्वरने कहा।

इस बातको वहाँ उपस्थित सर्व रानियोंने, पुत्रोंने स्वीकार किया, सभी पुत्रोंको एक-एक दुपट्टा मँगाकर दिये।

यशस्वतीने कहा कि बेटा! तुम यह सब क्या कर रहे हो? बचपन अभी तुम्हारी गई नहीं! यह एकान्त अभी नहीं रहा! लोकान्त हुआ। इसलिए अभी यह कार्य मत करो।

माताजी! आपके सामने मैं बच्चा ही हूँ, राजा नहीं हूँ। यदि यहाँपर बच्चोंसा व्यवहार न करूँ तो और कहाँ करूँ? बाकी स्थानमें गौरवसे रहना चाहिए इस बातको मैं जानता हूँ। भरतेश्वरने कहा फिर मन्त्रके बहानेसे मुझे फँसाया क्यों? क्या वही मन्त्र था? माताने कहा।

क्या मेरे पास मंत्रसामर्थ्य नहीं है? देखियेगा। अच्छा! सौ औरतें एक पंक्तिमें खड़ी हो जायें। इस प्रकार कहते हुए सौ दासियोंको एक

पंक्तिमें खड़ा कर दिया। भरतेश्वरने अपनी जीभ थोड़ीसी हिलाई तो वे सबके सब ऊपरकी महलमें जाकर बैठ गईं। फिरसे मन्त्र किया पुनः नीचे आकर बैठ गईं। सब स्त्रियोंको आश्चर्य हुआ।

माताजी ! इस भूमंडलको इधर-उधर करनेका मंत्र मेरे पास है। क्योंकि मैं गुरु हंसनाथार्थी हूँ। परन्तु वे सब मंत्र आपके पास नहीं आ सकते। इसलिये मैंने शपथमन्त्रका प्रयोग किया। भरतेश्वरने कहा देखो, ये दासियां मेरे विनोदको देखकर हँस रही हैं। अच्छा ! इनके मुखको टेढ़ा कर देता हूँ, इस प्रकार कहते हुए मन्त्र किया तो उन सौ दासियोंके मुख टेढ़े हुए। पुनः दया कर मन्त्र किया तो सीधे हुए। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? लोकके सभी व्यन्तर उनके सेवक हैं। फिर वे ध्यान-विज्ञानी क्या नहीं कर सकते !

पुनः कुछ सोचकर उन्होंने मन्त्र किया, पासमें खड़ी हुई मधुवाणीका मुख एकदम टेढ़ा हो गया। सबके सामने लज्जासे आकर मधुवाणीने भरतेश्वरके चरणोंमें नमस्कार किया। भरतेश्वरने उसे मन्त्रसे सीधा कर दिया। कहने लगे कि मधुवाणी ! भूल गई, जिस समय मेरा विवाह हो रहा था उस समय तुम कितनी टेढ़ी बोली थी। उसीके फलसे आज तुम्हारा मुख टेढ़ा हो गया। मधुवाणीने लज्जासे कहा कि राजन् ! पहिले टेढ़ी बोली तो क्या हुआ। जब आप साससे मिलनेके लिये गये तब आपकी खूब प्रशंसा की थी तथापि आपने सबके सामने मेरा इस प्रकार अपमान कर ही दिया। भरतेश्वरने उत्तरमें कहा कि पहिले टेढ़ी बातोंको बोली उसके फलसे मुख टेढ़ा हुआ। बादमें प्रशंसा की उसके फलसे सीधा हुआ। अब चिन्ता क्यों करती हो ?

राजन् ! आपने मुझ गरीब दासीपर मन्त्र चलाया। आपके ऊपर भी मन्त्र चलानेवाले देवता मेरे पास हैं। समय आनेपर देखा जायेगा। अभी रहने दीजिए। इस प्रकार मधुवाणीने कहा।

भरतेश्वरने उसे अनेक रत्न व वस्त्रोंको देते हुए कहा कि अच्छा ! रोओ मत ! खुश रहो। इस प्रकार विनोदके बाद सर्व चिन्ताओंको छोड़कर बहुत भक्तिसे माताकी पूजा की। रानियोंने बहुत भक्तिसे आरती उतारी। अपने पुत्रोंके साथ जलगंधाक्षतपुष्पाम्रदीपगुग्गुलफल समूहसे माताकी पूजा कर वन्दना की। कुलपुत्रोंकी रीत कुछ और होती है। पूजनेके बाद सब लोगोंने मंगलासनों पर बैठकर भोजन किया। इससे अधिक और क्या वर्णन करें ? भरतचक्रवर्तीके भवनका भोजन सुरलोकके अमृतभोजनके समान है। उसे वर्णन करनेमें देरी

लगेगी। इसलिये सब लोग उस अमृतान्नको सेवनकर तृप्त हुए, इतनी बातें कहनेसे सभी विषयोंका अन्तर्भाव हो जाता है।

विनोदसे सबको तृप्ति हुई थी, पूजनमें तृप्ति हुई, भोजनमें भी तृप्ति हुई। सबने हाथ धो लिया, यह सब माताके आगमन की खुशी है। क्या विचित्रता है? प्रतिसमय आनन्द ही आनन्द भरतेश्वरके भवनमें छाया हुआ रहता है। दिन-दिनमें, समय-समयमें नूतन आनन्द-मय भावोंको वे धारण करते हैं। इसका कारण क्या है! माताका दर्शन उन्हें अचिन्तित रूपसे हुआ। कितनी भक्ति! कितना आनन्द! वे सदा उसी प्रकारकी भावना करते रहते हैं।

हे परमात्मन्! तुम बात-बातमें, क्षण-क्षणमें, नये व नूतन आनन्दके भावोंको उत्पन्न करते हो। सचमुचमें तुम सातिशयस्वरूप हो, अमृत-निकेतन हो! इसलिये मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! तुम मंगलाचार्य हो! मंदरधैर्य हो, भव्यांत रंगैक-गम्य हो! सुसौम्य हो! संगीतरसिक हो, चिद्घनलिंग हो, हे निरंजन-सिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वरके हृदयमें समय-समयमें नव्य व दिव्यसुखके तरंग उठते रहते हैं।

इति अंबिकादर्शनसंधि.

--:o:--

अथ कामदेव* आस्थानसंधि

माताके दर्शन पर भरतेश्वर परमसंतुष्ट हुए। दूसरे दिन प्रस्थान भेरी बजाई गई। सेनाने आगे बहुत वैभवके साथ प्रस्थान किया। सेनाके आगे चंद्रध्वज, सूर्यध्वज आदिके साथमें चक्ररत्न जा रहा था। देखते समय ऐसा मालूम हो रहा है कि साक्षात् सूर्य ही चल रहा हो।

आठ दस मुक्कामको तय करते हुए पौदनपुरके पाससे जिस समय चक्रवर्तीकी सेना जा रही थी एकदम वह चक्ररत्न रुक गया। उस चक्ररत्नका नियम है कि जिस राज्यमें चक्रवर्तीके भक्तराजा हैं वहाँ तो आगे बढ़ता है और जहाँका राजा चक्रवर्तीके लिए अनुकूल नहीं है

*आस्थान नाम दरबारका है।

वहाँ वह आगे बढ़ नहीं सकता है, चक्रके एकदम रुकनेसे सबको आश्चर्य हुआ।

भरतेश्वरने मंत्रीको बुलाकर पूछा कि मंत्री ! चक्ररत्न क्यों रुक गया ? उत्तरमें मंत्रीने कहा कि आपके छोटे भाई बाहुबलि आदिके आकर नमस्कार करनेकी जरूरत है। इसलिये वह रुक गया है।

सेनाको वहींपर मुक्काम करनेके लिये आदेश दिया। बादमें बाहु-बलिको छोड़कर बाकी भाइयोंको भरतेश्वरने विजयपत्र भेजा व सूचित किया कि आप लोग आकर मुझसे मिले व मेरी आधीनताको स्वीकार करें। उन भाइयोंको पत्र देखकर दुःख हुआ। राज्यके लोभका उन्होंने परित्याग किया। उनके मनमें विचार आया कि जब हमारे पिताके द्वारा दिये हुए राज्य हमारे पास हैं तो फिर हमें दूसरोंके आधीन होकर रहनेकी क्या आवश्यकता है ? उत्तरमें कुछ न बोलकर सीधा कैलाश-पर्वतकी ओर गए। वहाँपर पूज्य पिता श्री आदिप्रभुके चरणोंमें दीक्षित हुए।

९३ सहोदरोंने एकदम दीक्षा ली यह सुनकर भरतेश्वरको मनमें दुःख हुआ, साथ ही उनके स्वाभिमान व वीरतापर गर्व भी हुआ। अब बाहुबलिको बुलानेका विचार कर रहे हैं। सबके पत्रमें यह लिखा था कि आप लोग आकर मेरी आधीनताको स्वीकार करें। इसलिए वे दीक्षित होकर चल गये। अब बाहुबलिको उस तरह लिखना उचित नहीं होगा। बहुत ऊहापोहके बाद यह निश्चय हुआ कि सर्व कार्यमें कुशल दक्षिणांकको वहाँपर भेजा जाय। सम्राट्ने दक्षिणांकको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम पौदनपुरमें जाकर किसी उपायसे बाहुबलिको यहाँ लेकर आओ। दक्षिणांकने भी तथास्तु कहकर पौदनपुरके अन्दर प्रवेश किया। साथमें अनेक गाजेबाजे परिवारको लेकर गया। बहुत वैभवके साथ आ रहा है। उसकी जो स्तुति कर रहे हैं उनको अनेक प्रकारसे इनाम देते हुए, सबको संतुष्ट करते हुए आगे बढ़ रहा है। उसे किस बातकी कमी है ? चक्रवर्तीके खास मित्रोंमेंसे वह दक्षिण है।

गाजेबाजेके शब्दोंको बन्दकर कामदेवके नगरकी शोभाको देखते हुए दक्षिणांक महलकी ओर जा रहा है। नगरमें जहाँ देखो वहाँ भोगांग ही दिख रहे हैं वहाँके नगरवासी भोगमें मग्न हैं। उनकी वृत्तिको देखनेपर मालूम होता है कि भोगके सिवाय अन्य पाठ ही उनको मिला नहीं है।

कहीं गुलाबजलके लोटे भरे रखे हैं तो कहीं कपूरकी राशि दिख

रही है। कहीं कस्तूरीके पहाड़ ही दिख रहे हैं, कहीं फल है, तो कहीं भक्ष्य-भोज्य दिख रहे हैं। कोई आपसमें बोलते हैं तो भी भोगकी ही बात। वही चर्चा। स्त्रियोंका ही विचार। सारांश यह है कि नगरमें सर्वत्र भोगांग ही नजर आ रहा था। योगांग नहीं। सर्वत्र अनुराग दृष्टिगोचर होता था वैराग्य नहीं। क्योंकि वह कामदेवकी ही तो राजधानी थी।

इस प्रकार अनेक मोहल्लोंको देखते हुए दक्षिणांक आदि कामदेव बाहुबलिकी राजमहलकी ओर आये। अपने साथके सेवक व परिवारको रोककर वह अकेला ही राजमहलके द्वारपर पहुँचा। मोतीसे निर्मित दरवाजा था। द्वारपालकको सूचना दी कि अन्दर जाकर बाहुबलि राजाको खबर दो। वह चला गया। बाहुबलिकी दरबारमें उस समय अनेक सुन्दर स्त्रियाँ जा रही थीं। उनके हावभावोंको देखते हुए दक्षिणांक वहाँपर खड़ा था।

कोई स्त्री कामदेवके लिये पुष्पमाला लेकर जा रही थी। जाईकी माला तो कोई मल्लिकाकी माला। कोई कुंकुमचूर्णको तो कोई गुलाबजलको लिये हुई थी। कोई चन्दनको ले जा रही है, कोई केतकी पुष्पको ले जा रही है; कोई वीणाको लेकर जा रही है साथमें उसके स्वरको ठीक करती हुई जा रही है। उसका ध्यान इधर-उधर बिलकुल नहीं है। किसी स्त्रीके हाथमें किन्नरि है। कोई यन्त्र वाद्यको ली हुई है। इस प्रकार तरह-तरहके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर अनेक अलंकारोंसे लोकको मोहित करती हुई अनेक स्त्रियाँ ऐंठसे आ रही हैं। कोई स्त्री उसकी चेष्टासे कह रही है कि मैं यदि अपने हाथसे एक दफे प्रियंगुवृक्षको स्पर्श करूँ तो वह एकदम फल और फूलको छोड़ता है, फिर इतर विट पुरुषोंकी बात ही क्या है? दूसरी कहती है कि मेरे आलिंगन देने पर कुरवक वृक्ष एकदम पल्लवित होता है, फिर पुरुषोंको रोमांच हो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? तीसरी कहती है कि चित्तत्वके अनुभवसे शून्य तपस्वी तो मेरे पैरके आभूषण हैं बाकी लोगोंकी बात ही क्या है? अन्दर आत्मसुख और बाहर स्त्रीसुख इसे छोड़कर बाकी कोई भी चीज संसारमें नहीं है। इस प्रकार बाहुबलिका तत्व है। इसका वर्णन उनमेंसे कोई स्त्री कर रही थी। इन सब बातोंको देखते हुए दक्षिणांक बहुत देरसे उसी दरवाजे पर खड़ा है।

इतनेमें वह द्वारपालक आया। दक्षिणांक समयसे पहिले ही तुम आ

गये । इसलिये थोड़ीसी देरी हुई कदाचित् तुम्हारी उपेक्षाकी ऐसा मत समझो। स्वामी दरबारमें विराजे हैं। तुम्हारे आगमन समाचारको सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने तुमको अन्दर ले आनेकी आज्ञा दी है। यह कहते हुए वह सिपाही दक्षिणांकको अन्दर ले गया । सोनेसे निर्मित दरवाजे, सोने की दीवार, रत्नसे निर्मित खंबे, कस्तूरीका लेपन आदियोंको देखते हुए दक्षिणांक अन्दर आ रहा है। कहीं-कहीं पिंजरेमें तोते लटके हुए दक्षिणांकको देखकर बोल रहे थे, "कौन है ? दक्षिणांक ! पंचशरके दर्शनके लिये आया है ? भरतेश कहाँ है ? यह क्यों आया है ?" इस प्रकार वे तोते बोल रहे थे।

दूसरी जातिके पक्षी बोल रहे थे कि शायद भरतेशका मित्र होनेसे गर्व होगा। परन्तु यह कामदेवका दरबार है, जरा झुककर विनय से आओ।

बाणपक्षी बोल रहा है कि कोई कवि वगैरहको न भेजकर भरतेशने चतुर दक्षिणांकको भेजा है, भरतेश सचमुचमें बुद्धिमान् है।

एक कबूतर बिलकुल दक्षिणांकके मुखपर ही आकर बैठ रहा था। दक्षिणांकने गड़बड़ीसे हाथसे उसे भगाया, तब वहाँ की स्त्रियाँ एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

इस प्रकार दक्षिणांक कामदेवके आस्थान की सभी शोभाओंको देखते हुए आगे बढ़ रहा था, इतनेमें सिंहासनपर विराजमान बाहुबलिको देखा। उसके पीछेसे परदेके अन्दर आठ हजार उसकी स्त्रियाँ बैठी हुई हैं, सामनेसे मंत्री सेनापति आदि बैठे हैं और बाकी परिवार हैं। बाहुबलि अपने सौंदर्यसे सबको मोहित कर रहा था। स्वाभाविक सौंदर्य, भरतवानी, अनेक अलंकार आदियोंसे तीन लोकमें अपने वैशिष्ट्यको सूचित कर रहा था। उसके रूपको देखते ही वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसे रोमांच होना ही चाहिये। आठ स्त्रियाँ इधर-उधरसे खड़ी होकर चामर ढाल रही हैं। बाकी स्त्रियाँ पंखसे हवा कर रही हैं। कोई तांबूल लेकर खड़ी है तो कोई जल लेकर खड़ी है। उस दरबारमें किसी स्त्रीके हाथमें कोयल है तो किसीके हाथमें तोते हैं। ऐसी वेश्या स्त्रियोंसे वह दरबार एकदम भर गया था।

गायनको सुनते हुए अपने मित्रोंके साथ विनोदव्यवहारको करते हुए बाहुबलि आनन्दसे सिंहासनपर विराजमान है।

दक्षिणांकको देखकर वेत्रधरनने जोरसे उच्चारण करते हुए बाहुबलिको सूचना दी कि हे कामदेव ! नरसुर नागलोकको उन्माद करने-

वाले राजन्! चिन्मार्गचक्रवर्तीका मित्र आ रहा है। दाक्षिण्यपर है, क्षत्रिय है। अनेक कलाओंमें दक्ष है। स्वामिकार्यमें हितकांक्षण करनेवाला है। यह दक्षिणांक आ रहा है, स्वामिन्! जरा इधर देखें।

बाहुबलि अब दक्षिणांकके आगमनको देखते हुए गम्भीरतासे बैठ गये। दक्षिणांकने पासमें आकर बाहुबलिके चरणोंमें एक कमलपुष्पको रखकर साष्टांग नमस्कार किया।

"चक्रेशानुज! नरसुरनागभूचक्रमोहनमूलकर्ता! चक्रवाकध्वज! ते नमो नमः" कहते हुए उठ खड़ा हुआ। साथ ही नागर आदि अपने मित्रोंकी और बुद्धिसागर मन्त्रीकी भेंटको भी समर्पणकर नमस्कार किया। बाहुबलिने हँसते हुए उसे पासमें ही एक आसन दिलाया। वह उसपर हर्षसे बैठ गया। दरबारमें एकदम निस्तब्धता छा गई। सब लोग इस प्रतीक्षामें थे कि दक्षिणांक क्या समाचार लेकर आया है।

उस निस्तब्धताको भंग करते हुए बाहुबलिने प्रश्न किया कि दक्षिणांक! कहाँसे आये? और अपने स्वामीको कहाँ-कहाँ फिराकर ले आये?

राजन्! मैं कहाँसे आया हूँ, आपके दर्शन करनेका पुण्य जहाँसे आया वहाँसे आया हूँ। स्वामीको फिरानेका सामर्थ्य किसके हाथमें है? जो जगत्को ही अपनी चारों ओरसे फिराता है ऐसे कामदेवके अग्रजको इधर ले जानेका सामर्थ्य किसके पास है?

दक्षिणांक! तुम, नागर, सेनापति व मंत्री आदि मिलकर तुम्हारे राजाको क्या कर रहे हैं? एक जगह उसे रहने नहीं देते। तुम्हारे राजाने जो कुछ भी किया, चाहे वह अच्छा हो या बुरा उसकी प्रशंसा करते हो। सब दुनियामें उसे फिराके लाये। शाबास! इस प्रकार बाहुबलिने कहा।

राजन्! आप यह क्या कहते हैं? हम लोगोंने प्रशंसा की तो क्या आपके भाई फूलनेवाले हैं! उत्तरमें दक्षिणांक कह रहा था बीचमें ही बात काटकर बाहुबलिने कहा कि जाने दो इस बात को! मैंने यों ही विनोदसे कहा। बुरा मत मानो। आगे हँसते हुए कहने लगे कि दक्षिण! जगह-जगह जाकर गरीबोंसे हाथी, घोड़ा, रत्न आदि लूटकर आये न? बेचारोंको खूब तंग किया न?

उत्तरमें दक्षिणने कहा कि राजन्! गरीब कौन है? ये व्यंतर और विद्याधर गरीब हैं? म्लेच्छोंके पास किस बातकी कमी है? समुद्रमें, पर्वतोंमें गंगा और सिंधुकी शक्तिको पाकर वे बहुत समर्थ हो चुके हैं।

उनके पास कौन मांगने गये थे ? भेरीके शब्दको सुनकर वे स्वतः घबराकर आये और भक्तिसे भेंट समर्पण किया था। उन्होंने जो कुछ भी भेंटमें दिया उससे दुगुना-चौगुना तुम्हारे भाईने उनको दिया है। जिसके हाथमें चिंतामणिरत्न मौजूद है वह क्या किसी वस्तुकी अपेक्षा से दिग्विजयके लिये जाता है ? दुष्ट राजाओंको शिक्षा देकर निग्रह करनेके लिये एवं शिष्टोंकी रक्षा कर अनुग्रह करनेके लिये गये। वस्तुओंकी बात ही क्या ? अपने स्वतःकी अनेक उत्तम कन्याओंको लाकर हमारे राजाके साथ उन लोगोंने विवाह किया। सबको उत्तम वस्तुको ही प्रदान किया। बाकी चीजोंका क्या कहना ? उनका भी भाग्य बड़ा है। कन्याओंके देनेके निमित्तसे सम्राट्की महलको जाने योग्य हो गये ? यह सबको कहांसे नसीब हो सकती है ? हमारे राजा को देखकर कितने ही चतुर हुए। कितने ही व्रती हुए। गतिमतिशून्य व्यक्ति गतिमतिको पाकर सुखी हुए। उनके शृङ्गार, उनके साहित्य, संगीत आदिका कहांतक वर्णन करें ? सम्राट्को देखनेपर जंगलके प्राणियोंके समान वे घबराकर चलते हैं। बहुतसे बुद्धिमान् होकर उनके साथ ही रहते हैं। कितने ही लोग चले गये। इस प्रकार कामदेवके अग्रजका कहांतक वर्णन करूं ?

बाहुबलि बीचमें ही कहने लगा कि क्या यह कहना कोई बड़ा भारी सामर्थ्य है कि दूसरे उसे देखकर चतुर बन गये। दूसरोंको चातुर्य सिखाना कोई शक्तिका काम है ?

दक्षिणांक कहने लगा कि स्वामिन् ! मैंने उनके सद्गुणोंका वर्णन किया। अब उनकी सामर्थ्यकी बात सुनिये। सामनेकी सेनाके ऊपर अधिक शस्त्रास्त्र चलानेकी उनको आवश्यकता ही नहीं पड़ी। एक ही बाणपर पूर्वसमुद्रके अधिपति महान् प्रभावशाली मागधामरको बुलाया। विजयार्ध पर्वतके वज्रकपाटको फोड़नेके लिए एक ही मार काफी हो गई थी, दूसरी बार हाथ भी लगाना नहीं पड़ा एकदम फट गया। अग्नि एकदम भड़क उठी। घोड़ेने १२ छलांग मारा। सम्राट् जरा भी विचलित नहीं हुए। देवोंने पुष्पवृष्टि नहीं की। एक ही प्रहारसे विजयार्ध कम्पित हुआ। सब लोग घबराकर चिल्लाये। म्लेच्छोंने व विद्याधरोंने अपने आप लाकर भेंट दिया। घोर वृष्टि बरसाकर दो भूतोंने कष्ट देना चाहा। परंतु सम्राट्के सेवकोंने ही उनको मार भगाया। अंकमालाको लिखानेके लिये पहिलेके एक लेखको उड़ाते समय कुछ भूतोंने उपद्रव मचाना चाहा, परंतु अपने सेवकोंसे उनके दांत गिराये।

वे भाग गये। राजन्! विशेष क्या? हमारे राजा हिमवान् पर्वतकी उस ओर भी राज्यसाधनके लिये जा रहे थे, हम लोगोंने समझाकर रहित किया। उनके साहसको लोकमें सामना कौन कर सकते हैं? यम, दैत्य, असुर कोई भी समर्थ नहीं है। लीलामात्रसे इस भूमिको वशमें कर लिया। आश्चर्य है! पुष्पबाणसे तीन लोकको वश करनेवाला छोटा भाई, अपनी वीरतासे व सेवकोंसे राजाओंके मदको दूर करनेवाला बड़ा भाई, आप दोनोंकी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन है? आप लोग सर्व श्रेष्ठ हैं, यह कहनेकी क्या जरूरत है। आप लोगोंकी सेवा करनेवाले हम लोग भी उसी वजहसे लोकमें बड़े कहलाते हैं। मैं क्या गलत कह रहा हूँ? चक्रवर्ती व उनके भाई कामदेवकी बराबरी करनेवाले कौन है? आप लोगोंकी चरणसेवासे हम लोग धन्य हुए। वहाँ बैठे हुए सभी लोगोंने कहा कि बिलकुल ठीक बात है। बाहुबलिने प्रणयचंद्र मंत्रीसे कहा कि मंत्री! दक्षिणांकके चातुर्यको देखा? किस प्रकार वर्णन कर रहा है। मंत्रीने उत्तर दिया कि स्वामिन्! उसने ठीक तो कहा। आप लोगोंमें जो गुण हैं, उसीका उसने वर्णन किया है। तुम बहुत दक्ष हो, उसी प्रकार तुम्हारे बड़े भाई भी श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं, इसमें उपचारकी क्या बात हुई? तुम दोनोंका वर्णन सूर्य चन्द्रके वर्णनके समान है। चक्रवर्तीके मंत्री व मित्रोंने भी तुम्हें आदरके साथ भेंट भेजा है। इसीसे उनके सद्गुणोंका पता लगता है।

आजका दरबार बरखास्त करें और दक्षिणांकको आज विश्रांति लेने दीजिये। कल उसके आनेके कार्यका विचार करेंगे। इस प्रकार मंत्रीने कहा। बाहुबलिने भी दक्षिणांकको रहनेके लिए स्वतंत्र व्यवस्था व भोजन वगैरहके लिये आराम करनेकी आज्ञा दी। तब वे मंत्री, मित्र आदि कहने लगे कि जब हमारे घर हैं तब स्वतंत्र अलग व्यवस्था की क्या जरूरत है? भरतेश आते तो आपकी महलमें उतरते। उनके मित्र आते हैं तो उनको हमारे यहाँ ही उतरना चाहिये। ये कब आनेवाले हैं? हमें इनका सत्कार करने दीजिये। इत्यादि उन मंत्रीमित्रोंने कहा। दक्षिणको सत्कार कर, उसके परिवारको भी सत्कार करनेके लिए मंत्रीको आज्ञा देकर बाहुबलि दरबारसे महलकी ओर रवाना हुए। दरबारसे सभी चले गये। दक्षिणने पौदनपुरके मंत्रीके आतिथ्यको स्वीकार किया। वह विवेकी विचार कर रहा था कि ये मंत्री वगैरह मेरी तरह हैं, परंतु भुजबलि मात्र भिन्न विचारका है। देखें क्या होता है?

भरतेश्वरके वीरयोगमें थोड़ीसी बाधा उपस्थित होनेपर भी उनकी आत्मामें अधीरताका संचार नहीं हुआ है। वे अपनी आत्मामें अविचल होकर वस्तुस्थितिको देखते हैं। वे विचार करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! तुम अखिल वीरानुयोगको देखते हो, परंतु उससे तुम भिन्न हो, निर्मलस्वरूप हो, मोक्ष जाने तक दृष्टि व मन भरकर मैं तुमको देख लूं। तुम मुझे छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना। यही हार्दिक इच्छा है। हे सिद्धात्मन् ! तुम्हें न माता है, न पिता है, न कोई भाई हैं, न बंधु हैं। आदि भी नहीं है, अंत भी नहीं है, कोई भी कष्ट तुम्हें नहीं है, जन्म भी नहीं, मरण भी नहीं है। हे निरघ ! निर्माय ! निरंजन-सिद्ध ! सन्मति प्रदान कीजिए।

इति कामदेवास्थानसंधि.

—:०:—

अथ संधानभंगसन्धि

बाहुबलिके मन्त्री व मित्रोंको अपने आनेके कारणको कहकर एवं उनके अपने अनुकूल बनकर दक्षिणांक बाहुबलिसे बोलनेके लिए दरबारमें पहुँचा। बाहुबलिने दक्षिणांकको देखकर प्रश्न किया कि दक्षिण ! तुम किस कार्यसे आये हो ? बोलो। उत्तरमें हाथ जोड़कर दक्षिणांकने बड़ी नम्रताके साथ निम्नलिखित प्रकार निवेदन किया।

"स्वामिन् ! बड़े स्वामीके अनुज ! मेरे छोटे स्वामी ! सौंदर्यशालिन ! मेरे निवेदनको कृपया सुनें। सम्राट्को जब समस्त पृथ्वी साध्य हुई, तब मार्गमें उन्होंने श्रीपिताजीका दर्शन किया। तदनंतर भाग्यसे माताका भी दर्शन हुआ, फिर उनको अपने छोटे भाईको देखनेकी इच्छा हुई। हमसे उन्होंने गुप्तरूपसे पूछा था कि मेरे भाईको देखनेका क्या उपाय है ? तब हम लोगोंने कहा कि राजन् ! जैसे तुम्हारे मनमें छोटे भाईको देखनेकी इच्छा हुई है, उसी प्रकार तुम्हारे छोटे भाईके मनमें भी तुम्हें देखनेकी इच्छा हुई होगी। तब सम्राट्ने कहा उसको सुखसे रहने दो। वह सुखसे पला है, पिताजीने भी उसे बहुत प्रेमसे पाला-पोसा है। मेरी काकीका वह एकाकी बेटा है। इसलिए उसे कष्ट क्यों देना ? सुखसे रहने दो ! अपन जब अयोध्यापुरमें पहुचेंगे तब माताजी काकीको बुलवायेंगे तब बाहुबलि भी आ जायेगा। तभी काकीको व उसे देख लेंगे। तब हम लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि

"स्वामिन् ! अयोध्यापुरमें आयेंगे तो आप लोग महलमें बातचीत करेंगे। इसलिए हम लोगोंको सुननेमें नहीं आयेगी। यदि इस प्रकार बहिरंगमें आयेंगे तो हम लोग भी आप दोनोंको देखकर संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए पौदनपुरके पाससे जाते समय उनको बुलवावें। हम लोग छोटे व बड़े स्वामीका दर्शन एकसाथ कर संतुष्ट होंगे। तब भरतेश्वरने उसे सम्मति दी। अब वह स्थान दूर नहीं है पौदनपुरके बाहर ही आपके बड़े भाई हैं। वहाँतक आप पधारकर हम लोगोंकी आँखोंको तृप्त करें" इस प्रकार कहते हुए दक्षिणांक ने साष्टांग नमस्कार किया।

बाहुबलि—दक्षिण ! उठो ! उठो ! बैठकर बात करो। आप लोग निश्चिंत होकर अपने नगरकी ओर जाएँ। मैं कल ही आकर अयोध्यामें अपने भाईसे मिलूँगा।

दक्षिण—स्वामिन् ! उससे आप दोनोंको सन्तोष होगा, यह निश्चय है। तथापि सबकी इच्छाकी पूर्तिके लिए सम्राट्ने सेनाका मुक्काम कराया। इसलिए अब हम लोगोंकी प्रार्थना स्वीकार होनी चाहिए। सम्राट् मेरुपर्वतके समान खड़े हैं। आप यदि वहाँ पहुँचे तो दो मेरु एकत्रित होते हैं, उससे दोनोंका गौरव है। नहीं तो राजगम्भीरतामें कुछ न्यूनता हो सकती है। व्यंतर, विद्याधर व राजालोक बहुत आशासे आप दोनोंका एकत्र दर्शन करनेकी आतुरतामें खड़े हैं जब उनको मालूम होगा कि आप नहीं आ रहे हैं तब वे खिन्न नहीं होंगे ? इसलिये हे कामदेव ! आप लोकानन्द करनेवाले हैं। इसलिए इस कार्यमें भी आप लोकके लिए आकुलता उत्पन्न न करें। अवश्य पधारें !

बाहुबलि--दक्षिण ! मैं आनेके लिए तैयार हूँ ! परन्तु मुझे यहाँ पर कोई आवश्यक कार्य है, इसलिये अभी आना नहीं हो सकेगा। इसलिये कोई उपायसे भाईको तुम अयोध्याकी तरफ ले जाओ। मैं फुरसतसे उधर आता हूँ।

दक्षिण—नहीं ! स्वामिन् ! नहीं ! ऐसा नहीं कीजियेगा। आपके बड़े भाईको देखकर, आप दोनोंके विनोद-विलासको जिन सेनाओंने आज तक नहीं देखा है उनके मनको सन्तुष्ट कीजियेगा। विरस उत्पन्न करना क्या उचित है ? भरतेश्वर सदृश बड़े भाईको देखनेसे बढ़कर और महत्वका कार्य क्या हो सकता है ! इसलिये हाथ जोड़कर मेरी विनती है कि आप इसमें कोई बहानाबाजी न करें।

बाहुबलि—दक्षिण ! तुम तो किसी उपायसे अपने आये हुए कार्यको साधन करना चाहते हो, परन्तु मैं तो अपने कार्यके महत्वको देखता हूँ।

दक्षिण—स्वामिन् ! आपके कार्यमें हानि पहुँचाने की बात मैं कैसे कर सकता हूँ ? क्या मैं कोई परकीय हूँ ? आपकी सेवा करना मेरा कार्य है ? इसलिये आप अवश्य पधारें।

बाहुबलि—मैं जानता हूँ कि तुम बड़े चतुर हो, इसलिये बोलनेमें मुझे मत फँसाओ, मैं अभी नहीं आ सकता हूँ, जाओ।

दक्षिण—राजन् ! क्यों बड़े भाईके पास जानेके लिए इस प्रकार कोई निषेध कर सकते हैं ? ऐसा नहीं कीजियेगा।

बाहुबलि—वह अभी हमारे लिये बड़े भाई नहीं हैं। वह हमारा स्वामी है। तुम मात्र इस प्रकार रंग चढ़ानेकी कोशिश मत करो, मैं सब जानता हूँ। सेनाके साथ खड़े होकर एक नौकरको बुलानेके समान बाहुबलिको बुलानेवाला वह भाई है, या मालिक है ? तुम ही सत्य बोलो !

दक्षिण—परमात्मन् ! आप ऐसा बोल रहे हैं ? सभी राजाओंने प्रार्थना कर सभागृहमें ठहराया। चक्रवर्ती स्वयं ठहरनेके लिये तैयार नहीं थे। सचमुचमें हम लोग भाग्यहीन हैं। सर्वश्रेष्ठ चक्रवर्तीको हमने ठहराया। सर्वश्रेष्ठ कामदेवका दर्शन सभी परिवारको करानेकी भावना हमने की। परन्तु हमपर आपको दया नहीं आती। क्या करें ? हमारा दुर्भाग्य है।

बाहुबलि—दक्षिण! मनमें एक रखकर वचनमें एक बोलना यह मेरे व मेरी सेनाके लिये शक्य है ! तुम और तुम्हारे स्वामी ऐसा कभी नहीं कर सकते। झूठे विनयको क्यों बतलाते हो, रहने दो !

दक्षिण—स्वामिन् ! मैंने झूठी बात क्या की ?

बाहुबलि—कहूँ।

दक्षिण—कहियेगा।

बाहुबलि—हाय ! तुम लोग आत्मचिन्तामें मग्न आध्यात्मप्रेमी लोग झूठ कैसे बोल सकते हो, मैं ही भूल गया। जाने दो, उसका विचार मत करो।

दक्षिण—आपसे भी गलती नहीं हो सकती है, हमसे भी नहीं हो सकती है। झूठा व्यवहार क्या है। वह कहियेगा।

बाहुबलि—जाने दो, व्यर्थ किसीको कष्ट पहुँचाना अच्छा नहीं है !

दक्षिण—आपसे किसीको दुःख हो सकता है। कहियेगा।

बाहुबलि—पौदनपुरके बाहर चक्र एकदम रुक गया। इसलिये मुझे आधीन करनेके इरादेसे भरतेशने सेनाका मुक्काम कराया तो तुम आकर मुझपर दूसरी तरहसे रंग चढ़ा रहे हो, आश्चर्य है। तुमने मुझे नहीं कहा। साथमें तुम्हारी बातोंमें आकर मेरे मंत्रीमित्रोंने भी नहीं कहा। परन्तु एक हितैषीने आकर मुझे सभी बातें कह दीं। अब उसे छिपानेसे क्या प्रयोजन? इसलिए अधिक बोलनेकी जरूरत नहीं है।

दक्षिण—स्वामिन्! आप दोनोंका एकत्र सम्मिलन देखनेकी इच्छासे ही चक्ररत्न भी रुक गया। जबकि आप दोनोंको एकत्र देखनेकी इच्छा सभी दुनियाको हुई तो क्या चक्ररत्नको नहीं होगी? उसीसे वह रुक गया।

बाहुबलि—दक्षिण! अन्दरकी बात नहीं जाननेवालोंके पास चातुर्यको दिखाना चाहिये। हमारे पास यह तुम्हारी होशियारी नहीं चल सकती है। चुप रहो, बोलनेके लिये सीखे हो, इसलिये बोल रहे हो क्या? तुम्हारे राजाको इतना अहंकार क्यों? समस्त पृथ्वीके राजाओंने उसको नमस्कार किया, उससे तृप्त न होकर समस्त सेनाओंके सामने मुझसे नमस्कार करानेकी लालसा उसके मनमें हुई है। क्या मैं इस कार्यके लिये आऊँ? खेचर तो प्रेत है, भूचर व व्यन्तर तो भूत है। भूत-प्रेतोंने यदि डरकर उसको नमस्कार किया तो क्या यह कामदेव नमस्कार कर सकता है? उसको आकर मैं नमस्कार क्यों करूँ? मुझे किस बातकी कमी है? पिताजीने मुझे जो राज्य दिया है उसको भोगते हुए मैं स्वस्थ हूँ। इसे देखकर उसे ईर्षा होती है। बड़े-बड़े राज्य तो पिताजीने उसे देकर छोटासा राज्य मुझे दिया है, तो मेरे भाईको संतोष नहीं होता है! आश्चर्यकी बात है!

दक्षिण—राज्यकी क्या बात है? राजन्! सम्राट् अपने समृद्ध राज्योंमेंसे अर्ध राज्यको अपने छोटे भाईको देनेके लिए कभी-कभी कहते हैं। आप ऐसा कहते हैं।

बाहुबलि—रहने दो! तुच्छ हृदयवालोंको बोलनेके समान मुझे मत बोलो।

दक्षिण—स्वामिन्! क्रोधित नहीं होइयेगा। आपके बड़े भाईके गुणोंका श्रेय आपको ही है।

बाहुबलि—रहने दो, मुझे राज्यके लोभको दिखाकर उपायसे

अपने स्वामीको नमस्कार करानेको सोचते हो। क्या। मैं इतने छोटे हृदयका हूँ ? गुणको मैं नमस्कार कर सकता हूँ। परन्तु बड़े भाईके नाते अहंकारसे बुलावें तो क्या मैं नमस्कार कर सकता हूँ। देखो तो सही! तुमको भेजकर बातें बनाकर मुझे ले जाना चाहता है। मेरे भोले जो छोटे भाई थे वे पत्र पाते ही तपश्चर्या करनेके लिए भाग गये। मुझसे वे यदि मिलते तो मैं फिर बड़े कार्यको करके बतलाता। पिताजीके द्वारा दिये हुए राज्योंमें बने रहनेके लिए मेरे सहोदरोंको बड़े भाई बोलता है, साथमें उन्हें अपनी आधीनताको स्वीकार करनेके लिए भी कहता है। शाबास ! भाई शाबास ! उत्तमरानीके पुत्रको एक सामान्य व्यक्तिकी दृष्टिसे देख रहा है। इसलिए मुझे जबर्दस्तीसे बुला रहा है, सचमुचमें भाग्यशाली भाई है। मेरे पिताजीको मेरी माँ व बड़ी माँ दोनों ही रानियाँ थीं। कोई दासी नहीं थीं। परन्तु मुझे नौकर-चाकरोंके पुत्रोंके समान बुला रहा है।

दक्षिण—स्वामिन् ! जब मैं यहाँ आया था, सम्राट्के मंत्री मित्रोंने आपकी सेवामें अनेक प्रकारकी भेंट भेजी थी। फिर आप ऐसी बात क्यों करते हैं ? राजन् ! मैं बोलनेके लिए डरता हूँ। हमारे स्वामी अपने मंत्रीमित्रोंको सामान्य व्यक्तियोंके पास नहीं भेजा करते हैं। हमारे छोटे स्वामीके पास भेजा है, इसलिए आया।

बाहुबलि—ठीक ! इसलिए तुम लोगोंने मुझे फँसाकर ले जाना चाहा, परन्तु यह कामदेव तुम्हारी बातोंमें आकर तुम्हारे स्वामीको नमस्कार नहीं कर सकता। अनेक प्रकारके पत्रोंको भेजकर छोटे भाइयोंको जंगलमें तपश्चर्याके लिए भेजा। परन्तु मुझे देखकर अपने मित्रको मेरे पास मुझे फँसानेके लिए भेजा, मैं अच्छी तरह जानता हूँ। हाय ! झूठे विनयको दिखाकर मुझे डराते हुए फँसानेके व्यवहार को देखकर क्या मेरा हृदय गरम नहीं होगा ? शीतल चंदनवृक्षको भी घर्षण करनेपर उससे अग्नि नहीं निकलेगी ? अवश्य निकलेगी। दक्षिण ! क्षणभरमें जब तुम अपने स्वामीकी तारीफ ही कर रहे हो, उसे देखकर मेरे हृदयमें क्रोध बढ़ता जा रहा है, कोपाग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। व्यर्थ ही मेरे क्रोधका उद्रेक मत करो। बस ! यहाँसे चले जाओ। दक्षिणांककी आँखोंमें आँसू भर गया। उसने फिरसे नमस्कार कर कहा कि स्वामिन् ! क्षमा करो, व्यर्थ ही मैंने तुम्हारे मनको दुखाया, मैं अतिक्रूर हूँ। हम लोग दोनों स्वामियोंको एकत्र देखनेकी इच्छा करते थे। हम लोग अतिपापी हैं। पापियोंकी इच्छायें कभी

सफल होती है ? इस प्रकार कहते हुए वह रोने लगा। स्वामिन् ! मैं कितना दुष्ट हूं, तीन लोककी अमृत जहांसे मिलता है उस मनमें मैंने अग्निज्वालाको पैदा कर दी, दूध जहांसे निकलता है वहां रक्तको उत्पन्न किया। मुझसे अधिक अधम व पापी लोकमें कौन होंगे ? बाहुबलि उसको सांत्वना करते हुए कहने लगे कि दक्षिण उठो ! तुम पापी नहीं हो जाओ। तब दक्षिणांकने उठकर हाथ जोड़ा व जाता हूँ कहकर जाने लगा। तब पास खड़ा हुआ मंत्रीने यह कहकर रोका कि दक्षिण ! जाओ मत, ठहरो। मंत्रीने बहुत विनयके साथ बाहुबलिसे निवेदन किया कि स्वामिन् ! आपके सामने मैं बोलनेके लिए डरता हूं। आपके क्रोधके सामने कौन बोल सकता है ? हे कामदेव ! आप जो आज्ञा देंगे उससे हम बाहर नहीं हैं, इसलिये मेरी विनतीको सुनियेगा। आप दोनों भगवान् आदिप्रभुके पुत्र हैं, यदि आप लोग ही विरस बर्ताव करें तो लोकमें अन्य लोग सरल व्यवहार किस प्रकार करेंगे ! अपने बड़े भाईके पास आप न जाकर अपनी आँख लाल करें तो लोकमें अन्य भाई-भाई तो डंडा लेकर खड़े हो जायेंगे। जो लोग संसारमें मार्ग छोड़कर चलते हैं उनको मार्ग बतलानेका कार्य आप लोग करते हैं। यदि आप लोग ही मार्ग छोड़कर व्यवहार करें तो आपको मार्ग बतलानेवाले कौन ? स्वामिन् ! विचार कीजिये, गुरुको शिष्य, पिताको पुत्र अपने पतिको स्त्री और बड़े भाईको छोटे भाईने यदि नमस्कार किया तो लोकमें बर्सात सस्यादिकी वृद्धि किस प्रकार हो सकेगी। इसके अलावा स्वामिन् ! आप सोचो कि आप और आपके बड़े भाई लोकके अन्य सामान्य राजाओंके समान नहीं हैं। देवलोकको भी अपने गुणोंसे आप लोग मुग्ध करते हो। इसलिये आप लोगोंके इस प्रकारका विचार युक्त नहीं है। मेरे मनमें जो आई उसे निर्वाज्य वृत्तिसे मैंने कहा है। अब आप ही विचार करें। यहां जो मित्र हैं वे क्या नहीं जानते हैं ? तब वहां बैठे बाहुबलिके मित्रोंने एक साथ कहा राजन् ! प्रणयचन्द्र मंत्रीने बहुत उचित कहा। हमारे स्वामीको भी प्रसन्नता होगी। विवेकी स्वामिन् ! लोकमें आप नहीं जानते हैं ऐसी एक भी कला नहीं है। ऐसी अवस्थामें बड़े भाईको नमस्कार करनेके लिए इनकार करना क्या उचित है ? आप ही विचार कर देखें। आपको लोग मृदुचित्तके नामसे कहते हैं। आपके साथ बोलने-चालनेवाले हम लोगोंको चतुर कहते हैं। जब आप इस प्रकार विचार करते हैं तो क्या

अपनी सत्कीर्ति हो सकती है ? क्या आपके बड़े भाई लोकके सामान्य भाइयोंके समान हैं ? और छोटे भाई आप भी सामान्य नहीं हैं। आप दोनों लोकमें अग्रगण्य हैं। आप दोनों मिलकर प्रेमसे रहें तो जगत्का भाग्य और हमें आनन्द है। इसलिए हमारी प्रार्थनाको स्वीकार कीजिए" यह कहते हुए सभी मंत्रियोंने बाहुबलिके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया। तब बाहुबलिने उन्हें उठनेके लिए कहा। तब उन लोगोंने कहा कि हमें वचन मिला तो हम उठेंगे। उत्तरमें बाहुबलिने यह कहा कि मेरी एक दो बातोंको तो सुनो। तब वे उठे।

बाहुबलि--मंत्री व मित्रों! तुम लोगोंको मैं अपना हितैषी समझता था, परन्तु लोगोंने भी मेरे मन और इच्छाके विरुद्ध ही बात की। तुम लोगोंका कर्तव्य तो यह था कि तुम मेरी बातका ही समर्थन करते। देखो तो सही, चक्रवर्तीका मित्र यहांपर आकर चक्रवर्तीकी इच्छानुसार ही बोला। इसको देखकर तो कमसे कम तुम लोगोंको मेरी तरफसे बोलना चाहिए था। परन्तु आप लोग तो मेरे विरुद्ध ही बोले, ऐसा करना क्या आप लोगोंको उचित है ?

इतनेमें वहाँ उपस्थित कुछ स्त्रियोंने आकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! सबकी इच्छाका पालन करना चाहिए। बाहुबलिको क्रोध पहिलेसे चढ़ा हुआ था, परन्तु उस क्रोधका उपयोग मंत्री-मित्रोंके प्रति वे नहीं कर सकते थे। अब वे स्त्रियाँ उनके क्रोधकी बलि बन गईं। आवेशपूर्ण वचनोंसे उन्होंने कहा कि चुपचाप अपने काम करना छोड़कर मुझे ही उपदेश देने आई हो। कलकंठ इन लोगोंकी जरा मरम्मत करो। इस प्रकार आज्ञा मिलनेकी ही देरी थी, कलकण्ठ आदियोंने उन स्त्रियोंको पकड़-पकड़कर मारा पीटा। मलयमारुत व मंदमारुत नामक दो पहलवानोंने उन स्त्रियोंकी खूब खबर ली। घूंसा मारा, चोटी धरकर पटका। सारांश यह है कि उनकी खूब दुर्दशा की गई। उन लोगोंने दीनता से प्रार्थना की कि हम पर दया दिखा दी जाय, आगे हम कभी ऐसा न करेंगी। पहलवानोंने जो उनको मारा, उससे उनको श्वास चढ़ गया, आँखें गिरने लगी, पसीना निकल आया। सब लोगोंने बाहुबलिके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! हमसे भूल हो गई। क्षमा कीजिए। तब बाहुबलिने उनको छोड़नेके लिए कहा, फिर भी क्रोध तो उनके हृदयमें बना रहा। उसीसे वे कहने लगे कि इन स्त्रियोंको ऐसा कहनेकी क्या जरूरत थी ? क्या हमारे नगरमें भोगियोंकी कमी है। भरतेशके नौकरों के प्रति इनकी दृष्टि गई

दिखती है । मदोन्मत्त विटोंके साथ क्रीड़ा करके इनको भी मद चढ़ गया। अब किसी बूढ़ेके साथ इनको कर देना चाहिए । रसिकोंके साथ क्रीड़ा कर ये फूल गई हैं । अब इन्हें जड़विट पुरुषोंके साथ कर देना चाहिए । सभी स्त्रियाँ जिस प्रकार चुप थीं उस प्रकार चुप न रहकर मुझे ही उपदेश देने आई हैं । हा ! यह आश्चर्य है । मूर्ख हूँ ? घर-घरमें सब अकलमंद हुए और मुझे विवेक सुझाने आए, मैं तो बिलकुल मूर्ख ही ठहरा । हा ! कामदेवका कर्म विचित्र है ! जिनसिद्ध ! हंसनाथ ! आप ही देखें । मैं अविवेक से चल रहा हूँ । ये सब विवेककी शिक्षा दे रहे हैं । इत्यादि प्रकारसे क्रोध भरे शब्दोंसे कह रहा था । उन स्त्रियोंके प्रति क्रोधित होनेपर मंत्री आदि भी उस समय उनसे कुछ बोलनेके लिए डर गये । सचमुचमें मंत्री, मित्र आदिके ऊपर बाहुबलिको क्रोध चढ़ गया था । उसका फल उन स्त्रियोंको भोगना पड़ा । इस प्रकार उस समय उस सभामें सब जगह निस्तब्धता छा गई थी । सेनापति गुण-वसन्तक भी सभी बातोंको सुनते हुए दूर बैठा था । बाहुबलिने उसकी ओर देखते हुए कहा कि गुणवसन्तक ! इधर मेरे पास आओ । दूर क्यों बैठे हो ? मेरी बातें नीतिपूर्ण हैं या बेकार हैं ? बोलो, तुम्हारा हृदय क्या कहता है ? उत्तरमें गुणवसन्तकने कहा कि स्वामिन् ! हाय ! आपके वचनोंके संबंधमें कौन बोल सकता है ? वह बिलकुल निर्दोष है । राजांगको व्यक्त करते हुए ही आप बोले, उसमें व्याजांगका लेश भी नहीं था । स्वाभिमानी व्यक्ति दूसरोंके शरणमें क्यों कर जा सकता है ? मारको सर्वश्रेष्ठ (महाराय) कहते हैं । यदि उसने दूसरोंकी आधीनताको स्वीकार कर लिया तो उसे महाराय कौन कह सकते हैं ? आपने बिल-कुल ठीक कहा कि गुणके आधीन मैं हो सकता हूँ । किसीने पराक्रम दिखाया तो उसे मैं नमस्कार नहीं कर सकता । गुणिजन इसे अवश्य स्वीकार करेंगे । गुणवसंतकके वचनोंको सुनकर बाहुबलि प्रसन्न हुए । उन्होंने उसे पास बुलाकर एक रत्नके पदकको इनाममें दिया और कहा कि तुमपर मेरा भरोसा है, जाओ ।

समयको जानकर कलकण्ठ, मन्दमारुत, मलयमारुत, मत्तकोकिल आदियोंने भी कहा कि स्वामिन् ! आपके कार्यकी बराबरी कौन कर सकते हैं ? आप लोकमें सर्वश्रेष्ठ हैं । उनको भी इनाम मिल गया । बाहुबलिने दरबारको बरखास्त करनेका संकेत किया । सब लोग उठ-कर चले गये । कुछ भी नहीं बोलते हुए दक्षिणांक, मंत्री, मित्र आदि वहाँ ठहरे थे । बाकी सभी लोग व स्त्रियाँ, नौकर, चाकर वगै-

रह सबके सब नमस्कार कर वहाँसे चले गये। अब बाहुबलिके पास गुणबसंतक आदि पाँच सज्जन थे। बाकी चले गये थे। कलकण्ठको आज्ञा दी कि उस दक्षिणांकको बुलाओ। कलकण्ठने दौड़कर बाहरके दरवाजेसे उसे बुलाया। दक्षिणांक वापिस लौटते हुए सोच रहा था कि शायद फिरसे बाहुबलिने सोचा होगा। मनमें थोड़ी पुनः शांति हुई होगी। उसने आकर नमस्कार किया।

बाहुबलि —"दक्षिण! सुनो! मैंने समझ लिया है कि तुम्हारे स्वामी अब मुझपर आक्रमण किये बिना नहीं जायगा। परंतु युद्ध यहाँपर नहीं हो, मैं ही जहाँपर आप लोग ठहरे हैं वहाँपर आ जाऊँगा। तुम्हारे स्वामीको षट्खंडको जीतनेका गर्व है, उसे इस कामदेवके साथ दिखाना चाहता हूं। गरीबोंको जैसा फँसाया वैसी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो भुजबलिराजासे सामना करना है। इसलिये सेनाके साथ होशियारीसे रहनेके लिए कह देना। जाओ! यह समाचार अपने स्वामीको सुनाओ।" दक्षिणांक हाथ जोड़कर चला गया। मनमें सोच रहा था कि कर्मगति विचित्र है, मोक्षगामी पुरुषोंको भी वह कष्ट दे रहा है।

बाहुबलिने गुणवसन्तक आदिको आज्ञा दी कि चक्रवर्तीके मनुष्यों-को मेरे नगरमें प्रवेश नहीं करने देना और स्वयं महलमें प्रवेश कर गया।

दक्षिणांकको वापिस बुलानेके बाद बाहुबलिका क्रोध शांत हुआ होगा और उसकी ओरसे कुछ आश्वासन मिलेगा इस आशासे बाहु-बलिके मंत्री-मित्र आदि दक्षिणांककी प्रतीक्षा करते हुए बाहरके दरवाजेपर खड़े थे। दक्षिणने आकर समाचार सुनाया तो उन लोगोंने एक दीर्घनिश्वास छोड़ा। इतनेमें गुणवसन्तक भी वहाँ आया व कहने लगा कि मित्रों! स्वामीके प्रज्वलित कोपाग्नि देखकर उनकी इच्छा-नुसार मैं बोला, आपलोग ख्याल न करें। तब सबने कहा कि तुमने बहुत अच्छा किया। तब मत्तकोकिलादियोंने कहा कि मूकोंके समान रहनेसे राजा क्रोधित होंगे, यह समझकर हम बोले और कोई बात नहीं थी। परन्तु हम लोगोंकी सम्मति तो तुम्हारे साथ ही है। लोकमें अन्न खानेवाले ऐसे कौन व्यक्ति होंगे जो बड़े भाईको नमस्कार करनेके लिए नहीं कहेंगे। सभी लोग यही कहेंगे कि छोटे भाईका बड़े भाईको नमस्कार करना आवश्यक है। फिर बहुत खेदके साथ सब लोग कहने लगे कि दक्षिण! हम लोग चाहते थे ये दोनों भाई एक साथ मिलकर

हमको संतुष्ट करें। हमलोगोंको उन्हें एकत्र देखनेका भाग्य नहीं है। तुमको बहुत कष्ट हुआ, अब जाओ। तुमने जो उपाय किया, मधुर वचनोंका प्रयोग किया उससे पत्थर भी पानी होता, परन्तु कामदेवका मन नहीं पिघला, तुम्हारा इसमें दोष नहीं है, दुःख मत करो! अब मातुश्री सुनंदादेवी बाहुबलिको समझाएगी और क्रोध शांत होनेपर हमलोग भी समझाने की कोशिश करेंगे। यदि कोई अनुकूल वातावरण हुआ तो तुमको पत्र लिखकर सूचित करेंगे। नहीं तो मौनसे रहेंगे। अब तुम जाओ, हमें बहुत इच्छा है कि तुम्हारे सदृश मित्रोंका आदर करें। परन्तु अब हम कुछ भी नहीं कर सकते। क्योंकि तुम्हारा कुछ भी आदर हम लोगोंने किया तो बाहुबलि हमपर क्रुद्ध होंगे। इसलिए अब तुम यहाँसे चले जाओ। दक्षिणांक दुःखके साथ वहाँसे चला गया।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि यह दुष्ट कर्म मोक्षगामी पुरुषोंको भी नहीं छोड़ता है। जिस समय वह उदयमें आता है उस समय वस्तु-स्थितिको विचार करने नहीं देता। कषायवासना बहुत बुरी चीज है। वह मनुष्यका अधःपतन कर देता है। ऐसे समयमें मनुष्यको विचार करना चाहिए।

"हे परमात्मन्! पुद्गल बोलता है, सुनता है पुद्गल, राग और द्वेष भी पुद्गल है। पुद्गलके लिए मनुष्य दूसरोंसे प्रेम व द्वेष करता है। इसलिए मेरे हृदयमें तुम सदा बने रहो ताकि मैं वस्तुस्थितिका विचार कर सकूँ। हे सिद्धात्मन्! तुम सदा दूसरोंको निर्मल उपायको बतलानेवाले हो। आपने अनंतज्ञानसाम्राज्यको पाया है, अतएव निरा-कुलता बसी हुई है। आप ज्योतिर्मय तीव्र प्रकाशके रूपमें है। इसलिए मुझे सदा सद्बुद्धि दीजिएगा ताकि मुझे संसारमें प्रत्येक कार्यमें विवेक-की प्राप्ति हो।"

इति संधानभंगसंधि.

—:o:—

अथ कटकविनोदसंधि

बाहुबलिके मंत्री-मित्रोंसे विदा होकर दक्षिणांक पौदनपुरके नगर से होते हुए सेनाकी ओर जाने लगा। स्वयं वह जिस कार्यके लिए आया था वह कार्य बिगड़नेके उपलक्ष्यमें उसे बहुत दुःख हुआ। इसलिए

मनमें खिन्न होते हुए मौनसे जा रहा है। मुख उसका फीका पड़ गया है। उसे देखकर लोग तरह-तरहकी बातें कर रहे थे।

"कल यह आया उस समय बहुत हर्षके साथ आया था, अब वापिस लौटते समय बड़ी चिंतासे युक्त जा रहा है। सचमुचमें राजाओंकी सेवा करना बड़ा कठिन कार्य है।"

"इसने तो उचित बात कही थी, परन्तु हमारे राजा क्रुद्ध हुए। तथापि यह शिष्ट बहुत शांतिके साथ अपने स्वामीके पास जा रहा है। पर-सेवा करना कष्ट है।"

"यदि किसी कार्यमें सफलता मिली तो अपने राजाके पुण्यसे सफलता मिली ऐसा कहते हैं। यदि कार्य बिगड़ गया तो जो उस कामके लिए उसको दोष देते हैं। पर-सेवाके लिए धिक्कार है।"

"भरत बड़ा भाई है, षट्खंडमें वह एक ही श्रेष्ठ राजा है। उसके साथमें इस प्रकारका व्यवहार क्या बाहुबलिको शोभा देता है?" इत्यादि अनेक प्रकारसे पुरजन बात कर रहे थे। उन सबको सुनते हुए दक्षिणांक इधर-उधर न देखते हुए जा रहा था। सेवकोंने इधर-उधरसे आकर दक्षिणांककी सेवा करना चाहा। परन्तु आँखोंके इशारेसे उनको दूर जानेके लिए कहा। कोई स्तुतिपाठक दक्षिणांककी स्तुति कर रहे थे। उनको मुँह बंद करनेके लिए कहा। कोई सेवक चामर ढाल रहे थे, कोई तांबूल दे रहे थे, उनको उसने रोका। कोई सेवकोंने आकर पालकीपर आरूढ़ होनेके लिए प्रार्थना की, उसके लिए भी इनकार किया। हाथीको सामने लाये तो भी उसे दूर करनेके लिए कहा। घोड़ा दिखाने लगे, परन्तु वह उस तरफ न देखकर मौनसे ही जा रहा था। गुरुसेवा करनेसे च्युत शिष्यके समान, राजाकी सेवामें गलती खाये हुए सेवकके समान बहुत चिंताके साथ वह जा रहा था। किसी तरह वह पौदनपुरके बाहरके दरवाजेपर पहुँचा। वहाँपर फिरसे सेवकोंने प्रार्थना की कि इस तरह पैदल जानेसे स्वामीकार्यमें ही देरी होगी। इसलिए कोई वाहनपर चढ़कर जाना चाहिए। दक्षिणांकको भी उनका कहना ठीक मालूम हुआ। उसी समय एक वेगपूर्ण घोड़ेको मँगानेके लिए आदेश दिया। घोड़ेपर चढ़नेके बाद नौकरोंने उसपर छत्र चढ़ानेकी कोशिश की, उसके लिए उसने इनकार किया। वाद्यघोष करने लगे तो इसने बड़े क्रोधसे उन्हें रोका। बेशर्मो! स्वामीके कार्यमें जीत होनेपर हम लोगोंको महान् आनंदके साथ जाना चाहिए। कन्या तो नहीं है। पाणिग्रहणका केवल मंत्रोच्चारणसे क्या प्रयोजन? साथ

ही दक्षिणांकने यह भी कहा कि मैं जल्दी ही जाकर स्वामीको देखता हूँ। आप लोग सर्व परिवारको लेकर पीछेसे आवें। अपने साथ कुछ विश्वस्त व्यक्तियोंको लेकर दक्षिणांक आगे बढ़ा और बहुत वेगके साथ सेनास्थानपर पहुँचा। अब वह दक्षिणांक बहुत ठाठबाटके साथ नहीं है। अकेला ही खिन्न होकर आ रहा है। सेनास्थानमें पहुँचनेके बाद अपने साथियोंको अपने मुक्कामको जानेकी आज्ञा दी।

उस दिन रात्रिका दरबार था। भरतेश्वरने आदेश दिया कि दरबारमें सबको बुलाओ। इतनेमें एक दूतने आकर दक्षिणांकके आनेका समाचार सुनाते हुए कहा कि स्वामिन्! वह अपने परिवारसे रहित हंसके समान, अथवा पत्तोंसे रहित आमके पेड़के समान आ रहा है। परिवार नहीं, वाद्य नहीं और कोई शोभा नहीं। ८-१० अपने विश्वस्त साथियोंके साथ आया था, उनको डेरेमें भेजकर वह अकेला ही आपके दर्शनके लिए आ रहा है। भरतेश्वर समझ गये, उन्होंने उसी समय दूतको आदेश दिया कि अब इस समय दरबारमें किसीको भी न आने की खबर कर दो। इतनेमें वहाँपर पहिलेसे बैठे हुए मागध, मेघेश्वर आदि उठकर जाने लगे। तब सम्राट्ने कहा कि आप लोग क्यों जाते हैं? यहींपर रहें। आप लोगोंको छोड़कर मुझे एकांत नहीं है। मेरे आठ मित्र, मंत्री व सेनापति ये तो मेरे खास राज्यके अंग हैं। कार्य बिगड़ गया। बाहुबलिके अंतरंगको मैं पहिलेसे जानता था। उसे एक पत्र लिखकर भेज देते तो ठीक रहता। व्यर्थ ही मित्रको भेजकर उसे कष्ट दिया। इतनेमें दक्षिणांक आया। आते समय वह अन्यमनस्क व खिन्नमनस्क होकर आ रहा है। किसी बच्चेको कोई खास चीज खोने पर वह जिस प्रकार दुःखसे अपने पिताके पास आता हो उसी प्रकार उसकी उस समय हालत थी। मुख कुंद था, शरीरमें भी कोई उत्साह नहीं, इधर-उधर देखनेके लिए लज्जा मालूम होती है। ऐसी हालतमें उसे धीरज बंधाते हुए सम्राट्ने कहा कि दक्षिण! अब घबराओ मत! चिंता मत करो, आनंदके साथ आओ। मैं अपने भाईकी हालत पहिलेसे जानता था। उसके पास दूसरोंको न भेजकर तुमको ही मैंने भेजा, यह मेरी ही लगती हुई। तुम्हारा कोई दोष नहीं है, चिंता मत करो। दक्षिणांकने आकर भरतेश्वरके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! मैं कुछ भी बोल नहीं सकता हूँ। मुझसे ही कार्य बिगड़ गया और किसीको भेजते तो कार्य हो जाता, मुझसे काम बिगड़ गया। आपके भाईमें कोई कमी नहीं है। भरतेश्वरने कहा कि

ठीक है, उठो, बैठकर शांतिसे बोलो। तब दक्षिणांक उठकर खड़ा हुआ।

दक्षिणांकके खड़े होनेके बाद भरतेश्वरने कहा कि शान्तिसे सर्व हकीकत कहो। तब दक्षिणांकने कहा, स्वामिन्! आपका भाई कामदेव है, पुष्पबाण है, वह कठोर वचनको कैसे बोल सकता है? उसने कहा कि बड़े भाईको अपनी सेनाके साथ अयोध्याकी ओर जाने दो। मैं बाद-में जाऊँगा। भरतेश्वर मनमें विचार कर रहे थे कि देखो मेरे नगरमें जानेके लिये क्या इसकी आज्ञाकी जरूरत है? उसके अभिमानकी मात्राको तो देखो। फिर प्रकटरूपसे कहने लगे कि दक्षिणांक! निस्सं-कोच होकर कहो आखिर उसने क्या कहा, एक ही बात कहो। युद्ध-के लिये तैयारी दिखाई? नहीं! नहीं! युद्धके लिये नहीं, अपने भाईके साथ कसरत करनेके लिए आऊँगा। ऐसा उन्होंने कहा। बचपनमें अनेक बार मैं अपने भाईके साथ कुस्ती खेल चुका हूँ। अब सेनाके सामने एक दफे कुस्ती खेलूँगा। ऐसा भाईने कहा। स्वामिन्! मैं क्या कहूँ। बहुत विनयतंत्रसे मैंने बुलानेकी चेष्टा की। अनेक मंत्रीमित्रोंने भी उनकी प्रेरणा की। अनेक स्त्रियोंने भी कहा। परंतु उनको सभी ये बातें नहीं जँची! विशेष क्या? आपको देखनेपर जिस प्रकार भक्ति करनी चाहिये उसी प्रकार उनके प्रति मैंने भक्ति की। भेदबुद्धिरहित वचनोंको ही बोले। मंत्रीमित्रोंके मेरे पास प्रसन्नता हुई। उसे पसन्द नहीं आई। मैं जिस समय वापिस आ रहा था नगरवासी जन आपसमें बात-चीत कर रहे थे कि भरतेश्वरके साथ इसने विरस विचार किया है सो दुनियामें इसे कोई भी पसंद नहीं करेगा।

भरतेश्वरको उपर्युक्त सर्व समाचार सुनकर दुःख व संताप हुआ, वे विचार करने लगे कि देखो उसका अभिमान! मेरे साथ युद्ध करनेकी तैयारी की। अपने नाश की उसे परवाह नहीं है। बहिरात्माओंको अपने पुष्पबाणसे कष्ट पहुँचा सकता है। परंतु मुझ सरीखे सहजात्म-रसिकोंको वह क्या डरा सकता है? उसके बाण दूसरोंको भले ही बाधा पहुँचा सकते। परंतु आत्मतत्परोंको वे कुछ भी नहीं कर सकते। आत्म-तत्पर पुरुष यदि उन बाणोंको रहनेके लिये कहें तो रहते हैं, नहीं तो जाते हैं। इस बातको बाहुबलि नहीं जानता है। यदि उसने पुष्पबाण का प्रयोग किया तो हंसनाथ (परमात्मा) को स्मरण कर उस पुष्प-बाणको विध्वंस करूँगा। यदि हिंसाकी भी परवाह न कर खड्ग लेकर आया तो उसे छीनकर उसे धक्का देकर रवाना करूँगा। जरा डाँटकर कहूँगा कि बाहुबलि! जाओ। नहीं गया तो हाथसे धक्का देकर भेजूँगा

फिर भी नहीं माना तो उसके हाथ पैर बांधकर शिबिकामें रखकर, छोटी मांके पास रवाना करूंगा। यदि मुझे क्रोध आया तो उसे गेंदके समान पकड़कर समुद्रमें फेंक सकता हूँ। इतनी शक्ति मुझमें है। परंतु छोटे भाईके साथ शक्तिको बतलाना क्या धर्म है? दुनिया इसे अच्छी नजरसे देखेगी? कभी नहीं। इसलिए ऐसा करना उचित नहीं होगा। दूसरे कोई आकर मेरे सामने इस प्रकार खड़े होता तो केवल इशारेसे उनके दांत गिराता। परंतु अपने सहोदरके हृदयको क्या दुखा सकता हूँ। यदि मैं ऐसा करूँ तो लोग यही कहेंगे कि हजार बात होनेपर भी भरत बड़े भाई हैं, बाहुबलि छोटा भाई है, इसलिये विचार करना चाहिये। सो उसे अब किस उपायसे जीतना चाहिए?

फिर दक्षिणांककी ओर देखकर भरतेश्वरने कहा कि जाने दो! उसे किसी प्रकार जीतेंगे। तुम शामके भोजन वगैरहसे निवृत्त होकर आये हो न? तुम्हें बहुत कष्ट हुआ, बैठो! दक्षिणांक बैठ गया। तदनन्तर दक्षिणांकको गुलाबजल व तांबूलको दिलाकर कहा कि दक्षिण! व्यर्थ ही खिन्न नहीं होना। मैं जानता हूँ कि तुमसे कार्य बिगड़ नहीं सकता है। मेरा शपथ है तुम मनमें दुःखित नहीं होना। उत्तरमें दक्षिणांकने कहा कि स्वामिन्! मुझे कोई दुःख नहीं है, आपके चरणोंके दर्शन करते ही वह दुःख दूर हो गया। पहिले मनमें जरूर कुछ खिन्नता आई थी। परंतु अब बिलकुल नहीं है। इतनेमें सुविट आदि मित्रोंने, मंत्री आदि प्रधानोंने एवं मागधामर आदि व्यंतरोंने कहा कि स्वामिन्! सूर्यके पास बर्फ, तुम्हारे पास दुःख कभी अधिक समयतक टिक सकता है? कभी नहीं। भरतेश्वर कहने लगे कि अंदर मेरी स्त्रियाँ बाहर मेरे पुत्र व आप मित्रोंको यदि कोई दुःख हुआ तो क्या मेरा कोई भाग्य है? इसलिए आप लोग बिलकुल निश्चिंत रहें। मैं हर तरहके उपायसे इस कार्यमें विजय प्राप्त करूँगा। वह मेरे भाई हैं, शत्रु नहीं है। अज्ञानसे अभिमान कर रहा है। आप लोगोंके सामने उपायसे उसे जीत लूंगा। आप लोग देखते जाएँ।

बुद्धिसागर मंत्रीने निवेदन किया कि स्वामिन्! मैं एक दफे जाकर देखूं? तब भरतेश्वरने कहा कि उसे लोगोंकी कीमत मालूम नहीं है। इसलिए व्यर्थ ही किसीके जानेसे क्या प्रयोजन? क्या दक्षिणांक अविवेकी है? उसे जरा देखो, तुम लोग अब उसकी तरफ जानेके विचारको छोड़ो। तुममें और मुझमें अंतर क्या है? उस अहंकारीको समझाना कठिन है। इसलिए अब जो भी होगा सो मैं देख लूंगा।

मंत्री-मित्रोंने विचार किया कि बाहुबलिके मंत्री-मित्र वगैरह सभी भरतेश्वरके साथ हैं। इसलिए एक आदमी भेजकर देखूं कि क्या बाहुबलिके विचारमें कुछ परिवर्तन होता है या नहीं।

तदनंतर भरतेश्वरने दक्षिणांकको बुलाकर उसे अनेक उत्तमोत्तम रत्न व वस्त्राभूषणोंको भेंट देना चाहा। परन्तु दक्षिणने कहा कि स्वामिन्! मैंने बड़ी सेवा की! वाह! मुझे जरूर भेंट मिलना चाहिये! जाने दीजिये! मैं नहीं लूंगा।

भरतेश्वरने कहा कि वह नहीं आया तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुम्हारे प्रयत्नमें क्या कमी हुई? इसलिए तुम्हारे विवेकका आदर करना मेरा कर्तव्य है। आओ! रात्रिदिन अपन आनंदसे व्यतीत करें। दक्षिणांकने स्वीकार नहीं किया। फिर भरतेश्वरने वहाँ उपस्थित अन्य मंत्री-मित्रोंको बुलाकर भेंट दिये। बादमें दक्षिणांकको बुलाकर कहा अब तो लो। तब निरुपाय होकर दक्षिणांकने ले लिया। भरतेश्वरने उसकी पीठ ठोककर कहा तुमसे मुझे कोई अप्रसन्नता नहीं है। तुम दुःख मत करो। तब दक्षिणांकने कहा कि स्वामिन् मुझे स्वप्नमें भी दुःख नहीं है। आपके चरणोंके शरणको पाकर किसे दुःख हो सकता है?

चक्रवर्ती सबको विदाकर स्वयं महलकी ओर चले गये। इधर मंत्री व मित्रोंने विचार किया कि सभी राजा व मंत्री सेनापति वगैरह बाहुबलिके पास जाकर भेंट वगैरह समर्पण कर उसे इधर ले आयेंगे। उस विचारसे उन्होंने बाहुबलिके पास एक दूतको भेजा, दूत जब पौदनपुरके दरवाजेपर पहुँचा उस समय दरबानने उसे रोका। भरतेशके किसी भी मनुष्यको अंदर जानेकी आज्ञा नहीं है। वह दूत वहींसे लौटकर आया। जब वह समाचार मिला तो मंत्री आदिको बड़ी निराशा

हुई। [illegible] व्यक्त करते हुए सूर्य भी
मद चढ़ गया है। इस समाचारसे अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए सूर्य
अस्ताचलपर चल गया। सर्वत्र अंधकार छा गया। शय्यागृहमें सुख-
निद्राके बाद रात्रिके तीसरे प्रहरमें भरतेश्वर उठकर परमात्मयोगमें
लीन थे। इतनेमें एक सरस घटना हुई।
सर्वत्र निस्तब्धता छाई हुई है। वृक्षका एक पत्ता भी हिल नहीं
रहा है। तरंगरहित समुद्रके समान विशालसेनाकी हालत हो रही है।
सबके सब निद्रादेवीकी गोदमें विश्रांति ले रहे थे। तब सेनाके किसी
कोनेमें दो व्यक्ति आपसमें बातचीत कर रहे थे; वे दोनों साले-बहनोई
थे। उनको किसी कारणसे नींद नहीं आ रही थी। अतएव उन्होंने

उठकर आपसमें रात्रिको बितानेके लिए बातचीत करनेको प्रारंभ किया। उनमें निम्नलिखित प्रकार बातचीत हुई।

पहला -एक-एक बूंद मिलकर बड़ा सरोवर बनता है, एक-एक डोरी मिलाकर बड़ी रस्सी बनती है। इसी प्रकार चक्रवर्तीकी भी महिमा बढ़ गई। यदि सेना नहीं हो तो यह भी एक सामान्य मनुष्य ही है।

दूसरा बिलकुल ठीक है; हाथी, घोड़ा आदि सेनाओंके संग्रहसे दुनियाको डराया। वस्तुतः शक्तिको देखनेपर इसमें क्या है? हमारे समान ही एक मनुष्य है।

इस प्रकार सेनाके आखिरके उत्तर कोनेपर उपर्युक्त प्रकार दो विद्याधर बातचीत कर रहे थे। उसे भरतेश्वरने सुन लिया। भरतेश्वर की कान बहुत तेज है। सूर्यविमानमें स्थित जिनबिंबका दर्शन जो अपनी महलकी छतसे खड़े होकर करते हैं, अर्थात् जिनके चक्षुरिन्द्रिय की इतनी दूरगति है तो उनके कर्णेन्द्रियके सम्बन्धमें क्या कहना! भरतेश्वरने उस बातचीतको सुनकर मनमें विचार किया कि प्रातःकाल होनेके बाद इसका उत्तर दूसरे रूपसे देना चाहिए।

नित्यविधिसे निवृत्त होकर भरतेश्वर दरबारमें आकर विराजमान हुए। दरबारमें उस समय मंत्री, मित्र राजा व प्रजावर्ग आदि सबके सब यथास्थान बैठे हुए थे। भरतेश्वरका मुख आज उदास दिख रहा है। बुद्धिसागर मंत्रीने विचार किया कि शायद भरतेश्वर बाहुबलिके बर्तावसे चिन्तित हैं। उसने निवेदन किया कि स्वामिन्! आपने हम लोगोंको कहा था कि इस सम्बन्धमें चिन्ता मत करो, परन्तु आप चिन्ता क्यों कर रहे हैं? तब उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि मैं बाहु-बलिके सम्बन्धमें विचार नहीं कर रहा हूँ। आज एकाएक उँगलीका नस अकड़कर यह हाथकी उँगली सीधी नहीं हो रही है। यह कहते हुए अपने हाथकी छोटी उँगलीको झुकाकर मंत्रीको बतलाया। लोकमें सबके शरीरमें, व्यवहारमें टेढ़ापन हो सकता है। परन्तु भरतेशके किसी भी व्यवहारमें एवं शरीरमें भी टेढ़ापन नहीं है। फिर आज यह उँगली टेढ़ी क्यों हुई है? सबको आश्चर्य हुआ। मंत्री, मित्र आदि चिन्तामें पड़े। उन्होंने आकर हाथ लगाया तो भरतेश्वरने बड़ी वेदना हो रही हो इस प्रकारकी चेष्टा की। पुत्रोंने हाथ लगाया तो बड़ी ही दर्दभरी आवाज करने लगे। मंत्रीने राजवैद्योंको बुलाया, उसी समय सैकड़ों राजवैद्य एकत्रित हुए। उन्होंने जड़ी-बूटियोंके औषधसे उसे ठीक

करनेके लिए कहा। अनेक मंत्रवादी आये। बड़े-बड़े यंत्रवादी आये। पहलवान लोग आये। निमित्तशास्त्री आये। खास सम्राट्के अंगवैद्य आये। सबने अपनी विद्याके बलसे उँगलीको सीधी करनेकी बात कही। लोकमें देखा जाता है कि गरीबको बड़े भारी रोगके आनेपर उसके चिल्लाते रहनेपर भी उसके पास कोई नहीं आते। परन्तु श्रीमंत को बिलकुल छोटा-सा दर्द आनेपर बिना बुलाये वहांपर लोग इकट्ठा होते हैं। यह स्वाभाविक है।

मंत्रीने पूछा कि स्वामिन् ! इनमेंसे आप कौनसे प्रयोगको बन्द करते हैं। उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि औषध वगैरहकी आवश्यकता नहीं, उपायसे ही इसे सीधी करनी चाहिए। बुलाओ, पहलवानोंको बुलाओ, भरतेश्वरने कहा। तत्क्षण पहलवान लोग आकर सामने उपस्थित हुए। उनसे कहा कि तुम लोग इस उँगलीको पकड़कर खींच-कर सीधी करो। कई पहलवानोंने मिलकर खींचा तो भी सीधी नहीं हुई। भरतेश्वरने कहा कि डरो मत, जोरसे खींचो। वे पहलवान जोरसे उस उँगलीको खींचने लगे। तथापि वे उसे सीधी नहीं कर सके। भरतेश्वरने जरा-सी उँगलीको ऊपर उठाया तो ये सबके सब चमगीदड़ के समान उँगलीमें झूलने लगे। सम्राट्ने कहा कि और एक उपाय है। एक साँखल डालकर खींचो, वैसा ही उन लोगोंने किया। उससे भी कोई उपयोग नहीं हुआ। भरतेश्वरने विश्वकर्माकी ओर देखकर कहा कि एक साँखल ऐसी निर्माण करो सारी सेनामें पहुँचे। वहां देरी क्या थी ? उसी समय विश्वकर्माने उसका निर्माण किया। आज्ञा हुई कि सेनाके समस्त योद्धा इस साँखलको पकड़कर सारी शक्ति लगाकर खींचे कोई उपयोग नहीं हुआ। फिर कहा गया कि हाथी, घोड़ा आदि सबके सब लगाकर इस साँखलको खींचे। सम्राट्के पुत्र व मित्रोंने भी उसे हाथ लगाना चाहा, परन्तु भरतेश्वरने इशारोंसे उनको रोका। भरतेश्वरके हाथका स्पर्श होते ही वह लोहेकी साँखल सोनेकी बन गई। सारी सेना अपनी सारी शक्ति लगाकर उस साँखलको खींचने लगी। परन्तु भरतेश्वर अपने स्थानसे जरा भी नहीं हिले, छोटीसी उँगली भी सीधी नहीं हुई। जिस समय जोर लगाकर वे खींच रहे थे अपने हाथको जरा ढीला कर दिया तो वे सबके सब चित्त होकर गिर पड़े, भरतेश्वर गम्भीरतासे बैठे थे। मंत्रीसे कहा कि ये गिरे क्यों ? सबको उठनेके लिए कहो। तब वे उठे। भरतेश्वरने कहा कि और एक उपाय

करें, सारी सेनाकी शक्ति लगानेपर भी उँगली सीधी नहीं होती है। आप लोग सबके सब जोरसे खींचके रखो, मैं इस तरफ खींचता हूँ तब क्या होता है देखें। भरतेश्वरने अपनी ओर जरा झटका देकर खींचा तो सबके सब मुँह नीचे कर गिरे। मालूम हो रहा था। शायद वे सम्राट्को साष्टांग नमस्कार ही कर रहे हैं। ४८ कोसमें व्याप्त सारी सेनाने शक्ति लगाई तो भी छोटीसी उँगली सीधी नहीं हुई। जब छोटी उँगलीमें इतनी शक्ति है तो फिर अँगूठेमें कितनी शक्ति होगी, मुष्टिमें कितनी होगी और सारे शरीरमें कितनी होगी ? सम्राट्की शक्ति अवर्णनीय है। भरतेश्वर मुसकराए, मंत्री-मित्रोंने समझ लिया कि वस्तुतः सम्राट्के उँगलीमें कोई रोग नहीं है। यह तो बनावटी रोग है। तब उन लोगोंने कहा स्वामिन् ! दूसरोंसे यह रोग दूर नहीं हो सकता है। आप ही अब उपाय करें। तब उँगलीकी साँखलको हटाकर "गुरु हंसनाथाय नमः स्वाहा" कहते हुए उँगलीको सीधी कर दी। सब लोगोंने हर्षसे भरतेश्वरको नमस्कार किया। देवोंने पुष्पवृष्टि की। साढ़े तीन करोड़ बाजे एकदम बजे। सर्वत्र हर्ष ही हर्ष मच गया है।

मंत्रीने निवेदन किया कि स्वामिन् ! आपने ऐसा क्यों किया ? तब उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि रात्रिके तीसरे प्रहरमें उत्तरदिशाकी तरफ दो विद्याधरोंने आपसमें बातचीत की थी। उसके फलस्वरूप मुझे बतलाना पड़ा कि मेरी छोटी उँगलीमें कितनी शक्ति है ? इतनेमें दो विद्याधरोंने आकर साष्टांग नमस्कार किया। कहने लगे कि स्वामिन् ! हम अज्ञानवश बोल गये। हमें क्षमा करें। सब लोगोंको आश्चर्य हुआ। उन दोनों विद्याधरोंके प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ। मंत्रीने कहा कि जब पुत्रोंको साँखल खींचनेसे रोका तभी मैं समझ गया कि यह बनावटी रोग है। व्यंतरोंने कहा कि हम लोग भूल गये। नहीं तो अवधिज्ञानको लगाकर देखते तो पहिले ही मालूम हो जाता। इस प्रकार वहाँ तरह-तरहकी बातचीत चल रही थी।

भरतेश्वरने कहा कि मंत्री ! सिर्फ दो व्यक्तियोंके आपसमें बोलनेसे इन सारी प्रजाओंको दुःख हुआ, अब जरा गड़बड़ बन्द करो, सबको इस सुवर्णकी साँखलको टुकड़ा कर बाँट दो। मन्त्रीने उसी प्रकार किया। रोनेवाले बच्चोंको जिस प्रकार गन्नेको टुकड़ा कर बाँट दिया जाता है उसी प्रकार थकी हुई सेनाको सोनेकी साँखलको टुकड़ा कर बाँट दिया गया। सब लोग प्रसन्न हुए। सब लोग गठरी बाँध-बाँध

कर सोनेको ले गये। सबको यथोचित सत्कारके साथ रवाना कर स्वतः सम्राट् महलकी ओर चले गये।

महलमें रानियां आनन्दसागरमें मग्न हुई हैं। उनके हर्षको हम वर्णन नहीं कर सकते। आनन्दकी सूचना देनेके लिये हाथमें आरती लेकर भरतेश्वरका स्वागत करने लगीं व अनेक भेंट चरणोंमें रखकर नमस्कार किया। पट्टरानीने नमस्कार करते हुए कहा कि स्वामिन्! झूठे ही रोगसे हमारी सारी सेनाको आपने हैरान कर दिया। धन्य हैं! अपनी स्त्रियोंको साथ में लेकर भरतेश्वर अपनी मातुश्रीके पास आये व उनके चरणोंमें मस्तक रखा। माताने आशीर्वाद देते हुए कहा कि मेरे बेटेको मायाका रोग उत्पन्न हुआ। बेटा! तुम्हें कभी रोग न आवे। इतना ही नहीं, तुम्हें जो याद करते हैं उनको भी कभी रोग न आवे। इस प्रकार आशीर्वाद देकर माताने मोतीके तिलकको लगाया। भरतेश्वरने भी भक्तिसे नमस्कार कर तथास्तु कहा। तदनंतर सबके सब आनन्दसे भोजनके लिये चले गये।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरकी छोटीसी उँगलीमें इस प्रकारकी शक्ति कहाँसे आई। असंख्य सेना भी उनकी एक उँगलीके बराबर नहीं है। तब उनके शरीरमें कितना सामर्थ्य होगा? इसका क्या कारण है? यह सब उनके पूर्वोपार्जित पुण्यका ही फल है। वे उस परमात्माका सदा स्मरण करते हैं जो अनंतशक्तिसे संयुक्त है। फिर उनको इस प्रकार की शक्ति प्राप्त हो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है! उनका सदा चिन्तवन है—

हे परमात्मन्! तीन लोकको इधर-उधर हिलानेका सामर्थ्य तुममें मौजूद है। वह वास्तविक व अनन्त सामर्थ्य है। तुम अजरामररूप हो, आनन्दध्वज हो, इसलिए मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! तुम बुद्धिमानोंके नाथ हो, विवेकियोंके स्वामी हो, प्रौढ़ोंके प्राणवल्लभ हो, वाक्यपुष्पबाण हो, इसलिए मोतीके समान सुन्दर व शुभ्र वचनोंको प्रदान करो एवं मुझे सन्मति प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वरको लोकातिशायी सामर्थ्यकी प्राप्ति हुई है।

इति कटकविमोदसन्धि

—:o:—

अथ मदनसन्नाह संधि

सेनाके समाचारको सुनकर बाहुबलिके मनमें कुछ विचार तो हुआ, फिर भी गर्वके कारण युद्धकी ही तैयारीमें लगा। भरतेश्वरकी छोटीसी उँगलीकी शक्तिको सुनकर ही बाहुबलिको समझना चाहिए था, परन्तु विधि विचित्र है, कर्म कैसे छोड़ सकता है? आगे इसी निमित्तसे दीक्षा ग्रहण करनेकी भावीकी कैसे पूर्ति होगी? भरतेशकी षट्खण्ड विजयी होकर लौटनेपर आपसमें बाहुबलि और भरतेश्वरका युद्ध होना चाहिये। बाहुबलिको वैराग्य उत्पन्न होना चाहिये। वैभव-युक्त भोगको छोड़कर जंगलमें जाना चाहिये इस विधिविलासको कौन उल्लंघन कर सकता है? वस्तु अनिवार्य है। बाहुबलिने गणवसन्तक नामक सेनापतिको बुलाया व कहा कि जाओ! सब तैयारी करो। सेना, परिवार वगैरह की सिद्धता कर युद्ध सन्नद्ध रहो। चक्रवर्तीने अपने नगरके पास पड़ाव डाल रखा है, यह अपने लिये अपमानकी बात है। इसे अपने कैसे सहन कर सकते हैं? मैं अभी महलमें जाकर आता हूँ तुम तैयार रहो।

सुनन्दादेवीको मालूम होते ही उसने पुत्रको बुलवाया, बाहुबलिने भी संतोष व विनयके साथ मातुश्रीके चरणोंमें नमस्कार किया। सुनन्दादेवीने आशीर्वाद देते हुए कहा कि "भुजबली! बड़े भाई भर-तेशके साथ युद्धकी तैयारी कर रहे हो ऐसा मालूम हुआ है। इसे कौन सज्जन पुरुष पसंद करेंगे? तुम्हारे दुर्मार्गके लिये धिक्कार हो। भर-तेश सरीखे बड़े भाईको पानेका भाग्य लोकमें किसे मिल सकता है? संतोष व प्रेमसे तुम उसके साथ रहना नहीं जानते, जाओ अभागे हो। छोटे भाईका कर्तव्य है कि जो लोग बड़े भाईके साथ विरोध करते हैं उनको पकड़कर लावें या बड़े भाईके आधीन कर देवें। परन्तु तुम तो उसके साथ ही विरोध करते हो? क्या यह बुद्धिमत्ता है? छोटे भाई बड़े भाईको नमस्कार करें यह लोककी रीत है। वह चक्रवर्ती है, तुम कामदेव हो। यदि तुम उसे उल्लंघन न कर चलोगे तो शुक्र, बृहस्पति भी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। तुमने विरोध करोगे तो तुम्हारी निन्दा करेंगे। विशेष क्या? तुम्हारे इस व्यवहारसे हमें व हमारे सभी बांधवोंको अत्यन्त दुःख होगा। कुमारने जवान होकर कुटुम्बके हृदयको दुखाया, यह अविवेक तुम्हारे लिए योग्य है? भाईके साथ युद्ध करनेके लिए मैंने तुम्हें घी-दूधसे पालन-पोषण किया था? इस-लिए हमारे हृदयको संतुष्ट करना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम अकेले नहीं

सहोदर सबके सब भरतेश्वरको नमस्कार न कर भाग गये। हमारे बेटेने इन सबका क्या बिगाड़ किया था। क्या बड़े भाईको नमस्कार करनेका कार्यहीन है ? बड़े पितृतुल्य हैं, समझकर उसकी भक्ति सत्पुरुष करते हैं। परंतु धूर्त लोग उसके साथ विवाद करते हैं। सबके सब दीक्षा लेकर चले गये। तुम तो कमसे कम मेरी इच्छाकी पूर्ति करो। इस प्रकार भाईके साथ विरोध मत करो।" बहुत प्रेमसे सुनन्दादेवीने कहा।

बाहुबलिने सोचा कि युद्धके नाम लेनेसे माताको दुःख होगा। इसलिये माताको किसी तरह संतुष्ट कर देना चाहिये। इस विचारसे कहने लगा कि माता ! नहीं ! युद्ध नहीं करूँगा। पहले सोचा जरूर था। परन्तु सब लोग जब मनाही कर रहे हैं तब विचारको छोड़ना पड़ा। दूसरोंने जिस कामके लिए निषेध किया है, उसे मैं कैसे कर सकता हूं ? आप चिंता न करें मैं बड़े भैयाको नमस्कार कर आऊँगा। इस प्रकार मुखसे माताको प्रसन्न करनेके लिए कहनेपर भी मनमें क्रोध उद्रिक्त हो रहा था। कामदेवके लिये मायाचार रहना स्वाभाविक है। सुनन्दादेवीको सन्तोष हुआ। उसने आशीर्वाद देकर कहा कि बेटा ! जाओ ! ऐसा ही करो। वह भोली उसके अंतरंगको क्या जाने ?

वहांसे निकलकर बाहुबलि अपने शृंगारगृहमें चला गया। वहांपर सबसे पहिले अपने शरीरका अच्छी तरह शृङ्गार किया। वह कामदेव स्वभावतः ही सुन्दर है। फिर ऊपरके शृङ्गारको पाकर सबके मन व नेत्रको अपहरण कर रहा था। इतनेमें उनकी स्त्रियाँ वहाँपर आईं। अनेक स्त्रियोंके साथ पट्टरानी इच्छामहादेवीने नमस्कार किया व प्रार्थना की कि स्वामिन् ! आज आपने वीरांगशृङ्गार किया है। किस-पर इतना क्रोध ? क्या स्त्रियोंपर अथवा नौकरोंपर ? स्वामिन् ! लोकमें जितनी स्त्रियां हैं वे सब मेरे पक्षकी हैं और पुरुष सब तुम्हारे पक्षके हैं। फिर आप क्रोध किनपर कर सकते हैं ? उत्तरमें बाहुबलिने कहा कि देवी ! तुम्हारे पक्षके ऊपर मैं चढ़ाई नहीं करूँगा। जो चक्रवर्ती मेरा सामना करनेके लिए खड़ा है, उसके प्रति मैं चढ़ाई करूँगा। उस भरतको परमात्मयोगका सामर्थ्य है। इसलिए वह पुष्पबाणसे डरने-वाला नहीं है। उसकी सेनाके साथ लोहायुधसे काम लेकर उनको भगाकर आऊँगा। उत्तरमें इच्छामहादेवीने कहा कि देव ! आपने यह अच्छा विचार नहीं किया। क्योंकि इसे लोकमें कोई भी पसन्द नहीं करेंगे। बड़े भाईके साथ युद्ध करना क्या उचित है ? इस विचारको स्वामिन् ! छोड़ दीजिये ! बड़े भाईके साथ अपने सामर्थ्यको बतलाना

क्या उचित है ? आपका बाण वक्र हो तो क्या हुआ। आपको वक्र नहीं होना चाहिये। लोगोंके साथ युद्ध करना कदाचित् उचित हो सकता है, परन्तु बड़े भाईके साथ युद्ध करना कभी ठीक नहीं है, यह तो चंदनमें हाथ जलनेके समान है। देव ! आप विचार कीजिये, मेरी बड़ी बहिन वहाँपर भरतेश्वरके पास है, मैं यहाँपर हूँ। ऐसी अवस्थामें आप इस प्रकार विचार करते हैं, क्या यह उचित है ? एक घरकी कन्याओंको लाकर साढ़ू-साढ़ू प्रेमसे रहते हैं। परन्तु आप अपने व्यवहारसे मेरी बहिन से मुझे अलग करा रहे हैं। स्वामिन् ! नमिराज विनमिराजको ओर जरा देखिए। वे आपसमें कितने प्रेमसे रहते हैं। आप लोग इस प्रकार रीत छोड़कर आपसमें झगड़ा करें तो वे तो छोटे बड़े भाईके पुत्र हैं। आप दोनों तो एक ही पिताके पुत्र हैं ऐसी अवस्थामें शत्रुओंके समान आप लोग युद्ध करें, यह क्या अच्छा मालूम होगा ? ऐसी अवस्थामें नमि, विनमि क्या कहेंगे ? सम्पत्तिमें आप लोग बड़े हैं, वे गरीब हैं। परन्तु आप व उनके माता-पिताओंका सम्बन्ध हुआ है। इसलिए समान हैं। वे अवश्य बोलेंगे ही। जीजाजी (भरतेश्वर) के उत्तम गुणोंको हम सुनती हैं तो आपके इस विरोधके लिये कोई कारण नहीं है। इसलिये हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार इच्छामहादेवीने कहा।

बाहुबलिने उत्तरमें कहा कि देवी ! तुम्हारे जीजाजी (भरतेश्वर) में ऐसे कौनसे गुण हैं ! तुम्हारे भाईको उसने नमिराज कहकर पुकारा, इस बातको सब लोग वर्णन करते हैं। इसलिये तुम तेलको भी घी कहने लगी। उत्तरमें पट्टरानीने कहा कि स्वामिन् ! ऐसी बात नहीं। भरतेश्वर राजाग्रगण्य हैं। वे दूसरोंको राजा कहकर नहीं बुला सकते। मेरे भाईको ही उन्होंने राजाके नामसे बुलाया। इस प्रकारका भाग्य किसने प्राप्त किया है। यही क्यों ? उनके दरबारमें पहुँचते ही सिंहासनसे उठाकर मेरे भाईका स्वागत किया, आलिंगन दिया एवं उसे उच्च आसन दिया। क्या यह कम भाग्य है ? विशेष क्या ? हमारे भाई उसके मामाके बेटे कहलाते हैं। यही हम लोगोंके लिए बड़े सौभाग्यकी बात है। इसलिये आप बहुत प्रेमसे उनसे मिलें व हमें संतुष्ट करें।

इतनेमें चित्रावली रानी कहने लगी जीजी ! तुम ठहरो। मैं भी थोड़ा सा निवेदन करती हूँ। बाहुबलिकी ओर देखकर स्वामिन् ! आप सुखी हैं, अतः लोकमें आप सबके लिए सुख ही उत्पन्न करते हैं।

इसलिए आप सुखियोंमें श्रेष्ठ हैं। आप अपने भाईको भी सुख ही देवें। जब आप उनके साथ युद्धके लिए खड़े हो जायेंगे, उस समय ९६ हजार रानियोंका चित्त नहीं दुखेगा ? हम आठ हजार स्त्रियोंका हृदय दहल नहीं उठेगा ? इन बातोंको जरा आप विचार करें। आप और उनमें प्रेम रहा तो वे हमारी बहिनें कभी यहाँ आ सकती हैं, हम कभी वहाँ आ सकती हैं। हममें कोई भेद नहीं है। परन्तु हमारे इस प्रेममें आप अन्तर ला रहे हैं, जरा आप विचार करें। दूसरोंके घर जाना उचित नहीं, परन्तु आपके बड़े भाईके घर पर जाकर हमारी बहिनोंके साथ प्रेमसे न रहें, इस प्रकार आप हमें कैदमें क्यों डाल रहे हैं ? बड़े भाईके साथ इस प्रकार विरोध करना उचित नहीं है। हमारी इच्छा की पूर्ति करनी ही चाहिए। इस प्रकार चित्रावती हाथ जोड़कर कहने लगी।

इतनेमें रतिदेवी नामक रानी कहने लगी कि चित्रावती ! तुम ठहरो मुझे इस समय क्रोधका उद्रेक हो रहा है। मैं जरा कहकर देखूँगी। वह रतिदेवी बुद्धिमती है, चंचल नेत्रवाली है, निश्चलमतिवाली है, पतिभक्ता है, धीर है, शृङ्गार है, रतिकालमें कुशल है, इच्छामहादेवी की वह बहिन है व बाहुबलिके लिए वह अधिक प्रीतिपात्रा है। इसलिए बिलकुल परवाह न कर बोलने लगी। कहने लगी ठीक है, बिलकुल ठीक है अपने सामर्थ्यका प्रयोग अपने ही लोगोंपर करके देखना चाहिए और कहाँ उसे दिखा सकते हैं ! कामबाणको धारण करनेका अभिमान अपने बड़े भाईके साथ ही दिखाना ही चाहिए। शाबास ! नाथ ! शाबास ! जीजाजी (भरतेश्वर) की स्त्रियोंको व हम सबको दुःख पहुँचानेवाले आपको लोग भ्रांतिसे काम करते हैं। सचमुचमें आपको यम कहना चाहिए। आपका यह बर्ताव किसीको भी मीठा नहीं लग रहा है। परन्तु आप इक्षुचाप (कामदेव) कहलाते हैं। क्या वह इक्षुचाप है या बांबूका बाण है ? आप मृदुहृदय से अपने भाईके पास नहीं जाना चाहते, अपितु पत्थरका हृदय बनाकर जा रहे हैं। ऐसी अवस्थामें आपको पुष्पबाण कैसे कह सकते हैं, वह पुष्पबाण नहीं होगा, लोहबाण होगा। जरा विचार तो कीजिए। क्या आपके व्यवहारसे वहाँपर सुभद्रादेवीको दुःख नहीं होगा ? यहाँपर हम लोगोंको संताप न होगा ? जानते हुए भी सबको दुःख पहुँचानेवाले आप पागल हैं, जाइये। न करने योग्य कार्यको करनेके लिए आप उतरे हैं। न बोलने योग्य बातको मैं बोल रही हूँ। यह अन्तिम समय है,

तुम नष्ट होते हो, जाओ ! मैं घास लेकर प्रतिज्ञा कर बोलती हूँ, जाइये नाथ ! जाइये ! आखिरका समय आ गया है।" इस प्रकार अत्यधिक बेपरवाहीसे रतिदेवी बोल रही थी। परन्तु पट्टरानीको यह बात पसंद नहीं आई। कहने लगी कि हे धूर्ता ! चुप रहो ! पतिदेवके हृदयको इस प्रकार दुखाना ठीक नहीं। उत्तरमें रतिदेवी कहने लगी कि जब उन्होंने मार्गको छोड़ा तो हमारी इच्छा जो होगी सो बोलूँगी।

इसी प्रकार अन्य स्त्रियोंने भी अनेक प्रकारसे पतिको समझानेकी कोशिश की। बाहुबलि मौनसे सुन रहे हैं। मनमें विचार कर रहे हैं कि चक्रवर्तीका पुण्य तेज है, इसलिए मेरी स्त्रियाँ भी उसी की स्तुति कर रही हैं। कोई हर्ज नहीं। इनको भी बातोंमें फँसाकर जाना चाहिए। प्रकट होकर बोले कि देवियो ! आप लोग बोलीं सो अच्छा हुआ। तुम लोगोंकी इच्छाको पूर्ण करूँगा। आप लोगोंको कभी दुःख नहीं पहुँचाऊँगा। पहिले मेरे हृदयमें क्रोध जरूर था, परन्तु आप लोगोंकी बातें सुनकर अब क्रोध नहीं रहा, अब वह शान्त हुआ है। मैं बहुत नम्रतासे भाईको नमस्कार कर आऊँगा। रति ! तुम बहुत अच्छा बोली, मेरे हितके लिए कठोर वचनको बोली, बहुत अच्छा हुआ। उत्तरमें रतिदेवी कहने लगी कि सचमुचमें आप बुद्धिमान् हैं, नहीं तो ऐसी बातोंको अपने हितके लिए समझनेवाले कौन हैं ? इस प्रकार सर्व स्त्रियोंको बाहुबलिकी बात सुनकर हर्ष हुआ। सबने हर्षातिरेकसे तिलक लगाया। बाहुबलि वहाँसे निकलकर अपनी महलकी ओर आये। दरवाजेपर सेवक परिवार वगैरह तैयार खड़े हैं। सबने जयजयकार किया। मार्कंद नामक सुन्दर हाथीका शृङ्गार पहिलेसे कर रखा था, बाहुबलि उसपर चढ़ गये। उनके ऊपर श्वेतछत्र शोभित हो रहा है। अनेक प्रकारके गाजे-बाजेके साथ बाहुबलि आगे बढ़े। पौदनपुरवासी उस समय अपने-अपने घरकी छतपर चढ़कर उस शोभाको देख रहे हैं। बाहुबलिका प्राकृतिक सौंदर्य, शृङ्गार आदि सबके चित्तको अपहरण कर रहे थे। सब लोग आँख भरकर कामदेवको उस समय देख रहे थे। देखने दो, आज ही उनका अंतिम देखना है, आगे वे देख नहीं सकते हैं। इस प्रकार बहुत वैभवके साथ बाहुबलि पौदनपुरके राजमार्गसे होकर जा रहे हैं।

जिस समय बाहुबलि पौदनपुरके राजमार्गसे होकर जा रहे थे उस समय अनेक प्रकारसे अपशकुन हो रहे थे। दाहिने ओरसे छिपकली

बोल रही थी। एक कौआ दाहिने ओरसे बाँयें ओर उड़ गया। बाहुबलिने उसको देखनेपर भी नहीं देखनेके समान कर दिया। परन्तु मित्रोंने उसे खासकर देखा और बाहुबलिका ध्यान उस ओर आकर्षित किया। बाहुबलिने उत्तर दिया कि कौआ नहीं उड़ेगा तो कौन उड़ेगा? छिपकली वगैरहके मुँहको अपन बंद कैसे कर सकते हैं? आगे बढ़नेपर एक मनुष्य अपने आभरण व कपड़ोंको उतारते हुए पाया, शायद यह शकुन बाहुबलिके आगेके तपोवनके प्रयाणको सूचित कर रहा था। मंत्रीने आकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! आजके प्रस्थानको स्थगित कर कल या परसों करना चाहिए। आज लौट जाइए। परन्तु बाहुबलिने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। कहा कि चलो! आज महा-उत्तम लग्न है। आओ इस प्रकार अनेक अपशकुनोंको देखते हुए वादक, पाठक व गायकोंके शब्दोंको सुनते हुए पौदनपुरके राजद्वारसे बाहर आए।

गुणवसंतककी सेना तैयार थी। सुन्दर मदोन्मत्त हाथी, घोड़े व शृंगार किये हुए रथ आदिसे उस समय चतुरंगसेना अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही थी। उसे बाहुबलिने देखा। बाहिरसे चतुरंगसेना व अंदरसे कामदेवकी नारीसेना, इस प्रकार उभयसेनासे युक्त होकर बाहुबलिने वहाँसे प्रस्थान किया। चलते समय गुणवसंतकको प्रसन्न होकर इनाम दिया। बाहुबलि सेनाकी शोभाको देखते हुए जा रहे हैं। कल-कंठ आदि अनेक प्रकारसे उनकी जयजयकार कर रहे थे।

बाहुबलिका एक पुत्र महाबलकुमार १० वर्षका है। वह उसके पीछेसे ही सहकार नामक हाथीपर चढ़कर आ रहा है। उसके पीछे ही उसका छोटे भाई रत्नबलकुमार चूतांक नामक हाथीपर चढ़कर आ रहा है। उस समय कामदेवकी शोभा देखने लायक थी। एक तरफ, स्त्रियोंका समूह, एक तरफ सुन्दर बालक, एक तरफ चतुरंगसेना। इन सब बातोंको देखते हुए सचमुचमें मालूम हो रहा था कि तीन लोकमें कोई भी शक्ति उससे सामना करनेवाली नहीं है। इस प्रकार बहुत वैभवके साथ बाहुबलि भरतसेनास्थानके पास पहुँचे। सेना बाहुबलिके सौन्दर्यको बहुत ही चावसे देख रही थी। क्योंकि वह कामदेव ही तो हैं।

भरतेश्वर अनेक मित्रोंके साथ बाहरके दरबारमें बैठे हैं। गायन चल रहा है, बत्तीस चामर ढुल रहे हैं। इतनेमें किसी दूतने आकर समाचार दिया कि बाहुबलि युद्धसंनद्ध होकर आये हैं।

अर्ककीर्ति आदि बालकोंको यह समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। पिताको न कहकर उन सबने विचार किया कि अपन ही काकाके पास जावें। हम लोगोंके पहुँचनेपर तो कमसे कम वे इस विचारको छोड़ देंगे। इस प्रकार विचार कर अर्ककीर्ति अपने सहोदरोंको साथमें ले वहाँपर गया। प्रणयचन्द्र मंत्रीको सूचना दी गई व बाहुबलिके लिए अनेक भेंटोंको समर्पण कर बाहुबलिको नमस्कार किया। मंत्रीसे बाहुबलिने पूछा कि ये सुन्दर बालक कौन हैं? उत्तरमें मंत्रीने कहा कि आपके पुत्र हैं। काकाको देखनेके लिए बहुत आदरसे भेंट वगैरह लेकर आये हैं। बाहुबलिने क्रोधभरी आवाजसे कहा कि "इनको वापिस जाने के लिए कहो। मेरे पास आनेकी जरूरत नहीं, इनके पिता मेरे लिए राजा हैं। मेरे लिए ये पुत्र कैसे हो सकते हैं? मुझे फँसानेके लिए आये हैं। वापिस जाने दो इनको।" सचमुचमें कर्मगति विचित्र है। कलकंठने अर्ककीर्ति आदि कुमारोंसे प्रार्थना की कि आप लोग अभी चले जायें। क्योंकि यह समय अच्छा नहीं है। सो अर्ककीर्ति आदि बहुत दुःखके साथ वहाँसे लौटे। इन सब बातोंको हाथीपर बैठा हुआ महाबल कुमार देख रहा था, उसे बड़ा दुःख हुआ। हा! मेरे बड़े भाइयोंसे भी पिताने इतना तिरस्कार भाव दिखाया। अब हमारी भी रक्षा यह नहीं कर सकता है। हम लोग भी बड़े बापके पास जाएँ। इस विचारसे वह हाथीसे उतरकर सीधा भरतेश्वरकी ओर गया। महाबलकुमार बहुत सुन्दर है। क्योंकि वह कामदेवका पुत्र है।

दक्षिणांकने चक्रवर्तीसे कहा कि श्री महाबलकुमार जो कि बाहुबलिका पुत्र है, आ रहा है। महाबलकुमारने चरणोंमें भेंट रखकर नमस्कार किया, भरतेशने उसे हाथसे उठाकर गोदपर रख लिया। बेटा! उदास क्यों हो? इतनी गम्भीरतासे व गुप्तरूपसे आनेका क्या कारण है? किसीके साथ तुम्हारा झगड़ा हुआ? महाबलकुमार कुछ भी नहीं बोला, तब पासके सेवकोंने कहा कि स्वामिन्! आपके पुत्र काकाको देखनेके लिए गये थे। उन्होंने वापिस लौटाया। उसे देखकर दुःखसे यह आपके पास आया है।

भरतेश्वरको बहुत दुःख हुआ। दीर्घश्वासको छोड़ते हुए उन्होंने कहा कि बाहुबलिके हृदयको परमात्मा ही जानें। उसके हृदयमें क्या यह विध्वंसभाव! मुझसे यदि कोप हो तो क्या मेरे पुत्र भी उसके लिए वैरी हैं! कर्म बहुत विचित्र है। बुलाओ! अर्ककीर्ति कहाँ है? अर्ककीर्ति आकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। भरतेश्वरने जरा क्रोधसे कहा

कि बेटा ! सब देश फिर कर आये हो, इसलिए पितोद्रेक हुआ मालूम होता है। शायद इसीलिए उसके पास गये मालूम होता है। तक नर्क यम बिगड़ गया तो भी उसे दुरुस्त करनेकी सामर्थ्य मुझमें है, तुम लोगोंको इसकी चिन्ता क्यों? वह इक्षुबाण मीठा है, समझकर गये होंगे। मीठा ही निकला न ! जाओ ! जाओ !" अर्ककीर्ति मौनसे खड़ा है। भरतेश्वरने पुनः महाबलकुमारकी ओर देखकर कहा कि बेटा ! अब अनेक दुःखोंको तुम्हें देखकर भूलूंगा। तुम बहुत आनन्दसे यहाँ रहो। मेरे हृदयमें बिलकुल कलुषता नहीं है। तब मंत्रीमित्रोंने कहा कि स्वामिन् ! विधिवश यह कुमार आपके पास आनन्दसे आया है। बाहुबलि भी अब आवेगा, उसके लिए यह सूचना है।

अपने पिताके व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर यह बालक आज आया है। अब जवान होगा तो यह कितना बुद्धिमान् होगा ? इस प्रकार वहाँ बातचीत चल रही थी। भरतेश्वरने पुनः महाबलकुमारसे कहा कि बेटा ! जो प्रसंग आया है उसे मैं जीत लूंगा। तबतक तुम अपने बड़े भाईके साथ रहो। इतनेमें अर्ककीर्ति आकर उसे ले गया।

इस प्रकार भरतेश्वर अपने दरबारमें अपने मंत्री-मित्रोंके साथमें थे। बाहुबलि अभीतक युद्धकी प्रतीक्षामें हाथीपर ही अभिमानसे बैठा हुआ है। आगे युद्ध होगा।

पाठकोंको बाहुबलिके परिणामके वैचित्र्यको देखकर आश्चर्य होता होगा। कितना कठोर हृदय है वह ! माताके उपदेशका प्रभाव नहीं हुआ, माताकी हार्दिक इच्छाकी परवाह नहीं। अपनी ८ हजार रानियोंकी प्रार्थना पर पानी फेर दिया। मंत्रीमित्रोंकी प्रार्थनाको ठुकराया। अर्ककीर्तिकुमार आदि आये तो उनके प्रति भी भयंकर तिरस्कार भाव ! सचमुचमें उसका कर्म प्रबल है। इतना होनेपर भी भरतेश्वर बहुत गम्भीर हैं। उनके हृदयमें द्वेषाग्नि भड़क नहीं उठी है, यह उससे भी अधिक आश्चर्यकी बात है। सचमुचमें ऐसे समयमें परिणामको सम्हाल रखनेकी विशिष्ट शक्तिकी आवश्यकता है। कषाय उत्पन्न होनेके लिए प्रबल कारणके उपस्थित होनेपर भी अपने परिणाम में क्षोभ उत्पन्न नहीं होने देना यही महापुरुषोंका खास लक्षण है। भरतेश्वर सदा परमात्मध्यानसे इस प्रकार विचार करते हैं

हे परमात्मन् ! कठोरसे कठोर कार्यको भी मृदुभावसे करनेकेसामर्थ्य तुममें है। तुम इस कार्यमें अधिक चतुर हो ! अनन्त शक्तिके धारक

हो, इसलिए ही सज्जनजनोंके द्वारा पूज्य हो ! हे अमृतवारिधि ! मेरे हृदयमें सदा बने रहो !

निरंजनसिद्ध ! नाममोहनसिद्ध ! रूपमोहनसिद्ध ! स्वामित्वमोहन-सिद्ध ! कोमलवाक्यमोहनसिद्ध ! जयकल्याधाम ! हे सिद्धात्मन् ! मेरे हृदयमें सदा बने रहो !

इसी भावनाका फल है कि उनको कैसी भी अजेय शक्तिको जीत-नेका धैर्य रहता है। इसलिए वे हमेशा गम्भीर रहते हैं।

इति मदनसंग्राहसन्धि

-- :०:

अथ राजेंद्रगुणवाक्यसन्धि

भरतेश और बाहुबलि युद्धके सन्मुख हैं, परन्तु उन दोनोंके मन्त्री मित्र व प्रमुख राजाओंने आपसमें मिलकर प्रसंगको टालनेके सम्बन्धमें परामर्श किया। वे विचार करने लगे कि बाहुबलिको बहुतसे लोगोंने समझाया, तथापि उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। इसलिए अब युद्ध तो होगा ही, अब कौन क्या कर सकते हैं ? जब चक्रवर्ती और काम-देव युद्धके लिये खड़े हैं तो यह सामान्य युद्ध नहीं होगा। एक दूसरेके प्रति झुक नहीं सकते। यह कामदेव दूसरोंको भले ही जीत सकता है, परन्तु आत्मनिरीक्षण करनेवाले भरतेशको कभी जीत नहीं सकता है। हम इस बातको अच्छी तरह जानते हैं। अच्छा ? कुसुमास्त्रसे युद्ध होगा या खड्गसे होगा ? बाहुबलिने क्या विचार किया है ? बाहु-बलिके मंत्री-मित्रोंने कहा कि कुसुमास्त्रको परमात्मयोगसे हरायेंगे, इस विचारसे लोहास्त्रसे ही युद्ध करनेका निश्चय किया है। तब दोनों वज्रकाय हैं, उनको तो कुछ भी कष्ट नहीं होगा। परन्तु दोनों पर्वतोंके घर्षणसे जिस प्रकार बीचके पदार्थ चूर्णित होते हैं, उसी प्रकार सर्व सेनाकी हालत होगी। इसलिए समस्त सेनाको मारनेकी आवश्यकता नहीं। हाथमें खड्ग लेकर युद्ध करनेकी जरूरत नहीं, व्यर्थ ही निर-पराध सेनाकी हत्या होगी। इसलिए दोनोंको धर्मयुद्ध करनेके लिए प्रार्थना करें। सब लोगोंको यह बात पसंद आई। सम्राट्के पास सब पहुंचे व प्रार्थना की कि स्वामिन् ! युवराजने लोहास्त्रसे युद्ध करनेकी ठानी है, पुष्पबाणसे वह काम नहीं लेगा। अब तो निश्चय समझिये कि यह सेना पुरप्रवेश नहीं कर सकेगी, अपितु यमपुरमें प्रवेश करेगी।

आप दोनों पराक्रमी हैं। जब आप लोग लोहास्त्रको लेकर युद्ध करेंगे तो प्रलयकाल ही आ जायेगा। अब हमारा संरक्षण नहीं हो सकेगा, यह निश्चय है। आप दोनों वज्रदेही जिस समय युद्धरंगमें प्रविष्ठ होंगे तो काँचकी चूड़ियोंकी दुकानमें दो मदोन्मत्त हाथियोंके प्रवेशके समान हो जायेगा। "तब आप लोग क्या कहते हैं" बीचमें ही भरतेश्वरने पूछा। उत्तरमें उन लोगोंने कहा कि हमने एक उपाय सोचा है, परन्तु कहनेके लिए भय मालूम पड़ता है। "डरनेकी कोई जरूरत नहीं, आप लोग बोलो" भरतेश्वरने कहा। स्वामिन्! धर्मयुद्धकी स्वीकृति दीजिये। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध आप लोग दोनों करें इसके सिवाय कोई युद्ध नहीं करना चाहिए। यही हम सबकी अभिलाषा है। उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि आपलोगोंने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा। बाहु-बलि जैसा कहता हो वैसा ही सुननेके लिए मैं तैयार हूँ। उससे जाकर पूछें। उसकी इच्छानुसार व्यवस्था करें।

सब लोग वहाँसे संतोषके साथ बाहुबलिके पास गये। हाथ जोड़-कर खड़े हुए। बाहुबलिने कहा कि क्या बात है? उत्तरमें कहा कि स्वामिन्! आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहते हैं, परन्तु भय मालूम होता है। तब बाहुबलिने कहा कि मैं समझ गया। आप लोग युद्ध रुकवाना चाहते हैं। और क्या? उत्तरमें उन लोगोंने कहा कि स्वा-मिन्! युद्ध तो होना चाहिये। बाहुबलिने कहा कि अच्छा तो आगे बोलो, डरो मत! तब उन मन्त्री-मित्रोंने प्रार्थना की कि स्वामिन्! युद्ध होने दो। परन्तु खड्गयुद्धकी आवश्यकता नहीं। उससे भी बड़े मृदुलययुद्धको आप दोनों अपने भुजबलसे करें, सेनाकी नाशकी जरूरत नहीं। बीचमें ही बात काटकर बाहुबलिने कहा कि मैं यह सोच ही रहा था कि सामनेकी सेना अधिक संख्यामें है। मेरी सेना बहुत थोड़ी है। ऐसी अवस्थामें आपलोगोंने जो मार्ग निकाला सो यह मेरा पुण्य है चलो अच्छा हुआ, आगे बोलो!

स्वामिन्! पहिला दृष्टियुद्ध होगा। उसमें एक दूसरेके मुखको अनिमिषनेत्रसे देखना चाहिये। जिनके नेत्र पहिले बन्द हो जायेंगे उस समय उसकी हार मानी जायेगी।

दूसरा जलयुद्ध होगा। एक दूसरे हाथसे एक दूसरेके मुखपर पानी फेंकें। जो मुखको हटायेंगे वे हार गये ऐसा समझना चाहिये। इतनेसे युद्धकी समाप्ति नहीं होगी।

तीसरा युद्ध मल्लयुद्ध होगा। इस युद्धमें आपसमें कुस्ती होगी। किसीको एक हाथसे उठा लेंगे तो फिर युद्ध बन्द कर देना चाहिये। फिर कोई युद्ध नहीं होना चाहिये। स्वामिन् ! आप पुष्पबाणसे समस्त लोकको वशमें करते हैं, ऐसी अवस्थामें आपने कठिन खड्ग लेकर युद्ध किया तो लोक इसे अच्छी नजरसे नहीं देख सकते। इसलिए हमलोगोंने मृदुयुद्धका विचार किया है। आपका बाण, धनुष कोमल है, आप कोमल हैं, आपकी सेना कोमल है, फिर पत्थरके समान कठिनताकी क्या आवश्यकता है ? इसलिए हम लोगोंने यह कोमल विचार किया है। बाहुबलिने उत्तरमें कहा कि मैं समझ गया कि आप लोग मेरे हितैषी हैं, जाइये मुझे मंजूर है। शीघ्र युद्धरंगमें भरतेशको उतरनेके लिए कहियेगा।

बहुत सन्तोषके साथ वहाँसे सम्राट्के पास गये व सर्व वृत्तांत निवेदन किया। साथमें यह भी प्रार्थना की कि तीन धर्मयुद्धके सिवाय आगे कोई भी युद्ध नहीं हो सकेगा। इस बातका वचन मिलना चाहिये। पहिले भरतेशसे व बादमें बाहुबलिसे इस बातका वचन लिया गया एवं यह भी निर्णय हुआ कि यदि कामदेव हार गया तो वह भरतेशके चरणोंमें नमस्कार करें। यदि भरतेशकी हार हुई तो बाहुबलि भरतेशको नमस्कार न कर वैसा ही पौदनपुरमें जाकर राज्य करें। सेनास्थलमें ढिंढोरा पीटा गया कि युद्ध दोनों राजाओंमें वैयक्तिक होगा। युद्धमें सेना भाग नहीं लेगी।

सब लोग युद्धको देखनेके लिए खड़े हैं, आकाश प्रदेशमें व्यन्तर देवगण, विद्याधर वगैरह खड़े हैं। कामदेवके पक्षके राजा, महाराजा, कवि, विद्वान्, वेश्या, ब्राह्मण वगैरह सब एक तरफ खड़े हैं। मंत्री-मित्रोंने जाकर प्रार्थना की कि स्वामिन् ! युद्धकी तैयारी हो चुकी है, अब चलिये। बाहुबलि उस समय हाथीसे उतरकर नीचे आया, वह दृश्य सूचित कर रहा था कि शायद बाहुबलि यह कह रहा है कि हाथी, घोड़ा आदि संपत्तिकी अब मुझे जरूरत नहीं, मैं दीक्षा लेनेके लिये जाता हूँ। गर्वगिरिके उतरनेके समान उस गजरूपी पर्वतसे उतरकर वह कामदेव युद्धभूमिके बीचमें खड़ा हुआ। मालूम हो रहा था कि एक पर्वत ही खड़ा है। छत्र, चामर आदि बाह्य वैभव व अपने शरीरके भी कुछ वस्त्र आभूषणोंको उतारकर युद्धसन्नद्ध होकर खड़ा हुआ। उस समय वह बहुत ही सुन्दर मालूम हो रहा था।

भरतेश्वरसे आकर मंत्री-मित्रोंने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! बाहुबलि

आकर रणांगणमें खड़ा है। आगे क्या होना चाहिये। आज्ञा दीजिये। उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि मैं ही आकर सब कहूंगा आप लोग निश्चिन्त रहें। स्वतः मौन धारण कर भरतेश्वर विचार करने लगे कि इसके साथ धर्मयुद्ध भी क्यों करूं। इसके हाथ-पैर बांधकर छोटी मांके पास रवाना कर देता हूं। (पुनः विचार कर) नहीं ! नहीं ! ऐसा करना उचित नहीं होगा।

इतनी सेनाके सामने अपने अपमानका अनुभव कर फिर वह घरमें नहीं ठहरेगा। दीक्षा लेकर चला जायेगा, इसका मुझे भय है। कोमल युद्धोंमें भी वह हार जायेगा तो वह दीक्षा लेकर चला जायेगा। मुझे पहिलेके सहोदरोंके समान इसे भी खोना पड़ेगा। इसलिये कोई न कोई उपायसे काम लेना चाहिये। अपने सामर्थ्यको दिखानेके लिए आजतक मेरे सामने कोई भी खड़े नहीं हुए परन्तु मेरा भाई ही खड़ा हुआ, ऐसी अवस्थामें इसे मारना भी उचित नहीं। अहितोंको जीतना भी उचित नहीं है। साहसियोंको कष्ट देना चाहिये, परन्तु अपने कुटुम्बियोंके साथ द्रोह करना ठीक नहीं है। इस बाहुबलिकी मूर्खताके लिये मैं क्या करूं ? इस प्रकार तरह-तरहसे भरतेश्वर विचार कर रहे थे। परमात्मन् ! इसके लिए योग्य उपाय तुम ही कर सकते हो। एकदम हँसकर गुरुकी कृपा है, समझ गया। ठीक है चलो।

उसी समय पालकी लानेकी आज्ञा हुई, प्रस्थानभेरी बजाई गई, पल्लकीपर चढ़कर भरतेश्वर रवाना हुए। भरतेश्वरने उस समय युद्धके लिए उपयुक्त वेषभूषाको धारण नहीं किया था। मालूम हो रहा था कि उस समय विवाहके लिए जा रहे हैं। मंत्री-मित्रोंने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! इस प्रकार जाना उचित नहीं है। बाहुबलि तो युद्धके लिए लंगोटी कसकर खड़ा है, परन्तु आप तो इस प्रकार जा रहे हैं। हम जानते हैं कि आपमें शक्ति है। परन्तु शक्ति होनेपर भी युद्धके समयमें युक्तिको कभी नहीं भूलना चाहिए। मोरको पकड़ना हो तो शेरको पकड़नेकी तैयारी करनी चाहिए। तभी दूसरोंपर प्रभाव पड़ता है। तब उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि आप लोग बिल्कुल ठीक कहते हैं। परन्तु मुझे आज परमात्माने दूसरी ही बुद्धि दी है। इसलिए मैं इस प्रकार जा रहा हूं। आप लोग कोई चिंता न करें। मैं किस उपायसे आज उसे जीतता हूं। देखियेगा।

मंत्री-मित्रोंने कहा कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि आप जीतेंगे ही, तथापि हमने प्रार्थना इतनी ही की कि युद्धसन्नद्ध होकर जाना

अच्छा है। अब आपने जो विचार किया है वह ठीक है। इस प्रकार बातचीत करते हुए आगे बढ़ रहे थे। स्तुतिपाठकगण जगदेकमल्ल, जाड्योद्धूत मनुवंशगगनमार्तंड, उद्दंड, कामदेवाग्रज, त्रिलोकनाथ, विश्वंभराभूषणचक्रेश, चक्रध्वाकध्वजाग्रज, आपकी जय हो। इत्यादि प्रकारसे स्तुति कर रहे थे।

सम्राट्को बाहुबलिने १००-२०० गज दूरसे देखा, बाहुबलिने विचार कर अपने मंत्री-मित्रोंसे कहा कि भरतेश आ रहा है। जब युद्धकी भेरी बजाई जायगी तब मैं उसका मुख देखूंगा। तबतक मुझे उसका मुख भी देखनेका नहीं है। इसलिए वे पीछेकी ओर फिरकर खड़ा हो गया। भरतेश्वरने इसे देख लिया, हँसकर कहने लगे कि भाईका मुख मुझे देखते ही टेढ़ा हो गया, भुजबल कम हुआ। किसने उसे छीन लिया? मनमें वे पुनः कह रहे थे कि त्रिलोकाधिपतिके गर्भमें जन्म लेकर लोकके सामने इस प्रकारके अल्प कार्यके लिए प्रवृत्त हुआ! खेद है! इस प्रकार विचार करते हुए भरतेश्वर बाहुबलिसे ८-१० गज दूर पर जाकर खड़े हुए।

दोनों दीर्घदेही हैं। मालूम होता था कि दो पर्वत ही आकर खड़े हों! भरतेश्वरका देह ५०० गज प्रमाण है। परन्तु बाहुबलिका ५२५ गज प्रमाण हैं। देहप्रमाण ही सूचित कर रहा था कि यह बड़े भाईको उल्लंघन कर जानेवाला है। कलियुगके लोगोंके हाथसे पाँच सौ गज प्रमाण उसका शरीर था। परन्तु कृतयुगके पुरुषोंके हाथमें एक ही गज प्रमाण वह शरीर था। वैसे तो क्रमसे सबका शरीर पाँच सौ धनुष्य प्रमाण है। परन्तु बाहुबलिका शरीरप्रमाण २५ धनुष प्रमाण अधिक था, यह आश्चर्यकी बात है। उस समय चक्रवर्तीका सौंदर्य व कामदेवका सौंदर्य लोग बारीकीसे देख रहे थे। सबके मुखसे यही उद्गार निकलता था कि भरतेशसे बाहुबलि सुन्दर है। बाहुबलिसे भरतेश्वर सुन्दर है। सौंदर्यमें कामदेव प्रसिद्ध हैं सब चक्रवर्ती कामदेवके समान सुन्दर नहीं होते हैं। परन्तु आत्मभावना करतेस मात्र कामदेवसे भी बढ़कर सुन्दर थे। क्योंकि ध्यानकी सामर्थ्य सामान्य नहीं हुआ करती है। इस प्रकार दोनों अतुलशक्तिके धारक वहाँपर खड़े हैं। सेनागण उनके सौंदर्यको देख रहा था और देखें अब, शक्तिमें कौन जीतेंगे, कौन हारेंगे, देखना चाहिए। इस प्रतीक्षामें सब लोग खड़े थे।

गाजे-बाजेका शब्द बंद हुआ। भरतेश्वरने कहा कि युद्धकी भेरी अभी बजानेकी जरूरत नहीं। मैं अपने भाईसे दो-चार बातें पहिले

कर लूँगा। उसे वैसा ही वक्ररूप खड़े होकर ही सुनने दो, मैं गंभीर अर्थको ही कहूँगा। तब मंत्री-मित्रोंने कहा कि बहुत अच्छा! जरूर कहना चाहिए। तब सम्राट्ने निम्नलिखित प्रकार बाहुबलिसे कहा—

भाई! बाहुबलि! आज तुमने और मुझमें दुर्भावसे युद्ध हो रहा है, इसके लिए कारण क्या है? क्योंकि निष्कारण कोई राजा आपसमें युद्ध नहीं किया करते हैं। तुम्हारी कोई सम्पत्ति मैंने छीन नहीं ली है, मेरी सम्पत्ति तुमने नहीं छीनी है। पहिलेसे पिताजीने जिस प्रकार राजा व युवराज बनाया है, उसी प्रकार अपन रहते हैं। अच्छा! कोई बात नहीं! भाई-भाइयोंमें भी द्वेष होता है। परन्तु उसके लिए भी कुछ कारण होता है। क्या तुमसे कर वसूल करनेके लिए मैंने अपने दूतोंको तुम्हारे पास भेजा है? तुम्हारे नगरको मेरे मनुष्य आ सकते हैं। तुम्हारी प्रजाओंको मेरे नगरमें आनेपर मैंने अन्य जनोंके समान कभी भावना की थी? प्रजापरिवारोंमें इस प्रकार भिन्न विचार क्यों? मैंने बोलते हुए कभी तुम्हारे लिए अल्पशब्दोंका प्रयोग किया? मेरी प्रजाओंमें किसीने उस प्रकारका व्यवहार किया? कभी नहीं! केवल अपने भाईको देखनेकी इच्छासे उसे बुलाया तो इतना क्रोध क्यों? तुम मेरे लिए क्या शत्रु हो? मैं क्या तुम्हारे लिए शत्रु हूँ? हम दोनों आदि-प्रभुके पुत्र होकर इस प्रकार विचार करें तो यह आगे सब सामान्य लोगोंके लिए द्रोह-शासनको लिख देनेके समान हो जायगा।

कदाचित् तुम मनमें कहोगे कि यह युद्धसे डरकर अब यहाँ बातें करने लगा है परन्तु ऐसी बात नहीं है। युद्ध तो करूँगा ही। पहिले अपने मनकी बात कहकर दोषको टाल रहा हूँ दूसरे कोई मेरे सामने युद्धके लिए खड़े होते तो उनको लात मारकर भगाता। परन्तु भाई! सोचो, सहोदरोंके युद्धको लोक पसंद नहीं करेगा। मैं तुमसे थोड़ा बड़ा हूँ, इसलिए मैंने तुमको अपनी सेनाकी तरफ बुलाया, तुम मुझसे बड़े होते तो मैं तुम्हारे पास आता। बड़े भाईके पास छोटे भाईका जाना लोककी रीत है। इसमें भाई! तुम्हारा अपमान क्या है? तुम और मैं दोनों खिलाड़ी हैं। ये सब सेनागण, राजा, मंत्री, मित्र आदि सबके सब तमाशा देखनेवाले दर्शक हैं।

लोकमें राजाओंको खिलाकर अपन लोगोंको तमाशा देखना चाहिए। परन्तु अपन ही तमाशा दूसरोंको दिखाते हैं। मुझे तुम जीतोगे तो क्या तुम्हें कीर्ति मिल जायगी? तुम्हें मैं जीतूं तो क्या मुझे यश मिल सकेगा? पन्नगनरसुरलोकके उत्तम पुरुष अपने व्यवहारको

देखकर छी थू कहे बिना नहीं रह सकते। विशेष क्या ? तुम युद्धके लिए आये हो न ? युद्धमें जय होनेकी अभिलाषा सबकी रहती है। सामान्य लोगोंके समान लड़नेकी क्या जरूरत है ? तुम जीत गये मैं हार गया, जाओ।

भरतेश्वरके वचनको सुनकर मंत्री, मित्र, राजा, महाराजा आदियों ने कानमें उँगली देकर कहा कि यह क्या कहते हैं ? आपकी कभी हार है ? भरतेश्वरने उत्तरमें कहा कि आप लोग क्या बोल्ते हैं ! कामदेवसे कौन नहीं हारते हैं ! क्या हमने स्त्रियोंको छोड़ा है ? मेरे भाईकी जो जीत है, वह मेरी ही जीत है। दूसरा कोई सामने आता तो बाँए पैरसे उसे लात देता, आपलोग सब मेरे अंतरंगको जानते ही हैं। बाहुबलि की ओर फिरकर फिर कहा कि भाई ! उपचारके लिए तुम्हारी जीत है ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ। अच्छी तरह सुनो, तुम्हारी सामर्थ्यको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सर्व सेना सुने, उस तरह मैं कहता हूँ, सुनो।

दृष्टियुद्धमें तुम्हारी जीत है। क्योंकि तुम मुझसे २५ धनुष्य प्रमाण अधिक हो। इसलिए तुम मुझे सरलतासे देख सकते हो, परन्तु मुझे ऊर्ध्वदृष्टिकर तुम्हें देखना पड़ेगा, इसलिए मुझे कष्ट होगा। मेरी आँखें दुखेंगी।

भरतेश्वरके इस कथनको सुनकर मन्त्री-मित्रोंने मनमें कहा कि सूर्यबिम्बके अन्दर स्थित जिन प्रतिमाओंके दर्शनको अपनी महलसे बैठे-बैठे जो सम्राट् करता है, उस समय तो उसकी आँखें नहीं दुखती हैं तो २५ धनुष्य प्रमाणकी क्या कीमत है ? यह केवल भाईको समझानेके लिए कह रहा है। सूर्यकिरण तो आँखोंको चुभते हैं, तथापि आँखोंको वे बन्द नहीं करते ऐसी अवस्थामें अत्यन्त सुन्दर शरीरको देखकर आँखोंको कष्ट किस प्रकार हो सकता ? यह भाईको खुश करनेकी बात है। अस्तु.

भरतेश्वरने कहा कि भाई ! जलयुद्धमें भी तुम्हारी जीत है। क्योंकि तुम ऊँचे हो, मैं तुम्हारी छाती तक पानी फेंक सकता हूँ। मुझे तुम डुबा सकते हो ऐसी अवस्थामें मेरी हार उसमें भी हो ही जायगी समझे ?

मंत्री-मित्रोंने विचार किया कि भरतेश्वर यह क्या बोल रहे हैं ? अनेक इच्छित रूपोंको धारण कर आकाशपर भी पानी फेंकनेकी शक्ति भरतेश्वरमें है। २५ धनुषकी बात ही क्या है ? यह केवल उपचारके लिए कह रहे हैं।

भरतेश्वरने बाहुबलिसे पुनः कहा कि भाई ! मल्लयुद्धकी तो जरूरत ही क्या है ? पिताजीने तुम्हारा नाम ही भुजबली रखा है। वह असत्य किस प्रकार हो सकता है ? भुजबलमें तुम प्रबल हो, मुझे सहज उठा सकते हो ! पिताजीने मेरा नाम भरतेश रखा है, मैं भरतभूमिका अधिपति हुआ। तुम्हारा नाम भुजबलि रखा है, तो भुजबलसे मुझे तुम उठाओगे ही।

मंत्री-मित्रोंने विचार किया कि भरतेश्वर भाईको समझानेके लिए कह रहे हैं। भुजबलिका अर्थ चक्रवर्तीको जीतनेवाला है ? कदापि नहीं। केवल सुज्ञानचिंतामणि सम्राट् अपने सहोदरको समझानेके लिए कह रहे हैं। जैसे वीर, सुवीर, अनंतवीर्य, मेरु, सुमेरु, महाबाहु आदि अनेक नामोंसे अलंकृत आदिप्रभुके पुत्र हैं। क्या उन सबका अर्थ भरतेश्वरको जीतनेवाले हैं ? छोटीसी उँगलीसे परसों सारी सेनाको जिसने उठाया, बड़े-बड़े पर्वतोंको सूखे पत्तेके समान जो उठा सकता है, उसके लिए इस कामदेवको उठानेकी क्या बड़ी बात है ? सारी सेनाने मिलकर इनकी छोटीसी उँगलीको सीधी करनेके लिए अपनी सारी शक्तिको लगाकर खींचा, परंतु ये तो अपने सिंहासनसे जरा हिले तक भी नहीं। सरकनेकी बात तो दूर। ऐसी अवस्थामें क्या यह कामदेवको नहीं उठा सकता है ? यह कैसी बात ? लाख स्त्रियोंको तृप्त करनेका सामर्थ्य चक्रवर्तीमें है, कामदेवको केवल आठ हजार स्त्रियोंको तृप्त करनेका सामर्थ्य है। इसीसे स्पष्ट है, तथापि छोटे भाईको प्रसन्न करनेके लिए सम्राट् इस प्रकार कह रहे हैं। विशेष क्या ? भरतेश्वर जो बत्तीस ग्रास आहार लेते हैं, उससे एक ग्रास प्रमाण पट्टरानी लेती है, पट्टरानी जो एक ग्रास लेती है उसे सारी सेना मिलकर लेवें तो भी पचा नहीं सकती है। फिर यह कामदेव उसे क्या ले सकता है ? वह आहार पर्वतप्राय नहीं है, दिव्यान्न है, उसमें दिव्यशक्ति है। ऐसी अवस्थामें भी उपर्युक्त बातें सम्राट्ने उसे समझानेके लिए कहा।

इस प्रकार सर्व सेनामें सब लोग आपसमें बातचीत कर रहे थे। भरतेश्वरने कहा कि भाई ! अब अपने मुखसे मैंने कहा कि मैं हार गया, तुम जीत गये, फिर अब क्रोधकी क्या आवश्यकता है ? भाई ! हृदयको शांत करो।

इस प्रकार भरतेश्वरने जब अपनी हार बताई, दशदिशाओंमें एकदम अंधकार छा गया। आगके बिना धूर निकला। क्यों नहीं ? मनुरत्न सम्राट्को जब दुःख हुआ, ऐसा क्यों नहीं होगा ? सेना घबरा

गई। बाहुबलिने मनमें विचार किया कि सचमुचमें मैंने यह अच्छा विचार नहीं किया है, भाईके प्रति इस प्रकार द्रोहविचार नहीं करना चाहिए था। बाहुबलिने अभीतक सन्मुख होकर भरतेश्वरको नहीं देखा था। भरतेश्वरने पुनः बाहुबलिको प्रसन्न करनेके लिए कहा

भाई! सुनो, मैंने इस चक्ररत्नकी अभिलाषा नहीं की थी, आयुध-शालामें वह अपने आप उत्पन्न होकर उसने मुझे सारे देशमें भ्रमण कराया व आप लोगोंके हृदयको दुखाया। मैं इन सब संपत्तियोंको पुण्य-कर्मके फल जानकर उदासीनभावसे देख रहा हूँ, मुझे बिलकुल लोभ नहीं। तुम इनको स्वीकार करो। तुम ही राजा हो। तुम राजा होकर अपने राज्यमें रहो, मैं तुम्हारे अधीनस्थ राजा होकर तुम्हारे लिए हूँ, तुम्हारे दिग्विजयके लिए गया और समस्त षट्खंडको वशमें करके आया लो, यह सब राज्य, सेना वगैरह तुम्हारे ही हैं। ये सब राजा तुम्हारे हैं। तुम्हारा मैं भाई हूँ इसका विचार नहीं, परन्तु तुम मेरे भाई हो इसका विचार मुझे है, इसलिए भाईके भाग्यको आँखभरके देखकर मैं संतुष्ट होऊँगा। इस राज्यपदको स्वीकार करो। अयोध्यामें तुम सुखसे राज्य करो, मुझे एक छोटासा राज्य देकर सुखसे अलग रखो। यह मैं दुःखके साथ नहीं बोल रहा हूँ, पुरुपरमेशके चरणकी शपथ है। मुझे अगणित सेवकोंकी जरूरत नहीं। मेरे कामके लायक परिवार व सेवकोंकी व्यवस्था कर मुझे अलग रखो। तुम्हारे मनको प्रसन्न करनेके लिये यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, इसके लिए निरंजनसिद्ध ही साक्ष है। कंजास्त्र! भाई, इससे अधिक बोलनेकी मेरी इच्छा नहीं, स्वीकार करो इस राज्यको! "बाहुबलि! परित्याग करो!" भरतेश्वर भाईको शान्त करनेके लिए कह रहे थे।

बाहुबलि भी मनमें ही लज्जित होने लगा। अब सीधा खड़े होकर भरतेश्वरकी ओर देखनेके लिए भी उसे संकोच हो रहा था। पुनः भर-तेश्वरने उस चक्ररत्नको बुलाकर कहा कि चक्ररत्न! जाओ, अब तुम्हारी मुझे जरूरत नहीं, तुम्हारा अधिपति यह बाहुबलि है, उसके पास जाओ। इस प्रकार भरतेश्वरके कहनेपर भी वह आगे नहीं बढ़ा, क्योंकि उसे धारण करनेका पुण्य बाहुबलिको नहीं था। भरते-श्वरको छोड़कर जानेतक भरतेश्वर भी हीनपुण्य नहीं थे। अतएव बुलाते ही भरतेश्वरके सामने आकर खड़ा हुआ। आगे नहीं गया। भरतेश्वरको पुनः सहन नहीं हुआ। फिर भी क्रोधसे कहने लगे कि अरे चक्रपिशाच! मैं अपने भाईके पास जानेके लिए बोलता हूँ, तो भी

नहीं जाता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। जाओ, मेरे पास मत रहो, इस प्रकार कहते हुए उसे धक्का देकर आगे सरकाया। तथापि भरतेश्वरका पुण्य तो क्षीण नहीं हुआ था, और चक्ररत्नको पाने योग्य सातिशय पुण्य बाहुबलिने भी नहीं पाया। अतएव वह आगे नहीं बढ़ा, परन्तु सम्राट्ने जबर्दस्तीसे उसे धक्का दिया, इसलिए सरककर थोड़ी दूरपर बाहुबलिके पास जाकर खड़ा हुआ। चक्ररत्न सदृश पुण्यपदार्थका अपमान हुआ। भूकम्प हुआ, धूमकेतु अकालमें दृष्टिगोचर हुआ। सूर्यबिम्ब भी मन्दकांतिसे संयुक्त हुआ! आठों दिशाओंमें दुःखपूर्ण शब्द हुआ। सातिशय पुण्यशालीने अल्पपुण्यशालीकी सेवाके लिए चक्रको भेजा, इसलिये यह सब हुआ। महान् पुण्यशाली सम्राट्के पुण्योदयसे षट्खंड वशमें हुआ। यदि उस पूर्वपुण्योपार्जित साम्राज्यको जब हीन पुण्य वालेको वह देव तो सत्पथका विनाश होकर कापथकी उत्पत्ति होती है। फिर इस प्रकारका महोत्पात हो तो आश्चर्यकी क्या बात है? अनहोने कार्यको होने योग्य समझकर महापुरुष प्रवृत्ति करें तो लोकमें अद्भुत बातें क्यों नहीं होगी? बाहुबलि भी मनमें विचार कर रहे थे कि छी! मैंने बुरा किया।

गरुड़मन्त्रसे विष जिस प्रकार उतरता है, उसी प्रकार भरतेश्वरके मृदुवचनोंको सुनकर बाहुबलिका क्रोधविष उतर गया। हृदय शान्त हुआ। चढ़ाये हुए फणाको जिस प्रकार सर्प नीचे उतारता है, उसी प्रकार पहिलेका गर्व उतर गया। चित्त शान्त हुआ। हा! भाईके साथ विरोधकर बड़े भारी अपयशको प्राप्त किया। इस प्रकार विचार करते हुए बाहुबलि सीधा मुखकर खड़े हुए। तथापि भाईकी तरफ देखनेके लिये संकोच हो रहा था। नीचे मुख करके खड़ा है। नाकपर उँगली रखकर विचार करने लगा कि मैं बहुत ही अपहास्यके लिए पात्र बना। मेरे बड़े भाईके साथ बहुत-बहुत द्रोह किया, बुरा किया।

जिस समय बाहुबलि सीधा होकर खड़ा हुआ तब सब लोगोंको इतना संतोष हुआ कि शायद अपने ऊपरका एक भार ही कम हुआ। उनको निश्चय हुआ कि अब युद्ध नहीं होगा। दोनों पिताओंके युद्धको देखनेका पाप हमें प्राप्त हुआ है, इस परितापसे खड़े हुए अर्ककीर्ति, महाबलकुमार आदिके मुख भी कान्तिमान् हुए। मल्लयुद्धके सिवाय इन लोगोंको गर्वगलित नहीं होगा, इस बातकी प्रतीक्षा करनेवाले मंत्रीमित्रोंको भी केवल बातोंमें ही जीतनेवाले चक्रवर्तीके चातुर्यको

देखकर आश्चर्य हुआ। उन लोगोंने भी सम्राट्की बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की।

बाहुबलिकी उग्रता कहाँ? शान्तिसे आकर मृदुवचनोंसे उसके क्रोधको शान्त करनेकी भरतेशकी बुद्धिमत्ता कहाँ? किसी भी तरह भरतकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकते। बोलनेकी गम्भीरता, उपदेश देनेकी कला, सहोदर प्रेम और वात्सल्यपूर्ण बातोंसे जीतनेका विवेक सचमुचमें असदृश है। सारी सेनाने मुक्तकंठसे भरतेशकी प्रशंसा की।

युद्धभेरी बजानेके लिए सन्नद्ध होकर भेरीकार खड़े थे। वे अलग हट गये। एक आसन वहाँपर रखा गया। भरतेश्वर उसपर विराजमान हुए। मोतीका छत्र रखा गया। बाहुबलि धूपमें खड़ा है, यह भरतेश्वरको सहन नहीं हुआ, भरतेश्वरने आज्ञा की कि उसके ऊपर एक छत्र धरा जाय, उसी प्रकार सेवकोंने किया। भरतेश्वरका भ्रातृप्रेम सचमुचमें अद्‌भुत है। उस समय महाबलकुमारने रत्नबलराजको इशारेसे बुलाया। रत्नबलराज भी दौड़कर बड़े भाईके पास आगया। रत्नबलकुमारसे भरतेश्वरके चरणोंमें नमस्कार कराकर महाबलराजने निवेदन किया कि स्वामिन्! यह मेरा छोटा भाई है। भरतेश्वरने उसे बहुत प्रेमसे लेकर गोदमें रख लिया। उसे अनेक प्रकारके उत्तम पदार्थोंको देकर कहा कि बेटा! जबतक यह कार्य पूर्ण न हो तबतक तू अपने भाइयोंके पासमें रहो।

नाकके अग्रभागपर उँगलीको रखकर बाहुबलि अपनी दुर्वासना व दुश्चरित्रपर मन-मनमें ही खिन्न होने लगा। क्योंकि वह आसन्न मोक्षक है। बाहुबलि मनमें पश्चात्ताप करते हुए विचार करने लगा कि हाय! मैं पापी हूँ। बड़े भाईके साथ विरोध कर कुलके लिए लोकापवादको उपस्थित किया। सचमुचमें कषाय बहुत बुरी चीज है, वह सबको बिगाड़ देती है। क्या मेरे भाई मेरे लिए शत्रु हैं? हाय! दुष्ट कर्मने मेरे साथ धोखा किया। उग्रभावने मेरे साथ खड़े होकर इस प्रकार लोकापवादके लिए पात्र बनाया। मेरे दुराग्रहके लिए धिक्कार हो। दिव्य आत्मानुभवी मेरे भाईके भ्रातृवात्सल्यको जरा देखो, व्यर्थ ही मैंने अन्यथा विचार किया। हा! मैंने लोकके लिए असम्मत कार्यका विचार किया। मुझे समझमें नहीं आता कि पिताजीने मेरा नाम उन्मत्त न रखकर मन्मथ क्यों रखा? पिताजीने सोच-समझकर मेरा नाम मन्मथ रखा है। पृथु (स्थूल) कषायको मैंने धारण किया है। उससे मेरे मनमें विशिष्ट व्यथा हुई। उस दुःखपूर्ण मनको मैंने इस समय मथन

किया है। अतएव मुझे मन्मथके नामसे कहनेमें कोई हर्ज नहीं है। देखो कर्मकी गति विचित्र है। कहाँ तो मैं बहुत उग्रतासे युद्धके लिए तैयारीसे आया और कहाँ युद्धरंगमें आकर खड़ा हुआ! और भाईके मृदु वचनको सुनकर क्षणमें शांत हुआ! सचमुचमें कर्मकी दशा क्षण-क्षणमें बदलती है। मंत्री व मित्रोंने कितने विनय व अनुनयसे मुझे समझाया, मातुश्रीने कितने प्रेमसे उपदेश दिया। मेरी समस्त रानियोंने कितने प्रेमसे कहा, परंतु किसीका न सुनकर सबको फँसाकर चला आया। जिन! जिन! मैं बहुत बड़ा दुष्ट हूँ। यह भी जाने दो! मेरे भाईके पुत्र मुझे देखनेके लिए आये। तब भी मेरा हृदय नहीं पिघला। मैंने उनका तिरस्कार किया, सचमुचमें मैं मदन नहीं हूँ, मेरा हृदय पत्थरका है। अर्हन! मेरे लिए धिक्कार हो। सब लोगोंने नीतिके उपदेशको देते हुए तुम्हारे भाई है, अग्रज है, इत्यादि शब्दसे भरतेश्वरको कहा, परंतु मैंने तो वह है, यह है, राजा है, चक्रवर्ती है आदि व्यंग शब्दोंसे ही उसका संकेत किया, भाईके नामसे नहीं कहा, कितना कठोर हृदय है मेरा! लोकके सामने बड़े भाईने अपनी हार बताई। चक्ररत्नको धक्का दिया गया। त्रिलोकमें विशिष्ट चक्ररत्नका अपमान हुआ। यह सब मेरे कारणसे हुआ, सचमुचमें यह मेरे लिए लज्जाकी बात है। अपयशरूपी कलंक मुझे लग गया। अब इस कलंकको घरपर रहकर धो नहीं सकता। तपश्चर्यासे ही इसे धोना चाहिए, इस प्रकार बाहुबलिने विचार किया। मोहनीय कर्मका उपशम होनेपर इस प्रकार का परिणाम हो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

पुनः विचार करने लगा कि पत्थरके समान मैं भाईके सामने खड़े होकर पुनः राज्य करूँ तो दूसरे राजाओंके ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा और वे क्या विचार करेंगे? इस सभामें जिन राजाओंने मुझे देखा है वे मुझे बहुत ही तिरस्कृत दृष्टिसे देखेंगे।

इसलिए अब दीक्षाके लिए जाना ही अच्छा है। इस प्रकार विचार कर बाहुबलिने भाईकी ओर न देखकर एकदफे शान्त नेत्रोंसे समस्त सेनाको देखा। आकाश और भूतलपर व्याप्त उस विशाल सेनाको जब बाहुबलिने देखा तो सेनाने नमस्कार किया, बाहुबलि लज्जित हुए। उन्होंने विचार किया कि मुझे ये नमस्कार क्योंकर रहे हैं? उन्होंने दूसरी ओर देखा, उधरसे विजयार्धदेव, हिमवन्तदेवने बहुत भक्तिसे बाहुबलिको नमस्कार किया। पुनः बाहुबलिको बहुत बुरा मालूम हुआ। उन्होंने दूसरी ओर मुख फेरा। उधरसे मागधामर, नाट्यमाल,

प्रभासेंद्र आदि व्यन्तरमुख्योंने नस्कार किया। बाहुबलि लज्जासे इधर उधर देखने लगे। दोनों ओरके राजा, मंत्री मित्रोंने एवं पुत्रोंने बाहुबलि को नमस्कार किया तो बाहुबलिने विचार किया कि हाय ! अपयशका पर्वत ही आकर खड़ा हो गया। क्या करूँ ?

अब सेनाकी ओर देखना बंद करके नीचे मुँहकर खड़े हो गये। मनमें विचार करने लगे कि अब भैयासे अपने मनकी बात साफ-साफ कह देना चाहिये।

पाठकोंको इस प्रकरणको देखकर कर्मकी विचित्र गतिपर आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता है। होनहार प्रबल है, उसे कौन टाल सकता है। भरतेश्वरने कितने ही प्रकारसे प्रयत्न किया कि भाईके चित्तमें कोई क्षोभ न होकर अपना कार्य हो जाय। वे पहिलेसे चाहते थे कि दूसरे सहोदर जिस प्रकार गये उस प्रकार यह भी नहीं चला जाए। अतएव सर्व कार्योंमें कुशल चतुर दक्षिणांकको ही उस कार्यके लिए भेजा। उसने खूब प्रयत्न किया, सब व्यर्थ गया। मंत्रीमित्रोंने हरतरह विनय व अनुनयसे प्रार्थना की। वह भी ठुकरा दी गई। माताने बहुत ही हृदयंगम उपदेश किया। उनको भी धोखा दिया। ८ हजार स्त्रियोंकी प्रार्थना व्यर्थ गई। अर्ककीर्ति आदि पुत्रोंको दर्शन भी नहीं मिल सका। अनेक अपशकुन होनेपर भी अवहेलना की गई। मानकषाय प्रबल है। वह बड़े-बड़े मोक्षगामियोंको भी तत्व-विचारसे विमुख कर देता है। उस गर्वपर्वतपर चढ़नेके बाद अपना सगा भाई भी शत्रुके रूपमें दिखने लगता है। हितैषी माता भी अहित करनेवालेके समान दिखती है। कषाय बहुत बुरी चीज है। उसने भाईको सामने युद्धसन्नद्ध खड़ा कर दिया।

युद्धका निश्चय हुआ। उसमें भी तीन धर्मयुद्धका निश्चय हुआ। युद्ध प्रत्यक्ष न होनेपर भी भरतेश्वरने अपने सहोदरके मनको शान्त करनेके लिए अपनी हार बताई और चक्ररत्नको बाहुबलिकी सेवामें जानेके लिए धक्का दिया। यह प्रसंग ग्रंथांतरोंके कथनसे व्यत्यस्त होनेपर भी ग्रंथकारने इसे बड़ी खूबीके साथ वर्णन किया है। समन्वय दृष्टिसे विचार करनेपर यह भेद विरुद्ध नहीं दिखेगा। कदाचित् स्थूल-दृष्टिसे विरोध दिखे तो भी ग्रंथकारके हृदयमें स्थित भरतराजर्षिकी भक्ति ही इस कथनके लिये कारण है, और कुछ नहीं। एक तरफ बाहु-बलिका इतना कठोर व्यवहार ! दूसरी ओर भरतेश्वरकी मर्यादातीत कोमलनीति ! यह दोनों बातें देखने व विचार करने लायक हैं।

भरतेश्वरने अपने व्यवहारसे सिद्ध कर दिया कि कठिनसे कठिन

हृदयको भी मृदुवचनोंके द्वारा पानी बना सकते हैं। अभिमान पर्वतपर चढ़े हुए मनुष्यको भी शान्त व विनयपूर्ण हृदयसे नीचे उतार सकते हैं। अभिमानीको देखकर मानीका मान चढ़ता है। निरभिमानी मंदकषायी को देखकर वह कैसे चढ़ सकता है? आत्मभावक पुरुषोंका हृदय, काय, व्यवहार, वचन, वृत्ति व प्रवृत्ति आदि सर्व बातें निराली ही रहती हैं। उनका प्रभाव किस समय किस आत्मापर क्या किस प्रकार होता है। यह पहिलेसे कहनेमें नहीं आ सकता है। वह अचिंत्य है। भरतेश्वर को इन बातोंका विशिष्ट अभ्यास है। अतएव अजेय शक्तिको भी जीतनेका धैर्य उनमें है। वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन्! तुम अपनी बोली, अपनी दृष्टि व खेलसे पापरूपी पर्वतको चकनाचूर करके लोकाधिपत्यको प्राप्त करते हो, अतएव हे चिदम्बरपुरुष! अन्तरंगमें अविरत होकर निवास करो, यही मेरी प्रार्थना है। हे सिद्धात्मन्! यह शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, इस प्रकारके तत्वार्थको बार-बार कहकर संपूर्ण प्राणियोंके हृदयके अविवेक को आप दूर करते हैं। हे जगन्नाथ! मुझे सदा विवेकपूर्ण वचनोंको बोलनेका सामर्थ्य प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वर सदा सर्वविजयी होते हैं।

इति राजेंद्रगुणवाक्यसंधि.

— • —

अथ चित्तजनिर्वेगसंधि

भरतेश्वरने विचार किया था कि यदि युद्धमें भाईका भंग करूं तो वह दीक्षा लेकर चला जायगा। अतः प्रत्यक्ष युद्ध न करके, इस प्रकार के वचनोंसे उसके हृदयको शान्त किया जाय। परन्तु कुछ लोग साक्षात् युद्ध किया, इस प्रकार वर्णन करते हैं। जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध व मल्लयुद्ध में अपने छोटे भाईकी जीत बताकर भरतेश्वरने अपनी हार बताई, परन्तु अन्यत्र वर्णन मिलता है कि साक्षात् युद्ध करके ही बाहुबलिने भरतेशको हराया। परन्तु विचार करनेकी बात है कि क्या कामदेव चक्रवर्तीको जीत सकता है?

कामदेवमें जगत्को मोहित करनेका सामर्थ्य है। फिर क्या, षट्खंडाधिपतिको जीतनेका सामर्थ्य है? चाँदनीमें उज्ज्वल प्रकाश हो सकता है, तो क्या वह सूर्यकिरणोंको भी फीका कर सकती है? कभी

नहीं। अतएव कामदेवकी शक्ति व सार्वभौम सम्राट्की शक्ति कभी समान नहीं हो सकती है। कामसेवन, भोजन, पृथ्वी व पर्वतस्थित सर्व सेनाओंके पालनमें कामदेव चक्रवर्तीकी सामना नहीं कर सकता है।

चक्रवर्तीने सर्व सेनाओंके सामने अपनी पराजयको स्वीकार किया, चक्ररत्नको बाहुबलिके पासमें जानेके लिए धक्का दिया। स्वतः छोटे भाई ही बड़े भाईके लिए चक्री बन गया। यही कालचक्रका दोष है। चक्रको जिस समय भरतेश्वरने धक्का दिया, व जाकर थोड़ी दूरपर ठहर गया, क्योंकि उसे धारण करनेका पुण्य बाहुबलिको नहीं था और उसे खोलनेकी पुण्यहीन अवस्था भरतेश्वरको नहीं आई थी। परन्तु कल्पनाकी जाती है कि वह चक्ररत्न कामदेवकी सेवामें जाकर खड़ा हुआ। लोकमें नियम है कि अर्धचक्रवर्ती जिस समय अपने शत्रुके प्रति चक्रका प्रयोग करता है, वह शत्रुके वशमें होकर अर्धचक्रवर्तीको ही मार डालता है परन्तु सकलचक्रवर्तीका चक्र सामनेके राजासे हार कभी खा सकता है, कभी नहीं।

जब सम्राट्ने तीन मृदुयुद्धोंके लिए मंजूरी दी थी फिर वह चक्ररत्नके द्वारा भाईपर आक्रमण कैसे कर सकते हैं, क्या भरतेश सदृश भव्यात्मा अपने भाईके प्राणघातकी भावना कर सकते हैं? युद्धमें भाई का भंग न हो, एवं उसके चित्तमें दुःख होकर वह दीक्षाके लिए नहीं चले जावें इसलिए भरतेश्वरने सद्गुणपूर्ण वचनोंसे ही उसे जीत लिया। दीक्षा लेनेके बाद कुछ क्षणोंमें ही मुक्ति पानेवाले मंदकषायीके हृदयमें क्रूर गुण कैसे हो सकते हैं?

बाहुबलिके चित्त बराबर व्यथित हो रहा है। उसे बहुत अधिक पश्चात्ताप हुआ। उसने भरतेशकी ओर शांत हृदयसे देखा व कहने लगा कि भाई मुझे क्षमा करो! मेरे सर्व अपराधोंको भूल जाओ। उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि भाई! तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं है। तुम्हारी किसी भी वृत्तिपर मुझे असंतोष नहीं है। मेरे हृदयमें बिलकुल तुम्हारे लिए अन्यथाभाव नहीं है।

बाहुबलि – भाई! मैंने तुम्हारे प्रति दूषण-व्यवहार किया, तो भी आपने तो मेरे प्रति भूषण-व्यवहार किया। दोष मेरे हृदयमें थे। इसलिए वे मुझे ही दुःखी बना रहे हैं। आपके हृदयमें दोष न होनेसे परमसंतोष हो रहा है।

भरतेश्वर -कामदेव! भाई! ऐसा मत बोलो! तुम और मैं कोई अलग नहीं हैं। इस प्रकार दुःखी मत होओ, मुझे बिलकुल कष्ट नहीं हुआ है।

बाहुबलि--मुझे किसी भी बातकी चिंता नहीं है। परन्तु मेरी एक ही इच्छा है, उसे स्वीकार करना चाहिए।

भरतेश्वर- भाई ! बोलो, तुम क्या चाहते हो ? मैं तुम्हारी सर्व इच्छाओंकी पूर्ति करूँगा।

बाहुबलि-भैया ! मुझे दीक्षा लेनेके लिए अनुमति मिलनी चाहिए। मैं तपोवनको जाऊँगा।

सम्राट् भरतेश इसे सुनकर अपने आसनसे एकदम उठे। बाहुबलिको आलिंगन देकर कहने लगे कि भाई ! इस एक बातको भूलकर दूसरी कोई बात हो तो बोलो। आज दीक्षाके लिए जानेका क्या कारण है ? युद्धमें भंग हुआ या क्या तुमपर आक्षेप करते हुए मैं बोला हूँ। मोक्षकार्यको अपन बादमें विचार करेंगे। आज इस क्षोभकी जरूरत नहीं है।

बाहुबलि- भंगको कुछ भी नहीं हुआ। परन्तु युद्धरंगमें आपके प्रति विरोध दिखाने तककी क्षुद्रताको मैंने दिखाया। क्षणभंगुर कर्मके वशीभूत होकर मुझे ऐसा करना पड़ा जिससे मुझे दुःख हुआ। इसलिए मेरे अंतरंगमें पूर्ण ग्लानि हुई है अतः मैं जाऊँगा।

भरतेश्वर- मेरा सहोदर यदि मेरे सामने युद्धक्षेत्रमें खड़ा हो जाय तो क्या बिगड़ा ? वह तो मेरे लिये एक विनोदकी बात है ! परन्तु विचार करनेकी जरूरत क्या है ? युद्धके इशारेकी भेरी नहीं बजी थी।

बाहुबलि—भैया ! शुष्कचर्मकी भेरीका शब्द नहीं हुआ तो क्या हुआ ? परन्तु निष्करण वृत्तिसे मैंने जो दुष्कराचरण किया उसे तो लोककी मुखभेरी किंकिदके समान बोल रही है। यह क्या कम है ? भैया ! तुम्हारे मुखसे जो बोलनेके लिए योग्य नहीं है ऐसे लघुवाक्यों-को मैंने बुलवाये। मेरी निष्ठुरतासे चक्ररत्न भी कांतिहीन होकर एक तरफ जाकर खड़ा रह गया। इससे अधिक भंगकी क्या जरूरत है ? हद हो गई, बस ! बस !

भरतेश्वर--भाई ! इसमें तुम्हारा क्या अपराध है ? हुंडावस-र्पिणीके दोषसे मेरे लिये इस बातको पिताजीने पहिलेसे मुझे कहा है। इसलिए तुम अन्यथा विचार मत करो।

बाहुबलि- भैया कालदोषसे घटनेवाली दुर्घटना मेरे द्वारा प्रकट हो गई, इस बातको लोक अब नहीं भूल सकता है। अब इस कलंकको कैलासमें जाकर ही धो सकता हूँ, अब देरी न कर मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करो।

भरतेश्वर भाई ! इस बातको मत बोलो, मेरे मनको प्रसन्न करना तुम्हारा कर्तव्य है। मुझे प्रसन्न करनेके बाद तुम जा सकते हो। इसी प्रकार भरतेश्वरने बाहुबलिसे बहुत प्रेमसे कहा।

बाहुबलि भैया ! मैं दीक्षा लेकर मोक्षमंदिरमें तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। आज पिताजीके पास जाता हूँ। स्वीकार करो। अब संसार-सुखोंकी लालसा मेरे चित्तमें नहीं रही। आप लोगोंके साथ जो ममत्व परिणति थी वह भी चित्तसे हट गई। जो मन मुड़ गया उसे अब तेज कैसे कर सकता हूँ ? इसलिये तुम मुझे प्रेमसे जानेके लिये कह दो। यही मैं तुमसे चाहता हूँ। जिस देहने बड़े भाईके विरोधमें खड़े होनेके लिये सहायता दी उस देहको तपश्चर्याके द्वारा मिट्टीमें मिलाऊँगा। जिस कर्मने मुझे धोका दिया और जिसने मुझे जलाया उस कर्मको अनुभव न करके जलाऊँगा और मोक्षसाम्राज्यका अधिपति बनूँगा। तुम देखो तो सही ! भैया ! दिनपर दिन शक्ति बढ़ती नहीं। विरक्ति क्या हम चाहें तब आ सकती है ? इसलिये आज मुक्तिके लिये उपयुक्त साधनकी प्राप्ति हुई है। अतः आत्मसाधन कर लेना महामुक्ति है। इसलिये मुझे रोको मत, भेज दो।

भरतेश्वर-- भाई ! ऐसा नहीं हो सकता। तुम और मैं कुछ दिन राज्यसुखको भोगकर फिर दीक्षा लेकर जायेंगे। मैं तुम्हारे भरोसेपर ही हूँ परन्तु तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो, वह ठीक नहीं है। भाई ! विचार करो। मेरे छह भाई तो पिताजीके साथ ही चले गये। ९३ भाई कल ही दीक्षा लेकर चले गये। यदि तुम भी चले जाओगे तो मैं भाग्य-हीन हो जाऊँगा। इसलिये मेरी बातको स्वीकार करो। जानेका विचार छोड़ दो।

बाहुबलि भैया आपको कौन रहकर क्या कर सकते हैं ? अपने कुमार तो हैं, वे सब योग्य हैं। सब बातोंकी समृद्धि है, इसलिये मुझे भेजना ही चाहिये। भैया ! अब विशेष आग्रह मत करो, भगवान् आदिनाथ स्वामीकी शपथ है, आपके चरणोंकी शपथ है। मेरे गुरु श्री हंसनाथ (परमात्मा) ही इसके लिये साक्षी हैं। मैं अब नहीं रह सकता, मैं अवश्य दीक्षाके लिये जाऊँगा। संतोषके साथ भेजो, अब मुझे मत रोको। इस प्रकार कहते हुए भरतेशके चरणोंमें बाहुबलिने अपना मस्तक रखा।

भरतेश्वरके आँखोंसे धाराप्रवाह रूपसे अश्रुधारा बह गई ! कहने लगे कि भाई ! तुम जो चाहते हो सो करो।

इसे सुनते ही हर्षके साथ बाहुबलि उठा और अपने बड़े पुत्र महाबलकुमारको उठाकर भरतेशके चरणोंमें रखा।

भरतेश्वर रो रहे हैं। परन्तु बाहुबलि हँस रहा है, बंधनबद्ध हाथी को छोड़नेपर जिस प्रकार वह प्रसन्नतासे जंगलको जाता है, उसी प्रकार बाहुबलिने प्रसन्नतासे सबको हाथ जोड़कर वहाँसे समस्त संगको छोड़कर जा रहा है। सेना आश्चर्यके साथ उसे देख रही है।

इतनेमें एक बड़ी दुर्घटना हुई। भरतेशके बड़े भक्त कुटिलनायक शठनायक दो मित्रोंको बाहुबलि भरतेशके विरुद्ध होकर खड़ा हुआ, इस बातका बहुत दुःख हुआ था। सेनाके समस्त सज्जनोंकी दृष्टिमें भरतेश व बाहुबलि दोनों स्वामी हैं। परन्तु कुटिलनायक शठनायकको सम्राट्के प्रति अत्यधिक भक्ति है। इसलिए दूसरोंकी उन्हें परवाह नहीं है। वे समझ रहे हैं कि हमारे स्वामी भरतेशके लिए अनुकूल होता तो यह बाहुबलि हमारे लिए स्वामी हैं, जब हमारे स्वामीके साथ इसने विरुद्ध व्यवहार किया तो यह हमारा स्वामी कैसे हो सकता है? इसलिए कुछ दूर वे दोनों बाहुबलिके पीछे गये व बोले।

हे भागफूट बाहुबलि! सुनो, भरतेश्वरको नमस्कार कर सुखसे तुम नहीं रह सके, जाओ, दीक्षाके लिए जाओ! अब भिक्षाके लिए तो भरतेशके राज्यमें ही आना पड़ेगा न? सोनेके लिए, खानेके लिए तपश्चर्याके लिए भरतेशके राज्यको छोड़कर अन्य स्थान तुम्हारे लिए कहां है? जाओ! बाह्यविवेकियोंके राजा! जाओ!

राज्यमें रहकर आरामसे सुख भोगनेका भाग्य तुम्हें नहीं है, अब फिरकर खानेका समय आ गया है। भाईके द्रोहके कर्मफलको इसी भवमें अनुभव करो, पधारो, पधारो! राजन्! भीख मांगकर भोजन करो, घांस-कांटोंसे भरे जंगलमें सोओ। यह तुम्हारी दशा हो गई है। इस प्रकार बाहुबलिको चिढ़ाते हुए हँस-हँसकर ताली बजाकर बोल रहे थे।

हृदयमें शांतिको धारण करते हुए बाहुबलि जा रहा था। परन्तु इनके क्रोधोत्पादक वचनोंको सुनकर जरा पीछे फिरकर कोपदृष्टिसे उसने देखा। फिर मनमें विचार आया कि तपश्चर्याके लिए मैं निकला हूं। अतः गम खाना मेरा कर्तव्य है।

बाहुबलिके मित्र, मंत्री व सेनापतिने भी भरतेश्वरसे प्रार्थना की कि हमें भी दीक्षा लेनेके लिए अनुमति दीजियेगा, भरतेश्वरने बहुत रोकनेके लिए प्रयत्न किया परन्तु वे राजी नहीं हुए। वे बाहुबलिको

छोड़कर कैसे रह सकते हैं, क्योंकि बाहुबलिके वे हितैषी हैं। फिर भरतेश्वरने मंत्री व सेनापतिसे कहा कि छोटी माँको बाहुबलिके जानेसे बड़ा दुःख होगा। इसलिए उनके दुःखको शांत [illegible] है, तबतक आप लोग रुक जावें। बादमें दीक्षा लेवें। इस प्रकार मंत्री व सेनापतिको रोककर बाकीके मित्रोंको अनुमति दे दी। वे मित्र अपने पुत्रोंको भरतेश्वरके चरणोंमें छोड़कर दो विमान लेकर बाहुबलिके पास पहुँचे। बाहुबलिको कहा कि आप एक विमानपर चढ़ जावें। बाहुबलिने कहा कि मेरे लिए स्वतन्त्र विमानकी क्या जरूरत है? आप सब लोग एक ही विमानपर चढ़कर जाएँ। तब उन लोगोंने प्रार्थना की कि कैलास पर्वतपर्यंत आपको राजतेजमें ही जाना चाहिए। हम लोग एक विमानपर बैठेंगे।

इस प्रकार दो विमानोंपर चढ़कर बाहुबलि व उनके मित्र कैलास पर्वतपर पहुँचे व भगवान् आदिप्रभुके दर्शन कर उनसे योगिरूपको धारण कर लिया। इससे अधिक क्या कहें?

इधर सम्राट् अश्रुपात करते हुए बाहुबलिके दोनों पुत्रोंके हाथ धर कर राजमंदिरकी ओर बड़े दुःखके साथ गये।

बाहुबलि दीक्षा लेकर चले गये यह समाचार सुनते ही यशस्वती-महादेवीको बड़ा दुःख हुआ। वह मूर्छित हो गई, शैत्योपचारसे उसे जागृत किया तो फिर भी अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी। हा! भैया! दीक्षा लेकर चला गया! हा! मेरा छोटा हाथी मदोन्मत्त होकर चला गया! क्या उसे रोकनेवाले कोई नहीं मिले? सारे अंतःपुरमें ही रोना मचा हुआ है। भरतेश्वर दोनों पुत्रोंको माताके चरणोंमें रखकर दुःखके साथ बैठे हैं।

इतनेमें रात्रि हुई। वह रात्रि दुःखजागरणमें ही बीत गई। प्रातःकालमें झंझानिल नामक दूतने पौदनपुरमें जाकर समाचार दिया। यह समाचार सुनते ही सुनंदादेवी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अनेक प्रकारसे उपचार किया गया। जागृत होकर पूछती है कि झंझानिल! कामदेव मेरा बेटा किधर चला गया? क्या वह पागल दीक्षा लेकर हम लोगोंको छोड़कर चला गया? क्या उसे दीक्षा ही पसंद आई? क्या सचमुचमें गया?

झंझानिल कहने लगा कि माता! इसमें सन्देह नहीं। मैं स्वतः कटकमें देखकर आया हूँ। वे अपने मित्रोंके साथ पिताजीके पास चले गये हैं। वहाँपर दीक्षा लेंगे। सुनंदादेवी पुनः विलाप करती हुई कहने

लगी कि कैसा निष्ठुर हृदय है वह ! मैं बड़े भाईको देखकर आता हूँ ऐसा कहकर चला गया ! क्या वहां जानेपर वैराग्यकी उत्पत्ति हुई ! नहीं हो सकता, झंझानिल ! बोलो ! क्या हुआ !

झंझानिल–माता ! आपका कहना ठीक है । यहांपर यही कहकर गये थे कि मैं बड़े भैयाको देखनेके लिए जाऊँगा । परन्तु वहां जानेपर युद्ध करनेका ही हठ किया । बादमें मित्रोंने मल्ल, जल व नेत्र युद्धका निर्णय किया । इन युद्धोंमें भी भाईका हृदय दुखेगा इस विचारसे भरतेश्वरने प्रत्यक्ष युद्ध नहीं किया । स्पष्ट सब सेना सुनें इस रूपसे कहा कि भाई तुम्हारी जीत हो गई, मैं हार गया । इतना ही क्यों ! भरतेश्वरने स्पष्ट कहा कि "बाहुबलि षट्खंड राज्यका पालन तुम करो मुझे एक छोटासा राज्य दे दो, मैं आनन्दसे रहूंगा।" इससे भी अधिक उन्होंने चक्ररत्नको बाहुबलिकी सेवामें जानेके लिए कहा, जब वह नहीं गया तब धक्का देकर बाहुबलिके पास भेजा। इन बातोंसे स्वतः लज्जित होकर बाहुबलि दीक्षाके लिये चले गये।

इन बातोंको सुनकर पुनः सुनन्दादेवीको दुःख हो रहा है। पुनः-पुनः मूच्छित होती है व जागृत होकर विलाप करती है। बेटा ! तुमने मुझे मारा, तुम्हें अपनी स्त्रियोंका ध्यान नहीं रहा, अपने छोटे पुत्रोंका भी विचार नहीं रहा। इस उमरमें दीक्षा लेना क्या उचित है ? बेटा ! बड़े भैयाके विरोधमें खड़े होकर रणभूमिमें वैराग्य उत्पन्न हो, एवं जवानीमें दीक्षा लो, इस प्रकार भूलकर भी मैंने कभी आशीर्वाद नहीं दिया था। फिर ऐसा क्यों हुआ ? लोकको मोहित करनेवाला तुम्हारा रूप कहां ? तुम्हारा वैभव कहां और यह मुनिवेष कहां ? यह सब स्वप्नके समान मालूम होता है। इस प्रकार बाहुबलिकी माता अनेक तरहसे दुःख कर रही हैं।

इधर कामदेवके अंतःपुरमें जब यह समाचार मालूम हुआ, रानियाँ परवश होकर रोने लगीं। उनको मर्यादातीत दुःख हो रहा है, मोक्ष जानेका समाचार होता तो वे सब निराश हो जातीं। परन्तु दीक्षा लेनेका समाचार होनेसे फिरसे पतिको देखनेकी इच्छा है। अन्तःपुर दुःखमय हो रहा है। विशेष क्या बिजली चमककर मेघकी गर्जना होकर अच्छी तरह बरसात जिस प्रकार पड़ती है उस प्रकार अश्रुजलकी वर्षा उस समय हो रही है। देव ! क्या हमें छोड़कर चले गये ? जीते-जी जानसे मारा हमें ! तुम्हारे लिए अंगनाओंके संयोगसे उपेक्षा हो गई ? क्या मुक्त्यंगनाके संगकी ओर चित्त बढ़ा है ? युद्धस्थानके बहानेसे देव

तुम्हें आगे ले गया, आश्चर्य है ! प्राणकांत ! आपको जो गर्व उद्भव हुआ यह हुंडावसर्पिणीका ही फल है। कामदेव होकर भी जब तुमने स्त्रियों- को मारा तो तुम्हें पुष्पबाण कहना चाहिये या सर्पबाण कहना चाहिये ? देव ! तुम अनेक बार कहते थे कि अपन लोगोंके शरीर दो हैं, आत्मा एक ही है। इस प्रकार कहकर हमारे चित्तको अपहरण किया तो क्या हम लोग अब यहाँ रह सकती हैं ? तुम्हारे पीछे ही आती हैं। हे प्रिय तोते ! हम लोग अब पतिदेवके मार्गमें जाती हैं। हमारा स्मरण तुम अब मत करो। बाणपक्षी ! मयूर ! हे झूला व शय्यागृह। सुन ! तुम्हारे भोगकी हमें अब जरूरत नहीं है। हम योगके लिये जाते हैं। हे लता ! नन्दनवन ! शीतलसरोवर ! कमल ! मारुत ! मत्तालि ! आप लोग भी सुनो, हम लोग पति जिस दिशाकी ओर गये हैं उसी दिशाकी ओर जाती हैं। आप लोग सुखसे रहो। इस प्रकारसे अनेक प्रकारसे विलाप करती हुई सासुके पास आई व सासुके चरणोंमें नमस्कार कर कहा कि माताजी ! आपका पुत्र आगे गया है। हम लोग जाकर उनको समझाकर वापिस लाती हैं। जाते समय उन्होंने हमसे कहा था कि "मैं युद्धके लिए नहीं जा रहा हूँ। बड़े भैयाको नमस्कार कर वापिस आऊँगा" इस प्रकार हमें फँसाकर चले गये हैं, ऐसे धोखेबाजको दीक्षा दी जा सकती है क्या ? हम लोग जाकर मामाजी (आदिप्रभु) से ही इस बातको पूछेंगी, हमें आज्ञा दो। माताजी ! खाया, पीया, मौज किया, असंख्य वैभवका अनुभव किया। अब यहाँ रहनेसे क्या प्रयोजन ? पतिदेव जिस दीक्षाके लिए गये हैं उसी दीक्षाकी ओर हम भी जायेंगी, आज्ञा दो। नेत्र व चित्तके लिए आनन्द उत्पन्न करनेवाले अत्यंत सुन्दर शरीरके प्रति भी तुम्हारे बेटेने उपेक्षा की तो हम लोग इस शरीरको तपश्चर्यामें लगाकर दंडित न करें तो क्या हम जातिक्षत्रियपुत्री हैं ? माता ! देरी क्यों ? हमें भेजो, पतिके जानेके बाद सतियां घरपर रहें यह उचित नहीं है। हम लोग कैलासमें जाकर ब्राह्मीसुन्दरीके पासमें रहेंगी, अनुमति दो।

सुनंदादेवीने कहा कि मैं भी दीक्षाके लिए आती हूँ। मेरे लिए अब यहाँ क्या है ? तथापि भरतेश व बड़ी बहिनको कहकर जाना चाहिए। इसलिए मुझे थोड़ी देरी है, आप लोग आगे बढ़ें। इस प्रकार उनके साथ उनके भाई व विश्वासपात्रोंको साथमें भेजा।

जिस समय सुनंदादेवीने बहुओंको रवाना किया उस समय सुबल- राज नामक ३ वर्षके बाहुबलिका पुत्र आकर रोकर आग्रह करने लगा

कि पिताजीको बताओ। बाहुबलि अनेक बार अपनी गोदपर रखकर उसे खिलाता था। परंतु पिताके नहीं दिखनेसे दादीसे पिताको दिखानेके लिए हठ कर रहा है। उस समय सुनंदादेवीने नौकरोंको बुलाकर कहा कि इसे ले जाओ, बड़ी बहिन यशस्वतीके पास ले जाकर भरतेश्वरको पिताके स्थानमें दिखानेके लिए कहो। तब बालकको कहा कि बेटा! जाओ, सेनाके स्थानमें तुझे पिताजीको दिखा देंगे। बालक उनके साथ चला गया। सेनास्थानमें लेजाकर महलमें स्थित भरतेश्वरके पास बालकको ले गये। बालकको देखनेपर भरतेश्वरका गला भर आया। वहांपर जाते ही पुनः उस बालकने पूछा कि मेरे पिता कहां हैं? लोगोंने भरतेश्वरको बताया, तो बालक मुंह हिलाकर कहने लगा कि मेरे पिता नहीं हैं तथापि बालकको संतोष नहीं हुआ। बालक कहने लगा कि यह मेरे पिता नहीं हैं। मेरे पिता ऐसे हैं, इस प्रकार अपने हरे वर्णके कपड़ेको दिखाकर कहने लगा। भरतेश्वरसे रहा नहीं गया। सुबलि! आओ, मैं तुम्हारे पिताको बताऊँगा, कहते हुए भरतेश्वरने उसे अपनी गोदपर लिया। बच्चेका रोना एकदम बंद होगया। सब लोग आश्चर्यचकित होकर कहने लगे कि न मालूम क्या भरतेश्वरके हाथमें वश्यमोहन विद्या तो नहीं है?

भरतेश्वर बालकसे कहने लगे कि सुबलि! तुम्हारे पिता हम सबके आनंदको भंगकर चला गया। बेटा! तू रोओ मत। इस प्रकारसे छोटे बच्चोंको फेंककर तपश्चर्याको जानेके लिए न मालूम उसका चित्त कैसा हुआ? बेटा! पापीके पेटमें तुम लोग आये। इस प्रकार भरतेश्वरने क्रोधसे आवेशमें कहा। भरतेश्वरकी रानियोंको जब यह मालूम हुआ कि पौदनपुरसे छोटा बच्चा आया है, उसी समय बाहर समाचार भेजा कि उसे अंदर भेजा जाय। भरतेश्वरने कहा कि सुबलि! जाओ, अंदर तुम्हारी दादी हैं, उसके पास जाओ।

इतनेमें बाहुबलिकी स्त्रियाँ विमानपर चढ़कर दीक्षाके लिए आकाश मार्गसे जा रही थीं। उसे देखकर चक्रवर्तीकी सेनाको बड़ा दुःख हुआ। भरतेश्वरकी रानियाँ राजांगणमें एकत्रित होकर उनके गमनको बड़े दुःखके साथ देख रही हैं। भरतेश्वर आँसुओंसे भरी आँखोंसे देख रहे हैं और उन्होंने नाकपर उँगली रखी। इतनेमें एक विश्वस्त दूतने लाकर एक पत्र दिया। पत्रको देखते ही भरतेश्वर महलके अंदर चले गये। पत्रके समाचारको जाननेके लिए सभी रानियाँ वहाँ आ गईं। उनमेंसे

एक स्त्री भरतेश्वरकी अनुमति पाकर उस पत्रको बाँचने लगी। वह पत्र निम्नलिखित प्रकार था----

पौदनपुर राजमहल

मिती. . . . .

श्री सुभद्रादेवी आदि अंतःपुरकी समस्त रानियोंको विनयसे नमस्कार कर इच्छामहादेवी आदि सतियाँ बहुत उल्लासके साथ निम्नलिखित पंक्तियोंको लिखती हैं --

बहिनो ! हम लोगोंको अब इस गार्हस्थिक जीवनसे उपेक्षा हो गई है, अब हम तापसीजीवनको अनुभव करना चाहती हैं। हमारे पतिदेव जिस दिशाकी ओर गये हैं, उसी दिशाकी ओर हम जाना चाहती हैं। इसके लिये आपलोग मनमें बिलकुल चिंता न करें। भावाजी (भरतेश्वर) से बिलकुल विरस नहीं हुआ। हमारे पतिका दैव ही ऐसा था। वही उनको ले गया। कौन क्या करें ? हम लोग अब ब्राह्मीसुन्दरीके पासमें रहकर तपोवनकी क्रीड़ा करेंगी। हमारे समान आप लोग अर्धभोगी न होकर अपने पतिदेवके साथ चिरकाल सुख भोगकर बुढ़ापेमें आत्मसिद्धि कर लेवें, यही हम लोगोंकी कामना है। लोग सब सुखी हों, भोगराज्य आपके लिए रहे, योगराज्य हमारे लिए रहे। हम उसे पाकर उसका अनुभव करेंगी, परमेश ! ते नमःस्वाहा। इति.

—इच्छामहादेवी

पत्रको बाँचनेपर सबको बड़ा दुःख हुआ। भरतेश्वरको भी बड़ा दुःख हुआ। इतनेमें और एक दुःखद घटना हुई। भरतेश्वरके ९३ भाई दीक्षा लेकर जो चले गये थे उस समाचारको भरतेश्वरने मातुश्रीको अभी तक नहीं कहा था, उनका विचार था कि अयोध्याको जानेके बाद ही यह समाचार मातुश्रीको कहें। परन्तु यह समाचार अपने आप यशस्वतीको मालूम हो गया। इसलिए राजमंदिरमें एकदम दुःख का समुद्र ही उमड़ आया।

भरतेश्वर शोकनादको सुनकर मनमें व्याकुलतासे कहने लगे कि हा ! मेरे लिये यह चक्ररत्न क्यों मिला ? यह राज्यपद महान् कष्टदायक है। इस सम्पत्तिके प्राप्त होनेमें क्या प्रयोजन ? सम्पत्तिके मिलनेपर बंधु-बांधवोंको सुख पहुँचाना मनुष्यका धर्म है। अपने कुलके लोगोंको रुलानेवाली सम्पत्तिके लिए धिक्कार हो। अनेक व्यक्तियोंको दुःख देनेवाले राज्यसे गरीब होकर रहना अच्छा है। चित्तमें कलुषता को धारण करनेसे आत्मामें मग्न रहना सबसे अधिक अच्छा है। तब

क्या ? मंत्रीको कहकर अर्ककीर्तिको पट्टाभिषेक कराकर तपश्चर्याके लिए जाऊँ ? छी ! ठीक नहीं । इसे लोक मर्कटवैराग्य कहेगा । समस्त भूमंडलको विजय कर अपने नगरके बाहर उस साम्राज्यपदको फेंककर जाऊँ तो लोग कहेंगे कि भरतेशको देशमें भ्रमण कर पित्तोद्रेक हो गया है। मेरे कारणसे मेरे सहोदर दीक्षाके लिए गये और मैं भी दीक्षाके लिए जाऊँ तो लोग कहेंगे कि यह बच्चोंका खेल है। जितनी सम्पत्ति बढ़ती है उतना अधिक हम रो सकते हैं, यह निश्चय हुआ। मेरे लिए बड़ा दुःख हुआ । इसे शांत करनेका उपाय क्या है ? इस प्रकार भरतेश्वर विचार करने लगे । पुनः अपने मनमें कहते हैं कि संसारमे कोई भी दुःख क्यों नहीं आवे, परन्तु परमात्माकी भावना उन सब दुःखोंको दूर कर सकती है । इसलिए आत्मभावना करनी चाहिए । इस विचार से आँख मींचकर आत्मनिरीक्षण करने लगे ।

मिट्टीमें गढ़ी हुई छाया प्रतिमाके समान आत्मसाक्षात्कार हो रहा है, शांत वातावरण है । आठों कर्मोंकी मिट्टी बराबर नीचे गलकर पड़ रही है । जिस समय अंतरंगमें प्रकाश हो रहा है उस समय विशिष्ट सुखका अनुभव हो रहा है और उसी समय सुज्ञानकी वृद्धि हो रही है। अभिघातज्वरके समान दुष्कर्म कंपित होकर चारों तरफसे पड़ रही है।

गुरु हंसनाथ परमात्मा ही उस समय सम्राट्की चित्तपरिणतिको जानें। न मालूम उस चित्तमें व्याप्त दुःख किधर चला गया ? उस समय भरतेश्वर दस हजार वर्षके योगीके समान थे। पुत्र,मित्र, कलत्र, माता, सेना व राज्यको वे एकदम भूल गये। विशेष क्या ? वे स्वशरीरको भी भूल गये। उस समय उनके चित्तमें अणुमात्र भी परचिंता नहीं है । गुणरत्न भरतेश्वर आत्मामें मग्न थे ।

न मालूम भरतेश्वरने कितना आत्मसाधन किया होगा ? जब-जब सोचते हैं तभी परमात्मप्रत्यक्ष होता है वह राजा घरमें रहनेपर भी कालकर्म उससे घबराते हैं। क्या ही विचित्रता है, महलमें सब रोना मचा हुआ है। सब लोग शोकसागरमें मग्न हैं। परन्तु राजयोगी सम्राट् अकंप होकर परमात्मसुखमें मग्न हैं। बार-बार इनको परमात्मदर्शन हो रहा है ! और दुःख धीरे-धीरे कम होता जा रहा है । इस प्रकार तीन दिन तक ध्यानमें बैठे रहे। लोग आकर देखकर जाते हैं कि अभी उठेंगे, फिर उठेंगे बाहरसे लोग आकर पूछ-पूछकर जाते हैं । परन्तु भरतेश्वर सुमेरुके समान निश्चल हैं। इस बीचमें कुछ लोगोंने उपवास धारण किया,किसीने एकभुक्ति और किसीने फलाहार,

इस प्रकार राजमहलमें व सेनामें नियम लेकर सबने तीन दिन तपश्चर्या के साथ व्यतीत किया। अपनी सेनाके साथ तपमें भरतेश्वर मग्न हैं। इस सामर्थ्यसे स्वर्गलोक भी कंपित हुआ। इस समाचारको सुनकर सुनंदादेवी (छोटी माँ) भी अपने पुत्रको देखनेके लिए आईं। पौदन-पुरमें स्वतः तीन उपवास कर विमानारूढ़ होकर सुनंदादेवी आई हैं और महलमें पहुँचकर उन्होंने भरतेशको देखा। अपनी छोटी माँके आनेपर भरतेश्वरने परमात्माको भक्तिसे नमस्कार कर आँख खोल ली। परन्तु आँखें आँसूसे भर गईं। एकदम उठकर सम्राट्ने छोटी माँके चरणोंमें मस्तक रखा। माता! अपराधीके पास आप क्यों आईं? इस प्रकार दुःखके आवेगसे भरतेश्वरने कहा। उत्तरमें सुनंदादेवी कहने लगीं कि बेटा! इस प्रकार मत बोलो। तुम अपराधी नहीं। तुमने क्या किया? उसने तुम्हारे साथ थोड़ा अभिमान किया व चला गया। इसके लिए तुम क्या कर सकते हो? दोष तो मूर्खोंसे हो सकता है। बेटा! तुमसे क्योंकर हो सकता है?

भरतेश्वर—जननी! मेरी दोनों माताओंको मैंने कष्ट दिया। बहुओंको तपश्चर्याके लिए जाते हुए स्वप्नमें नहीं, प्रत्यक्ष देखा माता! यह सब मेरे कारणसे हुआ न? फिर मेरे लिए दोष क्यों नहीं?

सुनंदादेवी—बेटा! उनका दैव उन्हें लेकर चला गया। हमें भी थोड़ा दुःख हुआ। परन्तु तीन दिनके बाद वह उपशांत हुआ। इसमें तुम्हारा क्या दोष है? भूल जाओ इस दुःखको। मैंने पहिलेसे उसे बहुत समझाया कि तुम युद्ध मत करो, भाईके साथ युद्धके लिये नहीं जाओ, बेटा! मुझे फँसाकर चला आया, मैं भाईको नमस्कार कर आता हूँ, यह कहकर चला आया। तुमने उसके साथ जो अच्छे व्यवहार किये वह भी मैंने सुन लिये। क्या करें, तुम्हारी बातको भी नहीं मानकर चला गया। जाने दो। नीतिमार्ग व मर्यादाको उल्लंघन कर जो आते हैं वे अपने आप ही लज्जित हो जाते हैं। इसमें तुम्हारा क्या दोष है? व्यर्थ ही दुःख कर शरीरशोषण मत करो बेटा! चिंता ही बुढ़ापा है और सन्तोषही जवानी है। इसलिये तुझे मेरी शपथ है; शोक मत करो। सब लोग गये तो क्या हुआ? यदि तू अकेला रहा तो भी हम लोगोंको सन्तोष होगा, इसलिये क्षमा करो।

भरतेश्वरके चित्तमें थोड़ीसी शान्ति आई। उसी समय भरतेश्वरके पुत्र व रानियोंने आकर सासुके चरणोंमें नमस्कार किया। सबको सुनंदादेवीने आशीर्वाद दिया। तदनंतर भरतेश्वर व सुनंदादेवी यशस्वती-

के पास गये। वहाँ थोड़ा दुःख व्यवहार होकर फिर शांत हुआ। तदनंतर स्नान, देवपूजन आदि होनेके बाद सब लोगोंने मिलकर पारणा की। इधर सेनामें शांति स्थापित हुई। इधर बाहुबलिकी रानियाँ भगवान् आदिनाथके दर्शनकर अर्जिकाकी दीक्षासे दीक्षित हुईं।

दैवगति विचित्र है। भरतेश्वरने भरसक प्रयत्न किया कि अपने भाईके मनमें कोई क्षोभ उत्पन्न न हो, और वह दीक्षा लेकर न जावें परन्तु कितने ही प्रयत्न करनेपर भी वह न रुक सका। भाई बाहुबलि चला गया। उसकी हजारों रानियाँ भी दीक्षा लेकर चली गईं। इससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। भरतेश्वरको भी मनमें बड़ा दुःख हुआ कि इन सबका कारण मैं हूँ। राज्यके कारणसे मैंने इन सबको रुलाया। इत्यादि कारणसे उन्होंने मनमें बहुत ही अधिक दुःखका अनुभव किया। साथ ही विवेकी होनेके कारण उस दुःखकी शान्तिका भी उपाय सोचा। तीन दिनतक उपवास रहकर आत्मनिरीक्षण किया। उस तपोबलसे सर्वत्र शांति हुई। परमात्माका दर्शन दुःखशमनके लिए अमोघ उपाय है, भरतेश्वर सदा इसीका अवलंबन करते हैं। वे भावना करते हैं कि—"हे परमात्मन् ! मेरु पर्वतपर चढ़कर मेदिनीको देखनेके समान ध्यानारूढ़ होकर लोकको देखनेका सामर्थ्य तुममें है। हे सुखधीर ! मेरे हृदयमें बने रहो हे सिद्धात्मन् ! लोकमें समस्त जीव कर्मके आधीन होकर वह जैसे नचाता है वैसे नाचते हैं, परन्तु निष्कर्म स्वामिन् ! आप उनको रागद्वेषरहित दृष्टिसे देखते हैं। अतएव निर्मल आनन्दका अनुभव करते हैं। इसलिये मुझे भी सन्मति प्रदान कीजिये।"

इसी भावनाके फलसे भरतेश्वर अनेक दुःख-संकटोंसे पार होते हैं।

इति चित्तजनिर्वेगसंधि

--:o:--

अथ नगरीप्रवेशसंधि

भरतेश्वरकी छोटी माँ सुनंदादेवी दीक्षाके लिए उद्युक्त हुई। तब भरतेश्वरने निवेदन किया कि बाहुबलिके पुत्रोंके बड़े होने तक ठहरना चाहिये। बादमें विचार करेंगे। भरतेश्वरने कहा कि माताजी ! क्या बाहुबलि ही आपके लिये बेटा है ? मैं पुत्र नहीं हूँ ? इसलिए कुछ

समय मेरी सेवाओंको ग्रहण कीजिये। इस प्रकार कहते हुए भरतेश्वरने अपनी स्त्रियोंकी ओर देखा तो वे समझ गई। सभी स्त्रियोंने सासुके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना की कि अभी दीक्षाके लिए नहीं जाना चाहिये। सुनंदादेवीने कहा कि बेटा! क्या तुम्हारी बातको ही मैं मान नहीं सकती? इशारेसे स्त्रियोंसे नमस्कार करानेकी क्या जरूरत है? इस प्रकार कहकर सब स्त्रियोंको उठनेके लिए कहा।

भरतेश्वरने कहा कि माताजी! आप छोटी बड़ी बहिन एकसाथ रहकर हमें व लाख स्त्रियोंको सेवा करनेका अवसर देवें। बाहुबलिकी सर्व संपत्ति उसके पुत्रोंको रहे और उसकी देखरेखके लिए योग्य मनुष्योंको नियत कर आप सब अयोध्यापुरमें जावें। सुनंदादेवीने उसे स्वीकार कर लिया। प्रणयचंद्र मन्त्री व गुणवसंतक सेनापतिको बुलाकर सर्व विषय समझा दिया गया। परन्तु उन लोगोंने निवेदन किया कि यह बड़े सन्तोषकी बात है। परन्तु हम दीक्षाके लिये जायेंगे। उसके लिए अनुमति मिलनी चाहिये।

भरतेश्वरने कहा कि बाहुबलिको सेवा आप लोगोंने इतने दिन की। मैंने आप लोगोंका क्या बिगाड़ किया है? इसलिए इन बच्चोंके पढ़नेतक ठहरना चाहिये। इस दुःखके समय जाना नहीं चाहिये। आप लोग पौदनपुरमें प्रजापरिवारोंके सुखकी कामना करते हुए रहें। मंत्री व सेनापति समझ गए। उन्होंने कहा कि राजन्! राजाके बिना हम लोग बहाँपर नहीं रह सकते हैं। इसलिए बाहुबलिके बड़े पुत्रको राज्याभिषेक कर हमारे साथ भेज दीजिये। हम सब व्यवस्था करेंगे। बुद्धिसागर मंत्रीने भी सम्मति दे दी। उसी समय महाबल-कुमारको बुलाकर पौदनपुरका पट्टाभिषेक किया गया और मंत्री, सेनापतिका योग्य सत्कार कर भरतेश्वर महलमें चले गए। सुनंदादेवी-से सर्व वृत्तान्त कहा गया, उनको भी संतोष हुआ। तीनों पुत्रोंसे कहा कि बेटा! तुम लोगोंके संरक्षणके लिए माताजी तुम्हारे साथ हैं। तथापि मैं भी कभी-कभी हितचिन्तकोंको भेजकर तुम्हारे विषयको जानता रहूँगा। इस प्रकार बहुत प्रेमसे कहकर, विश्वासपात्र सेवकोंको एवं माताकी दासियोंको उचित वस्त्ररत्नादिक वस्तुओंको प्रदान कर एवं बाहुबलिके पुत्र मित्रोंको योग्य सन्मान कर स्वयं अयोध्याकी ओर रवाना हुए।

अयोध्या समीप आते हुए देखकर सेनाको बड़ा हर्ष हो रहा है।

८-१० कोस दूरसे जिन मंदिरका महल दिखने लगे हैं। नगरके समीप आनेपर भरतेश्वर पट्टगजपर आरूढ़ हुए। और उनके सर्व सुपुत्र भी छोटे-छोटे हाथियोंपर आरूढ़ हुए करोड़ों प्रकारके बाजे, छत्र, चामर आदि वैभवोंसे संयुक्त होकर भरतेश्वर आ रहे हैं।

अयोध्या नगरकी समस्त प्रजाओंको साथमें लेकर माकाल नामक व्यन्तर भरतेश्वरके स्वागतके लिये आया व विनयसे नमस्कार कर कहने लगा कि स्वामिन्! इस नगरको छोड़कर आपको साठ हजार वर्ष बीत गये। तबसे हम और पुरवासी आपके दर्शनके लिए जो तपश्चर्या कर रहे हैं, उसका फल आज हमें मिल गया। भरतेश्वर मुसकराये। पुनः महाकाल कहने लगा कि स्वामिन्! आपके साथ अनेक देशोंमें भ्रमण करनेवाले इन सेनाजनोंको कोई प्रकार कष्ट नहीं हुआ। परंतु आपके वियोगमें रहनेवाले हम लोगोंको बड़ा कष्ट हुआ। भरतेश्वर उसकी तरफ हँसते हुए देख रहे थे। माकाल व प्रजाओंसे उपचार वचनोंको बोलकर सम्राट् अयोध्या नगरके परकोटेके अन्दर प्रवेश कर गये। अन्तःपुर तो महलकी ओर चला गया। भरतेश्वर अपने पुत्रोंको साथमें लेकर राजमार्गमें होते हुए जिनमंदिरकी ओर आ रहे हैं।

पुरजन, पुरस्त्रियाँ जुलूसको बड़े उत्साहके साथ देख रही हैं। जिस प्रकार एक गरीबको निधिके मिलनेपर हर्ष होता है उस प्रकार सबको हर्ष हो रहा था। वे आपसमें बातचीत कर रहे थे कि जबसे राजा यहाँसे गये हैं, तबसे हम लोगोंको मालूम हो रहा था कि हमारी एक बड़ी भारी चीज खो गई है। अब ये आ गये हैं। हम लोगोंको बुलाकर बोलनेकी जरूरत नहीं। संपत्तिके देनेकी जरूरत नहीं हमारे नगरमें रहे तो हुआ। इससे अधिक हम कुछ भी नहीं चाहते हैं।

कोई बोलते हैं कि इसका पुण्य कितना तेज है। देखने मात्रसे वस्त्राभूषणोंको पहननेके समान विशेष क्या, भोजन करनेके समान सुख मालूम होता है। पापका भी खंडन होता है। पुरजनोंके होते हुए भी जब यह राजा नहीं था नगर सूना-सूना मालूम हो रहा था। यह पर-नारी सहोदरके आनेपर आज नगरमें नई शोभा आगई है। कांति-रहित कमल, पतिरहित सति, गुरुरहित तीर्थ एवं राजासे विरहित राज्य कभी शोभाको प्राप्त नहीं हो सकते हैं। उस दिन जाते समय हमारे राजा एक हाथीपर चढ़कर गए थे, अब आते समय हजारों

पुत्रोंको हजारों हाथियों पर चढ़ाकर लाये हैं। अहोभाग्य है। भरतेश्वरके आनेपर अयोध्यानगरका भाग्य द्विगुणित हुआ।

कोई उस समय कहने लगे कि जबसे स्वामी यहाँसे सेना परिवारके साथ गये हैं, अयोध्याकी प्रजायें दुःख कर रही हैं। अपने नगरको दुःखी बनाकर दुनियाका संरक्षण करना क्या यह राजधर्म है? दूसरा व्यक्ति कहने लगा कि राजन्! लोकविजयके लिए तुम्हारे जानेकी क्या जरूरत थी, तुम अयोध्यामें सुखसे रहकर नौकरोंको भेजते तो वे ही वशमें कर लाते, तुम्हारे घूमनेकी क्या जरूरत थी? एक मनुष्य कहने लगा कि हम लोग जाकर राजाओंसे कहते कि भरतेश्वरकी शपथ है, तुम लोगोंको आना होगा, तो उस हालतमें कौन राजा ऐसा है जो तुम्हारी सेवामें नहीं आ सकता था। ऐसी अवस्थामें परिवार क्यों एक-एक नौकर ही जाकर यह काम कर सकता था। दूसरा बोलता है कि अस्त्र-शस्त्रोंकी आवश्यकता नहीं, सेनाकी जरूरत नहीं राजन्! राजाओंको केवल तुम्हारे नामको कहकर पकड़कर मैं ले आता। एक घास बेचनेवाला कहता था कि स्वामिन्! व्यर्थ ही दुनियामें घूमकर क्यों आये? मुझे अगर भेजते तो मैं सबको घासके समान बाँधकर ले आता।

इस प्रकार वहाँ हर्षातिरेकमें लोग अनेक प्रकारसे बातचीत कर रहे थे। भरतेश्वर उसे सुनते हुए, लोगोंको अनेक प्रकारसे इनाम देते हुए राजमार्गसे जा रहे हैं। अपने स्तुति करनेवालोंको एवं कनक-तोरण रत्नतोरणादिकको देखते हुए भरतेश्वर आगे बढ़ रहे हैं। सबसे पहिले वे हाथीसे उतरकर अपने पुत्रोंके साथ जिनमंदिरमें पहुँचे। वहाँ पर भगवान् आदिनाथकी भक्ति व वंदना की और योगियोंकी भी त्रिकरण योगशुद्धिसे वंदना की। पुनः हाथीपर आरूढ़ होकर राजमहलकी ओर रवाना हुये। राजमार्गकी शोभा अपूर्व थी। राजमंदिरके पास पहुँचकर सबको यथायोग्य विनयसे उनके लिए नियत स्थानमें भेजा व स्वयं जय-जयकार शब्दकी गुंजारमें राजमहलमें प्रविष्ट हो गये। रानियोंने अंदर जानेपर आरती उतारी, भरतेश्वर परमात्माको स्मरण करते हुए अंदर गये। असंख्यात कमलोंसे भरे हुए सरोवरके समान पुत्र-कलत्रोंके समूहसे वह राजमंदिर मालूम हो रहा था। विशेष क्या? विवाहके घरके समान जहाँ देखो वहाँ आनन्द ही आनन्द हो रहा है। षट्खण्डकी सम्पत्ति एक ही नगरमें एकत्रित हुई है। आठ-दस रोज आनन्दसे बीतनेके बाद एक दिन दरबारमें उपस्थित होकर भरतेश्वरसे

कहा कि युवराज तो दीक्षित हुआ। अब युवराजपदके लिये यहाँ कौन योग्य है ? तब उपस्थित समस्त राजाओंने एवं मंत्री-मित्रोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन् ! बाहुबलि यदि दीक्षा लेकर गया तो क्या हुआ ? युवराजपदके लिए अर्ककीर्तिकुमार सर्वथा योग्य है। यह नीतिनिष्णात है, आपके समान विवेकी है, वही इस पदके लिये योग्य है।

भरतेश्वरको भी संतोष हुआ। उन्होंने योग्य मुहूर्तसे युवराजपट्ट का विधान किया। नगरका शृंगार किया गया। जिनपूजा बहुत वैभव के साथ की गई और अर्ककीर्तिकुमारका युवराजपट्टोत्सव हुआ। मेरे बादमें यही इस राज्यका अधिकारी है, इसे सूचित करते हुए भरतेश्वर ने अपने कंठहारको निकालकर उसके कंठमें डाल दिया। सिंहासनपर बैठाकर स्वयं भरतेश्वरने कुमारको वीरतिलक किया। भरतेश्वर भाग्यशाली हैं। अधिराज पिता है, पुत्र युवराज है, इससे अधिक भाग्य और क्या हो सकता है ? अमृतपान किये हुए अमरोंके समान सभी आनन्दित हो रहे हैं। अर्ककीर्तिके सहोदरोंने अधिराज व युवराजके चरणोंमें भेंट रखकर साष्टांग नमस्कार किया। अर्ककीर्तिने कहा कि पिताके समान मुझे साष्टांग नमस्कार करनेकी जरूरत नहीं। तब भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! रहने दो ठीक है। क्या तुम भी मेरे सहोदरोंका ही व्यवहार चाहते हो। इसके बाद हिमवान पर्वततकके समस्त राजाओंने भेंट रखकर नमस्कार किया। इस प्रकार बहुत वैभवके साथ युवराजपट्टोत्सव हुआ। अर्ककीर्तिने पिताके चरणोंमें मस्तक रख, राजागण मंत्री-मित्रोंका उचित सन्मान कर राजमहल रवाना हुआ।

फिर चार-आठ दिन बीतनेके बाद मंत्रीने आकर प्रार्थना की कि राजन् ! सेनाके साथ आये हुए राजागण अपने-अपने स्थानपर जाना चाहते हैं। इसलिए अनुमति मिलनी चाहिये। भरतेश्वरने तथास्तु कहकर सर्व व्यवस्थाके लिए आज्ञा दी। कामवृष्टिको कहकर भरतेश्वरने पहले सबको बहुत आनन्दसे स्नान कराया। तदनंतर महलमें सबको दिव्यभोजन कराया। स्वर्गीय सुधारससे भी बढ़कर वह उत्तम भोजन था, इससे अधिक क्या वर्णन करें ? व्यंतरोंका भी यथायोग्य सन्मान किया गया। भोजनसे तृप्त होनेके बाद सबको हाथी-घोड़ा, वस्त्राभूषण, रथरत्नादिकको प्रदान करते हुए उनका सन्मान किया एवं कृतज्ञताको व्यक्त करते हुए भरतेश्वरने कहा कि राजा लोग सब सुनें।

आप सबके सब मेरे हितैषी हैं अतएव इतने कष्टोंको सहन कर अनेक स्थानोंमें फिरते हुए मेरे राजमंदिरतक आये। आप लोग सबराजा

होते हुए भी मुझपर आप लोगोंका प्रेम है। नहीं तो आप लोग मेरे साथ क्यों आते ? कुछ लोगोंने कन्याप्रदान किया, कुछने हाथी, घोड़ा, रथ आदि भेंटमें दिया। यह सब किसलिए ? क्षत्रिय कुलके स्वाभिमानसे आप लोगोंने मेरा सन्मान किया है। पुण्यमात्र मुझमें थोड़ा अधिक है। नहीं तो उत्तम क्षत्रियकुलमें प्रसूत आप और हममें क्या अन्तर है ? व्यंतरोंने भी हमारे प्रति प्रेमसे जो सहयोग दिया, उसका मैं क्या वर्णन करूँ ? उन्होंने मुझे संतुष्ट किया। वे मेरे हितैषी बंधु हैं। आप लोगोंको बड़ा कष्ट हुआ। इसलिए अब अपने-अपने नगरमें जावें। मैं जब बुलाऊँ आवें या आप लोगोंको जब इच्छा हो तब आकर जावें।

इस प्रकार अनन्यबंधुत्वसे सम्राट् जिस समय बोल रहे थे समस्त राजाओंको बड़ा ही आनन्द हो रहा था। भक्तिप्रबंधसे उन्होंने निम्न प्रकार निवेदन किया।

स्वामिन् ! आपके साथ रहना तो हम लोगोंको बड़ा आनंददायक था, हमें कोई कष्ट नहीं हुआ। अब हम जायेंगे तो हमें बड़ा कष्ट होगा। देव ! हम लोग आपको क्या दे सकते हैं ? यदि पुजारीने लाकर भगवंतके चरणोंमें एक फूलको अर्पण किया तो क्या वह पुजारीकी मेहरबानी है या भगवानकी महिमा है ! राजन् ! भंडारी जिस प्रकार आपकी जरूरतको समझकर समयमें आपको कोई पदार्थ देता है, उसी प्रकार हम लोगोंने आपकी चीज आपको दी, इसमें बड़ी बात क्या हुई? सार्वभौम ! कल्चर मोती कभी असल मोतीकी बराबरी कर सकता है ? कभी नहीं। क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होनेमात्रसे हम आपकी बराबरी कर सकते हैं ? यह सब आपकी दया है। परमात्मवेदी ! आपकी पादसेवा करनेका भाग्य धन्यजनोंको ही मिल सकता है। सबको क्योंकर मिलेगा ? नरलोकमें रहनेपर भी सुरलोकके सुखका हमने अनुभव किया। रोज विवाह, रोज सत्कार, रोज विनोद, सर्वत्र आनंद ही आनंद। जानेके लिए पैर हमारा साथ नहीं दे रहा है। तथापि जानेके लिए जो आज्ञा हुई है उसका उल्लंघन कैसे कर सकते हैं ? इसलिए अब हम जाते हैं। इस प्रकार कहते हुए सब राजाओंने साष्टांग नमस्कार किया व सब वहाँसे जाने लगे। उस समय सुकण्ठ व वज्रकंठ नामक बेत्रधारियोंने खड़े होकर सबका परिचय कराया। इक्षुचापाग्रज ! बोधेक्षण ! चित्तावधान ! यह दक्षिणसमुद्रके अधिपति वरतनु सुरकीर्ति जा रहे हैं, देखो ! समुद्रको भी तिरस्कृत करनेवाले गांभीर्यको धारण करनेवाला यह पश्चिम समुद्रके अधिपति प्रभासेंद्र

प्रतिभासके साथ जा रहा है। हे विजयलक्ष्मीपति ! यह विजयार्धदेव हैं। हे समवसरणनाथात्मज ! हिमगिरिके अग्रभागमें रहनेवाला यह हिमवंतदेव हैं। हे कालकर्मारण्यदावानल ! हंसतत्वावलंब ! त्रिभुवनरत्न ! यह तमिस्रगुफके अधिपति कृतमाल हैं। स्वामिन् ! खंडप्रपातगुफाके अधिपति नाट्यमालको देखो। उत्तर भागके अनेक राजाओंके साथ जानेवाला यह कामराज है। मध्यखंडके राजसमूहके साथ जानेवाला यह मानी चिलातराज हैं, मानवेंद्र हैं, देखो. दक्षिण खंड के अनेक राजाओंके साथ जानेवाला यह उद्दंड राजा है. पूर्व खंडके राजाओंके साथ यह वेतंडराज है। ये सब उत्तरश्रेणीके राजागण हैं। ये दक्षिणश्रेणीके विद्याधर राजा हैं। आर्यखंडके समस्त राजा जा रहे हैं देखो।

तिगुलाण्यपति, मागधेंद्र, मालवेंद्र, काशमीराधिपति, लाट महालाटाधिपति, त्रिश्रकूटपति, भोटाधिपति, महाभोटाधिपति, कर्णाटकराज, चीनाधिपति, महाचीनाधिपति, काशीपति, सिंहलपति, बंगालभूनाथ, तुर्काधिपति, तेलगाधिपति, करहाटराज, हुरुमुंजिनाथ, अंगदेशाधिश पल्लवराज, कलिंगेंद्र, कांभोजपति, बंगपति, हम्मीरनृप, सिन्धुनृपति, गौलदेशाधिपति, कोंकणपति, मलेयालाधीश, तुलुराज, चोलराज, मलहाधिपति, कुंतलपालक, गुर्जरभूपति, नेपालेंद्र, पांचालराजा, सौराष्ट्रपति, बर्बरपति आदि देशके राजा सम्राट्को नमस्कार कर जा रहे हैं।

सबके जानेके बाद राजकुमारोंको बुलाकर उनके योग्य राज्योंको बढ़ाकर दिया व सेनाके समस्त सेवकोंको भी उचित इनाम वगैरह देकर संतुष्ट किया। वहाँ बातकी कमी है ?

तदनंतर मागधामर ध्रुवगतिका सत्कार हुआ। तदनंतर मेघेश्वर (सेनापति) विजय जयंतको अनेक राज्योंको बढ़ाकर दिया गया और रत्नादिक दिये गये। बुद्धिसागर मंत्रीकी सलाहसे मित्रोंको अनेक राज्य बढ़ाकर दिये गये। सब लोक सम्राट्को नमस्कार कर चले गये।

मंत्री बुद्धिसागरसे पूछा गया कि तुम्हें किस चीजकी इच्छा है ? बोलो। उत्तरमें मंत्रीने कहा कि मुझे आपकी सेवाकी इच्छा है, दूसरा कुछ नहीं। सचमुचमें जब षट्खंडको ही भरतेशने उसके हाथमें सौंपा था फिर उसे और क्या देना है, तथापि मंगलप्रसंगमें अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोंको देकर उसका आदर किया, तदनंतर सम्राट् महलकी ओर चले गये।

माताके चरणोंमें नमस्कार कर सब वृत्तांत कहा, मातुश्रीको भी

संतोष हुआ। तदनंतर परमात्माके स्मरण करते हुए अंतःपुरकी ओर गया। रानियोंको बड़ा हर्ष हुआ। पट्टरानीके पास बैठकर सम्राट् आनंदवार्ता कर रहे हैं। देवी! तुम्हारा जन्म यहींपर हुआ था, परंतु तुम्हारा पालन-पोषण विजयार्धपर्वतपर हुआ। तथापि पुण्यने पुनः लाकर इस नगरमें प्रविष्ट कराया। उत्तरमें सुभद्रादेवीने कहा कि नाथ! ठीक है, मेरे दैवका नियोग ही ऐसा था कि मेरा जन्म यहाँ होना चाहिये, और विवाह उत्तर खंडमें होना चाहिए, उसे कौन उल्लंघन कर सकता है? मेरी सहोदरियोंके साथ पहिले पाणिग्रहण होकर अंतमें आपके साथ मेरा विवाह हो गया, यह भी दैव है। तब इतर रानियोंने कहा कि जीजी! वैसी बात नहीं है। तुम और तुम्हारे स्वामीके योगसे सर्व दिशाओंको जीतनेके कार्यमें हम लोगोंको आनंद पानेका योग था। स्वामी और तुम यहाँ उत्पन्न होकर आपकी जन्मभूमिको हमें बुलवाया बड़ा आनंद हुआ। तब भरतेश्वरने कहा कि वह पुर क्या? यह पुर क्या? भोगोपभोगमें रहनेवालोंके लिए सभी स्थान समान हैं। व्यर्थ ही आप लोग विवाद क्यों कर रही हो। इस प्रकार भरतेश्वरने समाधान किया।

अब एक वर्षके बाद हर्षके साथ भरतेश्वर पिताके पास जायेंगे। वहींसे योगविजयका प्रारंभ होता है। भरतेश्वर अपने समस्त सुखांगके साथ विघ्नरहित दीर्घ राज्यको वशमें करके अयोध्यानगरसे प्रवेश कर अगणित राजाओंको अपने-अपने राज्योंमें भेजकर अयोध्यामें आनंदमग्न हैं। उत्तरमें हिमवान् पर्वत व तीनों भागोंसे समुद्रांत स्थित पृथ्वीको अपने आधीन कर सम्राट् भरतेश्वर अपने स्थानपर सुखसे आसीन हैं।

भरतेश्वरका पुण्य प्रबल है। उन्होंने लीलामात्रसे दिग्विजय किया। उन्हें कोई भी प्रकारका विघ्न नहीं आया इसका विशिष्ट कारण है। वे सदा भावना करते हैं कि—हे परमात्मन्! आप ध्यान चक्रके द्वारा कर्मशत्रुओंको भगाकर ज्ञानसाम्राज्यके अधिपति बनते हैं। इसलिए आप सुखके दरबारमें आसीन होते हैं। अतएव मेरे अन्तरंगमें बने रहें। विख्यातमहिम! विश्वाराध्य! विमलपुण्याख्यान! बोधनिधान! शिवेगुणमुख्य! सौख्यांग! हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति नगरीप्रवेशसंधि।

इति दिग्विजयनामक द्वितीयकल्याणं संपूर्णम्

भरतेश वैभव

द्वितीय भाग

विषय-सूची

योग विजय

श्रेण्यारोहण संधि	१	जननी वियोग संधि	४८
स्वयंवर संधि	११	ब्राह्मणनाम संधि	६१
लक्ष्मीमति विवाह संधि	२१	षोडश स्वप्न संधि	७१
नागरालाप संधि	३१		
जनकसंदर्शन संधि	४०	जिनवास-निर्मित संधि	८३

मोक्ष विजय

साधना संधि	९२	कुमारवियोग संधि	१८४
विद्यागोष्टि संधि	९५	पंचैश्वर्य संधि	१९३
विरक्ति संधि	१०६	तीर्थेशपूजा संधि	२००
समवशरण संधि	११४	जिनमुक्तिगमन संधि	२०९
दिव्यध्वनि संधि	१३१	राज्यपालन संधि	२१६
तत्त्वार्थ संधि	१४८	भरतेशनिर्वेग संधि	२२३
मोक्षमार्ग संधि	१५९	ध्यानसामर्थ्य संधि	२३१
दीक्षा संधि	१७५	चक्रेशकैवल्य संधि	२४४

अर्ककीर्ति विजय

सर्वनिर्वेग संधि	२५९	सर्वमोक्ष संधि	२६७
कवि-परिचय	२७५		

●

है धर्मानुराग ! भरतजीके हृदयमें वह धर्मानुराग कूटकूट कर भरा हुआ था यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

इतनेमें उन आये हुए सज्जनोंसे यह पूछा कि हमारे भुजबलि योगींद्र कैसे हैं ? तब वे कहने लगे कि स्वामिन् ! वे कैलासपर्वतको छोड़कर गज-विपिन नामक घोर अरण्यमें तपश्चर्या कर रहे हैं । उनके तपका वर्णन भी सुन लीजिये ।

जबसे उन्होंने दीक्षा ली है तबसे वे भिक्षाके लिए नहीं निकले हैं, वृक्षशोषण करने योग्य धूपमें खड़े होकर आत्मनिरीक्षण कर रहे हैं । एक दफे मिची हुई आँखें पुनः खुली नहीं, एक दफे बंद की हुई ओठें पुनः खुली नहीं, दीर्घकाय कायोत्सर्गसे दृढ़ होकर खड़े हैं, लोक सब आश्चर्यके साथ देख रहा है ।

उनकी चारों ओर बाँबी उठ गई हैं, लतायें सारे शरीरमें व्याप्त हो गई हैं, अनेक सर्प उनके शरीरमें इधर-उधर जाते हैं परंतु वह योगींद्र चित्तको अकंप करके पत्थरकी मूर्तिके समान खड़ा है ।

यह सुनकर भरतजीको भी आश्चर्य हुआ । दीक्षा लेकर एक वर्ष होनेपर भी तबसे मेरुके समान खड़ा है । भगवान् ही जानें उसके तपो-बलको ! इतनी उग्रता क्यों ? इन सब विचारोंको भगवान् आदिनाथसे ही पूछेंगे, इस विचारसे भरतजी एकदम उठे व विमानारूढ़ होकर आकाश मार्गसे कैलासपर्वतपर पहुँचे, समवशरणमें पहुँचकर पिताके चरणोंमें भक्ति से नमस्कार किया । तदनंतर कच्छ केवली, महाकच्छ केवली व अनंतवीर्यकेवलीकी वंदना की एवं बादमें भगवान् वृषभ की भक्तिसे पूजाकर उन तीनों केवलियोंको भी पूजा की, स्तुति की, भक्तिपूर्वक विनय किया और अपने योग्य स्थानमें बैठकर प्रार्थना करने लगे कि भगवान् बाहुबलि योगीके कर्मकी इतनी उग्रता क्यों ? अत्यंत घोर तपश्चर्या करने पर भी केवलज्ञानकी प्राप्ति क्यों नहीं हो रही है ?

तब भगवान्ने भरतजीसे कहा कि हे भव्य ! घोर तपश्चर्या होने मात्रसे क्या प्रयोजन ? अंतरंगमें कषायोंके उपशमको आवश्यकता है । इस चंचल चित्तको आत्मकलामें मिलनेकी आवश्यकता है ।

क्रोध, मान, माया और लोभके बोधसे जो अंदरसे बंध रहे हैं उनको बोधकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? उसके लिए अपने चित्तको निर्मल करके आत्मसमाधिमें खड़े होनेकी जरूरत है ।

बाहरके सर्व पदार्थोंको छोड़ सकते हैं । परंतु अंतरंगके शल्यको छोड़ना

कठिन होता है। कपड़ेको छोड़ने मात्रसे तपस्वी नहीं होता है। सर्प काँचुलीको छोड़नेपर क्या विषरहित होता है? कभी नहीं।

मनकी निर्मलता होनेपर ही आत्मसुखका लाभ होता है। उसकी प्राप्ति मुनियोंको भी कठिनतासे होती है। पर इतने बड़े राज्यका भार होते हुए भी तुम्हारे लिए वह आत्मसुख सहज मिला।

भरत! सुनो, धानके छिलकेको निकालकर जिस प्रकार चावल पकाया जाता है उसी प्रकार पंचेंद्रियसंबंधी विषयोंका त्याग कर सब आत्मनिरीक्षण करते हैं। परंतु तुम उस पंचेंद्रिय विषयके बीचमें रहते हुए भी आत्माको निर्मल बना रहे हो, इसलिए तुम ऋषियोंसे भी श्रेष्ठ हो। चावलके भूसेको अलग करके केवल सफेद चावलको जिस प्रकार पकाया जाता है उसी प्रकार शरीरके वस्त्रको छोड़कर आत्मध्यान कुछ लोग करते हैं। परंतु तुम तो शरीरका वस्त्रादिसे शृंगारकर ध्यान करते हो।

अंतरंगकी शुद्धिके लिए बाह्यवस्तु संततिका कोई परित्याग करते हैं। परंतु कोई बाह्य वस्तुओंके होते हुए उनमें भ्रांत न होकर अंतरंग से शुद्ध होते हैं।

आभूषणोंको पहनकर आत्मध्यान करते हुए आत्मसुखको प्राप्त करने वाले भूषण सिद्ध हैं, कोई-कोई भूषणोंको त्याग कर आत्मसंतोष धारण करते हैं।

हम सबने बाह्य पदार्थों को छोड़कर आत्मध्यानमें केवलज्ञानको प्राप्त किया। और तुम तो बाह्य पदार्थोंके बीचमें रहते हुए भी आत्मसुखका अनुभव कर रहे हो, इसलिए तुम धन्य हो।

जिन नहीं कहलाकर, तपस्वी नहीं कहलाकर अनुदिन आत्मानुभवमें मग्न होकर उस आत्मसिद्धिको पा रहे हो, तुम भाग्यशाली हो।

तब भरतजीने विनयसे कहा कि स्वामिन्! आपके ही प्रसादसे उत्पन्न मेरे लिए कैवल्यकी सिद्धि हो, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। यह सब आप ही की महिमा है। ठीक है। कृपानिधान! कृपया यह बतलावें कि बाहुबलि योगीके अंतरंगमें क्या है? हे चिदमलेक्षण व चित्प्रकाशक! मुझे उसे जाननेकी उत्कंठा है।

उत्तरमें भगवान्‌ने अपनी दिव्यवाणीसे फरमाया कि "हे भरत! जब वह बाहुबलि तुमसे अलग होकर आया तब उसने कुछ कटु वचन सुना, उस कारणसे उसके हृदयमें क्षोभ उत्पन्न हुआ अतएव तपोभारको प्राप्त किया है। तुम्हारे दो मित्रोंने उसे कहा कि हमारे राजाके राज्यके अन्न-पानको छोड़कर और कहाँ तपश्चर्या करोगे? आओ, इस प्रकार कहनेके

बाद वह खिन्न मन होकर चला गया। वहाँ आकर उसने दीक्षा ली। मोक्षमार्गका उपदेश सुना, बादमें आत्मनिरीक्षण करनेके लिए जंगल चला गया। परंतु वहाँपर भी मनमें शल्य है कि यह क्षेत्र चक्रवर्तिका है। इसलिए उसने मनमें निश्चय किया है कि इस भरतके क्षेत्रमें अन्नपानको ग्रहण नहीं करूँगा। समस्त कर्मोंको जलाकर एकदम मुक्तिको हो जाऊँगा इस विचारसे वह खड़ा है। अतएव गर्वके कारणसे ध्यानकी सिद्धि नहीं हो रही है।

पर्वतके समान खड़ा होनेपर क्या होता है परन्तु गर्वगलित नहीं होता है, तुम्हारे राज्यपर खड़ा हूँ, इस बातका शल्य मनमें होनेसे आत्मनिरीक्षण नहीं हो रहा है। भरत! व्यवहारधर्म उसे सिद्ध है, परन्तु निश्चयधर्मका अवलंब उसे नहीं हो रहा है। जरा भी कषायांश जिनके हृदयमें मौजूद हो उनको वह निश्चयधर्म साध्य नहीं हो सकता है। एक वर्षसे उपवासाग्नि व कषायाग्निसे जल रहा है, परन्तु कुछ उपयोग नहीं हुआ, आज तुम जाकर वंदना करोगे तो उसका शल्य दूर होता है और ध्यानकी सिद्धि होती है। आज उसके घातिकर्म नष्ट हो जायेंगे। उस मुनिको केवलज्ञान सूर्यका उदय होगा। इसलिए "तुम अब जाओ"। इस प्रकार कहनेपर भरतजी वहाँसे गजविपिन तपोवनकी ओर रवाना हुए।

बड़ा भारी भयंकर जंगल है, सर्वत्र निस्तब्धता छाई हुई है, आगके समान संतप्त धूप है। अपनी दीर्घ भुजाओंको छोड़कर आँखोंको मींचकर अत्यन्त दृढ़ताके साथ बाहुबलि योगी खड़े हैं। भरतजीको आश्चर्य हुआ।

तीव्र धूपमें खड़े हैं, शरीरतक बाँबी उठी है, धूपसे लतायें सूख कर शरीरमें चुभने लगी हैं। विद्याधरी स्त्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरीके रूपको धारण कर उन लताओंको अलग कर रही हैं।

सज्जनोत्तम भरतजीने उसे दूरसे देख लिया व "भुजबलि योगीश्वराय नमो नमो चिदात्मने नमोस्तु" इस प्रकार कहते हुए उनके चरणोंमें मस्तक रक्खा। तदनन्तर मुनिराज बाहुबलिके सामने खड़े होकर इस प्रकारके वचनोंका उच्चार किया जिससे वह दुष्ट कर्म घबराकर भाग जावे। भरतजीने कहा—

गुरुदेव! आपके मनमें क्या है यह सब कुछ मैं पुरुनाथसे जान कर आया हूँ। इस पृथ्वीको आप मेरी समझ रहे हैं यह आश्चर्यको बात है। जिस पृथ्वीको अनेक राजाओंने पहिले भोग लिया है और जिसका शासन वर्तमानमें मैं करता हूँ, भविष्यमें दूसरे कोई करेंगे, ऐसी वेश्यासदृश इस भूनारीको आप मेरी समझ रहे हैं। क्या यह बुद्धिमानोंको उचित है?

योगिराज ! विचार करो, छिपानेकी क्या बात ? जिस समय षट्खंडको विजयकर मैं वृषभाद्रिपर विजयशासनको लिखनेके लिए गया था वहांपर मेरा शासन लिखनेके लिए जगह नहीं थी। सारा पर्वत पूर्वके राजाओंके शासनसे भरा हुआ था, फिर मुझे एक शासनको उससे घिसाकर मेरा शासन लिखवाना पड़ा, ऐसी अवस्थामें इस पृथ्वीको आप मेरी कहते हैं क्या ? इस जमीनको तो बात ही क्या है, यह मिट्टी है, स्वर्गके रत्नमय विमान, कल्पवृक्ष आदि स्वर्गीय विभूति भी देवोंकी नहीं होती हैं, उनको छोड़कर जाना पड़ता है, फिर इस पृथ्वी और मनुष्योंकी क्या बात है ? फिर आप यह पृथ्वी मेरी कैसे कहते हैं ?

गुरुदेव ! विचार तो कीजिये, यह शरीर जब अपना नहीं है तब अन्य पदार्थ अपने कैसे हो सकते हैं। भरतजीके वचनको सुनते हुए बाहुबलिका गर्व गलित हो रहा था। "और देखो, तुम इस पृथ्वीको तृणके समान समझकर लात मारकर आये परन्तु मैं उसे छोड़ नहीं सका, इसलिए तुम गुरु हो गए, मैं लघु हो रहा।" इसे सुनते ही मुनिराजका मान और भी कम होने लगा है।

भवभ्रमणके लिए कारणभूत शल्यमूलको वाक्यमंत्रसे चक्रवर्तिने दूर किया। अब उस योगीका चित्त शान्त हुआ, ध्यानसंपत्तिकी प्राप्ति हुई।

भरतजी भी बहुत चतुर हैं उस दिन अपनेको नमस्कार किए हुए भाईको आज मुनि होनेसे नमस्कार किया है। उसमें मुनि होकर भी बाहुबलिके मनमें संक्लेश हुआ। परन्तु गृहस्थ होनेपर भी भरतजीके मनमें कुछ नहीं। क्या ये राजा हैं या राजयोगी हैं ? शरीरको नंगा कर और मनको अन्धकारमें रखकर वह बाहुबलि योगी खड़े थे। उनके मनमें जो शल्य था उसे भरतजीने दूर किया तो दोनोंमें संयम किसका अधिक है ?

इस सम्राट्को बाह्यसे सब कुछ है तो क्या बिगड़ा ? और इस बाहुबलिने बाह्यमें सब छोड़ दिया तो उसे क्या मिला ? जो आत्मासे बाह्य हैं वे बाह्यमें घोर तपश्चर्या करें तो भी कोई उपयोग नहीं होता है।

भवितात्म भरतजीके वचनको सुनते सुनते चित्तका अन्धकार दूर होता जा रहा था, दीपकके समान आत्मरूपका दर्शन हो रहा था।

चित्तके समस्त व्यग्रभावोंको दूर करके अपने चित्तको योग्य दिशा में लगानेपर विषयग्रामकी ओरसे उपयोग हट गया। अब उनका शरीर भी अत्यन्त निष्कम्प हुआ है।

सबसे पहले आज्ञाविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय व अपाय-

विचय नामक व्यवहारधर्मध्यानको सिद्ध कर तदनन्तर शुद्धात्मस्वरूप मैं हूँ इस धर्मका उन्होंने अवलम्बन किया।

सबसे पहिले सिद्धोंका ध्यान किया। तदनन्तर अष्टगुणयुक्तसिद्धोंके समान मैं हूँ इस प्रकार अनुभव करते हुए निरंजनसिद्धका दर्शन किया।

अन्तरंगमें जैसे विशुद्धि बढ़ती जाती थी वैसे ही आत्मज्योति उज्वल होकर प्रकाशित होती थी ! यही निश्चयोज्वल धर्म है !

दर्शन, व्रतिक, तापसि और अप्रमत्त इस प्रकार चार गुणस्थानोंमें उस उज्वल धर्मकी प्राप्ति होती है। अतएव उसके अवलम्बनसे बाहुबलि कर्मकी निर्जरा कर रहे हैं।

ध्यान करते समय वह ज्योति प्रकाशमान होकर दिख रही है, पुनः उसी समय वह धुंधली हो जाती है। इस प्रकार हजारों बार होता है, अर्थात् हजारों बार प्रमत्त और अप्रमत्तकी परावृत्ति होती है। उज्वल प्रकाश जिस समय दिख रहा है तब अप्रमत्त अवस्था है। जब वहाँ अन्धकार आता है तो प्रमत्तदशा है। प्रमत्त और अप्रमत्तका यही भेद है।

इस प्रकार इस आत्माको मोक्षके प्रधान मार्गमें पहुँचाकर अप्रमत्त, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण इस प्रकार करणत्रयका अवलम्बन वह योगी करने लगा तब धर्मयोगका प्रभाव और भी बढ़ गया।

पुनः जब उन्होंने एकाग्रतासे निश्चय धर्मयोगका अवलम्बन किया तो निरायास नारक, सुर व तिर्यगायुष्य नष्ट हुए। तदनन्तर तत्क्षण अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व इस प्रकार सप्तप्रकृतियोंका सर्वथा अभाव होनेपर क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई।

सप्तप्रकृति ही आत्माके संसार परिभ्रमणके कारण हैं, जब उनका अभाव होता है तब आत्मामें नैर्मल्य बढ़ता है। सम्यक्त्वमें दृढ़ता आती है। इसे क्षायिक सम्यक्त्व भी कहते हैं। इक्ष्वाकु सम्यक्त्व भी कहते हैं।

अप्रमत्त गुणस्थानसे आगे बढ़े, अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानमें आरूढ़ हुए। उस स्थानमें प्रथम शुक्लध्यानकी प्राप्ति हुई। वहाँपर दो प्रकारके शुक्लध्यानकी प्राप्ति होती है। एक व्यवहारशुक्ल और दूसरा निश्चयशुक्ल। व्यवहारशुक्लसे देवगतिको पा सकते हैं, निश्चयशुक्लसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

उपशमश्रेणीमें जो चढ़ते हैं वे व्यवहारशुक्लका अवलम्बन कर उसके

फलसे स्वर्गगतिको पाते हैं। क्षपकश्रेणीमें चढ़कर जो निश्चयशुक्लका अवलम्बन करते हैं वे अपवर्गको (मोक्ष को) ही पाते हैं।

श्रुत विकल्पसे बढ़कर आत्मामें दिखनेवाला प्रकाश ही व्यवहारशुक्ल है। सम्पूर्ण विकल्पों के अभावमें आत्मकलाको वृद्धिसे आत्मज्योतिका दर्शन जो होता है उसे निश्चयशुक्ल कहते हैं।

मस्तकसे लेकर अंगुष्ठ तक चाँदनीके शुभ्र प्रकाशकी पुतलीके समान आत्मा दिखे एवं बीच-बीचमें उसमें चंचलता पैदा हो जाय उसे व्यवहार-शुक्ल कहते हैं। यदि निश्चलता रहे तो उसे निश्चयशुक्ल कहते हैं।

इस प्रकार बाहुबलि योगीने व्यवहारशुक्लके अवलंबनसे करणत्रयकी रचना की, तत्क्षण नैर्मल्यकी वृद्धिसे निश्चयशुक्लका भी उदय हुआ। वहाँपर आयुत्रिकका नाश हुआ। सातों कर्मोंकी स्थिति भी ढीली होती जा रही है।

तदनंतर आगे बढ़कर अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थानपर आरूढ़ हुए, वहाँपर पहुँचते ही ३६ कर्मप्रकृतियोंको नाश किया।

इस प्रकार पहिलेसे उस योगीने गुणस्थानक्रमसे निम्नलिखित प्रकार कर्मोंकी बंधव्युच्छिति की।

१–मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तसृपाटिका, एकेंद्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वींद्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु १६।

२–अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमंडल, संस्थान, स्वाति-संस्थान, कुब्जसंस्थान, वामनसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन, नाराच-संहनन, अर्धनाराच, कीलितसंहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यंचायु।

४–अप्रत्याख्यान कषाय ४, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु।

५–प्रत्याख्यानकषाय ४

६–अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति, शोक।

७–देवायु।

८–प्रथम भागमें निद्रा, प्रचला छठे भागमें तीर्थंकर निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्मण, आहारकशरीर, आहारक

अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक-शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्णादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ७वें भागमें हास्य, रति, भय, जुगुप्सा।

९–पुरुषवेद, संज्वलनक्रोधमानमायालोभ।

इस प्रकार उपर्युल्लिखित कर्मोंको दूर कर नवमें गुणस्थानके अन्तमें बादरलोभके साथ मायाको भी दूर किया। तब उस योगीने सूक्ष्मसांपराय नामक दसवें गुणस्थानमें पदार्पण किया। वहाँपर सूक्ष्म लोभका भी नाश किया, उसी समय मोहनीय कर्मकी अवशेष प्रकृतियोंको नष्ट कर आगे बढ़े। उपशान्तकषाय नामक ११वें गुणस्थानपर आरोहण न कर एकदम बारहवें गुणस्थानमें ही आरूढ़ हुए। क्योंकि ये क्षपकश्रेणीपर चढ़ रहे हैं। उस क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानपर आरूढ़ होते ही द्वितीय शुक्लध्यानकी प्राप्ति हुई। वहाँपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय कर्म पूर्णतः नष्ट हुए। अर्थात् घातिया कर्म दूर हुए वह योगी जिन बन गये।

क्षुधा, तृषा, आदि अठारह दोष दूर हुए। उस समय सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानपर वे योगी आरूढ़ हुए। हवाके समान चलित होनेवाला चित्त अब दृढ़ हो गया है। अब उसका सम्बन्ध शरीरके साथ न होकर आत्माके साथ हुआ है। चारित्रमोहनीय कर्मका सर्वथा नाश होनेसे यथाख्यातचारित्र हो गया है। मोह नाम अन्धकारका है। उसके दूर होनेपर वहाँपर एकदम प्रकाश ही प्रकाश है आत्मामें आत्माकी स्थिरता हुई है। आत्मामें आत्माका स्थिर होना इसीको कोई सुखके नामसे वर्णन करते हैं।

ज्ञानावरण व दर्शनावरणके सर्वथा अभाव होनेके कारण अनंतज्ञान व अनंतदर्शनका उदय हुआ एवं आत्मीय शक्तिके प्रगट होनेमें विघ्न कारक अन्तरायके दूर होनेसे अनंतवीर्य व अनंतसुखकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार ६३ प्रकृतियोंका नाश होनेपर उस आत्मामें विशिष्ट तेज प्रज्वलित हुआ। मेघमंडल से बाहर निकले हुए सूर्यमंडलके समान उस आत्मामें केवलज्ञानज्योति जागृत हुई।

तीन लोकके अन्दर व बाहर स्थित सर्व पदार्थोंको वे अब एक समय में जानते हैं। तीन लोकको एक साथ उठा सकते हैं, इतना सामर्थ्य अब प्राप्त हुआ है। विशिष्ट आत्मोत्थ सुखकी प्राप्ति हुई है। विशेष क्या? इन्हींमें नवविध लब्धियोंका अंतर्भाव हुआ।

इस प्रकार आत्मसिद्धिके द्वारा बाहुबलि योगीने कर्मोंको दूर किया तो एकदम इस धरातलसे ५००० धनुष ऊपर जाकर खड़े हो गए। उस समय एक पर्वत ही ऊपर उड़ रहा हो ऐसा मालूम हो रहा था। उसी समय चारों ओरसे नर, सुर व नागलोकके भव्य जयजयकार करते हुए वहाँपर उपस्थित हुए। कुबेरने भक्तिसे गंधकुटिकी रचना की। आकाशके बीचमें गंधकुटीकी रचना हुई थी, उस गंधकुटीमें स्थित कमलको चार अंगुल छोड़कर बाहुबलि जिन खडे हैं। परमौदारिक दिव्य शरीरसे अत्यंत सुन्दर मालूम हो रहे हैं।

भरतजी हर्षभरित हुए। आनंदसे कूदने लगे। अत्यन्त भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया व उठकर भक्तिसे बाहुबलि जिनकी स्तुति करने लगे।

भगवान् ! आपको मेरे द्वारा कष्ट हुआ। मैं बहुत ही हतभागी हूँ।

उत्तरमें भुजबलि भगवंतने कहा कि भव्य ! यह बात मत कहो, दुष्कर्मने मुझसे उस प्रकार कराया, मेरे पापने मुझसे तुम्हारे साथ विरोध कराया और अभिमानने तपश्चर्याके लिए भिजवाया व उसी अभिमानके साथ तपश्चर्या भी की परन्तु उपयोग नहीं हुआ। मेरे पुण्यने ही तुमको बुलाया, इसलिए मुझसे ही मुझे सुख हुआ। कहनेका तात्पर्य यह है कि पापसे दुःख व पुण्यसे सुखकी प्राप्ति होती है। परन्तु इसे विवेकपूर्वक न जानकर संसारमें हमें सुख-दुःख दूसरोंसे हुआ इस प्रकार अज्ञानी जीव कहा करते हैं। दुःख-सुखको समभावमें अनुभव करते रहनेपर आत्मसिद्धि होती है।

शरीरके संबंधसे होनेवाले सुख-दुःख सचमुचमें स्वप्नके समान हैं। वे देखते-देखते नष्ट होते हैं।

परन्तु पवित्र आत्मसुख एक मात्र अविनश्वर है, उस समुद्रके सामने देवोंका सुख भी बिंदुमात्र है।

भद्र ! मेरे कर्म कठोर हैं। इसलिए उनको दूर करनेके लिए कठिन तपश्चर्या करनी पड़ी। परन्तु तुम्हारे कर्म कोमल हैं। इसलिए भोगमठमें ही वे जारहे हैं। हमें इसी प्रकार मुक्ति जाने का था, इसलिए यह सब हुआ। तुम्हें उसी प्रकार सुखको भोगते-भोगते मुक्ति जानेका है, कर्मलेप-के दूर होनेपर तो सब एक सरीखे हैं। फिर कोई अन्तर नहीं रहता है। इस प्रकार परमात्मा बाहुबलि जिनने कहते हुए भरतजीसे यह कहा कि अब हमें कैलास पर्वत को ओर जाना है तुम अब अपने नगरको चले जाओ।

भरतजीने उसी समय बाहुबलिकेवलीके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार कर अनेक देवोंके साथ अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया।

तदनंतर बाहुबलि केवलीकी गंधकुटीका कैलास पर्वतकी ओर विहार हुआ। उस समय अनेक देवादिक जयजयकार शब्द कर रहे थे। इधर अपने परिवारके साथ भरतजी अपने नगरकी ओर जा रहे हैं।

मार्गमें भरतजीके हृदयमें अनेक विचारतरंग उठ रहे हैं। आनंदसे हृदयकमल विकसित हुआ। ध्यान-सामर्थ्यसे जब भुजबलिका कर्म दूर हुआ एवं केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई, इस बातको बार-बार याद कर आनंद मान रहे हैं। उनको इतना आनंद हो रहा है कि बाहुबलिको कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु स्वतःको जिनपद प्राप्त हुआ हो। इस प्रकार आनंदित होते हुए वे अयोध्यापुरमें प्रवेश करके महलमें पहुँचकर कैलासको जानेके बाद बाहुबलिको कैवल्य प्राप्त होनेतकका सर्व वृत्तांत माता व अपनी पत्नियोंसे कहकर आनंदसे रहने लगे।

भरतजी सचमुचमें पुण्यशाली महात्मा हैं। क्योंकि जिनके कारणसे बड़े-बड़े योगियोंके हृदयका भी शल्य दूर हो एवं उनको ध्यानकी सिद्धि होकर कैवल्यकी प्राप्ति हो, उनके पुण्यातिशयका वर्णन क्या करें? इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्हें मालूम है कि आत्म साधनकी विधि क्या है? परपदार्थोंके कारणसे चंचल होनेवाले आत्माको उन विकल्पोंसे हटानेका तरीका क्या है? उसी अनुभवका प्रयोग बाहुबलिके शल्यको दूर करनेमें उन्होंने किया।

इसमें अलावा वे प्रतिनित्य व परमात्माको इस रूपमें स्मरण करते हैं कि—

हे परमात्मन्! आप पहिले अल्पप्रकाशरूप धर्मध्यानसे प्रकट होते हैं। चित्तका नैर्मल्य बढ़नेसे अत्यधिक उज्ज्वल प्रकाश रूप शुक्लध्यानसे प्रकट होते हैं। इसलिए हे चिदम्बर-पुरुष! मेरे हृदयमें बने रहो।

इति—श्रेण्यारोहण संधि

—०—

स्वयंवर संधि

भगवान् बाहुबलिस्वामी, अनंतवीर्य एवं कच्छ महाकच्छ योगियोंको केवलज्ञान हुआ इससे भरतजी बहुत प्रसन्न हुए हैं। उसे स्मरण करते हुए आनन्दसे अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं।

महाबल राजकुमार व रत्नबल राजकुमारका योग्य वयमें बहुत वैभवके साथ विवाह कर पितृवियोगके दुःखको भुलाया।

अपने दामाद राजकुमारोंको एवं अपनी पुत्रियोंको कभी-कभी बुलवा कर उनको अनेक विपुल सम्पत्ति देकर भेजते थे। इस प्रकार बहुत आनन्दसे भरतजीका समय जा रहा है।

इधर सम्राट् अयोध्यामें सुखसे हैं तो उधर युवराज अर्ककीर्तिकुमार अपने भाई आदिराजके साथ राज्यकी शोभा देखनेके लिए पिताजीकी अनुमतिसे गये हैं। आर्यखण्डके अनेक राज्योंमें भ्रमण करते हुए एवं वहांके राजाओंसे सम्मानको प्राप्त करते हुए आनन्दसे जा रहे हैं।

कुछ देशोंके संदर्शनके बाद कर्णाटक देशके राजाने उन्हें बहुत आदर-के साथ अपने यहां बुलवाया व बहुत सम्मान किया। वह अर्ककीर्तिका खास मामा है। कुन्तलावती देवीके बड़े भाई भानुराज हैं। उन्होंने अपने नगरमें अर्ककीर्ति व आदिराजका विशेष रूपसे स्वागत कराया। उस नगरको उस समय किष्किंधपुर कहते थे। परन्तु कलियुगमें आनेयगोंदि कहते हैं। वहांपर भानुराजने अपनी दो पुत्रियोंका विवाह उन दोनों राजकुमारोंके साथ किया। भानुमतीका अर्ककीर्तिके साथ, वसंतकुमारीका आदिराजके साथ विवाह हुआ। उसके बाद वे दोनों कुमार पश्चिमदेशकी ओर गये।

इस समाचारको सुनकर कुसुमाजी राणीके भाई वीर विमलराजने सौराष्ट्र देशके गिरिनगरको लाकर उनका यथेष्ट सत्कार किया। विमलाजी नामक अपनी पुत्रीको अर्ककीर्तिको समर्पण कर अपने छोटे भाई कमलराजकी पुत्री कमलाजीको आदिराजको समर्पण किया।

इस प्रकार अनेक देशोंके राजाओंसे सम्मानको प्राप्त करते हुए काशी देशकी ओर आये। काशी नगरमें प्रवेश करते ही वहांपर एक नवीन वार्ता सुननेमें आई।

वाराणसी राज्यके अधिपति अकंपन राजा हैं। उनकी पुत्री सुलोचना देवीके स्वयंवरका निश्चय हुआ है। उपस्थित अनेक राजपुत्रोंमें जिस

किसीको पसन्द कर यह सुलोचना माला डालेगी वही उसका पति होगा। इस प्रकारकी सूचना सर्वत्र जानेसे अनेक देशके राजकुमार यहांपर आकर एकत्रित हुए हैं।

नारीके नामको सुनते ही कामुकजन हक्का-बक्का होकर फल सहित वृक्षपर जिस प्रकार पक्षी दौड़ते हैं उसी प्रकार आते हैं। इसलिए यहांपर भी हजारों राजकुमार आये हुए हैं।

कमलके सरोवरमें जिस प्रकार भ्रमर हजारोंकी संख्यामें आते हैं उसी प्रकार कमलमुखी सुलोचनाके स्वयंवरके लिए अनेक राजकुमार आये हुए हैं।

उन सबको आदर सत्कार, स्नान, भोजन, नाट्यक्रीड़ा आदिसे अकंपन राजा संतुष्ट कर रहे हैं।

स्वयंवर मंडपकी सजावट हो गई है। नगरका शृंगार किया गया है। अब वह सुलोचना देवी कल या परसोंतक किसीके गलेमें माला डालेगी, इस प्रकार लोग यत्र-तत्र बातचीत कर रहे हैं।

इस समाचारको सुनकर अर्ककीर्ति व आदिराज एकांतमें कुछ विचार करने लगे, क्योंकि वे भरतेशके ही तो सुपुत्र हैं! अर्ककीर्ति आदिराज-कुमारसे पूछने लगा कि आदिराज! क्या अपनेको काशीके अन्दर जाना चाहिए या नहीं? उत्तरमें आदिराज कहने लगा कि जानेमें क्या हानि है? हमारे अधीनस्थ राजाओंके राज्यको जानेमें संकोच क्यों? और उसमें हर्ज क्या है? उसकी पुत्रीके लोभसे जैसे दूसरे लोग आये हैं उस प्रकार हम लोग नहीं आये हैं। अपन तो पिताजीसे कहकर देशकी शोभा देखनेके लिए निकले हैं। यह सब लोकमें प्रसिद्ध है। यह काशी अपने लिए रास्तेमें है, उसे छोड़कर जावें तो भी उसमें गंभीरता नहीं रहती, चाहे अपन यहांपर अधिक न ठहरकर आगे बढ़ सकते हैं। इसे सुनकर अर्ककीर्ति कहने लगा कि हमें देखनेके बाद वे हमें जल्दी नहीं जाने देंगे। फिर अपनको स्वयंवर मंडपमें जरूर ले जायेंगे।

आदिराज पुनः कहने लगा कि भाई! स्वयंवरशालामें हीन विचार-वाले हो जाते हैं। ज्ञानी वहांपर जाते नहीं हैं। कदाचित् जावें तो वह कुमारी किसी एक ही के गलेमें माला डालेगी। बाकीके सबको वहांसे खाली हाथ ही वापिस जाना पड़ता है। स्वयंवरके पहिले प्रत्येक व्यक्ति उक्त नारीको वरनेके लिए आशा करते हैं। परन्तु जब वह माला किसी एकके गलेमें पड़ती है तब सब लोग अपनी लज्जाको बेच कर जाते हैं।

भाई विचार करो, एक कन्याकी सब लोग अपेक्षा करें क्या यह उचित है ? जब वह एकको पसन्द करेगी तब बाकीके लोग तो मौंडू ही ठहरते हैं न ? इसलिए अपनेको वहाँ स्वयंवर मंडपमें नहीं जाना चाहिए। अपन अपने मुकामके स्थानमें ही रहें।

तब अर्ककीर्ति कहने लगा कि यदि उन्होंने पाँव पकड़कर आग्रह किया तो क्या करना चाहिये यदि उस हालतमें भी हम नहीं गये तो राजा अकंपनको बड़ा दुःख होगा और बाकीके राजकुमारोंको भी बुरा लगेगा। इसलिए क्या करना चाहिये ? तब आदिराजने कहा कि इसके लिए मैं एक उपाय कहता हूँ। जब आपको वे आग्रह करनेके लिए आयें तब आप उनसे कहें कि राजा अकंपन ! तुमने जिस प्रकार पत्र भेजकर स्वयंवरके लिए और लोगों को बुलाया है वैसे हम लोगोंको नहीं बुलाया है। इसलिए हम लोग स्वयंवर मंडपमें नहीं आ सकते हैं।

इसे सुनकर अर्ककीर्तिने कहा कि शाबास भाई ! शाबास ! मेरे हृदयमें जो था वही तुमने कहा ! ठीक है, ऐसा ही करेंगे।

इस प्रकार दोनों विचार करके आनन्दके साथ काशीकी ओर आ रहे हैं।

युवराज अर्ककीर्ति काशीकी ओर आ रहे हैं, यह सुनकर अकंपनको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि सम्राट्का पुत्र अपनी पुत्रीके विवाहके लिए आ रहा है। यह मेरे भाग्यकी बात है। हजारों भूचर व खेचर राजपुत्रोंके आनेसे क्या ? जब महाचक्रधारी चक्रवर्तीके पुत्र आ रहे रहे हैं। मैं सचमुचमें भाग्यशाली हूँ। मेरे स्वामीके सुपुत्र किसी कारणसे आ रहे हैं उनका आदर-सत्कार योग्य रीतिसे होना चाहिये। यदि उसमें किसी भी प्रकारकी न्यूनता रहेगी तो उससे मेरी हानि होगी। इसलिए अत्यन्त भय व भक्तिसे इनके स्वागतकी व्यवस्था करनी चाहिये। इस विचारसे अकंपन राजा उस व्यवस्थामें लगा।

राजमहलको खाली कराकर स्वयं अकंपन दूसरे एक घरमें निवास करने लगा। पुरमें अनेक प्रकारकी शोभा की गई। सब जगह समाचार दिया गया कि कल या परसोंतक सम्राट्के सुपुत्र आ रहे हैं।

स्वयं राजा अकंपन अपने पुरजन व परिजनोंके साथ और अनेक देशके राजा महाराजाओंके साथ युक्त होकर उनके स्वागतके लिए निकला है। हाथमें अनेक प्रकारकी भेंट, वस्त्र, रत्न वगैरह लेकर जा रहे हैं। एक दो मुक्कामके बाद आकर सबने युवराजका दर्शन किया, परम

आनन्दसे भेट रखकर युवराजको नमस्कार किया। अर्ककीर्ति कुमारने उन सबको उठनेके लिए कहा व अकंपनराजासे प्रश्न किया कि राजन्! तुम्हारे साथ जो राजा लोग आये हैं उनके आनेका क्या कारण है? हम लोग जहाँ-तहाँ देशकी शोभा देखकर आ रहे हैं। अभीतक देखनेमें आया था कि तत्तद्देशके राजा ही हमारे स्वागतके लिए आते थे। परन्तु यहाँ और ही कुछ बात है। तुम्हारे साथ अन्य देशके राजा भी मिलकर आये हैं, यह आश्चर्यकी बात है। इसका कारण क्या है? क्या तुम्हारे यहाँ कोई पूजा, प्रतिष्ठा उत्सव चालू है या विवाह? नहीं-नहीं, ये तो स्वयंवर-के लिए मिले हुए मालूम होते हैं, क्योंकि इनकी सजावट ही इस बातको कह रही है। तो भी वास्तविक बात क्या है? कहो।

उत्तरमें राजा अकंपनने निवेदन किया कि स्वामिन्! आपने जो आखिरका वचन कहा वह असत्य नहीं है। मेरी एक पुत्री है। उसके स्वयंवरके लिए ये सब एकत्रित हुए हैं। आपके पधारनेसे परम सन्तोष हुआ, सोनेमें सुगन्ध हुआ, आप लोगोंके पधारनेसे साक्षात् भरतेशके आगमनका सन्तोष हुआ। आप दोनोंके पादरजसे मेरा राज्य पवित्र हुआ इस प्रकार बहुत सन्तोष के साथ राजा अकंपनने निवेदन किया। इसी प्रकार मेघेश (जयकुमार) आदि अनेक राजाओंने उन दोनों कुमारोंका स्वागत करनेके बाद अनेक भूचर खेचर राजाओंके साथ राजा अकंपनने उनको काशी नगरमें प्रवेश कराया।

नगरमें प्रवेश करनेके बाद अर्ककीर्तिकुमारको मालूम हुआ कि अकं-पन राजाने हम लोगोंके लिए राजमहलको खाली करके दूसरे स्थानमें निवास किया है। ऐसी हालतमें क्या करना चाहिए इस विचारसे अर्क-कीर्ति आदिराजकी ओर देखने लगा। आदिराजने कहा कि अपने अन्य स्थान में ही मुकाम करें। तब अर्ककीर्तिने अकंपनसे कहा कि आदिराज क्या कहता है सुनो। परन्तु अकंपनका आग्रह था कि अपने महल में ही पदार्पण करना चाहिये। तब आदिराजने कहा कि अपने महलको तुमने यदि हमारे लिए खाली किया तो क्या वह हमारा हो गया? कभी नहीं! हम लोग यहाँ नगरकी गलबलीमें नहीं रहना चाहते हैं। इसलिए नगरके बाहर किसी उद्यानमें कोई महल हो तो ठीक होगा। हम वहींपर रहेंगे। तब अकंपनने कहा कि बहुत अच्छा, तैयार है, लीजिए! चित्रानंद नामका देव पूर्वजन्मका मेरा मित्र है। उसने स्वयंवरके प्रसंगको लक्ष्यमें रखकर दो महलोंका निर्माण किया है। उस स्थानको आप लोग देखें।

परम संभ्रमके साथ दोनों राजपुत्र उस उद्यानकी ओर जाकर महलमें प्रविष्ट हुए। वहींपर उन्होंने मुकाम किया। उनके परिवार, सेना आदिने भी उस बगीचेमें बाहर मुकाम किया।

राजा अकंपनने पाँच दिनतक अनेक वस्तुओंको भेंटमें भेजकर उन राजकुमारोंका हर प्रकारसे आदर-सत्कार किया। तदनन्तर अनेक राजाओंके साथ आकर राजा अकंपन निवेदन करने लगे कि युवराज! मेरी एक विनती है। आप दोनोंके पधारनेसे पहिले निश्चित किये हुए मुहूर्तको टालकर दो-चार दिन व्यतीत किया। अब स्वयंवर के लिए कलका मुहूर्त बहुत अच्छा है। सो आप दोनों भाई स्वयंवर मंडपमें पधारकर उस विवाहमें शोभा लावें और हम सबको आनन्दित करें।

उत्तरमें अर्ककीर्तिने कहा कि अकंपन! हम लोग स्वयंवर मंडपमें नहीं आयेंगे, हमें आग्रह मत करो। तुम निश्चित किये हुए कार्यको करो, हमारी उसमें सम्मति है। जाओ! अकंपनने पुनश्च प्रार्थना की कि युवराज! आप लोगोंके न आनेपर विवाह मंडपकी शोभा ही क्या है? अत्यन्त वैभवके साथ आप लोगोंको हम ले जाएंगे। इसलिए आपको पधारना ही चाहिये। अनेक राजाओंके साथ जब इस प्रकार अकंपनने आग्रह किया तब अर्ककीर्तिने स्पष्ट रूपसे कहा कि अकंपन! सुनो, जैसे तुमने स्वयंवरके लिए सबको निमंत्रणपत्र भेजा था, वैसा हमें तो नहीं भेजा था। हम तो देशमें विहार करते-करते राहगीर होकर यहाँ पर आये हैं। स्वयंवरके लिए नहीं आये हैं। इसलिए कन्यालयमें अर्थात् स्वयंवरमंडपमें पदार्पण करना क्या यह धर्म है। इसलिए हम लोग नहीं आएंगे। ये सब राजा खास स्वयंवरके लिए ही आये हुए हैं। उनके साथमें तुम इस कार्यको करो। हम एक चित्तसे इसमें अनुमति देते हैं। जाओ, अपना कार्य करो। इस प्रकार समझाकर अर्ककीर्तिने कहा।

अकंपन काँपते हुए कहने लगा कि युवराज! आप लोगोंको पत्र न भेजनेमें मेरा कोई खास हेतु नहीं है। सम्राट्के पुत्रोंको मैं एक किंकर राजा किस प्रकार पत्र भेजूँ, इस भयसे मैंने आप लोगोंको पत्र नहीं भेजा और कोई अहंकारादि भावनासे नहीं। इसलिए आप को अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। इस बातको अकंपनने बहुत विनयके साथ कहा।

अर्ककीर्ति कहने लगा कि समान वंशवालोंको बुलानेके लिए भय खानेकी क्या जरूरत है? संपत्तिमें अधिकता हो तो क्या है? परन्तु

बिना निमन्त्रणके आनेवालोंको वहाँपर नहीं जाना चाहिये, यह राजपुत्रोंका धर्म है। हम यदि वहाँपर आयेंगे तो पिताजी नाराज होंगे, इसलिए हम दोनों नहीं आयेंगे। हमारे मित्र आ जायेंगे, छप्पन देशके राजालोग हैं। खेचर हैं, भूचर हैं। जाओ, अपने कार्यको संपन्न करो।

सुरचन्द्र, शुभचन्द्र, गुणचन्द्र, श्रीचन्द्र, वरचन्द्र, विक्रान्तचन्द्र, हरिचंद्र व रणचन्द्र नामके अपने साथके आठ चन्द्रोंको अर्ककीर्तिने स्वयंवरमें जानेके लिए कहा। उद्दंडमति व सन्मति नामक अपने दो मंत्रियोंको भी वहाँपर जानेकी अनुमति दी। साथ में उनको यह भी कह दिया कि हम लोग यहाँपर हैं इस विचारसे कोई संकोच वगैरहकी जरूरत नहीं, तुम लोग आनन्दसे खेलकूदसे अपना कार्य करो। इस प्रकार सुरचन्द्र आदि आठ चन्द्र, परिवारके मुख्य सज्जन व उभय मन्त्रियोंको अनुमति मिलनेके बाद वे सब मिलकर वहाँसे गये।

दूसरे दिनकी बात है, नगरके बाहर स्वयंवरके लिए खासकर निर्मित स्वयंवर मण्डपमें आगत सर्व राजा दुपहरको पधारें, इस प्रकारकी राजघोषणा की गई। इस राजघोषणा (ढिंढोरा) की ही प्रतीक्षा करते हुए सभी राजपुत्र पहिलेसे सजधजकर बैठे थे। इस घोषणाके पाते ही अपनी-अपनी सेना परिवारके साथ एवं गाजेबाजेके साथ स्वयंवर-मण्डपमें प्रविष्ट हो गये। उस विशाल स्वयंवर-मण्डपमें सबके लिए भिन्न-भिन्न आसनकी व्यवस्था की गई थी। उनपर वे बैठ गये। राजा अकंपनने उन आगत राजाओंको तांबूल वस्त्राभूषणादिकसे पहिलेसे वहाँपर सत्कार किया। क्योंकि बादमें किसी एकके गलेमें माला पड़नेके बाद ये सब उठकर चले जायेंगे।

सुलोचनादेवी अपनी परिवारी सखियोंके साथ सुन्दर पालकीपर चढ़कर स्वयंवर मण्डपकी ओर आ रही है।

वह परम सुन्दरी है, स्वयंवरके लिए योग्य कन्या है, परन्तु वह जिसके गलेमें माला डालेगी वह पुरुष बहुत अधिक वर्णन करने योग्य नहीं है। इसलिए सुलोचना देवीका भी यहाँपर संक्षेपसे ही वर्णन करना पर्याप्त होगा। यह भरतेश वैभव है। भरतचक्रवर्ती व उनकी रानियोंका वर्णन जिस प्रकार किया जाता है उस प्रकार अन्य लोगोंका करूँ तो वह उचित नहीं होगा तथापि उस स्वयंवरकी मुख्य देवीका वर्णन करना जरूरी है।

मदनकी मदहस्तिनी आ रही है, अथवा मोहरथ ही आ रहा है, सब

लोग रास्ता साफ करें इस प्रकारकी घोषणा परिचारनारियाँ कर रही हैं। छत्र, चामर, पताका इत्यादि वैभव उसके साथ है। साथमें गायन चल रहा है, अथवा यों मालूम हो रहा है कि कामदेवकी वीरश्री ही आ रही है।

पालकीके पर्देसे हटकर वह खड़ी हो गई तो वह कामदेवके म्यानसे निकली हुए तलवारके समान मालूम हो रही थी। नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं बना, मेघमंडलसे बाहर आये हुए चन्द्रमाके समान मालूम हो रही थी। अथवा विद्युन्मालाके समान मालूम हो रही थी। स्वयंवरमंडपमें पहुँचकर एक दफे समस्त खेचर भूचर राजाओंको उसने देखा। उस समय उसके लोचन (नेत्र) बहुत सुन्दर मालूम हो रहे थे। सचमुचमें उसका सुलोचना यह नाम उस समय सार्थक हुआ।

उसकी दृष्टि पड़ते ही समस्त राजाओंको रोमांच हुआ जिस प्रकार कि दक्षिणदिशाकी वायुसे उद्यानके वृक्ष पल्लवित होते हैं। चन्द्रमाकी कान्तिको जिस प्रकार चकोर दृष्टिसे देखता है उसी प्रकार इस सुन्दरीके रूपके प्रति मोहित होकर वे राजा देखने लगे हैं। सुलोचनाके मुखमें, कण्ठमें, स्तनोंमें, बाहुओंमें, कटिप्रदेशमें उन राजाओंके लोचन प्रवेश कर रहे हैं, प्रविष्ट होनेके बाद वहाँसे वे वापिस नहीं आ रहे हैं यह आश्चर्यकी बात है। बहुत ही लीनदृष्टिसे वे लोग देख रहे हैं। मिलनेका सुख उनको आगे मिलेगा, परन्तु देखनेका सुख आज सबको मिला इस हर्षसे सब लोग प्रसन्न हो रहे हैं। एक स्त्रीके लिए सब लोग आसक्त हो रहे हैं, यह स्वयंवर एक भांडोंका खेल है।

चित्तमें रागभावसे सबको उस सुलोचनाने देखा एवं सबने उसके प्रति आसक्त दृष्टिसे देखा है, यही तो भावरति है। स्वयंवर एक परिहासास्पद विषय है। आधे मुखको खोलकर, आँखोंको फाड़-फाड़कर भ्रान्त होकर उसकी ओर सब लोग देख रहे थे। भरतचक्रवर्तीके पुत्र उस स्वयंवरमण्डपमें क्यों नहीं आये, यही तो कारण है। वे विवेकी सम्राट्के सुपुत्र हैं।

सुलोचना देवी अपने हाथमें माला लेकर दाहिने और बाँयें तरफ बैठे हुए राजाओंको देखती हुई जा रही है। साथमें महेन्द्रिका नामकी चतुर सखी है यह सब राजाओंका परिचय देती हुई जा रही थी।

यह नेपालके राजा हैं, देखो। सुलोचना आगे बढ़ गई, उस राजाका मुख एकदम फीका पड़ गया, चालमें फंसे हुए नये बंदरके समान उसकी हालत हुई।

यह हम्मीरके राजा हैं, देवि देखो! सुलोचना उसे देखकर आगे बढ़ी। उस राजाकी आँखें भर आईं जैसे कि उसका बाप ही चल बसा हो।

चीनदेशका यह राजा है, यह कहनेपर उसे भी देखकर सुलोचना आगे बढ़ी। वह राजा सिर खुजाते हुए अपने जीवनको धिक्कार रहा था।

यह लाटदेशका राजा है। सुलोचना उसकी परवाह न कर आगे बढ़ी। उसे बहुत बुरा मालूम हुआ। मिलनेके लिए बुलाकर किसीको धक्का दिया तो जिस प्रकार होता हो, उसे बहुत दुःख हुआ।

गौडदेशके राजाको देखकर यह भोंदूका गौडा होगा यह समझकर सुलोचना आगे बढ़ी।

बंगालके राजाको देखकर भी आगे बढ़ी। वह बहुत घबरा गया। इस प्रकार वह महेन्द्रिका अनेक देशके राजाओंके परिचयको कराते हुए जा रही थी।

अंगदेश, काश्मीर, कलिंग, कांभोज, सिंहल आदि अनेक देशोंके राजाओंका परिचय कराया। परन्तु वह सुलोचना आगे बढ़ती ही गई। पुनः महेन्द्रिका कहने लगी कि देवी! यह म्लेच्छभूमिके राजा हैं, ये विद्याधर राजा हैं, ये सूर्यवंशी हैं, ये चन्द्रवंशी हैं। इत्यादि कहने पर भी सुलोचना सुनती हुई जा रही थी।

गुणचन्द्र, शुभचन्द्र, रणचन्द्र, सुरचन्द्र आदि अष्ट चन्द्रोंका भी परिचय कराया गया। उनको तृणके समान समझकर आगे बढ़ी।

अनेक तरहके पुष्पोंको छोड़कर जिस प्रकार भ्रमर आकर कमल-पुष्पके पास ही खड़ा रहता है, उसी प्रकार वह सुलोचना देवी सबको छोड़कर एक राजाके पास आकर खड़ी हो गई। वह भी परम सुन्दर था। उसके प्रति देखती हुई वह खड़ी है, सुलोचनाके मनकी भावनाको समझकर महेन्द्रिका कहने लगी कि देवी! अच्छा हुआ, सुनो! इसका भी परिचय करा देती हूँ।

यह हस्तिनापुरके अधिपति अप्रहित सोमप्रभ राजाका सुपुत्र है। सुप्रसिद्ध है, कुरुवंशभूषण है, कलाप्रवीण है, गुणोत्तर है, भरतचक्रवर्तीका प्रधान सेनापति है। परबलकालभैरव है, शत्रुओंको मार भगाकर वीराग्रणि उपाधिसे विभूषित हुआ है। मेघमुख व कालमुख देवोंके साथ घोर-युद्ध किया हुआ यह वीर है। इसका नाम मेघेश्वर है। इसलिए ऐसे

वीरको माला डालो। इस प्रकार उस जयकुमारकी प्रशंसा सुनते ही सुलोचनाने उसके गलेमें माला डाल दी। सब दासियोंने उस समय जय-जयकार किया।

माला गलेमें पड़ते ही सब राजाओंके पेटमें शूल पैदा हुआ। युद्धके स्थानसे जैसे भाग खड़े होते हों उस प्रकार चारों तरफ भागने लगे।

जयकुमार व सुलोचना हाथीपर चढ़कर महलकी ओर रवाना हुए। अकंपन राजाने उनका यथेष्ट सत्कार कर महलमें प्रवेश कराया। वे उधर आनन्दसे थे।

इधर स्वयंवरके लिए आये हुए राजा लोग किसी सट्टेमें हारे हुएके समान, धन लुटनेके समान, विशेष क्या? माँ-बाप मर गये हों उस प्रकार दुःख करने लगे हैं। एक दूसरेके मुखको देखकर लज्जित हो रहे हैं। झेंपकर इधर-उधर जाते हैं। एक स्त्रीके लिए सबको कष्ट हुआ, इस बातका कष्ट सबके हृदयमें हो रहा है।

शुभचन्द्र आदि अष्टचन्द्र भी बहुत दुःखी होकर एक जगह बैठे हुए हैं। वहाँपर उद्दण्डमति पहुँचकर कहने लगा कि क्यों जी! आप लोग क्षत्रिय हैं न? आप लोगोंको हीन दृष्टिसे देखकर सुलोचनाने उसे माला डाल दी। आप लोग चुपचाप सरक गए? क्या यह स्वाभिमानियोंका धर्म है? आप लोगोंको भी उसकी जरूरत नहीं, उस जयकुमारको भी न मिले, सब मिलकर युवराज अर्ककीर्तिको उस कन्याको दिला दें। तब सब लोगोंने उस ओर कान लगाया।

हाथी, घोड़ा, स्त्री आदियोंमें उत्तम पदार्थ हमारे स्वामियोंको मिलने चाहिये। इस सौन्दर्यकी स्त्री क्या इस सेवकके लिए योग्य है? क्या यह मार्ग है? आप लोग विचार तो करो।

तब सब लोगोंने उसकी बातका समर्थन करते हुए कहा कि उद्दण्ड-मति! शाबास! तुम ठीक कहते हो। यह दुराग्रह नहीं है, सत्य है।

सबने उसकी बातकी स्वीकृति दी। अष्टचन्द्र भी सहमत हुए। ठीक बात है। लोकमें क्रूर हृदयवालोंसे क्या अनर्थ नहीं हुआ करते हैं। उद्दण्डमतिने जिस समय गंभीरहीन वाक्योंसे लोगोंको बहकाया तब सब लोग उस अनीति-मार्गके लिए तैयार हुए।

सन्मति मन्त्रीने कहा कि उद्दण्डमति! ऐसा करना उचित नहीं है, बहुत अनर्थ होगा। उद्दण्डमतिने कहा कि तुम क्या जानते हो? चुप रहो।

युवराज अर्ककीर्तिको हम उत्तम कन्यारत्नकी योजना कर रहे हैं, ऐसी अवस्थामें तुम उसमें विघ्न मत करो। इस प्रकार सब लोग जोरसे कहने लगे, तब सन्मति मौनसे खड़ा हुआ। उद्दण्डमतिने यह भी कहा कि उपायसे मैं युवराजको समझाकर इस कार्यमें प्रवृत्त करूँगा।

इस प्रकार अष्टचन्द्र दुष्टमंत्रीके वचनको सुनकर विशिष्ट मंत्रीका तिरस्कार करने लगे तब वह सन्मति वहाँसे चला गया। सूर्यदेव भी इस अन्यायको देख न सकनेके कारण अस्तंगत हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल युवराजके कानमें सब बात डालेंगे, इस विचार-से सब अपने-अपने मुकाममें गये।

लोकमें बहुत ही विचित्रता है, लोग अपने-अपने मतलबसे वस्तु-स्थितिको भूलकर अनेक प्रकारके संक्लेश, क्षोभ आदिके वशीभूत होते हैं एवं विश्वमें अशान्ति उत्पन्न करते हैं। यदि उन लोगोंने आत्मतत्त्वका विचार किया तो परतत्त्वके लिए होनेवाले अनेक अन्तःकलहका सदाके लिए अन्त हो। इसलिए महापुरुष इस बातकी भावना करते हैं, हमें सदा आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हो।

"हे परमात्मन्! तुम परचिन्तासे मुक्त हो, आकाश ही तुम्हारा शरीर है; ज्ञानके द्वारा वह भरा हुआ है, अथवा शीतप्रकाशमय तुम्हारा शरीर है, हे सत्पुरुष! तुम्हारे लिए नमोस्तु है।

हे सिद्धात्मन्! सुज्ञानशेखर! पुण्यात्माओंके पति! गुणज्ञोंके गणनीय अधिपति! लोकगुरु मेरे लिए सन्मति प्रदान कीजिये!

इसी पुण्यमय भावनाका फल है कि महापुरुषोंके जीवनसे
विश्वमें शान्तिका संचार होता है।

इति स्वयंवरसंधिः।

—००—

लक्ष्मीमति विवाह संधि

धूर्तोंके खेलको थोड़ा देखूं, एवं युवराज अर्ककीर्तिके मंगलकी वार्ताको सुनकर जाऊँ, इस विचारसे सूर्यदेव उदयाचलकी ओरसे आया।

प्रातःकाल उठकर मुखप्रक्षालनादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सर्व राजा उद्दण्डमतिको साथमें लेकर अर्ककीर्तिके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही अर्ककीर्तिने प्रश्न किया कि आप लोगोंके कार्यका क्या हुआ? तब सब लोगोंने उद्दण्डमतिसे कहा कि तुम अकेला बोलो। सब लोग मौनसे रहे।

उद्दंडमतिने विचार किया कि यदि मैं यह कहूं कि सुलोचनाने किसी एकके गलेमें माला डाल दी तो युवराजका मन उस कन्याकी ओर आकर्षित नहीं होगा। इसलिए अब किसी उपायसे इनको सब वृत्तांत कहना चाहिए। उस समय युवराजको बहकाते हुए कहा कि---

स्वामिन्! वह कन्या स्वयंवरशालामें दाखिल हुई तो किसीको भी अपने मनसे माला नहीं डाली, उसके मनमें न मालूम क्या था। यहाँपर आनेके बाद किसीके गलेमें माला जरूर डालनी ही चाहिए, इस प्रकारसे उसके आप्तोंने कहा। फिर भी वह चुपचाप खड़ी रही। मालूम होता है कि वहाँ एकत्रित राजाओंमें कोई पसन्द नहीं आया। राजन्! उन कंचुकियोंको मेघेश्वरने लांच (रिश्वत) दिया होगा, सो उन्होंने मेघेश्वर की खूब प्रशंसा की। तथापि सुलोचनाने उसकी ओर देखकर अपने मुख को फेर दिया। राजा अकंपनको चिंता हुई।

राजा अकंपनने विचार किया कि यहाँ उपस्थित राजाओंमें किसी न किसीके साथ विवाह होना ही चाहिए। नहीं तो बहुत बुरी बात होगी। इसलिए उसके गलेमें माला डाल दो। इस प्रकार राजा अकंपनने कंचुकियों से सुलोचनाके कानमें कहलाया। तो भी सुलोचना तैयार नहीं हुई। इतने में एक सखीने उसके हाथसे माला छीनकर मेघेश्वरके गलेमें डाल दी व जयजयकार करने लगी। राजा अकंपनने किसी तरह अपनी बेटीका पति बनाया। वह सुलोचना भी अपनी इच्छा न होते हुए भी परवश होकर उसके पीछे पीछे गई। इधर उस अन्यायको देखकर राजाओंको बहुत बुरा मालूम हुआ। प्रसन्नताके साथ उसके मनसे किसी एकके गलेमें माला डालना यह उचित है। परन्तु उसकी इच्छा न होते हुए जबर्दस्ती किसीके गलेमें माला डलवाना क्या यह अन्याय नहीं है? क्या ये क्षत्रिय नहीं हैं। हाँ! मार्गसे चले तो कोई बात नहीं है। वक्रमार्गसे जावे तो कौन सहन

करते हैं ? इसलिए सब लोगोंने विचार किया कि किसीको भी उस कन्याकी आवश्यकता नहीं है। युवराजके लिए वह कन्यारत्न मिलना चाहिए। हाथी, घोड़ा, रथ, रत्न, कन्या आदियोंमें उत्तम पदार्थ महानरेंद्रोंके सिवाय दूसरोंको कैसे मिल सकते हैं। इसलिए वह कन्यारत्न तुम्हारे सिवाय दूसरोंके योग्य नहीं है। इस प्रकार इन सब राजाओंने स्वीकृत किया। अष्टचंद्रोंको भी यह बात पसन्द आई। हम दोनों मंत्रियोंने सलाह की। हमारे हृदयमें जो बात जँची उसे आपकी सेवामें निवेदन किया अब आप इस सम्बन्धमें विचार करें।

अर्ककीर्तिने उत्तरमें विचार कर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही यदि कन्याके पिताने भी कहा तो मैं इसे स्वीकार कर सकता हूं। मैं स्वयं कन्याको मांगना नहीं चाहता, मैं स्वयं मांगूं तो उसके मिलनेमें क्या बड़ी बात है।

तब मंत्रीने कहा कि राजन् ! तुम्हें उस बातके लिए प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं है। हम लोग लाकर उपायसे संधान कर देंगे।

अर्ककीर्ति विचारमें पड़ा। इतनेमें आदिराजने कहा कि भाई ! स्वयंवरके नियमानुसार कन्याने किसीके गलेमें स्वेच्छासे माला डाल दी तो उसमें विरोध करना उचित नहीं है। परन्तु जबर्दस्ती माला डलवानेसे कोई विवाह हो सकता है ? जब सुलोचना की इच्छा न होते हुए भी उसे मजबूर किया तो वह कदाचित् दीक्षा ले लेगी। जिस दासीने माला उसके हाथसे लेकर उसके गलेमें डाली उसीको मेघेश्वरकी सेवाके लिए प्रसन्नता के साथ दे सकेंगे। जब कि कन्याकी उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा नहीं है, युवराजसदृश पति उसके लिए मिल रहा है तो सब लोग हर्षके साथ इसे स्वीकृत करेंगे। जाइये ! भाईके लिए उस कन्याकी योजना कीजिएगा। इस प्रकार आदिराजके वचनको सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए।

पुनः मंत्रीने कहा कि मैं अकंपन राजाके पास जाता हूं। अकेला जाऊं तो प्रभाव नहीं पड़ेगा। सेना, परिवार, वैभव आदिके साथ जाना चाहिए। तब राजा अकंपनको उत्साह पैदा होगा। इसलिए सेनाके साथ युक्त होकर जाता हूं और यह कार्य कर लाता हूं।

इस प्रकार अर्ककीर्तिको बातोंमें फँसाकर दुर्मति मंत्री दो हजार गणबद्ध देवोंको अपने साथ लेकर अष्टचंद्रराजाओंके साथ रवाना हुआ।

जो मंत्री अर्ककीर्तिके सामने यह कहकर आया है कि मैं उपायसे राजा अकंपनको मनाकर तुम्हारे लिए कन्याकी योजना कराऊंगा, उसने

नगरके बाहर खड़े होकर अकंपन व मेघेश्वरको भयसूचक खलीता लिख-कर भेजा। उसमें अर्ककीर्तिके नामसे लिखा गया था कि परम सुन्दर वह कन्यारत्न मेरे सेवकके लिए योग्य नहीं है। उसकी प्राप्ति मुझे होनी चाहिए। उस पत्रको बाँचकर सब लोग आश्चर्यचकित हुए। मेघेश्वर विचार करने लगा कि अर्ककीर्ति मेरा स्वामी है। मैं उसका सेवक हूँ। ऐसी अवस्थामें मेरा अपमान करना क्या उसका धर्म है? इस प्रकारके विचारसे पत्रोत्तर भेजनेकी तैयारीमें था, इतनेमें उद्दंडमति मंत्री आया व कहने लगा कि युवराजने यह भी कहा है कि हाथी, घोड़ा, कन्या, आदियोंमें जो उत्तम रत्न हैं, मेरे लिए मिलने चाहिए। वह तुम्हारे लिए कैसे मिल सकते हैं। तुम्हारे घरकी स्त्रियोंकी माँगनी नहीं की, कदाचित् अभिमानसे यह कह रहा हूँ ऐसा मत समझो।

मेघेश्वर दंग रह गया। पुनः उसने पूछा कि युवराजने और क्या कहा है? उद्दंडमतिने कहा कि पाणिग्रहण विधान होनेके पहिले मैं तुम्हें सूचना दे रहा हूँ। वह तुम्हारी स्त्री नहीं बनी है। ऐसी अवस्थामें उसे लाकर मुझे सौंप देना तुम्हारा कर्तव्य है, अन्यथा युद्धकी तैयारी करो।

अन्तिम शब्दको सुनकर मेघेश्वरको दुःख हुआ। विचारमें पड़ा कि अपनी पत्नीको देकर मैं कैसे जी सकता हूँ? अपने स्वामीके साथ युद्ध भी कैसे कर सकता हूँ? इसे पकड़ भी नहीं सकता। छोड़ भी नहीं सकता। अब क्या करना चाहिये। बड़ा ही विकट प्रसंग है।

अपने हाथमें स्थित पत्नीको मैं दूसरोंको दूँ तो मेरे लिए धिक्कार हो। मैं क्या मलेपाली या तुद्धव हूँ? मैं कल मूछोंपर हाथ रखकर कैसे बात कर सकता हूँ? राजा जबर्दस्ती अपनी पत्नीको ले जा रहा है, इससे रोते हुए मैं भाग जाऊँ तो क्या मैं बनिया हूँ, ब्राह्मण हूँ या किसान हूँ? क्या बात है? मेरा सर्वस्व हरण हुआ तो हर्ज नहीं, सुलोचनाको नहीं दे सकता। मूर्ति (शरीर) का नाश होना बुरी बात नहीं है, परन्तु कीर्तिका नाश होना अत्यन्त बुरी बात है। इस कन्याके लिए मेरा प्राण जाए, परन्तु अब कीर्तिके लिए ही मरूँगा, इस विचारसे धैर्यके साथ सम्राट्के पुत्रका सामना करनेके लिए तैयार हुआ।

काशीके राजा अकंपन जयकुमारके साथ मिलकर अर्ककीर्तिकी ओरसे आये हुए राजाओंके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ। युद्ध सन्नाहभेरी बजाई गई। अष्टचंद्र व अन्य राजाओंको मालूम हुआ कि जयकुमार युद्ध सन्नद्ध हुआ, वे अत्यधिक क्रोधित हुए व युद्धके लिए अपनी

सेनाको लेकर चले। रणभूमिमें भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों ओरसे प्रचंड वीरताके साथ युद्ध होने लगा। वह कुछ मामूली युद्ध नहीं था। अपितु रक्तकी नदी हो बहाने योग्य युद्ध था। परन्तु पुण्योदयके कारण वहांपर एक नवीन घटना हुई।

पहिले जयकुमारने एक सर्पको मरते समय पंचनमस्कार मन्त्र दिया था, वह धरणेंद्रदेव होकर पैदा हुआ था। सो इस प्रचंड युद्धके समय उस देवको अवधिज्ञानसे मालूम होनेके कारण वह आया।

"उस दिन मुझे उपकार किया है। इस समय मैं तुम्हारे शत्रुओंका नाश करूंगा।" इस प्रकार उस देवने कहा। जयकुमारने कहा कि ऐसा नहीं होना चाहिए। तुम यहांपर आये, बड़े संतोषकी बात है। परन्तु आगे सबको आनंद हो, ऐसा व्यवहार होना चाहिए। यदि सबको [illegible] हो तो तुम्हारी क्या जरूरत है? यह काम मैं भी कर सकता हूँ। मैंने यही विचार किया था कि इन लोगोंको मारकर मैं स्वयं भी मरूंगा। परन्तु अवधिज्ञानसे जानकर तुम जब आये तब सबका हित होना चाहिए। मेरे स्वामीकी सेनाका नाश मैं करूं तो क्या यह उचित हो सकता है? इसलिए तुम अष्टचंद्र व मन्त्रीको बांधकर मुझे दे दो। बस! और कुछ नहीं चाहिए।

बस! यह क्या बड़ी बात है। मैं अभी उनको बांधकर लाता हूँ। इस प्रकार कहकर वह नागराज वहांसे गया व थोड़ी देरमें अष्टचंद्र व उद्दंडमति मंत्रीको नागपाशमें बांधकर आकाश मार्गसे ले आ रहा था। इतनेमें दो हजार गणबद्धदेवोंने देख लिया व वे उस नागराजका पीछा करते हुए व गर्जना करते हुए वे जिस जोशके साथ आ रहे थे उसे देखकर वह नागराज घबरा गया। जब उन लोगोंने आकर नागराजको घेर लिया तो नागराजने उन अष्टचन्द्र व दुष्टमंत्रीको नीचे छोड़ दिया। गणबद्ध देवोंने पड़ते हुए उनको बचाया। उनको बंधनसे मुक्त किया।

इस प्रकार इस अवसरपर जो हल्ला हुआ उसे सुनकर अर्ककीतिको संदेह हुआ कि कहीं युद्ध तो नहीं हुआ है? आदिराज उसी समय दुंदुभि-घोष नामक हाथीपर चढ़े व भाईसे कहने लगे कि मैं अभी देख कर आता हूँ। एक हजार गणबद्ध देवोंको अपने भाई अर्ककीर्तिके पास छोड़कर, एक हजार गणबद्धोंको अपने साथ लेकर आदिराज उस रणभूमिमें प्रविष्ट हुए। सर्व सेनाकी दृष्टि आदिराजकी ओर लगी थी, आदिराजकी तरफकी सेनाने उसे नमस्कार किया। आदिराजने प्रश्न किया कि इस नगरकी

घेरनेका क्या कारण है ? इस प्रकार युद्ध करके अनेक जीवोंकी हत्या कर कन्या लानेके लिए तुम लोगोंको किसने कहा था ?

इतनेमें सन्मति मंत्री आगे आया व कहने लगा कि स्वामिन् ! ये सब झूठे हैं। सुलोचनाने सचमुचमें मेघराजके गलेमें माला डाली है। परन्तु आप लोगोंके सामने झूठ बोलकर इन्होंने फँसाया। मैंने उनको उसी समय ऐसे कृत्यसे रोका था। परन्तु उन लोगोंने कहा कि जब युवराजके लिए हम कन्याका संधान कर रहे हैं तुम क्यों रोक रहे हो। इसलिए मैं सबके बीचमें बुरा क्यों कहलाऊँ, इस विचारसे चुप रहा। कलसे इनके कृत्यको मौनसे देख रहा हूँ। कुमार! आप ही विचार करो, अपनी स्त्रीको कौन छोड़ सकते हैं। जयकुमारने युद्धकी तैयारी की। अष्टचंद्र व मंत्रीको नागराजने आकर नागपाशसे बाँध लिया। वह जिस समय ले जा रहा था, गणबद्ध देवोंने आकर छुड़ा लिया। आगेकी सर्व हालत आप जानते ही हैं।

इस प्रकार कहकर सन्मति चुप रहा। आदिराज मनमें सोचने लगे कि अर्हन् ! इन लोगोंने बहुत बुरा काम किया। सन्मति मंत्रीको बुलाकर आदिराजने कहा कि जाओ, जयकुमारको बुला लाओ। तत्क्षण आकर जयकुमारने आदिराजका दर्शन किया। बड़ी नम्रताके साथ साष्टांग नमस्कार करते हुए जयकुमारने प्रार्थना की कि राजकुमार! मैं स्वामिद्रोही हूँ। मुझ सरीखे पापीको याद क्यों किया ? विजय, जयंत, अकंपन वगैरह सभी वहाँपर आदिराजको नमस्कार करते हुए जमीनपर पड़े हैं। जयकुमारकी आँखोंमें अश्रुधारा बह रही है। तब आदिराजने सबको उठनेके लिए कहा। तब सब उठ खड़े हुए। पुनः जयकुमार कहने लगा कि स्वामिन् ! जब आपकी सेनाने हम लोगोंको चारों तरफसे घेर लिया तो उसका प्रतिकार करना मेरा कर्तव्य था। सचमुचमें इसकी गणना स्वामिद्रोहमें नहीं होनी चाहिये। राजन् ! आप अभिमानके संरक्षणके लिए लोकशासन करते हैं। यदि अपने सेवकके अभिमानको आपही अपने हाथसे छीननेका प्रयत्न करें तो फिर उसके संरक्षण करनेवाले कौन हैं ? जयकुमार अत्यन्त दुःखके साथ कहने लगा। पुनः "दूसरे सेवकका अपमान न करें तो इसकी पूर्ण खबरदारी स्वामी लेते हैं। यदि वही स्वामी सेवककी स्त्रीकी अभिलाषा करें तो उस हालतमें उस सेवककी क्या गति होगी। गुरु समझकर नमस्कार करनेके लिए एक स्त्री जाए व गुरु ही उसपर मोहित होवें तो उस स्त्रीकी क्या हालत होगी ? क्या उस हालतमें धर्म रह सकता है ? राजकुमार! विचार करो, सेवककी इज्जत पर यदि

स्वामीने हाथ डाला तो क्या वह रह सकती है ? यह तो ठीक उसी तरह-की बात है कि एक मनुष्य देवालयको शरणस्थान समझकर जाता हो और देवालय ही उसपर पड़ता हो। यह सचमुचमें मेरे पापका उदय है। जब स्वामी ही सेवकके तेजको कम करनेका प्रयत्न कर रहे हैं उस हालत-में जीवित रहना क्षत्रियपुत्रका धर्म नहीं। इसलिए युद्धकर प्राणत्याग करने-के लिए मैं उद्यत हुआ। राजकुमार ! मैं आज जब साक्षात् मेरी स्त्रीके अपहरण होते हुए अपने अभिमानके रक्षणके लिए मरनेको तैयार नहीं हुआ तो कल राज्याभूषण वगैरह इनामके मिलनेपर भी तुम्हारे अभिमान-के लिए कैसे मर सकता हूं। इसलिए मैंने सामना करनेका निश्चय किया, अब जो कुछ भी करना हो करो, तुम समर्थ हो।

विशेष क्या ? आप लोग मेरे स्वामी भरतसम्राट्के पुत्र हैं, इसलिए मैं डर गया हूं। यदि और कोई इस प्रकार सामना करनेके लिए आते तो उनको जीवंत चिरकर दिग्बलि देता" इस वाक्यको कहते हुए जयकुमार क्रोधसे लाल हो रहा था।

पुनश्च—तुम्हारी सेनाके साथ मैंने युद्धकी तैयारी जरूर की। परन्तु विचार करो राजकुमार ! दूसरे कोई मेरे साथ युद्ध करनेके लिए आते तो सबको रणभूतका आहार बनाता। सामने शत्रु युद्धके लिए खड़े हों उस समय उनके साथ युद्ध न करके अपने स्वामीके पास जाकर रोवे, यह वीरोंका धर्म नहीं। तुम्हारे पिताजीके द्वारा पालित व पोषित मैं सेवक हूं। राजकुमार ! आप क्यों कष्ट लेकर आये ? आप अपने साथियोंको भेज देते तो ठीक होता। परन्तु मुझपर चढ़ाई करनेके लिए आप स्वतःही तशरीफ ला रहे हैं।

तब आदिराजने मेघेशको उत्तर दिया।

जयकुमार ! सुनो, हम लोगोंको आकर उन्होंने यह कहकर फँसाया कि सुलोचनाने किसीके भी गलेमें माला नहीं डाली थी। इसलिए हमने स्वीकृति दी। युद्ध करके दूसरोंकी स्त्रीको लानेके लिए क्या हम कह सकते हैं ? किनकी स्त्रियोंको कौन मांग सकते हैं ? क्या यह सज्जनोंका धर्म है। यदि ऐसा करें तो हमें परनारीसहोदर कौन कह सकते हैं। इस प्रकारकी उत्तम उपाधिको छोड़कर हम लोग जीवंत कैसे रह सकते हैं। हमारे चरित्रके अंतरंगको क्या तुम नहीं जानते ?

अपनी स्त्रियोंको कौन दे सकते हैं। यदि देवें तो भी वह उच्छिष्टके

समान है। उसे कौन ले सकते हैं। मंडलेश्वर उस प्रकार लेनेके लिए तैयार हुए तो क्या वह उचित हो सकता है।

यह भी जाने दो, तुम व तुम्हारे भाइयोंने जो सेवा की है वह क्या थोड़ी है ? ऐसी अवस्थामें तुम्हारे हृदयको हम दुखावें तो क्या हम बुद्धिमान् कहलानेके अधिकारी हैं ? हम सब तो अपने पिताजीके पास आराम से खेलकूदमें लगे रहे। तुम लोगोंने जाकर पृथ्वीको वशमें कर लिया। यह क्या कम महत्वका विषय है ? ऐसी अवस्थामें यदि तुम्हारा पालन हमने नहीं किया तो हमारे हृदयमें तुम्हारी सेवाओंकी स्मृति नहीं करनी चाहिये जयकुमार ! उसे भी जाने दो। आज इस नगरमें राजा अकंपनने हम लोगोंका कितना आदर सत्कार किया ? कितनी उत्कटभक्ति उसके हृदयमें हमारे प्रति है। ऐसी अवस्थामें उसकी पुत्रीके विवाहमें विघ्न उपस्थित करें तो हम लोगोंको कोई भला कह सकता है ? हम लोग विघ्नसंतोषी हुए ! विशेष क्या ? यदि ऐसे अन्यायके लिए हम सहमत हुए हों तो हमें पिताजीके चरणोंकी शपथ है, यह हम लोगोंसे कभी नहीं हो सकता है। परन्तु इन लोगोंने हमको फँसाया, उनको क्या दण्ड मिलना चाहिये, इसका विचार मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मैं राजा नहीं हूँ। चलो, युवराजके पास चलो, वहाँपर सब विचार करेंगे। अब अपनी चिंताको छोड़ो, तुम्हें मेरी शपथ है।

जयकुमारने कहा कि मेरी चिंता दूर हो गई। साथमें अपने भाई व मामाके साथ पुनः नमस्कार किया।

आदिराजने साक्षात् भरतेशके समान हो उस समय जयकुमारको वस्त्र, आभूषण रथरत्नादि भेंट किये।

पुनः कुछ विचार करके आदिराजने सबको वहाँसे जानेके लिए कहकर सिर्फ सन्मति मंत्री, अकंपन, जयकुमार व उसके भाइयोंको अपने पास बुलाया व एकांतमें कहने लगे कि जयकुमार ! सुनो, किसीके जीवनका नाश करना उचित है या किसीको बचाना अच्छा है ? उत्तरमें उन लोगों ने कहा कि किसीका जीवन बिगड़ता हो उसे संरक्षण करना सज्जनोंका धर्म है। तब आदिराजने कहा कि आखिर तक इस वचनका पालन करना चाहिये। तब उन लोगोंने उसे स्वीकार किया।

आदिराजने पुनः कहा कि अष्टचंद्र व मंत्रीकी इस करतूतको पिताजी ने सुना तो वे इनको देशभ्रष्ट किये बिना नहीं छोड़ेंगे। देशभ्रष्ट करनेपर वे नियमसे दीक्षित हो जायेंगे। इसलिये यह कार्य तुम लोगोंसे क्यों होना

चाहिये। मैं जानता हूँ कि इन लोगोंने बहुत बुरा काम किया है। उसके लिए योग्य शासन हो सकता है, परन्तु शासन करनेपर वे बिगड़ जायेंगे। कुलपक्षको लक्ष्यमें रखकर अपनेको इस प्रकरणको भुलाना चाहिये। एक बात और है, भाई अर्ककीर्तिके लिए कन्या ले आवेंगे, इस वचनको देकर वे आये हैं। अब उनकी बात रहे इसका क्या उपाय है।

काशीके राजा अकंपनने सन्तोषके साथ कहा कि मेरी और एक कुमारी कन्या है। उसे युवराजको समर्पण करूँगा। इससे भी वह सुन्दर है। स्वयंवरसे ही उसका विवाह करना चाहता था, परन्तु उसने न मालूम क्यों इनकार किया।

तब आदिराजने कहा कि ठीक है। वह भाईके लिए योग्य कन्या है। आदिराजने यह भी कहा कि अष्टचंद्र व जयकुमारको इस प्रकरणसे वैमनस्य उत्पन्न हुआ, इसे दूर कर प्रेम किस प्रकार उत्पन्न करना चाहिये? तब काशीके राजा अकंपनने कहा कि उन अष्टचंद्रोंको हम आठ कन्याओंको और देंगे। हमारे वंशमें आठ कन्यायें और हैं। तब आदिराजाने कहा कि ठीक हुआ। अब कोई बात नहीं रही। उसी समय अष्टचंद्रको बुलाकर जयकुमारके साथ प्रेमसम्मेलन कराया। उद्दंडमति व सन्मतिको भी योग्यरीतिसे संतुष्ट कर अर्ककीर्तिकी तरफ जाने के लिए वहाँसे सब निकले।

हाथीसे नीचे उतरकर सबने अर्ककीर्तिको नमस्कार किया। जयकुमारको भी साथमें आये हुए देखकर अर्ककीर्ति समझ गये कि कन्याको ये लोग नहीं ला सके। कन्याको ये लोग लाये होते तो जयकुमार लज्जासे यहाँपर कभी नहीं आता। यह विचार करते हुए अर्ककीर्तिने प्रश्न किया कि बोलो! आप लोगोंके कार्य का क्या हुआ? सब लोग मौनसे खड़े थे, आदिराजने दुष्टोंकी दुष्टताको छिपाते हुए उत्तर दिया कि भाई! इन लोगोंके जानेके पहिले ही उस कन्याने समस्त बांधवोंकी अनुमतिसे जयकुमारके गलेमें माला डाल दी है और उसी हर्षको सूचित करनेके लिए अनेक गाजेबाजेके शब्द हुए थे। क्योंकि कल उसने माला नहीं डाली थी। दूसरी बात, ये सब एक विषयपर प्रार्थना करनेके लिए आये हैं। उद्दंडमति और सन्मतिकी ओर इशारा करते हुए कहा कि कहो क्या बात है।

मंत्रियोंने कहा कि स्वामिन्! राजा अकंपनकी एक कन्या अत्यन्त सुन्दरी है, उसका विवाह आपके साथ करनेका प्रेम अकंपनने बताया है। इसके लिए आपकी सम्मति चाहिये।

यह सुनकर अर्ककीर्तिको थोड़ी हँसी आई और कहा कि ठीक है। जाओ, आप लोग अपने आनंदको मनावें। तब उन लोगोंने कहा कि स्वामिन् ! आपका विवाह ही हमारा आनंद है। सब लोगोंको जानेके लिए आज्ञा दी गई, अपने-अपने स्थानपर पहुँचकर सबने विश्रांति ली।

दूसरा दिन स्नान-भोजनादिमें व्यतीत हुआ। रात्रि विवाहके लिए तैयारी की गई। पाणिग्रहणके लिए योग्य मुहूर्तमें लक्ष्मीमतिको शृंगार करके विवाह-मण्डपमें उपस्थित किया।

लक्ष्मीमति परमसुन्दरी है। युवती है, अत्यन्त कोमलांगी है। अथवा शृंगाररसने ही स्त्रीरूपको धारण किया हो ऐसा मालूम हो रही थी।

गजगामिनी, सिंहकटी, मृगनेत्र, हँसमुखी, पीनस्तन, दीर्घबाहु, इत्यादिसे वह परम सुन्दर मालूम हो रही थी। शायद युवराजने इसे तपश्चर्यासे ही पाया हो। विशेष वर्णन क्या करें ? देवांगनाओंने उसे एक दफे देख लिया तो दृष्टिपात होनेकी संभावना थी।

उसे लक्ष्मीमति कहते थे। परन्तु लक्ष्मी तो उसकी बराबरी नहीं कर सकती थी। क्योंकि लक्ष्मी तो चाहे जिसको पसन्द करती है। परन्तु लक्ष्मीमति तो युवराज अर्ककीर्ति के लिए ही निश्चित कन्या थी।

स्वयंवरकी घोषणा देकर सबको एकत्रित किया जाय तो अनेक राजपुत्र अपनेको चाहेंगे। अन्तमें माला किसी एकके गलेमें ही डालनी होती है, यह उचित नहीं है। क्योंकि स्वयंवर हमेशा अनेकोंके हृदयमें संघर्षण पैदा करनेवाला होता है। इसलिए लक्ष्मीमतिने स्वयंवर विवाहके लिए निषेध किया। इसीसे उसके हृदयकी गम्भीरताको जान सकते हैं।

स्वयंवरमें सुन्दरपतिको ढूंढनेके लिए सबको अपने सुन्दर शरीरको दिखाना पड़ता है। इस हेतुसे जब वह अत्यन्त गूढरूपसे रही उसकी तपश्चर्याके फलसे अत्यन्त सुन्दर व सम्राट्के पुत्र अर्ककीर्ति ही उसके लिए पति मिला, यह शील पालनका फल है। सुलोचनाने स्वयंवर-मण्डपमें पहुँचकर अनेक राजाओंको देखकर भी एक सामान्य क्षत्रियके साथ पाणिग्रहण किया। परन्तु लक्ष्मीमतिके लिए तो षट्खण्डाधिपतिका पुत्र ही पति मिला। सचमुचमें इसका भाग्य अधिक है।

विशेष क्या वर्णन करें। वसन्तराज वनमें जिस प्रकार कामदेवको रतिदेवीको लाकर समर्पण करता है उसी प्रकार काशीपति अकंपनने

युवराजको संतोषके साथ लक्ष्मीमति को समर्पण किया। मंगलाष्टक, होम-विधान, जलधारा इत्यादि विधिसे विवाह किया। राजा अकंपनने सर्व महोत्सवको पूर्णकर राजमहलमें प्रवेश किया। दूसरे दिन मेघराज (जयकुमार) और सुलोचनाका बहुत वैभवसे विवाह हुआ और अष्टचन्द्रोंके भी विवाह हुए। आदिराजका भी इस समय किसी कन्याके साथ विवाह करानेका था। परन्तु उसके लिए योग्य कन्या नहीं थी। अतएव नहीं हो सका।

भरतजीने जिस प्रकार पुण्यके फलसे अनेक सम्पत्ति और सुखके साधनोंको पाया है उसी प्रकार उनके समस्त परिवारको भी रात्रिदिन सुख ही सुख मिलता है। इसके लिए अर्ककीर्तिका ही प्रकृत उदाहरण पर्याप्त है। अर्ककीर्ति जहाँ भी जाते हैं वहाँ उनका यथेष्ट आदर-सत्कार होता है, भव्य स्वागत होता है, इसमें भरतजीका भी पुण्य विशेष कारण है। कारण यशस्वी व लोकादरणीय पुत्रको पानेके लिए भी पिताको भाग्यकी आवश्यकता होती है। अतएव जिन लोगोंने पूर्वभवमें इन्द्रिय-सुखोंकी उपेक्षा की है, संसार शरीर भोगोंमें अत्यधिक आसक्त न हुए हैं उनको परभवमें विशिष्ट भोग वैभवकी प्राप्ति होती है।

भरतजीने प्रतिजन्ममें इसी प्रकारकी भावना की थी कि जिससे उनको व उनके परिवारको सातिशय सम्पत्ति व परमादरकी प्राप्ति होती है। उनकी प्रतिसमय भावना रहती है कि :—

हे परमात्मन्! आप इन्द्रियसुखोंकी अभिलाषासे परे हैं, इंद्रियोंको आप अपने सेवक समझते हैं। उन सेवकोंको साथ लेकर आप अतीन्द्रिय सुखको साधन करनेमें मग्न हैं। इन्द्र-वंदित हैं। इसलिए हे अमृतरसयोगीन्द्र! आप मेरे हृदयमें सदा बने रहें।

हे सिद्धात्मन्! आप लक्ष्मीनिधान हैं, सुखनिधान हैं, मोक्षकलानिधान हैं, प्रकाशनिधान और शुभ निधान हैं; एवं ज्ञाननिधान हैं। अतएव प्रार्थना है कि मुझे सन्मति प्रदान करें।

इति लक्ष्मीमति विवाहसंधिः।

नागरालापसंधि

विवाह होनेके सात-आठ रोज बाद आदिराजने अर्ककीर्तिके महलमें पहुँचकर अष्टचंद्र व दुष्टमंत्रियोंने जो कुछ भी कुतंत्रकी रचना की थी, सर्व वृत्तांत अपने भाईको कहा। अर्ककीर्ति एकदम क्रोधित हुआ। आदिराजकी तरफ देखते हुए कहने लगा कि दुष्टों को इस प्रकार क्षमा कर देना उचित नहीं है। परन्तु तुमने क्षमा कर दी, अब क्या हो सकता है? जाने दो। आदिराजने कहा कि भाई! क्या उन्होंने अपने सुखके लिए विचार किया था? आपके लिए उन्होंने कन्याकी तैयारी की थी। अपने ही तो वंशज हैं, उनका अपराध जरूर है, उसे एक दफे क्षमा कर देना आपका कर्तव्य है।

उत्तरमें अर्ककीर्तिने कहा कि कुमार! तुम्हारे विचार, कार्य आदि सभी असदृश हैं। तुम बहुत बुद्धिमान् व दूरदर्शी हो। इस प्रकार कहकर मुसकराते हुए आदिराजको वहाँसे रवाना किया।

सुलोचना स्वयंवरके संबंधमें जो समर हुआ वह छिप नहीं सका। जिस प्रकार पवन तूलका संचार होता है उसी प्रकार यह युद्धकी वार्ता भी देशकी सर्व दिशामें एकदम फैल गई।

इस समाचारके सुनते ही अर्ककीर्ति और आदिराजके मामा भानुराज और विमलराज वहाँपर आये। क्योंकि लोकमें कहावत है कि मातासे भी बढ़कर मामाकी प्रीति हुआ करती है। आये हुए मातुलोंका दोनों भाइयोंने बहुत विनय के साथ आदर किया।

एक दिनकी बात है कि अर्ककीर्तिकुमार अनेक राजाओंके साथ दरबारमें विराजमान है। उस समय गायकगण उदयरागमें आत्मस्वरूपका वर्णन गायनमें कर रहे थे उसे बहुत आनन्दके साथ सुनते हुए अर्ककीर्ति अपने सिंहासनपर विराजे हैं। उस समय दूरसे गाजेबाजेका शब्द सुनाई दे रहा था। सबको विचार हुआ कि यह क्या होना चाहिये। एक दूत दौड़कर बाहर जंगलमें गया और आकर कहने लगा कि स्वामिन्! आकाशमार्गमें अनेक विमान आ रहे हैं। इसका बोलना बन्द भी नहीं हुआ था, इतनेमें एक सेवक और आया। उसने अर्ककीर्तिको विनयके साथ नमस्कार कर कहा कि स्वामिन्! सम्राट्का मित्र नागर आ रहे हैं। तब युद्धके वृत्तांतको सुनकर सम्राट्ने उनको यहाँपर भेजा होगा, इस प्रकार सब लोग सोचने लगे। इतनेमें नागर अकेला उस दरबारमें प्रविष्ट हुआ। क्योंकि उसे कोई

रोकनेवाले नहीं थे। चक्रवर्तीका वह मित्र है। जिस समय वह अर्ककीर्ति-कुमारके पास जा रहा था उस समय वेत्रधारी लोग जोर-जोरसे कह रहे थे कि स्वामिन्! नागदेव आ रहे हैं। अवलोकन करें।

नागरने युवराजके पास पहुँचकर उसे अनेक प्रकारकी उत्तम वस्तुओंको भेंटमें देकर साष्टांग नमस्कार किया एवं युवराजकी जय-जयकार करते हुए उठा। पुनः मंत्रीको भेंट, दक्षिणा आदि मित्रोंको भेंट अर्पणकर नमस्कार किया।

युवराजने भी उसे अपने पासमें बुलाकर पासमें ही एक आसन दिया। पासमें बैठे हुए आदिराज कुमारको भी विनयके साथ नमस्कार कर उस आसनपर नागर बैठ गया।

अर्ककीर्ति उपस्थित राजाओंसे कहने लगे कि आप लोग देखो कि नागरका प्रेम कितना जबर्दस्त है। हम लोग परदेशमें जावें तो भी वह अनेक कष्ट सहन कर आया है।

राजाओं ने कहा कि युवराज! आपको छोड़कर कौन रह सकते हैं? आपका दरबार किसके मन को हरण नहीं करेगा। फिर नागरोत्तम क्यों नहीं आयेगा? यह सब आपका ही प्रभाव है।

अर्ककीर्तिने नागरसे प्रश्न किया कि नागर! क्या पिताजी कुशलसे हैं। घरमें सब कुशल तो है? विमानमें आने योग्य गड़बड़ी क्या है? जरा जल्दी बोलो तो सही।

उठ खड़े होकर नागरने विनती की कि स्वामिन्! आपके पिताजी अत्यन्त सुखपूर्वक हैं। सुवर्णमहलमें रहनेवाले सभी सकुशल हैं। आपके भाई सबके सब सुखपूर्वक हैं। यानमें आनेसे देरी होगी इसलिये मैं विमानमें बैठकर आया। इतनी जल्दी क्या थी? इसके उत्तरके लिए एकांतकी आवश्यकता है।

अर्ककीर्तिने कहा कि अच्छी बात, अब तुम बैठकर बोलो।

नागर बैठ गया, सब लोग समझ गये। वहाँसे सबको भेजकर अर्ककीर्तिने जयकुमार आदि कुछ प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंको वहींपर ठहराया और नागरसे कहा कि बोलो, अब एकांत ही है। क्योंकि ये सब अपने ही हैं, और सुनने योग्य हैं। तब नागरने अपने वृत्तांतको कहना प्रारंभ किया। उसके बोलनेके चातुर्यका कौन वर्णन कर सकता है।

स्वामिन्! जबसे आप दोनों इधर आये हैं तबसे चक्रवर्ती प्रतिनित्य

आप लोगोंके समाचारको बहुत उत्कंठाके साथ सुनते हैं। आप लोग कहाँ हैं, कौनसे नगरमें हैं इत्यादि समाचार हम लोगोंसे पूछते रहते हैं। सम्राट् के पासमें बहुतसे पुत्र हैं, उनसे प्रेमालाप करते हैं तथापि आप लोगोंका स्मरण हदसे ज्यादा करते हैं उस पुत्रानुरागको मैं वर्णन नहीं कर सकता। दुनियामें देखा जाता है कि किसीको ७-८ पुत्र हों तो भी उनके ऊपर प्रेम नहीं रहता है, परंतु चक्रवर्तीको पंक्तिबद्ध हजारों पुत्रोंके होनेपर भी उनके प्रति समान प्रेम है, उसका मैं कहाँतक वर्णन करूँ। आप दोनोंका बार-बार स्मरण किया करते हैं। हम लोग बार-बार उनको समझाते हैं कि क्या अर्ककीर्ति और आदिराज बच्चे हैं। वे दोनों विवेकी व बुद्धिमान् हैं, इतनी चिंता आप क्यों करते हैं। उत्तरमें वे कहते हैं कि मैं भूलने के लिए बहुत प्रयत्न करता हूँ परन्तु मेरा मन नहीं भूलता है कोई भूलका औषध हो तो दे दो।

हम लोग फिर कहते हैं कि राजन्! आपके पुत्र स्वदेशमें ही हैं, आर्य खंडमें हैं, म्लेच्छखंडमें नहीं गये हैं। बहुत दूर नहीं गये हैं, फिर इतनी चिंता क्यों करते हैं। तब उत्तरमें भरतजी कहते हैं कि मेरे पुत्र अयोध्या-नगरके बाहर गये तो भी मेरा हृदय नहीं मानता है तो मैं उन्हें अन्यत्र जाने पर उनको छोड़कर कैसे रह सकता हूँ? पुनश्च कहते हैं कि पुत्रोंसे रहित सम्पत्ति नहीं है, वह आपत्ति है। सत्कविता रहित पठन राखके समान है, उनको छोड़कर मेरा जीवन अलंकारहीन कानके समान है। मुझे बहुतसे पुत्र हैं जो हार व पदकके समान हैं। परन्तु हार व पदकके रहनेपर भी कानमें कोई अलंकार न हो तो उन हार पदकोंसे शोभा कैसे हो सकती? आदिराज और अर्ककीर्ति दोनों मेरे कर्णभूषणस्वरूप हैं।

तब हम लोगोंने कहा कि आपने उनको परदेशमें क्यों भेजा? यहीं रख लेना था। आपने निषेध किया होता तो वे आपके पास ही रहते। उत्तरमें सम्राट् कहते हैं कि तब उनको भेजते समय दुःख नहीं हुआ बादमें दुःख हुआ, इसे क्या करूँ?

आप लोगोंके समाचारको रोज सुनते हैं, आप लोगोंका स्थान-स्थान पर हाथी, घोड़ा, कन्या आदि प्रदान कर जो सत्कार होता है उससे तो वे परम संतुष्ट होते हैं। रात्रिंदिन सम्राट्के पास एक एक संतोषके समाचार आते हैं, उन्हें सुनकर वे अत्यधिक प्रसन्न होते रहते हैं।

परन्तु फूलकी मालाके बीचमें एक कांटेके आनेके समान युद्धका समाचार सुननेमें आया। वह समाचार इस प्रकार आया कि काशीमें जो

अकंपनने स्वयंवर महोत्सव कराया था उसमें देश-देशके अनेक राजे उपस्थित थे। उस स्वयंवरमें सम्राट्के भी पुत्र गये। कन्याने मेघराजके गलेमें माला डालकर हाथीपर सवार होकर जब नगर प्रवेश कर चुकी तब दुःखित हुए अनेक राजा व उद्दण्डमतिने इस पर एतराज किया। युवराजके होते हुए यह सुन्दर कन्या दूसरोंको नहीं मिल सकती है। इस बातको तुमने भी स्वीकार किया। बादमें युद्ध हुआ। दोनों तरफसे घोर युद्ध हुआ। अष्टचंद्र भी स्वर्गांगनाओंके कुचशरण हुए। एक बात और सुनो, परन्तु मैं आपके सामने उसे कहनेके लिए डरता हूं।

तब अर्ककीर्तिने कहा कि डरो मत बोलो, तुम्हें मेरा शपथ है। तब नागर पुनः बोला बात क्या है? नागराजने तुम्हें नागपाशसे बांधकर मेघेशको दे दिया है। हम लोगोंको बड़ी चिंता हुई। सम्राट् भी इस समाचारको सुनकर दुःखी हुए। इतनेमें समाचार मिला कि युद्ध के अनंतर राजा अकंपनने एक कन्या जयकुमारको देकर दूसरी कन्याके साथ युवराज का विवाह कर दिया।

सम्राट्ने इन सब समाचारोंको सुनकर कहा कि एकदफे किसीके गले में कन्याने माला डाल दी तो वह कन्या परस्त्री हो गई, जिसमें जयकुमार मेरे पुत्रके समान है। ऐसी अवस्थामें अर्ककीर्तिने यह ऊधम क्यों मचाया? यह उचित नहीं किया। इसलिए अभी इसका विचार होना चाहिये। तब भरतजीने मुझे आज्ञा दी कि नागर! अभी तुम जाकर सर्व वृत्तांतको समझकर आओ। इसलिए मैं यहांपर आया, यह कहकर नागर चुप हो गया।

यह सब सुनकर अर्ककीर्तिको आश्चर्य हुआ, नाकपर उंगली रखकर अर्ककीर्ति कहने लगा कि हाय! परमात्मन्! पापके वशसे यह लोकमें अपकीर्ति मेरी हुई। नागरांक! अष्टचंद्र व उद्दंडमति मंत्रीको नागपाशका बंधन हुआ था, यह सत्य है। उसी समय वह दूर भी हो गया। बाकीके सर्व अपवाद मिथ्या हैं। मित्र नागरांक हम दोनों भाई स्वयंवर मंडपमें गये ही नहीं थे। परस्त्रीके प्रति हमने अभिलाषा भी नहीं की थी। बीचके राजाओंके कारण यह सब युद्ध हुआ। आदिराजने उसी समय बंद करा दिया। मुझे व जयकुमारको अलग अलग कन्याओंको देकर सत्कार किया। यह बात बिलकुल सत्य है। इसी प्रकार अष्टचंद्र राजाओंको भी अलग अलग कन्याओंको देकर सत्कार किया। यह भी सत्य है। मित्र मैं क्या राजमार्गको उल्लंघन कर चल सकता हूं। यदि मैं अनीति मार्गमें जाऊं तो

क्या भाई आदिराज उसे सहन कर सकता है ? कभी नहीं ? हम लोगोंको परदारसहोदर कहते हैं, फिर वह कैसे बन सकता है ?

जिस समय पिताजीने दिग्विजय किया था उस समय जयकुमारने अपने भाइयोंके साथ जो सेवा बजाई थी वह क्या थोड़ी है ? यदि मैं उसे भूल जाऊँ तो क्या मैं चक्रवर्तीका पुत्र कहला सकता हूँ ? हम लोग तो पिताजीकी सम्पत्तिको भोगनेवाले हैं, परंतु खजानेको भरनेवाला जयकुमार है। विचार करनेपर हम सब लोगोंसे बढ़कर वही पिताजीके लिए पुत्र है, वह सेवक नहीं है।

दिग्विजयके प्रसंगमें जब धूर्तदेवताओंको जयकुमारने मार भगाया तब पिताजीने आलिंगन देकर उससे कहा था कि तुम अर्ककीर्तिके समान हो, उसे मैं भूला नहीं हूँ। ऐसी अवस्थामें उसके प्रति मैं यह कार्य कैसे कर सकता हूँ ? पिताजीने जयकुमारको पुत्रके समान माना है, वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता है। आज हम लोग साढू बन गये हैं। यह उसीका अर्थ है। पिताजी ने जो उस दिन कहा था उस वचनको अन्यथा नहीं करना चाहिये इस विचारसे काशीके राजा अकंपनने आज हम लोगोंका सम्बन्ध कर दिया। इस प्रकार अपने श्वसुरको संतुष्ट करते हुए अर्ककीर्ति ने कहा।

अर्ककीर्तिके वचनको सुनकर जयकुमार, विजय, जयंत उठकर खड़े हुए एवं आनन्दके साथ कहने लगे कि स्वामिन् ! हम लोग आपके हृदयको जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। हम लोगोंने क्या सेवा की है। आपके पिताजीके प्रभावसे ही दिग्विजय सफलतासे हुआ। हम लोग आपके सेवक हैं। परन्तु आपने हमें साढू बनाकर जो अपने बड़े हृदयका परिचय दिया है इससे हमारी आत्मा आपकी तरफ आकर्षित हो गई है। उस दिन आपके पिताजी ने जो हमारा आदर किया था एवं आज आपने जो हमारे प्रति प्रेम व्यक्त किया है, इसके लिए हम लोग क्या कर सकते हैं ? संदेह नहीं चाहिये, हम लोग अपने शरीरको आपकी सेवामें समर्पण कर देते हैं।

इस प्रकार कहते हुए तीनों भाई युवराजके चरणोंमें नमस्कार कर उठे।

अकंपन राजाने भी अपने मंत्रीके द्वारा युवराजको नमस्कार कराया। वह स्वयं बैठा ही हुआ था। पहिले तो वे युवराजको नमस्कार करते थे। परन्तु अब वह कन्या देकर श्वसुर बन गये हैं। इसलिए अब मंत्रीसे नमस्कार कराया है। कन्यादानका महत्व बहुत विचित्र है।

इतनेमें आदिराजने कहा कि भाई ! पिताजीको बड़ी चिन्ता हुई ! अब इस समाचारको सुनकर अपने यहाँ आरामसे बैठे रहें यह उचित नहीं है। अब आगे प्रस्थान कर देना चाहिये। सेना, हाथी, घोड़ा वगैरह अष्टचंद्र राजाओंके साथ पीछेसे आने दो। अपन आज आये हुए मित्रके साथही विमानपर चढ़कर जावें। अब देरी नहीं करनी चाहिए।

तब नागरांकने कहा कि इतनी गड़बड़ी क्या है ? आप लोग आगे जाकर सब देशोंको देखकर आवें। मैं आज जाकर स्वामीके चित्तको समाधान कर दूंगा। आप लोग जयकुमारके साथ सावकाश आवें। अभी कोई गड़बड़ी नहीं है। भरतजीने भी ऐसी ही आज्ञा दी है।

तब दोनों भाइयोंने कहा कि ठीक है। हम लोग बादमें आयेंगे। परन्तु पिताजीके चरणोंका दर्शन जबतक नहीं होगा तबतक हम लोग दूध और घी नहीं खायेंगे। तब नागरांकने कहा कि तुम लोग ऐसा मत करो, अगर सम्राट्‌ने सुन लिया तो वे नमक छोड़ देंगे, ऐसा नहीं होना चाहिए। आप लोग सुखके साथ सब देशको देखते हुए आवें, हम और भरतजी सुखके साथ रहेंगे। और लोग भी सुखके साथ अपना समय व्यतीत करें। हमारे स्वामीकी कृपासे सब जगह सुख ही सुख होगा।

राजा अकंपनने नागरांकसे कहा कि नागरोत्तम ! यह सब ठीक हुआ। अब तुम आज क्यों जा रहे हो। हमारे महलमें आठ दिन विश्रांति लेकर बादमें जाना। तुम हमारे स्वामी चक्रवर्तीके मित्र हो, बार बार तुम्हारा आना नहीं बन सकेगा। इसलिए हमारे आतिथ्यको स्वीकार कर जाना चाहिए, इस बातका समर्थन जयकुमारने भी कर दिया।

उत्तरमें नागरांकने कहा रहनेमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि हमारे युवराजका यह श्वसुर-गृह है। परन्तु राजन् ! जब सम्राट् चिन्तामें पड़े हुए हैं ऐसी अवस्थामें मैं यहाँपर आरामसे रहूँ क्या यह उचित हो सकता है ?

राजा अकंपनने कहा कि ठीक है, तब तो देरी न करो, स्नान भोजन करके कल यहाँसे चले जाना। तब अर्ककीर्तिने भी कहा कि ठीक है, कल नहीं परसों चले जाना, उसमें क्या बात है।

नागरांकने कहा कि स्वामीको दुःखित अवस्थामें छोड़कर स्नान भोजनादि काममें समय बिताना ठीक नहीं है, उस स्नान भोजनके लिए धिक्कार हो। इसलिए अब मुझे आप लोग रोकनेकी कृपा न करें।

इतनेमें आदिराजने कहा कि ठीक है, हम लोग भी रुक गये, नागरांक

भी इनका तो पिताजीको अधिक चिन्ता होगी। इसलिए उसको अब रोकना नहीं चाहिये। जाने दो।

तब सब लोगोंने कहा कि शाबाश आदिराज हमारे स्वामीके पिताके नामको तुम अलंकृत कर रहे हो इसलिए तुमने सचमुचमें अच्छी बात कही। सब लोग इस बातको मंजूर करेंगे।

अर्ककीर्तिने कहा कि ठीक है, तुम आज ही जाओ, अभी प्रातःकाल का भोजन हमारे महलमें करो और शामका व्यालू राजा अर्कपनकी महलमें करके प्रस्थान करो।

सब लोगोंने इसे स्वीकार किया। सब लोग वहाँसे अपने-अपने स्थान पर चले गये। नागरांकके साथ आई हुई सेनाको सत्कार करनेके लिए अष्टचंद्रोंको नियत करके अपने आगत मित्रके साथ युवराज महलमें प्रविष्ट हुए।

जाते समय आदिराजने नागरांकसे कहा कि मित्र! तुम प्रस्थानके समय मेरे पास भी आकर जाना।

युवराजने अपने महलमें पहुँचकर अपने मामा भानुराजको भी बुलवाया, एवं नागरांक व भानुराजके साथ मिलकर भोजन किया। भोजनके अनंतर अपने पिताका मित्र होनेसे हाथी, घोड़ा, रथ, रत्न आदि ७० लाख उत्तमोत्तम पदार्थोंको भेंटमें नागरांकको समर्पण किया। नागरांक युवराज के सत्कारसे भरपूर तृप्त हुआ। और हाथ जोड़कर कहने लगा कि युवराज! मेरी और एक इच्छा है। उसकी पूर्ति होनी चाहिए। अर्ककीर्तिने कहा कि अच्छा! कहो, क्या बात है।

नागरांकने कहा कि यदि तुम्हारे मामा भानुराजने उसे पूर्ति करनेका वचन दिया तो कहूँगा। तब हँसते हुए भानुराजने कहा कि कहो, मैं किस बातके लिए इनकार कर सकता हूँ। तब हर्षसे नागरांकने कहा कि और कोई बात नहीं है। तुम्हारे साथ भानुराज भी अयोध्या नगरीमें आवें एवं सम्राट्को मिलकर जावें। इतनी ही बात है।

इस बातका रहस्य भानुराजको मालूम न होनेपर भी युवराजको मालूम हुआ। उन्होंने कहा कि ठीक है, क्या बात है, मैं उनको साथमें लेकर आऊँगा।

नागरांक अर्ककीर्तिको नमस्कार कर आदिराजको महलपर पहुँचा। वहाँपर आदिराजके मामा विमलराजसे भी मिल वहाँपर आदिराजने तीस लाख उत्तमोत्तम पदार्थोंसे नागरांकका सत्कार किया।

युवराजके साथ जिस प्रकार नागरांकने विनय व्यवहार किया उसी प्रकार आदिराजके साथ भी करके काशीके राजा अकंपनके महलमें पहुँचा वहाँपर अनेक संतोषके व्यवहारके साथ शामका भोजन किया। भोजनके बाद राजा अकंपनने दस लाख उत्तमोत्तम वस्तुओंसे उसका सत्कार किया।

वहाँसे जयकुमार उसे अपने महलमें ले गया और वहाँपर पच्चीस लाख रथ रत्नादि उत्तम पदार्थोंसे उसका सत्कार किया गया।

इसके अलावा छप्पन देशके राजा व अष्टचंद्र राजाओंने मिलकर एक करोड़ पैंसठ लाख उत्तम पदार्थोंको देकर सत्कार किया।

विशेष क्या ? तीन करोड़ उत्तम द्रव्योंसे उसका वहाँपर सत्कार हुआ। छह खंडके अधिपतिके मित्रको तीन करोड़ उपहार द्रव्योंसे सत्कार हुआ। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

चाँदनीकी रात है, नागरांक अपने परिवारके साथ विमानपर चढ़कर आकाशमार्गसे रवाना हुआ। जिस समय उस शुभ्र चाँदनीमें अनेक विमान जा रहे थे उस समय समुद्रमें जहाज जा रहे हों ऐसा मालूम हो रहा था। आकाशमार्गसे आनेमें देर क्या लगती है ? अनेक गाजेबाजेके साथ अयोध्या नगरमें वह नागरांक प्रविष्ट हुआ।

भरतजी चिंतामग्न होनेके कारण उस समय दरबार वगैरहमें नहीं बैठते थे। वे अपने मंत्रीमित्रोंके साथ बैठकर वार्तालाप कर रहे थे। इतनेमें बाजेका शब्द सुनाई दे रहा था !

सबने समझ लिया कि नागरांक वापिस लौटा है। और उसका आगमन हर्ष को सूचित करता है।

नागरांकने भी विमानसे उतरकर सबको अपने-अपने स्थानमें भेजा। और स्वयं चक्रवर्ती जहाँ विराजे थे वहाँ पहुँचा।

वहाँपर पहुँचते ही चक्रवर्तीके चरणोंमें नमस्कार कर कहने लगा कि सबको सदा आनन्द उत्पन्न करनेवाले हे प्रथमचक्रेश ! स्वामिन् ! पहिले जो भी समाचार सुने गये हैं वे सब खोटे हैं। क्षुद्र स्वयंवरको महापुरुष लोग जा सकते हैं क्या ? आपका पुत्र भी ऐसे स्वयंवरको कैसे जा सकता है ! परन्तु राजा अकंपनने ही एक कन्याको लाकर विवाह किया है।

यह भी जाने दो, कल जो इस पृथ्वीका अधिपति होनेवाला है, वह क्या सन्मार्गको छोड़कर चल सकता है ? दूसरोंके गलेमें माला डाली हुई

स्त्रीकी अपेक्षा कर सकता है ? कभी नहीं। अपन सुनी हुई बातें सब हवा की हैं। इसलिए आप भूल जाइये। पाशसे यदि युवराजको बांधा तो क्या जयकुमार बच सकता है ? अष्टचंद्र राजाओंको थोड़ी सी तकलीफ जरूर हुई। परंतु उसी समय दूर भी हो गई। इस प्रकार वहाँके सारे वृत्तान्तको यथावत् कहा।

सम्राट्ने भी कहा कि तुम बैठकर आगे क्या हुआ बोलो। तब नागरांकने तीन करोड़ पदार्थोंसे उसका सत्कार हुआ उसका वर्णन किया तब सम्राट्ने कहा कि वह तुम्हारे लिए जैबखर्च है।

नागरांकने पुनः कहा कि स्वामिन् ! यह सब बातें जाने दो, मोहकी विचित्रताको देखिएगा। मेरे वहाँपर पहुँचनेके पहले ही युद्धके समाचार को सुनकर भानुराज विमलराज वहाँपर पहुँच गये थे व अपने भानजोंके साथमें मिले हुए थे।

पिताजीके विचारसे पहले ही उनके मामा उनके पास पहुँचे ऐसी अवस्थामें पुत्रोंको माता-पिताकी अपेक्षा मामा ही अधिक प्रिय हैं।

भरतजीका हृदय भी यह सुनकर भर गया, अपने स्यालकोंके आप्त-तत्त्वको विचार करते हुए हर्षित हुए। इसके लिए उनका योग्य सत्कार करना चाहिए यह भी उन्होंने मनमें निश्चित किया। तदनंतर प्रकट रूपसे बोले कि अनुकूल ! कुटिल ! दक्षिण ! शठ ! पीठमर्दन ! व मंत्री ! आप लोग सुनो, हमारे पुत्रों की सहायताके लिए उनके मामा पहुँचे यह बहुत बड़ी विनय नहीं क्या ?

तब उत्तरमें सबने कहा कि स्वामिन् ! भानुराज विमलराज नगरमें स्वतः काशीके राजाने पहुँचकर आमंत्रण दिया तो भी वे वहाँ पहुँचनेवाले नहीं हैं। अपनी महत्ताको भूलकर वे अब अपने भानजोंके प्रेमसे ही वहाँ पर पहुँच गए हैं। सचमुचमें उनका प्रेम अत्यधिक है।

सम्राट्ने यह भी विचार किया कि हमें जिस प्रकार हमारे मामाके प्रति प्रेम है उसी प्रकार अर्ककीर्ति और आदिराजको भी उनके मामा के प्रति प्रेम है। इसलिए उसका सत्कार होना ही चाहिये।

उन दोनों को मैं राजाके पदसे विभूषित कर दूंगा। इससे अर्ककीर्ति व आदिराज प्रसन्न हो जायेंगे।

सब लोगोंने कहा कि बिलकुल ठीक है। ऐसा ही होना चाहिये, पहिले नागरांकने भी इसी अभिप्रायसे उनको निमंत्रण दिया था।

सम्राट्ने नागरांकको विश्रांति लेनेके लिए कहकर महलमें प्रवेश किया।

पाठक विचार करें कि भरतजीका पुण्यातिशय कितना विशिष्ट है। थोड़ी देरके पहिले वे चितामें मग्न थे। अपने पुत्रोंके संबंधमें जो समाचार मिला था उससे एकदम बेचैनी हो रही थी। परन्तु थोड़े ही समयमें वे चितामुक्त होकर पुनः हर्षसागरमें मग्न हुए। यह सब उनके पुण्यका ही प्रभाव है। वे नित्य चिदानन्द परमात्माको इस प्रकार आमंत्रण देते हैं कि—

हे परमात्मन्! तुम्हारे अंदर यह एक विशिष्ट सामर्थ्य है कि तुम बड़ीसे बड़ी चिंताको निमिषमात्रमें दूर कर देते हो; इसलिए तुम विशिष्टशक्तिशाली हो। अतएव हे चिदंबर पुरुष! सदा मेरे हृदयमें अटल होकर विराजे रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप आकाशमें चित्रित पुरुष रूप या समान मालूम होते हैं। क्योंकि आप निराकर हैं। अतएव लोग आपके संबंधमें आश्चर्यचकित होते हैं। हे निरंजनसिद्ध! मेरे हृदय में आप बने रहो।

इसी पुण्यमय भावनाका फल है कि भरतजी बड़ीसे बड़ी चिंतासे क्षणमात्रमें मुक्त होते हैं।

इति नागरालापसंधिः

—००—

जनकसंदर्शन संधि

नागरांकको अयोध्याकी तरफ भेजकर युवराजने भी अयोध्याकी ओर प्रस्थानकी शीघ्र तैयारी की। उसमें पहिले उन्होंने जो राजयोगका दिग्दर्शन किया वह अवर्णनीय है।

जयकुमार, विजय व जयंतको बुलाकर विवाहके समय जो मनमें कलुषता हुई उसका परिमार्जन किया। युवराजने बहुत विनयके साथ

कहा कि जयकुमार ! अपने पूर्वजन्मके पापोदयसे थोड़ी देर वैषम्य उपस्थित हुआ। परन्तु वह पुण्य-तंत्रसे तत्काल दूर भी हुआ। ऐसी हालतमें आगे उसे अपनेको मनमें नहीं रखना चाहिये। अष्टचंद्र व दुष्ट मंत्रीने जो विचार किया था वह सचमुचमें भारी अपराध है परन्तु उसे आदिराजने सुधार लिया। इसलिए उस बातको भूल जाना चाहिये। कदाचित् पिताजी को मालूम हुआ तो वे नाराज होंगे। जयकुमार ! विशेष क्या कहूँ, हम लोग तो पिताजीको कष्ट देकर उत्पन्न हुए पुत्र हो। परन्तु तुम लोग तो बिना तकलीफ दिये ही आये हुए पुत्र हो। इसलिए सहोदरोंमें आपसमें संक्लेश आवे तो भी उसे दूर करना चाहिये। आप लोग, हम व अष्टचंद्र वगैरह सभी राजपुत्र हैं, क्षत्रिय हैं, फिर गवाँरोंके समान हम लोगोंका व्यवहार क्या उचित है ? समान वर्णमें उत्पन्न हम लोगोंमें इस प्रकारका क्षोभ होना योग्य नहीं है।

युवराजके मिष्ट वचनोंको सुनकर सबके हृदयमें शांति हुई। सब लोगोंने अष्टचंद्रोंके साथ युवराजके चरणोंमें नमस्कार किया व विनयसे कहा कि स्वामिन् ! आदिराजने ही पहिले हम लोगोंके चित्तको शांत किया था। अब आपके सुन्दर वचनोंसे रही सही वेदना एकदम चली गई।

युवराजने कोरी बातोंसे ही उनको संतुष्ट नहीं किया, अपितु मेघराज को अपने पास बुलाकर पचास लाख मोहरोंसे सम्मान किया। इसी प्रकार विजयराजको तीस लाख व जयंतराजको बीस लाख देकर अनेक उपहारोंको भी अर्पण किया।

तदनंतर आदिराजने भी मेघेशको २५ लाख, विजयराजको १५ लाख व जयंतको १० लाख अपनी ओरसे दिया व बहुत आनन्दसे उनकी बिदाई की।

सबके हृदयका वैषम्य दूर हुआ। अब आनन्द ही आनन्द है। उन लोगोंने युवराजको भक्तिसे नमस्कार किया व वहांसे चले गये। वे क्या सामान्य हैं ? चक्रवर्तीके ही पुत्र हैं, वहांपर फिर किस बातकी कमी है ?

इसी प्रकार युवराजने अनेक देशके राजाओंका उनकी योग्यतानुसार सत्कार किया व महलमें जानेपर राजा अकंपनने युवराजका सत्कार किया व युवराजने अपनी युवराज्ञीके साथ बैठकर भोजन किया। युवराज की पत्नी लक्ष्मीमतिको एक सौ भाई हैं। उन सबके साथ राजा अकंपनने युवराजका सत्कार किया। अपने श्वसुरसे यथेष्ट सत्कार पाकर युवराजने आगेके लिए प्रस्थान किया।

युवराजके प्रस्थानसंभ्रमका क्या वर्णन करें। संक्षेपमें कहें तो अठारह लाख अक्षौहिणी सेनाकी सम्पत्तिसे युक्त होकर युवराज जा रहे हैं सबसे आगे सेनाके साथ अष्टचंद्र जा रहे हैं। साथ ही मन्त्रिगण भी हैं। युवराज-के साथ आदिराज है। साथमें श्वसुर भी हैं। इस प्रकार बहुत वैभवसे युक्त होकर पिताके चरणोंके दर्शनमें उत्सुक होकर युवराज जा रहे हैं। दक्षिणसे उत्तर मुख होकर अनेक देशोंमें विहार करते हुए युवराज जा रहे हैं। अब अयोध्याको सिर्फ २०० कोस बाकी है। वहाँपर सेनासहित युवराजने मुकाम किया है।

उस मुकाममें अयोध्यासे एक दूतने आकर वहाँके सर्व वृत्तांतको कहा। एवं एकांतमें नागरांकने चक्रवर्तीसे जो समाचार निवेदन किया था वह भी कहा। उससे दोनों राजकुमारोंको बड़ा हर्ष हुआ। साथमें यह भी मालूम हुआ कि नागरांककी बातचीतके सिलसिलेमें युवराजके श्वसुरोंको सम्राट्ने "राजा" इस उपाधिसे सम्मानित किया है। वे भी इसे सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए। परन्तु उन्होंने उसे बाहर व्यक्त नहीं किया, सिर्फ इतना ही कहा कि चक्रवर्ती हमें चाहे जैसे बुलावें हम तो प्रसन्न हैं।

अब अर्ककीर्ति अयोध्यापुरके समीप पहुँच गए हैं। उसे सुनकर भरतजीको बड़ा आनन्द हुआ। उसी समय वृषभराजको बुलाकर मंत्री मित्रोंके साथ स्वागतके लिए जानेकी आज्ञा दी। वृषभराजको यह सूचना मिलते ही बाकीके सभी भाई तैयार होकर जाने लगे। जैसे ब्राह्मण दान लेनेके लिए भागते हों, उसी प्रकार ये भी उत्साहसे जा रहे हैं। अपने बड़े भाईके प्रति उनका जो असीम प्रेम है वह अवर्णनीय है। वे तीस हजार सहोदर हैं। सब मिलकर भाईको देखनेके लिए बड़े आनन्द से जारहे हैं। कोई हाथीपर, कोई घोड़ेपर और कोई पल्लकीपर चढ़कर जा रहे हैं। इस प्रकार छत्र, चामर, ध्वज, पताका वगैरह मंगल द्रव्योंके साथ वे राज-कुमार बड़े भाईकी ओर जाते हैं। वृषभमहाराजको आगे करके सब उसके पीछे विनयसे जिस समय वे जा रहे थे उस उत्सवको देखते ही बनता था। वृषभराजने जाकर अनेक उत्तमोत्तम भेंट युवराजके चरणोंमें रखकर नमस्कार किया इसी प्रकार सर्व भाइयोंने किया।

अर्ककीर्तिने सबको देखकर हर्ष व्यक्त करते हुए कहा वृषभराज! आओ, तुम कुशलसे तो हो न? हंसराज! तुम सौख्यानुभव करते हो न? निरंजनराज! सिद्धराज! आओ तुम सुखस्थानपर हो न? बलभद्रराज! भास्करराज! शिवराज! अंकराज! श्रीराज! ललितांगराज! लावण्य-

राज ! तुम्हें सब क्षेम तो है न ? इसके सिवाय और जो भाई हैं वे सब कुशल तो हैं ? सब भाइयोंका कुशल समचार पूंछा एवं सबको अपने पास बुलाकर उन्हें एक एक रत्नहार दिया। उन भाइयोंने अर्ककीर्तिसे निवेदन किया कि हम तो सदा कुशल से हैं, परन्तु आप दोनोंके दर्शनसे और भी कुशलताकी वृद्धि हुई। इस प्रकार कहते हुए पुनः प्रणाम किया। साथमें आये हुए माताओंके चरणोंमें भी नमस्कार किया। उनके विनयका क्या वर्णन करें।

अष्टचंद्रराज व मंत्रियोंने इन सब कुमारोंको नमस्कार किया। इसी प्रकार उपस्थित अन्य राजकुमार, मन्त्री, मित्र व परिवार प्रजाओंका दोनों कुमारोंके चरणोंमें भेंट रखकर नमस्कार किया। आगत सब लोगोंके साथ यथायोग्य मृदु वचनसे बोलकर अर्ककीर्ति हाथीपर पुनः चढ़े। जयघोष नामक हाथीपर अर्ककीर्ति दुंदुभिघोष नामक हाथीपर आदिराज व बाकी सभी भाई एक एक हाथीपर चढ़कर अब नगरकी ओर जा रहे हैं। कोरों प्रकारके मंगल वाद्य बज रहे हैं। अयोध्या नगरमें प्रवेश कर जिस समय राजमार्गसे होकर जा रहे थे वह शोभा अपार थी। विश्वस्तोंके साथ अपनी रानियोंको पहिले महलकी ओर भेजकर स्वतः युवराज व आदिराज जिन मंदिरको दर्शन करने चले गये। वहांसे फिर हाथीपर चढ़कर अपने पिताके दर्शनके लिए गये। जाते समय उप विशाल जुलूसको नगरवासीजन बहुत उत्सुकताके साथ देख रहे हैं। स्त्रियाँ अपने-अपने महल की माडीपर चढ़कर इस शोभाको देख रही हैं। कोई माडीपर, कोई गोपुरपर, कोई दरवाजेसे, कोई मंदिर पर चढ़कर आकाशमें देखनेवाली खेचरियोंके समान देख रही हैं। एक कुमारको देखनेवाली आंख वहांसे हटना ही नहीं चाहती है, कदाचित् हट गई तो दूसरोंकी तरफसे हटाई नहीं जा सकती है, परन्तु आगे जानेपर हटाना पड़ा, इसलिए वे स्त्रियाँ दीर्घश्वास लेने लगीं।

कामदेव स्वतः अनेक रूपोंको धारण कर तो नहीं आया है ? जब इनका सौन्दर्य इतना विशेष है। तो इनके माता-पिताओंके सौंदर्यका क्या वर्णन करना। हमारे स्वामी सम्राट् कितने भाग्यशाली हैं। उन्होंने ऐसे विशिष्ट लोकातिशायी संतानको प्राप्त किया है। मानव लोकमें ऐसे कौन हैं ? लोकमें जितने भी उत्तम पदार्थ हैं, उन सबको लूटकर हमारे राजा लाए हैं। परन्तु इन सब पुत्रोंको देखने पर मालूम होता है कि देवलोकसे सुर कुमारोंको लूटकर लाया हो। एक भी खराब मोती न हो, सभी

उत्तोमत्तम मोती ही पैदा हो ऐसा भाग्य किस समुद्रको है। परन्तु सम्राट् भरतके पुत्र तो एकसे एक बढ़कर हैं। सौंदर्यका यह समुद्र ही है। चक्रवर्ती की रानियोंको पुत्री हो या पुत्र हो, एक एकके गर्भमें एक एक ही संतान-रत्न पैदा हो सकता है। ढेरके ढेर नहीं। इसलिए सौंदर्यका पिंड एकत्रित होकर ही यहाँ आता है।

इस प्रकार वे स्त्रियाँ उन कुमारोंको देखकर तरह-तरहसे बातचीत कर रही थीं। उनको वे स्त्रियाँ देख रही हैं। परन्तु वे कुमार आँखें उठाकर भी नहीं देखते। सीधा राजमहलकी ओर आकर वहाँपर हाथीको ठहरा, अपने परिवार सेना वगैरहको भेजकर स्वयं युवराज अपने भाइयोंके साथ हाथीसे नीचे उतरे।

बहुत विनयके साथ अपने भाइयों सहित अर्ककीर्ति पिताके दर्शनके लिए मोतीसे निर्मित महलकी ओर आ रहा है। भरतजी दूरसे आते हुए अपने पुत्रोंको देखकर मनमें ही प्रसन्न हो रहे हैं। उसी तरह पिताको दूरसे देखनेपर पुत्रोंको भी एकदम आनन्दसे रोमांच हुआ। वेत्रधारीगण सम्राट्के कुमारोंका स्वागत करते हुए कहने लगे कि स्वामिन्! दिवराज सदृश युवराज आ रहे हैं, जरा उनको देखें। इसी तरह सुविवेकनिधि आदिराज भी साथमें हैं।

कुटिनीके वचन, परधन व परस्त्रीके प्रति चित्त न लगानेवाले, सत्य-रूपी वज्रहारको कंठमें धारण करनेवाले कुमार आ रहे हैं। इस प्रकार वज्रकंठ व सुकंठने कहा।

युवराज! अपने पिताजीका दर्शन करो। इसे देखनेका भाग्य हमें मिलने दो। इस प्रकार वेत्रधर कहते थे, इतनेमें पिताके चरणोंमें भेंट रखकर युवराजने प्रणाम किया।

उसी समय आदिराजने भी उसी तरह पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर सभी भाइयोंने भी प्रणाम किया। दोनों कुमारोंको योग्य आसन देकर बैठनेके लिए इशारा किया। परन्तु बाकी पुत्रोंने जब नमस्कार किया तो भरतजीको हँसी आई। क्योंकि ये तो परदेशसे नहीं आये। फिर इन्होंने भी प्रणाम क्यों किया? सम्राट्ने प्रकट होकर कहा कि वृषभराज! हंसराज! तुम लोग उठो, बहुत थक गए हो। तुम लोगोंने आज मुझे नमस्कार क्यों किया? उसका क्या कारण है। बोलो।

तब वृषभराजने बहुत विनयसे निवेदन किया कि पिताजी! हमारे स्वामी जब आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं तो हम लोग घमंडसे खड़े

हो रहे ? इसलिए हमने नमस्कार किया। उन पुत्रोंका विनय सचमुच-में श्लाघनीय है। भरतजीको उनका उत्तर सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन सबको वहाँ सतरंजीपर बैठनेके लिए कहा, इतनेमें विमलराज व भानुराजने सम्राट्का दर्शन किया।

चक्रवर्तीने उनको आलिंगन देकर कहाकि विमलराज ! भानुराज ! आप लोग आये सो बहुत अच्छा हुआ। भानुराज, विमलराजको भी बड़ा हर्ष हुआ। क्यों नहीं ? जब षट्खंडाधिपति अपनेको राजाके नामसे सम्बोधित करते हैं, हर्ष क्यों न होगा। पहिले कभी मिलनेका प्रसंग आया तो भरतजी, आओ भानु, आओ विमल, ऐसा कहकर बुलाते थे। अब राजाके नामसे उन्होंने बुलाया है। यह कम वैभवकी बात नहीं है। इस-लिए उन दोनोंको बड़ा ही हर्ष हुआ। हर्षके भरमें ही उन्होंने सम्राट्से कहा कि स्वामिन् ! हमारे आनेमें क्या है ? परन्तु आपके दर्शनसे हम लोगोंको बहुत आनन्द हुआ। सुगंधित पुष्पको लगकर आनेवाले पवनमें जिस प्रकार सुगंधत्व रहता है, उसी प्रकार आपके दर्शनसे हम पवित्र हुए।

तब भरतजीने कहा कि आप लोगोंकी बात जितनी मीठी है उतनी वृत्ति मीठी नहीं है। तब उन्होंने उत्तर दिया कि सच है स्वामिन् ! गरीबों की वृत्ति बड़े लोगोंको कभी पसन्द नहीं हो सकती है।

"आप लोग गरीब कैसे हैं ?" भरतजीने हँसते हुए कहा।

"नहीं, नहीं, आपसे भी बड़े हैं" इस प्रकार विनोदसे उन्होंने उत्तर दिया।

जाने दो विनोद ! आप लोग गरीब कैसे हैं ? बड़े बुद्धिमान् हैं। कमसे कम हमसे तो अधिक बुद्धिमान् हैं, भरतजीने कहा।

आप सत्य कहते हैं। आपसे अधिक बुद्धिमान् हम नहीं तो और कौन हो सकते हैं ? उन दोनोंने कहा।

आप लोग उपायसे बचाना चाहते हैं। परन्तु मेरा भी उल्लंघन करने-वाले आप लोग उद्दंड हैं, भरतजीने कहा।

"कहिये महाराज ! हमने क्या उद्दंडता की" दोनों राजाओंने कहा।

बोलूँ ? भरतजीने कहा। कहिये, कहिये, हमने ऐसी कौनसी उद्दंडता की ? फिर उन्होंने कहा।

सुनो ! हमारे पुत्रोंको हमसे पूछे बिना ही अपने यहाँ लेजाकर अपनी पुत्रियोंको देकर संबंध करनेवाले आप लोग गरीब हैं ? हमसे भी बढ़कर

हैं। माता-पिताको न पूछकर लोकमें अपनी कन्याओंको कौन देते हैं ?। आप लोगोंने मात्र वैसा व्यवहार किया।

अतएव आप लोगोंकी वृत्ति कष्टतर है, उद्दंड है, अतएव आप गरीब नहीं हैं। इस प्रकारका अभिमान षट्खंडमें कोई नहीं कर सकते हैं। परन्तु मेरी परवाह न कर आप लोगोंने यह कार्य किया। शाबाश! इस प्रकार भरतजीने हँसते हुए कहा।

"राजन्! जाने दो आपको न पूछकर आपके पुत्रोंका विवाह अपनी कन्याओंके साथ इन्होंने किया सो इन्होंने उचित ही किया। क्योंकि ये मामा हैं। अर्ककीर्ति आदिकी माताओंके सहोदरोंने अपने भानजोंको ले जाकर विवाह किया इसे आपने सहन किया। उन लोगोंने यदि विवाह ही किया तो क्या आपके पुत्र यह नहीं कह सकते थे कि हम पिताजीसे पूछे बिना कुछ भी नहीं कर सकते हैं" नागरने कहा।

तब भरतजीने कहा आपलोग अब पक्षपात करते हैं। क्योंकि आप-लोग एक ही कुलके हैं। इसलिए दक्षिणांक, कुटिल, विदूषक तुम लोग बोलो तो सही किसकी गल्ती है ? मुझे न पूछकर इन लोगोंने विवाह किया यह इनकी गलती है या मेरी गलती है ?

विदूषकने झट कहा कि सोना जब काला होगा तो आपकी भी गलती हो सकती है। अब आप लोग सुनिये। उनकी तो गलती है, परन्तु मैं उसे सुधार लेता हूं। आपसे न पूछकर जो उन्होंने अपनी कन्याओंका विवाह आपके पुत्रोंके साथ किया है, इस गलतीके लिए उन राजाओंको आगे जो कन्यारत्न उत्पन्न होंगे वे सब आपके पुत्रोंके लिए ही दिये जायेंगे। इसे आप और वे मंजूर करें। और एक बात है। उन भानुराज व विमल-राजकी जो कुमारी बहिनें आज मौजूद हैं उन सबका विवाह आपके साथ होना चाहिये। मेरे इस निवेदनको भी स्वीकार करें। आपलोगोंके कार्य-को सुधारकर मैं खाली हाथ कैसे जा सकता हूं ? उससे ब्राह्मण संतुष्ट नहीं होंगे। इसलिए इनके नगरमें जितने ब्राह्मण हैं उनको अब उत्पन्न होनेवाली सुन्दर कन्यायें मुझे मिलनी चाहिये। इस प्रकार विदूषकने कहा तब अनुकूल नायकने विदूषकको शाबाशी देते हुए कहा कि बिलकुल ठीक है। भरतजीको भी हँसी आई, उपस्थित सर्व जनताने विदूषकके विनोदपर आनंद व्यक्त किया।

भरतजीने भी विदूषकसे कहा कि तुमने ठीक सुधार लिया। तदनंतर पुत्रोंकी ओर देखकर कहा कि आप लोग अनेक राज्योंमें भ्रमण करते-

करते थक गये होंगे। तब एकदम सर्व पुत्र खड़े हुए। युवराजने हाथ जोड़कर कहा कि पिताजी ! परदेशमें हम लोग बड़े आनन्दके साथ विहार कर रहे थे, तब सर्व समाचार आपकी तरफ आते थे, उस बीचमें एक अप्रिय कटु समाचार भी पहुँचा मालूम होता है। लोकमें अन्यायकी तरफ चित्त लगा कर यदि आपको चिंता उत्पन्न करूं तो क्या मैं आपका पुत्र हो सकता हूँ ? पुत्र जो लीलाके लिए उत्पन्न होता है, वह शूलके लिए कारण हुआ ?

पिताजी ! मुझे सुखोंकी अपेक्षा करनेकी क्या आवश्यकता है ? आपके नामको सुनते ही सुख अपने आप चलकर आते हैं। आपके उदरमें आकर क्या मैं मार्ग छोड़कर चल सकता हूं ?

भरतजीने कहा कि बेटा ! बहुतसे समाचार आये, परन्तु उसी क्षण उनका निरसन भी हो गया। सूर्यको यदि मेघाच्छादन हुआ तो वह कितनी देर रह सकता है। इसी प्रकार मेरे हृदयमें चिंता अधिक समय नहीं टिक सकती है। तुम तो मार्ग छोड़कर जा नहीं सकते, मेवेश तो मेरा पुत्र ही है, दूसरा नहीं है। ऐसी अवस्थामें कोई चिंताकी बात नहीं है, तुम लोग भी भूल जाओ।

पुत्र भी भरतजीकी बातको सुनकर प्रसन्न हुए। एवं पिताके चरणोंमें उन्होंने पुनः भक्तिसे प्रणाम किया। उस समय सम्राट्ने अनेक वस्त्र इत्यादिकोंको प्रदान कर पुत्रोंका सन्मान किया। बुद्धिसागर मंत्री भी प्रसन्न हुए। इतनेमें जोरसे शंखनाद हुआ। उस शब्दको सुनते ही सब लोग वहांसे उठे। सम्राट् भी भानुराज व विमलराजको अपने साथ लेकर पुत्रोंके साथ महलकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें भानुराज व विमलराजको राज शब्दसे संबोधन करते हुए उनको प्रसन्न कर रहे थे।

कुसुमाजी व कुंतलावती इन दोनों रानियोंके आनंदका वर्णन हो क्या करें। क्योंकि उनके सहोदरोंको सम्राट्ने राज के नामसे पुकारा है। अपने भाईको जो आनंद होता है। उससे स्त्रियोंको परम हर्ष होता है। अपनी बहिनोंको जो आनंद होता है उससे पुरुष प्रसन्न होते हैं। उस बातका वहांपर अपूर्व संयोग था। बहिनोंने दोनों भाइयोंका योग्य विनय किया, तब पुत्रोंने भी आकर अपनी माताओंके चरणोंमें मस्तक रक्खा। उस समय गंगाप्रवाहके समान प्रेम व भक्तिका संचार हो रहा था। तदनंतर तीस हजार अपने पुत्रोंके साथ एवं दोनों सालोंके साथ भरतजीने एक ही पंक्तिपर बैठकर अमृतान्नका भोजन किया तदनंतर उनका योग्य रूपसे

सन्मान कर उनके लिए सजे हुए महलोंमें भेजा व भरतजी सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

भरतजीके पुत्र अपनी नववधुओंके साथ सम्राट्‌की माताके दर्शनके लिए गए। एवं उनसे योग्य आशीर्वादको पाकर आनन्दसे रहने लगे।

भरतजीका समय सदा आनन्दसे ही जाता है। क्योंकि उनको किसी का भय नहीं है, सात्विक विचारों से वस्तुस्थितिका वे परिज्ञान करते हैं। अतएव सदा आनन्दमें ही मग्न रहते हैं। उनकी भावना है कि—

हे परमात्मन् ! आप असहायविक्रम हो, विक्रांत अर्थात् पराक्रमियोंके स्वामी हो, तामसवृत्तिको दूर करनेवाले हो, सतत आनंदस्वरूप हो, एवं प्रभारूप हो, इसलिए हे स्वामिन् ! मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप सुन्दरोंके राजा हो, सुरूपियोंके देव हो, सुभगोंके रत्न हो, लावण्यांगोंके स्वामी हो, सौंदर्यसम्पन्न हो, आप मुझे सन्मति प्रदान करें।

इसी पुण्यमय भावनाका फल है कि भरतजी सर्वदा आनन्द ही आनन्द में रहते हैं।

इति—जनकसंदर्शन संधिः

—००—

जननी-वियोग-संधिः

युवराजके आनेके बाद जयकुमार भी अपने परिवारके साथ स्वदेश जानेके लिए निकले। जाते समय रास्तेमें अपनी सेनाको छोड़कर स्वयं चक्रवर्तीसे मिलकर गये।

भरतजीके महलमें ही आनन्द हो रहा है। भानुराज और विमलराज का रोज नये-नये मिष्ठान्न भोजन, वस्त्र रत्नादिकसे सन्मान हो रहा है। सम्राट् ही जिनपर प्रसन्न होते हैं उनकी बात ही क्या है ? भानु, विमल भानुराज और विमलराज हुए। उनको हाथी, घोड़ा, रत्नादिक उपहार में देकर उनकी विदाई की गई।

यह ऊपर ही कह चुके हैं अयोध्याके उस महलमें प्रतिनित्य आनन्द का तांता ही लगा रहता है। एकके बाद एक इस प्रकार हर्षके ऊपर हर्ष आते रहते हैं। भानुराज व विमलराजके जानेके बाद एक दो-दिनमें ही एक और हर्ष का समाचार आया। नगरके उद्यानमें रहनेवाले ऋषि-निवेदकने आकर निवेदन किया कि स्वामिन् ! तेलगु, कर्नाटक, तुरम् जी, सौराष्ट्र, गुर्जरादि देशोंमें विहार करती हुई केवली अनन्तवीर्य स्वामीकी गंधकुटी यहाँ पर आ गई है। आकाशमें सुरभेरी बज रही है। सभी जय-जयकार शब्द कर रहे हैं, सर्वत्र प्रकाश फैल गया है ! सूर्यका बिंब ही खड़ी है, आकाशमें खड़ा हो उस प्रकार वह गंधकुटी आकाशमें नगरके बाहर खड़ी है, आश्चर्य है।

भरतजीको यह समाचार सुनकर परम हर्ष हुआ ! उस समाचार लाने-वालेको परमोपकारी समझकर अनेक वस्त्र रत्नादिक प्रदान किया गया। एवं जिनदर्शनके प्रस्थानके लिए तैयारी की गई। महलमें सबको यह समाचार मालूम हुआ, हर्षसे सब लोग नाचने ही लगे। अंतःपुरमें मैं आगे, मैं आगे, इस प्रकार अहमहमिका वृत्ति चल रही है। माता यशस्वतीदेवी तो आनन्दसे फूली न समाई। सब रानियोंने वहाँपर जानेकी इच्छा प्रकट की।

परन्तु देव मनुष्योंकी असंख्य भीड़में सम्राट् उनको क्यों ले जाने लगे ? इसलिए सबको कोमल वचनोंसे समझा-बुझाकर शांत किया, परंतु माता यशस्वती ने कहा कि बेटा ! मेरे शिरमें तो एक भी कृष्णकेश नहीं हैं अब बिलकुल बुड्ढी हो गई हूं। ऐसी हालतमें मैं अर्हंतका दर्शन करूं इसमें क्या हर्ज है ? नगरके पास जब गन्धकुटी आई है मैं दर्शनसे क्यों वंचित रहूं ? माताके हर्षातिरेकको देखकर सम्राट् संतुष्ट हुए व उन्होंने गंधकुटीमें चलनेके लिए सम्मति दी। आनंदभेरी बजाई गई। भरतजीने अपनी पूज्य माता व पुत्रोंके साथ बहुत आनन्दके साथ गंधकुटीको प्रवेश किया। पुरजन परिजन पूजा सामग्री विपुल प्रमाणमें लेकर उनके साथ जा रहे हैं। गंधकुटीमें वेत्रधर देव भरतजी का स्वागत कर रहे हैं।

भरतराजेंद्र ! आओ युवराज ! तुम भी आओ, और बाकी सभी कुमारोंका भी स्वागत है। आप लोग आइये अरहंत भगवंत अनन्तवीर्यका दर्शन कीजिये।

इतनेमें जब उन वेत्रधारियोंने माता यशस्वतीको देखा तो कहने लगे कि जिन जिना ! लोकजननी जिनजननी ही आ गई है। हम लोग बहुत ही भाग्यशाली हैं। हमारी आंखोंका पुण्य है कि उनका दर्शन हुआ। इस

पुण्यमाताने ही अनन्तवीर्य स्वामीको जन्म दिया है। वहाँ उपस्थित सर्व तपस्वियोंने उस पावनांगी यशस्वती माताको आदरसे देखा।

भगवान् अनन्तवीर्य स्वामीका अब तीन लोकसे या लोकके किसी भी प्राणीसे सम्बन्ध नहीं है। परन्तु ये लोग बहुत भक्तिसे व संबंधका विचार करते हुए उनकी सेवामें जाते हैं। बाकी लोग यह माता है, भाई है, बेटा है, इत्यादि रूपसे संबंध लगाकर विचार करते हैं। परन्तु अनन्तवीर्य स्वामी का अब कोई संबंध नहीं है। कर्मकी गति विचित्र है उसे कौन उल्लंघन कर सकता है ?

माताको आगे पुत्रोंको साथ लेकर चक्रवर्तीने वीतरागके चरणोंमें भेंट रखकर 'घाति कर्मोद्भूत जय जय' यह कहते हुए साष्टांग नमस्कार किया। कमलके ऊपर सिंहासनपर विराजमान सूर्यको भी तिरस्कृत करने वाले स्वामीकी वंदना करते हुए माताका आनन्दसे रोमांच हुआ। क्यों नहीं ?

महलसे निकलते हुए ही यह विचार था कि जिनपूजा करें। इसलिए स्नान वगैरहसे शुचिर्भूत होकर सामग्री सहित आये हुए थे, करोड़ों बाजोंके शब्द दशों दिशाओंमें गूंज रहे थे। पूजा समारम्भ बहुत ही वैभवसे चल रहा था। सम्राट् स्वयं व उनके पुत्र सामग्रियोंको भर-भर कर दे रहे थे। माता पूजा कर रही है। उनके विशाल गुणों का वर्णन क्या करें। सम्राट् की जननी पूजा कर रही थी, और सम्राट् स्वयं परिचारकके कार्य कर रहे हैं। उस पूजाके वैभवका वर्णन क्या हो सकता है। अष्टविध द्रव्योंसे जब उन्होंने पूजा की तो वहाँ पर मेरुके समान सामग्री एकत्रित हुई। जल, गंध, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल इन अष्टद्रव्योंसे राजमाताने जिस समय पूजन किया। देवगण जयजयकार कर रहे थे। तदनन्तर अर्घ्य शांतिधारा देकर रत्नपुष्पोंको वृष्टि कर पुष्पांजलि की गई। देवोंने पुष्पवृष्टि की, जय-जयघोष हुआ।

पूजाकी समाप्ति होनेपर गाजेबाजेके शब्द बंद हुये। भरतजीने माता-को आगे रखकर अपने पुत्रोंके साथ भगवंतकी तीन प्रदक्षिणा दी। तदनंतर मुनियोंको नमोस्तु कर सम्राट् योग्य स्थानमें ठहरे। माता यशस्वती देव गुरुओंकी वंदना कर अर्जिकाओंके समूहके पास चली गईं। वहाँपर अर्जि-काओंके चरणोंमें उन्होंने जब नमोस्तु किया तो उन पूज्य संयमिनियोंने कहा कि देवी, आओ, तुम भी तो अर्जिका ही हो न ? तुममें किस बातकी कमी है ? इस प्रकार कहकर यशस्वतीके कोमल अंगोंपर गणिनीनायकाने

हाथ फेरा। इतनेमें उसके हृदयमें एक नवीन विचारका संचार हुआ। माता यशस्वतीने विचार किया कि देखो ये कितनी भाग्यशालिनी हैं। इनके समान मोक्षसाधन न कर मैं महलमें रहूं यह क्या उचित है? मोक्ष-साधन करना प्रत्येक आत्माका कर्तव्य होना चाहिए। आज मेरा भाग्य है कि योग्य समयमें मैं यहांपर आ गई हूं। इस गंधकुटीके दर्शनका कुछ न कुछ फल अवश्य होना चाहिए। अब मुझे अपने आत्मकार्यको साध्य कर लेना चाहिए। इस प्रकार स्वगत होकर विचार करने लगी।

मुनियोंके पास बैठे हुए अपने पुत्रके पास पहुंचकर माता यशस्वतीने अपने मनकी बात कह दी। तब भरतजीने कहा कि जिनसिद्ध! माताजी आप ऐसी बात नहीं कहियेगा। मैं आपके पैर पड़ता हूं। इस प्रकार कहते हुए भरतजीने मातुश्रीको नमस्कार किया। पुनः "आप चाहें तो राज-महलके जिन मंदिरमें रहकर आत्मकल्याण कर लेवें! परन्तु भरतको छोड़कर दूर नहीं जाना चाहिये" इस प्रकार कहते हुए माताके चरणोंको पकड़ लिया।

बेटा! मेरी बात सुनो, इस प्रकार कहती हुई माताने भरतको उठाया और कहने लगी कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो। यह शरीर कैसा भी नष्ट होनेवाला है। उसे तपके कार्यमें लगाऊंगी, इसके लिए तुम इतना अधीर क्यों होते हो। बेटा! मैंने आंखभर तुम्हारे वैभवको देख लिया। मैं रात दिन अखंडित उत्साह व आनंदमें रही, अब जब बाल सब सफेद हुए तो अब तपश्चर्याके लिए जाना ही चाहिये। तुम वीरपुत्र हो! इसे स्वीकार करो।

बेटा! स्त्रीजन्म बहुत ही कष्टतर है। तुम सरीखे पुण्यपुत्रोंको पाकर फिर भी उसी जन्ममें मैं आऊं क्या? बेटा! इस भव का नाश मुझे करना है। खुशीसे भेजो। इस प्रकार वह जगन्माता अपने पुत्रसे कहने लगी।

भरतने पुनः निवेदन किया, कि माता! महलके जिनमंदिरमें भी बहुतसी आर्जिकायें हैं। उनके साथ रहकर आप तपश्चर्या करें। अनेक देशोंमें भ्रमण करनेकी क्या आवश्यकता है?

बेटा! आजतक तुम्हारे कहनेके अनुसार महलमें ही रहकर तप किया। अब अंतिम समयमें जिनसभामें इस देहका त्याग करना चाहिये इसलिए तुम स्वीकार करो। विशेष क्या? बेटा! यह शरीर नश्वर है। आत्मा अमर है। इसलिए स्त्रीजन्मके रूपको बदलकर आगे तुम जिस

मुक्तिको जाते हो वहींपर मैं भी आती हूं। इसलिए मुझे अब जल्दी भेजो। इस प्रकार माताने साहसके साथ कहा।

इतनेमें वहाँ उपस्थित मुनिराजोंने भी कहा कि भव्य ! अब बुढ़ापेमें तुम्हारे महलमें माता कितने दिन रहेगी, दीक्षा लेने दो, तुम सम्मति दो। भरतजी मुनियोंकी बात सुनकर मौनसे रहे। और भी तपोनिधि महर्षियोंने कहा कि न्यायसे आत्मकार्य करनेके लिए वह जब कहती है तो अंतराय करना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? माता कौन है ? तुम कौन हो ? आत्मकल्याणके लिए मार्गको देखना प्रत्येकका कर्तव्य है। इसलिए अब रोको मत, चुप रहो। भरत ! विचार करो, क्या वैराग्य ऐसी कोई सस्ती चीज है कि जब सोचे तब मिले। चाहे जब मिलनेकी वह चीज नहीं है। इसलिए ऐसे समयको टालना नहीं चाहिये।

भरतजी आगे कुछ भी नहीं बोल सके। मौनसे माताकी ओर देखते रहे।

मुनियोंने भी भरतके मनकी बात समझकर माता यशस्वतीको भगवंतके पास ले गये। राजन् ! तुम्हारी सम्मति है न ? इस प्रकार प्रश्न आनेपर मौनसे ही सम्मतिका इशारा किया। इतनेमें मुनिराजोंने भगवंतसे कहकर यशस्वतीको दीक्षा दिलाई। गुरुओंसे क्या नहीं हो सकता है ? वे मोक्ष भी दिला सकते हैं।

जिस समय माता यशस्वतीकी दीक्षाविधि हो रही थी उस समय देवदुंदुभि बज रही थी, देवगायिकायें देवगान कर रही थीं। देवांगवस्त्रसे निर्मित परदेके अंदर दीक्षाविधि हो रही है। उस समय भगवंतने उपदेश दिया कि अपने शरीर आदि लेकर सर्व पदार्थ पर हैं। केवल आत्मा अपना है। मनसे अन्य चिन्ताओंको दूर करो और आत्माको देखो। श्वेत पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत इन चार ध्यानोंका अभ्यास क्रमसे करके पिंडस्थमें चित्तको लगाकर लीन होना यही मुक्ति है। विशेष क्या ? भव्या ! परिशुद्ध आत्मा ही केवल अपना है। कर्म शरीर आदि सर्व परपदार्थ हैं, फिर चौदह और दस परिग्रह आत्माके कैसे हो सकते हैं। तुम्हें सदा एकभुक्ति रहे और यथाशक्ति कभी-कभी उपवास भी करना। निराकुलतासे संयमको पालन करना। इस प्रकार अनंतवीर्य स्वामीके उपदेशको सुनकर यशस्वतीने इच्छामि कहकर स्वीकार किया। विशेष क्या ? भगवंतने अनेक गूढ़ तत्त्वोंको सूत्र रूपमें उपदेश देकर यह भी फरमाया कि तुम्हारे स्त्रीलिंगका विच्छेद होगा। और आगे देवगतिमें जन्म होगा। वहांसे आकर मुक्ति होगी।

माता यशस्वतीके देहमें मल मूत्र नहीं है। इसलिए कमंडलुकी आवश्यकता ही क्या है! इसलिए जीवसंरक्षणके लिए पिछि और आत्मसार पुस्तककी मुनिराजोंने भगवंतकी आज्ञासे दिलाये।

इतनेमें देवांगवस्त्रका वह परदा हट गया, अब सफेद वस्त्रको धारण करती हुई और परदेसे मस्तकको ढँकी हुई वह शांतिरसकी अधिदेवता बाहर आई। आश्चर्यकी बात है, अब वह यशस्वती नवीन दीक्षित संयमिनीके समान मालूम नहीं होती है। उसके शरीरमें एक नवीन कांति ही आ गई।

समवसरणमें किसीको भी शोकोद्रेक नहीं हो सकता है। इसलिए भरतेश्वरको भी सहन हुआ। नहीं तो माता जब दीक्षा लेवें तब वह दुःख से मूर्च्छित हुए बिना नहीं रह सकते थे।

उस समय देव, मनुष्य, नागेन्द्र आदियोंने उक्त आर्यिका यशस्वतीके चरणोंमें भक्तिसे प्रणाम किया। भरतेश्वरने भी अपने पुत्रोंके साथ नमोस्तु करते हुए कहा कि माता! तुम्हारी इच्छा अब तो तृप्त हुई। परंतु यशस्वती अब भरतेश्वरको अन्य समझ रही है। उसको पुत्रके रूपमें अब वह नहीं देख रही है। उस स्वस्तिकसे उठकर भगवंतके चरणोंमें देवीने मस्तक रक्खा। भगवंतने भी "सिद्धत्वमिहि" यह कहकर आशीर्वाद दिया। देवों ने पुष्पवृष्टि की। विशुद्ध तपोधनोंने जय-जयकार किया। माता यशस्वती अर्जिकाओंके समूहकी ओर चली गई। अर्जिकाओंने भी "कंती यशस्वती! इधर आओ! बहुत अच्छा हुआ।" कहकर अपने पास बुला लिया।

पुत्रमोह अब किधर गया? पुत्रवधुओंके प्रति जो स्नेह था वह किधर गया? अतुलसम्पत्तिका आनन्द अब किधर गया? महात्माओंकी वृत्ति लोकमें अजय है। माता यशस्वती धन्य है! मोक्षगामी पुत्रोंको प्राप्त किया, उन्हींमेंसे एक पुत्र उसे दीक्षागुरु हुआ। लोकमें इस प्रकारका भाग्य कौन प्राप्त कर सकता है। षट्खंडाधिपति पुत्रको पाया। उसके समस्त वैभवको तृणके समान समझकर दीक्षा ली, अब कैवल्यकी प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती है? इत्यादि प्रकारसे वहाँपर लोग आपसमें बातचीत कर रहे थे।

यशस्वतीके केश व त्यक्त वस्त्रको देवांगनाओंने समुद्रमें पहुँचाये। भरतेश्वर पुनः भगवंतकी वंदना कर अपने पुत्रोंके साथ अपने नगरकी ओर चले गये। गंधकुटीका भी दूसरी तरफ विहार हुआ।

भरतेश्वर जब महलमें पहुँचे तब रानियोंको सासूके दीक्षा लेनेका

समाचार मालूम हुआ तो उनको बहुत दुःख हुआ। वे अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं।

"यह गंधकुटी न मालूम कहाँसे आई? हमारी सासूबाईको ही लेकर गई? उसीके लिए यह आई थी क्या?"

हा! हमारी विधि क्या? क्या समय है! हमारी मातुलानीको ले गयी? अब हमारी महल सूनी हुई।

हमसे उसका कितना प्रेम था! बुलाते समय कितने प्रेमसे बुलाती थीं! उसमें भेदभाव तो दिखता ही नहीं था! ऐसी परिस्थितिमें उनका भी विचार हमें छोड़कर जानेका हुआ! आश्चर्य है!

हम लोगोंने यदि पर्वोपवास किया तो हमारे लिए सार्वभौमके प्रति नाराज होती थी। देवी! अब हम लोगोंको पूछनेवाले कौन हैं? आपने तो इस महलको जंगल बना दिया।

देवी! हम यहाँ आकर आपके प्रेमसे अपने माता पिताओंको भूल गई। हर तरहसे हम लोगोंको अपने सौख्यसम्पत्ति देकर प्रसूत माताके समान व्यवहार किया। फिर अपनी संतानोंको छोड़नेकी इच्छा कैसे हुई?

जगन्माता! सम्राट्से जब आप अनुरागसे बोलती थीं और सम्राट् जब आपसे बोलते थे, उसे सुनकर हम लोग आनन्दसे फूली न समाती थीं। ऐसी अवस्थामें हम लोगोंको दुःख देना क्या आपको उचित है?

इस प्रकार विलाप करती हुई पतिदेवके चरणोंमें आकर पड़ीं। और प्रार्थना करने लगीं कि देव! आपने भी उनको रोका नहीं? बड़ा ही अनर्थ किया।

सम्राट्—रोकनेसे क्या होता है?

वे सब—आप मंजूरी न देते तो क्या वे जबर्दस्ती दीक्षा देते?

सम्राट्—वे मंजूर करा नहीं सकते हैं?

वे सब—आपका चित्त बहुत कठिन हो गया है, हा! आपने कैसे स्वीकार किया समझमें नहीं आता।

भरतजी रानियोंकी गड़बड़ीको देखते खड़े ही रहे। इतनेमें सबकी धाँधलीको बन्द कराकर पट्टरानी स्वतः बीचमें आई और पूछने लगी कि स्वामिन् आप वहाँपर थे, आपने यदि नहीं कहा तो मातुलानी फिर भी गई? उत्तरमें भरतजीने कहा कि देवी! मैंने पैरों पकड़कर प्रार्थना की।

उसे स्वीकार नहीं किया। वहाँ उपस्थित मुनिराजोंने मुझे दबाया, मैं उस समय क्या कर सकता था। तुम ही बोलो! उन तपस्वियोंने कहा कि भरत! क्या तपश्चर्याके कार्यमें भी विघ्न करते हो? इस बातसे डरकर मैं चुप रह गया। पुनः कहने लगे कि अगर वयमें तप करना ही चाहिये। माताने भी मेरे प्रति कृपा नहीं की वह चली ही गई।

जाने दो, बुढ़ापा है। अपना वे आत्मकल्याण कर लेवें। अपनेको भी अपने समयमें आत्महितको देख लेना चाहिए। अब दुःख करनेसे क्या फायदा? इस प्रकार उन सबको भरतेश्वरने समझाया। रानियोंको फिर भी समाधान नहीं हुआ उनका कोई बहुमूल्य आभरण ही खो गया हो, उस प्रकार उनको दुःख हो रहा था। बड़े शोकके वेगसे निम्नमुखी होकर सब बैठी थीं। इतनेमें अनन्तसेना देवी रानीने आगे बढ़कर भरतेश्वरके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की कि नाथ! सासूके समान मैं भी आत्म-कल्याणके लिए जाती हूँ। मुझे भेजो। दुपहरके धूपके समान यौवन चला गया। कोई-कोई बाल भी सफेद हुए हैं। अब भोगका अनुभोग करना उचित नहीं है। अब योगके लिए मुझे अनुमति दो।

भरतेश्वरने सुनकर कहा कि ठीक है, अब भोगका समय नहीं है, संयमका समय है, दूर जानेकी जरूरत नहीं। यहींपर महलके जिन मंदिरमें रहकर आत्मकल्याण कर लेना। तब अनन्तसेना देवीने कहा कि मुझे मातुलानीके साथ रहकर तप करनेकी इच्छा है। भरतेश्वरने साफ इनकार किया कि इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। तब वह फिर भी आग्रह करने लगी। भरतेश्वरने अन्य रानियोंको आँखोंका इशारा किया। तब सब रानियोंने मिलकर कहा कि हम लोग भी तपश्चर्याके लिए जाती हैं। तब कहीं अनन्तसेना देवी मंदिरमें तप करनेके लिए राजी हुई। उस अनन्तसेना देवीके वयकी अन्य कई रानियोंने भी कहा कि हम लोगोंको भी भोग से तृप्ति हुई है। इसलिए हम भी मंदिरमें रहकर आत्मकल्याण कर लेंगी। तब सम्राट्ने उसे स्वीकार किया।

मुनिराजोंके हाथसे उन सबको एकभुक्ति ब्रह्मचर्यव्रतको दिलाकर अजिकाओंके पास उनको रहने की अनुमति दी। तदनन्तर वे अपने नियम संयममें दृढ़ रहीं।

वे संयमिनि अब प्रतिनित्य एकभुक्ति करती हैं। जिनको पुत्र हैं वे तो अपने पुत्रों के महलमें जाकर एक बार भोजन करती हैं, और मंदिर जाती हैं। परन्तु अनन्तसेनादेवी मात्र अपने सौतोंके घर जाकर भोजन

करती है। क्योंकि उसे पुत्र नहीं है। पर हाँ। वह बाँझ नहीं है। मरीचि-कुमार नामक सबसे बड़े पुत्रको इसीने जन्म दिया है। परन्तु भगवान् आदिनाथके साथ दीक्षा लेकर वह मुनि हो गया था, फिर पागल भी हो गया।

भरतजीने अपनी चिन्तातुर हृदयको किसी तरह समझा-बुझाकर तीन दिनमें शांत किया। एक दिन महलकी छतपर बैठे हुए थे। इतनेमें दूरसे आकाशमें पुष्पका बाण, तारा या पक्षीके समान भरतेश्वरकी ओर आते हुए देखनेमें आया। भरतेश्वर विचार कर ही रहे थे, इतनेमें वह पासमें आया तो मालूम हुआ कि वह एक कबूतर है। जब बिलकुल पास ही वह आया तो उन्होंने देखा कि उसके गलेमें एक पत्र बँधा हुआ है। भरतेश्वरनें उसे खोलकर बाँचा तो उसमें निम्न पंक्तियाँ थीं।

पौदनपुर महल

मिति...............

श्री प्रिय पुत्र भरतको, पौदनपुरसे माता सुनंदादेवीका सतिलक आशीर्वाद। अपरंच पत्र लिखनेका कारण यह है कि हमारे नगरके पास बाहुबलि केवलीकी गंधकुटी आ गई है। इसलिए इस पत्रको देखते ही (तार समझकर) यहाँपर तुम चले आओ, बहुत जरूरी काम है। सो फौरन चले आना। कल या परसों कहोगे तो मेरा मिलना कठिन है। विशेष क्या लिखूँ। इति स्वाहा।

सुनंदादेवी

भरतेश्वरने पत्र बाँचते ही उस पत्र को नमस्कार किया। और समझ गये कि यह दीक्षा लेनेकी तैयारी है। उस कबूतरको समाधान कर स्वतः विमानमार्गसे तत्क्षण पौदनपुरके लिए रवाना हुए।

पौदनपुर पहुँचकर पुत्रोंके स्वागतका स्वीकार करते हुए माता सुनंदा-देवी के महलमें पहुँचे। वहाँपर माताके चरणोंमें नमस्कार कर आशीर्वाद लिया। पासमें बैठे हुए पुत्रको देखकर माता सुनन्दादेवीको भी हर्ष हुआ। मातासे बहुत विनयके साथ प्रश्न किया कि माता! तुम्हारा अभिप्राय क्या है? आपकी बड़ी बहिनके समान हम सबको छोड़कर जानेका है

क्या ? ऐसा न कीजिये ; मैंने आपको क्या कष्ट दिया ? जरा कहिये तो सही ।

माता सुनन्दादेवीने कहा कि बेटा ! ऐसा क्यों विचार करते हो । बुढ़ापा है न ? अब तपश्चर्या करनी ही चाहिये । इसे स्वीकार करो ।

भरतेश्वर समझ गये कि अब यह नहीं रहेगी, दीक्षाके लिए जायेगी तथापि उन्होंने प्रकट होकर कहा कि माता ! यदि बाहुबलीके पुत्रोंने मंजूरी दी तो आप जा सकती हैं ।

माता सुनंदादेवी भरतजीकी ठोड़ीको हिलाकर कहने लगी बेटा ! उनके लिए तो मैं आजतक रही, अब क्या है ? बहानाबाजी मत करो, उनके लिए तुम हो न ? फिर मेरी क्या जरूरत है । मुझे भेजो ।

बेटा नगरके पास गंधकुटी आई है, मैं बहुत ही बूढ़ी हूँ । इसलिए तुम्हें पूछे बिना जानेमें डरती थी । अब तुम मुझे दीक्षाके लिए भेज दो, बेटा ! जीजीको तुमने दीक्षा दिलाई । मुझे विघ्न क्यों करते हो ? मुझे भी जीजी के साथ ही मोक्ष मंदिरमें आकर तुमसे मिलना है । इसलिए मुझे रोको मत, जाने दो ।

भरतेश्वरने विवश होकर स्वीकृति दी । माता सुनन्दाने हर्षसे पुत्रको आलिंगन दिया व उसी समय गंधकुटीकी ओर जानेके लिए भरतेश्वर माता सुनन्दाके साथ निकले ।

भरतेश्वर व सुनन्दादेवी बाहुबलि स्वामीकी गंधकुटीमें पहुँचे । वहां पर श्री बाहुबलि स्वामीके चरणोंमें वंदना कर उस माताकी पूजामें जिस प्रकार परिचारकका कार्य किया था उसी प्रकार आज इस माताकी पूजा में भी परिचारकका कार्य किया । उस दिन अनन्तवीर्य स्वामीकी गंधकुटी में माता यशस्वतीके साथ मुनियोंकी वंदना जिस प्रकारकी थी उसी प्रकार आज बाहुबलिस्वामीकी गंधकुटीमें भी मुनियोंकी वंदना की । और उसी प्रकार माता सुनंदाका समारंभ बहुत वैभवसे हुआ । विशेष क्या वर्णन करें । जिनपूजा, गुरुवंदना आदि क्रियाके साथ अनेक मंगल निनादमें दीक्षा समारंभ आनन्दके साथ हुआ । बड़ी बहिनके समान छोटी बहिन भी संयमकांतिसे उज्ज्वल होकर आर्यिकाओंके समूहमें विराजमान रही । पुत्र ही जब गुरु होकर जब माताको मोक्ष मार्गमें लगाते हैं । उससे बढ़कर महत्वकी बात और क्या हो सकती है । माता यशस्वतीकी दीक्षा पुत्र--अनंतवीर्य केवलीसे व माता सुनन्दाकी दीक्षा पुत्र बाहुबलीसे हुई । यह आश्चर्य है ।

देवगण सम्राट्‌ने आर्यिका सुनंदाके चरणों में नमोस्तु किया। सुनंदा आर्यिकाने आशीर्वाद दिया। तदनंतर सम्राट् भगवान् व मुनिगणोंकी वंदना कर थोड़ासा व्याकुल चित्त होकर वहाँसे लौटे।

गंधकुटीका विहार उसी समय अन्य दिशाकी ओर हुआ। इधर भरतेश्वर पौदनपुर महलमें पहुँचे। इतनेमें अर्ककीर्तिकुमार व आदिराज भी वहाँ पहुँच गये थे। पौदनपुर महलमें बाहुबलिके तीनों पुत्र माता सुनंदाके जानेसे बड़ी चितामें मग्न हैं। उनको भरतेश्वरने अनेक प्रकारसे सांत्वना देनेका प्रयत्न किया। और हर तरहसे उनके दुःखको दूर करनेका उद्योग किया।

सम्राट्‌ने कहा—बेटा ! आज पर्यंत छोटी माँ, हम और तुम्हारे प्रेमसे यहाँ रहीं। अब भी तुम लोगोंको तृप्ति नहीं हुई ? अब उनको अपना आत्मकल्याण कर लेने दो। महाबलराज ! व्यर्थ ही दुःख मत करो। बुढ़ापा है। उनका शरीर शिथिल हो गया है। ऐसी हालतमें संयमको ग्रहण करनेसे देवगण भी उनका स्वागत करते हैं। ऐसे विभवको देखकर हमें संतुष्ट होना चाहिए। दुःख करना कदापि उचित नहीं है। बेटा ! सोच लो।

महाबल कुमारने उत्तरमें कहा कि पिताजी ! हम लोगोंको तो दुःख किस बातका है ? आपका एक अनुभव मात्र चाहिये हम लोगों को तो उसी दिन रास्तेमें छोड़कर हमारे माता पिता चले गये थे। हम छोटे बच्चे हैं, ऐसा समझकर हमारे पिता उस दिन रुके क्या ? हमारी मातायें उस दिन जाते समय हमसे कहकर गई क्या ? हमें धूलमें डालकर वे चले गये। केवल चक्रवर्तीने ही हमारा संरक्षण किया, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। दादी (सुनंदादेवी) उसी दिन जानेके लिए उद्यत हुई थीं। परन्तु आपके आग्रहसे, भगवंतके अनुग्रहसे व हम लोगोंके दैवसे अभीतक रहीं। लोकमें सबको माता व पिताके नामसे दो संरक्षक होते हैं। परन्तु हमें कोई नहीं है, हमें तो माँ और बाप दोनों आप ही हैं।

जब छोटेपनमें ही हमने आपका आश्रय पाया है, फिर आज क्या होता है ? आप अकेले रहें तो पर्याप्त हैं। हम बहुत भाग्यशाली हैं।

इतनेमें अर्ककीर्तिकुमारने कहा कि भाई ! दुःख मत करो। उस दिन पिताजी तुम लोगोंका संरक्षण करेंगे, यह समझकर ही काका व काकी वगैरह चले गये। इसमें उनका क्या दोष है ? पुरुनाथके वंशमें कोई एक रहे

तो पर्याप्त है। वह अपने समस्त वंशज परिवारका संरक्षण करता है। यह इस कुलका संप्रदाय है। इसलिए वे निश्चित होकर चले गए। इसमें दुःखकी क्या बात है!

भाई! वे क्या संरक्षण करते हैं। उनका नाम लेनेसे समस्त विश्व ही अपना वश हो जाता है, इतना चमत्कार उनके मंगलनाममें है। युवराज तुम इसे नहीं जानते? दुःख मत करो।

भेदरहित होकर जब अर्ककीर्तिकुमार बोल रहा था। चक्रवर्ती बहुत आनंदित होकर सुन रहे थे। इतनेमें रत्नबलराजकुमार (महाबलका छोटा भाई) सम्राट्के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। और कहने लगा।

पिताजी! भाईने जो कहा वह ठीक ही कहा! वह सामान्य बात नहीं है। उसका अर्थ मैं कहता हूँ, सुननेकी कृपा करें।

हमारे माता-पिताओंने मोहको जीत लिया! परन्तु हम तो मोहमें ही रहे। ऐसी हालतमें हमारा और उनका मिलकर रहना कैसे बन सकता था। इसलिए उनका हमारे साथ कोई संबंध नहीं है, यह कहा गया है बिलकुल सत्य है।

वे हमारे माता पिता योगी बन गये। अब उन्हें हम माँ बाप कैसे कह सकते हैं? इसलिए भोगमें स्थित आप ही को माँ बाप कहा है, यह भी बिलकुल सत्य है।

भरतेश्वर रत्नबलराजकी बातको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। एवं उन्होंने दोनों हाथोंसे दोनों पुत्रोंको प्रेमसे बुलाकर आलिंगन दिया। वहाँ उपस्थित आप्त मित्र भी प्रसन्न हुए।

सुबलराजको भी बुलाकर सम्राट्ने कहा कि बेटा! तुम्हारे भाइयोंने जो कहा वह ठीक है न? तब उसने उत्तरमें कहा कि पिताजी! आपके पुत्रोंकी बात हमेशा ठीक ही रहती है। योग्य माता-पिताओंके गर्भसे आनेवाले सुपुत्रोंकी बात भी योग्य ही रहती है। इतना मैं जानता हूँ। इससे आगे आप ही जानें।

भरतेश्वरने प्रसन्न होकर उसे भी आलिंगन दिया, और कहने लगे कि बेटा! आदिराज व युवराजको देखा? उनमें कोई भेद ही नहीं है। सहोदरोंमें भेदभाव तो सत्कुलप्रसूतों में नहीं होता है। नीच लोगों में होता है, इत्यादि कहकर उन्हें प्रसन्न किया।

भरतेश्वर मनमें सोचने लगे कि इन पुत्रोंके विवेकको देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ। माताओंके वियोगका संताप भी दूर हो गया। इनको संतुष्ट

करनेके लिए और इनके दुःखको दूर करनेके लिए मैं आया था। परन्तु इन्होंने ही मुझे संतुष्ट किया, आश्चर्यकी बात है।

तदनंतर तीन दिन वहां रहकर एकएकके महलमें एकएक दिन सम्राट्ने भोजन किया। और तीन दिन बहुत आनंदके साथ व्यतीत किया। और कहा कि बेटा! धूप व हवासे भी तुम लोगोंको तकलीफ नहीं होने दूँगा, चिंता मत करो। कहकर वहांसे विदा हुए। प्रणयचंद्र मन्त्री व सेनापतिका भी योग्य सत्कार कर एवं पुत्रकी सेनाको संतुष्ट कर अपने अयोध्यापुरकी ओर रवाना हुए। भरतेश्वरके व्यवहारसे सभी संतुष्ट हुए। बहुत दूरकर तो लोग उनके पीछा न छोड़कर आ रहे थे। उन सबको जानेके लिए कहकर अपने पुत्र व गणबद्धोंके साथ एवं अनेक गाजेबाजेके शब्दसे आकाश प्रदेश गुंजायमान होते हुए विमानारूढ़ हुए। वायुमार्गसे वायुवेगसे चलकर अपने महलकी ओर आये व वहांपर आनंदसे अपना समय व्यतीत करने लगे।

पाठक आश्चर्य करेंगे कि भरतेश्वर कभी संतोषमें और कभी चिंतामें मग्न होते हैं। परन्तु उनका पुण्य इतना प्रबल है कि दुःखहर्षजन्य विकार अधिक देर तक नहीं ठरहता है, संसारमें यही सुख है। यह मनुष्य हर्षके आनेपर आनंदसे फूल जाता है, और दुःखके आनेपर कायर बन जाता है। यह दोनों ही विकार हैं। इस हर्ष विषादोंसे उसे कष्ट होता है। परन्तु जो मनुष्य इन दोनों अवस्थाओंकी वस्तुस्थितिको अनुभव कर परवश नहीं होता है वह धन्य है, सुखी है। भरतेश्वर सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं।

"हे परमात्मन्! तुम चिंतातिक्रांत हो। संतोष हो या चिंता हो, यह दोनों विकारजन्य हैं और अनित्य हैं, इस भावनाको जागृत कर मेरे हृदयमें सदा बने रहो।"

हे सिद्धात्मन्! मायाको दूर कर नाट्य करते हुए लोकको आत्मरसायन पिलानेवाले आप निरायास होकर मुझे सन्मति प्रदान करें। यही आपसे विनय है।

इसी सुविशुद्ध भावनाका फल है कि भरतेश्वर हर्षविषादजन्य विकारको क्षणमात्रमे जीत लेते हैं।

इति–जननी–वियोग–संधि

——००——

आत्मकला संधि

माता यशस्वति व सुनंदादेवीके दीक्षा लेनेके बाद कई दिनों की बात है। भरतेश्वर एक दिन दरबारमें अध्यात्मरसमें मग्न होकर विराजे हुए हैं। वहांपर द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, व शूद्र इस प्रकार चारों वर्णकी प्रजायें भरतेश्वरके चारों ओर थीं, जैसे कि भ्रमर कमलके चारों ओर रहते हों। उस समय सम्राट्ने आत्महितके मार्गका प्रदर्शन किया।

इधर उधरकी कुछ बातें करनेके बाद वहां उपस्थित सज्जनोंका पुण्यहीने मानों बुलवाया, उस प्रकार भरतेश्वरने आत्मतत्वका प्रतिपादन किया। बहुत ही सुंदर पद्धतिसे आत्मतत्वको प्रतिपादन करते हुए भरतेश्वरसे मंत्रीने प्रार्थना की कि स्वामिन्! सब लोग जान सके इस प्रकार आत्मकलाका वर्णन कीजिये। दिव्यवाक्पतिके आप सुपुत्र हो। इसलिए हमें आत्मद्रव्यके स्वरूपका प्रतिपादन कीजिए। इस प्रकार भक्तिसे प्रार्थना करनेपर आसन्नभव्योंके देवने इस प्रकार कथन किया।

हे बुद्धिसागर! सुनो, सर्वकलाओंसे क्या प्रयोजन? आत्मकलाको अच्छी तरह साधन करनेपर लोकमें वह सर्वसिद्धिको प्राप्त कराता है। जो सज्जन परमात्माका ध्यान करते हैं वे इस लोकमें स्वर्गादिक सुखोंको भोगकर क्रमशः कर्मोंको ध्वंस करते हैं एवं मुक्तिश्रीको पाते हैं।

दूर नहीं है, वह परमात्मा सबके शरीररूपी मकानमें विद्यमान है। उसे पाकर मुक्ति प्राप्त करनेके मार्गको न जानकर लोग संसारमें भ्रमण कर रहे हैं। मंत्री! जिस देहको उसने धारण किया है उस देहमें वह सर्वांगमें भरा हुआ है। वह सुज्ञान, सद्दर्शन, सुख व शक्तिस्वरूपसे युक्त है। स्वतः निराकार होनेपर भी साकार शरीरमें प्रविष्ट है। उसका क्या वर्णन करें।

वह आत्मा ब्राह्मण नहीं है, क्षत्रिय नहीं है, वैश्य नहीं है, शूद्र भी नहीं है। ब्राह्मणादिक संज्ञासे आत्माको इस शरीरकी अपेक्षासे संकेत करते हैं। वह आत्मा योगी नहीं है, गृहस्थ भी नहीं है। योगी, जोगी, श्रमण, संन्यासी इत्यादि सभी संज्ञायें कर्मोंकी अपेक्षासे हैं।

वह आत्मा स्त्री नहीं है, स्त्रीकी अपेक्षा करनेवाला भी नहीं है। पुरुष व नपुंसक भी नहीं है। मीमांसक, सांख्य, नैयायिक, आर्हत् इत्यादि स्वरूपमें भी वह नहीं है। यह सब मायाचारके खेल हैं।

वह शुद्ध है, बुद्ध है नित्य है, सत्य है, शुद्ध भावसे सहज गोचर है। सिद्ध है, जिन है, शंकर है, निरंजन–सिद्ध है, अन्य कोई नहीं है।

वह ज्योतिस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, वीतराग है, निरामय है, जन्म-जरामृत्युसे रहित है, कर्मसंघातमें रहनेपर भी निर्मल है।

यह आत्मा वचन मनको गोचर नहीं है। शरीरसे मिश्रित न होकर इस शरीरमें वह रहता है। स्वसंवेदनानुभवसे यह गम्य है। उसकी महिमा विचित्र है।

विवेकीजन स्वतःके ज्ञानसे स्वतःको जो जानते हैं, उसे स्वसंवेदन कहते हैं। मंत्री ! जब यह मोक्षके लिए समीप पहुँच जाता है तब अपने आप वह स्वसंवेदन ज्ञान प्राप्त होता है।

इस परमात्माको स्वयं अनुभव कर सकते हैं। परन्तु दूसरोंको बोलकर बता नहीं सकते हैं। सुननेवालोंको तो सब बातें आश्चर्यकारक हैं। परन्तु ध्यान व अनुभव करनेवालोंको बिलकुल सत्य मालूम होती हैं।

आत्मामें विकार उत्पन्न करनेवाले इंद्रियोंको बांधकर, श्वासके वेगको मंदकर, मनको दाब कर, चारों तरफ देखनेवाली आंखोंके मींचकर-सुज्ञान नेत्रसे देखनेपर यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है।

मंत्री ! वह जिस समय दिखता है, उस समय मालूम होता है कि शरीररूपी घड़ेमें दूध भरा हुआ है, या शरीररूपी घरमें भरे हुए शीतल प्रकाशके समान मालूम होता है।

दूध व प्रकाश तो इंद्रियगम्य हैं। परन्तु यह आत्मा इंद्रियगम्य नहीं है। इसलिए वह उपमा ठीक नहीं है। आकाशरूपी दूध व प्रकाशके समान है, यह विचित्र है।

जो वचनके लिए अगोचर है, वह ऐसा है, वैसा है, इत्यादि रूपसे कैसे कहा जा सकता है। इसलिए मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता हूँ। लोकमें जो अप्रतिम है ऐसे चिद्रूपको किस पदार्थके साथ रखकर कैसे बराबरी कर बता सकते हैं ? शक्य नहीं।

स्वानुभवगम्य पदार्थको अपने आप ही जानना व देखना उचित है। सामने रखे हुए पदार्थके साथ उपमित कर ऐसा है, वैसा है, कहना सब उपचार है।

वह आत्मा एक ही दिनमें नहीं दिख सकता है, क्रमसे ही दिखता है। एक दफे अनेक चन्द्र व सूर्योंके प्रकाशके समान उज्ज्वल होकर दिखता है,

फिर एक दफे (चंचलता आनेपर) वह प्रकाश मंद होता है। स्थिरता आनेपर फिर उज्ज्वल होता है।

एक दफे सर्वांगमें वह दिखता है। फिर हृदय, मुख व गर्भमें प्रकाशित होता है। इस प्रकार एक दफे प्रकाश दूसरी दफे मंदप्रकाश इत्यादि रूपसे दिखता है। क्रम-क्रमसे ही वह साध्य होता है।

मंत्री ! इस शरीरमें एक दफे यह परमात्मा पुरुषाकारके रूपमें दिखता है। फिर आकाररहित होकर शरीरमें सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश भरा हुआ दिखता है। उस समय यह आत्मा निराकुल रहता है।

ध्यानके समय जो प्रकाश दिखता है वही सुज्ञान है, दर्शन है, रत्नत्रय है। उस समय कर्म झरने लगता है। तब आत्मसुखकी वृद्धि होती है।

आँखोंकी छोटीसी पुतलियोंसे देखना क्या है ? उस समय यह आत्मा सर्वांगसे ही देखने लगता है। हृदय व अल्प मनसे जानना क्या ? सर्वांगसे जानने लगता है।

नासिका, जिह्वा, आदि अल्पेंद्रियोंका क्या सुख है ? उस समय उसके सर्वांगसे आनन्द उमड़ पड़ता है। शरीरभर वह सुखका अनुभव करता है। मंत्री ! वह वैभव और किसे प्राप्त हो सकता है ?

उस समय बोलचाल नहीं है। श्वासोच्छ्वास नहीं है, शरीर नहीं है। कोई कल्मष नहीं है, इधर-उधर कंप नहीं है। आत्मा पुरुषरूप उज्ज्वल प्रकाशमय दिखता है। शरीरके थोड़ा सा हिलनेपर आत्मा भी थोड़ा हिल जाता है। जिस प्रकार कि जहाजके हिलनेपर उसमें बैठे हुए मनुष्य भी थोड़ा-सा हिल जाते हैं।

मंत्री ! अभ्यासके समय थोड़ीसी चंचलता जरूर रहती है, परन्तु अच्छी तरह अभ्यास होनेके बाद समुद्रोंके समान गंभीर व निश्चल हो जाता है। उस समय यह आत्मा पुरुषाकार समुज्ज्वल कांतिसे युक्त होकर दीखता है। और उस समय कोई क्षोभ नहीं रहता है।

उस समय उसका क्या वर्णन करें। प्रकाशकी वह पुतली है। प्रभाकी वह मूर्ति है, चिरकलाकी वह प्रतिमा है, कांतिका वह पुरुष है, चमकका वह बिंब है। प्रकाशका चित्र है। इस प्रकार वह आत्मा अन्दरसे दिखता है।

विशेष क्या ? जुगनूने ही परपुरुषको धारण किया तो नहीं ? अथवा क्या हाथको न लगनेवाले दर्पणने ही परपुरुषको धारण किया है ? पहिले कभी अन्यत्र उस रूपको नहीं देखा था, आश्चर्य है।

चमकनेवाली बिजलीकी मूर्ति यह कहांसे आई ? अथवा अत्यन्त निर्मल यह स्फटिककी मूर्ति कहांसे आई ? इस प्रकार आश्चर्यके साथ वह ध्यानी उस आत्माको देखता है।

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पणमें बाह्य पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकारके संसार सम्बन्धी मोहक्षोभसे रहित उस निर्मल आत्मामें आत्मा जब ठहरता है, तब उसे अखिल प्रपंच ही देखनेमें आते हैं।

उस समय उसे स्वयं आश्चर्य होता है कि यह आत्मा इस अल्प देहमें आया कैसे ? इसमें तो जगत्भर पसरने योग्य प्रकाश है। फिर इसे शरीररूपी जरासे स्थानमें किसने भरा ? सर्व आकाश प्रदेशमें व्याप्त होने योग्य निर्मलता व ज्ञान इसमें है। फिर इस जरासे स्थानमें यह क्यों रुका ? आश्चर्य है।

मंत्री ! उस समय झर-झर होकर कर्म झरने लगता है। और चित्कला धग-धग होकर प्रज्वलित होती है। एवं अगणित सुख जुम-जुम कर बढ़ता जाता है। यह ध्यानीके लिए अनुभवगम्य है। दूसरोंको दीख नहीं सकता है।

गर्मीके कड़क धूपके बढ़ते जानेपर जिस प्रकार चारों ओर व्याप्त बरफ पिघल जाता है, उसी प्रकार निर्मल आत्माके प्रकाशमें कार्माण, तैजस शरीर पिघलते जाते हैं।

उस समय आत्माको देखनेवाला भी वही है देखे जानेवाला भी वही है, देखनेवाली दृष्टि भी वही है। इसे सुनकर आश्चर्य होगा कि ध्यानके फलसे आगे प्राप्त होनेवाली मुक्ति भी वही है। इस प्रकार स्वस्वरूपी है। तीन शरीरके अन्दर रहनेपर उस आत्माको संसारी कहते हैं। ध्यानके द्वारा उन तीन शरीरोंका जब नाश किया जाता है तब वह अपने आप लोकाग्र-स्थानमें जा विराजमान होता है। उसे ही मुक्ति कहते हैं।

यह आत्मा स्वयं अपने आपको देखने लग जावे तो शरीरका नाश होता है। दूसरे कोई हजार उपायोंसे उसे नाश करनेके लिए प्रयत्न करे तो भी वह अशक्य है। अपनेसे भिन्न कर्मोंको नाश कर यह स्वयं आत्मा मुक्तिसाम्राज्यको पाता है। उसे वहाँ उठा ले जानेवाले, वहाँ रोकनेवाले कौन हैं ? कोई नहीं है।

मंत्री ! लोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाले गुरु और देव कहलाते हैं। गुरु और देव तो केवल मुक्तिके मार्गको बतला सकते हैं। कर्मनाश तो स्वयं

ही इस आत्माको करना पड़ता है। गारुडी विद्याका गुरु क्या रण-रंगमें आ सकता है ? कभी नहीं। शत्रुओंको जीतनेके लिए तो स्वयं ही को प्रयत्न करना पड़ता है।

यदि युद्धस्थानमें स्वयं वीरतासे काम लिया और वह वीर विजयी हुआ तो क्या पहिले जिसने अभ्यास कराया था वह खिन्न होगा ? क्या वह सोचेगा कि मेरी अपेक्षा किये बिना ही यह वीर सफल होता है। कभी नहीं। उसके लिए तो हर्ष होना चाहिए। इसी प्रकार भेदभक्तिकी पूर्णता होनेपर स्वयं स्वयं को देखकर मुक्तिको प्राप्त करता वही वास्तविक उत्कृष्ट जिन-भक्ति है। स्वयं आत्मानुभव करनेमें समर्थ होनेपर देवगुरु उसकी सफलतामें खिन्न नहीं हो सकते हैं।

भगवंतको अपने चित्तसे अलग रखकर भक्ति करना देखना वह भेद-भक्ति है। वह स्वर्गके लिए कारण है। परन्तु अपने ही शरीरमें उस भगवंतका दर्शन करें मुक्ति प्रदान करानेवाली वही सुभुक्ति है। और वास्तविक भक्ति है।

चेतनरहित शिला, कांसा वगैरहमें जिन समझकर प्रेम व भक्ति करना वह पुण्य है। आत्मा चैतन्यरूप है, देव है, यह समझकर उपासना करना यह नूतन-भक्ति मुक्तिके लिए कारण है।

ज्ञानकी अपूर्णता जबतक रहती है तबतक यह अरहंत बाहर रहता है। जब यह आत्मा अच्छी तरह जानने लगता है तबसे अरिहंतका दर्शन अपने शरीरके अन्दर ही होने लगता है। इसमें छिपानेकी बात क्या है ? अपने आत्माको ही देव समझकर जो वंदना कर श्रद्धान करता है वही सम्यग्दृष्टि है।

सचिव ! आजतक अनंत जिनसिद्ध अपनी आत्मभावनासे कर्मोंको नाशकर मोक्ष सिधार गये हैं। उन्होंने अपनी कृतिसे जगत्को ही यह शिक्षा दी है कि लोक सब उनके समान ही स्वतः कर्म नाश कर उनके पीछे मुक्ति आवें। इस बातको भव्यगण स्वीकार करते हैं। अभव्य इसे गप्पेबाजी समझकर विवाद करते हैं। आत्मानुभव विवेकियोंको ही हो सकता है। अविवेकियोंको वह क्यों कर हो सकता है ?

अभव्य कहते हैं कि हमें आत्मासे अकेले क्या करना है। हमें अनेक पदार्थोंके अनुभवकी जरूरत है। अनेक पदार्थोंमें जो सुख है उसे अनुभव करना जरूरी है। ऐसी अवस्थामें अध्यात्मतत्वको हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इत्यादि कहते हुए मधु मक्खियोंके कांटोंके समान एकमेकसे विवाद करते रहते हैं।

मंत्री ! वे अभव्य ध्यानको स्वीकार नहीं करते हैं। ध्यान करना ही नहीं चाहते हैं। यदि कदाचित् स्वीकार किया तो उसमें अनेक प्रकारकी पराधीनता बताकर उसे छोड़ देते हैं। श्री निरंजनसिद्धमें स्थिर होनेके लिए कहें तो कुछ न कुछ बहानाबाजी करके टाल देते हैं।

ध्यान करनेके लिए घोर तपश्चर्याकी जरूरत है। अनेक शास्त्रोंके ज्ञानकी जरूरत है। इत्यादि कह कर ध्यानका अपलाप करते हैं। स्वयं तप भी करें, अनेक शास्त्रोंका पठन भी करें तो भी ध्यानसे वे विरहित रहते हैं। स्वयं तो वे आत्माको देखना नहीं जानते हैं, और दूसरे जो आत्मानुभवी हैं उनको देखकर संतुष्ट भी नहीं होते हैं। केवल दूसरोंको कष्ट देना वे जानते हैं। उनके साथ ध्यानी जन कभी न करें।

मंत्री ! विशेष क्या कहें ? यह आत्मध्यान गृहस्थको हो सकता है। मुनिको हो सकता है। बड़े शास्त्रीको हो सकता है। छोटे शास्त्रीको भी हो सकता है। गृहिणीको भी हो सकता है। केवल आसन्न भव्य होनेकी जरूरत है, इसे विश्वास करो।

परम शुक्लध्यान योगीके सिवाय गृहस्थोंको नहीं हो सकता है। हाँ ! उत्कृष्ट धर्म्यध्यान तो सबको हो सकता है। इसमें कोई संदेह ही नहीं है। धर्म्यध्यान भी दो प्रकारका है। एक व्यवहार धर्म्यध्यान, दूसरा निश्चय धर्म्य-ध्यान। आज्ञाविचय, विपाकविचय, अपायविचय और संस्थानविचय इस प्रकार चार भेदोंसे विभक्त धर्म्यध्यानके स्वरूपको समझकर चिंतवन करना यह व्यवहार धर्म्यध्यान है। स्वतः आत्माको सुज्ञानी समझकर चिंतवन करना यह निश्चय धर्म्यध्यान है।

संसारमें जो बुद्धिमान् हैं उनको उचित है कि वे आत्माको आत्मासे देखकर अपने अंतरंगको जानें और कर्मसंघका नाश करें। वे परध्यानी भवभ्रमणसे मुक्त होकर मुक्ति स्थानमें स्वयं सिद्ध परमात्मा होकर विराजते हैं।

भोगमें रहकर धर्मयोगका अवलम्बन करना चाहिए। बाद भोगांतमें योगी होकर शुक्लध्यानसे अष्टकर्मोंको नाशकर मुक्ति प्राप्त करना चाहिए। ज्ञानियोंको कर्मनाश करनेमें विलम्ब नहीं लगता है। श्रेण्यारोहण करनेके लिए अन्तर्मुहूर्त शेष रहे तब भी वे दीक्षा लेते हैं।

समुद्रमें स्नान करनेके लिए जानेकी इच्छा रखनेवाले दो मनुष्योंमें, एक तो अपने घरपर ही कपड़े वगैरह उतारकर स्नानके लिए घरसे पूरी तैयारी कर आता है। दूसरा समुद्रके तटपर जाकर वहीं कपड़ा खोलकर

स्नान करता है। स्नान करनेकी दोनोंकी क्रियामें कोई अंतर नहीं है। दोनों स्नान करते हैं, परन्तु तैयारीमें अन्तर है। इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुषोंमें कोई आज दीक्षा कर लेते हैं व अनेक कालतक तपश्चर्या ध्यानका अभ्यास कर मुक्तिको पाते हैं। परन्तु कोई-कोई घरमें ही रहकर मोहके अंशको क्रमसे कम करते हुए ध्यानका अभ्यास करते हैं। बादमें एकदम दीक्षा लेते हैं व थोड़ी सी तपश्चर्या व कुछ ही समयके ध्यानसे मुक्तिको प्राप्त करते हैं। मुक्ति पाने की क्रिया तो दोनोंकी एक है। परन्तु तैयारी में ही अन्तर है।

संसारमें कोई कठिनकर्मी रहते हैं। कोई मृदुकर्मी रहते हैं। उनमें कठिनकर्मी अर्थात् जिनका कर्म तीव्र है, बाह्यसंग अर्थात् बाह्य परिग्रहको छोड़कर आत्मदर्शन करते हैं। परन्तु मृदुकर्मी अर्थात् जिनका मन्दकर्म है, वे तो बाह्य परिग्रहको रहनेपर भी भेदविज्ञानसे आत्माको देखते हैं। फिर परिग्रहको छोड़कर परमशुक्लके बलसे मुक्तिको पाते हैं।

कोई बहुत कष्टके साथ निधिको पाते हैं तो कोई सातिशय पुण्यके बलसे निरायास ही निधिको प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार कोई विशेष प्रयत्न कर आत्मनिधिको पाते हैं और कोई सुलभमें ही आत्मनिधिको पाते हैं। इस प्रकार उन मोक्षार्थी पार्थोंमें भी विचित्रता है।

मंत्री! विशेष क्या कहूँ? यह परब्रह्म है। परमागमका सार है, दिव्यतीर्थ है। इसलिए अकंप होकर चिद्रूप परमात्मामें मग्न हो जाओ। अनन्त सुखका अनुभव करो।

देहमें स्थित शुद्धात्माको जो देखता है उसके हाथमें कैवल्य है। वह संयमी, साहसी है, वीर है, कर्मोंको जड़से काटे बिना वह नहीं रह सकता है। इसे विश्वास करो। परमात्माका आप लोग दर्शन करें। ध्यानरूपी अग्निसे काल और कर्मका भस्म करें। और तीन देहके भारको दूर करें और मुक्तिको प्राप्त करें।

मंत्री! इसका श्रद्धान करना यही शुद्ध सम्यक्त्व है। उसे जानना वही सम्यग्ज्ञान है, और उसीमें अपने मनको निश्चल कर ठहराना वही सम्यक्चारित्र है। यही रत्नत्रय है, जो कि मोक्षमार्ग है। अर्थात् आत्मतत्वको देखना, जानना व उसमें लीन होना यही मोक्षका निश्चित मार्ग है।

भरतेश्वरके मुखसे निकले हुए इस आत्म-तत्वके विवेचनको सुन कर वहां उपस्थित सर्व सज्जन प्रसन्न हुए। मन्त्री मित्रोंने हर्षोद्गार

निकालते हुए कहा स्वामिन् ! धन्य हैं, आज हम लोग कृतकृत्य हुए। सिद्धान्तश्रवणके हर्ष से उसी समय उठकर उन लोगोंने बहुत भक्तिसे प्रणाम किया।

शूद्र, क्षत्रिय व वैश्योंने जब नमस्कार किया तो विप्रसमूह आनन्द व उद्रेकसे अनेक मंगल-सामग्रियों को हाथमें लेकर भरतेश्वरके पास गया। उनकी आँखोंसे आनन्दबाष्प उमड़ रहा है। शरीरमें रोमांच हो गया है। शरीर हर्षसे कम्पित हो रहा है। मुखमें नवीन कान्ति दिख रही है। हँसते-हँसते आनन्दसे फूलकर वे सम्राट्के पास पहुँचे व प्रार्थना करने लगे कि स्वामिन् ! आपकी कृपासे मनका अन्धकार दूर हुआ। सुज्ञान सूर्यका उदय हुआ। इसलिए आप चिरकालतक सुखसे जीते रहें। जयवन्त रहें। आपकी जयजयकार हो। यह कहते हुए भरतेश्वरको उन विप्रोंने तिलक लगाया।

बाकीके लोगोंको हर्षकी अपेक्षा आत्मतत्वको सुनकर इन विप्रोंको अधिक हर्ष हुआ है। भरतेश्वर भी हर्षसे सोचने लगे कि ये विशिष्ट जातिके हैं, तभी तो इनको हर्ष विशेष हुआ है।

सम्राट् पुनः सोचने लगे कि ये विप्र विशिष्ट जातिके हैं इसलिए आत्मकलाकी वार्ताको सुनकर प्रसन्न हुए हैं। चन्द्रमाकी कलाको देखकर चकोर पक्षीको जिस प्रकार आनन्द होता है, कौवेको क्यों कर हो सकता है ? उस दिन आदिब्रह्मा परमपिताने इस वर्णनको बाकीके वर्णोंके लिए गुरुके नामसे कहा है। आज वह बात प्रत्यक्ष हुई। सचमुचमें इनका परिणाम देहपिण्ड परिशुद्ध है। तदनन्तर विनोदके लिए उनसे सम्राट्से पूछा कि विप्रो ! चिद्रूपका अनुभव किस प्रकार है ? कहो तो सही। तब उत्तरमें उन लोगोंने कहा कि आदिनाथ स्वामीके अग्र पुत्रकी बोल, चाल व विशाल-विचारके समान वह आत्मानुभव है। स्वामिन् ! आदिचक्रेश्वर भरत ही उस आत्मकलाको जानते हैं, हम तो उसे पढ़ सुन कर जानते हैं। वह ध्यान क्या चीज है, हमें मालूम नहीं है। आगे हमें प्राप्त हो जाय यही हमारी भावना है।

भरतेश्वरने सोचा कि परमात्मयोगका अनुभव इनको मौजूद है। तथापि अपने मुखसे उसे कहना नहीं चाहते। आधा भरा हुआ घड़ा उथल पुथल होता है, भरा हुआ घड़ा स्तब्ध रहता है, यह लोककी रीति है।

भरतेश्वरने उनको संबोधन कर कहा कि आप लोग आसन्न भव्य

है। आप लोगोंके आत्मविलासको देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ। इसलिए हे भूसुरगण ! आप लोगोंका मैं आज एक नवीन नामाभिधान करूँगा। ब्रह्म शब्दका अर्थ आत्मा है, आत्माको अनुभव करनेवाला ब्राह्मण है इस प्रकार शब्दकी सिद्धि है। ब्रह्माणं आत्मानं वेत्ति अनुभवति इति ब्राह्मणः। इस प्रकार आप लोगों का आज ब्राह्मणके नामसे संबोधन होगा।

लोकमें सभी नामोंको धारण कर सकते हैं। परन्तु आत्मानुभवके नामको धारण करना कोई सामान्य बात नहीं है। इसलिए आप लोगोंको यह नामाभिधान किया गया है।

ब्राह्मणगण ! आप लोगोंको एक शुभनाम और प्रदान करता हूँ। लोकके सभी सज्जन जन कहलाते हैं। उनमें आप लोगोंको महाजन कहेंगे। आप लोगोंका दूसरा नाम महाजन रहेगा।

पिताजीने आप लोगोंको द्विज, विप्र, भूसुर, बुध आदि अनेक नामोंको दिया है। मैं आज आपलोगोंके गुणसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण व महाजनके नामसे कहूँगा, यही आप लोगोंका आदर है। आपलोग दानके लिए पात्र हैं, दीक्षा के लिए योग्य हैं इस प्रकार पिताजीने कहा था। परन्तु ज्ञान व ध्यानके लिए भी योग्य हैं इस प्रकार मैं करार देता हूँ।

भरतेश्वरके इस प्रकारके गुण-पक्षपातको देखकर वहाँ उपस्थित सर्व मन्त्री मित्रोंको हर्ष हुआ। और कहने लगे कि स्वामिन् ! ये उत्तम पुरुष हैं। इनको आपने जो उत्तम नाम दिया है वह बहुत ही उत्तम हुआ।

नाम मात्र प्रदानकर कोरा भेजने के लिए क्या वह ग्रामीण राजा है ? नहीं ! नहीं ! उसी समय उन ब्राह्मणों को सुवर्ण, वस्त्र, आभरण, ग्राम, हाथी, घोड़ा, गाय आदि यथेष्ट दानमें देकर सत्कार किया।

आहारदान, अभयदान, शास्त्रदान और औषधदान, यह तपस्वियोंको देने योग्य चार दान हैं। परन्तु सुवर्ण आदिको लेकर दस व चौदह प्रकारके पदार्थोंका दान इन ब्राह्मणोंको देना चाहिये।

इस प्रकार सत्कार करनेके बाद भरतजीने हर्षसे न फूल समाते हुए आत्मानुभवियोंके प्रति आदर व्यक्त करनेके लिए उनको आलिंगन दिया।

उस प्रकार साक्षात् सम्राट्के आलिंगन देने पर उनको इतना हर्ष हुआ कि वे सोचने लगे हमारा जन्म सचमुचमें सार्थक है। वे इतने फूल गये कि उनके हाथकी दर्भमुद्रा अब कसने लगी। उन ब्राह्मणोंने हर्षसे

कहा कि स्वामिन् ! आज आपसे हम कृत्यकृत्य हुए। आपने हमारी आज सृष्टि की। उस दिन आदि भगवंतने जो सृष्टि की है वह तीन वर्णोंके नामसे ही रहे। हम लोग आपकी ही सृष्टि कहलाना चाहते हैं। हम तो आपके ही सृष्टि हैं। तब सम्राट्ने कहा कि नहीं ! ऐसा नहीं होना चाहिए ! सृष्टि तो आदि प्रभुकी ही रहे। केवल नामाभिधान मेरा रहेगा। तब उन ब्राह्मणोंने हर्षसे कहा कि हम इस विषयमें आदिप्रभुके चरणोंमें निवेदन करेंगे।

प्रेमपूर्ण वाक्यसे सम्राट्ने सबको अपने स्थानके लिए विदाई कर स्वयं राजमहलकी ओर चले गये व वहाँपर क्षेमसे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

पाठक ! भरतेश्वरके आत्मकला नैपुण्य, तद्विषयक हर्ष व गुणैक पक्षपातित्वको देखकर आश्चर्य करते होंगे। लोकमें सर्व कलाओंके परिज्ञानसे आत्मकलाका परिज्ञान होना अत्यन्त कठिन है जिसने अनेक भवोंसे आत्मानुभवका अभ्यास किया है वही उसमें प्रवीण होता है। इसके अलावा जो गुणवान् हैं उन्हींको गुणवानोंको देखकर हर्ष होता है। विवेकशील व्यक्ति ही वास्तविक गुणोंका अनुभव करता है। भरतेश्वर इसीलिए रात्रिदिन यह भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! सामने उपस्थित गुणको व तुम्हारे गुणको परीक्षा करते हुए सामनेके गुणको एकदम भूलकर, वह यह के संकल्प विकल्पोंसे रहित होकर रहनेकी अवस्थामें मेरे हृदयमें सदा बने रहो, यही प्रार्थना है।

हे सिद्धात्मन् ! आप नित्य ही अपने आपके ध्यानमें मग्न होकर लोकके सत्या-सत्य समस्त पदार्थोंको साक्षात्कार करते हैं। अतएव अत्यन्त सुखी हैं। मुझे भी सन्मति प्रदान कीजिये।

यही कारण है कि वे सदा गुणोंके अखंड-पिंडके रूपमें अनुभवमें आते हैं।

इति ब्राह्मणनाम संधिः

—००—

षोडश-स्वप्न संधि

जिस दिन द्विजोंका ब्राह्मण नामाभिधान किया गया उसी दिन रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सम्राट्ने सोलह स्वप्नोंको देखा। तदनन्तर सूर्योदय हुआ।

नित्य क्रियासे निवृत्त होकर विनयसे विप्रजनोंको बुलवाया व उनके आनेपर रात्रिके समय देखे हुए स्वप्नोंके सम्बन्धमें कहा व उनके फलको भगवान् आदि प्रभुसे पूछेंगे, इस विचारसे सम्राट् कैलास पर्वतको ओर रवाना हुए। उस समय उन विप्रोंने भी कहा कि भगवंतके दर्शन कर हमें बहुत दिन हो गये हैं। हम भी आपके साथ कैलास पर्वतको जायेंगे। भरतेश्वरने उन्हें सम्मति दी। तब वे सम्राट्के साथ भगवंतके दर्शनके लिए निकले। जिस प्रकार देवेन्द्र सुरोंके साथ मिलकर समवसरणमें जाता है, उसी प्रकार यह नरेन्द्र भूसुरोंके साथ मिलकर समवसरणमें जा रहा है।

आकाश मार्गसे शीघ्र जाकर जिनसभा रूपी कमल-सरोवरमें भ्रमरों के समान उन विप्रोंके साथ समवसरणमें प्रवेश किया व उनके साथ आदिप्रभुका दर्शन किया। भक्तिसे आनन्दाश्रुका पात होने लगा। शरीर में कंप हो रहा है। सर्वांगमें रोमांच हो रहा है। उस समय उन द्विजोंके साथ आदि प्रभुके चरणोंमें पुष्पमालाको समर्पण किया, साथमें निर्मल वाक्यपुष्पमालाको समर्पण करते हुए भगवंतकी स्तुति की।

जय जय ! सर्वज्ञ ! शांत। सर्वेश ! चिन्मय ! चिदानन्द ! तीर्थेश ! भयहर ! स्वामिन् ! हम आपके शरणागत हैं। हमारी आप रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करते हुए उन महाजनोंके समूहके साथ भगवंतके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया।

विशेष क्या वर्णन करें। बहुत वैभवके साथ जिनेन्द्र भगवंतकी पूजा की। उस सम्राट्की उत्कट भक्तिको देखकर वहाँ उपस्थित सर्व नरसुर जय जयकार करने लगे। सम्राट्को भी परम संतोष हुआ। तदनंतर मुनियोंकी वंदना कर योग्य स्थानमें बैठ गये व भगवंतसे प्रार्थना करने लगे कि स्वामिन् ! आपकी सृष्टिके जो द्विज हैं उनको मैंने ब्राह्मण नामा-भिधान किया है। उसे आप मंजूर करें।

भगवंतने दिव्यवाणीसे फरमाया कि भव्य ! आज हम क्या मंजूर करें। हमको तो उसी दिन मालूम था। इनको आगे जाकर ब्राह्मण नामाभिधान तुमसे होगा। इसलिए उनको वह नाम रहे। इसमें क्या हर्ज

है। आत्मानुभव होनेसे आत्मानुभवियोंको ब्राह्मण यह नाम पड़ता है। वह आत्माका ही शुभ नाम है। इस प्रकार परमात्माने निरूपण किया।

तब ब्राह्मणोंने भगवंतसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! यद्यपि हमारी सृष्टि तो आपसे उसी दिन हो गई है, परन्तु आपके अग्रपुत्रने हमें आज सुन्दर नाम दिया है। अत एव हम लोग उसकी गुणग्राहकताको देखकर प्रसन्न हो गये हैं। हम चक्रवर्तीकी सृष्टि कहलाना चाहते हैं। सम्राट्ने बीचमें कहा कि नहीं! नहीं! ऐसा नहीं होगा। सम्राट्ने जब नहीं कहा तो प्रभुने फरमाया कि नहीं क्यों? इसे मंजूर करो। क्योंकि उन द्विजोंको तुमपर असीम प्रेम है। इसलिए उनकी बातको माननी ही चाहिए। यद्यपि आज यह बात विनोदके रूपमें है, कालांतरमें लोकमें वही प्रसिद्ध हो जाती है। अन्तिम कालतक भी कोई इसे भूल नहीं सकते हैं। आखिर कम से कम जैनियोंमें इस बातकी प्रसिद्धि रहती है कि ये ब्राह्मण चक्रवर्तीके द्वारा सृष्ट हैं। इसीसे दुनियामें एक झगड़ा ही पैदा होता है।

आजके ये जो ब्राह्मण हैं उनको तो यह विनोदके रूपमें है। परन्तु आगे जो इनके वंशज होंगे उनको जब यह सत्य मालूम होगा तो वे आपस में मारपीट किये बिना नहीं छोड़ेंगे। सबसे पहिलेके वर्णको यदि सबके बाद उत्पन्न हुआ कहेंगे तो उनको असंतोष क्यों नहीं होगा?

शूद्र, क्षत्रिय व वैश्योंकी उत्पत्तिके बाद ब्राह्मणोंकी मुद्राका उदय हुआ ऐसा यदि कहें रौद्र क्यों नहीं उत्पन्न होगा? उस समय फिर ये विप्रजन जिनधर्मको शूद्रीय धर्मके नामसे कहेंगे।

परिणाम यह होगा कि ये ब्राह्मण जिनधर्मका परित्याग और यज्ञ यागादिकका प्रचार करेंगे। इतना ही नहीं उन यज्ञ यागादिकके निमित्तसे हिंसाका भी प्रचार होने लगता है। तब जैनधर्मीय लोग उनकी निन्दा करने लगते हैं।

लोकमें हिंसाके प्रचारको रोकनेके लिए उन ब्राह्मणोंके लिए नियत चौदह प्रकारके दानोंमें दस दान नहीं देना चाहिये। केवल चार दान ही पर्याप्त हैं। इस प्रकार जैनियोंके कहनेपर ब्राह्मण एकदम चिढ़ जाते हैं। चिढ़कर "हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्" वाली भाषा बोलने व प्रचार करने लगते हैं।

इस प्रकार ब्राह्मणोंकी जैन व जैनोंकी ब्राह्मण निन्दा करते हुए एक-मेकके प्रति कष्ट पहुँचानेके लिए तत्पर होते हैं। इस प्रकार लोकमें अनेक

प्रकारसे अशांति होता है। आखिरको जिनधर्मका ह्रास होता है, परन्तु इन ब्राह्मणोंके धर्मका नाश नहीं होता है।

भरतेश्वरको आगे होनेवाले इस दुरुपयोगको सुनकर थोड़ासा दुःख जरूर हुआ। वे कहने लगे कि स्वामिन्! इनकी सृष्टि तो आपसे ही हुई है। फिर इतना भी वे नहीं सोचेंगे? उत्तरमें भगवान्‌ने कहा कि भरत! आगे सबको इतना विवेक कहाँसे आता है। अब तो दिन पर दिन बुद्धि, बल, विवेक, विचार शक्तिमें ह्रास ही होता जाता है, वृद्धि नहीं हो सकती है।

भरतेश्वरने पुनः कहा कि स्वामिन् नाटक शाला, दूसरा-उत्सव मंडप आदियोंके उद्घाटन करने पर मुझे लोग मनु कहें यह उचित है केवल एक वर्णका नामाभिधान करनेसे मुझे ब्रह्मा क्यों कहते हैं यह समझमें नहीं आता। स्वामिन्! आपके रहते हुए यदि मैं कोई नवीन वर्णकी सृष्टि करूँ तो मुझ सरीखे उद्दंड और कौन हो सकते हैं। फिर वे लोग ऐसा क्यों सोचते हैं, समझमें नहीं आता। तब भगवंतने कहा कि वे न्यायकी सीमा को नहीं जानते हैं।

पुनः सम्राट्‌ने कहा कि स्वामिन्! यदि द्विजोंकी उत्पत्ति अन्तमें हुई तो आप हम जिस वंशमें उत्पन्न हैं, उस क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न लोगों को षोडश संस्कारोंका विधान किसने कराया! इतना भी वे नहीं विचार करते हैं? हाय! बड़े मूर्ख हैं! जातकर्म, नामकर्म, यज्ञोपवीत संस्कार आदि यदि इन ब्राह्मणोंने नहीं कराया हो तो वे जातिक्षत्रिय व वैश्य कैसे बन गये? इनका भी वे विचार नहीं करते हैं। उसी समय स्वयं एक एक के घरमें पहुँचकर इन संस्कारोंको हम विधान पूर्वक कराते थे। जब यह गुण पहिलेसे उनमें विद्यमान है तो फिर मैं क्यों उनका निर्माण करूँ। वे तो पहिलेसे मौजूद थे। केवल मेरे नामाभिधान करनेसे लोकमें यह अनर्थ! आश्चर्य है।

अपनी अंगुलीको दर्भवेष्टन कर, होम करनेके बाद दक्षिणा लेनेवाले ये ब्राह्मण क्या तलवार लेकर क्षत्रिय हो सकते हैं? व्यापार करके वैश्य तो दाता है, पात्र नहीं है। परन्तु ये ब्राह्मण तो दाता भी हैं, पात्र भी हैं। इतना भी विचार उन लोगोंमें नहीं रहता है? आश्चर्य है।

भगवन्! विशेष क्या? मुझे व मेरे छोटे भाइयोंका पवित्र यज्ञोपवीत संस्कारको किसने कराया? ब्राह्मणोंने है न? फिर ये अपनेको अन्त्यज (आखिरको उत्पन्न) क्यों समझते हैं? बड़े दुःखकी बात है।

भगवन् ! रहने दीजिये, उनका जो भवितव्य है होगा, अब कृपया रात्रिके अन्तिम प्रहरमें देखे गये सोलह स्वप्नोंका फल बतला दीजिये। इस प्रकार हाथ जोड़कर सम्राट्ने प्रार्थना की। तब आदि प्रभुने उन स्वप्नोंका फल बतलाया।

पहिला स्वप्न—एक एक शेरके साथ अनेक शेर मिलकर जा रहे हैं। और पंक्तिबद्ध होकर उनके पीछेसे इसी प्रकार तेईस शेर जा रहे हैं। यह जो तुमने सबसे पहिला स्वप्न देखा है उसका फल यह है कि हमें आदि लेकर तेईस तीर्थंकर होंगे। तबतक धर्मका उद्योत यथेष्ट रूपसे होगा। मिथ्यामतोंका उदय प्राणियोंके हृदयमें होनेपर भी उसकी वृद्धि नहीं हो सकती है। जिनधर्मका ही प्राबल्य होगा। लोगोंमें मतभेदका उद्रेक नहीं होगा।

दूसरा स्वप्न—दूसरे स्वप्नमें भगवान् ! मैंने देखा कि अन्तमें एक शेर जारहा था, उसके साथ बाकी मृग मिलकर नहीं जाते थे, उससे डरकर दूर भाग रहे थे। भगवंतने फरमाया है कि इसके फलसे अन्तिम तीर्थंकर महावीरके समयमें मिथ्यामतोंका तीव्र प्रचार होने लगता है। मतभेदकी वृद्धि होती है।

तीसरा स्वप्न—स्वामिन् ! एक बड़े भारी तालाबको देखा जिसके बीचमें पानी बिलकुल नहीं है। सूख गया है। परन्तु कोने कोनेमें पानी मौजूद है।

भव्य ! कलिकालमें जैनधर्मका उज्ज्वल रूप मध्य प्रदेशमें नहीं रहेगा। किनारेमें जाकर रहेगा। इसकी यह सूचना है। इस प्रकार भगवंतने कहा।

चौथा स्वप्न—स्वामिन् ! हाथीपर बन्दर चढ़कर जा रहा था इस प्रकारके कष्टतर वृत्तिसे युक्त व्यवहारको देखा। इसका क्या फल ?

भव्य ! आदरणीय क्षत्रिय लोग कुलभ्रष्ट होकर अन्तमें राज्य-शासन का कार्य नीचोंके हाथ जाता है। क्षत्रिय लोग अपने अधिकारके मदमें इतना मस्त होते हैं कि उनको कोई विवेक नहीं रहता है। आखिरको कर्तव्यच्युत होते हैं। दुष्टनिग्रह व शिष्ट परिपालनका पावन कार्य उनसे नहीं हो पाता है।

पाँचवां स्वप्न—स्वामिन् ! गाय कोमल घासोंको छोड़कर सूखे पत्तों को खा रही थी। यह क्या बात है ?

भव्य ! स्त्री पुरुष कलिकालमें जातीय शिष्टवृत्तिको छोड़कर विपरीत-वृत्तिको चाहने लगते हैं लोगोंमें स्वच्छन्दवृत्ति बढ़ती है, जातीय मर्यादामें रहना वे पसन्द नहीं करते। उनको उल्टी ही उल्टी बातें सूझने लगती हैं।

छठा स्वप्न—स्वामिन् ! पत्तोंसे विरहित वृक्षोंको मैंने देखा। इसका क्या फल होना चाहिये ?

कलिकालमें लोग लोक-लज्जाका भी परित्याग करेंगे। उनको अपने शरीरकी शोभाकी भी चिन्ता न रहेगी। अपने आपको भी वे भूल जायेंगे। चारों तरफ यही हालत देखनेमें आयगी।

सातवां स्वप्न—स्वामिन् ! इस पृथ्वीपर जहां देखता हूं वहां सूखे पत्ते ही पड़े हुए हैं ! इसका क्या फल है।

भव्य ! आगेके लोगोंको उपभोग, परिभोगके लिए रसहीन पदार्थ ही मिलेंगे। भोगोपभोगके लिए भी सरस पदार्थोंको पानेकी उनको नसीहत नहीं है। प्रकृतिमें भी उसी प्रकारका परिवर्तन होता है।

आठवां स्वप्न—एक पागल अनेक वस्त्राभरणोंसे सज धजकर आ रहा था, भगवन् इसका क्या फल है ?

भव्य ! इसके फलसे लोग कलिकालमें सुन्दर-सुन्दर नामोंको छोड़कर इधर उधरके फालतू नामोंको पसन्द करेंगे। अर्थात् कलिकालमें लोग आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, भरत, नेमिनाथ, जीवन्धर, शान्तिनाथ आदि त्रिषष्ठिशलाका पुरुषोंके नामको पसन्द न कर अपने बच्चोंको प्यारसे कोई मंकीचन्द, डांकीनंद, धोंडीबा, दगडोबा, टामी, इत्यादि गंभीरहीन नामोंको रक्खेंगे। लोगोंकी प्रवृत्ति ही इसी प्रकार होगी।

नौवां स्वप्न—सोनेकी थालीमें एक कुत्ता खा रहा है। आश्चर्य है। इसका क्या फल होना चाहिए ? भरतेश्वरने विनयसे पूछा।

कलिकालमें दांभिक ढोंगी लोगोंकी ही अधिकतर प्रतिष्ठा होती है। सज्जन लोगोंका आदर जैसा चाहिए वैसा नहीं हो पाता है। लोग भी ढोंगको अधिक पसन्द करते हैं। सत्यवक्ता, स्पष्ट-वक्ताकी निन्दा करनेका प्रयत्न करेंगे।

दसवां स्वप्न—स्वामिन् ! उल्लू और कौवा वगैरह मिलकर एक शुभ्र हंसपक्षीको तंग कर रहे थे। उसे अनेक प्रकारसे कष्ट दे रहे थे ! इसका क्या फल होगा ?

भव्य ! आगे कलियुगमें राग रोषादिक कषायोंसे युक्त जन हंसयोगी वीतराग तपस्वीकी निन्दा करते हैं। उनके मार्गमें अनेक प्रकारके कष्ट उपस्थित करते हैं। तरह-तरहसे उनकी अवहेलना करते हैं।

ग्यारहवां स्वप्न—स्वामिन् ! हाथीकी अंबारीको घोड़ा लेकर जा रहा था यह क्या बात है ?

भव्य ! कलिकालके अन्तमें श्रेष्ठ जनोंके द्वारा धारण करने योग्य जैनधर्मको अधर्म ही धारण करेंगे।

बारहवां स्वप्न—एक छोटासा बैल अपनी झुण्डको छोड़कर घूरते हुए भाग रहा था। इसका क्या फल होना चाहिये।

भव्य ! कलिकालमें छोटी उमरमें ही दीक्षित होते हैं। अधिक वयमें दीक्षित बहुत कम मिलेंगे और संघमें रहनेकी भावना कम होगी।

तेरहवां स्वप्न—दो बैल एक साथ किसी जंगलमें चरते हुए देखा, इसका क्या फल है ?

कलिकालमें तपस्वीजन एक दो संख्यामें गिरिगुफाओं में देखनेमें आयेंगे। अर्थात् इनकी संख्या अधिक नहीं रहेगी।

चौदहवां स्वप्न—स्वामिन् ! अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त रत्न-राशिपर धूल जमकर यह मलिन हो गई है। इसका क्या फल है ?

भव्य ! कलिकालमें तपस्वियोंको रस, बल, बुद्धि आदिक ऋद्धियोंका उदय नहीं होगा।

पन्द्रहवां स्वप्न—धवल प्रकाशके चन्द्रमाको परिवेषने घेर लिया था, इसे मैंने देखा। इसका क्या फल होना चाहिये।

भव्य ! उस समय मुनियोंको अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी।

सोलहवां स्वप्न—प्रभो ! अन्तिम स्वप्नमें मैंने देखा कि सूर्यको एकदम बादलने व्याप लिया था। वह एकदम उस बादलमें छिप गया था। इसका क्या फल है ? कृपा कर कहियेगा।

भव्य ! कलिकालमें यहांपर किसीको भी केवलज्ञानकी प्राप्ति नहीं होगी। कैवल्य भी न होगा। साथमें भगवन्तने यह भी फरमाया कि वह कलि नामक पंचम काल २१ हजार वर्षका रहेगा। उसके समाप्त होनेके बाद पुनः २१ हजार वर्षका दूसरा काल आयगा। उसमें तो धर्म कर्मका नाम भी सुननेको नहीं मिलेगा। तदनन्तर प्रलय होगा। प्रलयके बाद

पुनः धर्म कर्मकी उत्पत्ति वृद्धि होगी। पुनः वृद्धि हानि इस प्रकारकी परम्परामें यह संसारका चक्र चलता ही रहेगा।

स्वप्नोंके फलको सुनकर भरतजी कहने लगे कि प्रभो! ये दुःस्वप्न तो जरूर हैं। परन्तु मेरे लिए नहीं। आगेके लोगोंके लिए। इन स्वप्नोंके देखनेसे मुझे आपके चरणोंका दर्शन मिला, इसलिए मेरे लिए तो ये सुस्वप्न ही हैं। इसलिए हे अस्वप्नप्रतिबंध भगवन्! आपकी जयजयकार हो।

प्रभो! आपके चरणोंमें एक निवेदन और है। मैं इस कैलास पर्वत-पर जिनमन्दिरोंका निर्माण कराना चाहता हूँ। उसके लिए आज्ञा मिलनी चाहिए।

तदनन्तर भरतेश्वर भगवंतकी स्तुति कर ब्राह्मणोंके साथ भगवंतके चरणोंमें नमस्कार कर वहाँसे निकले, साथमें वहाँ उपस्थित तपस्वियोंकी भी वन्दना की। समवसरणसे हर्षपूर्वक कैलास पर्वतपर आये। और जिन-मन्दिर निर्माणके लिए योग्य स्थान देखकर वहाँपर जिनमन्दिर निर्माणके लिए भद्रमुखको कहा गया। इधर उधर नहीं, सुन्दर, पंक्तिबद्ध होकर ७२ जिनमन्दिरोंका निर्माण करो! फिर मैं प्रतिष्ठाकार्यको स्वयं सम्पन्न करूँगा, यह कहकर भद्रमुखकी नियुक्ति उस काममें की।

उसी समय तेजोराशिनामक अध्यात्मयोगी उस मार्गसे आ रहे थे वे आहारके लिए भूप्रदेशमें गये थे। आते हुए कैलास पर्वतपर सम्राट्का और उनका मिलाप हुआ। तेजोराशिमुनि सामान्य नहीं हैं। नामके समान ही प्रतिभासम्पन्न हैं। भगवंतके गणधर हैं। मनःपर्यय ज्ञानधारी हैं। अणिमादि सिद्धियोंके द्वारा युक्त हैं।

विप्र समूहके साथ सम्राट्ने उन महात्मा योगीके चरणोंमें नमोस्तु किया। उस कारण योगीने भी आशीर्वाद दिया।

योगीने कहा कि राजन्! तुम यहाँपर नूतन जिनमंदिरोंका निर्माण करा रहे हो यह सुन्दर बात है। तुम्हारे लिए एक और परहितका कार्य कहूँगा। उसे भी तुम करो।

गुरुवर! आज्ञा दीजिए, जरूर करूँगा। इस प्रकार विनयसे भरतेश्वरने कहा।

भरत! तुम्हारे रानियोंको भगवंतके दर्शनकी बड़ी ही उत्कट इच्छा है। परन्तु लोगोंकी भीड़ अगणित रूपसे होनेसे उनको अनुकूलता ही नहीं मिलती है। इसलिए उन लोगोंने भगवंतके दर्शन होनेतक एक-एक

व्रतको मनमें ले रक्खा है। जब कभी भी हो अरहंतके दर्शन होनेके बाद हम अमुक रसका ग्रहण करेंगी। तब तक नहीं लेंगी, यदि दर्शन नहीं हुआ तो आजन्म इन रसोंका त्याग रहेगा। इस प्रकार उन रानियोंने एक-एक रसका त्याग कर रक्खा है। भरत ! यह तुमको भी मालूम नहीं, दूसरोंको भी मालूम नहीं है, केवल वे स्वानुवेदसे गूढ व्रतको धारण कर रही हैं। आजतक उन व्रतोंका पालन करती हुई आई हैं। अब उन व्रतोंकी सिद्धि होनी चाहिये। सुनो ! इन मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा तुम करवाओगे ! निर्वाण कल्याणके रोज समवसरणमें स्थित सर्व सज्जन अन्य भूमिपर जायेंगे केवल कुछ वृद्ध संयमी भगवंतके पास रहेंगे। उस समय लाकर तुम्हारी रानियोंको भगवंतका दर्शन कराओ। यह अच्छा मौका है। समझे ? इतना कहकर वे योगिराज आगे चले गये।

भरतेश्वरको अपनी रानियोंकी मनकी बातको समझकर एवं उनके उच्च विचारको समझकर मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और निश्चय किया कि इस प्रतिष्ठाके समय मेरी बहिनोंके साथ सभी रानियोंको भगवंतका दर्शन करवाऊंगा। उसी समय भरतेश्वरने अपनी पुत्रियोंको तथा बहिनों को पत्र लिखकर सब समाचार दिया। और बहुत आनन्दके साथ ब्राह्मणों के हाथ भेज दिया।

भरतेश्वरकी वृत्तिको देखकर वे विप्रजन भी बहुत प्रसन्न हुए। और उसी आनन्दके भरमें प्रशंसा करने लगे कि स्वामिन् ! आप आप ही बहिनों, आपकी पुत्रियों, पुत्रों व रानियोंके जीवनको पवित्र करनेके लिए ही उत्पन्न हुए हैं। इतना ही क्यों, लोकमें समस्त जीवोंके उद्धारके लिए ही आपका जन्म हुआ है। आपको भोगोंमें आसक्ति नहीं है। धर्मयोगमें आसक्ति है। इसलिए आपको संसारी कैसे कह सकते हैं ? आपको गृहतपो भोगी कहना उचित होगा। अर्थात् आप घरपर रहनेपर भी तपस्वी हैं। परमात्मन् ! हे जिन सिद्ध ! भरतराजेन्द्र लोकमें क्या गृहस्थ है ? नहीं नहीं ! वह मोक्षमार्गस्थ है। इस प्रकार सुन्दर दाढ़ी कुंडल व मस्तकको हिलाते हुए उन विप्रोंने भरतेश्वरकी प्रशंसा की।

बहुत आनन्दके साथ बातचीत करते हुए वे सब मिलकर अयोध्या नगरमें आये। नगर प्रवेश करनेके बाद उन विप्रोंने अपने-अपने स्थानमें भेजकर भरतेश्वर महलकी ओर गये व वहां सुखसे रहने लगे। इतनेमें चक्रवर्तीने जो दुःस्वप्नोंको देखा वह समाचार सर्वत्र व्याप्त हो गया। समस्त देशके राजा सम्राट्से मिलनेके लिए आने लगे।

आश्चर्य है। एक गरीब अगर प्राणांतिक बीमारीसे भी पड़े तो भी लोग उसकी कुछ परवाह नहीं कर उपेक्षा करते हैं। परन्तु श्रीमंतने यदि एक स्वप्नको भी देखा तो लोक आकर उपचार करता है। यह लोककी रीति है। इसलिए कहनेकी परिपाटी है कि गरीबकी बीमारी घरभर, और श्रीमंतकी बीमारी गाँवभर (लोकभर) सो भरतेश्वरको स्वप्न पड़ते ही बड़े-बड़े राजा महाराजा उनसे मिलने आये हैं।

मगध, वरतनु, हिमवंत देव आदि लेकर प्रमुख व्यंतर आये। एवं खेचर राजा भी आये। और रोज कोई न कोई देशके राजा आ रहे हैं। और भरतजीके चरणोंमें अनेक वस्त्र रत्नादिक भेंट रखकर उनका कुशल वृत्त पूछा जाता है। इस प्रकार वहाँपर प्रतिदिन एक उत्सव ही चालू है। प्रत्येक देशके राजा आते हैं और भेंट समर्पण करता है व भरतेश्वरके प्रति शुभकामना प्रकट करता है। कोई कहते हैं कि हम लोग जो ब्राह्मणोंको दान देते हैं, बहुत वैभवसे जिनपूजा करते हैं, योगियोंकी भक्तिसे उपासना करते हैं, इन सबका फल सम्राट्को रहे। अनेक राजा गण स्वप्न-दोषके परिहारार्थ कहीं शान्तिक, आराधना, होम हवनादिक करा रहे हैं। इस प्रकार अनेक तरहसे राजा सम्राट्के प्रति उपचार कर रहे हैं। परन्तु सम्राट् हाँ, ना, कुछ भी न कहकर सबके व्यवहारको उदासीन भावसे देखते जा रहे हैं। कारण वे इसे भी एक स्वप्न ही समझ रहे हैं।

भरतेश्वर सोचते हैं कि मैं बिलकुल कुशल हूँ। आत्माको कोई अस्वस्थता ही नहीं है। आत्मयोग ही उसके लिए हर तरहसे संरक्षण करनेवाला मन्त्र है। केवल ये राजा विनय करते हैं, उसका इन्कार नहीं करना चाहिए। इस भावसे मैं साक्षिरूपमें उसे स्वीकार करता हूँ। सबके द्वारा किये गये आदरको ग्रहण कर उनको उससे भी दुगुना सत्कार कर भरतेश्वरने आदरके साथ भेजा। सब लोग अपने-अपने स्थानोंमें गये।

एक दिनकी बात है। बुद्धिसागर मंत्री अपने सहोदर भाईको लेकर भरतेश्वरके पास आये। और उन्होंने एक मातुलुंगके फलको भेंटमें रखकर नमस्कार किया व सम्राट्से कहा कि प्रभो! आपसे एक प्रार्थना है।

स्वामिन्! देवलोक, नागलोक व नगरलोकमें आप सरीखे कोई राजा नहीं है। यह सब दुनियाको मालूम है। और केवल दो घटिकाके तपमें कर्मोंको आप जलायेंगे यह भी भगवंतने कहा था, लोग इसे जानते हैं।

आप राजाओंमें राजा हैं योगियोंमें योगी हैं, स्त्रियोंके लिए डबल कामदेव हैं, सूईके नौक जितना भी दोष आपमें नहीं है। इसलिए आप प्रौढ़ राजा हैं।

मैं प्रशंसा कर रहा हूं मुझे स्तुतिपाठक न समझें। परन्तु आपको देखकर प्रसन्न न होनेवाले लोकमें कौन हैं ? विशेष क्या कहूं ! स्वामिन् ! आपने ही तीन लोकमें मस्तकको अपने गुणोंसे आकृष्ट कर झुलाया। सुविवेकी राजाकी दरबार पहिले जन्ममें जिन्होंने बहुत पुण्यका सम्पादन किया है उन्हींको प्राप्त हो सकती है। यह बात बिलकुल सत्य है। किंबहुना, आपकी सेवासे मैंने प्रत्यक्ष स्वर्गसुखका ही अनुभव किया। आपको स्मरण करने मात्रसे, देखने मात्रसे, सबको ज्ञानका उदय होता है। फिर आपको मंत्रीकी क्या आवश्यकता है, केवल उपचारके लिए मुझे मुख्यमंत्री बनाकर आजतक चलाया। स्वामिन् ! आजतक एक परमाणुमात्र भी मेरी इज्जत शानको कम न कर लोकमें वाह् वाहवा हो उस रूपसे मुझे चलाया। मैं तृप्त हो गया हूं ! नाथ ! आज एक विचारको लेकर आया हूं उसे सुननेकी कृपा करें।

नाथ ! मैं चिरकालसे इस संसारचक्रमें परिभ्रमण कर रहा हूं, अब मेरी उमर काफी हो चुकी है, मर्यादितीत बुढापा आ गई है। अब मेरा देह बहुत समय तक नहीं रह सकता है। कैसा भी यह देह नाश शील है। इसलिए अन्तिम समयमें उसका उपयोग तपमें कर बादमें मुक्तिसाधन करूंगा। इसलिए मुझे आज्ञा दीजिये।

यह कहकर बुद्धिसागर भरतेश्वरके चरणोंमें साष्टांग लेटे। भरतेश्वर का हृदय धक्-धक् करने लगा। उनको मन्त्रीका वियोग असह्य हुआ। उन्होने मंत्रीसे कहा कि बुद्धिसागर ! उठो, मैं क्या कहता हूं सुनो।

तब बुद्धिसागरने कहा कि आप दीक्षाके लिए जानेकी अनुमति प्रदान करें तो मैं उठता हूं। तब भरतेश्वरने कहा कि लेटे हुए मनुष्य को जानेके लिए कैसे कहा जा सकता है। उठे बिना वह जा कैसे सकता है ? तब बुद्धिसागर उठ खड़े हुए।

भरतेश्वरने कहा मंत्री ! अन्तिम समयमें तपश्चर्या करना यह उचित ही है। परन्तु कुछ समयके बाद जाओ। अभी नहीं जाना।

तब बुद्धिसागरने कहा कि स्वामिन् ! बोल, चाल व इन्द्रियोंमें शक्ति रहने तक ही मैं कर्मोंको नाश करना चाहता हूं। इसलिए अभी जानेकी अनुमति मिलनी चाहिए।

भरतेश्वरने पुनः कहा कि मंत्री ! विशेष नहीं तो कैलासमें निर्मित जिनमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा होने तक तुम ठहरो। समारंभको देखनेके बाद दीक्षित हो जाओ। मैं फिर तुमको नहीं रोकूंगा।

बुद्धिसागर मन्त्रीने कहा कि स्वामिन् ! व्यर्थ ही मेरी आशा क्यों करते हैं, क्षमा कीजिये। मुझे जाना है, भेज दीजिये। यह कहकर भरतेश्वरके चरणोंमें पुनः अपना मस्तक रक्खा। भरतेश्वर समझ गये कि अब यह गये बिना न रहेगा।

मंत्री ! तुम्हारे तंत्रको मैं समझ गया। अब उठो। आज तक तुम मुझे नमस्कार करते थे। अब अपने चरणोंमें मुझसे नमस्कार कराना चाहते हो। मैं समझ गया। अच्छा तुम्हारी जैसी मर्जी है वैसा ही होने दो। इस प्रकार कहकर भरतेश्वरने उसे उठाकर दुःखके साथ आलिंगन दिया व उसे जानेकी अनुमति दी। तब बुद्धिसागरने अपने पट्टमुद्रिकाको हाथसे निकालकर सम्राट्को सौंपते हुए कहा कि मेरे सहोदरको दयार्द्र दृष्टिसे संरक्षण दीजिये। मुद्रिकाको जब उन्होंने निकाल दिया उस समय ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद बुद्धिसागर रागांकुरको ही निकाल कर दे रहा हो।

सम्राट्की आँखोंसे आँसू उमड़ने लगे। बुद्धिसागर मन्त्रीके मित्र सहोदर वगैरह चिन्तामग्न हो गये। परन्तु बुद्धिसागरके हृदयमें यथार्थ वैराग्य होनेसे उन्होंने किसीकी तरफ नहीं देखा। फिर एक बार हाथ जोड़कर उस सभासे बुद्धिसागर चुपचापके दीक्षाके लिए निकल गया।

भरतेश्वर अपने मनको धीरज बांधकर बुद्धिसागरके भाईको समझाने लगे कि विप्रवर ! तुम दुःख मत करो। तुम्हारे भाईको अब बुढ़ापेमें आत्मसिद्धि कर लेने दो। व्यर्थ चिन्ता करनेसे क्या प्रयोजन है ? जब तुम्हारा भाई योगके लिए चला गया तो अब हमारे लिए बुद्धिसागर तुम ही हो। यह कहकर अनुरागके साथ सम्राट्ने उस पट्टमुद्रिकाको उसे धारण कराया। साथमें अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे उसका सत्कार किया एवं कहा गया कि अब समस्त पृथ्वीका भार तुमपर ही है इत्यादि कहकर बहुत संतोषके साथ उसे वहाँसे भेजा।

अनेक प्रकारके मंगल द्रव्य, हाथी, घोड़ा, ध्वजपताका व मंगल वाद्योंके साथ मित्रगण नवीन मन्त्रीको जिनमन्दिरमें ले गये। वहाँपर दर्शन-पूजन होनेके बाद पुनः सम्राट्के पास आकर उनके चरणोंमें भक्ति-से अनेक भेंट रखकर नमस्कार किया। इसी प्रकार युवराजके चरणोंमें भी भेंट रखकर नमस्कार किया। सर्व सभासदोंने जयजयकार किया। बुद्धिसागर मन्त्री तदनन्तर महाजनोंके साथ मिलकर अपने घरकी ओर चला गया।

सब लोगोंके जानेके बाद सम्राट् अपने महलमें सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

पाठक ! भरतेश्वरके जीवनके वैचित्र्यको देखते होंगे ! कभी चिन्ता व कभी आनन्द, इस प्रकार विविध प्रसंग उनके जीवनमें देखनेमें आते हैं। उन्होंने ब्राह्मणोंका निर्माण किया तो उससे भविष्यमें होनेवाली दुर्दशाको सुनकर वे कुछ खिन्न हुये थे। तदनन्तर सोलह स्वप्नोंके फलको सुनकर थोड़ा दुःख हुआ। परन्तु उसमें भी उन्होंने अपने हृदयको शान्त कर लिया। भगवन्तके दर्शन मिलनेके बाद दुःस्वप्न भी सुस्वप्न हो जाते हैं। भरतेश्वरको दुःस्वप्न दर्शन हुआ, सो लोकके समस्त राजा अनेक शान्तिक, आराधना, होम-हवनादिक करते हैं। भरतेश्वर उनको भी उदासीन भावसे ही देखते हैं। उनकी धारणा है कि यह दुनिया ही स्वप्नमय है। मैंने सोते हुए सोलह स्वप्न देखे परन्तु जागता हुआ मनुष्य रोजमर्रा हजारों स्वप्नोंको देखता है, उन सबको सत्य समझता है, इसलिए संसारमें परिभ्रमण करता है। यदि उनको स्वप्न ही समझें तो दीर्घसंसारी कभी नहीं बन सकता है।

इसलिए भरतेश्वर सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! प्रतिनित्य समय समयपर प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख, मित्र-शत्रु, धन व दारिद्र्य यह सब स्वप्न ही हैं इस भावनाको जागृत कर मेरे हृदयमें सदा बने रहो। हे चिदम्बर-पुरुष ! तुम इसी भावनासे सुखासीन हुए हो।

हे सिद्धात्मन् ! आप स्वच्छ चाँदनीकी मूर्तिके समान उज्ज्वल हो। सच्चिदानन्द हो। भव्योंके आराध्य देव हो। इसलिए मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वरको ऐसे समयमें कोई भी दुःख या सुखसे जन्य क्षोभ उत्पन्न नहीं होता है।

इति षोडश-स्वप्न-संधिः

—oo—

जिनवास-निमित-संधिः

कैलास पर्वतपर सम्राट्की आज्ञानुसार ७२ जिनमन्दिरोंका निर्माण हुआ। भद्रमुखने अपने कार्यकी पूर्ति कर सम्राट्की सेवामें प्रार्थना की कि स्वामिन्! आपकी इच्छानुसार तमाम काम हो चुका है। भरतजी को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। मंगलकार्य सुखरूपसे पूर्ण हुआ, यह सुनकर किसे हर्ष नहीं होगा?

भरतेश्वरने भद्रमुखको हर्षपूर्वक बुलाकर उसका अनेक प्रकारके रत्न-वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया। उपस्थित राजा भी प्रसन्न हुए। इसी प्रकार युवराजने भी अनेक उत्तम पदार्थ उसे उपहारमें दिये। इसी प्रकार युवराजके सभी सहोदर व उपस्थित सभी राजाओंने उस सुरशिल्पीका सत्कार किया। अर्हंतके मन्दिरकी पूर्तिके समाचारको सुनकर जो दान नहीं देता है वह जिनभक्त जैन कैसे हो सकता है? जिनके हृदयमें ऐसे अवसरोंमें हर्ष नहीं होता है वह जैन कैसे कहला सकता है? उस सुरशिल्पको पहिले ही सम्पत्तिको कोई कमी नहीं है, फिर भी उन्होंने अपनी जिनभक्तिके द्योतनमें जो उपचार किया उससे भी वह प्रसन्न होकर चला गया।

अब भरतेश्वर पंचकल्याणिक पूजाकी तैयारीमें लग गये। योग्य मुहूर्तको देखकर पूजा प्रारम्भ करानेका निश्चय किया गया और अपने मन्त्री मित्रोंके साथ युवराजको भेजा और यह कहा कि आप लोग जाकर सर्व विधि विधानको प्रारम्भ कराएँ। मैं मुखवस्त्रका जिस दिन उद्घाटन कराना हो, उस दिन आता हूँ।

इस प्रकार पूजा प्रारम्भ होनेके बाद भरतेश्वर महलमें इस बातकी प्रतीक्षामें थे कि कन्यायें व बहिनें अभी तक क्यों नहीं आ रही हैं? इतनेमें बहुत वैभवके साथ भरतेश्वरकी पुत्रियाँ अपने-अपने पतिके साथ वहाँपर आकर दाखिल हुईं।

कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, मनुदेवी आदि सभी कन्यायें आईं व पिताके चरणोंमें नतमस्तक हुईं। माताओंके साथ युक्त होकर जब वे पुत्रियां भरतेश्वरके चरणोंमें नमस्कार करने लगीं, तब उन्होंने अनेक रूपोंको धारण पुत्रियोंको आलिंगन दिया। अपनी गोदपर बैठाकर उनके कुशल वृत्तको पूछ रहे थे व कह रहे थे कि बेटी! तुम लोग आ गई सो बहुत अच्छा हुआ। इतनेमें उन पुत्रियोंकी दासियाँ आकर उनके पतिगृहके

गंभीरपूर्ण व्यवहारका वर्णन करने लगीं। इसे सुनकर भरतेश्वरको और भी हर्ष हुआ। उन्होंने अपनी पत्नियोंको बुलाकर कहा कि सुनो! देवियों! सुनो, अपनी बेटियोंके सन्मार्गपूर्ण व्यवहारको सुनो। तब उन रानियोंने कहा कि आप ही सुनकर प्रसन्न हो जाइयेगा। हम लोग क्या सुनें?

बेटी! तुम बहुत थक गई हो! जाओ विश्रांति लो। इस प्रकार कहकर उन पुत्रियोंको रानियोंके साथ महलके अन्दर भेजा।

इतनेमें भाईके दीर्घराज्यको देखकर सन्तुष्ट होती हुई दो बहिनें वहींपर आईं। उन्होंने हर्ष पूर्वक आकर भाईको तिलक लगाया। भरतेश्वरने भी सहोदरियोंको देखकर हर्ष व्यक्त करते हुए आओ! सिंधुदेवी! गंगादेवी! आओ! बैठो! इस प्रकार कहकर योग्य मंगलासन दिलाया। दोनों बहिनें बैठ गईं।

बहिन! तुम लोगोंका देश बहुत दूर है। तुम लोग आईं, यह बहुत अच्छा हुआ। उत्तरमें उन दोनों देवियोंने कहा कि भाई! कहांका दूर है, तुम्हारा दर्शन मिला, यह सार है, दूर कहांका आया?

इतनेमें रानियोंको दोनों देवियोंके आनेका समाचार मालूम हुआ। उन्होंने अन्दरसे बुला भेजा। भरतजीने अन्दर जानेके लिए दोनों बहिनोंको कहा। दोनों देवियां महलमें गईं। पट्टरानीको आगे कर सभी रानियां उनके स्वागतके लिए आईं। सामने उनको देखनेपर विनोदसे कुछ कहने लगीं।

वे रानियां कहने लगीं कि किस देशकी स्त्रियां हमारे महलमें घुसकर आ रही हैं? तब उत्तरमें उन दोनों देवियां कहने लगीं कि जिस महलमें हमारा जन्म हुआ है उसमें घुसकर रहनेवाली ये स्त्रियां कौन हैं? कहो तो सही! पट्टरानी और उन दोनों देवियोंने परस्पर प्रेमसे आलिंगन देकर वहीं बैठ गईं। बाकीकी स्त्रियोंके साथ इसी खुशीसे बातचीत करती हुई वहीं कुशल प्रश्नादिक कर रही हैं। उनका आज एक नवीन त्यौहार ही है।

जब स्त्रियां इधर आनन्द विनोदमें थीं, उधर भरतेश्वरके पास कनकराज, कांतिराज, शांतराज आदि जँवाई (जामातृ) आये; इसी प्रकार गंगादेव, सिंधुदेव भी भरतजीके पास आये। उन सबने भरतेश्वरके चरणोंमें अनेक प्रकारके रत्न-वस्त्रादिक भेंटमें रखकर नमस्कार किया।

गंगादेव और सिंधुदेवको योग्य आसन दिलाकर जंवाइयोंको सतरंजीपर बैठनेके लिए कहा। सब लोग आनन्दसे बैठ गये।

उनकी इच्छानुसार कुछ दिन भरतेश्वरने उनका सत्कार किया। तदनन्तर उन सबको साथमें लेकर भरतेश्वर कैलास पर्वतकी ओर आनेके लिए निकले। जाते समय न मालूम कितना मोह ? उन्होंने पौदनपुरसे बाहुबलिके पुत्र व बहुओंको भी बुलाया था। उनको लेकर वे बहुत आनंदके साथ कैलास पर्वतकी ओर चले गये। साथमें अपने सहोदरोंके पुत्र व उनकी बहू वगैरह सर्व परिवारको लेकर गये। समस्त कुटुम्ब परिवारको लेकर अनेक करोड़ वाद्योंके शब्दके साथ मुखवस्त्र उद्‌घाटन करनेके शुभ दिवसपर वहाँ पहुँचे।

वहाँपर सर्व विधानको पहिलेसे युवराजने कराया था। भरतेश्वरने जाकर मुखवस्त्रका उद्‌घाटन कराया। सर्व लोकने उस समय जय-जयकार किया। क्रमसे ७२ जिनमंदिरोंमें स्थित सुन्दर अर्हत्प्रतिमाओं को भरतेश्वरने भेंट रखकर अपने पुत्र व मित्रोंके साथ वंदना की। इसी प्रकार रानियोंने, बहिनोंने, पुत्रियोंने उन माणिक्य व सुवर्णकी प्रतिमाओंकी मणिरत्नादिक भेंटकर वंदना की। नवरत्नोंसे निर्मित जिनमंदिर हैं। सुवर्णसे निर्मित जिनप्रतिमायें हैं। इस प्रकार अत्यंत सुंदरतासे सिंहासनमें विराजमान अर्हत्प्रतिमायें शोभित हो रही हैं। वहाँका वर्णन क्या करें ?

पूजाविधान होनेके बाद नित्यनैमित्तिक पूजनके लिए योग्य शासन लिखकर व्यवस्था की गई। भरतेश्वर तेजोराशि मुनिराजने जिस समयकी सूचना दी थी उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऋषिवाक्यमें कोई अन्तर हो सकता है ? उस समय भगवंतके समवशरणसे देव, नर-नारी, तपस्वीजन वगैरह सर्व समुदाय गंगा नदीके तीरकी ओर जाने लगा है। भगवंतके निर्वाण कल्याणको देखनेकी उत्कट भावनासे निमिषमात्रमें उस पर्वतसे सर्वजन अन्य भूमिपर चले गये।

अब भगवंतके पास कोई नहीं है। कुछ वृद्ध तपस्वीजन मात्र मौजूद हैं। बाकीके सभी चले गये हैं। इसी अवसरको योग्य समझकर भरतजी अपनी बहिनोंको, पुत्रियोंको व रानियोंको व इतर जंवाई आदि परिवारको लेकर समवशरणमें घुस गये। द्वारपाल अनुमति देकर कुछ दूर सरक गये। भरतेश्वर समझ गये कि यह स्त्रियोंके उग्र व्रतका प्रताप है।

नवविध परकोटा, मानस्तंभ, खातिका, वेदिका, विविध वन इनके संबंधमें पहिले उन स्त्रियोंने शास्त्रोंसे श्रवण किया था। अब आँखोंसे देखकर उनके हर्षका पारावार नहीं रहा। बहुत आनन्दके साथ उन्हें देखती हुई बढ़ रही हैं।

समवशरणमें भरे हुए असंख्य जन गंगातटकी ओर चले गये थे। इसलिए समवशरण खाली हो गया था। अब भरतेश्वरके अगणित परिवारके साथ पहुँचनेसे वह समवशरण फिर भर गया। भरतेश्वरका परिवार क्या थोड़ा है? उनके परिवारमें देवोंका तिरस्कार करनेवाले सुन्दर पुरुष हैं। देवांगनाओंको भी नीचा दिखानेवाली स्त्रियाँ उनकी रानियाँ व पुत्रियाँ हैं। इन सबसे जब वह समवशरण पुनश्च भर गया तो उसमें एक नवीन शोभा आई।

स्वर्गके देव-देवांगनाओंके साथ मिलकर देवेंद्र समवशरणमें प्रवेश कर रहा हो उस प्रकार भरतेश्वर अपने सुंदर परिवारके साथ उस समवशरणमें प्रवेश कर रहे हैं।

दामाद, पुत्र व गंगादेव, सिंधुदेव इनको बाहर ही खड़ाकर कह दिया कि आप लोग बादमें दर्शन करो। पहिले स्त्रियोंको दर्शन करना चाहिये। इस विचारसे सब नारियोंको साथ लेकर सुविवेकी भरतेश्वर भगवंतके पास चले गये।

भगवंतके दर्शन होते ही हर्षसे सबने जयजयकार किया व उनके चरणोंमें उत्तम भेंटको अर्पण कर भरतेश्वरने साष्टांग नमोस्तु किया। दिव्यवाणीश! वृषभेश! परमात्मन्! आप सदा जयवंत रहें, इस प्रकार प्रार्थना की।

उसी समय उन देवियोंने भी भगवंतके चरणोंमें नमस्कार किया। उस समय भूमिपर पड़ी हुई वे देवियाँ नवीन लताओंके समान मालूम होती थीं। एकदम उठकर सब हाथ जोड़कर भगवंतकी शोभा देखने लगीं।

आनन्दबाष्प उमड़ रहा है। शरीरमें सारा रोमांच हो गया है। उनके हर्षातिरेकका क्या वर्णन करना, समझमें नहीं आता।

कमलको स्पर्श न कर चार अंगुल ऊपर निराधार खड़े हुए भगवंतको ये स्त्रियाँ झुक-झुककर देख रही हैं। आश्चर्यके साथ देखती हैं। प्रदक्षिणा देकर स्त्रियाँ समझ गईं कि चारों तरफ एकसा मुख है अब्बब्ब! यह क्या आश्चर्य है? क्या इसे ही चतुर्मुखब्रह्मा कहते हैं।

दीर्घकेशकी सुन्दरता, सूर्यचन्द्रमाके समूहको भी तिरस्कृत करनेवाली शरीरकांतिको देखकर वे स्त्रियाँ आनन्द मना रही हैं। भगवंतके भद्र आकारको एक दफे देखती हैं तो पद्म आसन मुद्राको एक दफे देखती हैं, इस प्रकार भगवंतके प्रति सद्भक्तिसे देखकर वे स्त्रियाँ आनन्द समुद्रमें ही डुबकी लगा रही हैं।

देवगण जिस समय वहाँसे चले गये थे उस समय उन्होंने अपनी विद्या से देवताओंको प्रेरित किया था कि वे भगवंतके ऊपर चामर बराबर डुलाते रहें। उन विद्या देवताओंके विद्याबलसे ही वहाँपर कोई न रहनेपर भी चामर तो डुल ही रहे थे। इसी प्रकार पुष्पवृष्टि हो रही थी। धवल छत्र विराज रहा था। भामंडलकी कांतिने सब दिशाको व्याप लिया था। इन सब बातोंको देखकर उन देवियोंको बड़ा ही हर्ष हो रहा है।

इन देवियोंने पहिले कभी समवशरणको नहीं देखा था, अर्हत्प्रतिमाओं-का ही दर्शन उनको मिला था। अब यहाँपर साक्षात् भगवंतका व समव-शरणका दर्शन होनेसे उनको अपार आनन्द हो रहा है। विशेष क्या? नरलोकके एक मनुष्यको सुरलोकमें ले जाकर छोड़े तो उसकी जैसी हालत होगी, उसी प्रकार इन स्त्रियोंकी हालत हो रही है।

भगवंतको उनके प्रति कोई ममकार नहीं है। परन्तु वे मात्र मोही होनेसे कहते हैं कि ये हमारे मामा हैं, हमारे दादा हैं हमारे पिता हैं, इत्यादि प्रकारसे अपना-अपना संबंध लगाकर विचार करते हैं, जिस प्रकार कि बच्चे चंद्रमाको देखकर अनेक प्रकारकी कल्पनायें करते हैं।

गंगादेवी व सिंधुदेवीको भी आज परम संतोष हुआ है। वे मनमें सोचने लगीं कि सम्राट्ने हमें अपनी बहिन बनाया, आज वह सार्थक हुआ। आज पिताश्रीके चरणोंका दर्शन मिला। हम लोग धन्य हुईं।

भगवंतके पास २० हजार केवली थे। उन सबकी वंदना उन स्त्रियोंने की। इसी बीचमें कच्छ केवली महाकच्छ केवलीका दर्शन विशेष भक्तिके साथ पट्टरानीने किया। इसे देखकर नमिराज विनमिराजकी पुत्रियोंने भी उन दोनों केवलियोंकी विशिष्ट भक्तिसे वंदना की। क्योंकि उनके वे दादा थे।

भुजबलि योगी व अनंतवीर्य योगीको भी बहुत देरतक वे स्त्रियाँ ढूंढने लगी थीं। परन्तु वे उस कैलास पर्वतपर नहीं थे, अन्य भूमिपर विहार कर रहे थे। इसी प्रकार रति अजिकाबाई, ब्राह्मी, इच्छा, महादेवी, सुंदरी अजिकाको भी देखनेकी इच्छा थी। परन्तु ये तपस्विनी भी उक्त समवशरणमें नहीं थीं। अन्यत्र विहार कर गई थीं। बाकीके सर्व तपो-निधियोंकी वंदना कर भगवंतके पास आईं। प्रार्थना करने लगीं कि भगवन्! आपके चरणोंके दर्शनतक हम लोगोंका एक गूढ़व्रत था, उसकी पूर्ति आज हुई।

विस्तारके साथ पूजा करें तो कहीं देवसमूह न आ जाय, इस भयसे समस्त क्रियोंसे संक्षेपसे ही भरतेश्वरने पूजा कराई।

तदनन्तर भगवंतसे भरतेश्वरने प्रश्न किया कि स्वामिन्! हमारी स्त्रियोंमें कितनी अभव्य हैं और कितनी भव्य हैं, कहियेगा। उत्तरमें भगवंतने फरमाया कि भव्य! तुम्हारी स्त्रियोंमें कोई भी अभव्य नहीं है सभी देवियाँ भव्य ही हैं। वे क्रमशः अव्यय सिद्धिको प्राप्त करेंगी। चिद्द्रव्यका उन्हें परिबद्ध है। यह जन्म उनका स्त्रीजन्म है। आगे उनको अब स्त्री-जन्म नहीं है। आगे पुरुषलिंगको पाकर वे सभी मुक्ति प्राप्त करेंगी। तुम्हारी पुत्रियाँ, बहुएँ, पुत्र व जँवाई सभी तुम्हारे साथ संबंधित होनेसे पुण्यशाली हैं, भव्य हैं, अभव्य नहीं हैं।

भरतेश्वरको इसे सुनकर आनन्द हुआ। स्त्रियोंको भी परम हर्ष हुआ। अब इस स्थानमें अधिक समय ठहरना उचित नहीं समझकर उन स्त्रियोंको रवाना किया और बाहर खड़े हुए गंगादेव, सिंधुदेव, दामाद, पुत्र वगैरहको बुलवाया। सबने भगवंतका दर्शन किया, स्तुति की, भक्ति की, और अपनेको कृतकृत्य माना।

भरतेश्वरने उनको कहा कि पुनः कभी आकर आनंदसे पूजा करो। आज सब स्त्रियोंको लेकर अयोध्यानगरकी ओर जाओ। उन सबने भगवंतके चरणोंमें नमस्कार कर वहाँसे आगे प्रस्थान किया और सर्व स्त्रियोंके साथ विमानारूढ़ होकर अयोध्याकी ओर चले गये। भरतेश्वर अभी समवशरणमें ही हैं।

समवशरणसे गंगातटपर गया हुआ भव्य महागण वापिस आया। 'कल्याण महोत्सव बहुत अच्छा हुआ!' यह प्रत्येकके मुखसे शब्द निकल रहा है। भरतेश्वरने पूछा कि कौनसा कल्याण हुआ? उत्तरमें देवगणोंने कहा कि गंगाके तटपर तीन देहको दूरकर भगवान् अनंतवीर्य केवली मुक्ति पधार गये। उनका निर्वाण कल्याण!

समवशरणमें दुःख पैदा नहीं हो सकता है इसलिए भरतेश्वरने सहन किया। नहीं तो छोटे भाईका सदाके लिए अभाव हो गया, वह सिद्ध-शिलाकी ओर चला गया, यह यदि अन्य भूमिपर सुनते तो भरतेश्वर एकदम मूर्च्छित हो जाते। भरतेश्वरने पुनः धैर्यके साथ प्रश्न किया उनकी गंधकुटीमें स्थित यशस्वती माता कहाँ चली गई? तब योगियोंने उत्तर दिया कि वह बाहुबलि केवलीकी गंधकुटीमें चली गई।

भरतेश्वरने भगवंतसे प्रश्न किया कि प्रभो! अनंतवीर्य योगी इतनी

शीघ्र क्यों मुक्ति चले गये ? भगवंतने उत्तर दिया कि भव्य ! इस कालमें वही अल्पायुषी है, जाने दो।

भगवंतके चरणोंमें नमस्कार कर भरतेश्वर मंत्री मित्रोंके साथ समवशरणसे बाहर निकले। इतनेमें सामनेसे पराक्रमी जयकुमार आया व कहने लगा कि स्वामिन् ! एक प्रार्थना है। भरतेश्वरने कहा कि कहो क्या बात है ?

जयकुमारने कहा कि स्वामिन् ! देवगणोंने मुझपर घोर उपसर्ग किया। मैंने प्रतिज्ञा की कि यदि यह उपसर्ग दूर हुआ तो मैं दीक्षा ले लूँगा। सो उपसर्ग दूर हुआ। अब दीक्षाके लिए अनुमति दीजिये। यह कहकर भरतेश्वरके चरणोंमें उसने मस्तक रखा। भरतेश्वरने कहा कि उठो, जब व्रत ही तुमने किया तो अब तुम्हें कौन रोक सकता है ? विजय, जयंत तुम्हारे दो भाई हैं। उनको तुम्हारे पदपर नियुक्त करूंगा।

जयकुमारने कहा कि स्वामिन् ! उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो ?

भरतेश्वरने कहा कि यदि उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो फिर जिनको भी नियुक्ति करोगे वही मेरा सेनापति होगा। जाओ, मैं इसे स्वीकार करता हूँ। जयकुमारने पुनः नम्रतासे कहा कि स्वामिन् ! बड़ा तो नहीं है ५-६ वर्षका पुत्र है। उसको आप रक्षा करें।

भरतेश्वरने कहा कि मेघेश ! चिंता मत करो। छोटा हुआ तो क्या हुआ ? यह बड़ा नहीं होगा ? जाओ, तुमसे भी अधिक चिन्तासे मैं उसका संरक्षण करूंगा।

जयकुमारको सन्तोष हुआ। मैं भगवंतका दर्शन करके एक दफे नगरको जाऊँगा। पुनः इसी देवगिरिपर आकर मुनि दीक्षासे दीक्षित हो जाऊँगा, यह कहकर जयकुमार उधर गया व चक्रवर्ती इधर रवाना हुए।

अयोध्या नगरमें पहुँचकर मंत्री मित्रोंको अपने-अपने स्थानपर भेजा ! महलमें रानियोंमें एक नवीन आनन्द ही आनन्द मच रहा है। जहाँ देखो वहाँ समवशरणकी ही चर्चा। एकान्तमें जिनेन्द्रके दर्शनका अवसर, जिनेन्द्रका दिव्य आकार, विशिष्ट शान्ति, कमलको स्पर्श न करते हुए स्थित भगवंत विशेषता, आदि बातोंको स्मरण करती हुई वे देवियाँ आनन्दित हो रही हैं। गंगादेवी और सिंधुदेवीको भी पूछा कि बहिन ! पिताजीको आप लोगोंने देखा ! उत्तरमें उन बहिनोंने कहा कि भाई !

तुम्हारी कृपासे आज हम लोगोंने मुक्तिका ही दर्शन किया। और क्या होना चाहिए ? हम लोगोंका पुण्य प्रबल है। आपके बहिन बनानेके कारण हमारा भाग्य उदय हुआ।

भरतेश्वरने कहा कि बहिन ! एक गर्भमें कष्ट सहन कर आनेकी क्या जरूरत है ? केवल स्नेहसे बहिन कहनेसे पर्याप्त नहीं है क्या ? उसके बाद अलग महल देकर उनको तीन महीने पर्यन्त वहींपर सुखसे रक्खा, पुनः और भी रखनेके लिए कह रहे थे। परन्तु गंगादेव और सिंधुदेव कहने लगे कि हम जायेंगे फिर भरतेश्वरने उनका रत्न, वस्त्रादिकसे यथेष्ट सत्कार किया। उनकी आँखोंकी तृप्ति हो उस प्रकार उत्तमोत्तम रत्नोंसे उनका आदर किया। साथमें बहिनोंको भी बस ! बस ! कहने तक रत्नादिक देकर उनकी बिदाई की। वे अपने नगरकी ओर चले गये। इसी प्रकार पुत्रियोंको भी यथेष्ट सत्कार कर उनको रवाना किया। पौदनपुरके पुत्र व बहुओंको भी अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया। उनकी भी विदाई की गई। बाकीके सहोदरोंके पुत्रोंको, बहुओंको योग्य बुद्धिवादके साथ उत्तम उपहार देकर रवाना किया। दूरके सभीको रवाना कर स्वतः रानियोंको, पुत्रोंको व बहुओंको सुख पहुँचाते हुए अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

आगेके प्रकरणमें पुत्रोंके दीक्षापूर्वक एकदम मोक्षबीज अंकुरित होगा। पाठकगण उसकी प्रतीक्षा करें। यहाँ यह अध्याय पूर्ण होता है।

प्रजा आनन्दमय जीवनको व्यतीत कर रही है। परिवार सुखी हैं, राजागण आनन्दित हो रहे हैं। भरतेश्वर अपने भोग व योग, दोनोंमें मग्न हैं। यहाँपर **योगविजय** नामक तीसरा कल्याण समाप्त होता है।

संसारमें भोगका त्याग करनेके लिए महर्षियोंने आदेश दिया है। परन्तु भरतेश्वर उस विशाल भोगमें मग्न हैं। अगणित सुखका अनुभव करते हैं। फिर भी योगविजयी कहलाते हैं, इसका क्या कारण है ? इसका एक मात्र कारण यही है कि योग हो या भोग, परन्तु किसी भी अवस्थामें भरतेश्वर अपनेको भूलते नहीं हैं। विवेकका परित्याग नहीं करते हैं। उनकी सतत भावना रहती है कि—

"हे परमात्मन् ! योग हो या भोग उन दोनोंमें यदि तुम्हारा संयोग हो तो मुक्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। हे गुरुनाथ ! आप महाभोगी हो, मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप भक्तोंके नाथ हैं, भव्योंके स्वामी हैं, विरक्तोंके अधिपति हैं, धीरोंके अधिनायक हैं, शक्तोंके नेता हैं, शांतोंके प्रभु हैं। आप मुझे सन्मति प्रदान करें।"

इसी भावनाका फल है कि वे महाभोगी होते हुए भी योगविजयी कहलाते हैं। अर्थात् भोगी होनेपर भी योगी है।

इति जिनवासनिमित संधिः

इति योगविजय नाम तृतीय कल्याणं समाप्तं।

—००—

मोक्षविजय

साधना संधिः

**परमपरंज्योति ! कोटिचंद्रादित्याकिरण ! सुज्ञानप्रकाश ! ।
सुरमुकुटमणिरंजितचरणाब्ज ! शरण श्रीप्रथमजिनेश ! ॥**

हे निरंजन सिद्ध ! आप साक्षात् मोक्षके कारण हैं। सर्वज्ञ हैं। मोक्षगामियोंके आराध्य हैं। मोक्षविजय हैं। त्रिलोक पश्य हैं। इसलिए मोक्षविजयके प्रारम्भमें मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

कैलासमें जिनेन्द्रमन्दिरोंका निर्माण, बहुत वैभवके साथ उनकी पूजा प्रतिष्ठा वगैरह होनेके बाद सम्राट् अपने हजारों पुत्रों एवं रानियोंके प्रेम सम्मेलनमें बहुत आनन्दके साथ अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं। प्रजाओंका पालन पुत्रवत् हो रहा है।

भरतेश्वरके पुत्र आपसमें प्रेमसे विनोद खेल कर रहे हैं। एक-एक जगह सौ-सौ पुत्र कहीं तालाबके किनारे, कहीं नदीके किनारे रेतपर, कहीं उद्यानमें खेलते हैं। उनकी शोभा अपूर्व है। चौदह-पन्द्रह, सोलह-सत्रह अठारह वर्षके वे हैं। ज्यादा उमर है नहीं। अभी विवाह नहीं हुआ है। उनको देखनेमें बड़ा आनन्द होता था।

रविकीर्तिराज रतिवीर्यराज, शत्रुवीर्यराज, दिविचन्द्रराज, महाजयराज, माधवचन्द्रराज, सुजयराज, अरिंजयराज, विजयराज, कान्तराज, अजितंजयराज, वीरंजयराज, गजसिंहराज आदि सौ पुत्र जो कि सौन्दर्यमें स्वर्गोंके देवोंको भी तिरस्कृत करनेवाले हैं। अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण हैं, अपने साधन-सामर्थ्यको बतलाने के लिये उस दिन तैयार हुये।

पिंछि, पुस्तक, खड़ावू, छोटीसी कठारी एवं अनेक अस्त्र और वीणा वगैरह सामग्रियोंको नौकर लोग लेकर साथमें आ रहे हैं। छोटे भाइयोंने बड़े भाइयोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन् ! यहाँपर नदीके किनारे रेत बहुत अच्छी है। जमीन भी साफ-सूफ है। यहींपर अपन साधन (कसरत कवायत) करें तो बहुत अच्छा होगा। तब बड़े भाइयोंने भी कहा कि

भाई ! तुम लोगोंका उत्साह आज इतना बढ़ा हुआ है तो हम लोग क्यों रोकें ? तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही होने दो। हम लोग भी आयेंगे। उसके बाद लंगोटी, बनियन वगैरह आवश्यक पोषाकको धारण कर वे तैयार हुये।

वे कुमार नैसर्गिक रूपसे ही सुन्दर हैं। इस समय जब वे कसरतकी पोशाकको धारण करने लगे तो और भी सुन्दर मालूम होने लगे। उनके शरीरकी सुगन्धपर गुंजायमान करते हुये भ्रमर आने लगे। उनके शब्दसे मालूम हो रहा था कि शायद वे इन कुमारोंकी स्तुति ही कर रहे हैं।

सिद्ध ही शरण है। जिनेन्द्र ही रक्षक है। निरंजनसिद्धं नमो इत्यादि शब्दोंको उच्चारण कर वे साधनाके लिये सन्नद्ध हुये। वे जिस समय एक-एक कूदकर उस रेतपर आये तो मालूम हो रहा था कि गरुड़ आकाशपर उड़कर नीचे आ रहा हो अथवा सुरलोकके अमरकुमार आकाशपर उड़कर भूमिपर आ रहे हों। जब वे एक दूसरे कुस्तीके लिये खड़े हुये तो शंका आ रही थी कि दो कामदेव ही तो नहीं खड़े हैं ? आपसमें विनोदके लिये दो पार्टी करके खेल रहे हैं। खड्गसे, लाठीसे, बर्छीसे अनेक प्रकारकी कलाओंका प्रदर्शन कर रहे हैं।

भाई ! देखो ! यह कहते हुये एक बालकने मस्तककी तरफ दिखाकर पैरके तरफ प्रहार किया। परन्तु जिसके प्रति प्रहार किया वह भी निपुण था। उसने यह कहते हुए कि भाई ! यह गलत है, उस प्रहारको पैरसे धक्का देकर दूर किया। वह गलत नहीं हो सकता है, यह कहकर पुनः मस्तकपर प्रहार किया तो हमारी बात गलत नहीं है, सही है, यह कहकर उस भाईने पुनः उसका प्रतिकार किया। प्रभो ! देखो यह घाव निश्चित है यह कहते हुए पुनः पैर व छातीपर प्रहार किया। यह उधर ही रहने दो, इधर जरूरत नहीं, यह कहकर भाईने उसका प्रतिकार किया।

इस प्रकार परस्पर अनेक प्रकारकी कुशलतासे एक दूसरेको चकित कर रहे थे। और एक भाईने अपने छोटे भाईके प्रति एक दंड प्रहार किया, तब उसने भी एक दंडा लेकर कहा कि भाई मुझे भी आज्ञा दो, तब बड़े भाईने कहा कि भाई तुम पराक्रमी हो। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति है मैं जानता हूँ। इस समय भक्तिको एक तरफ रखो। शक्तिको बताओ। छोटे भाईने कहा तो फिर तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन क्यों करूँ ? कृपा कर देखिये। यह कहकर भाईने एक प्रहार किया तो वह उसे दो जबाव देता था। इस प्रकार यह प्रहारसंख्या बढ़ते-बढ़ते कितनी हुई यह हम

नहीं कह सकते। ब्रह्मा ही जाने। परन्तु छोटा भाई बिलकुल घबराया नहीं। सब लोग शाबाश! शाबाश! यह कह रहे हैं। इसी प्रकार अनेक जोड़ियोंमें अनेक प्रकारके खेल चल रहे हैं। देखनेवाले वीर, विक्रम, धीर, साहसी, अभ्यासी, शूर, शाबाश इत्यादि उत्तेजनात्मक शब्द कह रहे हैं। कोई गुरु-नाथ शाबाश! गुरुनाथ वाहवा! वाहवा! हंसनाथ बस करो! कमाल किया इत्यादि प्रकारसे कह रहे हैं। इसी प्रकार जलक्रीड़ा, वनक्रीड़ा आदिमें भी विनोद हो रहा है। कोई धनुर्विद्यामें, कोई अस्त्र-शस्त्रमें, कोई शरीर साधनेमें अपनी-अपनी प्रवीणताको बतलाते हैं। आकाशके तरफ उड़नेकी अद्‌भुत् कलाको देखनेपर यह शंका होती है कि वे खेचर हैं या भूचर हैं? उनका लंघनचातुर्य अंगलघुताको देखनेपर वे देवकुमार हैं या राजकुमार हैं यह मालूम नहीं होता। छोटे भाइयोंके कलानैपुण्यको देखकर बड़े भाई आनन्दसे आलिंगन देते हैं। भिन्न-भिन्न माताओंके पुत्र हैं, इसका तो उनके हृदयमें विचार ही नहीं है। उनका आपसका प्रेम प्रशंसनीय है। कोई मल्लविद्यामें साधन कर रहे हैं, कोई कठारीका प्रयोग कर रहे हैं, कोई गदाविनोद कर रहे हैं, चन्द्रायुधसे कोई वज्रायुधसे, कोई रविहाससे, कोई चन्द्रहास साधन कर रहे हैं। सूखे पत्तोंके समान बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ कर फेंकते हैं। इनके बलका क्या वर्णन करना? अर्धचक्रवर्ती बड़े-बड़े पर्वतोंको उठाते हैं। परन्तु ये तो पूर्ण चक्रवर्तीके कुमार हैं। और तद्भवमोक्षगामी, वज्रमय देहको धारण करनेवाले हैं फिर वृक्षोंको उखाड़कर फेंका तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है?

इस प्रकार साधन करते हुये मध्याह्न काल भी बीत गया। सेवकोंने इन राजकुमारोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! आप लोगोंकी वीरतासे घबराकर सूर्य भागकर आकाशपर चढ़ गया है। तब सब लोगोंको मालूम हुआ बहुत देरी हो गई है। अब घर जाना चाहिये। शरीर सब धूल रेतसे भर गया है। पसीनेसे तर हो गया है। आनन्दसे एक दूसरेके समाचारको पूछने लगे हैं। हाथीके बच्चोंके समान उन कुमारोंने तालाबमें प्रवेश कर स्नान किया। तदनन्तर शृङ्गार कर जिनेन्द्रभगवंतकी स्तुति की। आत्म-ध्यान किया। तदनन्तर भोजन कर उसी नदीके पासमें स्थित जंगलमें चले गये। इस प्रकार नदीके किनारेपर चक्रवर्तीके पुत्रोंने अपने विद्या-साधनका प्रदर्शन किया।

महापुरुषोंकी लीला अपार है। भरतेश्वरके एकेक पुत्र एक-एक रत्न ही हैं। वे अनेक कलाओंमें निपुण हैं। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेके लिए भी संसारमें बड़े भाग्यकी जरूरत है। क्योंकि सातिशयपुण्यके बिना गुणवान्

सुपुत्र, सुशीलभार्या व इष्ट परिवार प्राप्त नहीं होते हैं। इसके लिए पूर्वोपार्जित पुण्यको आवश्यकता पड़ती है। भरतेश्वर सदा इस भावनामें रत रहते हैं—

"हे परमात्मन् ! आप चिन्तामणिके समान इच्छित फलको देनेवाले हैं। अत एव चिन्तारत्न हैं और रत्नाकर स्वामी हैं। मनोहर हैं और निश्चिन्त हैं। इसलिए मेरे हृदयमें सदा बने रहो !"

इसी पवित्र भावनाका फल है वे हर तरहसे सुखी हैं।

इति साधना-संधिः

—०—

विद्यागोष्ठि संधिः

वनकी शीतल छाया, शीतल पवनमें थोड़ीसी निद्रा लेकर सभी कुमार जिनसिद्ध, गुरु निरंजनसिद्ध कहते हुये उठे। तदनन्तर मुँह धोकर गुलाबजल, कपूर इत्यादिको छिड़कनेके बाद सेवकोंने तांबूलके करंडको आगे किया। तांबूल सेवन कर शीतल पवनमें बैठे हुये संगीत कलाके प्रदर्शनके लिए वे सन्नद्ध हुये। योग्य कालको जानकर भिन्न-भिन्न रागोंके स्वरोंको ध्यानमें लेकर गौड़ राग, श्रीराग, मालवराग इत्यादि रागसे आलाप करने लगे, उन्होंने अपने मस्तकपर जो पुष्प धारण किया है उसके सुगन्धके लिये, शरीरपर लगाये हुए श्रीगंधलेपनके लिये श्वासोच्छ्वास व मुखके सुगन्धके लिये वहां पर भ्रमरका समूह जो आ पड़ा उसने सुस्वरसे गायनमें श्रुति मिलाई।

सप्तस्वर, तीन ग्राम, चौसठ स्थानोंमें एकसौ आठ रागोंसे गायन करते हुये वे भरतशास्त्रमें भ्रमण करने लगे। भरत चक्रवर्तीके पुत्र यदि भरत शास्त्रमें प्रवीण न हों तो और कौन हो सकते हैं? एक कुमारने मेघरंजी रागको लेकर आलाप किया तो निदाघ (गरमी) काल होनेपर भी आकाशमें मेघाच्छादन होकर पानी बरसने लगा। तब उसने उस रागके आलापको बंद कर दिया। एक कुमारने पत्थरके ऊपर बैठकर गुण्डाक्री नामके रागका आलाप किया तो वह पत्थर पिघलकर पानी हो गया तो फिर कोमल हृदयका पिघलना क्या आश्चर्यकी बात है? एक कुमारके हिंदुवरालि नामके रागका आलाप किया वह जंगल एक ही क्षणमें पुष्प फल वगैरहसे भर गया। नागवराली रागके गानेपर उनके सामने अपने फणोंको खोलकर अनेक सर्प आकर गायनको सुनने लगे।

उसी समय एक कुमारने गरुडगांधारी नामके रागको लेकर गायन किया तो वे सर्प इधर-उधर भाग गये। और आकाशसे गृद्ध पक्षी आकर उस गायनको सुनने लगे। विशेष क्या? उस जंगलमें स्थित कोयल, तोता, मोर व अनेक प्राणी कान देकर स्तब्ध होकर उनके सुन्दर गायनको सुन रहे हैं। स्वरमंडलमें किन्नरियोंमें एवं विविध वीणामें अनेक प्रकारके रागालापको वे करने लगे। अत्यन्त सुन्दर उनका स्वर है, सुन्दर राग है, तान भी सुन्दर है, आलाप भी सुन्दर है और गानेवाले उससे भी बढ़कर सुन्दर हैं, उनकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता है।

केतारगौळमें, एवं उसरगौळमें आदि भगवंतके दीक्षाकल्याणको जिस क्रमसे किया उसका चातुर्यके साथ वर्णन किया। बोधनिधान भगवान् आदिनाथ स्वामीके केवलज्ञानके वर्णनको कांबोधि रागसे गायन किया। सुन्दर दिव्यध्वनिको मधुमाधवी रागसे वर्णन किया। शुद्ध रागोंसे जिनसिद्धोंकी स्तुति कर उनको निबद्ध कर, शुद्ध संकीर्ण रागके भेदको जाननेवाले उन कुमारोंने संकीर्णरागसे वृद्ध सम्पन्न योगियोंका वर्णन किया। छह द्रव्य, पंच शरीर, पंच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थ इनको वर्णन कर, इनमें एकमात्र आत्मतत्व ही उपादेय है। इस प्रकार चित्द्रव्यका बहुत खूबीके साथ वर्णन किया।

पाषाणमें सुवर्ण है, काष्ठमें अग्नि है, दूधमें घी है, इसी प्रकार इस शरीरमें आत्मा है। पाषाणमें कनक है यह बात सत्य है। परन्तु सर्व पाषाणमें कनक नहीं रहता है। सुवर्णपाषाणमें दिखनेवाली कान्ति वह सुवर्णका गुण है। काष्ठमें दिखनेवाला काठिन्यगुण अग्निका स्वरूप है। दूधमें दिखनेवाली मलाई वह घीका चिह्न है। इसी प्रकार इस शरीरमें जो चेतन स्वभाव और ज्ञान है वही आत्माका चिह्न है। फिर उसी पत्थरको शोधन करनेपर जिस प्रकार सुवर्णको पाते हैं, दूधको जमाकर मंथन करनेपर जिस प्रकार घीको पाते हैं, एवं काष्ठको जोरसे परस्पर घर्षण करनेपर अग्नि जिस प्रकार निकलती है उसी प्रकार यह शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूँ, यह समझ कर भेदविज्ञानका अभ्यास करें तो इस आत्माका परिज्ञान होता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके क्रमसे तद्रूप ही आत्माका अनुभव करे तो इस चिद्रूपका शीघ्र परिज्ञान हो सकता है।

वह आत्मा पानीसे भीग नहीं सकता है, अग्निसे जल नहीं सकता है, किसी भी खड्गकी तीक्ष्णधारको भी वह मिल नहीं सकता है। पानी,

अग्नि, आयुध, रोग वगैरहकी बाधायें शरीरको होती है। आत्माको नहीं। आत्मा शरीरमें आकाशके रूपमें पुरुषाकार होकर रहता है। यह शरीर नाशशील है। आत्मा अविनश्वर है। शरीर जड़ स्वरूप है, आत्मा चेतन स्वरूप है। शरीर भूमिके समान है। आत्मा आकाशके समान है। इस प्रकार आत्मा और शरीर परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं।

आकाश निराकार रूप है, आत्मा भी निराकार रूप है, आकाश पुरुषाकार रूपमें नहीं है और ज्ञान भी आकाशको नहीं है, इतना ही आकाश और आत्मामें भेद है।

अम्बरके समान इस आत्माको शरीर नहीं है। चिद्रूप इसका स्वरूप है और सुन्दर पुरुषाकार है। इस प्रकार तीन चिह्न होनेसे इस आत्माका नाम चिदम्बरपुरुष ऐसा पड़ गया। यह शरीर कारागृहवास है, यह आयुष्य हथकड़ी है। बुढ़ापा जन्म-मरण, आदि अनेक बाधायें वहाँ होने-वाले अनेक कष्ट हैं। अपने महत्वपूर्ण स्वरूपको न समझकर यह आत्मा व्यर्थ ही इस शरीरमें कष्ट उठा रहा है। यह बड़े दुःखकी बात है।

यह आत्मा तीन लोकके समान विशाल है और तीन लोकको अपने हाथसे उठानेके लिए समर्थ है। परन्तु कर्मवश होकर बीजमें छिपे हुए वृक्षके समान इस जड़ देहमें छिपा हुआ है। आश्चर्य है।

तीन लोकके अन्दर व बाहर यह जानता है व देखता है। और करोड़ सूर्य व चन्द्रमाके समान उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त है। परन्तु खेद है कि बादलसे ढके हुए सूर्यके समान कर्मके द्वारा ढका हुआ है।

यह आत्मा शरीरमें रहता है, परन्तु उसे कोई शरीर नहीं है। उसे कोई शरीर है तो ज्ञानरूपी ही शरीर है। शरीरमें रहते हुए शरीरको वह स्पर्श नहीं करता है। परन्तु शरीरमें वह सर्वांग व्याप्त है।

कमलनालमें जिस प्रकार उसका डोरा नीचेसे ऊपर तक बराबर भरा रहता है उसी प्रकार यह आत्मा इस शरीरमें पादांगुष्ठसे लेकर मस्तक-तक सर्वांगमें भरा हुआ है। कमलनालमें वह डोरा नीचेसे ऊपर तक रहता है। परन्तु मूल व पत्तेमें वह डोरा नहीं रहता है। इसी प्रकार यह आत्मा इस शरीरमें पादसे लेकर मस्तकतक सर्वांग व्याप्त रहता है। परन्तु नख और केशमें यह नहीं है।

शरीरके किसी भी प्रदेशमें स्पर्श किया या चिमटी ली तो झट मालूम होता व वेदना होती है अर्थात् वहाँ आत्मा मौजूद है, परन्तु नख केशके

स्पर्श करनेपर या चिमटी लेनेपर मालूम नहीं होता है व वेदना भी नहीं होती है अर्थात् उस अंशमें आत्मा नहीं है।

कमलनाल जैसा-जैसा बढ़ता जाता है उसी प्रकार अन्दरका डोरा भी बढ़ता ही रहता है। इसी प्रकार बाल्यकालसे जब यह शरीर बढ़कर जवानीमें आता है तो वह आत्मा भी उसी प्रमाण से बढ़ता है।

कमलनाल, गँदला कंटकयुक्त, होकर कठोर जरूर है। परन्तु अन्दरका वह डोरा मृदु निर्मल व सरल है। इसी प्रकार अत्यन्त अपवित्र रक्त, चर्म, मांस हड्डी आदिसे इस शरीरमें आत्मा रहनेपर भी वह स्वयं अत्यन्त पवित्र है।

बाहरका यह शरीर सप्तधातुमय है। इसके अन्दर और दो शरीर मौजूद हैं। उन्हें तैजस व कार्माण कहते हैं। इस प्रकार दो परकोटोंसे वेष्ठित कारागृहमें यह आत्मा निवास करता है।

सप्तधातुमय शरीरको औदारिकके नामसे कहते हैं। परन्तु अन्दरका शरीर कालकूट विषके समान भयंकर है। और वह अष्टकर्म स्वरूप है।

मनुष्य, पक्षि, पशु आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए इस आत्माको औदारिकशरीरकी प्राप्ति होती है। परन्तु तैजस कार्माणशरीर इस मरण होनेपर भी इसके साथ ही बराबर लग कर आते हैं।

इस पर्यायको छोड़कर अन्य पर्यायमें जन्म लेनेके पहिले विग्रहगतिमें जब यह आत्मा गमन करता है उस समय उसे तैजस कार्माण दोनों शरीर रहते हैं। परन्तु वहाँपर जन्म लेनेपर और एक शरीरकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार इस आत्माको इस संसारमें तीन शरीर हर समय रहते हैं।

धारण किये हुए इस शरीररूपी थैलेके अन्दर जबतक आत्मा रहता है तबतक उसका जीवन कहा जाता है। उस थैलेको छोड़ने पर मरणके नामसे कहते हैं और पुनः नवीन थैलेको धारण करने पर जन्मके नामसे कहा जाता है। यह जन्म-जीवन-मरण समस्या है।

एक घरको छोड़कर दूसरे घरपर जिस प्रकार यह मनुष्य जाता है, उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें यह आत्मा जाता है। जबतक यह शरीरको धारण करता है तबतक वह संसारी बना रहता है। शरीरके अभाव होनेपर उसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। शरीरके अभावको अवस्थाको ही मोक्ष कहते हैं।

किसी चीजके अन्दर भरे हुए हवाको दबा सकते हैं। परन्तु ऊपर कोई थैला वगैरह न हो तो उस हवाको दबा नहीं सकते हैं। उसी प्रकार शरीरके अन्दर जबतक यह आत्मा रहता है जबतक रोगादिक बाधायें हैं, जब यह शरीरको छोड़कर चला जाता है तो उसे कोई भी बाधा नहीं है।

अग्नि, हथकड़ी, पत्थर, अस्त्र, शस्त्रादिकके आघातसे यह औदारिक शरीर बिगड़ता है, और नष्ट भी होता। परन्तु तैजसकार्माणशरीर तो इनसे नष्ट नहीं होते हैं ये दो शरीर ध्यानाग्निसे ही जलते हैं।

तैजसकार्माणशरीरके नष्ट होनेपर ही वास्तवमें इस आत्माको मुक्ति होती है। तैजसकार्माणशरीरको नष्ट करनेके लिए श्रीजिनेन्द्र भक्ति ही यथार्थ युक्ति है। भक्ति दो प्रकारकी है। एक भेदभक्ति और दूसरी अभेदभक्ति। इस प्रकार भेदाभेदभक्तिके स्वरूपको बहुत आदरके साथ उन्होंने वर्णन किया।

समवशरणमें श्री जिनेन्द्रभगवंत हैं, अमृतलोक अर्थात् मोक्षमन्दिरमें श्रीसिद्धभगवंत विराजमान हैं, इस प्रकार क्रमसे उनको अलग रखकर ध्यान करना उसे भेदभक्ति कहते हैं।

उन जिनसिद्धोंको वहांसे निकालकर अपने आत्मामें ही उनका संयोजन करें और अपने आत्मामें या हृन्मन्दिरमें जिनसिद्ध विराजमान हैं इस प्रकार ध्यान करें उसे अभेदभक्ति कहते हैं। वह मुक्तिके लिए कारण है।

जिनेन्द्रभगवंतको अपनेसे अलग रखकर ध्यान करना यह भेदभक्ति है। अपनेमें रखकर ध्यान करना उसे अभेदभक्ति कहते हैं। यह जिन-शासन है, इस प्रकार बहुत भक्तिके साथ वर्णन किया।

भेदभक्तिको ध्यानके अभ्यासकालमें आदर करना चाहिए। जबतक इस आत्माको ध्यानकी सामर्थ्य प्राप्त नहीं होती है तबतक भेदभक्तिका अवलंबन जरूर करना चाहिए। तदनन्तर अभेदभक्तिका आश्रय करना चाहिए। अभेद भक्तिमें आत्माको स्थिर करना अमृतपद अर्थात् सिद्ध-स्थानके लिए कारण है।

आत्मा जिनेन्द्र और सिद्धके समान ही शुद्ध है, इस प्रकार प्रतिदिन अपने आत्माका ध्यान करना यह जिनसिद्धभक्ति है, तथा निश्चय रत्नत्रय है और मुक्तिके लिए साक्षात् कारण है।

शिला, कांसा, पीतल आदिके द्वारा जिनमुद्रको तैयार कराकर उनका समादर करना व उपासना करना उसे भेदभक्ति कहते हैं। अचल होकर अपने आत्माको ही जिन समझना उसे अभेदभक्ति कहते हैं।

चर्म, रक्त, मांससे युक्त अपवित्र गायके शरीरमें रहने पर भी दूध जिस प्रकार पवित्र है उसी प्रकार कर्म, कषाय व अनेक रोगादिक बाधाओं-युक्त शरीरमें रहनेपर भी यह आत्मा निर्मल है, पवित्र है।

अग्नि लकड़ीमें है, यदि वही अग्नि प्रज्वलित हुई तो उसी लकड़ीको जला देती है। अर्थात् जहाँ उस अग्निका निवास स्थान है उसे ही जला देती है। इसी प्रकार कठोरकर्मके बीच यह आत्मा रहता है। परन्तु ध्यान करने पर वह आत्मा उन कर्मोंको ही जला देता है।

दशवायुओंको वशमें कर, प्राभृतशास्त्रोंके रहस्यको समझकर, आँखों को मीचकर त्रिशरीरको अपनेसे भिन्न समझकर अन्दर देखें तो आत्मा सहज ही दीखने लगता है।

विशेष क्या कहें ? प्राणवायुको मस्तकपर चढ़ाकर वहींपर स्थित करें तो अन्दरका अन्धकार एकदम दूर होकर शुभ्र चाँदनीकी पुतलीके समान आत्मा दीखता है।

कोई कोई पवनाभ्यास (प्राणायाम) के बिना ही ध्यानको हस्तगत कर लेते हैं। और कोई-कोई दस वायुको अपने वशमें कर आत्मध्यान करते हैं। अब इस ध्यानकी सिद्धि होती है तो तैजसकार्माणशरीर झरने लगते हैं और चर्मका यह शरीर भी नष्ट होने लगता है। तदनन्तर यह निर्मलात्मा मुक्तिको प्राप्त करता है। इस प्रकार आत्मधर्मका उन्होंने भक्तिके साथ वर्णन किया।

इस प्रकारके आध्यात्मिक विवेचनको सुनकर वहाँ उपस्थित सभी कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुए। वाह ! वाह ! बहुत अच्छा हुआ। अब इस गायनमें बहुत समय व्यतीत हुआ। अब साहित्यकलाका आस्वादन लेवें इस प्रकार कहते हुए साहित्यकलाकी ओर विहार करनेकी इच्छा की।

व्याकरणमें, तर्कशास्त्रमें, न्यायभाषामें, प्राकृत, गीर्वाण और देशीय भाषामें उन्होंने अनेक विषयको लेकर संभाषण किया। रसशास्त्र, काव्य-शास्त्र, नाटक, अलंकार, छन्दःशास्त्र, कामशास्त्र, रसवाद, कन्यावाद आदि अनेक विषयोंमें विचार विनिमय किया।

एक शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। उन अनेक अर्थोंको एक शब्दका

संयोजन कर एक बार उच्चारण किए हुए शब्दको पुनरुच्चारण न कर नवीन-नवीन शब्दोंका प्रयोग किया गया और तत्वचर्चा की गई।

काव्यनिर्माणमें वर्णक, वस्तुक नियमको ध्यानमें रखकर कर्णरसामृत-के रूपमें सुन्दर कविताओंका निर्माण किया। विशेष क्या? गण, पद, सन्धि, समास आदि विषयोंमें निर्दोष लक्षणको ध्यानमें रखकर एक क्षण-में सौ श्लोक और एक घटिकामें एक सम्पूर्ण काव्यको ही वे लीलामात्रसे तैयार करते थे। लोग इसे सुनकर आश्चर्य करेंगे। परन्तु अन्तर्मुहूर्तमें द्वादशांग आगमको स्मरण कर, लिखकर पढ़नेवाले महायोगियोंके शिष्योंके लिए काव्य निर्माणकी यह सामर्थ्य क्या आश्चर्यजनक है?

उनके लिए अष्टावधानकी क्या बड़ी बात है? लक्षावधानकी दृष्टि ही उनका शरीर है, सुबुद्धि ही उनका मुख है। इस प्रकार बहुत ही चातुर्यसे उन्होंने काव्यका निर्माण किया। अड़तालीस कोस प्रमाण विस्तृत मैदानमें व्याप्त सेनामें जो कुछ भी चले उसको अपनी महलमें बैठकर जाननेवाले सम्राट्के गर्भमें आनेवाले इन पुत्रोंको लक्षावधान ज्ञान रहे इसमें आश्चर्यकी बात क्या है?

कंठमालाओंके समान नवीन नवीन कृतियोंको लिखने योग्य रूपसे वे रच रहे हैं। जिस समय काव्यपठन करते हैं, उस समय कंठका संकोच बिलकुल नहीं होता है।

एक कुमारने विनोदके लिए विषवाणीके द्वारा एक वृक्षका वर्णन किया तो वह वृक्ष एकदम सूख गया। पुनः अमृतवाणीसे वर्णन करनेपर फल-पुष्पसे अंकुरित हुआ।

एक कुमारने तोतेका वर्णन उग्रवाणीसे किया तो तोता कौंवड़ेके समान कर्कश स्वरसे बोलने लगा। पुनः शांतवाणीसे वर्णन करनेपर वह पुनः शान्त होकर मधुर शब्द करने लगा।

इस प्रकार अनेक प्रकारके विनोदसे बांझ वृक्षको फलसहित वृक्ष बना-कर फलसहित वृक्षको बांझ बनाकर अपने राजधर्मके शिक्षा, रक्षा आदि गुणोंको कविताओंके द्वारा प्रकट कर रहे थे।

कविता तो कल्पवृक्षके समान है। जो विद्वान् उसके रहस्यको जानते हैं वे सचमुचमें कल्पवृक्षके समान ही उसका उपयोग करते हैं। उसके रहस्यको उन राजकुमारोंने जान लिया था। अब उनकी बराबरी कौन कर सकते हैं?

एक कुमार बहानेके लिए एक कोरी पुस्तकको देखते हुए कविताका पठन कर रहा था एवं अपूर्व अर्थ का वर्णन कर रहा था। उसे सुनकर उपस्थित अन्य कुमार चकित हो रहे थे। तब उन लोगोंने यह पूछा कि वाह! बहुत अच्छी है, यह किसकी रचना है? तब उस कुमारने उत्तर दिया कि यह मैं नहीं जानता हूँ। तब अन्य कुमारोंने पुस्तकको छीनकर देखी तो वह खाली ही थी, तब उसकी विद्वत्ताको देखकर वे प्रसन्न हुए।

विशेष क्या? भरतपुत्र जो कुछ भी बोलते हैं वह आगम है, जरासे ओठको हिलाया तो भी उससे विचित्र अर्थ निकलता है। जो कुछ भी वे आरचण करते हैं वही पुराण बन जाता है। ऐसी अवस्थामें काव्यसागर-में वे गोता लगाने लगे उसका वर्णन क्या किया जा सकता है?

मुक्तक, कुलक इत्यादि काव्यमार्गसे भगवान् अर्हन्तका वर्णन कर मुक्तिगामी उन पुत्रोंने आत्मकलाका भेदाभेद भक्तिके मार्गसे वर्णन किया।

बाहरके विषयको जानना व्यवहार है, अन्तरंग विषयको अर्थात् अपने अन्दर जानना वह निश्चय है। बाहरकी सब चिन्ताओंको दूरकर अपने आत्माके स्वरूपका उन्होंने बहुत भक्तिसे वर्णन किया।

भूमिके अन्दर आकाशको लाकर गाड़नेके समान इस शरीरमें आत्मा भरा हुआ है। यह अत्यन्त आश्चर्य है।

यदि घरमें आग लगी तो घर जल जाता है, परन्तु घरके अन्दरका आकाश नहीं जलता है। इसी प्रकार रोग-शोकादिक सभी बाधायें इस शरीरको हैं, आत्माके लिए कोई कष्ट नहीं है।

अनेकवर्णके मेघोंके रहनेपर भी उनसे न मिलकर जिस प्रकार आकाश रहता है, उसी प्रकार रागद्वेषकामक्रोधादिक विकारोंके बीच आत्माके रहने पर भी वह स्वयं निर्मल है।

आत्माको पञ्चेन्द्रिय नहीं है, वह सर्वाङ्गसे सुखका अनुभव करता है। पंचवर्ण उसे नहीं है केवल उज्ज्वल प्रकाशमय है। यह आश्चर्य है। आत्माको कोई रस नहीं है, गंध नहीं है। शरीरमें रहनेपर भी वह शरीर-में मिला हुआ नहीं है। फिर वह कैसा है? अत्यन्त सुखी है, सुज्ञान व उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त होकर आकाशने ही मानो पुरुषरूपको धारण किया है। उस प्रकार है। आत्माको मन नहीं है, वचन नहीं, शरीर नहीं है। क्रोध, मोह, स्नेह, जन्म-मरण, रोग, बुढ़ापा आदि कोई आत्माके लिए नहीं है। ये तो शरीरके विकार हैं।

ज्ञानावरणादि आठ कर्म रूपी दो शत्रु (द्रव्य-भाव) अष्टगुण युक्त इस आत्माके गुणोंको आवृत कर कष्ट दे रहे हैं।

राग-द्वेष, मोह, ये तो भावकर्म हैं, अष्टकर्म द्रव्यकर्म है। चर्मका यह शरीर नोकर्म है। इस प्रकार ये तीन कर्मकाण्ड हैं।

भावकर्मोंके द्वारा यह आत्मा द्रव्यकर्मोंको बांध लेता है। और उन द्रव्यकर्मोंके द्वारा नोकर्मको धारण कर लेता है। उससे जन्म, मरण, रोग शोकादिकको पाकर यह आत्मा कष्ट उठाता है।

बहुरूपिया जिस प्रकार अनेक वेषोंको धारण कर लोकमें बहुरूपोंका प्रदर्शन करता है, उसी प्रकार यह आत्मा लोकमें बहुतसे प्रकारके शरीरों-को धारण कर भ्रमण करता है।

एक शरीरको छोड़ता है तो दूसरे शरीरको धारण करता है। उसे भी छोड़ता है तो तीसरेको ग्रहण करता है, इस प्रकार शरीरको ग्रहण व त्याग कर इस संसार नाटकशालामें भिन्न-भिन्न रूपमें देखनेमें आता है। यह आत्मा कभी राजा होता है तो कभी रंक होता है कभी स्वामी होता है तो कभी सेवक बनता है। भिक्षुक और कभी धनिक बनता है। कभी पुरुषके रूपमें तो कभी स्त्रीके रूपमें देखनेमें आता है। यह कर्म-चरित है। विशेष क्या ? इस संसारमें यह आत्मा नर, सुर, खग, मृग, वृक्ष, नारक आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए परमात्मकलाको न जानकर दुःख उठाता है।

पंचेन्द्रियोंके सुखके आधीन होकर वह आत्मा अपने स्वरूपको भूल जाता है। शरीरको ही आत्मा समझने लगता है। जो शरीरको ही आत्मा समझता है उसे बहिरात्मा कहते हैं। आत्मा अलग है और शरीर अलग है, इस प्रकारका ज्ञान जिसे है उसे अन्तरात्मा कहते हैं। तीनों ही शरीरों का सम्बन्ध जिसको नहीं है वह परमात्मा है। वह सर्वश्रेष्ठ निर्मल परमात्मा है।

आत्मतत्वको जानते हुए आत्मा अन्तरात्मा रहता है। परन्तु उस आत्माका ध्यान जिस समय किया जाता है उस समय वही आत्मा-परमात्मा है। यह परमात्मा जिनेन्द्र भगवंतका दिव्य आदेश है।

जिस प्रकार सूर्य बादलके बीचमें रहने पर भी स्वयं अत्यन्त उज्ज्वल रहता है, उसी प्रकार कर्मोंके बीचमें रहने पर भी यह आत्मा निर्मल है। इस प्रकार आत्माके स्वरूपको समझकर नित्य उसका ध्यान करें तो कर्मोंका नाश होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

आत्मा शुद्ध है, यह कथन निश्चयनयात्मक है। आत्मा कर्मबद्ध है, यह कथन व्यवहारनयात्मक है। आत्माके स्वरूपको कथन करते हुए, सुनते हुए वह बद्ध है। परन्तु ध्यानके समय वह शुद्ध है।

आत्माको शुद्ध स्वरूपमें जानकर ध्यान करने पर वह आत्मा कर्म दूर होकर शुद्ध होता है। आत्माको सिद्ध स्वरूपमें देखनेवाले स्वतः सिद्ध होते हैं इसमें आश्चर्यकी बात क्या है।

सिद्धबिम्ब, जिनबिम्ब आदिको शिला आदिमें स्थापित कर प्रतिष्ठित करना यह भेदभक्ति है। अपने शुद्धात्मामें उनको स्थापित करना वह अभेदभक्ति है, वह सिद्ध-पदके लिए युक्त है।

भेदाभेद-भक्तिका ही अर्थ भेदाभेद-रत्नत्रय है। भेदाभेद-भक्तियोंसे कर्मोंको दूर करनेसे मुक्तिको पाना कोई कठिन बात नहीं है।

आत्मतत्वको प्राप्त करनेकी युक्तिको जानकर ध्यानके अभ्यास कालमें भेदभक्तिका अवलम्बन करें। फिर ध्यानका अभ्यास होनेपर वह निष्णात योगी उस भेदभक्तिका त्याग करें और अभेदभक्तिका अवलंबन करें। उससे मुक्तिकी प्राप्ति अवश्य होगी।

स्फटिककी प्रतिमाको देखकर "मैं भी ऐसा ही हूं" ऐसा समझते हुए आंख मींचकर ध्यान करें तो यह आत्मा उज्ज्वल चांदनीकी पुतलीके समान सर्वांगमें दीखता है।

आत्मयोगके समय स्वच्छ चांदनीके अन्दर छिपे हुएके समान अनुभव होता है। अथवा क्षीरसागरमें प्रवेश करनेके समान मालूम होता है। विशेष क्या? सिद्ध लोकमें ऐक्य हो गया हो उस प्रकार अनुभव होता है। आत्मयोगका सामर्थ्य विचित्र है।

आत्माका जिस समय दर्शन होता है उस समय कर्म झरने लगता है, सुज्ञान और सुखका प्रकाश बढ़ने लगता है। एवं आत्मामें अनन्त गुणोंका विकास होने लगता है। आत्मानुभवोंकी महिमाका कौन वर्णन करे!

ध्यानरूपी अग्निके द्वारा तैजस व कार्माण शरीरको भस्मसात् कर आत्मसिद्धिको प्राप्त करना चाहिये। इसलिए भव्योंको संसारकांतारको पार करनेके लिए ध्यान ही मुख्य साधन है। वहां पर किसीने प्रश्न किया क्या यह सच है कि गृहस्थ और योगिजन दोनों धर्मध्यानके बलसे उग्रकर्मोंका नाश करते हैं। कृपया कहिये। तब उत्तर दिया गया कि बिल्कुल ठीक है। आत्मस्वरूपका परिज्ञान धर्मध्यानके बलसे गृहस्थ और योगियों-

को हो सकता है। परन्तु शुद्धात्म स्वरूपमें पहुँचानेवाला शुक्लध्यान योगियोंको ही हो सकता है। वह शुक्लध्यान गृहस्थोंको नहीं हो सकता है।

धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें अन्तर क्या है? घड़ेमें भरे हुए दूधके समान आत्मा धर्मध्यानके द्वारा दिखता है। स्फटिकके पात्रमें भरे हुए दूधके समान शुक्लध्यानके लिए गोचर होता है। अर्थात् शुक्लध्यानमें आत्मा अत्यन्त निर्मल व स्पष्ट होकर दिखता है। इतना ही धर्म व शुक्लमें अन्तर है।

धर्मध्यान युवराजके समान है। शुक्लध्यान अधिराजके समान है। युवराज अधिराज जिस प्रकार बनता है उसी प्रकार धर्मध्यान जब शुक्लध्यानके रूपमें परिणत होता है तब मुक्ति होती है।

युवराज जबतक रहता है तबतक वह स्वतंत्र नहीं है। परन्तु जब वह अधिराज बनता है तब पूर्णसत्तानायक स्वतंत्र बनता है। उसी प्रकार धर्मध्यान आत्मयोगके अभ्यासकालमें होता है। उस अवस्थामें आत्मा मुक्त नहीं हो सकता है। शुक्लध्यानके प्राप्त होनेपर वह स्वतंत्र होता है, मुक्तिसाम्राज्यका अधिपति बनता है। तब कर्मबंधनका पारतंत्र्य उसे नहीं रहता है। यही आदिप्रभुका वाक्य है, इस प्रकार उन कुमारोंने बहुत आदरके साथ आत्मधर्मका वर्णन किया। इतनेमें एक अत्यन्त विचित्र समाचार वहाँपर आया जिसे सुनकर वे सब कुमार आश्चर्यसे स्तब्ध हुए।

भरतेश्वरके कुमारोंकी विद्यासामर्थ्यको देखकर पाठक आश्चर्यचकित हुए होंगे। प्रत्येक शास्त्रमें उनकी गति है। अस्त्रविद्यामें, शस्त्रविद्यामें, अश्वविद्यामें, धनुर्विद्यामें, जिसमें देखो उसीमें वे प्रवीण हैं। काव्यकला संगीतकला व नाटककलामें भी वे प्रवीण हैं। व्याकरण, छंदःशास्त्र व आगममें वे निष्णात हैं। उसमें भी विशेषता यह है कि इस बाल्यकालमें भी अर्हद्भक्ति, भेदभक्ति, अभेदभक्ति आदिके रहस्यको समझ कर आत्मधर्मका अभ्यास किया है। आत्मतत्वका निरूपण बड़े-बड़े योगियोंके समान करते हैं। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर सदृश महापुरुषोंका जीवन सचमुचमें धन्य है। उनका सातिशय पुण्य ही ऐसा है जिसके फलसे ऐसे सुविवेकी पुत्रोंको पाते हैं। वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

"हे परमात्मन्! आप विद्यारूप हैं, पराक्रमी हैं, सद्योजात हैं, शांतस्वरूप है। बोध पुरुष हैं अर्थात् लोकातिशायी स्वरूपको धारण करनेवाले हैं, भवरोग वैद्य हैं, इसलिए आपकी जय हो।

हे सिद्धात्मन् ! आप सातिशयस्वरूपी हैं, रूपातीत हैं, देहरहित हैं, चिन्मय-देहको धारण करनेवाले हैं, मतिगम्य हैं, अप्रतिम हैं, जगद्गुरु हैं, इसलिए मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।"

इसी विशुद्ध भावनाका फल है कि भरतेश्वर ऐसे विवेकी सत्पुत्रोंको पाते हैं। यह सब अनेक भवोपार्जित सातिशय पुण्यका फल है।

इति विद्यागोष्ठि संधिः

विरक्ति-संधिः

भरतेश्वरके कुमार साहित्यसागरमें गोते लगा रहे थे इतनेमें एक नवीन समाचार आया। हस्तिनापुरके अधिपति मेघेश्वरने[1] समवशरणमें पहुँच कर जिनदीक्षा ली है। इस समाचारके पहुँचते ही वहाँपर सन्नाटा छा गया। लोग एकदम स्तब्ध हुए। यह कैसा ? वह कैसा ? एकदम ऐसा क्यों हुआ, इत्यादि चर्चायें होने लगीं। जाते समय राज्यको किसके हाथमें सौंपा ? क्या अपने सहोदरोंको राज्य प्रदान किया या अपने पुत्रको राज्यका अधिपति बनाया ? इतनेमें मालूम हुआ कि उन्होंने जाते समय अपनेसे छोटे भाई विजयराजको बुलाकर कहा कि भाई ! अब तुम राज्यका पालन करो। तब विजयराजने उत्तर दिया कि भाई तुमको छोड़कर मैं राज्यका पालन करूँ ? मेरे लिए धिक्कार हो ! इसलिए मैं तुम्हारे साथ ही आता हूँ। तदनन्तर उसके छोटे भाई जयंतराजको बुलाकर कहा गया कि तुम राज्यका पालन करो। तब जयंतराजने कहा कि भाई ! जिस राज्यको संसारवर्धक समझकर तुमने परित्याग किया है वह राज्य मेरे लिए क्या कल्याणकारी है ? तुम्हारे लिए जो चीज खराब है, वह मेरे लिए अच्छी कैसे हो सकती है ? इसलिए तुम्हारा जो मार्ग है वही मेरा मार्ग है मैं भी तुम्हारे साथ ही आता हूँ।

जब जयकुमार अपने भाइयोंको राज्यपालनके लिए मना नहीं सका तो उसने अपने पुत्र अनंतवीर्यको राज्य प्रदान कर पट्टाभिषेक किया। और अपने दोनों सहोदरोंके साथ दीक्षा ली। जयकुमारका पुत्र अनंतवीर्य

---

१. सम्राट्का सेनापति जयकुमार।

निराबालक है छह वर्षका बालक है। इसलिए नियमपूर्तिके लिए पट्टा-भिषेक कर मंत्रियोंके आधीन राज्यको बनाया व उनको योग्य मार्गदर्शन कर स्वतः निश्चिंत होकर दीक्षाके लिए चला गया। अनन्तवीर्य बालक था। इसलिए उसे सब व्यवस्था कर जाना पड़ा यदि वह योग्य वयस्क होता तो वह अविलम्ब चला जाता। अस्तु,

इस समाचारके सुनते ही उन सबको बहुत आश्चर्य हुआ। सबने नाक पर उंगली दबाकर "जिन ! जिन ! वे सचमुचमें धन्य हैं ! उनका जीवन सफल है" कहने लगे ! और उन सबने उनको परोक्ष नमस्कार किया।

उन सबमें ज्येष्ठ कुमार रविकीर्तिराज है। उन्होंने कहा कि बिल-कुल ठीक है। बुद्धिमत्ता, विवेक व ज्ञानका फल तो मोक्षकार्यमें उद्योग करना है। आत्मकार्यका साधन करना यही सम्यग्ज्ञानका प्रयोजन है।

आत्मतत्वको पानेके लिए ज्ञानको जरूरत है। परमात्माका ज्ञान होनेपर भी उसपर श्रद्धाकी आवश्यकता है। श्रद्धा व ज्ञानके होनेपर भी काम नहीं चलता। श्रद्धा व ज्ञानके होनेपर भी संयम पालनेके लिए जो लोग अपने सर्वसंगका परित्याग करते हैं वे धन्य हैं।

मेघेश्वरने खूब संसारसुखका अनुभव किया। राज्यभोगको भोग लिया। अनेक वैभवोंको अनुभव किया। ऐसी परिस्थितिसे इसे हेय समझ कर त्याग किया तो युक्त ही हुआ। परन्तु उनके सहोदर विजय व जयंतराजने (राज्यभोगको न भोगकर) इस राज्यलक्ष्मीको मेघमाला समझकर परित्याग किया यह बड़ी बात है। आश्चर्य है।

अपनी यौवनावस्था व शक्तिको शरीरसुखके लिए न बिगाड़कर बहुत सन्तोषके साथ आत्मसुखके लिए प्रयत्न करनेवाले एवं इस शरीरको तपश्चर्यामें उपयोग करनेवाले वे सचमुचमें महाराज हैं। धन्य हैं ! यद्यपि हम सब चक्रवर्तीके पुत्र हैं, तथापि हम चक्रवर्ती नहीं हैं। परन्तु वे तीनों भाई चक्रवर्तीके लिए भी वंद्य बन गये हैं। इसलिए वे सुज्ञानचक्रवर्ती धन्य हैं। आजतक वे हमारे पिताजीके आधीन होकर उनके चरणोंमें विनयसे नमस्कार करते थे और राज्य पालन करते थे। परन्तु आज हमारे पिताजी भी उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। सचमुचमें जिन-दीक्षाका महत्व अवर्णनीय है।

परब्रह्म स्वरूपको धारण करनेवाले योगियोंको हमारे पिताजी नमस्कार करें इसमें बड़ी बात क्या है ? जिस प्रकार भ्रमर जाकर

सुगन्धित पुष्पोंकी ओर झुक जाते हैं, उसी प्रकार उनके चरणोंमें तीन लोक ही झुक जाता है।

सुजयास्म ! सुनो ! सुकांतात्मक ! अरिविजयात्म ! आदि सभी कुमार अच्छी तरह सुनो ! दीक्षाके बराबरी करनेवाला लाभ दुनियामें दूसरा कोई नहीं है। शुक्लध्यानके लिए वह जिनदीक्षा सहकारी है, शुक्लध्यान मुक्तिके लिए सहकारी है। शुक्लध्यानके द्वारा कर्मोंको नाश कर मुक्तिको न जाकर संसारमें परिभ्रमण करनेवाले सचमुचमें अविवेकी हैं इस प्रकार बहुत खूबीके साथ जिनदीक्षाका वर्णन रविकीर्तिराजने किया।

इस कथनको सुनकर वहां उपस्थित सर्व कुमारोंने उसका समर्थन किया। एवं बहुत हर्ष व्यक्त करते हुए अपने मनमें दीक्षा लेनेका विचार करने लगे। उन्होंने विचार किया कि जवानी उतरनेके पहिले, शरीरकी सामर्थ्य घटनेके पहिले एवं स्त्री-पुत्र आदिकी छाया पड़नेके पहिले ही जागृत होना चाहिए। अब हम लोग वयस्क हुए हैं, यह जानकर पिताजी हमारे साथ एक-एक कन्याओंका सम्बन्ध करेंगे। स्त्रियोंके पाशमें पड़नेका जीवन मक्खीका तेलके अन्दर पड़नेके समान है।

स्त्रीके ग्रहण करनेके बाद सुवर्णको ग्रहण करना चाहिए, सुवर्णको ग्रहण करनेके बाद जमीन जायदादको ग्रहण करना चाहिए; स्त्री, सुवर्ण व जमीनको ग्रहण करनेवाले सज्जन जंग चढ़े हुए लोहेके समान होते हैं। वस्तुतः इन तीनों पदार्थोंके कारणसे यह मनुष्य संसारमें निरुपयोगी बनता है। और इसी कारणसे मोहकी वृद्धि होकर उसे दीर्घ संसारी बनना पड़ता है। सबसे पहिले अपने इन्द्रियोंके तृप्तिके लिए उसे, कन्याके बंधनमें पड़ना पड़ता है, अर्थात् विवाह कर लेना पड़ता है, तदनन्तर कन्याग्रहणके बाद उसके लिए आवश्यक जेवर वगैरह बनवाने पड़ते हैं, एवं अर्थसंचय करना पड़ता है, एवं बादमें यह भावना होती है कि कुछ जमीन जायदाद स्थावर सम्पत्ति निर्माण करें। इस प्रकार इन तीनों बातोंसे मनुष्य संसार बन्धनमें अच्छी तरह बँध जाता है।

यद्यपि हम लोगोंने कन्याका ग्रहण किया तो हमें सुवर्ण, सम्पत्ति राज्य आदिके लिए चिंता करनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि पिताजीके

---

(१) हेण्णु (कन्या) (२) होन्नु (सुवर्ण) (३) मण्णु (जमीन) मूल ग्रन्थकारने हेण्णु, होन्नु, मण्णु इन तीन शब्दोंसे अनुप्रास मिलानेके साथ-साथ इन तीनोंको ही संसारके मूल होनेका अभिप्राय व्यक्त किया है।

द्वारा आर्जित विपुल सम्पत्ति व अगणित राज्य मौजूद है। परन्तु उन सबसे आत्महित तो नहीं हो सकता है। यह सब अपने अधःपतन करनेवाले भवपाशके रूपमें है।

विपुल सम्पत्तिके होनेपर उसका परित्याग करना यह बड़ी बात है। जवानीमें दीक्षा लेना इसमें महत्व है। एवं परमात्मतत्वको जानना यह जीवनका सार है। इन सबकी प्राप्ति होनेपर हमसे बढ़कर श्रेष्ठ और कौन हो सकते हैं? कुल, बल, सम्पत्ति सौन्दर्य इत्यादिके होते हुए, उन सबसे अपने होमको परित्याग कर तपश्चर्याके लिए इस कायको अर्पण करें तो रूपवती स्त्रीके पतिव्रता होनेके समान विशिष्ट फलदायक है। क्योंकि सम्पत्ति आदि के होनेपर उनसे मोहका परित्याग करना इसीमें विशेषता है।

स्त्रियोंके पाशमें जबतक यह मन नहीं फसता है तबतक उसमें एक विशिष्ट तेज रहता है। उस पाशमें फँसनेके बाद धीरे-धीरे दीपककी शोभाको देखकर फँसनेवाले कीड़ेके समान यह मनुष्य जीवनको खो देता है। हथिनीको देखकर जिस प्रकार हाथी फँसकर बड़े भारी खड्डेमें पड़ता है एवं जीवनभर अपने स्वातंत्र्यको खो देता है, उसी प्रकार स्त्रियोंके मोह में पड़कर भवसागरमें फँसनेवाले अविवेकी, आंखोंके होने पर भी अन्धे हैं।

मछली जिस प्रकार जरासे माँसखंडके लोभमें फँसकर अपने गलेको ही अटका लेती है और अपने प्राणोंको खोती है उसी प्रकार स्त्रियोंके अल्पसुखके लोभसे जन्ममरणरूपी संसारमें फँसना क्या यह बुद्धिमत्ता है?

पहिले तो स्त्रियोंका संग ही भाररूप है। उसमें भी यदि सन्तानकी उत्पत्ति हो जाय तो वह घोरभार है। इस प्रकार वे कुमार विचार कर संसारके जंजालसे भयभीत हुए।

स्त्री तो पादकी शृंखला रूप है और उसमें सन्तानोत्पत्ति हो जाय तो गलेकी शृंखला है। इस प्रकार यह स्त्रीपुत्रोंका बंधन सचमुचमें मजबूत बंधन है।

लोग बच्चोंपर प्रेम करते हैं गोदमें बैठाल लेते हैं। गोदमें ही बच्चे टट्टी करते हैं, मल छोड़ते हैं, उस समय यह छी थू कहने लगता है, यह प्रेम एक भ्रांतिरूप है।

प्रेमके वशीभूत होकर बच्चोंके साथ बैठकर भोजन करते हैं। परन्तु

वे बच्चे भोजनके समय ही पाखाना करते हैं। इतनेमें इसका प्रेममें भंग आता है। यह एक विचित्रता है।

स्त्रियोंको कोई रोग आवे तो उनका शरीर दुर्गन्धसे भरा रहता है। तब पति अपने मुखको दुर्गन्धके मारे इधर-उधर फिरा लेता है। परन्तु यह विचार नहीं करता है कि यह मोह ही मायाजाल स्वरूप है। व्यर्थ ही वह ऐसे दुर्गन्धमय शरीरपर मुग्ध होता है।

स्त्रियाँ जब गर्भिणी हो जाती हैं, प्रसूत होती हैं एवं मासिक धर्मसे बाहर बैठती हैं, तब उनके शरीरसे शुक्ल, शोणित व दुर्मलका निर्गमन होता है। वह अत्यन्त घृणास्पद है। परन्तु ऐसे शरीरमें भी भैंसे जैसे कीचड़में पड़ते हैं, उसी प्रकार अविवेकी जन सुख मानते हैं, खेद है!

मूत्रोत्पत्तिके लिए स्थानभूत जघनस्थानके प्रति मोहित होकर मुक्तिको भूलकर यह अविवेकी जननिंद्य जीवनको धारण करते हैं परन्तु हम सचचरित्र होकर इसमें फँसे तो कितनी लज्जास्पद बात होगी। इस प्रकार उन कुमारोंने विचार किया।

सुखके लिए स्त्री और पुरुष दोनों एकान्तमें क्रीड़ा करते हैं। परन्तु गर्भ रहनेके बाद वह बात छिपी नहीं रह सकती है। लोकमें वह प्रकट हो जाती है। गर्भिणी का मुख म्लान हो जाता है, रोती है, कष्ट उठाती है, वह प्रसववेदनासे बढ़कर लोकमें कोई दुःख नहीं है। सुखका फल जब दुःख है तो उस सुखके लिए धिक्कार हो।

एक बूँदके समान सुखके लिए पर्वत के समान दुःखको भोगनेके लिए यह मनुष्य तैयार होता है, आश्चर्य है। यदि दुःखके कारणभूत इन पंचेन्द्रिय विषयोंका परित्याग करें तो सुख पर्वतप्राय हो जाता है, और संसार सागर बूँदके समान हो जाता है। परन्तु अविवेकी जन इस बात को विचार नहीं करते हैं।

स्वर्ग की देवांगनाओंके सुन्दर शरीरके संसर्गमें भी इस आत्माको तृप्ति नहीं हुई। फिर इस दुर्गन्धमय शरीरको धारण करनेवाली मानवी स्त्रियोंके भोगसे क्या यह तृप्त हो सकता है? असम्भव है।

सुरलोक, नरलोक, नागलोक एवं तिर्यंच लोककी स्त्रियोंको अनेक बार भोगते हुए यह आत्मा भवमें परिभ्रमण कर रहा है। फिर क्या उसकी तृप्ति हुई? नहीं! और न हो सकती है। जिनको प्यास लगी है वे यदि नमकीन पानीको पीवें तो जिस प्रकार उनकी प्यास बढ़ती ही जाती

है, उसी प्रकार अपने कामविकारकी तृप्तिके लिए यदि स्त्रियोंको भोगे तो वह विकार और भी बढ़ता जाता है, तृप्ति होती नहीं। और स्त्रियोंकी आशा भी बढ़ती जाती है।

अग्नि पानीसे बुझती है। परन्तु घी से बढ़ती है। इसी प्रकार कामाग्नि सच्चिदानन्द आत्मरससे बुझती है और स्त्रियोंके संसर्गसे बढ़ती है। भोगके भोगसे भोगकी इच्छा बढ़ती है, यह नियम है। केवल कामाग्नि नहीं, पंचेन्द्रिय के नामसे प्रसिद्ध पंचाग्नि उनके लिए इष्ट पदार्थोंके प्रदान करने पर बढ़ती है। परन्तु उनसे उपेक्षित होकर आत्मारामसें मग्न होने पर वह पंचाग्नि अपने आप बुझती है।

स्नान, भोजन, गंध, पुष्प, भूषण, गान, ग्राम, ताम्बूल, दुकूल (वस्त्र) इत्यादि आत्माको तृप्त नहीं कर सकते हैं। आत्माकी तृप्ति आत्मध्यान से ही हो सकती है।

इसलिए आज अल्पसुख की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि संसार के मोहको छोड़कर ध्यानका अवलम्बन करें तो वह ध्यान आगे जाकर अवश्य मुक्तिको प्रदान करेगा। इसलिए आज इधर-उधरके विचारको छोड़कर दीक्षाको ग्रहण करना चाहिए। इस बातको सुनते ही सब लोगोंने उसे हर्षपूर्वक समर्थन किया।

अपन सब कैलास पर्वतपर चलें, वहाँपर मेरुपर्वतके समान उन्नत रूप में विराजमान भगवान् आदिप्रभुके चरणोंमें पहुँच कर दीक्षा लेवें।

इस वचनको सुनते ही सब कुमार आनन्दसे उठ खड़े हुए। उनमें कोई-कोई कहने लगे कि हम लोग पिताजीके पास पहुँचकर उनकी अनुमति लेकर दीक्षा लेनेके लिए जायेंगे। उत्तरमें कोई कहने लगे कि यदि पिताजीके पास पहुँचे तो दीक्षाके लिए अनुमति नहीं मिल सकती है। फिर यह कार्य नहीं बन सकता है।

और कोई कहने लगे कि पिताजीको एक बार समझाकर आ सकते हैं, परन्तु हमारी माताओंकी अनुमति पाना असम्भव है, इसलिए उनके पास जाना उचित नहीं है। हम हमारी माताओंके पास जाकर कहें कि दीक्षाके लिए अनुमति दीजिए, तो क्या वे सीधी तरहसे यह कहेंगी कि बेटा! जाओ, तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। यह कभी नहीं हो सकता है। उलटा वे हमारे गले पड़कर रोयेंगी। फिर हमारा जाना मुश्किल हो जायगा।

कोई कहने लगे कि हमें चिंता किस बातकी है ? क्या आभूषणोंको ले जाकर उन्हें सौंपना है ? या अपने बाल-बच्चोंको सम्हालनेके लिए उनको कहकर आना है अथवा अपनी स्त्रियोंके संरक्षणके लिए कहकर आना है ? फिर क्या है ? उनकी हमें चिंता ही क्यों है ? हमें यदि उनकी चिन्ता नहीं है तो उनको भी हमारी चिंता ही क्या है ? क्योंकि उनको हम सरीखे हजारों पुत्र हैं।

हमारी लिहाज या जरूरत उनको नहीं है। उनकी जरूरत हमें नहीं है। उनके लिए वे हैं हमारे लिए हम। विचार करनेपर इस भवमालामें कौन किसके हैं ? यह सब भ्रांति है।

पुत्र पिता होता है। पिता उसी जन्ममें अपने पुत्रका ही पुत्र बनता है। पुत्री माता होती है। उसी प्रकार उसी जन्ममें माता पुत्रीकी पुत्री बन जाती है। बड़ा भाई छोटा भाई बन जाता है। छोटा भी बड़ा होता है। स्त्री पुरुष होती है, पुरुष स्त्रीयोनिमें उत्पन्न होता है। यह सब कर्म-चरित्र हैं।

शत्रु कभी मित्र बनता है। मित्र भी शत्रु बन जाता है। परिवर्तन-शील इस संसारकी स्थितिका क्या वर्णन करना। यहाँपर सर्व व्यवस्था परिवर्तनरूप है। अनिश्चित है। इसलिए कौन किसका भरोसा करें।

कान्ता के गर्भसे आते हुए साथमें लाया हुआ यह काय भी हमसे भिन्न है, हमारा नहीं है, फिर माता-पिताओंकी बात ही क्या है ? इस-लिए विशेष विचार करनेकी जरूरत नहीं। "हंसनाथाय नमः स्वाहा" यह दीक्षा के लिए उचित समय है। अब अविलम्ब दीक्षा लेनी चाहिए। अपन सब लोग चलें।

यदि नौकर लोग यहाँसे गये तो पिताजीसे जाकर कहेंगे एवं हमें दीक्षाके लिए विघ्न उपस्थित होगा, इस विचारसे उनको अनेक तंत्र उपायोंसे फँसाकर अपने साथ ही वे कुमार ले गये। उनको बीचमें अनेक बातोंमें लगाकर इधर-उधर जाने नहीं देते थे।

वीर योद्धा युद्धके लिए अनुमति पानेके हेतु जिस प्रकार अपने स्वामी के पास जाते हैं, उसी प्रकार "स्वामिन् ! दीक्षा दो, हम लोग यमको मार भगायेंगे" यह कहनेके लिए अपने दादाके पास वे जा रहे थे।

स्वामिन् ! अरिकर्मोंको हम जलायेंगे, मोक्षरूपी किलेको अपने वशमें करेंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है, इसे आप लिख रक्खें यह कहनेके लिए आदिप्रभुके पास वे जा रहे हैं।

वे जिस समय जा रहे थे मार्गमें अनेक नगरोंमें प्रजाजन पूछ रहे थे कि स्वामिन् कहाँ पधार रहे हैं ? उत्तरमें वे कुमार कहते हैं कि कैलास पर्वतपर आदिप्रभु के दर्शनके लिए जा रहे हैं। पुनः वे पूछते हैं कि चलते हुए क्यों जा रहे हैं। वाहनादिको ग्रहण कीजिये। उत्तरमें वे कहते हैं कि भगवन्तका दर्शन जबतक नहीं होता है तबतक मार्गमें हमारा ऐसा ही नियम है। इसलिए वाहनादिक की जरूरत नहीं है।

इस समाचार को जानते ही प्रजाजन आगे जाकर सर्व नगरवासियों-को समाचार देते थे कि आज हमारे स्वामीके कुमार कैलास वंदनाके लिए जाते हैं। इस निमित्त उनका सर्वत्र स्वागत हो, और ग्राम नगरादिककी शोभा करें। इस प्रकार सर्वत्र हर्षसे उत्सव मनाये जाने लगे।

स्थान-स्थानपर उन कुमारोंका स्वागत हो रहा है, नगर, मंदिर, महल वगैरह सजाये गये हैं। प्रजाजनोंकी इच्छानुसार अनेक मुकामोंमें विश्रांति लेकर वे कुमार कैलास पर्वतके समीप पहुँचे।

भरतेश्वरके सुकुमारोंकी चित्तवृत्ति को देखकर पाठकोंको आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। इतने अल्पवयमें भी इतने उच्चविचार, संसारभीरुता, वैराग्यसम्पन्नविवेक पुण्यपुरुषोंको ही हो सकता है। काम क्रोधादिक विकारोंसे उत्पन्न होनेके लिए जो साधकतम अवस्था है, उस समय आत्मानुभव करके योग्य शांतविचारका उत्पन्न होना बहुत ही कठिन है। ऐसे सुपुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर धन्य हैं। यह तो उनके अनेक भवो-पार्जित सातिशय पुण्यका ही फल है कि उन्होंने ऐसे विवेकी ज्ञानगुण सम्पन्न सुपुत्रोंको पाया है, जिन्होंने बाल्यकालमें ही संसारके सारका अच्छी तरह ज्ञान कर लिया है। इसका एकमात्र कारण यह है कि भरतेश्वर सदा तद्रूप भावना करते हैं।

"हे परमात्मन् ! आप सुज्ञानस्वरूपी हैं। सुज्ञान ही आपका शरीर है। सुज्ञान ही आपका शृंगार व भूषण हैं। इसलिए हे सुज्ञानसूर्य ! मेरे अंतरंग में सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप मुक्तिलक्ष्मीके अधिपति हैं, ज्ञानके समुद्र हैं। दिव्यगुणोंके आधारभूत हैं। वचनेके लिए अगोचर हैं। तीन लोकके अधिपति हैं। सूर्यके समान उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त हैं। इसलिए हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति विरक्तिसंधिः

—०—

समवशरण संधि:

भरतजीके सौ कुमार आपसमें प्रेमसे बातचीत करते हुए भगवान् आदि प्रभुके दर्शनके लिए कैलासपर्वतकी ओर जा रहे हैं। दूरसे कैलास पर्वतको देखकर वे आनन्दित हुए।

सफेद आकाश भूमिके अन्दर अंकुरित होकर ऊपर फूलकर पर्वतके रूपसे बन गया हो, इस प्रकार वह कैलास पर्वत अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहा था। और चाँदनी रात होनेसे और भी अधिक चमक रहा था। अनेक चन्द्रमण्डल मिलकर यह एक पर्वत तो नहीं है? अथवा यह चन्द्रगिरी है या रजतगिरी है। इस प्रकार इन्द्रवैभवयुक्त वे कुमार विचार कर देखने लगे। क्षीरसमुद्रही पर्वतके रूपमें तो नहीं बना है? यह तो चित्तको बहुत ज्यादा आकर्षित कर रहा है। क्या यह क्षीरपर्वत है या रजतपर्वत है? क्या ही अच्छा है? इस प्रकार प्रशंसा करने लगे।

भगवान् आदिप्रभुकी धवलकीर्ति ही मूर्तस्वरूपको पाकर यह पर्वत तो नहीं बनी है? अथवा भव्योंका पुण्यपर्वत बन गया है? जिन! जिन! आश्चर्य है। यह कहते हुए वे उस पर्वतके पास पहुँचे।

उस पर्वतको देखकर उनके हृदयमें उसके प्रति आदर उत्पन्न हुआ। सुवर्णपर्वत पाँच हैं। रजताद्रि तो एक सौ सत्तर है, परन्तु हे पर्वतराज! तुम्हारे समान समवशरणको धारण करनेका भाग्य उन पर्वतोंको कहाँ है।

सिद्धलोकको जानेके लिए यह एक सूचना है। इसपर चढ़ना सिद्ध-शिलापर चढ़नेके समान है। यह विचार करते हुए एवं वचनसे 'सिद्धं नमो' यह उच्चारण कर उन्होंने उस पर्वतपर चढ़नेके लिए प्रारम्भ किया। मनमें अत्यन्त सुन्दर विचार करते हुए पंक्तिबद्ध होकर वे कुमार उस कैलास पर्वतपर अब चढ़ रहे हैं। उस समय अपने मनमें कुछ विचार कर वीरंजय राजकुमारने बड़े भाई रविकीर्तिराजसे एक प्रश्न किया भाई! आपने एक बार पिताजीके साथ भगवान् का दर्शन किया है, तो भगवत-का दरबार कैसा है उसका कृपाकर वर्णन तो कीजिये।

रविकीर्तिराजने उत्तरमें कहा कि भाई! खूब! तुमने ऐसा प्रश्न किया, जैसे कोई किसी बड़े नगरको देखनेके लिए जाता है तो बाहरकी गलीमें पहुँचनेके बाद नगरका वर्णन सुनना चाहता है इसी प्रकार अपन कैलास पर चढ़ रहे हैं, और शीघ्र समवशरणमें पहुँचेंगे। अब तो बिलकुल

पासमें है। ऐसी अवस्थामें समवशरणका वर्णन सुनना चाहते हो। आप लोग चलो, वह समवशरण कैसा है अपनी आंखोंसे ही देखेंगे।

तब वीरंजयकुमारने कहा कि भाई! आप यदि समवशरणका वर्णन करें तो हम लोग उसे सुनते-सुनते रास्ता जल्दी तय करेंगे। और लोकेक-गुरु श्रीभगवंतका पुण्यकथन हम लोगोंने श्रवण किया तो आपका क्या बिगड़ता है? कहिये तो सही।

तब रविकीर्तिराजने कहा कि भाई! तो फिर सुनो। मैं अपने पिता-के साथ भगवंतका दर्शन कर चुका हूँ। वे प्रभु जिस समवशरणमें विराज-मान हैं, वह तो लोकके लिए विचित्र वस्तु है।

जिनसभा, जिनवास, समवशरण व जिनपुर यह सब एक ही अर्थके वाचक शब्द हैं। जिनेन्द्र भगवंत जिस स्थानमें रहते हैं उसी स्थानको इस नामसे कहते हैं। उसका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो!

इस कैलासको स्पर्श न कर अर्थात् पर्वतसे पांच हजार धनुष छोड़कर आकाश प्रदेशमें वह समवशरण विराजमान है। उसके अतिशयका क्या वर्णन करूँ?

उस समवशरणके लिए कोई आधार नहीं है। परन्तु तीन लोकके लिए वह आधारभूत राजमहलके समान है। ऐसी अवस्थामें इस भूलोकको वह अत्यन्त आश्चर्यकारक है।

दुनियांमें हर तरहसे कोई निस्पृह है तो भगवान् अर्हतप्रभु हैं। इसलिए उनको किसी भी प्रकारकी पराधीनता नहीं है। वे अपनी स्थिति-के लिए भी महल, समवशरण, पर्वत आदिके आधारकी अपेक्षा नहीं करते हैं। इसलिए लोकोत्तर महापुरुष कहलाते हैं। देवेन्द्रकी आज्ञासे कुबेर इन्द्रनीलमणिकी फरसीसे युक्त समवशरणका निर्माण करता है वह चन्द्र-मण्डलके समान वृत्ताकार है और वह द्विवसेन्द्रयोजनके विस्तारसे युक्त है। देखने व कहनेके लिए तो वह बारह कोस प्रमाण है, तथापि कितने ही लोग उसमें आवें समा जाते हैं। करोड़ों योजनका विस्तारका आकाश प्रदेश जिस प्रकार अवकाश देता है, उसी प्रकार समागत भव्योंके लिए स्थान देनेकी उसमें सामर्थ्य है। जिस प्रकार हजारों नदियां आकर मिलें, और पानी कितना ही बरसे तो भी समुद्र उस पानीको अपनेमें समा लेता है व अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता है, उसी प्रकार वह समवशरण आये हुए समस्त भव्योंके लिए स्थान देता है।

समवशरणकी जमीन तो इन्द्रनीलमणिसे निर्मित है, परन्तु वहांका गोपुर, द्वार, वेदिका, परकोटा आदि तो नवरत्न व सुवर्णसे निर्मित हैं, इसलिए अनेक चित्रवर्णसे सुशोभित होते हैं।

इन्द्रगोपसे निर्मित यह क्षेत्र तो नहीं है ? अथवा इन्द्रचापसे निर्मित भूमि है ? इस प्रकार लोगोंको आश्चर्यमें डालते हुए चन्द्रार्ककोटि प्रकाशसे युक्त जिनेन्द्र भगवंतकी नगरी सुशोभित हो रही है।

अम्बर (आकाश) रूपी समुद्रमें स्थित कदंब वर्णके कमलके समान वह समवशरण सुशोभित हो रहा है। उसका प्रकाश दशों दिशाओंमें फैल रहा है। इसलिए प्रकाश मण्डलकी बीच वह कदम्बवर्णके सूर्यके समान मालूम होता है। भाई ! विशेष क्या कहूँ ? वह समवशरण उष्णतारहित सूर्यबिम्बके समान है। कलंकरहित चन्द्रबिम्बके समान है। अथवा पर्वत-राजके लिए उपयुक्त दर्पणके समान है, इस प्रकार आदिप्रभुका पुर अत्यन्त सुन्दर है।

अपनी कान्तिसे विश्वभरमें व्याप्त होकर समुद्रमें एक स्थानमें ठहराये हुए नवरत्न निर्मित जहाजके समान मालूम होता है।

जिस समय उनका आकाशमें विहार होता है उस समय प्रकाशरूपी समुद्रमें जहाजके समान मालूम होता है, और जहाँ ठहरनेका होता है वहाँ ठहर जाता है, जैसा कि नाविककी इच्छानुसार जहाजकी गतिस्थिति होती है।

पुण्यात्माओंके पुण्यबलसे तीर्थंकरका विहार उनके प्रान्तकी ओर हो जावे तो पुण्यके समान वह भी उनके पीछे ही आ जाता है। जब भगवंत कैलासपर विराजते हैं वह भी वहींपर आकर ठहर जाता है।

भाई ! जिस प्रकार कोई वाहनको एक जगहसे दूसरी जगहको चलाते हैं उस प्रकार भगवान् तो एक बड़े नगरको ही एक जगहसे दूसरी जगह-को ले जाते हैं। क्या इनकी महिमा सामान्य है ?

चारों दिशाओंसे रत्नसोपान निर्मित है। और रत्नसोपानको लगकर वह जिननगर विराजमान है। ऐसा मालूम होता है इस कैलासपर्वतके ऊपर नवरत्नमय एक पर्वत हो खड़ा हो।

भाई ! उस समवसरणके ९ प्राकार मौजूद हैं। उनमें एक तो नव-रत्नसे निर्मित है। एक माणिक्यरत्नसे निर्मित है। और पाँच सुवर्णसे निर्मित हैं। और दो स्फटिकरत्नसे निर्मित हैं। इस प्रकार ९ परकोटोंसे

वह देवनगरी वेष्ठित है। पहिला परकोटा नवरत्न निर्मित है, तदनन्तर दो सुवर्णके द्वारा निर्मित हैं। आगेका एक पद्मरागमणिसे निर्मित है। तदनन्तर तीन सुवर्णसे निर्मित हैं। तदनन्तर दो स्फटिकसे निर्मित हैं।

समवशरणके वर्णनमें चार साल व पांच वेदिकाओंका वर्णन करते हैं। इन परकोटोंसे ही चार साल और पांच वेदिकाओंका विभाग होता है।

चारों दिशाओंमें चार द्वार हैं। और चारों ही द्वारोंके बाहर अत्यन्त उन्नत चार मानस्तंभ विराजमान हैं।

९ परकोटोंमें ८ परकोटोंके द्वारपर द्वारपालक हैं। नवमें परकोटके द्वारपर द्वारपालक नहीं है। उन परकोटोंके बीचकी भूमिका वर्णन सुनो।

पहिले प्राकारसे सुवर्णसे निर्मित गोपुर, रत्नसे निर्मित जिनमन्दिर सुशोभित हो रहे हैं। उससे आगे उत्तम तीर्थगंधोदक नदीके रूपमें दूसरी प्राकार भूमिमें बह रहा है। अत्यन्त हृद्य सुगन्धसे युक्त फूलका बगीचा अनवद्य तीसरे प्राकारभूतलपर मौजूद है। एवं चौथी प्राकारभूमिमें उद्यान वन, चैत्यवृक्ष वगैरह मौजूद हैं। पाँचवीं भूमिमें हाथी, घोड़ा बल आदि भव्य तिर्यंच प्राणी रहते हैं। छठी वेदिकामें कल्पवृक्ष, सिद्धवृक्ष आदि सुशोभित हो रहे हैं। ७वीं वेदिका जिनगीत वाद्य नृत्य आदिके द्वारा सुशोभित हो रही है। आठवीं वेदिकामें मुनिगण, देवगण, मनुष्य आदि भव्य विराजमान हैं। इस प्रकार समवशरणकी आठ वेदिकाओंका वर्णन है।

अब नवम दरवाजेके अन्दरकी बात सुनो ! उसका वर्णन करता हूं, द्वारपालसे विरहित नवम प्राकारमें तीन पीठ विराजमान हैं। भाई ! वीरंजय ! उनकी शोभाको सुनो !

एक पीठ वैडूर्यरत्नके द्वारा निर्मित है, उसके ऊपर सुवर्णके द्वारा निर्मित दूसरा पीठ है। उसके ऊपर अनेक रत्नोंसे निर्मित पीठ है। इस प्रकार रत्नत्रयके समान एकके ऊपर एक, पीठत्रय विराजमान है।

सबसे ऊपरके पीठपर अनेक रत्नोंके द्वारा कीलित चार सिंह हैं। उनकी आंखे खुली व लाल, उगा हुआ पुच्छ, एवं केशर, जटाजाल बिखरा हुआ है। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर दिशाकी ओर उनमें एकेक सिंहकी दृष्टि है। उनको देखनेपर मालूम होता है कि वे कृत्रिम नहीं है। साक्षात् जीव सहित सिंह ही हैं। उन सिंहोंके ऊपर एक सुवर्णकमल हजार दलसे युक्त है। केशर व कर्णिकासे युक्त होनेके कारण दशोंही दिशाओंको अपने सुगन्धसे व्याप्त कर रहा है।

उस पद्मकर्णिकासे ४ अंगुल स्थानको छोड़कर आकाशमें पद्मराग-मणिकी कान्तिसे युक्त पादकमलको धारण करनेवाले भगवान् आदि प्रभु पद्मासनसे विराजमान हैं।

दो करोड़ बालसूर्योंके एकत्र मिलनेपर जिस प्रकार कान्ति होती है उसी प्रकार की सुन्दर देहकान्तिसे युक्त भगवंत कान्तिके समुद्रमें ही विराजमान हैं। तीन लोकके लिए एक ही देव हैं, यह लोकको सूचित करते हुए मोतियोंसे निर्मित छत्रत्रय सुशोभित हो रहे हैं।

देवगण शुभ्र चौसठ चामर भगवानके ऊपर डोल रहे हैं। मालूम होता है कि भगवंत क्षीरसमुद्रके तरंगके ऊपर ही अपने दरबारको लगाये हुए हैं।

जिनेन्द्रके रूपको देखकर इन्द्रचापने स्थिरताको धारण कर लिया हो जैसा भामंडल शोभाको प्राप्त हो रहा है।

भगवंतके दर्शन करने पर शोक नहीं है इस बातको अपने आकारसे लोकको घंटाघोषसे कहते हुए नवरत्नमय अशोकवृक्ष विराजमान है।

आकाशमें खड़े होकर स्वर्गीय देवगण वृषभपताक ! हे भगवन् ! आपकी जय हो इस प्रकार कहते हुए स्वर्गलोकके पुष्पोंकी वृष्टि लोकनाथ-के मस्तक पर कर रहे हैं।

दिमि दिमि, दंधण, धणदिमि, दिमिकु भुं भूं भुं भूं इत्यादि रूपसे उस समवशरणमें शंख पटह आदि सुन्दर वाद्योंके शब्द सुनाई दे रहे हैं।

दिव्यवाणीश भगवंतके मुखकमलसे नव्य, दिव्य, मृदु, मधुर, गंभीरतासे युक्त एवं भव्य लोकके लिए हितकर दिव्यध्वनिकी उत्पत्ति होती है।

पुष्पवृष्टि, अशोकवृक्ष, छत्रत्रय, चामर, दिव्यध्वनि, भामंडल, भेरी, सिंहासन, ये ही भगवंतके सातिशय अष्ट चिह्न हैं। इन्हींको अष्ट महा-प्रातिहार्यके नामसे भी कहते हैं।

भाई ! और एक आश्चर्यकी बात सुनो ! समवशरणमें विराजमान भगवंतको एक ही मुख है, तथापि चारों ही दिशाओंसे आकर भव्य खड़े होकर देखें तो चारों ही तरफसे मुख दिखते हैं। इसलिए वे प्रभु चतुर्मुख-के समान दिखते हैं।

भगवंतके दस अतिशय तो जनन समयमें ही प्राप्त होते हैं। और दस अतिशय घातिया कर्मोंके नाश करनेसे प्राप्त होते हैं। और देवोंके द्वारा

भक्तिसे निर्मित अतिशय चौदह हैं। इस प्रकार भगवंत चौतीस अतिशयों-से युक्त हैं।

आठवीं भूमि और नववीं भूमि, इस प्रकार दोनोंको मिलाकर कोई कोई लक्ष्मीमंडपके नामसे वर्णन करते हैं।

मुनिगण आदि लेकर द्वादशांग सभा की संपत्ति व त्रिलोकाधिनाथके होनेसे उस प्रदेशको लक्ष्मीमंडप या श्रीमंडपके नामसे कहा जाय, वह उचित ही है। अत्यन्त सुंदर सुवर्ण निर्मितस्तंभ व नवरत्नसे निर्मित शिखर और माणिक्यसे निर्मित कलश होनेसे उसे गंधकुटीके नामसे भी कहते हैं। चार सिंहोंके ऊपर जो सहस्रदल कमल विराजमान है, उसका सुगंध, देवोंके द्वारा होनेवाली पुष्पवृष्टिका सुगंध एवं त्रिलोकाधिपति तीर्थंकर प्रभुके शरीरका सुगंध, इनसे वह भरी हुई है, इसलिए उसे गंध-कुटी कह सकते हैं।

आठवीं भूमिको गणभूमिके नामसे भी कहते हैं। क्योंकि वहाँपर गणधरादि योगी विराजमान हैं। वहाँपर बारह कोष्टक हैं। उन बारह कोष्टकोंमें गणधरादि बारह प्रकारके भव्य विराजमान होकर तत्वश्रवण करते हैं।

मुनिगण, देवांगनायें, अर्जिकायें ज्योतिर्लोककी देवांगनायें, व्यंतर देवियाँ, नागकन्यायें, भवनवासी देव, व्यंतरदेव, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, मनुष्य व अंतिकोष्टकमें सिंह इस प्रकार बारह गण क्रमसे विराजमान हैं।

भगवान् पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हैं। परन्तु द्वादशगण उनको प्रदक्षिणा देकर अपने-अपने स्थानपर बैठते हैं। जिनेन्द्र भगवंतके सामने ही सब विराजते हैं। सबसे पहले ऋषि, अंतिम कोष्टकमें सिंह। इस प्रकार वहाँकी व्यवस्था है। आसन्नभव्य! वीरंजय! सुनो! गणभेदसे बारह विभाग हैं! गुणभेदसे तेरह भेद हैं। उसके रहस्यको भी खोलकर कहता हूं। अच्छी तरह सुनो।

जिस प्रकार राजाको मंत्रिगण होते हैं, उसी प्रकार तीन लोकके प्रभुकी दरबारमें भी चौरासी गणधर मंत्रिस्थानमें रहते हैं। वे गणधरके नामसे विख्यात हैं। अनुज सुनो! श्रुतज्ञानसागर व चौदह पूर्व शास्त्रोंको धारण करनेवाले योगी उस दरबारमें चार हजार सात सौ पचास (४७५०) हैं।

सप्त तत्वोंमें चार तत्त्व अर्थात् जीव, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये उपा-देय हैं, और अजीव, आस्रव, बंध ये तीन तत्त्व हेय हैं। वहाँपर ऐसे

योगिगण हैं, जो भव्योंको सदा यह उपदेश देते हैं कि चार तत्वोंको कसो (ग्रहण करो) और तीन तत्वोंके जालमें मत फँसो। इस प्रकार उपदेश देनेवाले शिक्षक योगिगण उस समवशरणमें चार हजार एक सौ पचास (४१५०) विराजमान हैं।

उत्तम ध्यान कोई चीज नहीं है। वह प्राप्त नहीं हो सकता है, इस प्रकार तत्वविरुद्ध भाषण करनेवालोंके मुँह वादसे बंध करनेवाले वादि योगिराज वहाँपर बारह हजार सात सौ पचास (१२७५०) हैं।

अणिमा, महिमा आदि विक्रियाओंमें क्षणमें एक विक्रियाको दिखानेमें समर्थ विक्रियाऋद्धिके धारक योगिराज वहाँपर २६००० संख्यामें हैं।

युवराज! सुनो! पिछले व अगले जन्मके विषयको प्रत्यक्ष देखे हुएके समान प्रतिपादन करनेवाले अवधिज्ञानके धारक योगिगण वहाँपर ९००० संख्यामें हैं।

भाई! कोई मनमें कुछ विचार करें उसे कहनेके पहिले ही बतलानेमें समर्थ मनःपर्ययज्ञानके धारी मुनिराज उस समवशरणमें १२७५० की संख्यामें हैं।

भगवंतकी चारों ओर बीस हजार केवली विद्यमान हैं। भगवानके समान ही उनको सुख है, शक्ति है एवं ज्ञान है।

पवित्र संयमको धारण करनेवाली अर्जिकायें वहाँपर साढ़े तीन लाख विराज रही हैं।

उस समवशरणमें तद्भव मोक्षगामी व भेदाभेद भक्तिके भावक सुव्रतके धारक श्रावक तीन लाखकी संख्यामें हैं।

भाई सुनो! भगवानके दरबारमें सुव्रताको आदि लेकर स्त्रियाँ पाँच लाख हैं। सुर, नाग, नक्षत्र, यक्ष, किंपुरुष, गंधर्व ये देव व देवांगनाओंकी संख्याकी गणना नहीं हो सकती है, इसलिए वे असंख्यात हैं।

भाई! लोकके मनुष्योंपर प्रभाव डालना कौन-सी बड़ी बात है! आखिरकी कोष्ठकमें पक्षी, सिंह, मृग आदि भव्य तिर्यञ्च प्राणी अगणित प्रमाणमें हैं।

इस प्रकार भगवंतके दरबारमें गणधर, श्रुतधर, वादि शिक्षक, जिन, अणिमादि ऋद्धिधारक, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी आदि उपर्युक्त विवेचनके अनुसार तेरह गण विद्यमान हैं।

देवगण व सिंहगणके लिए कोई संख्या नहीं है। उसके साथ बाकीके ११ गणकी संख्या मिले तो ५९१६ कम १२ लाख ४० हजार होती है।

पहिले बारह गणोंका भेद कहा गया, और फिर तेरह गुणोंके भेदसे १३ गण भेदका वर्णन किया। अब दूसरे एक दृष्टिकोणसे विचार किया तो वहांपर १०० इन्द्र और एक आचार्यगण इस प्रकार १०१ गणके भेदसे विभाग होता है।

यहांतक जो कुछ भी वर्णन किया गया वह भगवान्‌की बाह्यसंपत्तिका है। अब सुनो! मैं भगवंतकी अन्तरंगसम्पत्तिका वर्णन करता हूं।

यह परमात्मा उसके शिर, पादनखाग्रसे मस्तकपर्यंत सर्वांगमें व्याप्त होकर रहता है। आपातमस्तक उज्वलप्रकाश रत्नदीपककी सुन्दरकांतिके समान वह मालूम होता है। प्रकाश व रत्नदीप जिस प्रकार अलग-अलग नहीं है, उसी प्रकार आत्मप्रकाशके रूपमें ही वह विद्यमान है। उस प्रकाशका ही तो नाम सुज्ञान है। बोलनेमें दो पदार्थ मालूम होते हैं। परन्तु यथार्थमें विचार करनेपर एक ही पदार्थ है।

अग्निको उष्ण कहते हैं, प्रकाशयुक्त भी कहते हैं। विचार करनेपर अग्नि एक ही पदार्थ है। इसी प्रकार सुप्रकाश व सुविज्ञानका दो पदार्थोंके रूपमें उल्लेख होनेपर भी वस्तुतः वे दोनों पदार्थ एक ही हैं।

कभी-कभी अग्नि, प्रकाश व उष्णता इन तीन विभागोंसे भी आगका कथन हो सकता है, परन्तु अग्निमें तो सभी अन्तर्भूत होते हैं। इसी प्रकार जीव, ज्ञान व प्रकाश ये तीन पदार्थ दिखनेपर भी आत्माके नामसे कहनेपर एक ही पदार्थ हैं, उसीमें सभी अन्तर्भूत होते हैं।

पुरुषाकारके रत्नके सांचेमें रक्खे हुए स्फटिकसे निर्मित पुरुषके समान वह आत्मा शरीरके अन्दर रहता है।

वह स्फटिकके सदृश पुरुष होनेपर भी इस चर्मचक्षुके लिए गोचर नहीं हो सकता है। वह तीर्थंकर आत्मा आकाशके रूपमें प्रकाशमय स्वरूपमें विद्यमान है।

कांचके पात्रमें दीपक रखनेपर जिस प्रकार उसकी ज्योति बाहर निकलती है व बाहरसे स्पष्ट दिखती है, उसी प्रकार भगवंतके परमौदारिक-दिव्यशरीरसे वह आत्मकांति बाहर आ रही है।

सूर्यकिरण जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार अनंतज्ञान व अनंतदर्शनका किरण सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। क्योंकि प्र[illegible] भगवंतने

पूर्वोक्त ध्यानके बलसे ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्मका नाश किया है।

अंगुष्ठसे लेकर मस्तकतक वह भगवंत सुज्ञानसे सुशोभित हो रहा है। अंगुष्ठके अणुमात्र प्रदेशमें जितना ज्ञान है, उससे उनको समस्त लोकका परिज्ञान होता है। उस सर्वांगपरिपूरित ज्ञानका क्या वर्णन करना ?

अनंतज्ञान सर्वांगपरिपूरित है। अनन्तदर्शन गुण भी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा है। तीन लोकके अन्दर व बाहर वह भगवंत सदा जानते व देखते हैं।

अत्यन्त स्वच्छ रत्नदर्पणके सामने रखे हुए पदार्थ जिस प्रकार उसमें प्रतिबिंबित होते हैं उसी प्रकार पादसे लेकर मस्तकतकके आत्मप्रदेशमें तीन लोक ही प्रतिबिंबित होता है।

कांसेका स्वच्छ पाटा हो तो उसमें एकही तरफसे पदार्थ दिख सकते हैं, परन्तु स्वच्छ रत्नदर्पणमें तो दोनों तरफसे पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं। इसी प्रकार भगवान्‌के भी ज्ञान व दर्शनसे चारों ओरके पदार्थ दिखते हैं।

सर्वांग परिपूर्ण ज्ञान व दर्शनसे चारों तरफके विश्वके समस्त पदार्थों को जानना व देखना सर्वज्ञका स्वभाव है। इसलिए उन्हें सर्वतोलोचन, सर्वतोमुखके नामसे सर्वजन कहते हैं, वह सत्य है।

पिछले अनादिकालके, आगेके अनन्तकालके, एवं आजके समस्त गत अनागत वर्तमानके विषयोंको एक ही क्षणमें जिनेंद्र भगवंत जानते हैं व देखते हैं। भाई ! वह भगवंत तीन लोकके अन्दर समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें जानते हैं, देखते हैं। इतना ही नहीं, तीन लोकके बाहरके आकाश-के भी अन्ततक जानते हैं व देखते हैं।

भगवान् अनेक द्रव्योंको उनके अनेक पर्यायोंको एक साथ जानते हैं व देखते हैं। तथापि उनको उन पदार्थोंपर मोह नहीं है। एक पदार्थको जाननेके बाद दूसरे पदार्थको जाने, अनंतर तीसरेको, इस प्रकारकी क्रमवृत्ति वहांपर नहीं है। सबको एक साथ ही जानते हैं।

संसारी जीवोंका ज्ञान व दर्शन परिमित है। इसलिए पदार्थोंको जानने व देखनेकी क्रिया क्रमसे होती है। परन्तु जो कर्मरहित है, ऐसे भगवंतको क्रम-क्रमसे जाननेकी जरूरत नहीं है। एक ही समयमें सर्व पदार्थोंको जान सकते हैं व देख सकते हैं।

भाई ! देखो ! एक दीपकसे यदि अनेक घरमें प्रकाश पहुंचाना हो तो क्रम-क्रमसे सबके घरमें पहुंच सकता है। परन्तु सूर्य तो उदयाचल पर्वत

पर खड़े होकर एक ही क्षणमें समस्त विश्वको प्रकाशित करता है।

भाई ! लोकमें आंखोंसे देखते हैं व मनसे जानते हैं परन्तु भगवंतके ज्ञानदर्शन आंख व मनपर अवलंबित नहीं है। वे आंख व मनको सहायता के बिना आत्मज्ञान व दर्शनसे ही समस्त लोकका ज्ञान करते हैं व देखते है। क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञानदर्शनसे संयुक्त है।

कर्मागियोंको हो पराधीन होकर रहना पड़ता है। इसलिए वे जानने व देखनेके लिए आंखें व मनकी आधीनतामें पहुँचते हैं। परन्तु समस्त कर्मको जिन्होंने नाश किया है ऐसे भगवंतके ज्ञान व दर्शनके लिए पराधीनता कहाँ ?

रात्रिमें इधर उधर जानेके लिए सर्वजन दीपककी अपेक्षा रखते हैं। क्या सूर्यको दीपककी आवश्यकता है ? नहीं ! इसी प्रकार कर्मबद्ध व शुद्धोंके व्यवहारमें अन्तर है।

सूर्यका प्रकाश लोकमें सब जगह पहुँचता है। तथापि गुफाके अन्दर नहीं पहुँचता है। परन्तु उस जिनसूर्यका प्रकाश तो लोकके अन्दर व बाहर समस्त प्रदेशमें पहुँचता है।

आदि भगवंत लोक और अलोकको जरा भी न छोड़कर जानते हैं व देखते हैं। इसलिए यह सुज्ञानसूर्य जगभरमें व्याप्त है, ऐसा कहते हैं, यह उपचार है।

गुरु व शिष्यके तत्त्वपरिज्ञानके व्यवहारमें उपचार दृष्टांत देना पड़ता है। जबतक तत्त्वका ज्ञान नहीं होता है तबतक दृष्टांतकी जरूरत है मूलतत्त्वका ज्ञान होनेके बाद दृष्टांतको आवश्यकता नहीं है जिस प्रकार बछड़ेको दिखाकर, बछड़ेका शोधन कर आत्मज्ञान कराया गया, अथवा लोहरससे अर्हत्प्रतिमा बनाकर अर्हतको बतलाया जाता है, यह सब दृष्टांत है उपचार दृष्टांत तो कुछ समयतक रहता है। उपमित निश्चय दृष्टांत ही यथार्थमें ग्राह्य हैं ! उपदेशका अंग होनेसे उस निश्चय दृष्टांतका कथन करता हूँ, सुनो !

दर्पणमें सामनेके पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं, परन्तु क्या वे पदार्थ दर्पणके अन्दर हैं या वे पदार्थसे वह स्पृष्ट हैं ? नहीं। इसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ केवलीके ज्ञानमें झलकते हैं। परन्तु भगवंत उन पदार्थोंको स्पर्श न कर विराजते हैं। परमौदारिक दिव्यशरीरमें भगवान् रहते हैं परन्तु उसका भी उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका शरीर तो अनन्तज्ञान ही है।

भव्योंकी इष्टसिद्धिके लिए उनके पुण्यसे वे आज यहाँ विराजते हैं कल अभ्युदयसिद्धिको वे प्राप्त करते हैं।

भाई ! दूसरे पदार्थोंकी अपेक्षा न कर जिस प्रकार भगवंत अनन्त-ज्ञानी व अनन्तदर्शनसे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार परवस्तुओंकी अपेक्षा से रहित होकर अनन्तसुखसे भी वे संयुक्त हैं। उसका भी वर्णन करता हूँ। सुनो !

आठ कर्मोंके जालमें जो फँसे हुए हैं, वे १८ दोषोंके द्वारा संयुक्त हैं। १८ दोष जहाँ हैं वहाँ दुःख भी है। जिनको दुःख है, उनको सुख कहाँसे मिल सकता है ?

पहिले भगवंतने ८ कर्मोंमें रहकर उन्हींमेंसे ४ कर्मोंको जलाया तब १८ दोषोंका भी अन्त हुआ। इसीसे उनको अनन्तसुखकी प्राप्ति हुई। वे अठारह दोष कौनसे हैं, कहता हूँ, सुनो।

क्षुधा, तृषा, निद्रा, भय, पसीना, कामोद्रेक, रोग, बुढ़ापा, रौद्र, ममता, मद, जनन, मरण, भ्रांति, विस्मय, शोक, चिंता, कांक्षा ये अठारह दोष हैं। इन अठारह दोषोंसे भगवंत विरहित हैं अतएव वे सदा सुखी हैं और अपने आत्मस्वरूपमें विराजते हैं।

जिनको क्षुधा नहीं है उनको भोजनकी क्या जरूरत है ? प्यास जहाँ नहीं है वहाँ पानीकी क्या आवश्यकता है ? क्षुधातृषारूपी रोग जिनको है उनके लिए भोजन पान औषधिके समान है इसलिए ऐसे रोग जहाँ नहीं हैं वहाँ औषधिकी भी क्या आवश्यकता नहीं है।

क्षुधातृषा आदि रोगोंका उद्रेक होनेपर भोजनपानरूपी औषधिका प्रयोग किया जाता है। परन्तु इन औषधियोंसे वह रोग सदाके लिए दूर नहीं हो सकते हैं, कुछ समयके लिए उपशामको पाकर तदनन्तर पुनः उद्रिक्त होते हैं। इसलिए उन रोगोंको सदाके लिए दूर करना हो तो अपनी आत्मभावना ही दिव्य औषध है।

भाई ! अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिए आये हुए शत्रुको प्रत्येक समय कुछ लांच वगैरह दे दिलाकर वापिस भेजे तो उसका परिणाम कितने दिनतक हो सकता है ? वह कभी न कभी धोखा खाये बिना नहीं रह सकता है। इसी प्रकार क्षुधातृषादि रोगोंको कुछ समयके लिए दबाकर चलना क्या उचित है ?

क्षुधातृषादिकोंकी बात क्या ? काम क्रोधादिक व्यसन जब बराबर पीड़ा देते हैं तब यह जीवन दुःखमय ही रहता है। सुखकी कल्पना करना व्यर्थ है। भोजन, स्नान, सुगन्धद्रव्यलेपन, स्त्रियोंकी संगति इत्यादिसे यह शरीर सुख बिलकुल पराधीन है। परन्तु आत्मीय सुखके लिए कोई पराधीनता नहीं है। शरीरसुख, इन्द्रियसुख अथवा संसारसुख इन शब्दोंका अर्थ एक है। वह दुःखके द्वारा युक्त है, क्योंकि भाई ! पर पदार्थोंके संसर्ग से दुःखका होना स्वाभाविक है।

निर्वाणसुख, निजसुख, आत्मसुख इन शब्दोंका एक अर्थ है। आत्मा आत्मामें लीन होकर सुखका अनुभव करता है, उसे बाकीके लोगोंकी आधीनता नहीं है। वह लोकमें अपूर्व सुख है।

अपने आत्माके लिए आत्मा ही अपनी वस्तु है। स्वयं धारण किया हुआ शरीर, मन, इन्द्रिय, वचन, स्त्री, पुत्र आदि लेकर सर्व पदार्थ परवस्तु है। शरीरसुखके लिए इन सब पदार्थोंकी अपेक्षा है।

परवस्तुओंकी अपेक्षासे रहित आत्मजन्य सुखको आत्मानुभवी ही जान सकते हैं। अथवा कर्मशून्य जिनेंद्र भगवंत ही उसे जान सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते हैं।

दीपपात्र, तेल बत्ती वगैरहकी अपेक्षा अग्निदीपके लिए रहती है। रत्न-दीपकको किस बातकी अपेक्षा है ? इसी प्रकार कर्मसहित संसारियोंको ही सुख प्राप्तिके लिए परपदार्थोंकी अपेक्षा है। कर्मरहित जिनेंद्रको इन बातों की जरूरत नहीं है।

जिस प्रकार अग्निदीपक दीपपात्रमें स्थित तैलको बत्तीके द्वारा ग्रहण-कर प्रकाशको प्रदान करता है, उसी प्रकार संसारी जीव दाल भात आटा आदि आहारद्रव्यके द्वारा शरीर इंद्रिय आदिको पोषण कर स्वयं फूलते हैं। दीपकमें तेल हो तो प्रकाश तेज रहता है। यदि तेल न हो तो मंद-प्रकाश होता है। उसी प्रकार लोकमें भी मनुष्य खावे तो मस्त, न खावे तो सुस्त रहते हैं। यह लोककी रीति है।

परन्तु भाई ! जिस प्रकार रत्नदीप तेलबत्ती वगैरहके बिना ही प्रकाशित होता है। उसी प्रकार रत्नाकरसिद्धके परमपिता आदिप्रभुका सुख परवस्तुओंकी अपेक्षासे विरहित है।

व्यंतर, सुर, नाग ज्योतिष्क आदि देवोंके अनेक जन्मके सुखोंको एक-त्रित कर भगवान् आदिप्रभुके सुखके सामने रक्खे तो वह उस सुख समुद्रके सामने बूंदके समान मालूम होते हैं।

तीन लोकको उठाकर हथेलीमें रख लेनेकी शक्ति भगवंतको है, तथापि वे वैसा करते नहीं। प्रभु होकर गम्भीरहीन कृति करना उचित नहीं, इसलिए उस जिनसभामें गांभीर्यसे वे रहते हैं।

हे वीरंजय ! अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य व अनन्तसुख इस प्रकारके चार विशिष्ट गुण प्रभुमें हैं। उनको विद्वान् लोग अनंत चतुष्टयके नामसे कहते हैं।

भाई ! ऊपर वर्णित जिनेंद्रभगवंतकी चार अंतरंग सम्पत्ति हैं। इसके अलावा मुनिगण नवकेवललब्धियोंका वर्णन करते हैं उनका भी वर्णन करता हूं, सुनो !

भाई ! परमात्मतत्त्वको न जाननेवाले भव्योंको वह परमात्मा अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा उस तत्त्वज्ञानका दान करते हैं। उसे अक्षयदान कहते हैं।

भगवंतके दिव्यवाक्यसे संसारभयको त्यागकर भव्यजन आत्मामृतका पान करते हैं। एवं अनेक सुखोंको पाकर आत्मराज्यको पाते हैं इसलिए आहार, अभय, औषध व शास्त्रदानका विधान लोकमें किया गया।

यह आत्मा मुक्त होनेतक शरीरमें रहता है। शरीरके पोषणके लिए आहारकी जरूरत है। परन्तु केवली भगवंत आहार ग्रहण नहीं करते हैं। लाभांतराय कर्मके अत्यन्त क्षय होनेसे प्रतिसमय सूक्ष्म, शुभ, अनंत, पुद्गल परमाणुरूपी अमृत उनको सुख प्राप्त कराकर जाते हैं। वह जिनेंद्रके लिए दिव्यलाभ है।

सुगंधपुष्पोंकी वृष्टि आदिभगवंतके लिए दिव्यभोग है। और छत्र, चामर, बाद्य, सिंहासन आदि सभी दिव्य उपभोग हैं जो पदार्थ एक बार भोगकर छोड़े उसे भोग कहते हैं। और पुनः-पुनः भोगनेको उपभोग कहते हैं। यह भोग और उपभोगका लक्षण है।

यथार्थ रूपसे विश्वतत्त्वका निश्चय होना उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। और शरीरकी तरफसे मोहको हटाकर आत्मामें मग्न रहना वह क्षायिकचारित्र है।

इस प्रकार क्षायिकभोग व उपभोग, क्षायिक लाभ, क्षायिक दान, क्षायिकचारित्र व सम्यक्त्व, एवं पूर्वोक्त अनन्त चतुष्टय इन नौ गुणोंको नवकेवललब्धिके नामसे कहते हैं।

सुख ही भोग उपभोग व लाभ गुणकी अपेक्षासे त्रिमुख भेदसे विभक्त हुआ। अर्थात् क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग व दिव्यलाभ ये आत्माके

अनन्तसुख नामके गुणमें ही अन्तर्भूत होते हैं। एवं अनन्तज्ञान गुण, दान, ज्ञान, सम्यक्त्व व चारित्रके रूपसे ४ भेदोंसे विभक्त हुआ। अर्थात् दान व सम्यक्त्वचारित्र ये अनन्तज्ञानगुणमें अन्तर्भूत होते हैं।

इसलिए भाई! मूलभूत गुण दो होनेपर भी भेदविवक्षासे कभी ४ भेद करते हैं। और कभी नौ भेद करते हैं। यह कथन करनेकी शैली है।

इस प्रकार सर्वांग सुन्दर अन्तरंग बहिरंग सम्पत्तिसे युक्त भगवंतको मैंने आँख भरकर देखा। भाई! बाहर तो शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होकर दिख रहा है। और अन्दर आत्मा उज्ज्वल होकर दिख रहा है। अन्दर व बाहर दोनों जगह सुज्ञानसे युक्त होकर शोभित होनेवाली वह अनादिवस्तु है।

भगवंतका शरीर दिव्य है। आत्मा दिव्य है। इसलिए देह और आत्माका अस्तित्व मणिमयरत्नसे निर्मित पात्रके अन्दर स्थित ज्योतिके समान मालूम होता है।

कंठके ऊपरके भागको उत्तमांग कहते हैं। और कटिप्रदेशतक मध्यमांग कहते हैं। कटिप्रदेशसे नीचेके भागको कनिष्ठांग कहते हैं। यह लोकका नियम है। परन्तु भगवंतका शरीर वैसा नहीं है। उनका शरीर तो मस्तकसे लेकर पादतक भी सर्वत्र परमोत्तमांग है। मरवेके पुष्पमें नीचे ऊपर मध्यका भेद है। परन्तु सुगन्धमें वह भेद नहीं है। और न्यूनाधिक्य भी नहीं है। उस परमौदारिक दिव्यदेहमें स्थित आत्मा मस्तकसे लेकर पादतक आदि मध्य अन्तमें कहीं भी सुपवित्र स्वरूपमें शोभित हो रहा है। क्या रत्नदर्पणमें ऊपर नीचे आदि अन्त, इस प्रकारका भेद है? नहीं। वह आत्मा दिव्यज्ञान व दर्शनसे युक्त है, उसके स्वरूपमें कहीं भी न्यूनता नहीं।

अन्तरंगसम्पत्ति बहिरंग सम्पत्तिसे युक्त जिनेन्द्र भगवन्तका वर्णन मैं क्या करूं। भाई! केवल उसे उभयश्रीसहित कह सकता हूं। वे कांतिके खान हैं, सुज्ञानके तीर्थ हैं। तीन लोकमें शांतिके सागर हैं इस प्रकार भव्योंके सन्देहको दूर करते हुए कामविजयी भगवान् विराजमान हैं।

निद्रा एक तरहसे मूर्च्छा है। और निद्रित मनुष्य मुर्देके समान पड़ा रहता है। भगवंतको निद्रा व जाड्य (आलस्य) नहीं हैं। वे चिद्रूप भगवंत कभी सोते नहीं हैं। हमेशा भद्रासनमें विराजमान हैं।

दुनियामें जिनको शत्रु है उनके नाशके लिए लोग अस्त्रशस्त्रादिकको धारण करते हैं, और अपना संरक्षण करते हैं। परन्तु भगवंतके कोई

शत्रु नहीं हैं। और दूसरोंसे उनको अपाय नहीं हो सकता है, और वे भी किसीके प्रति प्रहार नहीं करते हैं। इसलिए उनको अस्त्र शस्त्रादिककी आवश्यकता नहीं।

इस भवमें जो संसारी जीव हैं वे अपने आत्महितके लिए अपने देवके नामको जपते हैं। इसलिए उनको जपमालाकी आवश्यकता होती है। परन्तु भगवंतको भव नहीं है, और न उनको कोई देव ही है। ऐसी हालतमें परशिवके हाथमें जपमाला नहीं है। जप करते समय चित्त-चांचल्य होनेसे भूल हो सकती है। इसलिए १०८ मणिसे निर्मित जपमालाको हाथमें लेकर जप करते हैं। वे लोकके अन्दर व बाहर कैसे जान सकते हैं?

परमात्मसुखसे जो विरहित है, वे कामसुखके आधीन होकर स्त्रियोंके जालमें फंसते हैं। परन्तु जिनेन्द्र भगवंतको परमात्मसुखकी प्राप्ति हुई है। भाई! इसीलिए उनको रानियोंकी आवश्यकता नहीं है।

लोकमें अपने देहको सजानेके लिए शृंगार करते हैं। परन्तु निसर्ग सुन्दर जिनेन्द्रके सुन्दर शरीरके लिए शृंगारकी क्या जरूरत है? वस्त्र, आभरण आदिकी अपेक्षा तो सौन्दर्यरहित शरीरके लिए है।

भाई! विचार करो। करोड़ों चन्द्रसूर्योंके प्रकाशसे युक्त शरीरको यदि वस्त्रसे ढके तो क्या वह शोभित हो सकता है? कभी नहीं। वह तो उत्तम दिव्यरत्नको वस्त्रके अन्दर बांधकर रखनेके समान है। उसमें कोई शोभा नहीं है। भगवंतके दिव्यप्रकाशयुक्त शरीरके सामने रत्नादिककी शोभा ही क्या है? सामान्य दीपकको माणिकरत्नका संयोग क्यों? जिनेन्द्र भगवंतको रत्नाभरणकी आवश्यकता ही क्या?

भगवंतकी कांति ही देह है, कांति ही वस्त्र है और कांति ही आभूषण है। इसलिए भगवंतको कांतिनाथ, माणिक्यनाथ आदि दिव्य नामोंसे उच्चारण करते हैं।

देवगण भगवंतका दर्शन कर आनन्दित होते हैं एवं पादकमलमें पंक्तिबद्ध होकर नमस्कार करते हैं, उस समय भगवंतके पादनखोंमें वे देवगण प्रतिबिंबित होते हैं, इसलिए उनको रुण्डमालाधरके नामसे भी कहते हैं।

भगवंतने भव्योंके भवबंधनको ढीला कर पापरूपी अन्धकारको दूर किया। इसलिए उनको पुण्यबंध करनेकी इच्छा करनेवाले भव्य भक्तिसे अन्धकासुरको मर्दन करनेवाला कहते हैं।

अष्टमदरूपी मदगजोंको नष्ट करनेवाले आदिभगवंतसे शिष्टजन है ! गजासुरमर्दन ! हमारे इष्टकी पूर्ति करो, इस प्रकार प्रार्थना करते हैं।

भगवंत कोपरूपी व्याघ्रको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, इसलिए उनको व्याघ्रसुरवैरीके नामसे कहकर जय-जयकार करते हैं।

चंद्रमंडलके समान छत्रत्रय भगवंतके मस्तकके ऊपर चंद्रवैभवसे सुशोभित होते हैं ! इसलिए उनको चंद्रशेखर या चंद्रमौलिके नामसे कहकर स्तुति करते हैं।

भगवंतके शरीरमें दाहिने ओर बाँयें ओर दो नेत्र तो विद्यमान हैं बीचमें सुज्ञाननामक तीसरा नेत्र है। इसलिए उनको त्रिनेत्रके नामसे भी कहते हैं।

ललाटमें अपने मनको स्थिर करके आत्माको देखते हुए क्षणभरमें जिन्होंने कर्मजालको जलाया ऐसे भगवंतको ललाटनेत्र भी कहते हैं, उष्णनेत्र भी कहते हैं। यह सब गुणकृत नाम हैं।

कनक कमलके ऊपर भगवान् विराजमान हैं इसलिए उनको कमलासन कहते हैं। चारों तरफके पदार्थोंको वे देखते हैं, जानते हैं, इसलिए उनको चतुर्मुखके नामसे कहकर देवगण स्तुति करते हैं।

जो नष्टमार्गी हैं अर्थात् धर्मकर्मको न मानकर मोक्षमार्गको भूल जाते हैं, उनको कैवल्यमार्गको स्पष्ट रूपसे भगवंत निर्माण कर देते हैं, इसलिए उनको भक्तिसे भव्यगण सृष्टिकर्ताके नामसे कहते हैं।

ब्रह्माको कमंडलु है, ऐसा कहते हैं, इससे मालूम होता है कि वह पवित्र देहसे युक्त नहीं है। परन्तु आदिब्रह्माका शरीर अत्यन्त पवित्र है, उनको प्यास भी नहीं है, अतएव उनके पास कमंडलु नहीं रहता है।

भगवंतके निर्मलज्ञानरूपी कमरेमें तीन लोकके समस्त पदार्थ एक साथ प्रतिबिंबित होते हैं। इसलिए उस आदिमाधव भगवंतको लोग तीन लोकको अपने उदरमें धारण करनेवाले पुरुषोत्तम नामसे कहते हैं।

भाई ! जय शब्दका अर्थ जीतना है। लोकको व शत्रुओंको जीतनेसे जिन नहीं बन सकता है परन्तु अष्टादश दोषोंको जीतनेवाला ही जिन कहलाता है। भगवंतके पास बीस हजार केवली जिन रहते हैं उन सबमें भगवंत मुख्य हैं। इसलिए उनको जिननायकके नामसे कहते हैं।

परमात्मा, शिव, परशिव, जिन, परब्रह्म, पुरुषोत्तम, सदाशिव, अर्हं, देवोत्तम, वृषभनायक, आदिपरमेश आदि अनेक नामोंसे उनकी

स्तुति करते हैं। और कभी आदिजिनेश, आदिब्रह्मा, आदीश्वर आदि वस्तु आदि मध्यान्तको पाकर भी उसे स्पर्श न करनेवाला, महादेवके नामसे कहते हैं।

इसी प्रकार भाई! देवगण अनेक नामोंसे भगवंतका उल्लेख कर भक्तिसे उनकी स्तुति करते हैं। इन सब बातोंको आप लोग अपनी आँखोंसे देखेंगे। मैं क्या वर्णन करूं, इस प्रकार रविराजने कहा।

इस प्रकार रविकीर्तिकुमार जिस समय समवशरणका वर्णन कर रहा था उस समय बाकी कुमारोंमें कोई हूँ, कोई जी, कोई वाह! इत्यादि कहते हुए आनन्दसे उस पर्वतपर चढ़ रहे थे।

कोई कहने लगे कि भाई! आपने बहुत अच्छा कहा! पहिले एक दफे आपने भगवंतका दिव्य दर्शन किया है, इसलिए आप अच्छी तरह वर्णन कर सके। परन्तु हम लोगोंको आपके वर्णन कौशलसे साक्षात् दर्शनके समान आनन्द मिला।

आपने जो वर्णन किया उससे हमें एक बारके दर्शनका पूर्ण अनुभव हुआ। इसलिए हमारा अब जो दर्शन होगा वह पुनर्दर्शन है। भाई! हम लोग आज धन्य हैं। वीरंजयकुमारने आपसे प्रश्न किया। आपने प्रेमके साथ वर्णन किया, रास्ता बहुत सरलताके साथ तय हुआ। विशेष क्या? समवशरणको आँखों देखनेके समान आनन्द हुआ।

हा! नूतन दर्शनके लिए हम आये थे। परन्तु हमारे लिए पुरातन दर्शन ही हुआ। रविकीर्तिकुमारके वाक्चातुर्यका वर्णन क्या करें। कमाल है। वचनकी गम्भीरता, कोमलता, जिनसभाको वर्णन करनेकी शैली इत्यादि इसके सिवाय दूसरोंको नहीं मिल सकती है, इस प्रकार वे विचार करने लगे। शिष्यगण गुरुओंका आदर करते हुए जिस प्रकार जाते हैं, उसी प्रकार भगवंतके दिव्यचारित्रको वर्णन करनेवाले रविकीर्ति कुमारके प्रति आदर व्यक्त करते हुए वे कुमार उस पर्वतपर चढ़ रहे हैं।

"भाई देखो! आगे रत्नशिलाकी राशि है, पैरको लगेगा। सावकाश! यहाँ फूल है। होशियार!" इत्यादि आदरके साथ कहते हुए वे कुमार ऊपर चढ़ रहे हैं!

क्या ही आश्चर्यकी बात है। कथा कहने व सुननेमें खण्ड नहीं पड़ा और दृष्टि भी मार्गमें बराबर थी। इस प्रकार वे शिथिलकर्मी अपने चित्तको स्थिर कर कर्ममथन भगवंतके दर्शनके लिए उत्कंठित होकर उस पर्वतपर चढ़ रहे हैं।

कोई कह रहे हैं कि भाई ! इस कथाके लिए यह सुक्षेत्र है। यह मार्ग संसारको दूरकर मुक्ति पहुँचानेका मार्ग है। इसलिए अब बस कीजिये ! आप बहुत थक गये। यह कहते हुए आनन्दके साथ उस कैलास पर्वतपर चढ़ रहे हैं।

जब इस प्रकारकी आनन्दपूर्ण तत्वचर्चाके साथ वे सभी कुमार उस पर्वतपर चढ़ रहे थे, तब समवसरणसे सुरभेरीका शब्द दक्षिण दिग्गभो-भीरके रूपमें दूरसे सुननेमें आया। कुमारोंको और भी आनन्द हुआ।

पाठक ! भरतकुमारोंकी विद्वत्तासे चकित हुए बिना नहीं रहेंगे। अत्यन्त अल्पवयमें विरक्तिका प्रादुर्भाव होना, साथमें विशिष्ट ज्ञानका भी उदय होना सामान्य बात नहीं है। खासकर जिस तारुण्यसे यह चंचलमन विकृत होकर स्त्रियोंके जालमें फँसता है, ऐसे विकट समयमें विवेकजागृति होना सचमुचमें पूर्वजन्मके सातिशय पुण्यका ही फल समझना चाहिये। सामान्यजीवोंको यह साध्य ही नहीं है। ऐसे इन्द्रियविजयी, विवेकी, विद्वान् पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी असदृश पुण्यशाली हैं। वे सदा अपने आराध्यदेवको इस प्रकार स्मरण करते हैं कि—

"हे परमात्मन् ! आप कामविरोधी हैं, कामित फलदायक हैं, व्योमसन्निभ हैं, चिन्मय हैं, क्षेमकर हैं। इसलिए हे चिदंबरपुरुष ! स्वामिन् ! मेरे अन्तरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप पापरूपी गेहूँको पीसनेके लिए चक्कीके समान हैं। किट्टकालिमादि दोषोंसे रहित सुवर्णके समान शुद्धस्वरूप हैं। हे रत्नाकरसिद्धके गुरु निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये"। इसी भावनाका यह फल है।

इति समवसरण संधिः

—००—

दिव्यध्वनि संधिः

समवसरणसे भेरी शब्दको सुनते ही कुमार आनन्दसे नाचने लगे। जैसे कि मेघके शब्दसे मयूर नृत्य करता है। विशेष क्या ? उन राजपुत्रोंने समवसरणको प्रत्यक्ष देखा।

समवसरणके दिखनेपर हाथ जोड़कर भक्तिसे मस्तकपर चढ़ाया, व

'दृष्टं जिनेन्द्रभवनं' इत्यादि उच्चारण करते हुए एवं माणिक्यतीर्थनायक जय जय आदि भगवंतकी स्तुति करते हुए आगे बढ़े।

समवशरणको देखनेपर मालूम हो रहा था कि चाँदीके पर्वतके ऊपर इन्द्रधनुषका पर्वत खड़ा हो। तथापि वह उस चाँदीके पर्वतको स्पर्श न कर रहा है। आश्चर्य है।

रूप्यगिरीके ऊपर नवरत्न गिरीकी स्थापना किसने की होगी? सचमुचमें जिनमहिमा गोप्य है। इत्यादि प्रकारसे विचार करते हुए वे कुमार अविलम्ब जा रहे हैं।

तीन लोककी समस्त कान्ति एकत्रित होकर तीन लोकसे प्रभु आदि-भगवंतके पुरमें ही आ गई हो, इस प्रकार उस समवशरणको देखनेपर मालूम होता था, आनन्दसे उसका वर्णन करते हुए वे जा रहे हैं।

अन्दर आठ परकोटोंसे वेष्टित धूलीसाल नामक मजबूत परकोटा दिख रहा था। वह नवरत्नकी कान्तिसे इन्द्रचापके समान मालूम हो रहा था। वहाँपर चारों दरवाजोंके अन्दर अत्यन्त उन्नत गगनस्पर्शी सुवर्णसे निर्मित चार मानस्तंभ हैं, उसमेंसे एक मानस्तंभको उन कुमारोंने देखा।

उस धूलीसाल परकोटेके मूलपार्श्वमें एक हस्तप्रमाण छोड़कर रजताद्रि है, अर्थात् पर्वतको समवशरण स्पर्श करके विराजमान नहीं है, एक हस्त प्रमाण अन्तर छोड़कर है। वहाँसे पुनश्च पाँच हजार धनुष उन्नत है जिसे चढ़नेके लिए सोपानपंक्तिकी रचना है।

पर्वतके ऊपर धूलीसालतक आधा कोस दूर है, जोरसे आवाज देनेपर सुननेमें आ सकता है, तथापि इतनेमें बीस हजार सोपानकी व्यवस्था है। परन्तु वहाँपर बीस हजार सीढ़ियोंको क्रमसे चढ़नेकी जरूरत नहीं है। पहिली सीढ़ी पर पैर रखते ही वहाँके पादलेपनके प्रभावसे क्षणमात्रमें एकदम अन्तिम सीढ़ीपर जाकर खड़े हो जाते हैं, समवशरण व जिनेन्द्र-का दर्शन करते हैं। यह वहाँका अतिशय है।

भरतकुमार जो अभीतक कुछ दूर थे उस सोपानपंक्तिके पास आये, और सीढ़ीपर पैर रखते ही ऊपर धूलीसालमें पहुँच गये। सबके मुखसे जिनशरण, जिनशरण शब्दका उच्चारण सुननेमें आ रहा है।

दरवाजेमें रत्नदंडको हाथमें लेकर द्वारपालक खड़े हैं। द्वारपालकोंके पादसे मस्तकतक उनका शरीर आभरणोंसे भरा हुआ है। ऐसे उद्दंड द्वारपालकोंकी अनुमतिको पाकर सभी कुमार अन्दर प्रविष्ट हुए। वहाँ

पर उन्नत मानस्तंभके एक पार्श्वमें ही सुवर्णकुण्डमें जल भरा हुआ था। वहां पैर धोकर आगे बढ़े।

आगे जाते हुए उन परकोटोंके दरवाजेमें स्थित द्वारपालकोंकी अनुमति लेते हुए एवं इधर उधरकी शोभाको देख रहे हैं। कान्तिके समुद्रमें ही चल रहे हैं अथवा शीतल नदीमें डुबकी लगा रहे हैं, इसका अनुभव करते हुये कांतिमय व सुगंध समवशरण भूमिपर वे आगे बढ़ रहे थे।

आठ परकोटोंके मध्यमें स्थित सात वेदिकाओंको पारकर स्फटिक मणिसे निर्मित आठवें परकोटेमें वे प्रविष्ट हुए। लावण्यरस, योग्यशृंगार योग्य वैभवसे युक्त सुंदर इन कुमारोंको भगवंतकी ओर आते हुए देवेन्द्रने देखा।

सांचेमें उतार दिया हो इस प्रकारका सादृश्यरूप, सुवर्णके समान देहकांति, भरी हुई जवानी आदिको देखकर उनके सौन्दर्यसे देवेन्द्र एकदम आश्चर्यचकित हुआ।

गमनका गमक, बोलने व देखनेकी ठीवी, आलस्यरहित पटुत्व, विनय व गाम्भीर्यको देखकर देवेन्द्र आकृष्ट हुआ।

आंखोंकी कांति, दंत पंक्तिकी कांति, सुवर्णाभरणोंकी कांति, शरीरकी कांति, रत्नाभरणोंकी कांति, शरीरकी कांतिके मिलनेपर वे ज्योतिरंग पुरुष मालूम हो रहे थे। देवेन्द्र आश्चर्यसे अवाक् हो गया व मनमें विचार करने लगा। "ये कौन हैं, स्वर्गलोकमें तो कभी इनको देखा नहीं, मर्त्यलोकमें ऐसे सुंदर कुमार पैदा हो नहीं सकते। यदि हुए तो भी एक दोको ही ऐसा रूप मिल सकता है, फिर ये कौन हैं ? आश्चर्य है ! इससे यह सुन्दर है, उससे यह सुंदर है। इन दोनोंसे वह सुंदर है। वह यह क्यों कहें ये तो सभी सुन्दर ही सुन्दर हैं। फिर लोकमें ये कौन हैं।" इत्यादि प्रकारसे मनमें विचार करनेपर अवधिज्ञानके बलसे देवेन्द्र समझ गया कि ये तो भरतेश्वरके कुमार हैं। उस राजरत्नको छोड़कर ये कुमाररत्न और जगह उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

त्रिलोकीनाथका पुत्र भरतेश है। उस रत्नशलाकाकी खानमें ये कुमाररत्न उत्पन्न नहीं हुए तो और कहां होंगे ? भरतेश ! तुम धन्य हो। इस प्रकार देवेन्द्रने मस्तक हिलाया।

इधर देवेन्द्र विचार कर रहा था। उधर वे कुमार आगे बढ़कर नौवें परकोटेके अन्दर प्रविष्ट हुए। वहांपर क्या देखते हैं। तीन पीठके ऊपर सिंहके मस्तकपर स्थिर कमल है। उसे स्पर्श न करके सुज्ञानकरंडक भगवान विराजमान हैं।

लोकालोकके समस्त पदार्थोंको एकाणुमात्रमें सुज्ञानरूपी कमरेमें रख लिया है जिन्होंने ऐसे एकोदेव एवोऽद्वैतरूपी महाकीर्णकका उन्होंने दर्शन किया। अज्ञानरूपी अन्धकारको भगाकर विज्ञान सूर्यको धारण करनेवाले सुज्ञान व दर्शनरूपी शरीरको धारण करनेवाले सर्वज्ञको उन्होंने देखा। सातिशय भोगमें रहनेपर भी अपनी आत्माको देखनेसे व ध्यानाग्निके बलसे जन्मजरामरणरूपी त्रिपुरको जलानेवाले देवका उन्होंने दर्शन किया।

वेद, सिद्धान्त, तर्क, आगम इत्यादिका ज्ञान होनेपर भी उसके झगडोंसे रहित आदि अनादि कल्पनाओंसे परे आदिवस्तुको उन्होंने देखा।

वस्त्राभूषणोंसे रहित होकर सुन्दर, स्नान भोजन न करके सुखी, स्त्रियोंके बिना ही आनन्द प्राप्त, देखने, बोलने व मनके विचारमें आनेपर भी वर्णन करनेके लिए असमर्थ ऐसे जगत्पतिका उन्होंने दर्शन किया।

कोटि चन्द्रसूर्योंको एकत्रित कर सामने रखनेपर उससे भी बढ़कर देहकांतिको धारण करनेवाले कालकर्मके वैरी भगवंतको उन कुमारोंने देखा। निर्मल निर्भेदभक्ति ही माता है श्रीमंदरस्वामी ही पिता है इस प्रकारके विचारको रखनेवाले रत्नाकर सिद्धके बड़े बापको उन कुमारोंने देखा।

मार्गमें वे कुमार विचार कर आये थे कि हम जानेके बाद साष्टांग नमस्कार करेंगे, स्तुति करेंगे आदि। परन्तु यहांपर भगवंतके त्रिलोकातिशायी रूपको देखकर वे सब बातोंको भूल गये। आश्चर्यसे खड़े होकर भगवंतकी ओर देखने लगे। भगवंतके श्रीमुखमे, कंठमें, दीर्घ भुजाओंमें, हृदयमें, नाभिकूपमें चरणोंमें सुन्दर पादकमलोंमें इनकी दृष्टि गई। वहांसे वापस आना नहीं चाहती थी। वस्त्राभूषणोंकी बात ही नहीं है। रत्नदर्पण ही जिनेन्द्र हुआ है, इस प्रकार सुन्दररूपको धारण करनेवाले भगवंतके देहमें ही उनकी आंखें फिरने लगीं।

मस्तकसे पादतक पादसे मस्तकतक बराबर उनकी आंखें चढ़ती हैं। केवल आंखें ही काम कर रही हैं। ये कुमार तो आश्चर्यसे अवाक् होकर पुतलियोंके समान खड़े हैं। वहांकी निस्तब्धता व कुमारोंके मौनको भंग करते हुए स्वर्गाधिपति देवेन्द्रने प्रश्न किया कि कुमार! आप लोग भगवंतको देखकर उनके चरणोंमें नमस्कार न कर यों ही मौनसे खड़े क्यों हैं? इतनेमें वे कुमार जागृत हुए व आनन्दसे कहने लगे कि हां! भूल गये, हम लोगोंकी बाल्यलीला अभीतक गई नहीं। तीन छत्रके स्वामी हे

भगवान् ! बच्चोंकी भूलको न देखकर हमारी रक्षा कीजिये। इस प्रकार प्रार्थना की।

हाथ भरकर सुवर्णरत्नके पुष्पोंसे पुष्पांजलि अर्पण करके, देह भरकर साष्टांग नमस्कार कर, मुँह भरकर भक्तिसे उन्होंने भगवंतको स्तुति की।

नित्य निराश निरंजन निरुपम सत्य सदानंद सिंधो।
अत्यंतशांत सुकांत विमुक्ति साहित्याय ते नमः स्वाहा ॥
कायाकार कायातीत सुज्ञानकाय शुद्धात्मसुबुद्धि।
श्रेयोनाथाय लोकनाथाय निर्मायाय ते नमः स्वाहा ॥
वीतरागाय विद्यासंयुजे परंज्योतिषे श्रीमते महते।
भूतहिताय निष्पीताय भवकुलोद्भूताय ते नमः स्वाहा ॥

इत्यादि प्रकारसे भक्तिसे स्तुतिकर भगवंतको तीन प्रदक्षिणा दीं व वहाँपर विराजमान अन्य केवलियोंको भी वंदना की। गणधरोंको भी नमन कर, सभामें स्थित सर्व समुदायके प्रति एक साथ शिष्टाचारको प्रदर्शन कर ग्यारहवें निर्मल कोष्टमें वे बैठ गये। सभाकी अतुल सम्पत्ति व भगवंतके देहकी दिव्यकान्तिको देखते हुए, जिनेन्द्रके सामने ही बैठकर वे कुमार आनन्दसे पुलकित हो रहे हैं। शायद तीन लोकके अग्रभागको ही वे चढ़ गये हों, इतना आनन्द उनको हो रहा है।

रविकीर्तिराजने हाथ जोड़कर प्रभुसे प्रार्थना की स्वामिन् ! हमें आत्मासिद्धिके उपायका निरूपण कीजिये। तब मृदु मधुर गम्भीर निनादसे युक्त सात सौ अठारह भाषाओंसे संयुक्त दिव्यध्वनि भगवंतके मुख कमलसे निकली। उस राजरूपी राजबिम्ब (चन्द्रबिम्ब) को देखकर कैलाशनाथ आदि प्रभुरूपी समुद्र एकदम उमड़ पड़ा और दिव्यध्वनिरूपी समुद्रघोष प्रारम्भ हुआ।

गर्मीके संतापसे सूखे हुए वृक्षोंको यदि बरसातका पानी पड़े तो जिस प्रकार अंकुरित होते हैं उसी प्रकार संसारतापसे संतप्त भव्योंको उस दिव्यध्वनिने शांति प्रदान किया।

वह दिव्यध्वनि एक बोली ही है। परन्तु सबकी बोलीके समान वह सामान्य बोली नहीं है अर्हंतकी बोलीके बारेमें मैं क्या बोलूँ ? गला, जीभ ओंठ आदिको न हिलाते हुए बोलनेकी वह अपूर्व बोली है। मेघके शब्दको, समुद्रके घोषको ओंठ जीभ आदिकी आवश्यकता ही क्या है ? त्रिजगत्पति-

की दिव्यध्वनिके लिए इतर पदार्थोंकी अपेक्षा ही क्या है ? दूरसे सुनने वालोंको समुद्रघोषके समान सुननेमें आता है। पाससे सुननेवालोंको स्पष्ट सुनाई देता है। कोई भी भव्य कुछ भी प्रश्न करें सबका उत्तर उस दिव्य-ध्वनिसे मिलता है।

विवाह समारम्भके घरके बाहरसे एकदम घोर शब्द सुननेमें आता है। परन्तु अन्दर जाकर सुनने पर स्त्रियोंका गीत, वाद्य व इतर शब्द सुननेमें आते हैं। एक ही ध्वनिको सामने अनेक व्यक्ति सुन रहे हैं। तथापि उस ध्वनिको एक ही रूप नहीं कह सकते हैं। सुननेवाले विभिन्न परिणामके भव्योंके चित्तमें विभिन्न रूपसे परिणित होता है। इसलिए अनेक रूपसे परिणित होता है।

जिस प्रकार नदीका पानी एक होनेपर भी उसे बगीचेमें लेकर आम, इमली, कटहर, नारियल आदि अनेक वृक्षोंकी ओर छोड़नेपर वह पानी एक ही रूपका होने पर भी पात्रोंकी अपेक्षासे विभिन्न परिणतिको प्राप्त करता है, उसी प्रकार दिव्यध्वनि भी अनेक रूपमें परिणत हो जाती है।

नर सुर नागेन्द्र आदि भाषाओंसे युक्त होकर वह दिव्यभाषा एक ही है, जिस प्रकार कि रसायनमें सुगंध, माधुर्य आदि अनेकके सम्मिश्रण होनेपर भी वह एक ही है।

सर्व प्राणियोंके लिए वह हितकारक है। सर्व तत्त्वोंका मूल है। उसको प्रकट करनेवाले जिनेन्द्र अकेले हैं, सब सुननेवाले हैं। लाखों भव्योंके होनेपर भी वहां अलौकिक निस्तब्धता है।

एक आश्चर्य और है। आदि देवोत्तमका निरूपण कोई पासमें रहे या दूर रहे कोसों दूर तक एक समान सुननेमें आता है।

भव्योंको देखकर वह निकलती है। अभव्योंको देखकर वह निकल नहीं सकती है। यह स्वाभाविक है। आदिचक्रवर्ती भरतेशके पुत्र भव्य हैं। इसलिए वह दिव्यध्वनि प्रसृत हुई।

यह दिव्यध्वनि नित्य प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल और मध्यरात्रि इस प्रकार चार संधिकालमें छह घटिका निकलती है। बाकी समयमें मौनसे रहती है। बाकी समयमें कोई आसन्नभव्य आकर प्रश्न करें तो निकलती है। इन कुमारोंके पुण्यातिशयका क्या वर्णन करना। उनके पुण्यातिशयसे ही दिव्यध्वनिका उदय हुआ।

दिव्यध्वनिमें भगवंतने फर्माया कि हे रविकीर्तिराजा आत्मसिद्धिको

पाना क्या कोई कठिन है ? भव्योंके लिए वह अतिसुलभ है। संसारमें अनेक पदार्थोंको जानकर मनको अपने आत्मामें स्थिर करनेसे उसकी सिद्धि होती है।

काल अनादि है, कर्म अनादि है। जीव अनादि है यह जीव काल व कर्मके संबंधको अपनेसे हटा ले तो आत्मसिद्धि सहजमें होती है, अथवा वही आत्मसिद्धि है। इस प्रकार त्रिलोकीनाथ भगवंतने निरूपण किया।

रविकीर्तिराजने पुनः विनयसे प्रश्न किया कि स्वामिन् ! काल किसे कहते हैं, कर्म किसे कहते हैं, आत्मा किसे कहते हैं, जरा विस्तारसे निरूपण कीजिये, हम बच्चे क्या जानें। दयानिधे ! जरा कहियेगा।

भगवंतने उत्तरमें कहा कि तब हे भव्य ! सुनो ! सबसे पहिले छह द्रव्योंके लक्षणको निरूपण करेंगे आखिरको दिव्यात्मसिद्धिका वर्णन करेंगे।

लोकमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इस प्रकार छह द्रव्य तीन वायुओंसे वेष्टित होकर विद्यमान हैं।

विशाल अनन्त आकाशके बीचोंबीच एक थैलेके समान तीन वात विद्यमान है। उस थैलेमें ये छह पदार्थ भरे हुए हैं।

वे तीनों वात मिलकर एक योजनको किंचित् कम प्रमाणमें हैं। और एक एक वायु तलमें २० हजार कोस प्रमाण मोटाईमें हैं।

उन छह द्रव्योंका आधार लोक है, उन तीन वायुओंके बाहर स्थित आकाश आलोककाश कहलाता है, इतना तुम ध्यानमें रखना, अब क्रमसे आत्मसिद्धिको कहूँगा।

लोक एक होनेपर भी उसका तीन विभाग है। अधोलोक, मध्य लोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे तीन है। परन्तु लोक तो एक ही है, केवल आकार व नामसे भेद है।

एक थैलेमें जिस प्रकार तीन खम्बेका करंडक रक्खें तो मालूम होता है उसी प्रकार तीन वातोंसे वेष्टित वह तीन लोकका विभाग है।

नीचे सात नरक भूमियां हैं। वहांपर अत्यधिक दुःख है। उन भूमियों के ऊपर कुछ सुखका स्थान नागलोक है। नागलोकसे ऊपर मध्यलोककी भूमितक अधोलोकका विभाग है।

हे भरतकुमार ! मेरुपर्वतको वलयाकृतिसे प्रदक्षिणा देकर अनेक द्वीप-समुद्र हैं। वह मध्यलोक है। मेरुगिरीके ऊपर अनेक स्वर्ग विमान मौजूद हैं। उन स्वर्ग साम्राज्योंके ऊपर मुक्ति है। मेरुपर्वतसे ऊपर वातवलय पर्यंतका प्रदेश ऊर्ध्वलोक कहलाता है।

अधोलोक अर्धमृदंगके समान, मध्यलोक झल्लरीके आकारमें है। और ऊर्ध्वलोक पूर्ण खड़े हुए मृदंगके समान है। अब समझ गये न? तीन लोकके विस्तारको रज्जुनामक प्रमाणसे हम अब कहेंगे।

एक समयमें असंख्यात योजन प्रमाण जानेवाला देवविमान सतत असंख्यात वर्षतक रात्रिदिन जावें तो जितना दूर जा सकता है, उस प्रमाणका नाम एक रज्जु है। लोकके नीचेसे आखिरतक चौदह रज्जु प्रमाण दक्षिणोत्तर भागमें नीचे ७ रज्जु हैं बीचमें एक रज्जु, कल्पवासी विमानोंमें पांच रज्जु, और आखिरको एक रज्जु प्रमाण है।

इस प्रकारके प्रमाणसे युक्त लोकमें षड्द्रव्य खचाखच भरे हुए हैं। हे भव्य! अब उनके स्वरूपको हम कहेंगे। ध्यान देकर सुनो।

बीचमें ही रविकीर्तिराजने प्रश्न किया कि स्वामिन्! आपने जो निरूपण किया वह सभीके समझमें आया। परन्तु एक निवेदन है। वायु तो चंचल है। वह एक जगह ठहर नहीं सकती है, फिर उसके साथ यह लोक कंपित क्यों नहीं होता है, यह समझमें नहीं आया। कृपया यह निरूपण होना चाहिये।

भव्य! वायुमें एक चलवायु, एक निश्चलवायु इस प्रकार दो भेद हैं। चल वायु तो लोकमें इधर उधर व्याप्त है, परन्तु ये तीनों वायु चलवायु नहीं हैं, स्थिर वायु हैं।

शीतलता, निस्संगत्व, सूक्ष्मत्व आदि गुणोंमें तो कोई अन्तर नहीं, चलवायुमें कंपन है, स्थिरवायुमें कंपन नहीं है। इतना ही भेद है।

स्वर्गलोकमें स्थिर विमान चलविमान, इस प्रकार दो प्रकारके विमान विद्यमान हैं। उनके नाम आदिमें कोई भेद नहीं है। सबके नाम समान हैं इसी प्रकार स्थिर वायु और चलवायुका नाम सादृश्य होनेपर भी चलाचल का भेद है।

ताराओंमें भी एक स्थिर तारा, और एक चल तारा इस प्रकारके भेद हैं। स्थिर तारा चलती नहीं, चल तारा तो इधर उधर जाती है। इसी प्रकार वातमें भी भेद है।

स्वामिन्! मेरी शंका दूर हुई। अब छह द्रव्योंके आगे वर्णन कीजिये। इस प्रकार विनयसे मंदस्मित होकर रविकीर्तिराजने प्रार्थना की। उत्तरमें भगवंतने कहा कि हे भव्यजीव! सबसे पहिले जीव पदार्थका वर्णन करेंगे। पहिले जो दस प्राणोंके साथ जो जीता रहा है, जीता आरहा है, जी रहा है और आगे जीयेगा उसे जीव कहते हैं। वे १० प्राण कौनसे हैं। मन,

वचन, काय, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य एवं पंच इंद्रिय अर्थात् स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इस प्रकार ये दस प्राण हैं।

यह आत्मा कभी पांच इंद्रियोंसे युक्त रहता है, कभी एक, दो, तीन या चार इन्द्रियोंसे युक्त रहता है। इसलिए उन प्राणोंमें भी चार, छह, सात, आठ, नौ, इस प्रकारके विभाग होते हैं।

एक एक इन्द्रियको आदि लेकर पांच इन्द्रियतक जो जीव जन्म करता है उसमें प्राणोंका विभाग भी ४-६-७-८-९ के रूपमें कैसा होता है इसका वर्णन सुनो। वृक्ष लता आदि एकेंद्रिय जीव हैं। वे स्पर्शन इन्द्रिय मात्रसे युक्त हैं। इसलिए स्पर्शनेंद्रिय, काय, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य, इस प्रकार उन जीवोंको चार प्राण हैं। वायु, अग्नि, जल, भूमि ये चार जिनके शरीर हैं। वे भी एकेंद्रिय जीव हैं। वे इस संसारमें विशेष दुःखको प्राप्त होते हैं।

कोई कीटक वगैरह दो इन्द्रिय अर्थात् स्पर्शन रसनासे युक्त हैं। वे स्वरमात्र वचनसे भी युक्त हैं। इसलिए पूर्वोक्त ४ प्राणोंके साथ रसनेंद्रिय व वचनको मिलानेपर छह प्राण होते हैं।

चींटी आदि प्राणी तीन इन्द्रियके धारी हैं। स्पर्शनसे, रसनासे एवं नासके द्वारा पदार्थोंको वे जानते हैं। इसलिए तीन इन्द्रियधारी प्राणियोंमें ७ प्राण होते हैं।

मक्खी, भ्रमर आदि स्पर्शन, रसना, घ्राण व चक्षु इस प्रकार चार इन्द्रियको धारण करनेवाले जीव हैं। वे ८ प्राणोंको धारण करते हैं। कोई तिर्यंच प्राणियोंमें सुननेका सामर्थ्य है इसलिए पांच इन्द्रिय तो हुए। परंतु मन न होनेसे वे नौ प्राणोंको धारण करते हैं।

मन नामका प्राण हृदयमें अष्टदलाकार कमलके समान रहता है। उसमें यह जीव विचार किया करता है।

वनगज, पशु, घोड़ा, आदियोंमें भी कुछ प्राणियोंको मन है। कुछको नहीं। इसलिए उन पंचेंद्रिय प्राणियोंको जहां मन है अर्थात् जो समनस्क हैं उनको दस प्राण होते हैं, मनुष्योंको भी दस प्राण होते हैं।

तिर्यंचोंमें कोई समनस्क, कोई अमनस्क इस प्रकार दो भेद हैं। परन्तु नारकी, देव, मनुष्य ये दस प्राणोंके धारी होते हैं।

हे भव्य ! एकेन्द्रियसे पंचेंद्रियतक लोकमें जीव जीते हैं, उनकी रीति यह है। इसे तुम अच्छी तरह ध्यानमें रखो।

बाहरसे औदारिक नामक शरीर है। और अन्दर तैजस, कार्माण

नामक दो शरीर हैं। इस प्रकार तीन शरीररूपी कैदखानेमें यह जीव फँसा हुआ है। इसे भी ध्यानमें रखना।

कर्मोंके मूलसे आठ भेद हैं। तीन देहमें वे आठ कर्म उत्तर भेदसे एकसौ अड़तालीस भेदसे युक्त है। और भी उत्तरोत्तर भेदसे वे कर्म असंख्यात विकल्पोंसे विभक्त हैं। परन्तु मूलमें आठही भेद जानना।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, दुःख देनेवाला वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अंतराय, इस प्रकारके आठ कर्म उन तैजस कार्माणशरीरमें छिपे हुए हैं। उनके ऊपर यह औदारिक शरीर है। इस प्रकार तीन शरीररूपी थैलेमें यह आत्मा है।

आठ कर्मोंमें चार कर्म घातियाकर्म कहलाते हैं। और चार अघातिया कर्म कहलाते हैं, मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय ये चार कर्म घातिया हैं।

हमने पहले कहा था कि आठ कर्म ही सब कर्मोंके मूल है। इन कर्मों के मूलमें तीन पदार्थ हैं। वह क्या है सुनो! राग, द्वेष, मोह ये तीन कर्मों के मूल हैं। इनको भावकर्मके नामसे भी कहते हैं।

उपर्युक्त आठ कर्म द्रव्यकर्म हैं। और तीन भावकर्म हैं और जो शरीर दिख रहा है वह नोकर्म है। इसलिए कर्मकाण्ड तीन प्रकारका है, द्रव्य-कर्म, भावकर्म और नोकर्म।

नोकर्म तैलयंत्रके समान है, द्रव्यकर्म तो खलके समान है। और भाव-कर्म तेलके समान है एवं आत्मा आकाशके समान है।

जिस प्रकार तेलीके यहाँ यंत्र, खल, तेल व आकाश ये चार पदार्थ रहते हैं इसी प्रकार द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म और आत्माका एकत्र संयोग है। अर्थात् आत्मा इन तीनोंके बीच स्थान पाकर रहता है।

तीनों कर्मकांडोंमें वर्ण, रस, गंध, रूप, गुण मौजूद है। परन्तु आत्मा को वर्णादिक नहीं हैं, वह तो केवल सुज्ञानज्योतिसे युक्त है।

उस तैलयंत्रके बीचमें स्थित आकाशके समान यह आत्मा इस शरीर में पादसे लेकर मस्तकतक सर्वाङ्गमें सम्पूर्ण भरा हुआ है। चाहे लकड़ी मोटी हो या छोटी हो उसके प्रमाणसे अग्नि रहती है, उसी प्रकार यह शरीर मोटा हो या छोटा हो उसके प्रमाणसे आत्मा गुरुदेह लघुदेहमें रहता है।

लकड़ीके भागको उल्लंघन कर अग्नि नहीं रह सकती है। जितने प्रमाणमें लकड़ी है उतने ही प्रमाणमें अग्नि है। इसी प्रकार यह आत्मा

भी जितने अंशमें देह है, उतने अंशमें सर्वज्ञ भरा हुआ है। देहप्रमाण आत्मा है।

वृक्षके अन्दरके भागमें अर्थात् काष्ठभागमें अग्नि है, परन्तु बाहरके पत्तोंमें अग्नि नहीं है। इसी प्रकार आत्मा इस शरीरमें अन्दर भरा हुआ है, परन्तु बाहरके रोमसमूह, केश और नखोंमें यह आत्मा नहीं है। शरीरके भागमें नाखूनसे दबानेपर जहाँतक दर्द होता है वहाँतक आत्मा है। यह समझना चाहिए। जहाँ दर्द नहीं है वहाँ आत्मा नहीं है। नख, केश व रोमोंमें दर्द होता नहीं, इसलिए वहाँपर आत्मा भी नहीं है। इस बातको हे भव्य! अच्छी तरह ध्यानमें रक्खो।

छह द्रव्योंमें द्रव्य, गुण और पर्यायके भेदसे तीन विकल्प होते हैं। उनको भी दृष्टांतके साथ अब वर्णन करेंगे।

कनक अर्थात् सुवर्णनामक द्रव्य है, उसका गुण पीतवर्ण है। हार, कंकण, कुण्डल आदि उसके पर्याय हैं। इसी प्रकारके तीन विकल्पोंको सभी द्रव्योंमें लगा लेना चाहिए।

दूध नामक पदार्थ रसद्रव्य है। मधुर, श्वेत, आदि उसके गुण है। दही, छाछ, मक्खन आदि उसके पर्याय हैं।

निराकाररूपी पदार्थ जीव द्रव्य है उसके गुण ज्ञान दर्शन है। कर्मके वशीभूत होकर मनुष्य, देव आदि गतियोंमें भ्रमण करना यह पर्याय है।

द्रव्यदृष्टिसे पदार्थ एक होनेपर भी पर्याय भेदसे अनेक विकल्पोंसे विभक्त होते हैं। द्रव्यपर्याय व गुणके समुदाय ही यह पदार्थ है। यह सभी द्रव्योंका स्वभाव है।

जिस प्रकार कंकणको कुण्डल बना सकते हैं। कुण्डलको बिगाड़कर हार बना सकते हैं। हारको भी तोड़कर सोनेकी थाली बना सकते हैं। इस प्रकार सोनेके अनेक पर्याय हुए परन्तु सुवर्ण नामका द्रव्य एक ही है। उसमें कोई अन्तर नहीं है।

यह मनुष्य एक दफे मृग होता है। मृग ही देव बनता है। देव वृक्ष होता है। मनुष्य, मृग, देव, व वृक्षके भेदसे जीवके चार पर्याय हुए। परन्तु सबमें भ्रमण करनेवाला जीव एक ही है।

पुरुष स्त्री बन जाता है, स्त्री पुरुष बन जाती है। और वही कभी नपुंसक पर्यायमें जाती है, इस प्रकार ये तीन पर्याय हैं। परन्तु उन तीनों-में जीव एक ही है।

अणुमात्र देहको धारण करनेवाला जीव हजार योजन प्रमाणके

शरीरको धारण करनेपर उतना ही बड़ा होता है। बीचके अनेक प्रमाणके शरीरको धारण करनेपर उसी प्रमाणसे रहता है।

हे भव्य! यह सब वर्णन किसी एक जीवके लिए नहीं है। सभी संसारी जीवोंकी यही रीति है। समस्त कर्मोंको दूर करके जो आत्माको देखते हैं, वहां कोई झंझट नहीं हैं।

देखो! स्फटिकरत्न तो बिलकुल शुभ्र है। जिस प्रकार उसके पीछे अन्य रंगके पदार्थोंको रखनेपर उसका भी वर्ण बदलता रहता है, उसी प्रकार तीन शरीररूपी घटके सम्बन्धसे यह आत्मा अतिकल्मष होकर संकटोंका अनुभव करता है।

यह आत्मा शरीरमें रहता है। परन्तु उसे कोई शरीर नहीं है। सुज्ञान ही उसका शरीर है। आत्मा शरीरको स्पर्श करनेपर भी उससे अस्पृष्ट है, परन्तु शरीरके सर्वांगमें भरा हुआ है। यह आत्माका अंग है।

यह आत्मा आगसे जल नहीं सकता है। पक नहीं सकता। पानीसे भींग नहीं सकता है। अस्त्र, शस्त्र कुल्हाड़ी आदिसे छेदा भेदा नहीं जा सकता है। पानी, अग्नि, अस्त्र, शस्त्रादिककी बाधा शरीरके लिए है, आत्माके लिए नहीं।

मांस-रक्त, चर्ममय प्रदेशमें रहनेपर भी दूध मांसचर्ममय नहीं है। अपितु संसेव्य है। उसी प्रकार मांसास्थिचर्म कर्मरूपी शरीरमें रहनेपर भी आत्मा शुद्ध है, परम निर्मल है।

यह आत्मा लोकके अन्दर व बाहर जानता है व देखता है। कोटिसूर्य व चन्द्र के प्रकाशसे युक्त है। जिस प्रकार मेघसे आच्छादित होकर प्रतापी सूर्य रहता है, उसी प्रकार यह आत्मा कर्ममेघसे आच्छादित होकर रहता है।

तीन लोककी हाथसे उठाकर हथेलीमें रखनेकी शक्ति इस आत्माको है। तीन लोकका जितना प्रमाण है उतना ही इसका भी प्रमाण है। अर्थात् तीन लोकमें सर्वत्र वह व्याप्त हो सकता है परन्तु जिस प्रकार बीजमें वृक्ष रहता है, उसी प्रकार सर्व शक्तिमान् यह आत्मा इस छोटेसे शरीरमें रहता है।

रविकीर्ति! कर्मके नाश करनेपर तो सभी हमारे समान ही बनते हैं। उन कर्मोंका-नाश किस प्रकार किया जा सकता है उसका वर्णन आगे किया जायगा। यह जीवके स्वरूपका कथन है। अब पुद्गलके सम्बन्धमें कहेंगे। उसे भी अच्छी तरह सुनो।

रविकीर्तिराजने बीचमें ही कहा कि प्रभो ! यहाँ एक शंका है। आपश्रीने फरमाया कि आठ कर्म तो तैजस कार्माण शरीरके अन्दर रहते हैं तो फिर बाहरका शरीर (औदारिक) तो उन कर्मोंसे बाहर है, ऐसा अर्थ हुआ। अर्थात् औदारिक शरीरके लिए कर्मोंका कोई सम्बन्ध नहीं है भगवंतने उत्तरमें फरमाया कि ऐसा नहीं है। सात कर्म तो अन्दरके तैजस कार्माण शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु नामकर्म तो बाहर व अन्दरके दोनों शरीरोंसे सम्बन्ध रखता है अर्थात् सातकर्म तो तैजस कार्माणमें रहते हैं। परन्तु नामकर्म तो औदारिक व उन अन्तरंग शरीरोंमें भी रहता है, अब समझ गये ?

रविकीर्ति राजने कहा कि 'समझ गया, लोकनाथ !'

आगे पुद्गल द्रव्यका वर्णन होने लगा। पूरण व गलनसे युक्त मूर्तवस्तुका नाम पुद्गल है। पूरकर व गलकर वह पदार्थ तीन लोकमें सर्वत्र भरा हुआ है।

पांचवर्ण, आठ स्पर्श, दो गन्ध और पाँच रस इन बीस गुणोंसे वह पुद्गल युक्त है। पाँच इंद्रियोंके विषयभूत पदार्थ, पाँच इन्द्रिय, आठ कर्म, पांच शरीर, मन आदि मूर्त पदार्थ सभी पुद्गल हैं।

वह पुद्गल स्थूल सूक्ष्मके भेदसे पुनः छह भेदसे विभक्त होता है। उन स्थूल, सूक्ष्मोंके भेदको भी सुनो। स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म, इस प्रकार छह भेद हैं। पत्थर, जमीन, आदि पदार्थ स्थूलस्थूल है। जल तेल आदि स्थूल है। छाया, धूप, इंद्रियोंको गोचर होनेवाले शीतल पवन, ध्वनि, सुगन्ध आदिक सूक्ष्म-स्थूल हैं। कर्मरूपी पुद्गल सूक्ष्म है। इससे भी अधिक सूक्ष्मसूक्ष्म गुणसे युक्त और एक पुद्गलका भेद है। इस प्रकार पुद्गलके छह अंग हैं।

सरलतासे निकालना, जरा सावकाशसे निकालना, निकालनेपर भी नहीं आना मृदु चार इन्द्रियोंसे गम्य, कर्मगम्य ये पाँच भेद हैं। परन्तु छठे सूक्ष्मसूक्ष्म नामके भेदमें ये नहीं पाये जा सकते हैं।

इस पुद्गलका तीन भेद है। अणु, परमाणु व स्कंधके भेदसे तीन प्रकार है। परमाणु पांचों ही इन्द्रियोंसे गोचर नहीं हो सकता है। उससे सूक्ष्म पदार्थ लोकमें नहीं है। उसे ही सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं।

अनन्त परमाणुओंके मिलनेपर एक अणु बनता है। दो तीन चार आदि अणुओंके मिलनेपर पिंडरूप स्कंध बनता है। इस प्रकारके पर्याय पुद्गलके हैं।

अणुके निम्न श्रेणीमें स्थित परमाणु एक दो तीन आदि संख्यामें मिलकर अणुतक पहुँच जाते हैं। वह भी एक तरहसे स्कंध है, क्योंकि अणु भी कारणस्कंध कहलाता है।

अणु, परमाणु, स्कंधके रूपमें कभी पुद्गलके तीन भेद होते हैं तो कभी अणु शुद्धको छोड़कर परमाणु व स्कन्धके नामसे दो ही भेदको करते हैं।

परमाणुको स्पर्शन, रसना, गन्ध वर्ण मौजूद है। परन्तु शब्द नहीं है। परमाणु मिलकर जब स्कन्ध बनते हैं। तब शब्द की उत्पत्ति होती है। वह पर्याय है।

पुद्गलके पर्यायमें स्थिर पर्याय और अस्थिर पर्याय नामक दो भेद हैं। पृथ्वी, मेरुपर्वत आदि स्थिर पर्याय हैं। बाकी पृथक्-पृथक् संचरण करनेवाले अस्थिर पर्याय हैं। अभी तक पुद्गलका वर्णन किया अब आगेके द्रव्यका वर्णन करेंगे।

"प्रभो। ठहर जाइये! मेरी यहाँपर एक शंका है, हे चिद्गुणाभरण! कृपाकर कहियेगा। आपने फरमाया कि पांच शरीर पुद्गल हैं। परन्तु कर्मके वर्णनमें तीन ही शरीरोंका वर्णन किया। ये दो शरीर और कहाँसे आये? कृपया कहिये।" रविकीर्तिराजने प्रश्न किया।

उत्तरमें भगवंतने कहा सुनो! नारकियोंको, देवोंको औदारिक शरीर नहीं है, उनको वैक्रियक शरीर है और वैक्रियके साथ उनको क्रूर तैजस व कार्माण शरीर रहते हैं। इस प्रकार उनको तीन शरीर हैं। मनुष्य व तिर्यंचोंका शरीर प्राप्त आकारमें ही रहता है। उसे औदारिक कहते हैं। परन्तु देव नारकी इच्छित रूपमें अपने शरीरको परिवर्तन कर सकते हैं, वह वैक्रियक है।

उत्तम संयमको धारण करनेवाले मुनियोंको तत्वमें संशय उत्पन्न होनेपर मस्तकमें एक हस्तप्रमाण शुभ सूक्ष्म शरीरका उदय होकर हमारे समीप आ जाता है। और संशयनिवृत्त होकर जाता है। उसे आहारक[1] शरीर कहते हैं। तत्त्वविषयका संदेह दूर होते ही स्वतः अन्तर्मुहूर्तके अन्दर नष्ट होता है। फिर वह मुनिराज सदाको भाँति रहते हैं। उसे आहारक

---

१. आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहो।
गत्ता केवलि पासं तम्हा आहारगो जोगो॥
—नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ती

शरीर कहते हैं। इस प्रकार आहारक, औदारिक, वैक्रियक, तैजस व कार्माणके भेदसे शरीरके पाँच भेद हैं।

इसी प्रकार लोकमें धर्म व अधर्म नामक दो द्रव्य सर्वत्र भरे हुए हैं। निर्मल आकाशके समान अमूर्त है, अखण्ड है।

धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन करनेके लिए सहकारी है, और अधर्मद्रव्य ठहरनेके लिए सहकारी है। जिस प्रकार कि पानी मछलीको चलनेके लिए सहकारी व वृक्षकी छाया धूपमें चलनेवालोंको ठहरनेके लिए सहकारी है। जो नहीं चलता है उसे धर्मद्रव्य जबर्दस्ती चलाता नहीं, चलनेवालोंको रोकता नहीं है, पानीमें मछली जिस प्रकार चलती है, यदि वह ठहर जाय तो पानी उसे जबर्दस्ती चला नहीं सकता है। और चलनेवाली मछलीको रोक भी नहीं सकता है। परन्तु वहांपर चलनेके लिए पानी ही सहकारी है। क्योंकि पानीके बिना केवल जमीनपर वह मछली चल ही नहीं सकती है। इसी प्रकार जीव पुद्गल इधर-उधर चलनेवाले पदार्थ हैं। उनको चलानेके लिए बाह्य सहकारी धर्मद्रव्य है।

वृक्षकी छाया चलनेवालोंको हाथ पकड़कर बैठनेके लिए नहीं कहती है। बैठनेवालोंको रोकती भी नहीं है। परन्तु थके हुए पथिक वृक्षकी छायामें ही बैठते हैं, कठिन धूपमें बैठते नहीं हैं इसलिए, बैठनेवाले जीव पुद्गलोंके बैठनेके लिए अथवा ठहरनेके लिए बाह्य सहकारी जो द्रव्य है वह अधर्म द्रव्य है।

आकाश नामक और एक द्रव्य है जो कि लोक अलोकमें अखंड रूपसे भरा हुआ है। और सभी द्रव्योंको जितना चाहे उतना अवकाश देकर महाकीर्तिशालीके समान विशाल हैं।

काल नामका द्रव्य परमाणुके रूपमें तीन लोकमें सर्वत्र भरा हुआ है। वह परमाणु अनंत संख्यामें होनेपर भी एक दूसरेसे मिलते नहीं। रत्नराशिके समान भिन्न-भिन्न हैं।

स्पर्श, रस, गंध वर्णादि उन कालाणुओंको नहीं है। आकाशके रूपमें ही है। कदाचित् आकाशको ही परमाणु रूपमें खंडकर डाल दिया है। ऐसा मालूम हो रहा है। लोकमें वह सर्वत्र भरा हुआ है।

उसमें व्यवहारकाल व निश्चयकालके भेदसे दो विभाग हैं। लोकमें व्यवहारके लिए उपयुक्त दिन, मास, घटिका निमिष, वर्ष, याम, प्रहर आदि सभी व्यवहार काल हैं। इस अमित लोकमें सर्वत्र भरा हुआ निश्चय काल है। पदार्थोंमें नवीन, पुराना आदि परिवर्तनके लिए वह

कालद्रव्य कारण है। अन्य द्रव्योंकी वर्तनाके लिए वह कारण है। जिस प्रकार कि विदूषक अपने मुखको टेढ़ा-मेढ़ा कर हंसकर दूसरोंको हंसाता है।

हे भव्य! जीव पुद्गलको आदि लेकर छह द्रव्योंका वर्णन किया गया। उन छह द्रव्योंके मूलमें कुछ तरतमभाव है, उनको अब अच्छी तरह सुनो!

आकाश धर्म व अधर्म द्रव्य एक एक स्वतंत्र होकर असंडरूप हैं। परन्तु जीव पुद्गल व काल ये तीन द्रव्य असंख्यात कहलाते हैं।

अनेक जीवोंकी अपेक्षा जोव खण्डरूप है। परन्तु एक जीवकी अपेक्षा असंडरूप है। कालाणु भी अनेककी अपेक्षा खंडरूप है, परन्तु एक अणुकी अपेक्षा तो अखंड ही है।

पुद्गलके स्कंधको भिन्न करने पर खंड होते हैं, एवं मिले हुए अणुओं-को भिन्न करने पर खण्ड होते हैं। परमाणु मात्र अखंडरूप ही है। वह खण्डित नहीं हो सकता है।

छह द्रव्योंमें पुद्गल ही मूर्त है, बाकीके पांच द्रव्य मूर्त नहीं है। साथमें हे रविकीर्ति! उन द्रव्योंमें ज्ञानसे युक्त द्रव्य तो जीव एक ही है। अन्य द्रव्योंमें ज्ञान नहीं है। गतिके लिए सहकारी धर्मद्रव्य ही है। स्थितिके लिए सहकारी अधर्म ही है। स्थान दानके लिए आकाश ही समर्थ है। वर्तना परिणतिके लिए काल ही कारण है। अर्थात् वे द्रव्य अपने-अपने स्वभावके अनुसार ही कार्य करते हैं। अपने कार्यको छोड़कर दूसरोंका कार्य वे कर नहीं सकते हैं।

जीव पुद्गल दो पदार्थ संचरणशील हैं अर्थात् वे आकाश प्रदेशमें इधर-उधर चलते हैं। परन्तु बाकीके ४ द्रव्य इधर-उधर चलते नहीं हैं। परस्पर बंध भी जीव पुद्गलोंमें है, बाकीके द्रव्योंमें वह नहीं है।

जीवके संचलनेके लिए पुद्गल कारण है पुद्गलके चलनेके लिए काल कारण है। इस प्रकार काल, कर्म व जीवका त्रिकूट मिलकर चलन होता है। जीवद्रव्य जबतक कर्मके साथ युक्त रहता है तब तक वह चतुर्गति भ्रमण रूप संसारमें चलता है। परन्तु कर्मोंको नष्टकर मुक्ति साम्राज्यमें जब जा विराजमान होता है तब वह चलता नहीं है।

लोकमें छह द्रव्य एकमेक मिलकर सर्वत्र भरे हुए हैं। परन्तु एकका गुण दूसरेका नहीं हो सकता है। अपने-अपने स्वरूपमें स्वतंत्र है।

पंक्तिबद्ध होकर यदि लोकके समस्त जीव खड़े हो जायें लोकका स्थान पर्याप्त नहीं है। पुद्गलद्रव्य तो उससे भी अधिक स्थूल है। इसी प्रकार काल द्रव्य, धर्म अधर्म आकाशमें सर्वत्र भरे हुए हैं।

जिस प्रकार दूधके घड़ेमें मधुको भर दिया जाय तो वह उसमें समा जाता है। उसी प्रकार आकाश द्रव्यके बीचमें बाकीके द्रव्य समा जाते हैं।

गूढ़ नागराजके बीच छिपे हुए गूढ़निधिके समान तीन गाढ़ वातके बीच ये छह द्रव्य छिपे हुए हैं।

एक परमाणु जितने स्थानमें ठहर सकता है उसे एक प्रदेश कहते हैं। पुद्गल संख्यात, असंख्यात, अनंत व अनंतानंत प्रदेशी है। आकाश अनंत प्रदेशी है। जीव, धर्म व अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं। हे भव्य ! काल द्रव्यके लिए एक ही प्रदेश है। काल द्रव्यका प्रदेश अत्यंत अल्प है, क्योंकि वह एक ही प्रदेशको घेरकर रहता है अतएव वह काय नहीं है। बाकी पाँच द्रव्य अस्तिकायके नामसे कहलाते हैं।

गुण, पर्याय, वस्तुत्व इन तीन लक्षणोंसे काल द्रव्यको छह द्रव्योंमें शामिल किया है परन्तु काल द्रव्य एक प्रदेशी है, अनेक प्रदेशी नहीं है। इसलिए अस्तिकाय पाँच ही हैं।

हे रविकीर्ति ! द्रव्य छह हैं। उनमें पाँच अस्तिकाय हैं अब तत्त्व सात हैं। उनका भी विवेचन अच्छी तरह सुनो।

इस प्रकार भगवान् आदि प्रभुने षट्द्रव्य, पंचास्तिकायोंका निरूपण दिव्यध्वनिके द्वारा कर सप्त तत्त्वोंका निरूपण प्रारंभ किया।

आदिचक्रेश भरतेश पुत्र सचमुचमें धन्य हैं, जिन्होंने समवशरणमें पहुँचकर साक्षात् तीर्थंकरका दर्शन किया, दिव्यध्वनि सुननेका भाग्य पाया। अनेक जन्मोंसे जिन्होंने ज्ञानार्जन करनेका अभ्यास किया है। विशिष्ट तपश्चरण किया है वे ही ऐसे सातिशय ज्ञानधारी केवलज्ञानी तीर्थंकरोंके पादमूलमें पहुँचते हैं। ऐसे पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी धन्य हैं। वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! आप अक्षराभरण हैं, निरक्षर ज्ञानको धारण करनेवाले हैं, पापको क्षय करनेवाले हैं, परम पवित्र हैं। विमलाक्ष हैं। इसलिए हे चिदंबरपुरुष ! मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो और मेरी रक्षा करो।

हे सिद्धात्मन् ! आप आकाशरूपी पुरुष हो, आकाशके आकार में हो, आकाशरूपी हो, आकाशरूपी शरीरसे युक्त हो, आकाशाधार हो। इसलिए हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति दिव्यध्वनिसंधिः

—००—

तत्त्वार्थ संधिः

देवाधिदेव भगवान् आदिप्रभुने उस रविकीर्तिराजको आत्मकल्याणके लिए जीवादि सप्ततत्त्वोंका निरूपण किया। क्योंकि लोकमें तीर्थंकरोंसे अधिक उपकारक और कोई नहीं है।

हे भव्य रविकीर्ति ! सुनो, अब सप्ततत्त्वके मूल, रहस्य आदि सबका वर्णन करेंगे, बादमें कर्मोंको नाशकर कैवल्यको पानेके विधानको भी कहेंगे। अच्छी तरह सुनो। तत्त्व सात हैं, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा व मोक्ष। इस प्रकार सात तत्त्वोंके स्वरूपको सुनो। जीव बुद्धात्मा कहलाते हैं। तीन शरीरसे रहित जीव शुद्धात्मा कहलाते हैं। सिद्ध परमात्मा मुक्त हैं, उनको कोई शरीर भी नहीं है। सिद्ध, मुक्त, निर्देही इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है संसारी, बुद्ध, संदेही इन शब्दोंका अर्थ एक ही है।

स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इस प्रकार पांच इन्द्रिय व दश प्राणोंका धारण करनेवाले शरीर व कर्मसे युक्त संसारी जीव कहलाते हैं। इन्द्रिय, शरीर, कर्म, प्राण, इनका नाश होकर जब यह आत्मा ज्ञानेन्द्रिय व ज्ञान शरीरको पाकर मुक्ति सुखको पाता है, उस समय शुद्ध जीव अथवा मुक्त जीव कहलाता है। हे भव्य ! जितने भी जीव मुक्त हुए हैं वे सब पूर्वमें संसार युक्त थे अनन्तर मुक्तिसे कर्मको नाशकर शरीरके अभावमें मुक्त हुए हैं, मुक्तजीव सदासे मुक्तिमें ही रहते आये नहीं, अपितु विचार करने पर वे संसारमें ही रहते थे। परन्तु कर्मको दूरकर मुक्तिको गये हैं। वे संसारमें अब वापस नहीं आते हैं। उनको नित्य ही मुक्ति है। हे रविकीर्ति ! आप लोगोंके भी कर्मका नाश हो जाय तो आप लोग भी

उनके समान ही मुक्त होंगे। यह संसार नित्य नहीं है। भव्योंके लिए वह अविनश्वर मुक्ति ही नित्य है।

हे भव्य ! उन जीवोंमें भव्य व अभव्योंका भेद है। भव्य तो मुक्तिको पाते हैं। अभव्य मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकते हैं। भव्योंमें भी सार-भव्य और दूरभव्य इस प्रकार दो भेद हैं। सारभव्य तो शीघ्र मुक्तिको प्राप्त करते हैं। दूरभव्य तो विलम्बसे मुक्तिको जाते हैं।

कुछ भवोंमें मुक्ति पानेवाले सारभव्य हैं। अनेक भवोंमें मुक्ति पाने-वाले दूरभव्य हैं। इतना ही अन्तर है। सारभव्य हो या दूरभव्य हो जो मोक्षकलाको पानेवाले हैं वे सुखी हैं।

अभव्य जीव इस जन्म-मरणरूपी संसारमें परिभ्रमण करते हैं। वे दुःख देनेवाले कर्मको नष्ट कर मुक्तिको प्राप्त नहीं करते हैं।

वे अभव्य जीव शरीरको कष्ट देकर उग्र तप करते हैं। अहंकारसे शास्त्र पठन करते हैं व अपनी विद्वत्ताका प्रदर्शन करते हैं, स्वर्गमें जाते हैं इस प्रकार संसारमें ही परिभ्रमण करते हैं। मुक्तिको नहीं जाते हैं। आत्मसिद्धको नहीं पाते हैं। स्वर्गमें व ग्रैवेयक विमानपर्यंत जाते हैं। फिर भी दुर्गतियोंमें ही पडते हैं। वे अज्ञानी अपवर्गमें चढते नहीं हैं।

नरक, तिर्यंच, निगोदराशि आदि नीच योनियोंमें व मनुष्य देव आदि गतियोंमें बार-बार जन्म लेते हैं। परन्तु मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

बीचमें ही रविकीर्तिने प्रश्न किया कि स्वामिन् ! तपश्चर्या कर व अनेक शास्त्रोंको अध्ययन कर भी वे मुक्तिको क्यों नहीं पाते हैं ?

उत्तरमें भगवंतने कहा कि तपश्चर्या व शास्त्रपठन बाह्याचरण है। वह आत्मविचार नहीं है। आत्महितके लिए तो आत्मध्यानकी ही आव-श्यकता है। उसका निरूपण आगे करेंगे। अस्तु वह भव अभव्योंके लिए ध्रुव है भव्योंके लिए ध्रुव नहीं है। उनको तो मुक्ति ही ध्रुव है। जीवोंमें मुक्तजीव, संसारीजीवका नामभेद होनेपर भी शक्तिकी अपेक्षासे कोई अन्तर नहीं है। आत्माकी शक्तिको जो व्यक्तमें लाते हैं वे मुक्तजीव हैं। व्यक्तमें न लानेवाले संसारी जीव है। क्योंकि आत्माकी शक्ति तो एक है।

सिद्धोंकी निर्मल आत्माका गुण चिद्गुण है, बुद्धात्माओंका गुण भी वही है। सिद्धात्मा ज्ञानी है बुद्धात्मा भी ज्ञानी है शुद्ध व बुद्धका ही भेद

है, अन्य भेद नहीं है। एक उत्तम सोना व दूसरा हल्का सोना, दोनों सोने ही कहलाते हैं। पीतल कांसा वगैरह नहीं। किट्टकालिमादि दोषोंसे युक्त सोना हल्का सोना कहलाता है। सर्वथा दोष रहित सोना उत्तम कहलाता है। उत्तम व हल्केका भेद है, अन्यथा सुवर्ण तो दोनों ही हैं। पुटपर चढ़ाने पर छह सात टंचका सोना भी शुद्ध होकर सौ टंचका सोना बन जाता है। उसी प्रकार कर्ममलको जलाने पर यह आत्मा भी परिशुद्ध होकर मुक्त होता है।

दोषसे युक्त अवस्थामें सोनेका रंग छिपा हुआ था, परन्तु पुटपर चढ़ानेके बाद दोष जल गये, वह उसका रंग बाहर आया, तब उसे विशुद्ध सोना कहते हैं। इसी प्रकार छिपे हुए गुण दोषोंके नाश होने पर जब बाहर आते हैं तब उसे मुक्तात्मा कहते हैं।

शक्तिकी अपेक्षा सर्व जीवोंमें ज्ञान, दर्शन, शक्ति व सुख मौजूद है, परन्तु सामर्थ्यसे कर्मको दूर कर जो बाहर उन गुणोंको प्रकट करते हैं वे ही मुक्त होते हैं, उस व्यक्तिका ही नाम मुक्ति है।

बीजके अन्दर स्थित वृक्ष शक्तिगत है। उसे बोकर अंकुरित कर पल्लवित कर जब वृक्ष किया जाता है उसे व्यक्त कहते हैं, इसी प्रकार जीवोंमें भी शक्ति व्यक्तिका भेद है।

जीवतत्वकी कलाको ध्यानमें रखना, अब निर्जीव तत्वका निरूपण करेंगे। जीवतत्त्वको छोड़कर बाकी पांच द्रव्य निर्जीव हैं। आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल इन पांच द्रव्योंको सुख दुःखका अनुभव नहीं होता है। उनको देखने व जाननेकी शक्ति नहीं है। इसलिए उनको निर्जीव अथवा अजीव कहते हैं। उनमें चार द्रव्य तो दृष्टिगोचर होते नहीं हैं। परन्तु पुद्गल तो दृष्टिगोचर होता है। षालगर्भमें वह पुद्गल-द्रव्य सर्वत्र भरा है। पुद्गलके छह भेदोंका वर्णन पहले कर ही चुके हैं।

स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, ये पुद्गलके तीन भेद तो सबको दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु बाकीके तीन भेद तो किसीको दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। कर्म वर्गणा नामक सूक्ष्मपुद्गल स्निग्ध व रूक्ष रूपमें है। स्निग्ध पुद्गल तो रागरूप है और रूक्षपुद्गल द्वेषरूप है यह पुद्गल आत्मा प्रदेश में बंधको प्राप्त होता है।

भोजन करना, स्नान करना, सोना इत्यादि विषयोंको मनुष्य प्रत्यक्ष देखता है। यह सब पुद्गलकी ही क्रियामें है। बाकी पांच द्रव्योंको तो कौन देखता है? नदी, पानी, बरसात, खेत, घर, तम्बू, हवा, शीत,

गर्मी, पर्वत, मेघ, शरीर, आमला मधुर, कडूवा, चरपरा, लाल, पीला, काला, सफेद वगैरह सभी पुद्गल हैं। रत्नहार, कंकण, नथ, हार, वगैरह आभरण, धन, कनक, पीतल, ताम्र, चांदी वगैरह सर्व पुद्गल है।

बड़े घड़ेमें जिस प्रकार पानी भरा रहता है उसी प्रकार लोकमें यह पुद्गल भरा हुआ है। समुद्रमें जिस प्रकार मछलियां रहती हैं उस प्रकार वहां जीवगण विद्यमान हैं।

पूर्वमें कह चुके हैं कि तीन पुद्गल दृष्टिगोचर होते हैं। और तीन नहीं होते हैं। जो दृष्टिगोचर नहीं होते हैं वे सर्वत्र भरे हुए हैं। उनके बीच जीव छिपे हुए है।

पर्वत, वृक्ष, भित्ति आदि जो पुद्गल हैं वे चलनेवाले जीवादिकोंको रोकते हैं। परन्तु परमाणु अणु तो अत्यन्त सूक्ष्मपुद्गल हैं। वे किसीको भी आघात नहीं करते हैं।

धर्मादि चार द्रव्य तो कुछ हां न नहीं कहते हुए मौनसे रहते हैं परन्तु जीवपुद्गल तो आपसमें लड़नेवाले पहलवानोंके समान हैं।

उनका बिलकुल सम्बन्ध नहीं है, यह नहीं कह सकते, परन्तु काल द्रव्य जिधर कर्म जाता है उधर चला जाता है। पुद्गलकी परिणतिके लिए वह कारण है। इसलिए मालूम होता है कि उसके ही निमित्तसे जीव पुद्गलोंका व्यवहार चल रहा है।

इसलिए जीव पुद्गल व काल इन तीन द्रव्योंको अनादि कहते हैं। नहीं तो जबकि छह ही द्रव्य अनादि हैं तो तीन ही द्रव्योंमें यह भिन्नता क्यों आई? इसलिए लोकमें इस बातकी प्रसिद्धि हुई कि कर्म आत्मा व काल ये तीन पदार्थ अनादि हैं। और उनके ही निमित्तसे धर्म, अधर्म व आकाश कार्यकारी हुए। इसलिए वे आदि वस्तु हैं, ऐसा भी कोई कहते हैं।

इन सर्व द्रव्योंके यथार्थ स्वरूपको कैवल्यधाममें स्थित सिद्ध परमेष्ठी वस्तुस्वभाव समझ कर प्रत्यक्ष निरीक्षण करते हैं। मोक्ष जीवद्रव्यके लिए ही प्राप्त हो सकता है। पुद्गलके लिए मुक्ति नहीं है। क्योंकि वह अजीव तत्व है। इस बातको तुम निश्चयसे जानो।

मन वचन, कायके परिस्पंद होनेपर वह अत्यन्त सूक्ष्म कार्माणरज अंदर आत्म प्रदेशमें आकर प्रविष्ट होते हैं उसे आस्रव बंध कहते हैं।

जिस प्रकार जहाजमें छिद्र होनेपर अन्दर पानी आता है, उसी प्रकार

मन, वचन कायकी चेष्टारूपी छिद्रके होनेपर कार्माणरज आत्म प्रदेशमें प्रवेश कर जाते हैं। उसे आस्रव कहते हैं।

मूलतः पांच भेदके द्वारा वह आस्रव विभक्त होता है और उत्तर भेदोंसे ५७ भेदोंसे विभक्त होता है। परन्तु यह सब इन मन, वचन, काय के द्वारा ही होते हैं। उनको योग कहते हैं।

पहिले अन्दर जाते समय पुद्गलरजके रूपमें रहते हैं। बादमें भाव-कर्मका सम्बन्ध जब हो जाता है तब कर्मरूपमें परिणत होते हैं। यह आस्रव तत्व है। आगे बंधतत्वका निरूपण करेंगे।

मन वचन कायके सम्बन्धसे अन्दर प्रविष्ट वह रज क्रोध, राग, मोह के सम्बन्धसे कर्मरूप परिणत होकर उसी समय आत्मप्रदेशमें बद्ध होते हैं। उसे बंध कहते हैं। आत्मप्रदेशमें प्रविष्ट करते हुए आस्रव कहलाता है। परन्तु वहींपर जीवात्माके प्रदेशमें बद्ध होनेके बाद बंध कहलाता है। आस्रव व बंधमें इतना ही अंतर है।

उस सूक्ष्म रजमें दो गुण विद्यमान हैं। एक स्निग्ध व एक रूक्ष। स्निग्ध गुण ही ममकार है और रूक्ष ही क्रोध है। इन दोनों गुणोंके निमित्तसे आत्मप्रदेशमें वे बद्ध होते हैं।

अग्निसे अच्छी तरह तप्त लोहेका गोला जिस प्रकार चारों तरफसे पानीको खींच लेता है उसी प्रकार भावकर्मरूपी अग्निसे सन्तप्त यह जीव सर्वांगसे कर्मजलको ग्रहण करता है।

क्षुधाकी निवृत्ति व तृप्तिके लिए ग्रहण किया हुआ आहार शरीरमें पहुँचकर उदराग्निके सम्बन्धसे सप्तधातुओंके रूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार पुद्गल परमाणु आत्मप्रदेशमें पहुँचकर भावकर्मके सम्बन्धसे अष्टकर्मके रूपमें परिणत होते हैं।

जिस समय कर्मबद्ध होते हैं उसी समय वे फल नहीं देते हैं। आत्म-प्रदेशमें बद्ध होनेके बाद कुछ समय रहकर, स्थितिके पूर्ण होनेपर जिस समय छूट कर जाते हैं, उस समय जीवको सुख या दुःखके अनुभव करा कर जाते हैं।

बीजको बोनेपर चाहे वह कटुबीज हो या मधुरबीज हो, बोते ही फल प्राप्त होते नहीं, अपितु कालांतरमें ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार पुण्यपाप कर्मके फलस्वरूप सुख-दुःख संगृहीत होकर कालांतरमें ही अनुभवमें आते हैं। सुखके समय फूलकर दुःखके समय खिन्न होनेसे पुनश्च

कर्मोंका बंध होता है। सुख-दुःख के समय समताभावसे आत्मविचार करनेपर बन्ध नहीं होता है। पहिलेके कर्म जर्जरित होकर चले जाते हैं और नवीन कर्म आकर बंधको प्राप्त होते हैं इसी कर्मके निमित्तसे शरीर का सम्बन्ध होता है। उसी कर्मके कारणसे पुराने शरीरको छोड़कर नवीन शरीरको ग्रहण करता है और इसी प्रकार कर्मके निमित्तसे शरीर का परिवर्तन करते हुए आत्मा कर्मसे मग्न रहता है।

जिस प्रकार एक तालाबमें एक ओरसे पानी आवे और एक ओरसे जावे तो जिस प्रकार हमेशा वह पानीसे भरा ही रहता है उसी प्रकार कर्मरज जीवप्रदेशमें आते हैं, जाते हैं और बने रहते हैं।

नवीन कर्म पहिले द्रव्यकर्मके साथ संबंधित होते हैं। और वह द्रव्य-कर्मके साथ मिल जाता है और भावकर्मका आत्मप्रदेशमें बंध होता है। इस प्रकार बंधपरम्परा है। नवीनकर्मका पूर्वकर्मके साथ बंध है, पूर्व कर्मका भावकर्मके साथ बंध है। भावकर्मका जीवके साथ बंध है। इस प्रकार बंधके तीन भेद हैं। वैसे तो बंधका प्रकृति, स्थिति, प्रदेश व अनु-भागके भेदसे चार भेद हैं। परन्तु विशेष वर्णनसे क्या उपयोग ? बंधतत्व के इस कथनको संक्षेपसे इतना ही समझो। आगे संवरतत्वका निरूपण करेंगे।

आनेवाले कर्मोंके तीन द्वारको तीन गुप्तियोंके द्वारा बंद करके अपनी आत्माको स्वयं देखना यह संवर है।

मौनको धारण कर, वचन व कायकी चेष्टाको बंदकर, आंख मींचकर, मनको आत्मामें लगाना वही संवर है। उसे ही त्रिगुप्ति कहते हैं। जहाज के छिद्रको जिस प्रकार बंद करनेपर उसमें पानी अन्दर नहीं आता है उसी प्रकार तीव्रयोगसे आनेवाले योगोंको मुद्रित करनेपर कर्म अन्दर प्रविष्ट नहीं होता है। अर्थात् गुप्तिके होनेपर संवर होता है। तीन गुप्तियोंमें चित्तगुप्तिकी प्राप्ति होना बहुत ही कष्टसाध्य है। जो संसार की समस्त व्याप्तियोंको छोड़कर आत्मामें मन लगाते हैं उन्हींको इस गुप्तिकी सिद्धि होती है।

बंध व निर्जरा तो इस आत्माको प्रतिसमय प्राप्त होते रहते हैं। परन्तु बंधवैरी संवरकी प्राप्ति होना बहुत ही कठिन है। निजात्मसम्पत्ति की प्राप्तिके लिए वह अनन्यबंधु है। पहिले बद्धकर्म तो निर्जराके द्वारा निकल जाते हैं। नवीन आनेवाले कर्मोंको रोकनेपर आत्माकी सिद्धि अपने आप होती है। हे रविकीर्ति ! इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ?

श्रीमंतका खजाना कितना ही बड़ा क्यों न हो, आयको रोकनेपर व्ययके चालू रहनेपर एक दिन वह खाली हुए बिना नहीं रह सकता है। इसी प्रकार आनेवाले कर्मोंको रोकनेपर पूर्वसंचित कर्म निकल जाएं तो यह एक दिन अवश्य कर्मरहित होता है।

इस प्रकार यह संवरतत्त्वका कथन है, पूर्वसंचित कर्मोंको थोड़े-थोड़े अंशमें बाहर निकालना उसे निर्जरा कहते हैं।

नवीन आनेवाले कर्मोंको रोकना संवर है, पुराने कर्मोंको आत्मप्रदेश से निकालना उसे निर्जरा कहते हैं, संवर और निर्जरामें इतना ही अंतर है। परमाणुमात्र भी स्नेह और कोपका धारण न कर एकाकी होकर परमहंस परमात्माको देखनेपर यह कर्म निर्जरित हो जाता है, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

उपवास आदि संयमको धारण कर मनमें उपशांतिको प्राप्त करते हुए शुद्धात्माका निरीक्षण करें तो यह कर्म क्षपित होता है।

निर्जराके दो भेद हैं, एक सविपाक निर्जरा और दूसरी अविपाक निर्जरा। सविपाकनिर्जरा तो सर्व प्राणियोंमें होती है। परन्तु अविपाक निर्जरा मुनियोंमें ही होती है, सबको नहीं है।

अपने आप उदयमें आकर जो प्रतिनित्य कर्म निकल जाते हैं उसे सविपाकनिर्जरा कहते हैं। अनेक प्रकारके तपश्चर्याके द्वारा शरीरको कष्ट देकर कर्म उदयमें लाया जाता है, एवं वह कर्म निर्जरित होता है उसे कुलपाक या अविपाकनिर्जरा कहते हैं।

एक फल तो ऐसा है जो अपने आप पककर वृक्षसे गिर पड़ता है और एक ऐसा है जिसे अनेक उपायोंसे पकाकर गिराते हैं। दोनों फल पक जाते हैं, इसी प्रकार कर्मोंके भी फल देकर खिरनेके दो प्रकार हैं।

संवरको सतत् साथ लेकर जो निर्जरा होती है, वह उस आत्माको मोक्षमें ले जाती है। और उस संवरको छोड़कर जो निर्जरा होती है वह इस आत्माको संसारबंधनमें डालती है और भवरूपी समुद्रमें भ्रमण कराती है।

इस आत्माको ध्यानमें मग्न होकर प्रतिनित्य देखना चाहिए। ध्यान जिस समय करना न बने अर्थात् चित्त चंचल हो जाय उस समय पहले जो ध्यानके समय जिस आत्माका दर्शन किया है उसीका स्मरण करते हुए मौनसे रहना चाहिए।

ध्यानके समय निर्जरा होती है। ध्यान जिस समय न लगे उस समय ध्यान शास्त्रको छोड़कर अन्य विचारमें समय बितावे तो हाथीके स्नानके समान है। वचन व कायमें चंचलता आनेपर भी मनको तो आत्मामें ही लगाना चाहिए। आत्मामें उस मनको लगावे तो राग द्वेषको उत्पत्ति नहीं होती है। रागद्वेषके अभावसे संवरको सिद्धि होती है।

इस आत्माको एक तरफसे कर्म आता है और एक तरफसे जाता है। आया हुआ कर्म बद्ध होता है। इस प्रकार आत्मा सदा कर्मसे बद्ध रहता है। इसलिए आते हुए कर्मोंके द्वारको बन्द करके, पहलेके आये हुए कर्मो-को आत्मप्रदेशसे निकाल बाहर करें तो यह आत्मा मोक्षमंदिरमें जा विराजता है। उसके मार्गको न समझकर यह आत्मा व्यर्थ ही संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। सरोवरको आनेवाले पानीको रोककर पहले संचित जलको निकाल देवें तो जिस प्रकार वह रिक्त होता है, उसी प्रकार संवर व निर्जराके मिलने पर आत्मसिद्धि होती है।

धूलसे धुंधले हुए दर्पणको साफ करने पर जिस प्रकार उसमें मुख दिखता है, उसी प्रकार कर्मधूलसे मलिन लेपको सुध्यानके बलसे दूर करें तो यह आत्मा परिशुद्ध होता है। हे भव्य! यह निर्जरा तत्व है। इसे प्राप्त कर यह आत्मा आठों कर्मोंकी निर्जरा करते हुए समस्त कर्मोंको जब दूर करता है एवं अपने आत्मामें स्थिर होता है उसे मोक्ष कहते हैं।

एकदेश अंशमें कर्मोंका निकलना उसे निर्जरा कहते हैं। समस्त कर्मोंका क्षय होना उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष और निर्जरामें इतना ही अन्तर है।

कोई-कोई आत्मा पहले घातिया कर्मोंको नाश करते हैं और बादमें अघातिया कर्मोंको नाश करते हैं। और कोई घातिया और अघातिया कर्मोंको एक ही साथ नाश कर मुक्तिको जाते हैं।

कोई दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरणको करके मुक्तिको जाते हैं, और कोई इन चार समुद्घातको अवस्थाको प्राप्त न करके ही मुक्ति चले जाते हैं। त्रिशरीररूपी कारागृहको जलाकर अष्टगुणोंको यह आत्मा जब वशमें कर लेता है तब वह अशरीर आत्मा एक ही समयमें अमृतलोकमें पहुँच जाता है।

वह सिद्धलोक इस भूलोकसे सात रज्जु उन्नत स्थान पर है। परन्तु सात रज्जुओंके स्थानको यह आत्मा लीलामात्रसे एक ही समयमें तय कर जाता है।

तीन शरीर जब अलग हो जाते हैं तब यह आत्मा लोकाग्रभागको निरायास पहुँच जाता है जिस प्रकार कि एरंड फलके सूखनेपर उसका बीज ऊपर उड़ जाता है। ऊपरके वातवलयमें क्यों ठहर जाते हैं ? उससे ऊपर क्यों नहीं जाते हैं। इसका उत्तर इतना ही है कि उस वातवलयसे ऊपर धर्मास्तिकाय नहीं है जो कि उन जीवोंको गमन करनेमें सहकारी है। इसलिए वहीं पर सिद्धात्मा विराजमान होते हैं।

वह सम्पत्ति अविनश्वर है, बाधारहित आनन्द है। अनन्त वैभवका वह साम्राज्य है, विशेष क्या ? वचनसे उसका वर्णन नहीं हो सकता है। वह लोकातिशायी सम्पत्ति है, निश्रेयस है। यह सप्त तत्त्वोंमें अन्तिम तत्त्व है।

इस प्रकार हे भव्य ! सप्त तत्त्वोंके स्वरूपको जानकर उनमें पुण्य पापोंको मिलाने पर नव पदार्थ होते हैं। उनका भी विभाग सुनो।

आस्रव व बंधतत्वमें तो वे पुण्यपाप अन्तर्भूत हैं। क्योंकि आस्रव में पुण्यास्रव, पापास्रव इस प्रकार दो भेद हैं। और बंधमें भी पुण्यबंध और पापबन्ध इस तरह दो भेद हैं।

गुरु, देव, शास्त्रचिंता, पूजा आदिके लिए जो मन वचन कायका उपयोग लगाया जाता है वह सब पुण्ययोग है। मद्यपान, जुआ, शिकार आदिके लिए उपयुक्त योग पापयोग है।

तीर्थवंदन, व्रताराधना, जप, देवतावंदन आदिके लिए उपयुक्त योग पुण्य है। अनर्थके कार्यमें एवं जार चोरादिक कथामें उपयुक्त योग पाप योग है। पुण्याचरणके लिए उपयुक्त योग पुण्यास्रवरूप है, पाप मार्गमें प्रवृत्त योग पापास्रव कहलाता है।

रागद्वेष और मोहके संयोगसे बंध होता है। राग और मोहका पुण्य और पापके प्रति उपयोग होता है, परंतु क्रोध अथवा द्वेष तो पापबंधके लिए ही कारण हैं। देवभक्ति, गुरुभक्ति, शास्त्रभक्ति, सद्गुण, विनयसम्पन्नता आदि पुण्यबंधके लिए कारण हैं। स्त्री, पुत्र, धन, कनक आदिके प्रति जो ममता है वह पाप बंधके लिए कारण है। व्रत, दान, जप, तप, संघ आदिके प्रति जो ममत्व परिणति है वह पुण्य बंधके लिए कारण है, और हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार व परिग्रह आदिके प्रति जो स्नेह है वह पापबंधके लिए कारण है।

आत्मा स्वयं ही आत्माका है। इसे छोड़कर अन्य पदार्थोंके प्रति आत्मबुद्धि करना वही मोह है। देव शास्त्र गुरुओंके प्रति ममत्वबुद्धि करना पुण्य है। शरीरके प्रति ममत्वबुद्धि करना पाप है।

जिनबिंब, पुस्तक, जपसर आदिके प्रति ममत्व बुद्धि करना पुण्य है। क्षिति हेम, नारी आदिके प्रति जो अतिमोह है वह पाप है।

मोहको मिथ्यात्व भी कहते हैं। मोहको अज्ञान भी कहते हैं। यह सब आगम व अध्यात्मभाषाके भेदसे कथन है।

हे रविकीर्ति ! इस प्रकार स्नेह और मोह पुण्य और पापके लिए जन्मगेहके रूपमें हैं। परन्तु वह कोप इस आत्माको जलाता है। इसलिए वह पापरूप है। और राहुके समान है। धर्मके लिए अथवा भोगके लिए, किसी भी कारणके लिए क्यों न हो क्रोध करें तो वे धर्म और भोग भस्म होते हैं। और पापकर्मका ही बंध होता है।

पाप इस आत्माको नरक और तिर्यंचगतिमें ले जाता है, पुण्य स्वर्गलोकमें ले जाता है। दोनोंकी समानता होनेपर इस आत्माको मनुष्य गति में ले जाते हैं।

हे भव्य ! ये दोनों पाप और पुण्य कर्मलेप हैं, आत्माके निज भाव नहीं हैं। वे पाप पुण्य आठ कर्मों के रूपमें परिणत होकर आत्माको इस संसारमें परिभ्रमण कराते हैं।

वे कर्म कभी इस आत्माको सुन्दर बनाते हैं तो कभी कुरूपी बनाते हैं। कभी यह आत्मज्ञानी है तो कभी मूर्ख कहलाता है। कभी देव, कभी नारकी और कभी मनुष्य और कभी तिर्यंचके रूपमें यह आत्मा दीखता है। यह सब उन पापपुण्योंका तंत्र है। कभी यह आत्मा क्रूर कहलाता है तो कभी शांत कहलाता है। कभी वीर कहलाता है और कभी डरपोक कहलाता है, कभी स्त्री बनता है और कभी पुरुष। यह सब विचित्रतायें आत्माको कर्मजनित हैं।

शुभ व अशुभ कर्मके वशीभूत होकर संसारके समस्त प्राणी इस भवबन्धनमें पड़कर दुःख उठाते हैं। जब इस अशुभ व शुभ कर्मको अपने आत्मप्रदेशसे दूर करते हैं। तब वे मुक्तिप्राप्त करते हैं।

सुकृत व दुष्कृत दोनों पदार्थ आत्माके लिए उपयोगी नहीं हैं। उन दोनोंको समान रूपमें देखकर जो परित्याग करते हैं वे विकृतिको दूर कर मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

एक सुवर्णकी शृंखला है, और दूसरी लोहे की शृंखला है। परन्तु दोनों बंधनके लिए ही कारण हैं। ऐसे पुण्य-पाप आत्माके लिए कारण है। इस प्रकार जीव पुद्गलके संसर्गसे सप्ततत्त्वोंका विभाग हुआ। और उनमें पुण्य-पापोंको मिलानेपर नव पदार्थ हुए।

इस प्रकार सप्ततत्व और नव पदार्थोंका विवेचन हुआ। अब उनमें

हेय और उपादेय इस प्रकार दो विभाग हैं। अजीव, पुण्यास्रव, पापास्रव पुण्यबंध, पापबंध, इनको हेय समझकर छोड़ना चाहिए। निर्जरा, संवर, जीव और मोक्ष इन तत्वोंको उपादेय समझकर ग्रहण करना चाहिए।

जीवास्तिकाय, जीवतत्व, जीवपदार्थ इन सबका एकार्थ है। इसे आत्मकल्याणके लिए ग्रहण करना चाहिए। बाकी सर्वपदार्थ हेय हैं। आगमको जाननेका यही फल है। जीवद्रव्यको उपादेय समझकर अन्य द्रव्योंका परित्याग करना ही लोकमें सार है। जिस प्रकार सोनेकी खनिको खोदकर, मिट्टीको राशि कर एवं शोधन कर बादमें उसमेंसे सोनेको लिया जाता है, बाकी सर्वपदार्थोंको छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार सप्ततत्वोंको जानकर उनमेंसे छह तत्वोंको छोड़कर जीवतत्वका ग्रहण करना ही बुद्धिमानोंका कर्तव्य है।

आस्रव व बंधसे इस आत्माको संसारकी वृद्धि होती है, आस्रव व बंधको छोड़कर संवर व निर्जराके आश्रयमें आनेसे मुक्ति होती है। क्षमा ही क्रोधका शत्रु है निस्संगभावना ही मोहका वैरी है, परमवैराग्य ही ममकारका शत्रु है इन तीनोंको संयमी ग्रहण करें तो उसे बंध क्यों कर हो सकता है? पहिले पापकर्मको छोड़कर पुण्यमें ठहरना चाहिए अर्थात् अशुभको छोड़कर शुभमें ठहरना चाहिए। तदनन्तर उसे भी परित्याग कर सुध्यानमें मग्न होना चाहिए। क्योंकि ध्यानसे ही मुक्ति होती है।

हे रविकीर्ति! इस प्रकार षड्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्ततत्व, नवपदार्थोंका निरूपण किया। अब आत्मसिद्धि किस प्रकार होती है, उसका कथन किया जायगा। इस प्रकार भगवान् आदिप्रभुने अपने मृदु-मधुर-गम्भीर दिव्यनिनादके द्वारा तत्वोंका निरूपण किया एवं आगे आत्मसिद्धिके निरूपणके लिए प्रारम्भ किया। उपस्थित भव्यगण बहुत आतुरताके साथ उसे सुन रहे हैं।

भरतनंदन सचमुचमें धन्य हैं, जिन्होंने तीर्थंकर केवलीके पादमूलमें पहुँचकर ऐसे पुण्यमय, लोककल्याणकारी उपदेशको सुननेके भाग्यको पाया है। तत्वश्रवणमें तन्मयता, बीचमें तर्कणापूर्ण सरलशंकायें आदि करनेकी कुशलता एवं सबसे अधिक आत्मकल्याण कर लेनेकी उत्कट संलग्नताको देखनेपर उनके सातिशय महत्वपर आश्चर्य होता है। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी असदृश पुण्यशाली हैं। जिन्होंने पूर्वजन्ममें उच्च भावनाओंके द्वारा पुण्योपार्जन किया है जिससे उन्हें ऐसे लोकविजयी पुत्ररत्न प्राप्त हुए।

भरतेश्वर सदा इस प्रकार भावना करते थे कि—

हे परमात्मन् ! आप विमललोचन हैं, विमलाकार हैं। विमलांग हैं। विमलपुरुष हैं। विमलात्मा हैं। इसलिए लोक-विमल हैं। अतः निर्मल मेरे अंतःकरणमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप त्रिभुवनसार हैं। दिव्यध्वनिसार और अभिनव तत्वार्थसार हैं। विभवैकसार हैं, विद्यासार हैं, इसलिए हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये !

इति दिव्यध्वनिसंधिः

—०○—

मोक्षमार्ग संधिः

भगवान् आदिप्रभुने उन कुमारोंको पहिले विश्वके समस्त तत्वोंको समझाकर बादमें आत्मसिद्धिका परिज्ञान कराया। क्यों कि आत्मज्ञान ही लोकमें सार है। हे भव्य ! परमात्मसिद्धिकी कलाको सुनो ! हमने जो अभीतक तत्वोंका विवेचन किया है, उन तत्वोंके प्रति यथार्थश्रद्धान करते हुए जो उनको जानते हैं व यथार्थसंयमको धारण करते हैं, उनको आत्म-सिद्धि होती है।

श्रद्धान, ज्ञान व चारित्रको रत्नत्रयके नामसे भी कहते हैं। इन रत्नत्रयोंको धारण करनेसे अवश्य आत्मकल्याण होता है उन रत्नत्रयोंमें भेद और अभेद इस प्रकार दो भेद हैं। कारण कार्यमें विभिन्नता होनेसे ये दो भेद हो गये हैं। उन्हींको व्यवहाररत्नत्रय और निश्चय-रत्नत्रयके नामसे भी कहते हैं।

नवपदार्थ, सप्ततत्व, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, इनको भिन्न-भिन्न रूप से जानकर अच्छी तरह श्रद्धान करना एवं व्रतोंको विकल्परूपसे आचरण करना इसे भेदरत्नत्रय अथवा व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं।

परपदार्थोंकी चिन्ताको छोड़कर अपने आत्माका ही श्रद्धान एवं उसी के स्वरूपका ज्ञान व मनको उसीमें मग्न करना यह अभेदरत्नत्रय है एवं इसे निश्चयरत्नत्रय भी कहते हैं। आत्मासे भिन्न पदार्थोंके अवलम्बनसे

जो रत्नत्रय होता है उसे भेद रत्नत्रय कहते हैं, अभेदरूपसे अपने ही श्रद्धान, ज्ञान व ध्यानका अवलम्बन यह अभिन्न रत्नत्रय अर्थात् अभेद-रत्नत्रय है।

पहिले व्यवहाररत्नत्रयके अवलम्बनकी आवश्यकता है। व्यवहार रत्नत्रयको धारणकर व्यवहारमार्गके आचरणमें निष्णात होनेपर निश्चयार्थको साधन करना चाहिये, जिससे निश्चलसिद्धि होती है।

हे रविकीर्ति ! व्यवहारमार्गसे निश्चयमार्गकी सिद्धि कर लेनी चाहिये और उस विशुद्ध निश्चयमार्गसे आत्मसिद्धिको साध लेनी चाहिये, यही आत्मकल्याणका राजमार्ग है। यह चित्त हवाके समान अत्यन्त चंचल है, दुनियामें सर्वत्र वह विहार करता है। ऐसे चित्तको निरोध कर तत्व-विचारमें लगा लेना चाहिये, फिर उन तत्वोंसे फिराकर अपने आत्माकी ओर लगाना चाहिये।

मनको यथेच्छ संचार करने दिया जाय तो वह चाहे जिधर चला जाता है। यदि रोकें तो रुक भी जाता है। इसलिए ऐसे चंचल मनको तत्व-विचारमें लगाना एवं अपनेमें स्थिर करना यह विवेकियोंका कर्तव्य है।

रविकीर्ति ! लोकमें घोरतपश्चर्या करनेसे क्या प्रयोजन ? अनेक शास्त्रोंके पठनसे क्या मतलब ? इस चपलचित्तको जबतक स्थिर नहीं करते हैं तबतक उस तपश्चर्या व शास्त्रपठनका कोई प्रयोजन नहीं है। जो व्यक्ति उस चंचलचित्तको रोककर अपने आत्मविचारमें लगाता है वही वास्तवमें तपस्वी है एवं शास्त्रके ज्ञाता हैं।

मनके विकल्प, इंद्रियोंके विषय कषायोंको उत्पन्न करते हैं एवं स्वयं मलग होते हैं, इससे योगोंके निमित्तसे आत्मप्रदेशका परिस्पंद होता है एवं आस्रव बंध होते हैं, इसलिए मन ही कर्मोंके लिए घर है।

इस मनको आत्मामें न लगाकर परपदार्थोंमें लगावें तो उससे कर्मबंध होता है, वह जिस प्रकार एक एक पदार्थका विचार करता है उसी प्रकार नवीन नवीन कर्मोंका बंध होता है। उसे रोककर आत्मामें लगाने पर कर्मकी एकदम निर्जरा होती है।

इस दुष्टमनके स्वेच्छविहारसे कर्मबंध होता है यह आत्मा आठ कर्मोंके जालमें फँसता है। उससे संसारकी वृद्धि होती है। इसलिए उस दुष्ट मनको ही जीतना चाहिए।

चतुरंगके खेलमें राजाको ही बांधने पर जिस प्रकार खेल खतम हो

जाता है उसी प्रकार इस संचरणशील मनको ही बांधनेपर आस्रव नहीं, बंध नहीं, फिर अपने आप संवर और निर्जरा होती है।

प्राणावादपूर्व नामके महाशास्त्रको पठनकर कोई दशवायुओंको वशमें कर लेते हैं, एवं उससे हरिणके समान चंचलवेगसे युक्त चित्तको रोककर आत्मामें लगा देते हैं। और कोई इस प्राणायामके अभ्यासके बिना ही इस चंचलमनको स्थिर कर आत्मामें लगाते हैं एवं आत्मानुभव करते हैं। इस प्रकार मनका अनुभव दो प्रकारसे है।

प्राणियोंके चित्तका दो विकल्प है, एक मृदुचित्त और दूसरा कठिन चित्त। मृदुचित्तके लिए प्राणायामयोगकी आवश्यकता नहीं है। और कठिनचित्तको वायुयोगसे मृदु बनाकर आत्मामें लगाना चाहिए। हे रविकीर्ति! यह ब्रह्मयोग है। एवं ब्रह्मयोगका मूल है। नाभिसे लेकर उस वायुको जिह्वाके ऊपर स्थित ब्रह्मरंध्रको चढावे तो उस परब्रह्मका दर्शन होता है। उस प्राणायाममें कला, नाद, बिंदु इत्यादि अनेक विधान हैं। उनको उक्त विषयक शास्त्रोंसे जान लेना। यहांपर हम इतना ही कहते हैं कि अनेक उपायोंसे मनको रोककर आत्मामें लगानेपर आत्मसिद्धि होती है।

ध्यानके बिना कर्मकी निर्जरा नहीं हो सकती है, सहज ही प्रश्न उठता है कि वह ध्यान क्या है? चित्तके अनेक विकल्पोंको छोडकर इस मनका आत्मामें संधान होना उसे ध्यान कहते हैं।

बोल, चाल दृष्टि शरीरकी चेष्टा आदिको रोकते हुए लेपकी पुतली के समान निश्चल बैठकर इस चंचल मनको आत्मविचारमें लगाना उसे सर्वजन ध्यान कहते हैं।

अनेक प्रकारसे तत्वचिंतवन करना वह स्वाध्याय है। एक ही विचार में उस मनको लगाना वह ध्यान है। उस ध्यानमें भी धर्म व शुक्लके भेदसे दो विकल्प हैं।

आंखमींचकर मनकी एकाग्रतासे ध्यान किया जाता है जब आत्माकी कांति दीखती है और अदृश्य होती है एवं अल्पसुखका अनुभव कराता है उसे धर्म्यध्यान कहते हैं।

कभी एकदम देहभरकर प्रकाश दीखता है एवं तदनंतर हृदय व मुखमें दिखता है, इस प्रकार कुछ अधिक प्रकाशको लिए हुए वह परब्रह्मको प्राप्त करनेके लिए बीजरूप वह धर्मयोग है।

जैसे जैसे ध्यानका अभ्यास बढ़ता है वह प्रकाश दिन प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है एवं कर्मरज आत्मप्रदेशसे निकल जाते हैं। मनमें सुज्ञानकी मात्रा बढ़ती है। एवं सुखके अनुभवमें भी वृद्धि होती है।

उस सुखको वह लोकके सामने बोलकर बतला नहीं सकता। केवल उसको स्वतः अनुभव कर खूब तृप्त हो जाता है। बोलचालकी इस जगकी सर्वचेष्टायें उसे जड़ मालूम होती हैं।

उसे सर्वलोक पागलके समान मालूम होता है वह लोगोंकी दृष्टिमें पागलके समान मालूम देता है। वह आत्मयोगी कभी मौनसे रहता है, फिर कभी बोलकर मूकके समान हो जाता है, उसकी वृत्ति विचित्र है।

एकांतकी अपेक्षा करनेवाली वृत्तियोंकी वह अपेक्षा नहीं करता है, परन्तु वह एकांगी रहता है। एक बार लोकके अग्रभागमें पहुँचता है अर्थात् सिद्धलोक व सिद्धात्माओंका विचार करता है, फिर अपने आत्म-लोकमें संचरण करता है।

अपनी आत्माको स्वतः आप देखकर अपने सुखका अनुभव करता है एवं उससे उत्पन्न हर्षसे फूलता है, हँसता है, दूसरोंको नहीं कहता है। यह धर्मयोगको साधन करनेवालेके लक्षण हैं।

वह धर्मयोग यदि साध्य हुआ तो भव्योंके हितके लिए कुछ उपदेश देता है, यदि भव्योंने उपदेशको आनन्दसे सुना तो उसे कोई आनन्द नहीं है, और नहीं सुना तो कोई दुःख भी उसे नहीं है।

स्वतः जो कुछ भी अनुभव करता है कभी उस मिष्टसुखकी कृतिके रूपमें लोकके सामने रखता है। एवं प्रत्यक्ष जो कुछ भी देखा उसे कभी उपदेशमें बोलकर बता देता है। इस प्रकार कोई-कोई आत्मकल्याणके साथ लोकोपकार भी करते हैं, परन्तु कोई इस झगड़ेमें नहीं पड़ते हैं। उस धर्मयोगके बलसे अपने कर्मके संवर और निर्जरा करते हुए आगे बढ़ते हैं, हे भव्य ! यह धर्म ध्यान है।

दशविध धर्मके भेदोंसे एवं चार प्रकारके (आज्ञाविचय, अपाय-विचय विपाकविचय संस्थानविचय) ध्यानके भेदोंसे उस ध्यानका वर्णन किया जाता है, वह सब व्यवहार धर्म है। इस चित्तको आत्मामें लगा देना वह निश्चय-उत्तम-धर्म योग है।

इस चर्मदृष्टिको बन्दकर आत्मसूर्यको देखने पर सूर्य मेघ मंडलके अन्दर उज्ज्वल रूपसे जिस प्रकार दीखता है उस प्रकार दीखता है एवं साथमें सुज्ञान व सुखका विशेष अनुभव करता है वह शुक्लयोग है।

ज्ञान, प्रकाश, सुख, कुछ अल्पप्रमाणमें दीखते हुए अदृश्य होते हुए जो आत्मानुभव होता है वह धर्मयोग है। और वही सुज्ञान, प्रकाश व सुखको विशालरूपसे दीखते हुए स्थिरताको जिसमें प्राप्त होते हैं वह शुक्लयोग है।

इस शरीरमें कोई-कोई विशेष स्थानको पाकर प्रकाशका परिज्ञान होना वह धर्मयोग है। चाँदनीकी पुतलीके समान यह आत्मा सर्वांगमें जब दीखता है वह शुक्लयोग है।

हवामें स्थित दीपकके समान हिलते हुए चंचलरूपसे जिसमें आत्मा-का दर्शन होता है वह धर्मयोग है। और हवासे रहित निश्चल दीपकके समान निष्कम्परूपसे आत्माका दर्शन होना वह शुक्लयोग है।

एकबार पुरुषाकारके रूपमें, फिर वही अदृश्य होकर, इस प्रकार जो प्रकाश दीखता है वह धर्मयोग है, परन्तु वही पुरुषाकर अदृश्य न होकर शरीरमें, सर्वाङ्गमें प्रकाशरूपमें ठहर जाय उसे शुक्लयोग कहते हैं।

चन्द्रकी कला जिस प्रकार क्रमसे धीरे-धीरे बढ़ती जाती है उसी प्रकार धर्मध्यानमें धीरे-धीरे आत्मानुभव बढ़ता है। प्रातःकालका सूर्य तेजः पुञ्ज होते हुए मध्याह्नमें जिस प्रकार अपने प्रतापको लोकमें व्यक्त करता है, उस प्रकार शुक्लध्यान इस आत्माको प्रभावित करता है।

बरसातका पानी जिस प्रकार इस जमीनको कोरता है उस प्रकार यह धर्मयोग कर्मको जर्जरित करता है। नदीका जल जिस प्रकार इस जमीनको कोरता है उस प्रकार यह शुक्लयोग कर्मसंकुलको निर्जरित करता है।

मट्ठ अर्थात् तीक्ष्णधारसे युक्त नहीं है ऐसा फरसा जिस प्रकार लकड़ी-को काटता है उस प्रकार कर्मोंको धर्मयोग काटता है। तीक्ष्णधारसे युक्त फरसेके समान शुक्लयोग कर्मोंको काटता है।

विशेष क्या ? एक अल्पकांति है दूसरी महाकांति है इतना ही अन्तर है। विचार करने पर वह दोनों एक ही हैं। क्योंकि उन दोनोंको आत्माके सिवाय दूसरा कोई आधार नहीं है।

सिंहके बच्चेको बालसिंह कहते हैं बड़ा होनेपर उसे ही सिंहके नामसे कहते हैं, परन्तु बालसिंह ही सिंह बन गया न ? इसी प्रकार ध्यानके बाल्यकालमें वह ध्यान धर्मध्यान कहलाता है और पूर्णताको प्राप्त होने-पर उसे ही शुक्लध्यान कहते हैं। वह भवगजके समूहको नाश करनेके लिए समर्थ है।

व्यंजनार्थको लेकर जब उस ध्यानका चार भेदसे विभंजन होता है वह व्यवहार है। उन विकल्पोंको हटाकर आत्मामें ही मग्न हो जाना निरंजन, निश्चय शुक्लध्यान है। धर्मध्यान बहुशास्त्री (विशेष विद्वान्) अल्पशास्त्री मुनि, श्रावक सबको होता है परन्तु शुक्लध्यान तो विशिष्ट ज्ञानी या अल्पज्ञानी योगीको ही हो सकता है गृहस्थोंको नहीं हो सकता है।

आजसे लेकर कलिकालके अन्ततक भी धर्मयोग तो रहता ही है। परन्तु शुक्लध्यान आजसे कई कालतक रहेगा। परन्तु कलिकालमें इस (भरत भूमिमें) शुक्लध्यानकी प्राप्ति नहीं हो सकती है।

धर्मध्यानसे विकलनिर्जरा होती है और शुक्लध्यानसे सकल निर्जरा होती है। विकलनिर्जरासे देवलोककी संपत्ति मिलती है और सकलनिर्जरासे मोक्षसाम्राज्यका वैभव मिलता है।

एक ही जन्ममें धर्मयोगको पाकर पुनश्च शुक्लयोगमें पहुँचकर कोई भव्य मुक्त होते हैं। और कोई धर्मयोगसे आगे न बढ़कर स्वर्गमें पहुँचते हैं व सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं।

धर्मयोगके लिए वह काल यह काल वगैरहकी आवश्यकता नहीं है। वह कभी भी अनुभव किया जा सकता है, जो निर्मल चित्तसे उस धर्मयोगका अनुभव करते हैं वे लोकांतिक, सौधर्मेन्द्र आदि पदवीको पाकर दूसरे भवसे निश्चयसे मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

व्यवहारधर्मका जो अनुभव करते हैं उनको स्वर्गसंपत्ति तो नियमसे मिलेगी। इसमें कोई शक नहीं है। भवनाश अर्थात् मोक्षप्राप्ति कोई नियम नहीं है। आत्मानुभव ही उसके लिए नियम है। आत्मानुभव होनेके बाद नियमसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

आज निश्चयधर्मयोगकी प्राप्ति नहीं हुई तो क्या हुआ। अपने चित्त में उसकी श्रद्धाके साथ दुश्चरितका त्याग करते हुए शुभाचरण करे तो कल निश्चयधर्मयोगको अवश्य प्राप्त करेगा।

संसारमें अविवेकी मूढ़ात्माको वह निश्चयधर्मयोग प्राप्त नहीं हो सकता है, जोकि स्वतः उस निश्चयधर्मयोगसे शून्य रहता है। एवं निश्चय धर्मको धारण करनेवाले सज्जनोंको वह वृश्चिकके समान रहता है एवं उनकी निन्दा करता है। ऐसे दुश्चित्तको वह धर्मयोग क्योंकर प्राप्त हो सकता है ?

भव्योंमें दो भेद हैं। एक सारभव्य दूसरा दूरभव्य। सारभव्य (आसन्नभव्य) उस आत्माको ध्यानमें देखते हैं। परन्तु दूरभव्योंको उस

आत्माका दर्शन नहीं होता है। तथापि वे सारभव्योंकी वृत्तिके प्रति अनुरागको व्यक्त करते हैं। इसलिए वे कल आत्मसिद्धिको प्राप्त करते हैं।

सारभव्य आत्माका दर्शन करते हैं, तब दूरभव्य प्रसन्न होते हैं। उस समय अभव्य उनकी निन्दा करते हैं, उनसे द्वेष करते हैं। फलतः वे नरकगतिमें पहुँच जाते हैं। कभी व्यवहारका विषय उनके सामने आवे तो बड़ा उत्साह दिखाते हैं। परन्तु सुविशुद्ध निश्चयनयका विषय उनके सामने आवे तो चुपचापके निकल जाते हैं, उसका तिरस्कार करते हैं।

स्वतः उन अभव्योंको आत्मयोग प्राप्त नहीं हो सकता है। जो स्वात्मानुभव करते हैं उनको देखनेपर उनके हृदयमें क्रोधोद्रेक होता है। उन भव्योंकी निंदा करते हैं, यदि उनकी निंदा न करे तो उनको ध्रुव व अविनाशी संसार कैसे प्राप्त हो सकता है। वे अभव्य द्वादशांग शास्त्रोंमें एकादशांगतक पठन करते हैं। परिग्रहको छोड़कर निर्ग्रंथ तपस्वी भी होते हैं। परन्तु बाह्याचरणमें ही रहते हैं।

शरीरको नग्न करना यह देहनिर्वाण है। शरीरके अन्दर स्थित आत्माको शरीररूपी थैलेसे अलग कर देखना आत्मनिर्वाण है। केवल बाह्य नग्नतासे क्या प्रयोजन ? देहनग्नताके साथ आत्मनग्नताकी परम आवश्यकता है।

मूर्तिनिर्वाण अर्थात् देहनिर्वाणके साथ हंसनिर्वाण अर्थात् आत्मनिर्वाण को ग्रहण करें तो मुक्तिकी प्राप्ति होती है। वे धूर्त अभव्य मूर्ति-निर्वाण को स्वीकार करते हैं, हंसनिर्वाणको मानते नहीं हैं।

अन्दरके कषायोंका त्याग न कर बाहर सब कुछ छोड़े तो क्या प्रयोजन है ? सर्प अपनी काचलीका परित्याग करें तो क्या वह विषरहित हो जाता है ? आत्मसिद्धिके लिए अन्दर तिलमात्र भी रागद्वेष मोहका अंश नहीं होना चाहिये एवं स्वयं आत्मा आत्मामें लीन हो जावे।

इस प्रकारके उपदेशको अभव्य नहीं मानते हैं। वे ध्यानकी अनेक प्रकारसे निंदा करते हैं। उसकी खिल्ली उड़ाते हैं जो ध्यान करते हैं, उनकी हँसी करते हैं, "ये ध्यान क्या करते हैं, कैसे करते हैं, आत्मा आत्मा कहाँ है ?" इत्यादि प्रकारसे विवाद करते हैं।

वे अभव्य 'ध्यानसिद्धि स्वतःको नहीं है' इसे मात्सर्यसे "इसे आत्मध्यान नहीं हो सकता है, उसे आत्मध्यान नहीं होता है यह काल उचित नहीं है, वह काल चाहिए, उसके लिए अमुक सामग्री चाहिये, तमुक

चाहिये, आपका ध्यान, हमारा ध्यान अलग है'' इत्यादि अनेक प्रकारसे बहानेबाजी करते हैं।

वे अभव्य शरीरको कष्ट देते हैं, पढ़ाते हैं, पढ़ते हैं। अनेक कष्ट सहन करते हैं। इन सब बातोंके फलसे संसारमें कुछ सुखका अनुभव करते हैं। परंतु मुक्तिसुखको वे कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

बीचमें ही रविकीर्तिराजने प्रश्न किया कि भगवन् ! एक प्रार्थना है। आत्माको आत्माका दर्शन नहीं हुआ तो मुक्ति नहीं होती है, ऐसा आपने कहा। यह समझमें नहीं आया। सदा काल आपकी भक्तिमें जो अपना समय व्यतीत करते हैं उनको आत्मसिद्धि होनेमें आपत्ति क्या है ?

भव्य ! सुनो ! भगवंतने फिरसे निरूपण किया। हमारे प्रति जो भक्ति है वह मुक्तिका कारण जरूर है। परन्तु उस भक्तिके लिए युक्ति की आवश्यकता है। हमारे निरूपणको सुनकर उसके अनुसार चलना वही हमारी भक्ति है। अपनी इच्छानुसार भक्ति करना यह मूर्खभक्ति है।

'स्वामिन् वह स्वेच्छाचारपूर्ण भक्ति कैसी है ? अपनी आत्माके विचार से युक्त भक्ति स्वेच्छापूर्ण कही जा सकती है। परन्तु मुक्तिको जिनेन्द्र ही शरण हैं। इस प्रकार आपकी भक्ति करें तो स्वेच्छापूर्ण भक्ति कैसे हो सकती है ?'' इस प्रकार पुनश्च रविकीर्तिने विनयसे पूछा।

"हे रविकीर्ति ! तुम्हारा आत्मयोग ही हमारी भक्ति है'' यह तुम जानते हुए भी प्रश्न कर रहे हो, सब विषय स्पष्ट रूपसे कहता हूँ। सुनो ! युक्तिको जानकर जो जो भक्ति करते हैं वे मुक्तिको नियमसे प्राप्त करते हैं। युक्तिरहित भक्ति भवकी वृद्धि करती है। इसलिए भक्तिके रहस्यको जानकर भक्ति करनी चाहिए'' इस प्रकार आदि प्रभुने निरूपण किया।

पुनश्च रविकीर्तिराजने हाथ जोड़कर विनयसे प्रार्थना की कि प्रभो ! हम मंदमति अज्ञानी क्या जाने कि वह युक्तिसहित भक्ति क्या है ? और युक्तिरहित भक्ति क्या है ? हे सर्वज्ञ ! उसके स्वरूपका निरूपण कीजियेगा।

"तब हे भव्य ! सुनो !'' इस प्रकार भगवंतने अपने गंभीर दिव्य-निनादसे निरूपण किया।

हे भव्य ! वह भक्ति भेद और अभेदके भेदसे दो भेदोंमें विभक्त है। उनके रहस्यको जानकर भक्ति करें तो मुक्ति होती है।

यहाँ समवसरणमें हम रहते हैं, सिद्ध परमेष्ठी लोकाग्रभागमें रहते हैं, इत्यादि प्रकारसे अपनी आत्मासे हमें व सिद्ध परमेष्ठियोंको अलग रखकर विचार करना, पूजा करना यह भेदभक्ति है।

हमें व सिद्ध परमेष्ठियोंको इधर-उधर न रखकर अपनी आत्मामें ही रखकर भावपूजा करना वह परब्रह्मकी अभेदभक्ति है। हमें अलग रखकर देखना वह भेदभक्ति है। भक्तिके साथ अपनी आत्मामें ही अभिन्न रूपसे हमें देखना वह कर्मोंको ध्वंस करनेमें समर्थ अभेदभक्ति है। लेप, कांसा, पीतल आदिके द्वारा हमारी मूर्ति बनाकर उपासना करना यह भेदभक्ति है। आत्मामें विराजमान कर हमें देखना वह हमारे पसंद की अभेदभक्ति है।

सिद्ध व अरिहंतके समान ही मेरी आत्मा भी परिशुद्ध है, इस प्रकार अपनी आत्माको देखना वही सिद्धभक्ति है। वही हमारी भक्ति है। तभी सिद्ध व हम वहाँ निवास करते हैं।

भेदभक्तिको अनेक सज्जन करते हैं। परन्तु अभेदभक्तिको नहीं कर सकते हैं। भेदभक्तिको पहिले अभ्यास कर बादमें अभेदभक्तिका अवलंबन करना चाहिये।

भेदभक्तिको सभी अभव्य भी कर सकते हैं, परन्तु अभेदभक्ति तो उनके लिए असाध्य है। मोक्षसाम्राज्यको मिला देनेवाली वह भक्ति अभागियों को क्योंकर प्राप्त हो सकती है।

स्वयं भक्ति न कर सके तो क्या हुआ ? जो भक्ति करते हैं उनके प्रति मनसे प्रसन्न होवें एवं अनुमोदना देवें तो कल वह भक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु उनको भक्ति सिद्ध होती नहीं। और दूसरोंकी भक्तिको देखकर प्रसन्न भी नहीं होते हैं। इसलिए वे मुक्तिसे दूर रहते हैं।

भिन्नतासे युक्त हो भेदभक्ति है, वह आत्माको उस भक्तिसे भिन्न करता है। और भेदरहित भक्ति है वह अभेदभक्ति है, वह आत्मासे अभिन्न ही है।

इसके लिए एक दृष्टांत कहेंगे सुनो ! गुरुके घरमें जाकर उनकी पूजा करना यह गुरुभक्ति है। परन्तु गुरुको अपने घरमें बुलाकर पूजा करना वह विशिष्ट गुरुभक्ति है।

भक्तिमें श्रेष्ठ अभेदभक्ति है। सर्व सम्पत्तियोंमें श्रेष्ठ मुक्ति सम्पत्ति है। मुक्तिके योग्य भक्ति करना आवश्यक है, यही युक्तिसहित भक्ति है। इसे अच्छी तरह जानना। भिन्नभक्ति अर्थात् भेदभक्तिका फल स्वर्ग

सम्पदाकी प्राप्ति होना है, परन्तु अभेदभक्तिका फल तो मुक्तिसाम्राज्य को प्राप्त करना है। कभी भिन्न भक्तिसे स्वर्गमें भी पहुँचे तो पुनः स्वर्ग सुखको अनुभव कर वह दूसरे जन्मसे मुक्तिको जायगा। यह मेरी आज्ञा है, इसे श्रद्धान करो। भेदरत्नत्रय, व्यवहार, रत्नत्रय, शुभयोग, भेदभक्ति इन सबका अर्थ एक ही है। अभेद रत्नत्रय, निश्चय शुद्धोपयोग, अभेदभक्ति इन सबका एक अर्थ है।

ध्यानके अभ्यास कालमें चित्तके चांचल्यको दूर करनेके लिए शुभ योगका आचरण करना आवश्यक है, बादमें जब चित्तक्षोभ दूर होनेके बाद आत्मामें स्थिर हो जाना उसे शुद्धोपयोग कहते हैं।

चैतन्यरहित शिला आदिमें मेरा उद्योत करें तो सामान्य भक्ति है, चैतन्यसहित आत्मामें रखकर मेरी जो प्रतिष्ठा की जाती है वह विशेष भक्ति है।

रविकीर्तिकुमारने बीचमें ही एक प्रश्न किया। भगवान्! पाषाण अचेतन स्वरूप है। यह सत्य है। तथापि उसमें मलादिक दूषण नहीं है। परन्तु जो अनेक मलदूषणोंसे युक्त है, ऐसे देहमें आपको स्थापन करना यह भूषण कैसे हो सकता है?

उत्तरमें भगवंतने फरमाया कि भव्य! यह देह अपवित्र जरूर है। परन्तु उस देहमें हमारी कल्पना करनेकी जरूरत नहीं है। देहमें जो शुद्ध आत्मा है उसमें हमारे रूप की कल्पना करो! समझे?

पुनश्च रविकीर्तिने कहा कि स्वामिन्! यह समझ गया। अन्दर वह आत्मा परिशुद्ध है, यह सत्य है। तथापि मांसास्थि, चर्मरक्त व मलसे पूर्ण अपवित्र देहके संसर्गदोषके बिना आपकी स्थापना उसमें हम कैसे कर सकते हैं? कृपया समझा कर कहिये।

प्रभुने कहा कि भव्य! इतनी जल्दी भूल गये? इससे पहिले ही कहा था कि गायके स्तनभागमें स्थित दूधके समान शरीरमें स्थित आत्मा परिशुद्ध है। शरीरके अन्दर रहनेपर भी वह आत्मा शरीरको स्पर्श न करके रहता है। इसलिए वह पवित्र है। उसी स्थानमें हमारी स्थापना करो। गौके गर्भमें स्थित गोरोचन लोकमें पावन है न? जीव शरीरमें रहा तो क्या हुआ? वह निर्मलस्वरूपी है, उसे प्रतिनित्य देखनेका यत्न करो।

मृगकी नाभिमें रहने मात्रसे क्या? कस्तूरी तो लोकमें महासेव्य पदार्थ माना जाता है। इसी प्रकार इस चर्मास्थिमय शरीरमें रहनेपर भी आत्मा स्वयं पवित्र है। सीपमें रहनेपर भी मोती जिस प्रकार पवित्र है,

उसी प्रकार रक्त मांसके शरीरमें रहनेपर भी विरक्त जीवात्मा पवित्र है। इसे श्रद्धान् करो। इसलिए जिस प्रकार दूध, मोती कस्तूरी आदि पवित्र हैं उसी प्रकार यह मन ही जिसका शरीर है वह आत्मा भी पवित्र है। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता है ?

अज्ञानीकी दृष्टिमें यह आत्मा अपवित्र है। सत्य है ! परन्तु आत्म-ज्ञानी सुज्ञानीकी दृष्टिमें वह पवित्र है। अज्ञान भावनासे अज्ञान होता है, सुज्ञानसे सुज्ञान होता है।

जबतक इस आत्माको बद्धके रूपमें देखता है तबतक वह आत्मा भवबद्ध ही है। जबसे वह इसे शुद्धके रूपमें देखने लगता है, तबसे वह मोक्षमार्गका पथिक है ?

'शरीर ही मैं हूँ' ऐसा अथवा शरीरको ही आत्मा समझनेवाला बहिरात्मा है। आत्मा और शरीर को भिन्न समझनेवाला अन्तरात्मा है। शरीररहित आत्मा परमात्मा है। आत्माका दर्शन जिस समय होता है उस समय सभी परमात्मा हैं।

बहिरात्मा बद्ध है, परमात्मा शुद्ध है, अंतरात्मा अपने हितमें लगा हुआ है। वह बाह्यचितामें जब रहता है तब बद्ध है। अपने आत्मचिंतवन में जब मग्न होता है तब शुद्ध है।

अपने आत्माको अल्प समझनेवाला स्वयं अल्प है। अपने आत्माको श्रेष्ठ समझकर आदर करनेवाला अल्प नहीं है, वह मेरे समान लोकपूजित है। इसे मेरी आज्ञा समझकर श्रद्धान् करो।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपके भेदसे चार विकल्प आचारका व्यवहारसे होनेपर भी निश्चयसे परमात्मयोगमें ही वे सब अंतर्भूत होते हैं। यह निश्चय मोक्षमार्ग है। मूल गुण, उत्तरगुण आदिका विकल्प सभी व्यवहार हैं। मूलगुण तो अनंतज्ञानादिक आठ हैं और मेरे स्वरूपमें हैं। इस प्रकार समझकर आत्मामें आरूढ़ करना यह निश्चय है। हे भव्य ! जो व्यक्ति सर्व विकल्पोंको छोड़कर ध्यानमें मग्न होते हुए मुझे देखता है वही देववंदना है, अनेक व्रतभावना है।

वायुवेगसे जानेवाले इस चित्तको आत्ममार्गमें स्थिर करना यही तपश्चर्या है। उग्र तपश्चर्या है। श्रेष्ठ तपश्चर्या है। इसे विश्वास करो।

अध्यात्मको जानकर चित्तसाध्यको करते हुए जो अपने आत्मामें ठहर जाता है, वही स्वाध्याय है, वही पंचाचार है। वही महाध्यान है। जप है, तप है।

पारेके समान इधर-उधर जानेवाले चित्तको लाकर आत्मामें संधान वही द्वादशांग शास्त्राध्ययन है। वही चतुर्दशपूर्वाभ्यास है।

सामान्यभावनासे चित्तको रोककर आत्मगम्य करना वही सम्यक्त्व है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है और साम्यतप है।

भिन्न-भिन्न स्थानमें पलायन करनेवाले चित्तको आत्मामें अभिन्न रूपसे लगा देना वही मेरी मुद्रा है, वही तीर्थवंदना है, और वही मेरी उपासना है, इसे श्रद्धान करो।

दुर्जयचित्तको जीतकर, सर्व विकल्पोंको वर्जित करते हुए जो स्वयंको देखता है वही निर्जरा है, संवर है, वही परमात्माकी उर्जित मुक्ति है।

दाक्षिण्य (लिहाज) छोड़कर चित्तको दबाते हुए आत्मसाक्षीसे अंदर देखना वह मोक्षपद्धति है, वही मोक्षसम्पत्ति है। विशेष क्या? वही मोक्ष है, इसे विश्वास करो, विश्वास करो।

हे रविकीर्ति! यह आत्मचिंतवन परमरहस्यपूर्ण है, एवं मुक्ति प्राप्त करनेके लिए सन्निकट मार्ग है। जो इस दुष्टमनको जीतते हैं उन शिष्टोंको इसका अनुभव हो सकता है।

'प्रभो! एक शंका है', बीचमें ही रविकीर्तिकुमारने कहा।

जब इस परमात्माको इतनी अलौकिक सामर्थ्य है फिर वह इस संकुचित शरीरमें फँसकर क्यों रहता है? जन्म और मरणके संकटोंको क्यों अनुभव करता है, श्रेष्ठ मुक्तिमें क्यों नहीं रहता है?

भगवंतने उत्तर दिया कि भव्य! वह अतुलसामर्थ्यसे युक्त है, यह सत्य है, तथापि अपनी सामर्थ्यको न जानकर बिगड़ गया। रागद्वेषको छोड़कर अपने आपको देखे तो वह बहुत सुखका अनुभव करता है।

वृक्षको जलानेकी सामर्थ्य अग्निमें है, परन्तु वह आग वृक्षमें ही छिपी रहती है। जब दो वृक्षोंका परस्पर संघर्षण होता है तब वही अग्नि उसी वृक्षको जला देती है। ठीक इसी प्रकार कर्मको जलानेकी सामर्थ्य आत्मामें है परन्तु वह कर्मके अन्दर ही छिपा हुआ है। कर्मको जानकर स्वतः अपनेको देखें तो उसी कर्मको वह जला देता है।

आत्मामें अनन्तशक्ति है, परन्तु वह शक्तिरूपमें ही विद्यमान है। उसे व्यक्तिके रूपमें लानेकी आवश्यकता है। शक्तिको व्यक्तिके रूपमें लानेके लिए विरक्तिसे युक्त ध्यान ही समर्थ है।

अंकुर तो बीजके अन्दर मौजूद है। भूमिका स्पर्श न होनेपर वह वृक्ष

कैसे बन सकता है ? पंकयुक्त भूमि (कीचड़से युक्त जमीन) के संसर्गसे वही बीज अंकुरित होकर वृक्ष बन जाता है।

ज्ञानसामर्थ्य इस शरीरमें स्थित आत्मामें विद्यमान है, तथापि ध्यान के बिना वह प्रकट नहीं हो सकती है। उसे आनन्द रसके सुध्यानमें रखने पर तीन लोकमें ही वह व्याप्त हो जाता है।

वनमूलिकासारको (नवसादर) सुवर्ण शोधक सांचेमें (मूसमें) डालकर अग्निसे उस अशुद्ध सुवर्णको तपानेपर किट्टकालिमादि दोषसे रहित शुद्ध सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार आत्मशोधन करना चाहिये।

शरीर सुवर्णशोधक सांचा (मूस) हैं। रत्नत्रय यहांपर नवसादर (सुहागा) है, और सुध्यान ही अग्नि है। इन सबके मिलनेपर कर्मका विध्वंस होता है, और वह आत्मा शुद्धसुवर्णके समान उज्ज्वल होता है।

हलके सोनेको शुद्ध जहाँ किया जाता है वहाँ वह नवसादर, मूस अग्नि, किट्ट, कालिमा आदि सब अलग अलग ही हैं। और वह सिद्ध (शुद्ध) करनेवाला अलग ही है। परन्तु यह आत्मशोधनकार्य उससे विचित्र है, यह उस सुवर्णपुटके समान नहीं है।

"सिद्धोऽहम् ! सोऽहम्" इत्यादि रूपसे जो उस आत्मशोधमें तत्पर हैं उनको समझानेके लिए निरूपण करते हैं। अच्छी तरह सुनो ! और समझो।

आत्मपुटकार्यमें वह मूल, किट्ट, कालिमा, यह आत्मासे भिन्न है। बाकी सुवर्ण, औषधि और शोधकसिद्ध सभी आत्मा स्वयं हैं। इस विषय पर विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है भव्य ! यह वस्तुस्वभाव हैं। समस्त तत्वोंमें यह आत्मतत्व प्रधानतत्व है, उसका दर्शन होनेपर अन्यविकल्प हृदयमें उत्पन्न नहीं होते हैं।

निक्षेप, नय, प्रमाण यह सब आत्मनिरीक्षणके कालमें रहते हैं, सर्व पक्षको छोड़कर आत्मनिरीक्षणपर जब यह मग्न हो जाता है तब उनकी आवश्यकता नहीं है।

मदगज यदि खो जाय तो उसके पादके चिह्नोंको देखते हुए उसे ढूंढते हैं। परन्तु सामने ही वह मदगज दिखे तो फिर उन चिह्नोंकी आवश्यकता नहीं रहती है। अनेक शास्त्रोंका अध्ययन, मनन आदि आत्मान्वेषणके लिए मार्ग हैं, ध्यानके बलसे आत्माको देखनेके बाद अनेक विकल्प व भ्रांतिकी क्या आवश्यकता है ?

आत्मसम्पर्कमें जो रहते हैं उनको तर्कपुराणादिक आगम रुचते नहीं हैं। अर्कके समीप जो रहते हैं वे दीपकको क्यों पसन्द करते हैं। क्या राजशर्करासे भी खलकी कभी कीमत अधिक हो सकती है ?

हे भव्य ! यह मेरी पसन्दकी चीज है ! सिद्ध भी इसे पसन्द करते हैं, मैं हूँ सो यह है, यह है सो मैं हूँ। इसलिए तुम इसे विश्वास करो ! पसन्द करो। निरीक्षण करो। यही मेरी आज्ञा है।

पहिले जितने भी सिद्ध मुक्त हुए हैं वे सब इसी आचरणसे मुक्त हुए हैं। और हमें व आगे होनेवाले सिद्धोंको भी यही मुक्तिका राजमार्ग है। यही पद्धति है इस आज्ञाको तुम दृढ़ताके साथ पालन करो।

हे भव्य ! आत्मसिद्धिके लिए और एक कलाके ज्ञानकी आवश्यकता है। उसे भी जान लेना चाहिए। इस लोकमें कार्माणवर्गणायें (कर्मरूप बननेे योग्य पुद्गल परमाणु) सर्वत्र भरी हुई हैं। उन पुद्गलपरमाणुरूपी समुद्रके बीचमें मछलियोंके समान यह असंख्यात जीव डुबकी लगा रहे हैं।

राग, द्वेष, मोह आदियोंके द्वारा उन परमाणुओंका आत्माके साथ सम्बन्ध होता है। परस्पर सम्बन्ध होकर वे ही कार्माणरज आठ कर्मोंके रूपको धारण करते हैं। उन कर्मोंके बंधनको तोड़ना सरल बात नहीं है।

उस बन्धनको ढीला करनेके लिए यह आत्मा स्वयं ही समर्थ है। एक की गांठ दूसरा खोलकर छुड़ाना चाहे तो वह असम्भव है। स्वयं स्वयंके आत्मापर मग्न होकर यदि उस गांठको खोलना चाहे तो आत्मा खोल सकता है। मैं तुम्हारी गांठको खोलता हूँ यह जो कहा जाता है यही तो मोह है, उससे तो बंधन ढीला न होकर पुनः मजबूत हो जाता है। इसलिए किसीके बंधनको खोलनेके लिये, कोई जावे तो वह मोहके कारणसे उलटा बंधनसे बद्ध होता है। एक गांठको खोलनेके लिए जाकर वह तीन गाँठसे बद्ध होता है। इसलिए विवेकियोंको उचित है कि वे कभी ऐसा प्रयत्न न करें। इसलिए आत्मकल्याणेच्छु भव्यको उचित है कि वह अनेक विषयोंको जानकर आत्मयोगमें स्थिर हो जावे, तभी उसे सुख मिल सकता है। अणुमात्र भी भाव कर्मोंको अपनाना उचित नहीं है, ध्यानमें मग्न होना ही आत्माका धर्म है। तुम भी ध्यानी बनो।

हे रविकीर्ति ! तुम्हें, तुम्हारे सहोदरोंको, एवं तुम्हारे पिताको अब संसार दूर नहीं है। इसी भवमें मुक्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार आदि प्रभुने अपने अमृतवाणीसे फरमाया।

इस बातको सुनते ही रविकीर्तिके मुखमें हँसीकी रेखा उत्पन्न हुई, आनन्दसे वह फूला न समाया। स्वामिन् ! मेरे हृदयकी शंका दूर हुई, भक्तिका भेद अब ठीक समझमें आगया। आपके चरणोंके दर्शनसे मेरा जीवन सफल हुआ, इस प्रकार कहते हुए बड़ी भक्तिसे भगवंतके चरणोंमें

साष्टांग नमस्कार किया व पुनः हर्षातिरेकसे कहने लगा कि भगवन् ! मैं जीत गया ! मैं जीत गया !

चिद्रूपको जिन समझकर उपासना करना यह भक्ति है। उस चिद्रूपको न देखकर इस क्षुद्रशरीरको ही जिन समझना यह कौनसी भक्ति है।

कदाचित् शिलामयमूर्तिको किसी अपेक्षासे जिन कह सकते हैं। शुद्धात्मकलाको तो जिन कहना ही चाहिये, मलपूर्ण शरीरको वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर उसे जिन कहना व पूजना वह तो मूर्खभक्ति है।

हंसमुद्राको पसन्द करनेसे यह देहमुद्रा आत्मसिद्धिमें सहकारी होती है। हंसमुद्राको छोड़कर देहमुद्राको ही ग्रहण करें तो उसका उपयोग क्या हो सकता है ? प्रभो ! युक्ति रहित भक्तिकी हमें आवश्यकता नहीं है। हमें तो युक्तियुक्त भक्तिकी आवश्यकता है। वह युक्तियुक्तभक्ति अर्थात् मुक्तिपथ आपके द्वारा व्यक्त हुआ। इसलिए आपकी भक्ति तो अलौकिक फलको प्रदान करनेवाली है। हम धन्य हैं !!

स्वामिन् ! आपने पिताजीको (चक्रवर्ती) एक दफे इसी प्रकार तत्वोपदेश दिया था। उस समय उनके साथ मैं भी आया था। वह उपदेश अभीतक मेरे हृदयमें अंकित है। आज वह द्विगुणित हुआ। आज हम सब बुद्धिविक्रम बन गये। प्रभो ! कर्मकर्दममें जो फँसे हुए हैं, उनको ऊपर उठाकर धर्मजलसे धोनेमें एवं उन्हें निर्मल करनेमें समर्थ आपके सिवाय दयानिधि दूसरे कौन हैं।

विषय (पंचेंद्रिय) के मदरूपी विषका वेग जिनको चढ़ जाता है, उनको तुषमषमाष बोधमंत्रसे जागृत कर विषको दूर करनेवाले एवं शांत करनेवाले आप परमनिर्विषरूप हैं।

आठकर्मरूपी आठ सर्पोंके गलेमें फँसे हुए जीवोंको बचाकर उनको मुक्तिपथमें पहुँचानेवाले लोकबन्धु आपके सिवाय दूसरे कौन हो सकते हैं।

भवरूपी समुद्रमें यमरूपी मगरके मुखमें जो हम फँसे हुए थे उनको उठाकर मोक्षपथमें लगानेमें दक्ष आप ही हैं। और कोई नहीं है।

स्वामिन् ! हम बच गये। आपके पादकमलोंके दर्शनसे आत्मसिद्धिका मार्ग भी सरल हुआ है। इससे अधिक लाभकी हमें आवश्यकता नहीं है। अब हमारे मार्गको हम ही सोच लेते हैं।

तदनन्तर रविकीर्तिने अपने भाइयोंसे कहा कि शत्रुंजय ! महाजय ! अरिंजय ! आप सबने भगवंतके दिव्यवाक्यको सुन लिया ? रतिवीर्य आदि सभी भाईयोंने सुना ? तब उन भाइयोंने विनयसे कहा कि भाई ! सुननेमें समर्थ आप हैं, आत्मसिद्धिको कहनेमें समर्थ महाप्रभु हैं। हम लोग सुनना

क्या जानें आप जो कहेंगे उसे हम सुनना जानते हैं। उससे अधिक हम कुछ भी नहीं जानते हैं। भाई ! क्या ही अच्छा निरूपण हुआ। भगवंत का यह दिव्य तत्वोपदेश क्या, कर्मरूप भूमिके अन्दर छिपी हुई परमात्म-निधिको दिखानेवाला यह दिव्यांजन है। वह परमात्मका दिव्यवाक्य क्या ? देहकूपपापांधकारमें मग्न परमात्माके स्वरूपको दिखानेवाला रत्न-दीप है। कलिहर भगवंतका तत्वोपदेश क्या ? भवरूपी संतापसे संतप्त प्राणियोंको गुलाबजलकी नदीके समान है। हमारे शरीरमें ही हमें परमात्मा का दर्शन हुआ। अगाधभवसमुद्र हमें चुल्लूभर पानीके समान मालूम हो रहा है। भगवन् ! हम सब इस फंदमें पड़े नहीं रह सकते हैं।

बड़ा भाई जिस प्रकार चलता है उसी प्रकार घरभरकी चाल होती है। इसलिए भाई ! आप जो कहेंगे वही हमारा निश्चय है। हमारा उद्धार करो।

रविकीर्तिराजने कहा कि ठीक है। अब अपन सब कैलासनाथ प्रभुके हाथसे दीक्षा लेवें। यही आगेका मार्ग है। तब सबने एक स्वरसे सम्मति दी।

भगवंतकी पूजा कर अनंतर दीक्षा लेंगे, इस विचारसे वे सबसे पहिले भगवंतकी पूजामें लवलीन हुए। इस प्रकार व्यवहार व निश्चयमार्गको जानकर वे भरतकुमार आगेकी तैयारी करने लगे।

वे सुकुमार धन्य हैं जिनके हृदयमें ऐसे बाल्यकालमें भी विरक्तिका उदय हुआ। ऐसे सुपुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी धन्य हैं जिनकी सदा इस प्रकारकी भावना रहती है कि—

"हे परमात्मन् ! आप सकलविकल्पवर्जित हो ! विश्वतत्त्व दीपक हो, इसलिए दिव्यसुज्ञान स्वरूपी हो, अकलंक हो, त्रिभुवन के लिए दर्पणके समान हो, इसलिए मेरे हृदयमें सदा निवास करो।

हे सिद्धात्मन् ! आप मोक्षमार्ग हैं, मोक्षकारण हैं, साक्षात् मोक्षरूप हैं, मोक्षसुख हैं, मोक्षसंपत्स्वरूप हैं। हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।"

इसी भावना का फल है कि उन्हें ऐसे लोकविजयी पुत्र प्राप्त होते हैं।

इति मोक्षमार्ग संधिः

—०◆—

दीक्षासंधिः

भगवन्! भरतचक्रवर्तीके पुत्रोंके भव्यविनयका क्या वर्णन करूं? भगवंतके मुखसे प्रत्यक्ष उपदेशको सुननेपर भी दीक्षाकी याचना नहीं की। अपितु भगवंतकी पूजाके लिए वे तैयार हुए।

यद्यपि वे विवेकी इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि भगवान् आदिप्रभु पूजाके भूखे नहीं हैं। तथापि मंगलार्थ उन्होंने पूजा की। अच्छे कार्यके प्रारम्भमें पहिले मंगलाचरण करना आवश्यक है। इस व्यवहारको एकदम नहीं छोड़ना चाहिए। इसी विचारसे उन्होंने पूजा की।

कुछ मिनटोंमें ही वे स्नानकर पूजाके योग्य शृंगारसे युक्त भये एवं पूजासामग्री लेकर देवेन्द्रकी अनुमतिसे पूजा करने लगे। कोई उनमें स्वयं पूजा कर रहे तो कोई पूजामें परिचारकवृत्तिका कार्य कर रहे हैं। अर्थात् सामग्री वगैरह तैयार कर दे रहे हैं। कोई उसीमें अनुमोदना देकर आनंदित हो रहे हैं। उनकी भक्तिका क्या वर्णन करें?

ओंकारपूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुये ह्रींकार, अर्हंकारके साथ हूंकार की सूचनासे जलपात्रके जलको झंकारके शब्दसे अर्पण करने लगे। दोनों हाथोंसे सुवर्णकलशको उठाकर मन्त्रसाक्षीसे भगवंतके चरणोंमें जलधारा दे रहे हैं। उस समय वहाँ उपस्थित देवगण जयजयकार शब्द कर रहे थे। सुरभेरी, शंख, वाद्य आदि लेकर साढ़ेबारह करोड़ तरहके बाजे उस समय बजने लगे थे। विविध प्रकारसे उनके जब शब्द हो रहे थे, मालूम हो रहा था कि समुद्रका ही घोष हो। गन्धगजारि अर्थात् सिंहके ऊपर जो कमलासन था उसके सुगन्धसे संयुक्त भगवंतके चरणोंमें उन भरत-कुमारोंने दिव्यगन्धका समर्पण किया जिस समय गन्धर्व जातिके देव जय-जयकार शब्द कर रहे थे।

अक्षयमहिमासे युक्त, विमलाक्ष, विजिताक्ष श्री भगवंतके चरणोंमें जब उन्होंने भक्तिसे अक्षताका समर्पण किया तब सिद्धयक्षजातिके देव जयजयकार शब्द कर रहे थे। पुष्पबाण कामदेवके समान सुन्दर रूपको धारण करनेवाले वे कुमार कोटिसूर्यचन्द्रोंके प्रकाशको धारण करनेवाले भगवंतको पुष्पका जब समर्पण कर रहे थे तब उनका वपुपुलकित (शरीररोमांच) हो रहा था अर्थात् अत्यधिक आनन्दित होते थे। पर-संगसे होकर आत्मानंदमें लीन होनेवाले भगवंतको वे अनुरागसे परमान्न नैवेद्यको नवीन सुवर्णपात्रसे समर्पण कर रहे हैं। सूर्यको दीपक दिखानेके

समान तीनलोकके सूर्यकी कर्पूरदीपकसे आरती वे कुमार कर रहे हैं, उस समय आर्यजन जयजयकार कर रहे हैं। भगवंतको वे धूपका अर्पण कर रहे हैं। उस धूपका धूम कृष्णवर्ण विरहित कांतिसे युक्त होकर आकाशप्रदेशमें जिस समय जा रहा था, उस समय सुगन्धसे युक्त इन्द्र-धनुषके समान मालूम हो रहा था। स्वामिन्! विफल होनेवाला यह जन्म आपके दर्शनसे सफल भया। इसलिए कर्मनाटक अफल हो, एवं मुक्ति सफल हो। इस प्रकार कहते हुए उत्तम फलको समर्पण करने लगे। उत्तम रत्नदीप, सुवर्ण व रत्ननिर्मित उत्तम फलोंसे युक्त मेरुपर्वतके समान उन्नत अर्घ्यसे भगवंतकी पूजा की।

संतापको पानेवाले समस्त प्राणियोंके दुःखकी शांति हो इस विचारसे भगवंतके चरणोंमें शांतिधारा की। वह शांतिधारा नहीं थी, अपितु मुक्तिकांताके साथ पाणिग्रहण होते समय की जानेवाली जलधारा थी। एवं चांदीसोना आदिसे निर्मित उत्तमपुष्पोंसे भगवंतकी पुष्पांजलि की। साथ ही मोती, माणिक, नील, गोमेधक, हीरा, वैडूर्य, पुष्यराग आदि उत्तमोत्तम रत्नोंको भगवंतके चरणोंमें समर्पण किया।

अब वाद्यघोष (बाजेका शब्द) बंद हो गया। विद्यानंद वे कुमार प्रभुके सामने खड़े होकर स्तुति करनेके लिए उद्युक्त हुए।

भगवन्! अद्य वयं सुखिनो भूम—

जयजय जातिजरातंक मृत्युसंचय दुरदुःखसंहार!
जयजय निश्चित शांत निर्लेप! भवदीय पावन चरण वर शरण
पापांधकारविद्रावण मदनदर्पाहरण भवमथन!
कोपाग्नि शीतल जलधर! संसार संताप निवारक
कर्ममहारण्यदावाग्नि! दशविधधर्मोद्धार सुसार!
धर्माधर्मस्वरूप दर्शय! कर्म निर्मूलसे निर्मल पदसारकर

हे महादेव! यह जगत् अत्यन्त विशाल है। उस जगत्से भी विशाल आकाश है। उससे भी बढ़कर विशाल आपका ज्ञान है। आपकी स्तुति हम क्या कर सकते हैं?

कल्पवृक्षसे प्राप्त दिव्यान्नके सुखसे भी बढ़कर निरुपम निजसुखको अनुभव करनेवाले आपको सामान्य वृक्षके फल व भक्ष्योंको हम अर्पण कर प्रसन्न होते हैं यही हम बालकोंकी चंचलभक्ति है।

स्वामिन्! ध्यानमें आत्माके अन्दर आपको लाकर भावभूमिके शान

ज्ञानपूजा जबतक हम नहीं कर सकते हैं, तबतक आपकी इन फलोंसे पूजा करेंगे।

पुनः-पुनः साष्टांग नमस्कार करते हुए हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। भक्तिसे हर्षित होते हुए भगवंतकी प्रदक्षिणा दे रहे हैं।

हेमगिरीको प्रदक्षिणा देते हुए आनेवाली सोमसूर्यकी सेनाके समान वे हेमवर्णके कुमार भगवंतको प्रदक्षिणा दे रहे हैं, उनकी भक्तिका वर्णन क्या करना है? भगवंतकी शरीरकांति वहांपर सर्वत्र व्याप्त हो गई है। उस बीचमें ये कुमार जा रहे थे। मालूम हो रहा था कि ये कांतिके तीर्थमें ही जा रहे हैं।

अत्यन्त ठण्डे धूपके मार्गमें चलनेके समान तथा ठण्डे प्रकाशको धारण करनेवाले दीपकके प्रकाशमें चलनेके समान वे कुमार वहांपर प्रदक्षिणा दे रहे हैं।

रत्नसुवर्णके द्वारा निर्मित गंधकुटिमें रत्नगर्भ वे कुमार जिनरत्नोंके बीच रत्नदीपके समान जा रहे हैं, उस शोभाका क्या वर्णन करें?

जिनेन्द्रभगवंतके सिंहासनके चारों ओर विराजमान हजारों केवलियों-की वंदना करते हुए वे विनयरत्नकुमार रविकीर्तिराजको आगे रखकर जा रहे हैं, उनकी भक्तिका क्या वर्णन करें?

उन केवलियोंमें अनेक केवली रविकीर्तिराजके पूर्वपरिचयके थे। इसलिये अपने भाइयोंको भी परिचय देनेके उद्देश्यसे रविकीर्तिकुमारने उनको इस क्रमसे नमोस्तु किया।

उन महायोगियोंके बीच सबसे पहिले एक योगिराजको रविकीर्ति राजने देखा, जो कि अपनी कांतिसे सूर्यचन्द्रको भी तिरस्कृत कर रहे हैं। उनको देखकर कुमारने कहा कि 'मैं स्वामी अकंपकेवलीको नमस्कार करता हूं, सभी भाई उसी समय समझ गये कि यह वाराणसी राज्यके अधिपति राजा अकंप है। उन्होंने राज्यवैभवको त्यागकर तपश्चर्या की व केवलज्ञानको प्राप्त किया। साथमें सबने अकंपकेवलीकी वंदना की। युवराज अर्ककीर्तिको अपनी कन्या दी व राज्यको अपने पुत्रको दिया एवं स्वयं तपोराज्यके आश्रयमें आकर केवली हुए। धन्य है! इससे बढ़कर हमें दृष्टान्तकी क्या आवश्यकता है? इस प्रकार विचार करते हुए वे कुमार आगे बढ़ रहे थे कि इतनेमें वहांपर उस जिन समूहमें दो योगिराज देखनेमें आये। मालूम होता था कि स्वयं चन्द्र और सूर्य ही जिनरूपको लेकर वहांपर उपस्थित है।

रविकीर्तिकुमारने कहा कि सोमप्रभ जिन जयवन्त रहे। श्रेयांसस्वामीको नमोस्तु ! इस वचनसे वे सब कुमार इन केवलियोंसे परिचित हुए। हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभ व श्रेयांस सहोदर हैं। उन्होंने अपनी सर्व राज्यसंपत्तिको मेघेश्वरके (जयकुमार) हवालाकर दीक्षा ली एवं आज इस वैभवको प्राप्त किया। जिन! जिन! धन्य है जिनदीक्षा कोई सामान्य चीज नहीं है। वह तो लोकपावन है। इस प्रकार कहते हुए उन दोनों केवलियोंको भक्तिसे प्रणाम किया व आगे बढ़े! आगे बढ़नेपर अत्यन्त कांतियुक्त दो केवलियोंका दर्शन हुआ। रविकीर्ति कुमारने कहा कि कच्छ व महाकच्छ जिनको मैं भक्तिसे वन्दना करता हूं। ये तो दोनों चक्रवर्ती भरतके खास मामा हैं। और अपने राज्यसे मोहको त्यागकर यहां केवली हुए हैं, धन्य हैं इस प्रकार विचार करते हुए वे आगे बढ़े। वहांपर उन्होंने जिस केवलीका दर्शन किया वह वहां उपस्थित सर्व केवलियोंसे शरीरसे हृष्टपुष्ट दीर्घकाय था, और सुन्दर था, विशेष क्या, उस समयका कामदेव ही था। रत्नपर्वत ही आकर जिन रूपमें खड़ा हो इस प्रकार लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहा था। रविकीर्तिराजने भक्तिसे कहा कि भगवान् बाहुबली स्वामीके चरणोंमें नमस्कार हो। सर्व कुमारोंने आश्चर्य व भक्तिके साथ उनकी वन्दना की।

आगे बढ़नेपर और भी अनेक केवली मिले, जिनमें इन कुमारोंके कई काका भी थे जो भरतेशके सहोदर हैं। परन्तु हम भरतचक्रवर्तीको नमस्कार नहीं करेंगे, इस विचारसे अपने-अपने राज्यको छोड़कर दीक्षित हुए। ऐसे सौ राजा हैं। उनमेंसे कइयोंको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी। उन केवलियोंकी उन्होंने भक्तिसे वंदना की। और मनमें विचार करते हुए आगे बढ़े कि जब हमारे इस पितृसमुदायने दीक्षा लेकर कर्मनाश किया तो क्या हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम भी उनके समान ही होवें ?

अन्दरके लक्ष्मीमंडपमें आनन्दके साथ तीन प्रदक्षिणा देकर बाहरके लक्ष्मी मंडपमें आये। वहांपर १२ सभाओंकी व्यवस्था है वहांपर सबसे पहिली सभा आचार्यसभा कहलाती है। वे कुमार बहुत आनन्दके साथ उस सभामें प्रविष्ट हुए। उस ऋषिकोष्ठकमें हजारों मुनिजन हैं। तथापि उनमें ८४ मुख्य हैं, वे गणनायक कहलाते हैं उनमें भी मुख्य वृषभसेन नामक गणधर थे, उनको कुमारोंने बहुत भक्तिके साथ नमस्कार किया। सार्वभौम चक्रवर्ती भरतके तो वे छोटे भाई हैं, परन्तु शेष सौ अनुजोंके लिए तो बड़े भाई हैं। और सर्वज्ञ भगवान् आदि प्रभुके वे प्रधान मंत्री हैं, ऐसे अपूर्वयोगी वृषभसेन गणधरको उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार

किया। वहांपर उपस्थित गणधरोंको क्रमसे नमस्कार करते हुए वे कुमार आगे बढ़े। इतनेमें वहांपर उन्होंने अनेक तत्वचर्चामें चित्त विशुद्धि करनेवाले ७१वें गणधरको देखा। उनके सामने वे कुमार खड़े होकर कहने लगे कि हे मेघेश्वरयोगि ! आप विचित्र महापुरुष हैं, आप जयवंत रहें ! इसी प्रकार विजय, जयंतयोगी जो मेघेश्वर (जयकुमार) के सहोदर हैं, को भी भक्तिसे वंदना की, और कहने लगे कि दीक्षाकार्यका दिग्विजय हमें हो गया। अब हमारा निश्चय हो गया है। उस समय वे कुमार आनंदसे फूले न समा रहे थे।

मुनि समुदायको वंदना कर वे कुमार अनिमिषराज देवेन्द्रके पास आये व बहुत विनयके साथ उन्होंने अपने अनुभवको देवेंद्रसे व्यक्त किया। देवराज ! हमारे निवेदनको सुनो, उन कुमारोंने प्रार्थना की "आप अपने स्वामीसे निवेदन कर हमें दीक्षा दिलावें, इससे तुम्हें सातिशय पुण्य मिलेगा। वह पुण्य आगे तुम्हें मुक्ति दिला देगा, हम लोगोंने भगवन्तका कभी दर्शन नहीं किया, उनसे दीक्षाके लिए विनती करनेका क्रम भी हमें मालूम नहीं है। इसलिए हे ऊर्ध्वलोकके अधिपति ! मौनसे हम देखते हुए क्यों खड़े हो ! चलो, प्रभुको कहो"। तब देवेन्द्रने उत्तर दिया कि कुमार ! आप लोगोंका अनुभव, विचार, परमात्माके ज्ञानको भरपूर व्यक्त कर रहा है इसलिए मुझे आप लोग क्यों पूछ रहे हैं आप लोग जो भी करेंगे उसमें मेरी सम्मति है। जाईयेगा। तदनन्तर वे कुमार वहांसे आगे बढ़े, और गणधरोंके अधिपति वृषभसेनाचार्यको पुनश्च वंदनाकर कहने लगे कि मुनिनाथ ! कृपया जिननाथसे हमें दीक्षा दिलाइये तब वृषभसेनस्वामीने कहा कि कुमार ! आप लोगोंका पुण्य ही आप लोगोंके साथमें आकर दीक्षा दिला रहा है, फिर आप लोग इधर-उधरकी अपेक्षा क्यों करते हैं ? जाओ, आप लोग स्वयं त्रिलोकपतिसे दीक्षाकी याचना करना वे बराबर दीक्षा देंगे। साथमें यह भी कहा कि हमारी अनुमति है, वही यहाँ द्वादशगणकी भी सन्मत है, लोकके लिए पुण्यकारण है, आप लोग जाओ, अपना काम करो। इस प्रकार कहकर गणनायक वृषभसेनाचार्यने उनको आगे रवाना किया। गणकी अनुमतिसे आगे बढ़कर वे भगवान् आदिप्रभुके सामने खड़े हुए व करबद्ध होकर विनयसे प्रार्थना करने लगे, हे फणिसुरनरलोकगतिके एवं विश्वके समस्तजीवोंको रक्षण करनेवाले, हे प्रभो ! हमारे निवेदनकी ओर अनुग्रह कीजिये।

भगवन् ! अनादिकालसे इस भयंकर भवसागरमें फिरते-फिरते थक गये हैं। हैरान हो गये। अब हमारे कष्टोंको अर्ज करनेके लिए आप

दयानिधिके पास आये हैं। स्वामिन्! आपके दर्शनके पहिले हम बहुत दुःखी थे। परन्तु आपके दर्शन होनेके बाद हमें कोई दुःख नहीं रहा इस बातको हम अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए हमारी प्रार्थनाको अवश्य सुननेकी कृपा करें।

भगवन्! को भगाकर, कामको लात मारकर, दुष्कर्मजालको नष्ट कर, हम मुक्तिराज्यकी ओर जाना चाहते हैं। इसलिए हमें जिनदीक्षाको प्रदान करें। दीक्षा देनेपर मनको दंडित कर आत्मामें रक्खेंगे एवं ध्यान दण्डसे कर्मोंको खंड-खंडकर दिखायेंगे आप देखिये तो सही अर्हन्! हम गरीब व छोटे जरूर हैं, परन्तु आपकी दीक्षाको हस्तगत करनेके बाद हमारे बराबरी करनेवाले लोकमें कौन हैं? उसे बातोंसे क्यों बताना चाहिए। आप दीक्षा दीजिये, तदनन्तर देखिये हम क्या करते हैं?

प्रभो! इस आत्मप्रदेशमें व्याप्त कर्मोंको जलाकर कोटिसूर्यचन्द्रोंके प्रकाशको पाकर यदि आपके समान लोकमें हम लोकपूजित न बने तो आपके पुत्रके पुत्र हम कैसे कहला सकते हैं? जरा देखिये तो सही।

हमारे पिता छह खंडके विजयी हुए। हमारे दादा (आदिप्रभु) त्रेसठ कर्मोंके विजयी हुए। फिर हमें तीन लोकके कर्मको क्या परवाह है। आप दीक्षा दीजिये, फिर देखिये। भगवन् मोक्षके लिए ध्यानकी परम आवश्यकता है। ध्यानके लिए जिनदीक्षा ही बाह्यसाधन है। इसलिए "स्वामिन्! दीक्षां देहि! दीक्षां देहि!" इस प्रकार कहते हुए सबने साष्टांग नमस्कार किया।

भक्ति से बद्ध दीर्घबाहु, विस्तारित पाद, भूमिको स्पर्श करते हुए ललाट प्रदेश, एकाग्रतासे जगद्गुरुके सामने पड़े हुए वे कुमार उस समय सोनेकी पुतलीके समान मालूम होते थे।

"अस्तु भव्याः समुत्तिष्ठत" आदिप्रभुने निरूपण किया। तब वे कुमार उठकर खड़े हुए। वहाँ उपस्थित असंख्य देवगण जयजयकार करने लगे। देवदुंदुभि बजने लगी। देवांगनायें मंगलगान करने लगीं। समयको जानकर वृषभसेनयोगी व देवेन्द्र वहाँपर उपस्थित हुए नीलरत्नकी फरसी के ऊपर मोतीकी अक्षताओंसे निर्मित स्वस्तिकके ऊपर उन सौ कुमारोंको पूर्व व उत्तरमुखसे बैठाल दिया, वे बहुत आतुरताके साथ वहाँ बैठ गये। उनके हाथमें रत्नत्रययंत्रको स्वस्तिकके ऊपर रखकर उसके ऊपर पुष्प-फलाक्षतादि मंगलद्रव्योंको विन्यस्त किया, इतनेमें हल्ला-गुल्ला बन्द हो गया, अब दीक्षाविधि होनेवाली है। वे सुकुमार भगवान्के प्रति ही बहुत

भक्तिसे देख रहे थे। इतनेमें मेघपलटसे जिस प्रकार जल बरसता है उसी प्रकार भगवंतके मुखकमलसे दिव्यध्वनिका उदय हुआ।

वे कुमार भवके मूल, भवनाशके मूल कारण एवं मोक्षसिद्धिके साध्य-साधनको कान देकर सुन रहे थे, भगवान् विस्तारसे निरूपण कर रहे थे हे भव्य ! मोक्षमार्गसंधिमें विस्तारसे जिसका कथन किया जा चुका है, वही मोक्षका उपाय है। परिग्रहका सर्वथा त्याग करना ही जिनदीक्षा है बाह्यपरिग्रह दस प्रकारके हैं। अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकारके हैं ये चौबीस परिग्रह आत्माके साथ लगे हुए हैं। इन चौबीस परिग्रहोंका परित्याग करना ही जिनदीक्षा है क्षेत्र, वास्तु, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, दासी-दास, पशु, वस्त्र, बरतन, इन बाह्य परिग्रहोंसे मोहका त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार रागद्वेष मोह हास्यादिक चौदह अन्तरंग परिग्रहोंका भी त्याग करना चाहिए जो अत्यन्त दरिद्र हैं उनके पास बाह्यपरिग्रह कुछ भी नहीं रहते हैं, तथापि अंतरंग परिग्रहोंको त्याग किये बिना कोई उपयोग नहीं है। [illegible] परिग्रहोंके त्याग करनेपर [illegible] भी [illegible]का त्याग करता है इसलिए बाह्य परिग्रहका त्याग ही त्याग है, ऐसा न समझना चाहिए। बाह्यपरिग्रहके त्यागसे जो आत्मविशुद्धि होती है, उसके बलसे अंतरंग मोह रागादिकका परित्याग करें जिससे ध्यानकी व सुखकी सिद्धि होती है।

इस आत्मासे शरीरकी भिन्नता है, इस बातको दृढ़ करनेके लिए मुनिको केशलोच व इन्द्रियोंके दमनके लिए एकभुक्तिकी आवश्यकता है। शरीरशुद्धिके लिए कमंडलु व जीवरक्षाके लिए पिछीकी आवश्यकता है एवं अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिए आचारसूत्रकी आवश्यकता है। योगियोंके उपकरण हैं।

शास्त्रोंमें वर्णित मूलगुण, उत्तरगुणादि ध्यानके लिए बाह्य सहकारी है। यह सब ध्यानकी सिद्धिके लिए आवश्यक हैं।

इस प्रकार गंभीरनिनादसे निरूपण करते हुए भगवन्तने यह भी कहा कि अब अधिक उपदेशकी जरूरत नहीं है। अब अपने शरीरके अलंकारोंका परित्याग कीजिये। राजवेषको छोड़कर तापसी वेषको ग्रहण कीजिए।

सर्व पुत्रोंने 'इच्छामि, इच्छामि,' कहते हुए हाथके फलाक्षतको भगवंत के पादमूलमें अर्पण करनेके लिए पासमें खड़े हुए देवोंके हाथमें दे दिया। अपने शरीरके वस्त्रको उन्होंने उतारकर फेंका। इसी प्रकार कंठहार, कर्णाभरण, सुवर्णमुद्रिका कटिसूत्र, रत्नमुद्रिका आदि सर्वाभरणोंको उतार दिया। तिलक, यज्ञोपवीत, आदिका भी त्याग किया। वह विचार करने

हुए कि हम कौन हैं, यह शरीर कौन है, अपने केशपाशको अपने हाथसे लुंचन करते हुए वहाँ रखने लगे। वे केशपाशको संक्लेशपाश, दुर्मोहपाश, आशापाश व मायापाशके समान फाड़ने लगे। विशेष क्या? जन्मके के समयके समान वे जातरूपधर बने शरीरका आवरण दूर होते ही शरीरमें नवीन कांति उत्पन्न हो गई जिस प्रकार कि माणिकको जलाने पर उसमें रंग चढ़ता है।

कांति व शांति दोनोंमें वे कुमार जातरूपधर बने कांति अब तो पहिले से बहुत बढ़ गई है। वे बहुत ही भाग्यशाली हैं।

भगवान् आदिप्रभु दीक्षागुरु हैं। कैलास पर्वत दीक्षाक्षेत्र है देवेन्द्र वे गणधर दीक्षाकार्यमें सहायक हैं। ऐसा वैभव लोकमें किसे प्राप्त हो सकता है।

स्वस्तिकके ऊपरसे उठकर सभी कुमार आदिप्रभुके चरणोंमें पहुँचे व भक्तिसे नमस्कार करने लगे, तब वीतरागने आशीर्वाद दिया कि 'आत्म-सिद्धिरेवास्तु'। इस समय देवगण आकाश प्रदेशमें खड़े होकर पुष्पवृष्टि करने लगे एवं जयजयकार करने लगे। इसी समय करोड़ों बाजे बजने लगे एवं मंगलगान करने लगे। वृषभसेन गणधरने उपकरणोंको वृषभ-नाथ स्वामिके सामने रखा तो नूतन ऋषियोंने वृषभनाथाय नमः स्वाहा कहते हुए ग्रहण किया। उनके हाथमें पिछ तो बिजलीके गुच्छके समान मालूम हो रहे थे। इसी प्रकार स्फटिकके द्वारा निर्मित कमंडलुको भी उन्होंने ग्रहण किया एवं बालवयके वे सौ मुनि वहाँसे आगे बढ़े। वृषभसेनाचार्यके साथ वे जब आगे बढ़ रहे थे, तब वहाँ सभी जयजयकार करने लगे। मालूम हो रहा था कि समुद्र उमड़कर घोषित कर रहा हो।

'रविकीर्ति योगी आवो, गजसिंहयोगी आवो, दिविजेंद्रयोगी आओ' इस प्रकार कहते हुए योगिजन उनको अपनी सभामें बुला रहे थे। उन्होंने भी उनके बीचमें आसन ग्रहण किया। देवेन्द्र शची महादेवीके साथ आये व उन्होंने उन नूतनयोगियोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार किया। उन योगियोंने भी "धर्मवृद्धिरस्तु" कहा। देवेन्द्र भी मनमें यह कहते हुए गया कि स्वामिन्! आप लोगोंके आशीर्वादसे वृद्धिमें कोई अन्तर नहीं होगा। अवश्य इसकी सिद्धि होगी। इसी प्रकार यक्ष, सुर, गरुड़, गंधर्व, नक्षत्र, देव, मनुष्य आदि सबने आकर उन योगियोंको नमस्कार किया।

मुनिकुमारोंने जिनवस्त्राभरण केश आदिका परित्याग किया था उसको देवगणोंने बहुत वैभवके साथ समुद्रमें पहुँचाया जाते समय उनके वैराग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी।

बाल्यकालमें सौन्दर्ययुक्त शरीरको पाकर एकदम मोहका परित्याग करनेवाले कौन हैं? इस प्रकार जगह-जगह खड़े हुए देवगण प्रशंसा कर रहे थे।

हजार सुवर्णमुद्रा मिली तो बस, खर्चकर खाकर मरते हैं, परन्तु संसार नहीं छोड़ते हैं। भूवलयको एक छत्राधिपत्यसे पालनेवाले सम्राट्के पुत्र इस प्रकार परिग्रहोंका परित्याग करें, यह क्या कम बात है?

मूछें सफेद हो जाय तो उसे कलप वगैरह लगाकर पुनः काले दिखाने-का लोगोंको शौक रहता है। परन्तु अच्छी तरह मूछ आनेके पहिले ही संसारको छोड़नेवाले अतिथि इन कुमारोंके समान दूसरे कौन हो सकते हैं।

दाँत न हों तो तांबूलको खलबट्टेमें कूटकर तो जरूर खाते हैं। परंतु छोड़ते नहीं हैं। इन कुमारोंने इस बाल्य अवस्थामें संसारका परित्याग किया। आश्चर्य है!

अपने विकृत शरीरको तेल, साबुन, अतर वगैरहसे मलकर सुन्दर बनानेके लिए प्रयत्न करनेवाले लोकमें बहुत हैं। परन्तु सातिशय सौन्दर्य को धारण करनेवाले शरीरोंको तपको प्रदान करनेवाले इन कुमारोंके समान लोकमें कितने हैं?

काले शरीरको पावडर मलकर सफेद करनेके लिए प्रयत्न :करनेवाले लोकमें बहुत हैं। परन्तु पुरुष भी मोहित हों ऐसे शरीरको धारण करने वाले इन कुमारों के समान दीक्षा लेनेवाले कौन हैं?

भरतचक्रवर्तीकी सेवा करनेका भाग्य मिले तो उससे बढ़कर दूसरा पुण्य नहीं है ऐसा समझनेवाले लोकमें बहुत हैं। परन्तु खास भरतचक्रवर्ती के पुत्र होकर सम्पत्तिसे तिरस्कार करें यह आश्चर्यकी बात है।

इन कुमारोंको मोक्षप्राप्तिमें क्या कठिनता है? यह जरूर जल्दी ही मोक्षधाममें पधारेंगे इत्यादि प्रकारसे वहाँपर देवगण उन कुमारोंकी प्रशंसा कर रहे थे, ये दीक्षितकुमार आत्मयोगमें मग्न थे।

भरतचक्रवर्ती महान् भाग्यशाली हैं। अखंड साम्राज्यके अतुल वैभव को भोगते हुए सम्राट्को तिलमात्र भी चिंता या दुःख नहीं है। कारण वे सदा वस्तुस्वरूपको विचार करते रहते हैं। उनके कुमार भी पिताके समान ही परमभाग्यशाली हैं। नहीं तो, उद्यानवनमें क्रीड़ाके लिए पहुँचते क्या? वहींसे समवसरणमें जाते क्या! वहाँ तीर्थंकरयोगीके हस्त-से दीक्षा लेते क्या! यह सब अजब बातें हैं। इस प्रकारका योग बड़े

पुण्यशालियोंको ही प्राप्त होता है। भरतेश्वरने अनेक भवोंसे सातिशय पुण्यको अर्जन किया है। वे सदा चिंतवन करते हैं कि,

"हे चिदम्बरपुरुष! आप आगे पीछे, दाहिने बाएँ, बाहर, अन्दर, ऊपर नीचे आदि भेद विरहित होकर अमृतस्वरूप हैं। इसलिए हे सच्चिदानन्द! मेरे चित्तमें सदा निवास कीजिए।

हे सिद्धात्मन्! आप स्वच्छ प्रकाशक तीर्थस्वरूप हैं, चाँदनीसे निर्मित बिंबके समान हो, इसलिए मुझे सदा सन्मति प्रदान कीजिए।

इति दीक्षासंधिः

—०—

कुमारवियोग संधिः

भरतके सौ कुमार दीक्षित हुए। तदनन्तर उनके सेवक बहुत दुःख के साथ वहाँसे लौटे। उस समय उनको इतना दुःख हो रहा था कि जैसे किसी व्यापारीको समुद्रमें अपनी मालभरी जहाजके डूबनेसे दुःख होता हो। वह जिस प्रकार जहाजके डूबनेपर दुःखसे अपने ग्रामको लौटता है, उसी प्रकार वे सेवक अत्यन्त दुःखसे अयोध्याकी ओर जा रहे हैं। कैलास-पर्वतसे नीचे उतरते ही उनका दुःख उद्रिक्त हो उठा। रास्तेमें मिलने वाले अनेक ग्रामवासी उनको पूछ रहे हैं, ये सेवक दुःखभरी आवाजसे रोते-रोते अपने स्वामियोंके वृत्तांतको कह रहे हैं। किसी प्रकार स्वयं रोते हुए सबको रुलाते हुए चक्रवर्तीके नगरकी ओर वे सेवक आये।

रविकीर्ति राजकुमारका सेवक अरविंद है। उसे ही सबने आगे किया। बाकी सब उसके पीछे-पीछे चल रहे हैं। वे दुःखसे चलते समय पतियोंको खोये हुए ब्राह्मणस्त्रियोंके समान मालूम हो रहे थे। कलारहित चेहरा, पटुत्वरहित चाल, प्रवाहित अश्रु, मौनमुद्रासे युक्त मुख व उत्तरीय वस्त्रसे ढके हुए मस्तकसे युक्त होकर वे बहुत दुःखके साथ नगरमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके बगलमें उन कुमारोंके पुस्तक, आयुध, वीणा वगैरह हैं। नगर-वासी जन मार्गमें चक्कर पूछ रहे हैं कि राजकुमार कहाँ हैं तो ये सेवक

मूक बनकर जा रहे हैं। बुद्धिमान् लोग समझ गये कि राजकुमार सबके सब दीक्षा लेकर चले गये। वह कैसे ? इनके हाथमें जो खड्ग, कठारी, वीणा, वगैरह हैं, ये ही तो इस बातके लिए साक्षी हैं। नहीं तो ये सेवक तो अपने स्वामियोंको छोड़कर कभी वापस नहीं आ सकते हैं। हमारे सम्राट्के सुपुत्रोंको परबाधा नहीं है अर्थात् शत्रुओंको अस्त्रशस्त्रादिकसे उनका अपमरण नहीं हो सकता है। क्योंकि वे मोक्षगामी हैं। इनकी मुख-मुद्रा ही कह रही है कि कुमारोंने दीक्षा ली है सब लोगोंने इसी बातका निश्चय किया। कोई इस बातमें सम्मत हैं। कोई असम्मत हैं। तथापि सबने यह निश्चय किया, अब कि ये सेवक हमसे नहीं कहते हैं तो राजा भरतसे तो जरूर कहेंगे। चलो, हम वहीं पर सुनेंगे। इस प्रकार कहते हुए सर्व नगरवासी उनके पीछे लगे।

उस समय चक्रवर्ती भरत एकदम बाहरके दीवानखानेमें बैठे हुए थे। उस समय सेवकोंने पहुँचकर अपने हाथके कठारी, खड्ग, वीणादिकको चक्रवर्तीके सामने रखा व साष्टांग नमस्कार किया।

वहाँ उपस्थित सभा आश्चर्यचकित हुई। सम्राट् भरत भी आश्चर्य दृष्टिसे देखने लगे। आँसुओंसे भरी हुई आँखोंको लेकर वे सेवक उठे। उपस्थित सर्वजन स्तब्ध हुए। हाथ जोड़कर सेवकोंने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! श्रीसम्पन्न सौ कुमार दीक्षा लेकर चले गये।

इस बातको सुनते ही चक्रवर्तीके हृदयमें एकदम आघातसा हो गया। वे अवाक् हुए, हाथका तांबूल नीचे गिर पड़ा। उस दरबारमें उपस्थित सर्व जोर जोरसे रोने लगे। तब सम्राट्ने हाथसे इशारा कर सबको रोक दिया व अरविंद पुनः पूछने लगे। "क्या सचमुचमें गये ? अरविंद ! बोलो तो सही !" अरविंदने उत्तरमें निवेदन किया कि स्वामिन् ! हम लोग अपनी आँखोंसे कैलासपर्वतमें दीक्षा लेते हुए देखकर आये। उन्होंने दीक्षा ली, इतनाही नहीं, देवेन्द्रके नमस्कार करनेपर 'धर्मवृद्धिरस्तु' यह आशीर्वाद भी दिया।

देखते-देखते बच्चोंके दीक्षा लेनेके समाचारको सुनकर सम्राट्का मुख एकदम मलिन हुआ, बोली बन्द हो गई। हृदय एकदम उड़ने लगा दुःख का उद्रेक हो उठा।

नाकके ऊपर उँगली रखकर, मुकुटको हिलाकर एक दीर्घ निश्वासको छोड़ा। उसी समय आँखोंसे आँसू भी उमड़ पड़ा, दुःखका वेग बढ़ने लगा, उसे फिर भरतेश्वरने ध्वंस करनेका यत्न किया। तुरन्त मूर्च्छा आ रही

थी। उसे भी रोकनेका यत्न किया। पुत्रोंका मोह जरूर दुःख उत्पन्न करता है। परन्तु हाथसे निकलनेके बाद अब क्या कर सकते हैं ? अधिक दुःख करना यह विवेकशून्यता है। इस प्रकार विचार करते हुए उस दुःख को शांत करनेका यत्न किया। पहिले एक दफे आँखोंमें आँसू जरूर आया, फिर चित्तके स्थैर्यसे उसे रोक दिया। हृदयमें शोकाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, परन्तु शांतिजलसे उसे बुझाने लगे। भरतेश्वर उस समय विचार करने लगे कि आपत्तिके समय धैर्य, शोकानलके उद्रेकके समय विवेक व शांति, त्यक्त पदार्थोंमें हेयता, गृहीत विषयोंमें दृढ़ता रहनी चाहिए, यही श्रेष्ठ मनुष्यका कर्तव्य है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, इस प्रकार भावना करनेवाले भावुकोंको स्वप्नमें भी भ्रांतिका उदय नहीं हो सकता, यदि कदाचित् आवे तो उसी समय दूर हो जाती है। आत्मवेदीके पास दुःख जाते ही नहीं हैं। यदि उनके पास दुःख पहुँचा तो आत्माके दर्शन मात्रसे वह दुःख दूर भाग जाता है। आत्मभावनाके सामने अज्ञान क्या टिक सकता है ? क्या गरुड़के सामने सर्प टिक सकता है ?

हृदयमें व्याप्त मोहांधकारको सुज्ञानसूर्यकी सामर्थ्यसे सम्राट्ने दूर किया एवं एक दो घड़ीके बाद हृदयको सांत्वना देकर फिर बोलने लगे।

जिन ! जिन ! जिन सिद्ध ! उनके साहसको गुरु हंसनाथ ही जानते हैं। क्या उनकी यह दीक्षा लेनेकी अवस्था है ? यह क्या दीक्षोचित दिन है ? आश्चर्य है। कोमल मूछें अभी बढ़ी भी नहीं हैं। अंगके सर्व अवयव अभी पूर्ण भी नहीं हुए हैं। अभी जवान होने हो लगे हैं। इतनेमें ऐसा हुआ ? इन लोगोंने माताके हाथका भोजन किया है। अभीतक अपनी स्त्रियोंके हाथका भोजन नहीं किया है। उमरमें आगये हैं। अब शादी करनेके विचारमें ही था। इतनेमें ऐसा हुआ। आश्चर्य है अपने भाइयोंके साथ ही खेल कूदमें इन्होंने दिन बिताया, अपनी बाईयोंके साथ एक रात भी नहीं बिताया। इनका विवाह कर अपनी आँखोंको तृप्त करनेके विचार में था, इतनेमें ऐसा हुआ। आश्चर्य है। सुजयको छोड़कर सुकांत नहीं रहता था। रिपुविजयके साथ हमेशा महाजयकुमार रहता था, इस प्रकार अनेक प्रकारसे अपने पुत्रोंका स्मरण करने लगे वीरंजय व शत्रुवीर्य, रतिवीर्य व रविकीर्ति पराक्रममें एकसे एक बढ़कर थे। उनके सदृश कौन है ? इस प्रकार अपने पुत्रोंका गुणस्मरण करने लगे। हाथीके सवारीमें राजमार्तंड, और घोड़ेकी सवारीमें विक्रमांक, और राजमंदर हाथी घोड़े दोनोंकी सवारीमें श्रेष्ठ था। रथमें रत्नरथ और पद्मरथकी बराबरी करनेवाले कौन हैं ? पृथ्वीमें मेरे पुत्र सर्वश्रेष्ठ हैं ऐसा मैं समझ रहा था। परन्तु के

एक कथा बनाकर चले गये। अनेक व्रतविधानोंका आचरणकर बच्चोंकी अपेक्षासे पंचनमस्कारमंत्रको जपते हुए आनन्दके साथ जिन माताओंने उनको जन्म दिया, उनके दिलको शांतकर चले गये। आश्चर्य है! रात्रिंदिन अर्हंतदेवकी आराधना कर, योगियोंकी पादपूजाकर जिन स्त्रियोंने पुत्र होने की हार्दिक कामना की, उनके हृदयको शांत किया! हां! इन स्त्रियोंके उपवास, व्रत, आदिके प्रभावको सूचित करनेके लिए ही मानो ये पुत्र भी शीघ्र हो चले गये। आश्चर्य! अति आश्चर्य!! उनका व्रत अच्छा हुआ। व्रतोंके फलसे योग्य पुत्र उत्पन्न हुए। परन्तु उन व्रतोंका फल माताओंको नहीं मिला, अपितु सन्तानको मिला, आश्चर्य है स्त्रियोंके साथ संसारकर बादमें दीक्षा लेना उचित था, परन्तु जब इन लोगोंने ऐसा न कर बाल्य-कालमें ही दीक्षा ली तो कहना पड़ता है कि कहीं माताओंने दूध पिलाते समय ऐसा आशीर्वाद तो नहीं दिया कि तुम बाल्यकालमें ही समवसरणमें प्रवेश करो।

यह मेरे पुत्रोंका दोष नहीं है। मैंने पूर्वभवमें जो कर्मोपार्जन किया है उसीका यह फल है। इसलिए व्यर्थ दुःख क्यों करना चाहिये? इस प्रकार विचार करते हुए अरविंदसे सम्राट्ने कहा! हे अरविंद! तुम अभी आकर मुझे कह रहे हो। पहिलेसे आकर कहना चाहिये था। ऐसा क्यों नहीं किया? उत्तरमें अरविंदने निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोग पहिले यहांपर कैसे आ सकते थे? हम लोगोंको वे किस चातुर्यसे कैलासपर ले गये? उसे भी जरा सुननेकी कृपा कीजियेगा। "हमलोग पीछे रहे तो कहीं जाकर पिताजीको कहेंगे इसविचारसे हमलोगोंको बुलाकर आगे रक्खा, वे हमारे पीछेसे आ रहे थे" अरविंदने रोते रोते कहा! 'कहीं पार्श्वभागसे निकल गये तो, पिताजीको जाकर कहेंगे इस विचारसे हमें उन सबके बीच में रखकर चला रहे थे। हमारी चारों ओरसे हमें उन्होंने घेर लिया था" अरविंदने आंसू बहाते हुए कहा! "स्वामिन् हम लोगोंने निश्चय किया कि आज तपश्चर्या करनेवालोंके साथ हम क्यों जावें? हम वापिस फिरने लगे तो हमें हाथ पकड़कर खींच ले गये। बड़े प्रेमसे हमारे साथ बोलने लगे। अपने हाथके आभरणको निकालकर हमारे हाथमें पहनाते हैं, और कहते हैं कि तुम्हें दे दिया इस प्रकार जैसा बने तैसा हमें प्रसन्न करनेका यत्न करते हैं। हमारे साथ बहुत नरमाईसे बोलते हैं। कोप नहीं करते हैं। हमारी हालतको देखकर हँसते हैं। अपनी बातको कहकर आगे बढ़ते हैं। राजन्! हम सब सेवकोंके मुख दुःखसे काले होगये थे। परन्तु आश्चर्य है कि उन सबके मुख हर्षयुक्त होकर कांतिमान् हो रहे थे। 'स्वामिन्! इस

बचपनमें ही आप लोग क्यों दीक्षा लेते हैं ? कुछ दिन ठहर जाइये ! इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उस बातको भुलाकर दूसरे ही प्रसंगको छेड़ देते हैं व हमें धीरे-धीरे आगे ले जाते हैं। हे सुरसेन ! वरसेन ! पुष्पक, करविंद ! आओ इत्यादि प्रकारसे हमें बुलाकर, एक कहानी कहेंगे, उसे सुनो इत्यादि रूपसे बोलते हुए जाते हैं। राजन् ! उनके तंत्रको तो देखो ! हे राम ! रंजक ! रत्न ! सोम ! होमल ! होम ! भीम ! भीमांक ! इत्यादि नाम लेकर हमें बुलाते थे एवं कोई प्रसंग बोलते हुए हमें आगे ले जा रहे थे। और एक दूसरेको कहते थे कि भाई ! तुम्हारा सेवक सुमुख बहुत अच्छा है। उसे सुनकर दूसरा भाई कहता था कि सभी सेवक अच्छे हैं इस प्रकार हमारी प्रशंसा करने लगे थे। स्वामिन् ! आपके सुकुमार हमसे कभी एक दो बातोंसे अधिक बोलते ही नहीं थे। परन्तु आज न मालूम क्यों अगणित वाक्य बोल रहे थे। हम लोग उनके तंत्रको नहीं समझते थे, यह बात नहीं ! जानकर भी हम क्या कर सकते थे ? मालिकोंके कार्यमें हम लोग कैसे विघ्न कर सकते थे ? सामने जो प्रजायें मिल रही थीं उनसे कहीं हम इनके मनकी बात कहेंगे इस विचारसे उन्होंने हमको कहा कि तुम लोगों को पिताजीकी शपथ है, किसीसे नहीं कहना। सो हम लोग मुंह बन्दकर कैदियोंके समान जा रहे थे स्वामिन् ! सचमुचमें हम लोग यह सोच रहे थे कि चलो हमें क्या ? भगवान् ! आदिप्रभु इन बच्चोंको दीक्षा क्यों देंगे। समझा बुझाकर इनको वापिस भेज देंगे। इसी भावनासे हम लोग गये। राजन् ! आश्चर्य है कि भगवान्ने उन कुमारोंके इष्टकी ही पूर्ति कर दी।

हम लोग परमपापी हैं। स्वामिन् ! हम परमपापी हैं। इस प्रकार कहते हुए रविकीर्तिसे वियुक्त अरविंद रविसे वियुक्त अरविंदके समान रोने लगा। रोते-रोते अपने साथियोंको ओर देखता है, वे सब ही रो रहे थे। सम्राट्ने कहा कि आप लोग इतना दुःख क्यों करते हैं ? शांत हो जाओ। उत्तरमें उन्होंने कहा कि स्वामिन् ! जन्मदाताओंको भुलाते हुए हमारा उन्होंने पालन किया। हमारे मनकी इच्छाको पूर्ति करते हुए सदा पोषण किया। लोकमें सर्वश्रेष्ठ हमारे स्वामी जब इस प्रकार हमें छोड़कर चले गये तो दुःख कैसे रुक सकता है।

भरतेश्वरने पुनः प्रश्न किया कि अरविंद ! कहो तो सही उनको वैराग्य क्यों उत्पन्न हुआ ? तब अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! हस्तिनापुरके राजा दीक्षित हुए समाचारसे ये सन्यस्त हुए अर्थात् दीक्षा लेनेके लिए उद्युक्त हुए। 'तब क्या रविकीर्तिकुमारने भी यह नहीं कहा कि कुछ दिनके बाद

दीक्षा लेंगे'। सम्राट्ने प्रश्न किया उत्तरमें अरविंदने कहा कि स्वामिन् तब तो सुनिये ! हमारी सबसे अधिक बिगाड़ करनेवाला तो वही कुमार है। उस रविकीर्तिकुमारने ही ध्यानकी खूब प्रशंसा की। दीक्षाकी स्तुति की। मनुष्यजन्मकी निंदा की। उसकी बातसे सब कुमार प्रसन्न हुए, उसीसे तो हम लोगोंकी व इस देशकी आज यह दशा हुई।

भरतेश्वरने कहा कि अच्छा ! हम समझ गये। दीक्षा लेनेका जब विचार हुआ तब पिताको पूछकर दीक्षा लेंगे ! इसप्रकार क्या उनमें पहले भी मेरा स्मरण नहीं किया ? उत्तरमें अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! कुछ कुमारोंने जरूर कहा कि पिताजीसे पूछकर दीक्षा लेंगे, तब कुछ कहने लगे कि पिताजीको पूछनेसे हमारा काम बिगड़ जायगा। वे कभी सम्मति नहीं देंगे। इस प्रकार उनमें ही विचार चलने लगा। उनमें कोई-कोई कुमार कहने लगे कि पिताजी तो कदाचित् सम्मति दे देंगे। परन्तु मातायें कभी नहीं देंगी। जब अपन दीक्षा लेनेके लिए जा रहे हैं तब उनको पूछने की जरूरत ही क्या है ? वे कौन हैं ? हम कौन हैं ? हमारा उनका संबंध ही क्या है। इस प्रकार बोलते हुए आगे बढ़े।

उस बातको सुनकर भरतेश्वर हँसते हुए कहने लगे कि अरे ! वे तो हमारे अंतरंगको भी जानते हैं ! बोलो ! फिरसे बोलो ! उन्होंने क्या कहा ! अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! वे कहते थे कि कदाचित् पिताजी एक दफे इनकार करेंगे तो फिर समझकर जाने देंगे, परन्तु हमारी मातायें कभी नहीं जाने देंगी। वे तो मोक्षांतरायमें सहायक हो जायेंगी।

चक्रवर्ती भी आश्चर्यान्वित हुए। वयमें ये छोटे होनेपर भी आत्माभिप्रायमें ये छोटे नहीं हैं। इनमें इतना विवेक है, यह मैं पहिले नहीं जानता था। इस प्रकार भरतेश्वरने आश्चर्य व्यक्त किया।

वहाँ उपस्थित चक्रवर्तीके मित्रोंने कहा कि स्वामिन् ! रत्नकी खानमें उत्पन्न रत्नोंको कांतिका मिलना क्या कोई कठिन है ? आपके पुत्रोंको विवेक न हो तो आश्चर्य है। तब भरतेश्वरने कहा कि नागर ! दक्षिण ! देखो तो सही ! उनको जाने दो, जानेकी बात नहीं कहता हूँ। परन्तु जाते समय अखिल प्रपंचको जाननेका चातुर्य जो उनमें आया, इसके लिए मैं प्रसन्न हुआ। सेवकोंको न डाँटते हुए ले जानेका प्रकार, मुझे व उनकी माताओंको न पूछकर जानेका विचार देखनेपर चित्तमें आश्चर्य होता है।

स्वामिन् ! युक्तिमें वे सामान्य होते तो इस उमरमें दीक्षा लेकर मोक्ष के लिए प्रयत्न क्यों करते ? उनकी कीर्ति सचमुचमें दिगंत व्यापी होगई है। इस प्रकार चक्रवर्तीके मित्रोंने उनकी प्रशंसा की।

उस समय मंत्रीने कहा कि अपने पिता प्रतिष्ठाके साथ षट्खण्ड राज्य का पालन करते हैं तो हम अमृतसाम्राज्यका अधिपति बनेंगे, इस विचार से प्राज्य (उत्कृष्ट) तपको उन्होंने ग्रहण किया होगा।

अर्ककीर्ति दुःखके साथ कहने लगा कि पिताजी के सौ भाई उस दिन दीक्षा लेकर चले गये। आज मेरे सौ भाइयोंने दीक्षा लेकर मुझे दुःख पहुँचाया। हम लोग बड़े हैं, हम लोगोंके दीक्षित होनेके बाद उनको दीक्षा लेनी चाहिए, यह रीत है। वे दुष्ट हैं। हमसे आगे चले गये, यह न कहकर आश्चर्य है कि आप लोग उनकी प्रशंसा कर रहे हैं।

अर्ककीर्तिके शोकावेशको देखकर भरतेश्वरने सांत्वना दी कि बेटा! शान्त रहो। मेरे भाइयोंके समान ये क्या अहंकारसे चले गये? उत्तम वैराग्यको धारण कर ये चले गये हैं, इसलिए दुःख करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि मैं और तुम दोनों दुःख करें तो हमारी सेना व प्रजायें भी दुःखित होंगी। और अन्तःपुरमें भी सब दुखी होंगे। इसलिए सहन करो। इसी प्रकार भरतेश्वरने अरविन्द आदिको बुलाकर अनेक रत्नाभरणादि उपहारमें दिये व कहा कि आप लोग दुःख मत करो। युवराजके पास अब तुम लोग रहो। युवराज अर्ककीर्तिको भी कहा कि पहिलेके मालिकोंने जिस प्रकार इनको प्रेमसे पाला पोसा उसी प्रकार तुम भी इनके प्रति-व्यवहार करना। तदनन्तर सब लोग वहाँसे चले गये।

अब सार्वभौम महलमें अन्दर चले गये। तब उनके सामने शोकावेगसे संतप्त रानियोंका समुदाय उपस्थित हुआ। निस्तेज शरीर, बिखरे हुए केशपाश, म्लानमुख व अश्रुपातसे युक्त हुई वे अंगनायें भरतेश्वरके चरणोंमें पड़कर रोने लगीं। पतिदेव! हमारे पुत्र हमसे दूर चले गये! आँख और मनके आनन्द चले गये! हम उन्हींको अपना सर्वस्व समझ रही थीं। हाय! उन्होंने हमारा घात किया। हम अपने माणिक्यरूपी पुत्रोंको नहीं देखती हैं! राजन्! हमारी आगेकी दशा क्या है? हमारी कामना थी कि वे राज्यका पालन करेंगे परन्तु वे जंगलके राज्यको पालन करनेके लिए चले गये अन्तिम वयमें दीक्षा न लेकर अभी दीक्षाके लिए चले गये एवं हमें इस प्रकार कष्टमें डाल गये! हम लोग उनके विवाहके वैभवको देखना चाहती थीं। परन्तु हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। जिस प्रकार फलकी अभिलाषासे किसी वृक्षको सिंचनकर पाले-पोसे तो फल आनेके समय ही वह वृक्ष चला जाय, इस प्रकार यह दशा हुई। स्वामिन्! आपको भी न कहकर, हमको भी न कहकर चुपचापके तपश्चर्याको जानेके लिए,

हमने उनको ऐसा कष्ट क्या दिया है देखिये तो सही ! हमारे व्रत, नियम आदिका फल व्यर्थ हुआ उनसे हमें अल्पफल मिला, सम्पत्ति केवल दीख-कर चली गई। हाय ! हम कितनी पापिनी है। इस प्रकार सम्राट्के सामने अत्यन्त दीनताके साथ वे दुःख करने लगी।

भरतेश्वर उनको सांत्वना देते हुए कहने लगे कि देवियों ! शान्त रहो, वे अपनेको कष्ट देकर जानेके लिए ही आये हुए थे, अब दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है ? उन कुमारोंके विवाह मंगलका हम विचार कर रहे थे। उन्होंने ही दूसरा विचार किया, मनुष्य स्वयं एक विचार करता है तो विधि और ही सोचती है, यह वचन प्रत्यक्ष अनुभवमें आया। मैं इन पुत्रोंके योग्य कन्याओंके सम्बन्धमें विचार कर रहा था, परन्तु वे कहते हैं कि हमें कन्या नहीं चाहिए, पिताजी कन्या किसके लिए देख रहे हैं ? पूर्वजन्मके कर्मको कौन उल्लंघन कर सकता है ? नहीं तो क्या इस उमर-में यह विचार ? हाथसे जो बात निकल गई उसके लिए दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है ? अब आप लोग दुःख करे तो क्या वे आ सकते हैं ? कभी नहीं फिर व्यर्थ ही रोनेसे क्या प्रयोजन ? इसलिए उनको अब भूलनेका यत्न करो, नहीं तो तुम्हारा विवेक किस कामका ? पुत्रोंके रहते हुए रत्नोंके समान समझकर प्रेम करना चाहिए। उनके चले जानेपर कांचके समान समझकर उनको भूलना चाहिये। वे तपके लिए गये हैं, न ? फिर तो अच्छा हुआ कहना चाहिए। कुपथके लिए तो नहीं गये ? अपकीर्ति करनेपर रोना चाहिये, निर्मल मार्गपर जानेपर दुःख क्यों ? एक बात और है। तपको धारण कर भी मरीचिकुमारके समान उन्होंने मिथ्यामार्ग-का अवलम्बन नहीं किया। अपने दादा (आदिप्रभु) के पास ही गये। इसके लिए दुःख क्यों करना चाहिए ? और एक बात सुनो ! राजा होते तो उनको मेरे राज्यकी प्रजायें नमस्कार करती थीं। परन्तु अब तो पन्नगा-मरनरलोककी समस्त जनता उनके चरणोंमें मस्तक रखती है।

अनेक स्त्रियोंके पुत्र राज्यको पालन कर रहे हैं। परन्तु आपके पुत्र समस्त विश्वको अपने चरणोंमें झुकाते हैं, इससे बढ़कर आप लोगोंका भाग्य और क्या हो सकता है ? दुःखसे शरीर म्लान होता है, आयुष्यका ह्रास होता है। भयंकर पापका बन्धन होता है। आप लोग विवेकी होकर इस प्रकार दुःख क्यों करती हैं। बस ! शान्त रहो। वीणाजी ! विद्रुमवती ! सुमनाजी ! प्रिये वीणादेवी ! आवो ! इत्यादि प्रकारसे बुलाते हुए उनकी आँखोंको अपने हाथसे पोंछते हुए भरतेश्वरने कहा कि अब

दुःख मत करो, तुम्हें हमारा शपथ है। हे माणिक्यदेवी ! मन्दाणि ! चन्द्राणि ! कल्याणजी ! मधुमाधवाजी ! जाणाजी ! काँचन माला ! आओ ! दुःख छोडो ! इस प्रकार कहते हुए उनको भरतेश्वरने आलिंगन दिया। मंगलवति ! मदनाजी ! रत्नावती ! शृंगारवती ! पुष्पमाला ! भृंगलोचना ! नीललोचना ! आप लोग पुत्रोंके शोकको भूल जाओ ! उनको सांत्वना देते हुए भरतेश्वर उनके केशपाशको बाँध रहे हैं, शरीरपर हाथ फिराते हुए आंसुओंको पोंछ रहे हैं। मीठे-मीठे बोल रहे हैं। एवं फिर उसी समय आलिंगन देते हैं। इस प्रकार उन स्त्रियोंको संतुष्ट करनेके लिए भरतेश्वरने हर तरहसे प्रयत्न किया। उन्होंने पुनः कहा कि देवियों ! आप लोग दुःख क्यों करती हैं ? यदि आप लोगोंने मेरी सेवा अच्छी तरहसे की तो मैं पुनः आपलोगोंको बच्चा दे दूंगा। आप लोग चिन्ता न करें। इसे सुनकर वे स्त्रियां हँसने लगीं।

तब वे स्त्रियाँ सम्राट्से यह कहकर दूर खड़ी हुईं कि देव ! रोने-वालोंको हँसानेका गुण आपमें ही हमने देखा ! जाने दीजिये। आपको हर समय हँसी ही सूझती है। बाहर जब आप जाते हैं तब बड़े गम्भीर बने रहते हैं। परन्तु अन्दर आनेपर यहाँपर खेल-कूद सूझती है। छोटे बच्चोंके जानेपर भी आपको दुःख नहीं होता है। आपका वचन ही इस बातको सूचित कर रहा है।

भरतेश्वर तब कहने लगे कि आपलोग दुःख कर रही थीं इसलिए हँसानेके लिए विनोदसे एक बात कह दी दुःख तो मुझे भी होता है। परन्तु अब रोनेसे होता क्या है ? आपलोगोंको एक एकको एक-एक पुत्र वियोगका दुःख है ! परन्तु मुझे तो एकदम सौ पुत्रोंके वियोगका दुःख है। मेरा दुःख अधिक है या आप लोगोंका ? तथापि मैंने सहन कर लिया है। दूसरी बात मेरी रानियोंको एक-एक पुत्रके सिवाय दूसरा पुत्र हो ही नहीं सकता है, यह दुनिया जानती है। फिर भी उपकार व विनोदसे मैंने यह बात कह दी, दुःख मत करो।

इस प्रकार रानियोंको संतुष्ट कर अपनी-अपनी महलमें भेजा व भरतेश्वर स्वयं आनन्दसे अपने समयको व्यतीत करने लगे।

सचमुचमें भरतेश्वर महान् पुण्यशाली हैं। वे दुःखमें भी सुखका अनुभव करते हैं। जंगलमें भी मंगल मानते हैं। यही तो विवेकीका कर्तव्य है। सर्वगुणसम्पन्न सौ पुत्रोंके वियोगका वह दुःख सामान्य नहीं था। तथापि वस्तुस्वरूपको विचार कर उसे भूलना, भुलाना यह

अतुल सामर्थ्य का ही प्रभाव है। इसलिए वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि :—

हे चिदंबरपुरुष ! आप संसारके दुःखको दूर करनेवाले हैं। सद्गुणकी वृद्धि करनेवाले हैं। हे निर्मलज्ञानांशु ! मेरे हृदयमें अंशरूपमें तो आप विराजमान रहें।

हे सिद्धात्मन् ! अणिमादि महर्द्धियोंको तृणके समान समझकर आठ सद्गुणोंको प्राप्त करनेवाले लोकदर्पण ! आप मुझे सन्मति प्रदान कीजिए।

इति कुमारवियोग संधिः

पंचैश्वर्य संधिः

रानियोंके दुःखको शान्तकर भरतजी दीक्षित-पुत्रोंको देखनेके लिए दूसरे ही दिन कैलास पर्वत पर पहुंचे। एक पिताका हृदय कैसे रुक सकता है? युवराजको आदि लेकर बहुतसे पुत्रोंको साथमें लिया एवं पवन (आकाश) मार्गसे चलकर समवशरणमें पहुंचे। वहांपर द्वारपालक देवोंकी अनुमति लेकर अन्दर प्रविष्ट हुए। भगवंतका दर्शन कर साष्टांग नमस्कार किया एवं दुरितारि, दुःखसंहारि, पुरुनाथ, आपकी जयजयकार हो, इत्यादि शब्दोंसे अपने पुत्रोंके साथ स्तोत्र किया। मुनिराजोंकी वन्दना करते हुए नूतन दीक्षित यतियोंकी भी वंदना की। उन मुनिराजोंने आशीर्वाद दिया। यहांपर दुःखका उद्रेक किसीको भी नहीं हुआ, आश्चर्य है। महलमें दुःख हुआ, परन्तु समवशरणमें दुःखकी उत्पत्ति नहीं हुई। यह जिनमहिमा है। इसी प्रकार बुद्धिसागरमुनि, मेघेश्वरमुनिकी भी वहां उन्होंने वन्दना की। उनको देखकर हर्षसे सम्राट्ने कहा कि संसारको आपने जीत लिया, धन्य हैं! तब उन लोगोंने उत्तरमें कुछ भी न कहकर केवल आशीर्वाद दिया।

इसी प्रकार भक्तिसे सबकी वन्दना कर भरतेश्वर अपने पुत्रोंके साथ आदिदेवके पासमें आकर बैठ गये।

भगवंतसे भरतेश्वरने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि स्वामिन् ! मोक्ष किसे कहते हैं व उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। कृपया निरूपण कीजिये। तब भगवंतने अपने दिव्यनिनादसे निम्न प्रकार निरूपण किया।

मोक्षका अर्थ छुटकारा है। कर्मसे छुटकारा होकर जब यह केवल आत्मा ही रह जाता है उसे मोक्ष कहते हैं, कर्म कैसे अलग हो सकता है ? उसे भी जरा सुनो। तीन शरीरोंके अन्दर स्थित आत्मा संसारी है। जब तीन देहोंका अन्त हो जाता है तब यह आत्मा मुक्त हो जाता है। इसलिए शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूँ। इस प्रकारके ध्यानका अभ्यास करनेपर शरीर नाश होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। लकड़ीमें आग है, उसे घर्षण करनेपर उसी लकड़ीको जला देती है इसी प्रकार आत्मा ध्यानाग्निके द्वारा आत्माका निरीक्षण करे तो तीन शरीर जल जाते हैं। कर्म और तीन देह इन दोनोंका एक अर्थ है, धर्मका अर्थ निर्मल आत्मा है। धर्मको ग्रहण करो, कर्मका परित्याग करो। धर्मके ग्रहण करनेपर कर्म अपने आप दूर हो जाता है एवं मोक्षपदकी प्राप्ति होती है।

बाह्यधर्म सभी व्यवहार या उपचार धर्म है। परन्तु आत्मा ही उत्कृष्ट धर्म है। बाह्यधर्मोंसे देहभोगादिककी प्राप्ति होती है। अंतरंग-धर्मसे देह नष्ट होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। तीन रत्न अर्थात् रत्नत्रयोंके ध्यान करना ही मेरी अभिन्न भक्ति है। तब हे भव्य ! मेरा वैभव तुम्हें भी प्राप्त होता है, देखो ! तुम अपनेसे ही अपनेको देखो। आकाशके समान आत्मा है। भूमिके समान यह शरीर है। आकाश भूमिके अन्दर छिप गया है। क्या ही आश्चर्य है। इस प्रकार विचार करनेपर आत्मदर्शन होता है। चंचल चित्तको रोककर, दोनों आँखोंको मींचकर, निर्मल भाव दृष्टिके द्वारा बार-बार देखनेपर देहके अन्दर वह परमात्मा स्वच्छ प्रकाशके समान दीखता है। बैठे हुए ध्यान करनेपर शरीरमें बैठे हुए स्वच्छ प्रतिमाके समान आत्मा दीखता है। सोकर ध्यान करनेपर सोई हुई प्रतिमाके समान एवं खड़े होकर ध्यान करनेपर खड़ी हुई प्रतिमाके समान दीखता है पहिले-पहिले बैठकर या खड़े होकर ध्यानका अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास होनेके बाद बैठो, खड़े हो जाओ, चाहे सोओ वह आत्मदर्शन हो जायेगा। शरीर कैसा भी क्यों न रहे परन्तु आत्मामें लीन होना चाहिये तब वह देदीप्यमान आत्मा निकटभव्योंको देखनेको मिलता है।

हे भव्य ! यही ज्ञानसार है। यही चारित्रसार है। यही सम्यक्त्वसार है। यही उत्तम तपसार है, ध्यानसे बढ़कर कोई चीज नहीं। इसे विश्वास

करो। मतिज्ञान आदि केवलज्ञान पर्यंतके ज्ञान भी यही ध्यानरूप है। सिद्धोंके अष्टगुण भी इसी रूप है। विशेष क्या ? सिद्ध स्वयं इस स्वरूपमें हैं। यह मेरी आज्ञा है। विश्वास करो। जैसे सूर्य-बिंबके ऊपरसे मेघाच्छादन हटता जाता है तैसे तैसे सूर्यका प्रकाश बढ़ता जाता है इसी प्रकार आत्मसूर्यसे कर्मावरण जैसे-जैसे हटता जाता है वैसे ही मतिज्ञानादि ज्ञानोंमें निर्मलता बढ़ती जाती है। तब ज्ञानके पाँच भेद बनते हैं। जैसे मेघपटल पूर्णतः दूर होनेपर सूर्य पूर्ण उज्ज्वल प्रकट होता है वैसे ही जब कि वह कर्ममेघ अशेषरूपसे हट जाता है। तब समस्त विश्वको जाननेमें समर्थ कैवल्यबोधकी (केवलज्ञान) प्राप्ति होती है। धूल वगैरहके हटने-पर दर्पण जैसा निर्मल होता है, उसी प्रकार ध्यानके बलसे यह आत्म-योगी जब नोकर्मोंको दूर करता है तब केवलदर्शनकी प्राप्ति होती है। मुझे अपने आत्मासे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है, ऐसा जब दृढीभूत होकर यह भव्य आत्मामें मग्न होता है तब सप्त प्रकृतियोंका अभाव होता है। उस समय क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है।

जैसे पानीमें नमक घुल जाता है वैसे आत्मामें इस मनको तल्लीन करनेपर जब मोहनीय कर्मकी २१ प्रकृतियोंका अभाव होता है तब यथाख्यातचारित्र होता है। रोगके दूर होनेपर रोगी सामर्थ्यसंपन्न होता है। इसी प्रकार आत्मयोगी जब पाँच अंतराय कर्मोंको दूर करता है तो तीन लोक को उठानेका सामर्थ्य प्राप्त करता है, वही अनन्तवीर्य है। दो गोत्र कर्मोंके अभाव होनेपर वह आत्मा सिद्ध क्षेत्रपर पहुँच जाता है, उसके बाद वह इस भूप्रदेशपर गिरता पड़ता नहीं है। अगुरुलघुनामक महान् गुणको प्राप्त करता है। दो वेदनीय कर्मोंको जब यह ध्यानके बलसे छेदनीय बना लेता है तो अव्याबाध नामक गुणको प्राप्त करता है जिससे कि उसे किसीसे भी बाधा नहीं हो सकती है। जब यह आत्मा ध्यानके बलसे चार प्रकारके आयु कर्मको दूर करता है तब अनंतसिद्धिको भी अपने प्रदेशमें स्थान देने योग्य अवगाहन गुणको प्राप्त करता है इसी प्रकार नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंको ध्यानके बलसे जब यह नष्ट करता है तब पंचेन्द्रियोंके लिए अगोचर अतिसूक्ष्म नामक गुण को प्राप्त करता है इस प्रकार १४८ कर्मप्रकृतियोंको दूर करनेपर आत्मा सम्पूर्ण आत्म-योगको प्राप्त करता है, एवं लोकाग्रवासी बनता है। वही तो मोक्ष है इसके सिवाय मोक्षप्राप्तिका अन्य मार्ग नहीं है।

हे भरत ! मैं भी वहीं विहार करता हूँ। अनन्त सिद्ध वहीं रहते हैं। वह ब्रह्मानन्द है। इसे विश्वास करो। अनेक मार्गोंको छोड़कर मुझे ही

देखनेका यत्न करो ! वही तुम्हें मुक्तिकी ओर ले जायगा। अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कर, तपश्चर्या कर भी यदि ध्यानकी सिद्धि नहीं होती है तो मुक्ति नहीं है यह सार भव्योंका कृत्य है। दूर भव्योंको इसकी प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए हे भव्य ! ध्यानालंकारको धारण करो। आगे तुम्हें मुक्तिस्त्रीकी प्राप्ति होगी ! आज पंचैश्वर्यकी प्राप्ति होगी। अब उससे देरी नहीं है, बिलकुल समय निकट आ गया है अभी उन पंचसंपत्तियोंके नामको मैं क्यों कहूँ। आत्मयोगको धारण करो। अभी हाल ही तुम्हें उन पंचसंपत्तियोंका दर्शन होगा। विचारकर आंख मींच-कर ध्यानमें बैठो। इस प्रकार कहकर भगवन्तने अपनी दिव्यवाणीको रोक दिया। सम्राट्ने भी 'इच्छामि' कहकर ध्यान करना आरम्भ किया।

उत्तरीय वस्त्रको निकालकर कटिप्रदेशमें बांध लिया एवं स्वयं सिद्धासनमें विराजमान होकर सुवर्णकी पुतलीके समान एकाग्रता से बैठ गये।

वायुओंको ब्रह्मरंध्रपर चढ़ाया, आँखोंको मींचकर मनको आत्मामें लीन किया। अन्दर प्रकाशका उदय हुआ। वस्त्र, आभरण आदि शरीरमें थे, परन्तु आत्मा नग्न था। हंस जिस प्रकार पानीको छोड़कर दूधको ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार परमहंस सम्राट्ने शरीरको छोड़कर हंस (आत्मा) को ही ग्रहण किया। अत्यन्तगुप्त तहखानेमें एक बिजलीकी बत्ती जलनेपर जो हालत होती है वही आज सम्राट्की दशा है। उसे कोई नहीं जानता है अन्दर आत्मप्रकाश देदीप्यमान होरहा है। शायद भरतेश्वर उस समय उज्ज्वल चांदनीके परिधानमें हैं, बिजलीको शरीरभर धारण किए हुए हैं। इतना ही क्यों, उत्तम मोती या मुक्तिकांताको आलिंगन दे रहे हैं। आकाशमें विहार करनेके समान सिद्धलोकमें विहार कर रहे हैं। इतना ही क्यों ? चाहे जिस सिद्धसे एकान्तमें बातचीत कर रहे हैं। वहाँपर बोली नहीं, मन नहीं, तन नहीं, इंद्रिय समूह नहीं, कर्मका लेश भी नहीं, केवल ज्योतिस्वरूप ज्ञान ही आत्मस्वरूपमें उस समय दिख रहा है। एक बार तो स्वच्छ चाँदनीके समान आत्मा दीखता है, जब कर्मका अंश आता है तो फिर ढक जाता है, फिर प्रकाशित होता है।

इस प्रकार घासकी आगके समान वह आत्मा चमकता रहा है। तेज प्रकाश होनेपर शुक्लध्यान है उसमें फिर कम ज्यादा नहीं होता है मन्द प्रकाश धर्मध्यान है। उसमें कभी-कभी कम ज्यादा होता है। जब आत्म-दर्शन होता है तब आनन्द होता है। कर्मका पिंड एकदम झरने लगता

है। बाहरके लोग उसे नहीं समझ सकते हैं। या तो भगवन्त जानते हैं या वह स्वयं ध्याता जानता है। ज्ञानका अंश बढ़ता जाता है। लाखके घरमें आग लगनेपर जैसे वह पिघल जाता है, उसी प्रकार ध्यानाग्निके बलसे तैजस कार्माण शरीर पिघलने लगे। क्षण-क्षणमें चित्प्रभा बढ़ने लगी। ध्यानाग्निने तुरन्त मतिज्ञानावरणीयको जलाया। तब भरतेश्वरको मतिज्ञानसंपत्तिकी प्राप्ति हुई अर्थात् सातिशय मतिज्ञानकी प्राप्ति हुई। परोपदेश व शास्त्रकी सहायताके बिना ही आत्मामें ही पदार्थोंके निर्णयकी सामर्थ्य प्राप्त होती है उसे सातिशय मतिज्ञान कहते हैं। वह सुज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ। मतिज्ञानके आवरणको जलानेके बाद वह ध्यानरूपी आग श्रुतावरणमें लग गई। तत्काल ही श्रुतावरण जल गया। सातिशय श्रुतज्ञानकी प्राप्ति हुई। मतिज्ञानपूर्वक शास्त्रोंके अध्ययनसे पदार्थोंको विशेषतया जानना यह श्रुतज्ञान है, वह चतुर्दश पूर्वके रूपमें है। वही ज्ञान आत्मयोगके बलसे सम्राट् को हो गया। उसके बाद वह ध्यानाग्नि अवधिदर्शनावरण, अवधिज्ञानावरणपर लग गई तुरन्त दोनों जलकर खाक हुए। सम्राट्को अवधिज्ञान व अवधिदर्शन की प्राप्ति हुई। अवधिज्ञानका अर्थ सीमित ज्ञान है। उससे समस्त लोकको जान नहीं सकते हैं। इसलिए उनको उस समय सीमित ज्ञान दर्शनकी प्राप्ति हुई। पिछले कुछ भवोंको व आगामी कुछ भवोंको वे उसके बलसे जान सकते हैं तो ध्यानसे बढ़कर कोई तप है? अब मनःपर्ययज्ञान है, परन्तु वह गृहस्थोंको प्राप्त नहीं होता है। तथापि मतिज्ञानादि चार ज्ञान क्षायिक नहीं हैं। क्षायोपशमिक हैं। मार्गमें पड़े हुए पुराने घासोंको जैसा जलाते हैं उस प्रकार इन चार ज्ञानोंके आवरणको जलानेपर चार ज्ञानोंकी प्राप्ति होती है। परन्तु जब पाँचवाँ ज्ञान प्राप्त होता है तभी यथार्थ आत्मसिद्धि होती है। आवरणके क्षयके निमित्तसे ये चार ज्ञान क्षायिक कहला सकते हैं। परन्तु वस्तुतः क्षायिक नहीं हैं। परन्तु केवलज्ञान स्वयं क्षायिकज्ञान है। अब इनका वर्णन रहने दो। वह ध्यानाग्नि अब मोहनीय कर्मको लगी। वहाँपर आत्माके ध्रौव्यगुणको दूर करनेवाली सात प्रकृतियोंको उसने जलाना प्रारम्भ किया। उन सप्त प्रकृतियोंको ऐसा जलाया कि फिर ऊपर उठ ही न सके! अनन्तानुबंधिकषाय चार, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व इस प्रकार सप्तप्रकृतियोंको उसने जलाया। सिद्ध व अरहंतके सम्यक्त्वसे वह कुछ भी कम नहीं है। उनकी वृद्धिकी बराबरी करनेवाला वह सम्यक्त्व है। उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। उसकी प्राप्ति भरतेश्वरको हुई। आत्मासे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है। आत्मासे ही आत्माकी मुक्ति

होती है। इस प्रकार आत्मसम्पत्तिमें वह भरतयोगी मग्न हुए। अब अव्यय-सिद्धिका मार्ग उनको सरल बन गया। इस प्रकार मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिदर्शन अवधिज्ञान व क्षायिकसम्यक्त्वके रूपमें भरतेश्वरको पंचैश्वर्यं की प्राप्ति हुई। क्या जगत्पति भगवान् का कथन अन्यथा हो सकता है? ग्यारह कर्मोंको जलाकर पंचैश्वर्यं प्राप्त किया। अब शेष कर्मोंको इतने ही समयमें मैं दूर करूँगा, यह भी सम्राट्‌ने उसी समय जान लिया। आजके लिए इतना ही लाभ है, आगे फिर कभी देखेंगे, इस विचारसे हृदमंदिरके अमल सच्चिदानन्दकी वन्दना कर भरतेश्वरने आनन्दसे आँखें खोल दीं व उठकर खड़े होगये। जय! जय! त्रिभुवननाथ! मेरे स्वामी! आप जयवंत रहें। आपकी कृपासे कर्मोंको जीतकर पंचैश्वर्यको प्राप्त किया। इस प्रकार कहते हुए भरतेश्वरने भगवन्तके चरणोंमें मस्तक रक्खा। उसी समय करोड़ों देववाद्य बजने लगे। देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे एवं समवशरणमें सर्वत्र जयजयकार होने लगा। अतरंग आत्मकलाके बढ़नेपर शरीरमें भी नवीन कांति बढ़ गई। उसे देखकर कुलपुत्र आनन्दसे नृत्य करने लगे एवं आदिप्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया। हे भरतराजेंद्र! भव्यांबुजभास्कर! परमेशाग्रकुमार! परमात्मरसिक कर्मारि! तुम जयवंत रहो। इस प्रकार वेत्रधर देव भरतेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।

भगवान् अरहंतको पुनः साष्टांग नमस्कार कर मुनियोंकी वन्दना कर एवं शेष सबको यथायोग्य बोलते हुए भरतेश्वर अपने पुत्रोंके साथ नगरकी ओर रवाना हुए। तब सब लोग कह रहे थे कि शाबास, राजन्! जीत लिया। तनको दंडित न कर मनको दंडित करनेवाले एवं अपने आत्मामें मग्न होकर कर्मोंको जीतनेवाले भरतेश्वर अब अपने नगरकी ओर जा रहे हैं। वर्षों रटकर ग्रन्थोंके पाठ करते हुए मुंह सुखानेवाले शास्त्रियोंकी वृत्तिपर हँसते हुए व क्षणभरमें आगमसमुद्रके पार पहुँचनेवाले सम्राट् जा रहे हैं। बहुत दिनतक घोर तपश्चर्या न कर एवं दीर्घकाल तक चित्तरोध न करते हुए ही अवधिज्ञानको प्राप्त करने वाले भरतेश्वर जा रहे हैं। मायाको दूरकर, शरीरमें स्थित आत्मामें श्रद्धा करते हुए क्षायिक सम्यक्त्वको पालनेवाले भरतेश्वर अपने नगरकी ओर जा रहे हैं। शरीर व मस्तकमें वस्त्र व आभूषणके होनेपर भी आत्माको मग्न कर पंचैश्वर्यको प्राप्त करनेवाले एवं कालकर्मके विजयी राजा जा रहे हैं। नूतन दीक्षित अपने पुत्रोंको देखनेके लिए गये हुए अपितु साक्षात् आत्मनिधि देखकर तत्काल पंचलक्ष्मीरूपी लाकर आये, ऐसे अतिदक्ष सम्राट्

आ रहे हैं। ध्यान ही बड़ी भारी तपश्चर्या है, वह योगीको भी हो सकता है, गृहस्थको भी हो सकता है, इसके लिए मैं ही दृष्टांतरूप हूँ। इस प्रकार लोकके सामने ढिंढोरा पीटते हुए भरतेश्वर जा रहे हैं। अपने आत्माको जाननेवाला लोकको जान सकता है। अपनेको जाननेवाले ही यथार्थ तपस्वी है। इस बातको सब लोग मुझे देखकर विश्वास करें, यह स्पष्ट करते हुए वह नरनाथ जा रहे हैं। अनेक विमानोंमें चढ़कर पुत्र व गणबद्धदेव भी उनके साथ जा रहे हैं।

आनन्दके साथ धीरे-धीरे जब सम्राट्का विमान चल रहा था, तब युवराजने कुछ सोचकर भरतेश्वरसे न कहते हुए कुछ लोगोंके साथ आगे प्रस्थान किया एवं बिजलीके समान अयोध्यानगरीमें पहुँचे व वहाँपर मंत्री मित्रोंको पंचैश्वर्यकी प्राप्तिका समाचार दिया। सबको आनन्दसे रोमांच हुआ। नगरमें आनन्दभेरी बजाई गई। सर्वत्र शृंगार किया गया, ध्वज पताकादि सर्वत्र फड़कने लगे। एवं अनेक हाथी, घोड़ा, रथ वगैरहको लेकर सम्राट्के स्वागतके लिए युवराज आया। भरतेश्वरके सामने पहुँचकर युवराजने भेंट चढ़ाया व नमस्कार किया। उसे देखकर सर्व कुमारोंने भी वैसा ही किया। इसी प्रकार राजपुत्र, मंत्री, मित्रोंने भी अनेक भेंट चढ़ाकर चक्रवर्तीका अभिनन्दन किया। सम्राट्ने बहुत वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया। स्तुति पाठकोंकी स्तुति, कवियोंकी कृति, विद्वानोंकी श्रुति और ब्राह्मणोंका आशीर्वाद आदिको सुनते हुए आनन्दसे भरतेश्वर अयोध्या में आ रहे हैं। इसी प्रकार पाठक, मल्ल, वेश्यायें, वेत्रधर आदिकी क्रीड़ाको देखते हुए वे जा रहे हैं। नगरमें अट्टालिकाओंपर चढ़कर स्त्रियाँ भरतेश के वैभवको देख रही हैं। परन्तु चक्रवर्तीकी दृष्टि उनकी ओर नहीं है। महलमें पहुँचनेपर बाहरके दीवानखानेसे ही सब पुत्र, मित्र, मंत्री आदिको अपने स्थानको रवाना किया एवं स्वयं महलकी ओर चले गये। वहाँपर रानियोंने बहुत आनन्दसे स्वागत किया। एवं भक्तिसे रत्नकी आरती उतारी। अपने-अपने कंठाभरणको निकालकर भरतेश्वरके चरणोंमें रखा। पट्टरानीने भी पतिका योग्य सत्कार किया। भरतेश्वरने भी पंचैश्वर्यकी प्राप्तिका सर्व वृत्तांत कहते हुए आनन्दसे वह दिन बिताया।

भरतेशके भाग्यका क्या वर्णन करें? एक गृहस्थ होते हुए बड़े-बड़े यतियोंके लिए भी कष्टसाध्य सम्पदाको प्राप्त करें यह कोई सामान्य विषय नहीं है। नूतन दीक्षित पुत्रोंको देखनेके लिए समवशरणमें पहुँचते हैं, वहाँपर ध्यानके बलसे विशिष्ट कर्मनिर्जरा करते हैं। एवं सातिशय पंच-सम्पत्तिको प्राप्त करते हैं। यह सब बातें उनके महापुरुषत्वको व्यक्त

करती हैं। उनका विश्वास है कि आत्मयोगके रहनेपर किसी भी वैभवकी कमी नहीं है। इसीलिए वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

हे चिदंबरपुरुष ! मेरे पास आपके रहनेपर सम्पत्ति, सुख, सौंदर्य, शृंगार आदि किस बात की कमी हो सकती है, इस-लिए आप मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! अच्युतानन्द ! सद्गुणवृंद, चंद्रमरीच्य-मृतांशु प्रकाश ! सुच्युतकर्म ! गुरुदेव, हे निरंजन ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावना का फल है कि उन्हें नित्य नये वैभवकी प्राप्ति होती है।

इति पंचैश्वर्य संधिः

—००—

तीर्थपूजा संधिः

भरतेश्वरने पंचसम्पत्तिको प्राप्त करनेके बाद सेनाधिपति मेघेशके पुत्र को बुलवाया। अपने मंत्री, मित्र व राजाओंके सामने उसका सन्मान किया। एवं आनन्दके साथ कहने लगे कि इस बालकके पिताको जयकुमार, अयोध्यांक इस प्रकारके नाम थे। परन्तु उसकी वीरतासे प्रसन्न होकर मैंने उसे वीराग्रणि उपाधिके साथ मेघेश्वर नामाभिधान किया था। अब वह जब दीक्षा लेकर चला गया है तो यही बालक अपने लिए उसके स्थान में है। इसके पिताको बादमें दिये हुए नूतन नामकी जरूरत नहीं। इसे पुरातन नाम ही रहने दो। इसे आजसे अयोध्यांक कहेंगे। उस पुत्रसे यह भी कहा कि 'बालक ! तुम्हारी सेवाको देखकर पितासे भी बढ़कर तुम्हारा वैभव बना देंगे। इस समय तुम पिताके भाग्यमें रहो'। साथमें यह भी कहा कि जबतक यह उमरमें न आवे तबतक मेघेश्वर द्वारा नियत वीर ही सेनापतिका कार्य करें। परन्तु मैं विधिपूर्वक सेनापतिका पट्ट इस बालक को सौंपता हूं। इस प्रकार कहते हुए उस बालकका सन्मान किया। पहिले के अनन्तवीर्य नाम आ चला गया। अब उसे लोग अयोध्यांक कहते हैं। उस दिनसे वह बालक आनन्दसे बढ़कर यौवनवेदीपर पैर रखने लगा।

राजाके हाथ लगनेपर तृण भी पर्वत बन जाता है' यह लोकोक्ति असत्य कैसे हो सकती है ? वह बालक सम्राट्की सेनाका अधिपति बना, पुण्यवंतों के स्पर्शसे मिट्टी भी सोना बन जाती है।

आनन्दके साथ कुछ काल व्यतीत हुए। एक दिन रात्रिके अन्तिम प्रहरकी बात है। भरतेश्वरने एक स्वप्न देखा जिसमें उन्होंने मेरू पर्वत को लोकाग्र प्रदेशपर उड़ते जानेका दृश्य देखा। 'श्री हंसनाथ' कहते हुए भरतेश्वर पलंगसे उठे। पासमें सोई हुई पट्टरानी भी घबराकर उठी व कंपित हो रही थी। कारण उसने उसी समय स्वप्नमें भरतेश्वरको रोते हुए देखा था। वह सुंदरी भयभीत होकर कहने लगी कि स्वामिन् ! मैंने बड़े भारी कष्टदायक (अशुभ) स्वप्नको देखा। तब भरतेश्वरने कहा कि देवी ! घबराओ मत ! मैंने भी आज एक विचित्र स्वप्न देखा है। यह कहते हुए तत्क्षण उन्होंने अवधिज्ञानसे विचार किया व कहने लगे कि देवी ! वृषभेश्वर अब शीघ्र ही मुक्ति जानेवाले हैं। इसकी यह सूचना है। तब रानीने कहा कि हमें अब कौन शरण है। उत्तरमें भरतेश्वर कहते हैं कि हमें अपना हंसनाथ (परमात्मा) ही शरण है। उनके समान ही अपनेको भी मुक्ति पहुँचना चाहिये। यह संसार ही एक स्वप्न है। इसलिए उसमें ऐसे स्वप्न पड़े तो घबरानेकी क्या जरूरत है ? इस प्रकार पट्टरानी को सांत्वना देते हुए कैलासपर्वतके प्रति अवधिदर्शनका प्रयोग किया। वहाँ पर नरनाथ भरतेश्वरने प्रत्यक्ष पुरुनाथका दर्शन किया अब आदिप्रभु समवशरणका त्याग कर चुके हैं। उसी पर्वत पर निर्मल शिलातलपर विराजमान हैं। पूर्वदिशाकी ओर मुख बनाकर सिद्धासनमें विराजमान हैं। भरतेश्वरने समझ लिया कि अब चौदह दिनमें ये मुक्ति सिधारेंगे। उसी समय सभामें पहुँचकर सबको वह समाचार पहुँचाया। युवराज, मंत्री, सेनापति व गृहपतिने भी रात्रिको एक-एक स्वप्न देखा था, उन्होंने भी सभामें निवेदन किया। सम्राट्ने कहा कि इन सब स्वप्नोंमें आदिप्रभु के मोक्ष जानेकी सूचना है। इस प्रकार भरतेश्वर बोल ही रहे थे, इतनेमें विमानमार्गसे आनन्द नामक एक विद्याधर आया। उन्होंने वही समाचार दिया, तब भरतेश्वरके ज्ञानके प्रति लोगोंने आश्चर्य किया।

सम्राट्ने सर्व देशोंमें तुरन्त खलीता भेजा कि अब भगवंतकी पूजा महावैभवसे चक्रवर्ती करेंगे। इसलिए सब लोग अपने राज्यसे उत्तमोत्तम पूजाद्रव्योंको लेकर आवें। मेरी बहिनें अपने नगरमें ही रहें। गंगादेव, सिंधुदेव आवें। नमिराज, विनिमिराज, भानुराज आदि सभी आवें मेरे जामाद सभी कैलास पर्वतपर पहुँचे। मेरी पुत्रियाँ यहींपर महलमें आकर

रहें इस प्रकार सबको पत्र भेजकर स्वयं महलमें प्रवेश कर गये। वहाँपर रानियोंसे कहा कि मैं वहाँपर पूजा करूँगा, आपलोग यहाँसे सामग्री व आरती इत्यादिको बनाकर भेजती रहें। इसीसे आप लोगोंको विशिष्ट पुण्यकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार स्त्रियोंको नियत किया आनन्द व प्रस्थानकी भेरी बजाई गई। कैलासपर्वतके कुछ दूरपर अपनी सारी सेना का मुकाम कराया। स्वयं अपने पुत्र, मित्र, राजा व ब्राह्मण आदि आप्तबंधुओंको लेकर विमान मार्गसे कैलासकी ओर चले गये। कैलास पर्वतके तटमें कुछ ठहरकर सम्राट्ने कुछ विचार किया। निश्चय किया कि दिनमें वैभवसे पूजा करेंगे एवं रात्रिके समय रथोत्सव करायेंगे। इस विचारसे विश्वकर्माको आज्ञा दी कि रथोंकी तैयारी करो। इसी प्रकार उचित सामग्री आदि मँगाना, रथोंका शृंगार करना, सबको समाचार देना, आदिकार्य वहाँ उपस्थित राजाओंको सौंप दिया। विद्याधरोंको विमान भेजनेका कार्य सेनापतिको सौंप दिया। गंगाके तटमें अपने लिए एकभुक्ति रहेगी यह सूचना रसोइयाको दी गई। एवं आई हुई सर्व जनता को भोजनादिसे तृप्त करनेका कार्य गृहपतिको सौंपा गया। मुनियोंका आहारदानका प्रबन्ध एवं आगत राजाओंका विनय समादर सत्कार "हे युवराज! तुम्हारे लिए सौंपता हूँ मुझे पूजाकी चिंता है। तुम इन कार्योंमें सावधान रहना"। इस प्रकार अर्ककीर्तिको नियत किया वीरायणी दामाद व राजपुत्रोंके साथ पंक्तिभोजन व उनका आदर-सत्कार करनेका कार्य महाबलकुमारको दे दिया गया। ब्राह्मण भोजन व श्रीबलि नैवेद्यकी चिंता बुद्धिसागरको सौंपी गई। आई हुई सर्वजनताओंके योगक्षेमका विचार माकाल व्यन्तरको दिया गया। अयोध्यानगरीमें विमानसे पहुँचकर रोज आरती लानेका कार्य शूर वीर विश्वस्तजनोंको दिया गया इतर महाजनों को यह आदेश दिया कि मैं भगवंतकी पूजामें लग जाऊँगा। आप लोग व्यंतर, विद्याधर राजाओंके साथ मुझे पूजन सामग्री देते जावें। चिंतित पदार्थको देनेवाले चिंतामणि रत्नको संतोषसे आदिराजकुमारके हाथमें सौंप दिया। विविध इच्छित पदार्थको प्रदान करनेवाले नवनिधियोंको वृषभराज व हंसराजके वशमें दे दिया। शेष पुत्र व दामादोंको चामर लेकर खड़े होनेका आदेश दिया। इसप्रकार पूजासमारंभको बाह्य सर्वव्यवस्था कर सम्राट् ऊपर पर्वतपर चले गए।

समवशरण आकाश प्रदेशमें था। किसी मंदिरसे देवके चले जानेपर मंदिरकी जो हालत होती है वही दशा उस समय उसकी थी। जगदीश आदिप्रभु पर्वतपर अलग विराजमान थे, जैसे कोई निस्पृहयोगी बनके

जंजालको छोड़कर एकान्तवास करता हो। इसी प्रकार अन्य केवलियोंकी गंधकुटी भी आकाशमें इधर उधर दिख रही थी। द्वादशगण आश्चर्यके साथ भगवंतकी ओर देख रहे थे। सिद्धशिलाके समान एक स्फटिकशिलाके ऊपर भगवंत बद्धपल्यंकासनसे विराजमान हैं। सिद्धके समान योगमें मग्न भगवंतको देखकर 'जिनसिद्ध' कहते हुए भरतेश्वरने नमस्कार किया। भगवंतके सामने दुःख उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए चक्रवर्तीको कोई दुःख नहीं हुआ। भगवंतको साष्टांग नमस्कार कर सार्वभौमने पूजासभारंभ को प्रारम्भ किया। एक दो दिन पूजा समारंभ चला तो आसपासके व्यंतर विद्याधर देव वगैरह सभी अनर्घ्यसामग्रीको साथ लेकर आये। बड़ी भारी यात्रा भर गई।

विशेष क्या? पूर्वसमुद्राधिपति मागधामरको लेकर हिमवंत तकके व्यंतरदेव व अन्य विद्याधर आकर भरतेश्वरकी पूजामें शामिल हुए। भरतेश्वरको वे पूजा सामग्री तैयार कर दे रहे थे। सम्राट् भी प्रसन्न हुए। नमि, विनमि, गंगादेव, सिंधुदेव, भानुराज व विमलराजने यह अपेक्षा की कि हम भी पूजा करेंगे। तब भरतेश्वरने सम्मति देकर अपने साथ ही उनको भी पूजामें शामिल कर लिया।

शुचिके साथ चक्रवर्तीने अपने कोटाकोटिरूप बना लिए। पर्वतभर सर्वत्र भरतेश्वर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। फिर व्यंतर, विद्याधर आदि जो सर्व पदार्थ दे रहे हैं उनसे वैभवसे पूजा कर रहे हैं उसका क्या वर्णन करें? धरा, गिरी व आकाशमें सर्वदेव खड़े होकर जयजयकार कर रहे हैं। साढ़ेतीन करोड़ वाद्य तो चक्रवर्तीके, भगवंतकी सेवामें देवेन्द्रके द्वारा नियोजित साढ़ेबारह करोड़ वाद्य इस समय एकदम बजने लगे। उस संभ्रम का क्या वर्णन किया जा सकता है? अंबरचरि गंधर्वकन्यायें, नागकन्यायें, आकाशमें नृत्य कर रही थीं। उस समय जम्बूद्वीपमें सबको आश्चर्य हो रहा था। उस पूजा समारंभका क्या वर्णन किया जा सकता है? सबसे पहिले मंत्रोच्चारणपूर्वक सम्राट्ने जलधाराका समर्पण किया। तदनन्तर सुगंधयुक्त चन्दनको समर्पण किया। चंदन कोई छोटी मोटी कटोरीमें नहीं था। वह पर्वत (चंदनपर्वत) बन गया अगणित रूपको धारण किये हुए भरतेश्वर अपने विशाल दोनों हाथोंसे चंदनको लेकर जब अर्चन कर रहे थे वह पर्वतसे जमीनमें भी उतर कर गया, जहाँ देखो वहाँ सुगन्ध ही सुगन्ध है। जब कि अगणित देवगण जयजयकार कर रहे थे तब भरतेश्वर अपने विशाल हाथोंसे उत्तम अक्षताओंको अर्पण कर रहे

थे। उस समय वहाँपर तंदुल पर्वतका निर्माण हुआ। सुरसिद्ध यक्ष जय-जयकार कर रहे हैं। भरतेश्वर सुगन्धयुक्त पुष्पोंको लेकर जब अर्पण कर रहे थे तब वहाँपर पुष्पपर्वत बन गया। अत्यन्त सुगन्ध व सौन्दर्य से युक्त नैवेद्य, भक्ष्यको जिस समय भरतेश्वरने अर्पण किया तो वह कैलासपर्वत पंचवर्णका बन गया, आश्चर्य है। दीपार्चनमें रानियोंके द्वारा प्रेषित आरतियोंको समर्पण किया, इसी प्रकार यह उल्लेख करते हुए कि यह बहुओंके द्वारा प्रेषित आरतियाँ हैं, यह पुत्रियोंके द्वारा प्रेषित आरतियाँ हैं। इस प्रकार अपने अवधिज्ञानसे जानते हुए हँसते हुए सन्तोषसे अगणित आरतियोंको समर्पण किया। सम्राट्की पुत्रियाँ ३२ हजार हैं। ९६ हजार रानियाँ हैं। इसी प्रकार हजारों बहुएँ हैं। सबकी ओरसे आरतियाँ आई थीं। बहुत भक्तिसे जब धूपका अर्पण किया, वह धूपका धूम जिस समय जिनेंद्रकी कांतिसे युक्त होकर आकाशमें जा रहा था तो लोग यह समझ रहे थे कि स्वर्गका यह सुवर्ण सोपान है। सम्राट्के करतलमें उत्पन्न एक रत्नलता इन्द्रपुरीमें पहुँच रही हो उस प्रकार वह धूमराजि मालूम हो रही थी। फलोंको जिस समय उन्होंने अर्पण किया, उस समय अनेक पर्वत ही तैयार हुए। बड़े-बड़े गुच्छ व फलोंसे युक्त उत्तम फलोंको सम्राट्ने अर्पण किया, देवगण उस समय जयजयकार कर रहे थे। वहाँ जैसे-जैसे फल बढ़ते गये व्यन्तर उसे गंगामें निकाल निकालकर डाल रहे थे। पुनः अर्चन करनेके लिए उनके हाथमें नवीन फल मिल रहे थे। बहुत आनन्दके साथ पूजा हो रही है। भरतेश्वरके ६४ हजार पुत्र हैं। उनमें दीक्षा लेकर जो गये हैं उनको छोड़कर बाकीके कुमार चामर लेकर भयभक्ति व आनन्द-के साथ डोल रहे हैं। इसी प्रकार भरतेश्वरके दामाद ३२ हजार हैं। वे भी उनके साथ भक्तिसे चामर डुला रहे हैं। इस प्रकार कुछ कम एक लाख चामरको उस समय सम्राट्ने भगवंतके पूजा समारम्भमें डुलाया। इसी प्रकार भरतेश्वरके मित्र भी अनेक विधिसे पूजा समारम्भमें योग दे रहे हैं।

फल पूजाके बाद रत्नसुवर्णादिकके द्वारा निर्मित फलपर्वतके समान करोड़ों अर्घ्योंका अवतरण किया। देवगण जयजयकार कर रहे थे। भगवंतको उन्होंने कितना अर्घ्य चढ़ाया, इसको समझनेके लिए यही पर्याप्त है कि उन अर्घ्योंके ऊपर जो कर्पूर जल रहे थे उनको देखनेपर कर्पूरपर्वतकी ही पंक्तियोंको हो आग लग गई हो ऐसा मालूम हो रहा था। सुन्दर मन्त्रपाठको उच्चारण करते हुए रत्नकलशोंसे समस्त विश्व-

को शांति हो इस उद्देश्यसे भरतेश्वरने शांतिधारा की। इसी प्रकार रत्न, सुवर्ण, चांदी आदिके द्वारा बने हुए एवं सुगन्धित पुष्पोंसे पुष्पवृष्टि की, उस समय देवगण जयजयकार कर रहे थे। इसी प्रकार रत्नवृष्टि की गई। बादमें द्वादशगण अपने पुत्र मित्रोंके साथ बहुत आनन्दसे आदिनाथ स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा दीं। चक्रवर्तीके भक्तिप्रमोदको देखकर देवगण प्रसन्न हो रहे थे।

जिनेन्द्रकी वन्दना कर, योगिगण, ब्राह्मण, नरेन्द्रवर्ग आदि सबका यथायोग्य सत्कार कर सम्राट् आनन्दित हुए। उनको भोजनार्थ पूछा कर 'हमें पूजाकी चिन्ता है, आपको आपका भानजा योग्य सत्कार कर रहा है। इस बातको मैं जानता हूँ' इस प्रकार नमिराज आदि बांधवोंके साथ सम्राट्ने कहा। युवराज, बाहुबलीके पुत्र महाबल, गृहपति आदिने सबकी इच्छाको जानते हुए सबका सत्कार किया। इसी प्रकार मानव, सुर, व्यन्तरादिकोंके साथ योग्य विनय व्यवहार कर स्वयं सार्वभौम गंगातटमें पहुँचे, वहाँपर अपने पुत्रोंके साथ एकभुक्ति की। दिन तो इस प्रकार आनन्दसे व्यतीत हुआ। रात्रि भी भगवंतकी देहकांतिसे दिनके समान ही थी। पहिलेसे निश्चित समय सब लोग एकत्रित हुए।

अवधिज्ञानधारी तो सब जानते ही थे, बाकी लोगोंको सूचना दी गई। सब लोग रथोत्सवके लिए उपस्थित हुए। वहाँपर कैलासको लगाकर अत्यन्त सुन्दर आठ रथ खड़े हैं। मालूम होते हैं कि आठ पर्वत ही हों, देदीप्यमान पंचरत्नके कलश, प्रकाशमान नवरत्नकी मालाओंसे युक्त सुवर्णके रथ, प्रकाशके पुञ्जके समान थे। उनको देखनेपर कल्पवृक्ष, या सुरगिरीके समान मालूम होते थे। मेरुपर्वतके चारों ओरसे आठ पर्वत हैं, उनको तिरस्कृत करते हुए कैलासको लगकर ये आठ पर्वत शोभित हो रहे हैं बहुत ही सौन्दर्यसे युक्त हैं।

अगणित वाद्योंकी घोषणा हुई। भरतेश्वरके इशारेको पाकर वे रथ आठ दिशाओंमें चले गये। इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, वायव्य, कुबेर, ईशान, इस प्रकार आठ दिशाओंकी ओर आठ रथ चलाये गये। वे इस बातको कह रहे थे कि भगवंत आठ कर्मोंको नष्ट कर आठगुणोंको प्राप्त करनेवाले हैं। इसकी सूचना भरतेश्वरने आठ दिशाओंको भेज दी है। आकाशसे देवगण पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। इसके साथ ही रथोंके चक्रका शब्द हो रहा है।

इस बीचमें व्यन्तर व विद्याधरोंने भी अगणित सुन्दररथोंका निर्माण

किया था। वे भरतेश्वरकी अनुमतिकी प्रतीक्षामें थे। उसे जानकर भरतेश्वरने उन्हें निश्चिंत बनाया। देवगण! मेरे रथ जमीनपर चलें, आप लोग अपने रथोंको आकाशपर चलाइये! उत्सवमें प्रभावना जितने अधिक प्रमाणसे हो उतना ही उत्तम है। आप लोग कौन हैं? मेरे ही तो हैं। षट्खंडके भीतर रहनेवाले हैं इसलिए आनन्दसे चलाइये। मुझे इसमें हर्ष है। इस प्रकार कहनेपर सबको आनन्द हुआ। देवदुन्दुभिके साथ देवनृत्य होने लगा, तब गंगादेव और सिंधुदेवके रथ चले गये। इसी प्रकार विद्याधारियोंके नृत्यवैभवके साथ नमिराज व विनमिराजके रथ चले गये, सब लोग जयजयकार कर रहे हैं। गणबद्ध देवोंके रत्नरथ जाने लगे। इसी प्रकार महावैभवसे वरतनु, प्रभासेंद्र, विजयार्धदेवके रथ जाने लगे, हिमवंत देवका रथ प्रत्यक्ष हिमवान पर्वतके समान ही मालूम हो रहा था। तदनन्तर कृतमाल नाट्यमाल देवके रथ चले गये। इस प्रकार बाहर मित्रोंके रथोत्सव होनेपर सम्राट्ने उनको बुलाया व हर्षसे आलिंगन दिया एवं उनको अनेक रत्नादिक प्रदानकर सन्तुष्ट किया। तब उन मागधादि व्यन्तरमुख्योंने सम्राट्के चरणमें नमस्कार किया एवं कहने लगे कि राजन्! आपके ही प्रसादसे हमको रहता है। बड़े हाथी आगे चलनेपर उसके पीछे बाकीके छोटे छोटे हाथी जाते हैं, उसी प्रकार आपके साथ हम भी आत्मसुखका अनुभव करते हैं। इस प्रकार प्रतिनित्य नवीन रथ, नवीन पूजा, नवीन नृत्य एवं नवीन रस रसायनका भोजन, इस प्रकार उस यात्रासागरको नवीन नवीन आनन्द! इस प्रकार चौदह दिन व्यतीत हुए।

अन्तिम दिनके तीसरे प्रहरमें उपस्थित सर्वप्रजाओंके सत्कारके लिए सार्वभौमने संघपूजा की व्यवस्था की। उसका क्या वर्णन करें! चौरासी गणधरोंको भक्तिसे नमस्कार कर उनकी अनुमति से चतुर्संघको भरतेश्वरने सन्मानित किया। जपसर, पुस्तक, पिंछ आदि उपकरण मुनियोंको, वस्त्रादि अर्जिकाओंको एवं व्रतियोंको प्रदान कर सन्मान किया। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको सुवर्ण रत्न व दिव्यवस्त्रको प्रदान करते हुए करोड़ों ब्राह्मणदम्पतियोंका सन्मान किया। आनन्दको प्राप्त ब्राह्मण भरतेश्वरकी शुभकांक्षा करते हुए आशीर्वाद दे रहे हैं। परदारसहोदर हमारे राजा अपने पुत्रकलत्रोंके साथ हजारों वर्ष जीवें इस प्रकार ब्राह्मणस्त्रियां आशीर्वाद दे रही हैं। इसी प्रकार मागधादि व्यन्तरोंका भी पुनः सन्मान किया। चिंतामणि रत्नके होनेपर किस बातकी कमी है। इसी प्रकार गंगादेव, सिंधुदेव, नमि, विनमि आदिका भी रत्नाभरणोंसे सन्मान किया। शेष बचे हुए

दोंभाद, राजपुत्रादिके सन्मानके लिए अपने पुत्रोंको नियत किया। भरतेश्वरने उनसे कहा कि दान, पूजा स्वहस्तसे होनी चाहिए, इसलिए आप लोग मेरे प्रतिनिधि हों। सबका यथायोग्य सन्मान करो। पुत्रोंने भी आनन्दसे इस कार्यको स्वीकार किया। आकाशमें कई विमान लेकर खड़े हुए एवं ऊपरसे सबको वस्त्र-रत्नादि प्रदान करने लगे। दाताके हाथ ऊपर पात्रके हाथ नीचे, यह लोकोक्ति उस समय चरितार्थ हुई। भूमिपर खड़े हुए जो हाथ पसार रहे थे, सबको इन्होंने इच्छित पदार्थ प्रदान किया। समुद्रके जहाजके समान उनका विमान आकाशमें सर्वत्र जा रहा है एवं लोगोंको किमिच्छक दानसे तृप्त कर रहा है। अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्रोंकी बरसात हो रही है। कल्पवृक्ष स्वयं ऊपरसे उतर रहा हो उस प्रकार वे इच्छित पदार्थोंकी वृष्टि कर रहे हैं। आदिराजके हाथमें जो चिंतामणि रत्न था वह चिंतित पदार्थको प्रदान करनेवाला है। फिर किस बातकी चिंता है। उस विशाल प्रजा समूहको वे विनोदमात्रसे सन्तुष्ट कर रहे थे। दो पुत्रोंके वश नवनिधियोंको सार्वभौमने किया था। वे तो इच्छित पदार्थको तत्क्षण देते हैं। अतः निमिषमात्रसे सबको संतुष्ट किया। विविध आभरणको पिंगलनिधि, वस्त्रको पद्मनिधि, सुवर्ण राशिको शंखनिधि, रत्नराशिको रत्ननिधि, भिन्नरससे युक्त धान्यको पांडुकनिधि जब प्रदान करती है तो उन पुत्रोंको अगणित प्रजाओंको तृप्त करनेमें दिक्कत ही क्या है?

इसके बाद सम्राट्ने गंगादेव, सिंधुदेव, नमि, विनमि आदिका सन्मान करते हुए कहा कि आप और हम पूजक थे। इसलिए पहिले आपलोगोंका सन्मान नहीं किया, अब आपका मैं सन्मान करता हूं। लीजिये, यह रत्नादिक। तब उन लोगोंने उन आभूषणोंको नहीं लिये तो सम्राट्ने कहा कि तब आप लोग ही दीजिये। मैं लेता हूं। तब उन्होंने भरतेश्वरको भेंटमें अनेक अनर्घ्य वस्त्राभरणादि दिये तो भरतेश्वरने आनन्दके साथ लिये व फिर भरतेश्वरके देनेपर उन्होंने भी लिए। इस प्रकार नमि, विनमि, भानुराज, विमलराज आदिने परस्पर विनोदके साथ सन्मान प्राप्त किया। विशेष क्या? लोकमें अब दारिद्र्य नहीं रहा, चौदह दिन महावैभवसे पूजा हुई। किमिच्छक दान हुआ। सम्राट्के पूजाव्रतका यह उद्यापन ही है। उस चौदहवें रात्रिको भी रथोत्सव हुआ। चौदह दिनतक रात्रिंदिन धर्मका अतुल उद्योत हुआ। करोड़ों वाद्योंको ध्वनिसे सर्वत्र आनन्द छाया था। समुद्रके समान ही गंगातटकी हालत हो गई थी। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, चौदह दिनतक जो महावैभवसे

पर्वतप्राय सामग्रियोंसे पूजा हो रही थी। अर्पित पदार्थको देवोंने समुद्रमें डाल दिया था। वहाँपर उन फलाक्षतादिकोंको मगरमच्छ तिमिंगिल आदि भी पूर्णतः खा नहीं सके। बचे हुए पर्वतप्राय पदार्थ पानीके ऊपर तैर रहे हैं। गुलाबजल, चन्दन आदिके कारणसे सर्व दिशा सुगंधित हो रही थी। इसी कारणसे वायु भी सुगंध हो चला था, तभी वायुका गंधवाहक नाम पड़ गया है।

स्वर्गके देव भरतेशके वैभवकी प्रशंसा करने लगे, रथोत्सव होनेके बाद उस अन्तिम रात्रिको देवेन्द्र ऐरावतपर चढ़कर स्वर्गसे नीचे उतरा। अनर्घ्य रत्नाभरणको धारण कर रत्नमय मुकुटकी प्रभाको दशों दिशाओं में फैलाते हुए एवं रंभामेनकाके नृत्यको देखते हुए देवेन्द्र आ रहा है। देवेंद्र के साथ स्वर्गकी वे देवियाँ आ रही हैं, एवं गा रही हैं, नृत्य कर रही हैं। पूर्वसमुद्रमें पड़े हुए पूजा द्रव्य, पर्वतोंके समान उपस्थित रथ व विश्वमें व्याप्त जनताको देखकर देवेन्द्र आश्चर्यचकित हो रहा है। चक्रवर्तिके द्वारा किये हुए पूजनके चिह्न सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं, भूमि और पर्वत सर्व सुगन्धमय हो गये हैं। चक्रवर्तीकी अतुलभक्तिके प्रति देवेन्द्र प्रसन्न हो रहा है, शिर डोल रहा है साथमें आश्चर्य कर रहा है। कैलासके पासमें आनेपर देवेन्द्र हाथीसे नीचे उतरा व उन्होंने भगवान् आदिप्रभु व मुनियों को शची महादेवीके साथ नमस्कार किया। बादमें शची देवीको अलग रख कर स्वयं भरतेश्वरके पास गया व पूजा वैभव से प्रसन्न होकर सार्वभौमको आलिंगन दिया। एवं प्रशंसा की कि सचमुचमें आदिप्रभुने लोकमें अनर्घ्यता को प्राप्त किया। साथमें उन्होंने तीन लोकको चकित करनेवाले पुत्ररत्न को प्राप्त किया धन्य है। इस प्रकार भगवान् आदिदेव आत्मयोगमें मग्न हैं। उपस्थित सर्व भक्तगण आनन्दसे पुण्यसंचय कर रहे हैं।

भरतेशके वैभवको इस प्रकरणमें पाठक देख चुके हैं। वे सुविशुद्ध आत्मज्ञानी हैं, तथापि उन्होंने व्यवहारधर्मकी उपेक्षा नहीं की। व्यवहार धर्ममें भी वे इतने चतुर हैं कि उनके पूजावैभवको देखकर विश्वकी प्रजायें चकित हो जायँ एवं देवेन्द्र भी आश्चर्य करें। इसलिए वे सदा व्यवहारको न भूलते हुए ही निश्चयकी आराधना करते थे। उनकी सदा यह भावना रहती थी कि—

हे चिदंबरपुरुष ! व्यवहार धर्मका उद्यापन कर सुविशुद्ध निश्चयकी प्राप्तिके लिए हे अमृतमाधव ! मेरे हृदयमें सदा अविचलरूपसे बने रहो !

हे सिद्धात्मन् ! आप विश्व विद्याधर हैं, विश्वतो लोचन हैं, विश्वतो मुख हैं, विश्वतोऽङ्घ्रि हैं, विश्वेश हैं। इसलिए हे दुष्कर्मतृणलोहितश्व ! प्रभु निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति तीर्थेशपूजासंधिः

—००—

जिनमुक्तिगमनसंधिः

भगवंतके पूजा महोत्सवमें रात बीत गई, प्रातःकालमें सूर्योदय होनेपर उपस्थित हुई जनता जयजयकार करते हुए भगवंतकी वन्दनाके लिए सन्नद्ध हुई। सूर्यका उदय होनेपर भी कोटि सूर्यचन्द्रके प्रकाशको धारण करनेवाले भगवंतके सामने सूर्यका तेज फीका ही दिख रहा है, एक मामूली दीपकके समान मालूम हो रहा है। एक सुवर्णकी थालीके समान दिख रहा है। घातिक चतुष्टयको नाशकर भगवंत पहिले परंज्योति बन गये हैं। अब चार अघातिया कर्मोंको नष्ट करनेके लिए भगवंत तैयार हुए। घातिया कर्मोंकी ६३ प्रकृति तो पहिलेसे खाली होगई है। अब घातिया कर्मोंकी ८५ प्रकृतियोंको नष्ट करनेके लिए भगवंतने तैयारी की। इन ८५ प्रकृतियोंका समूह अब दो भेदसे विभक्त होकर नाशको पाते हैं। भगवंत उनको अपने आत्मप्रदेशसे दूर करते हैं।

असातावेदनीय, देवगति, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर, पंच बन्धन, पंच संघात, संस्थान छह, अंगोपांग तीन, षट्संहनन, पंच प्रशस्तवर्ण, (पंच अप्रस्तवर्ण), गंधद्वय, पंच प्रशस्तरस, (पंच अप्रशस्त रस), अष्ट स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्तक, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण व नीच गोत्र इस प्रकार ७२ प्रकृतियाँ अयोगकेवली गुणस्थानके द्विचरम समयमें आत्मासे अलग होती है। इसी प्रकार सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्तक, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर व उच्चगोत्र

इन प्रकृतियोंका अयोगकेवली गुणस्थानके चरम समयमें अन्त होता है। इस प्रकार अघातिया कर्मोंकी अवशिष्ट ८५ प्रकृतियोंको तीर्थंकरयोगी आत्मासे अलग करते हैं। आत्माको छोड़कर शेष सर्व पदार्थ मेरे नहीं है, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, इस बातका निश्चय पहिलेसे तीर्थंकर योगीको है। जगत्के अग्रभागमें स्थित सिद्ध भी जब उनसे भिन्न हैं तो जगत्की बात ही क्या है ? अब तीन शरीरोंको दूरकर मुक्ति प्राप्त करना ही शेष है। इसलिए उस कार्यमें भगवान् उद्युक्त हुए। अब तो उनकी दशा तो ऐसी है कि स्फटिकके पात्रमें दूध भरा हो तो जो निर्मलता है, उससे भी बढ़कर निर्मलताको प्राप्त शरीरमें आत्मा विशुद्ध भावोंमें डुबकी लगा रहे हैं। अत्यन्त विशाल क्षीरसमुद्रको एक घड़ेमें भरनेके समान विशाल आत्माको इस देहमें भर दिया है, उसका साक्षात्कार भगवंत कर रहे हैं। आकाशको एक गजसे मापनेके समान, त्रिलोकको भी न कुछ समझनेके समान एवं करोड़ों समुद्रोंको सरलतासे पार करनेवालेके समान अत्यन्त निराकुलता वहाँ छाई हुई है। शरीररूपी कुम्भमें स्थित आत्मरूपी क्षीरसमुद्रमें सम्यक्त्व पर्वतरूपी मंथनको चिद्भावकी रस्सी लगाकर मंथित कर रहे हों उस प्रकार उस ध्यानको दशा थी। वहाँपर घड़ा, दूध, मंथा, रस्सी आदि सभी भिन्न-भिन्न हैं। यहाँपर केवल घड़ा भिन्न है, बाकी सर्व एक रूप होकर मंथनक्रिया होरही है। आठ क्षायिक गुणोंमें चार गुणोंकी प्राप्ति तो पहिलेसे ही भगवंतको हो चुकी है। अब रहे चार गुणोंकी प्राप्तिके लिए गुणगुणी भेदको भुलाकर भगवान् अपने आत्मस्वरूपको ओर देख रहे हैं एवं दुर्गुण कर्मोंको दूर कर रहे हैं। कर्मके स्वरूपमें ही स्थित तैजसकार्माणोंको परमात्माने अब निस्तेज बना दिया है। अब तो वे प्रकाश में ही डुबकी लगा रहे हैं, प्रकाशमें ही स्नान कर रहे हैं, प्रकाशमें ही जलक्रीड़ा कर रहे हैं। इस प्रकार प्रकाशमय परमात्मामें वे मग्न हैं। एक दफे प्रकाश तेज व फिर मंद, इस प्रकारके परिवर्तनसे युक्त धर्मध्यान वहाँपर नहीं हैं। वहाँपर परमशुक्लध्यान है, इसलिए शरीरमें सर्वत्र निर्मलात्माका ही दर्शन होरहा है। शरीररूपी घटा फूटकर आत्मारूपी दूध लोकमें सर्वत्र व्याप्त होरहा हो, इस प्रकार वहाँपर आत्मदर्शनमें निर्मलता बढ़ी हुई है। उस ध्यानकी महिमाको भगवंत ही जाने।

आयु कर्म तो वृद्ध हो चुका है। वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म अभीतक जवानीमें हैं। उनको अब प्रयत्नसे वृद्ध करना चाहिये। इसलिए अब भगवंतने वेदनीय नाम व गोत्रको वृद्ध बनानेका उद्योग किया। विशेष, क्या, दण्डके बलसे तीन शत्रुओंका दमन कर उनको चौथे शत्रुके वशमें देते

हुए चारोंको एकदम नष्ट करनेके उद्योगमें अब वीतराग लगे हैं। आत्मा-को अब दण्डाकारके रूपमें विचार किया तो वह निर्मल आत्मा शरीरसे बाहर दण्डके आकारमें उपस्थित हुआ। पाताल लोकसे लेकर सिद्धलोक-तक वह आत्मा अन्तर शरीररूपसे चौदह रज्जुके आयाममें दण्डाकारमें उपस्थित है। स्वतःके शरीरसे तिगुने आयत प्रमाणमें परमात्मा उस समय तीन लोकके लिए एक स्फटिक खम्भेके समान खड़ा है। उसे अब हस्त-पादादिक नहीं है पुनः कपाट आकृतिके लिए विचार किया तो एकदम दक्षिणोत्तर फैलकर तीन लोकके लिए एक किवाड़के समान बन गये अब सातरज्जु चौड़ाईमें, चौदह रज्जु ऊँचाईसे एवं स्वशरीरके तिगुने घनप्रमाण में अब वह परमात्मा विद्यमान है। उसके बाद प्रतरका प्रयोग हुआ तो त्रिलोकरूपी विशाल कुम्भमें आत्मामृत तत्क्षण भर गया। जिस प्रकार ओस त्रिलोकमें भर जाती है उसी प्रकार आत्मा त्रिलोकमें भर गया है अब लोकपूरणकी ओर बढ़ गया, पहिले वातवलयके प्रदेश छूट गये थे। अब उन वातवलयोंके प्रदेशको भी लेकर आत्मा सर्वत्र भर गया। तीन लोकमें अब यत्किंचित् स्थान भी शेष नहीं है। कैलासकी शिलापर औदारिक था। परन्तु तैजस कार्मण तो तीन लोकमें व्याप्त हो गये थे और उनके साथ ही परमात्मकला भी थी। तदनन्तर लोकपूरणके बाद पुनः प्रतर, कपाट व दण्डाकारमें आकर अपने शरीरमें वह परमात्मा प्रविष्ट हुआ। जिस प्रकार एक गीले वस्त्रको निचोड़कर फैलानेपर हवासे वह सूख जाता है, उसी प्रकार आत्माको फैलानेपर परमात्माके कर्मरूपी द्रव परमाणु सूख गये।

अब तीनों कर्मोंकी दशा आयुष्यकी बराबरीमें है। अब तीन शरीरों को छोड़कर भगवंत सिद्ध लोकमें चढ़नेके लिए तैयार हुए। तेरहवें गुण-स्थानवर्ती परमात्मा जब चौदहवें गुणस्थानमें पहुँचते हैं, वहाँ अत्यन्त सूक्ष्म काल है। अ, इ, उ, ऋ, लृ, इस प्रकार पाँच ह्रस्वाक्षरोंके उच्चारणके अल्पकालमें ही वे सब खेल खतम कर सिद्धलोकमें सिधारते हैं। प्रथम समयमें वहाँपर बहत्तर कर्म प्रकृतियोंका अन्त हुआ तो अंत्यसमयमें तेरह प्रकृतियोंका अभाव हुआ। साथमें तीन शरीर भी अदृश्य हुए। वह सकल परमात्मा लोकाग्रभागपर पहुँचे। उसमें एक तीसरा शुक्लध्यान और एक चौथा शुक्लध्यान है ऐसा कहते हैं, परन्तु यह सब कथन करनेकी कुशलता है। उसका सीधा अर्थ तो यही है कि आत्मामें मग्न हुआ।

आदिप्रभुके तीन शरीर अब बिजलीकी तरह अदृश्य हुए तब प्रभु तीन लोकके अग्रभागको एक समयमें पहुँचे। सात रज्जुके स्थानको लंघन करने

के लिए उनको एक समय भी अधिक नहीं लगा। कैलास पर्वतपर पर्यंकासनमें विराजमान थे, इसलिए मुक्तिस्थानमें भी आत्मप्रदेश उसी रूपमें पुरुषाकारसे सिद्धोंके बीच प्रविष्ट हुए। तनुवातवलय नामक अन्तिम वातवलयमें भगवंत सिद्धोंके बीचमें विराजमान हुए। अब उन्हें जिन या अरहंत नहीं कहते हैं। उनको यहाँसे सिद्ध नामाभिधान हुआ। आठ कर्मोंके नाश होनेसे आठ गुणोंका उदय यहाँ हुआ है। अब वे परमात्मा संसार समुद्रको पारकर आठवीं पृथ्वीमें पहुँचे हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य सूक्ष्म, अवगाह, अगुरुलघु और अव्याबाध इस प्रकार उत्तम अष्ट गुणोंको अब परमात्माने पा लिया है। अब यहाँसे इस संसारमें लौटना नहीं होता है। अनन्त सुख है। सामान्य नर सुर व उरगोंको वह अप्राप्य है। ऐसे मुक्तिसाम्राज्यमें वे रहते हैं।

भगवंतके मुक्ति जानेपर जब उनका देह अदृश्य हुआ तो समवशरण भी अदृश्य हो गया। जैसे कि मेघपटल व्याप्त होकर अदृश्य होता है समवशरणके अदृश्य होनेपर केवलियोंकी गंधकुटियां भी इधर उधर गईं। आदिप्रभुके न रहनेपर वहाँ अब कौन रहेंगे? पिताके योगको टकटकी लगाये भरतेश्वर देख रहे थे, जब आदिप्रभु लोकाग्रवासी बने व इधर उनका शरीर अदृश्य हुआ तो सम्राट्का मुख मलिन हुआ। अंतरंगमें दुःखका उद्रेक हुआ। मूर्च्छा आना ही चाहती थी, धैर्यसे सम्राट्ने रोकनेका यत्न किया। पितृमोहकी पराकाष्ठा हुई, सहन नहीं कर सके, मूर्च्छित हुए। खड़े होनेसे मूर्च्छा आती है, जानकर वहाँ मौनसे बैठ गये। तथापि दुःखका उद्रेक हो ही रहा था। पितृ-वियोगका दुःख कोई सामान्य नहीं हुआ करता है। मित्रोंने शीतोपचारसे भरतेश्वरको उठाया। पुनः आँसू बहाते हुए उस शिलाकी ओर देखने लगे हा! हा! स्वामिन् मेरे पिता! मोहासुरदर्पमंथन! मुझे बाह्य संसारमें डालकर आप मुक्ति गये। क्या यह उचित है? मुझे पट्टरूपी पाशमें बाँधकर, ऊपरसे राज्यरूपी बोझा और दे दिया। फिर भी आखिरको मुक्तिको न ले जाकर यहीं छोड़ चल बसे। महादेव! क्या यह उचित है। मुझे इच्छित पदार्थोंको देकर बहुतकाल संरक्षण किया, फिर अन्तमें इस प्रकार छोड़ जानेके लिए मैंने क्या अपराध किया है? आपकी सभा किधर गई? आपका शरीर कहाँ है? आपके साथीकी गंधकुटियाँ कहाँ हैं? कैलासपर्वतकी शोभा भी अब चली गई। बाकीके जीवनकी बात ही क्या है? आपको देखकर मैं भी आज ही सर्वसंग

परित्यागी बनूं व दीक्षा लूं, यह मेरा कर्तव्य है। परन्तु यह पुण्यकर्म जो मुझे घेरा हुआ है, मुझे नहीं छोड़ता है। क्या करूं ? अब दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है ? आपके द्वारा प्रदर्शित योगमार्गमें ही मैं भी आऊंगा। 'श्रीगुरुहंसनाथाय नमोस्तु' इस प्रकार कहते हुए हृदयको समझाया। दुःख में शांतिको धारण किया।

वृषभसेन गणधरने चक्रवर्तीको समझाया कि भव्य ! वृषभेश गये तो क्या हुआ ? वे चर्मचक्षुके लिए अगोचर बन गये, आत्मलोचनसे उनका दर्शन हो सकता है। फिर तुम दुःख क्यों करते हो ? समझमें नहीं आता। तुम्हारे पिताने तुमको कहा था कि, भरत ! तुमको मुक्तिको आनेके लिए मेरे जितने कष्ट सहन नहीं करने पड़ेंगे। तुम बहुत विनोदके साथ मुक्ति पहुँचोगे। इसलिए जल्दी तुम्हारे पिताको देखोगे। सिद्ध लोकमें जब तुम्हारे पिताजी विराजे हैं तो तुम्हारे आत्मामें शुद्धि होगी इसलिए ऐसा न करके बच्चोंके समान दुःख करना क्या तुम्हारा धर्म है ? इस प्रकार योगीन्द्रने भरतेश्वरको विशुद्धपथका प्रदर्शन किया। उत्तरमें सम्राट्ने निवेदन किया कि योगिराज ! आपका कहना बिलकुल सत्य है, परन्तु मोहनीय कर्म आकर दुःख देता है, उसी मोहके बलसे थोड़ासा दुःख हुआ है। क्या करें, माताने दीक्षा ली, मेरे भाईको मोक्ष हुआ परन्तु उस समयके दुःखको समवशरणने रोका। क्योंकि जिनेन्द्रके सामने दुःखकी उत्पत्ति नहीं होती है परन्तु अब यहाँ जिनेंद्रके न रहनेपर शोकोद्रेक हुआ। परन्तु समझानेपर चला गया।

देवेन्द्र भी आश्चर्यचकित हुआ। त्रिलोकपति पिताके वियोगको ऐसा पुत्र कैसे सहन कर सकता है ? दुःखोद्रेक होनेपर भी इसने हृदयको समझाया यह कोई मामूली बात नहीं है। धन्य है ! देवेन्द्र चक्रवर्तीके कृत्य पर अधिक प्रसन्न होकर कहने लगा कि सार्वभौम ! लोकमें लोग बातें बहुत कर सकते हैं। परन्तु जैसा बोले वैसा चलना मात्र कठिन है, परन्तु तुम्हारी बोल और चाल दोनों समान है। उनमें कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार धरणेंद्र बोला कि सुखमें, आनन्दमें रहते हुए सब लोग बड़ी-बड़ी लम्बी-लम्बी गप्पें हांक सकते हैं। परन्तु असह्य दुःखका प्रसंग जब आ जाता है तो उसे मुखसे कहना भी अशक्य हो जाता है। इस समयको जानकर नमिराज बोले कि भगवान् अमृतलोकमें हैं, हमें भी यहाँ मोह क्यों ? वहींपर हमें भी जाना चाहिए। सम्राट्ने शोकको सहन किया, महदाश्चर्य है। इसी प्रकार बाकीके साले व मित्र, राजागण आदिने मिष्ट

भाषण करते हुए सम्राट्को गुलाबजलसे ठण्डा किया। उत्तरमें भरतेश्वरने भी सबको सन्तुष्ट किया।

आप सब मित्रोंने कैलासनाथके पूजामहोत्सवमें योग देकर बहुत अच्छा किया। बहुत आनन्द हुआ। भगवंतका समवशरण जब अदृश्य हो गया तो मेरी सम्पत्तिकी बात ही क्या है? परन्तु आप लोग मेरे परमबन्धु हैं। आपने मेरे इस कार्यमें योग दिया है। आप और हम भगवंतकी पूजासे पावन बन गये हैं। अब आप लोग अपने नगरकी ओर प्रस्थान करें। इस प्रकार सब इष्ट मित्र, नमि, विनमि, मागधामरादि व्यंतरोंको वहाँसे विदा किया। कैलास पर्वतसे सर्व व्यंतर, विद्याधर आदि चले गये। देवेन्द्र धरणेंद्रके साथ विनयसे बोलकर योगियोंकी वन्दना कर भरतेश्वर भी अयोध्याकी ओर निकले। यात्रानिमित्त उपस्थित सर्व प्रजायें चली गईं। भरतेश्वर पुत्र मित्र व प्रधानमंत्री आदिके साथ गुरु हंसनाथकी भावना करते हुए आ रहे हैं, व्यवहार धर्मका उद्यापन कर निश्चय धर्मको ग्रहण कर, सद्योजात चित्कालकी भावना करते हुए अनवद्य सार्वभौम अपने नगरकी ओर आ रहे हैं, सुख दुःखोंमें अपनेको न भूलनेवाला, परमात्मसुखको ही सबसे बढ़कर सुख समझनेवाला और कल सुखपूर्वक मुक्ति जानेवाला वह सुखी सार्वभौम अपने नगरकी ओर जा रहा है। दर्पणमें देखनेवालोंकी अनेक प्रकार की आकृति विकृतियाँ दिखती हैं। तथापि दर्पण अपने स्वभावमें ही है इसी प्रकार अपने कर्मोंके रहनेपर भी प्रसन्न रहनेवाला वह सुप्रसन्न सम्राट् जा रहा है। जगत्की दृष्टिमें राज्यको पालन करनेपर भी सुज्ञान-राज्यके पालन करनेवाला वह विचित्र राजा जा रहा है इस प्रकार महा-वैभवके साथ आकाश मार्गसे आकर चक्रवर्तीने साकेतपुरमें प्रवेश किया एवं सबको हितमित वचनसे विदा किया एवं स्वयं अपने महलकी ओर चले गये।

महलमें व्याकुलताके साथ नमस्कार करती हुई रानियोंको अनेक विधसे सम्राट्ने सांत्वना दी। इधर कैलाशमें देवेन्द्रको एक लीला करने की सूझी। भगवंतने कर्मको कैसे जलाया इस विषयको मैं दुनियाको बत-लाऊँ, इस विचारसे तीन होमकुण्डकी रचना की। और श्रीगंधकी लकड़ी भी एकत्रित हो गई। अनलकुमारदेवके मुकुटसे उत्पन्न आगसे देवेन्द्रने अग्निसंरक्षण कर बहुत वैभवसे होम किया। तीन कुण्ड तो तीन देहकी सूचना है। वह प्रज्वलित अग्नि ध्यानकी सूचना है। भगवंतने तीन शरीर में स्थित कर्मोंको ध्यानके बलसे जिस प्रकार नाश किया, उसी प्रकारकी

सामर्थ्य हमें प्राप्त हो, इस भावनासे सब देवताओंने उस होम भस्मको कंठ, ललाट, हृदय, बाहु आदि प्रदेशोंमें धारण किया। इस प्रकार देवेन्द्र ने भक्तिसे अन्तिम कल्याणका महोत्सव किया। देवगण हर्षसे फूले न समा रहे थे। हम लोगोंने पंचकल्याणमें योग दिया है। अब हमें मुक्तिकी प्राप्ति ही हो गई, इसमें कोई सन्देह नहीं है, इस प्रकार कहते हुए देवगण आनन्दके समुद्रमें डुबकी लगा रहे थे।

देवेन्द्रने तो नृत्य करना ही प्रारम्भ किया, आओ ! आओ रम्भा ! आओ तिलोत्तमा इत्यादि अप्सराओंको बुलाकर सुरगान, लयके साथ देवेन्द्र अब नृत्य करने लगा है। एक दफे उन देवांगनाओंके साथ, एक दफे स्वयं अकेला, बहुरूपोंको धारण कर रहा है। पर्वतपर आकाशपर, एक दफे शिर नीचा कर, पैरको ऊपरकर नृत्य कर रहा है, लोग आश्चर्यचकित हो रहे हैं। नृत्यकलाका अजीब प्रदर्शन ही वहां हो रहा है। "मेरे स्वामी मुक्तिको गये हैं, इसलिए मुझे नृत्य करनेकी अनुरक्ति हुई एवं उनके चरणोंकी भक्ति ही मुझे नृत्य करा रही है।" इस बातको व्यक्त करते हुए बहुत आसक्ति से नृत्य कर रहा है। नृत्यक्रियासे निवृत्त होकर देवेन्द्र ने गणधरोंको वन्दना कर धरणेंद्र, ज्योतिष्क आदि देवोंको विदा किया एवं स्वयं शची महादेवीके साथ स्वर्गलोकके प्रति चला गया।

माघ कृष्ण चतुर्दशीके रोज भगवान् आदिप्रभुने मोक्षधाम प्राप्त किया। उस दिन रात्रिदिनके भेदको न करते हुए लोकमें सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। भगवान् आदिप्रभुको जिन भी कहते हैं, शिव भी कहते हैं। इसलिए उस रात्रिका नाम जिनरात्रि या शिवरात्रि पड़ गया। और लोकमें माघ कृष्ण चतुर्दशीको शिवरात्रिके नामसे लोगोंने प्रचलित किया।

भरतेश्वर सातिशय पुण्यशाली हैं। जिन्होंने तीर्थंकर प्रभुके मोक्ष साधनके समय अपूर्व वैभवसे पूजा की, जिस पूजावैभवको देखकर देवेन्द्र भी विस्मित हुआ तो सार्वभौमके पुण्यका क्या वर्णन हो सकता है ? आदि-प्रभुके मुक्ति सिधारनेके बाद थोड़ासा दुःख जरूर हुआ। परन्तु विवेकके बलसे उसे पुनः शांतकर सम्हाल लिया। ऐसे ही समय विवेक काममें आता है। एवं महापुरुषोंका यही वैशिष्ट्य है। भरतेश्वर परमात्माको इसलिए निम्न प्रकार आराधना करते हैं।

हे चिदम्बरपुरुष ! गुणाकर ! आप क्रमसे धीरे धीरे आकर मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! अष्टकर्मरूपी अरण्यके लिए आप अग्निके समान हो, निर्मल अष्टगुणोंको धारण करनेवाले हो, शिष्टाराध्य हो नित्यसंतुष्ट हो, इसलिए हे निरंजनसिद्ध मुझे सन्मति प्रदान कीजिए ।

इति जिनमुक्तिगमनसंधिः

—००—

राज्यपालन संधिः

भगवान् आदिप्रभुके मुक्ति पधारनेके बाद सम्राट् भरतेश्वरने महल में पहुँचकर अपनी पुत्रियोंको सत्कारके साथ विदा किया । और रत्नाभरणादि प्रदान कर संतुष्ट किया । कुछ दिन आनन्दसे व्यतीत हुए एक दिन सुखासीन होकर भरतेश्वर अपने महलमें थे, इतनेमें समाचार मिला कि नमिराज व विनमिराज दीक्षा लेकर चले गये । उसी समय मुखमें स्थित ताम्बूलको थूक दिया । गला भर आया । दुःखके आवेगसे आँसू भी उमड़ आये । क्योंकि नमि-विनमिका वियोग उनके लिए असह्य था, वे प्रीतिपात्र साले थे । तथापि विवेकके उपयोगसे सहन कर लिया । तदनंतर अवधिका प्रयोग किया तो मालूम हुआ कि अपनी मामियोंने[1] भी भरतकी बहिनोंके साथ दीक्षा ली है । नमि विनमिसे कनकराज और शांतराजको राज्य देकर दीक्षा ली, यह जानकर भरतेशको दुःख भी हुआ और साथमें उनके धैर्यको देखकर प्रसन्नता भी हुई । उसके मामाके पुत्र ही तो हैं । विचार करने लगे कि वे मुझसे आगे बढ़ गये । मुझसे पहिले जो वन्दनीय बन गये उनको नमोस्तु, इस प्रकार कहते हुए नमस्कार किया । नमि विनमिने कच्छ केवलीसे दीक्षा ली और माताओं एवं स्त्रियोंकी दीक्षा भगवान् बाहुबलीके पास हुई, धन्य है, इत्यादि विचार करते हुए अन्दर गये तो महलमें पट्टरानी सुभद्रादेवी अत्यधिक दुःखमें पड़ी हुई हैं । उत्तम व संतोषदायक वचनोंसे भरतेश्वरने उसे सांत्वना दी । भरतेशके लिए यह कोई नई बात नहीं है । नमि विनमिके बच्चोंके संरक्षणके लिए मैं हूँ, कोई घबरानेकी जरूरत नहीं है, इत्यादि प्रकारसे पट्टरानीको सांत्वना देकर

१. नमि विनमिकी मातायें व महाकच्छकी स्त्रियाँ ।

विजयार्धको उसी आशयका पत्र भेजा, और सबको सन्तुष्ट किया। इस प्रकार कुछ समय बहुत आनन्दसे व्यतीत हुए।

एक दिन बैठे-बैठे भरतेश्वरने विचार किया कि अब आगे आनेवाला काल बहुत कठिनतर है। कैलाश पर्वतके रत्न, सुवर्णादिकसे मन्दिरोंका निर्माण किया गया। वहाँपर आगेके कालमें मनुष्योंका जाना उचित नहीं है। उन मन्दिरोंपर कोई आघात न हो इसका प्रबन्ध होना चाहिए। बीच पर्वतसे इधरके भागके पर्वतको दण्डरत्नसे कोरकर मनुष्य उसे पारकर न जावे ऐसा करे। इस विचारसे उसी समय मागधामरको बुलाया व भद्रमुख को भी बुलाकर युवराज अर्ककीर्तिके नेतृत्वमें इस कार्यको उन्हें सौंप दिया। दण्डरत्नके द्वारा विश्वकर्मने पर्वतको उपर्युक्त प्रकारसे कोर दिया। अब पर्वत एक गिंडी (कलश) के समान बन गया। इतनेमें युवराजने भद्रमुखको यह कहा कि पर्वतके आठ भागोंमें आठ पादोंके समान रचना करो! भद्र-मुखने तत्काल आठ पादोंके रचना आठ दिशाओंमें कीं। वे आठ खम्भोंके समान मालूम होते थे। युवराजकी बुद्धिचतुरतापर सबको प्रसन्नता हुई। अब मनुष्य तो वन्दनाके लिए यहाँ नहीं आ सकते हैं। परन्तु अब रजतादि अष्टपादका पर्वत बन गया। इसलिए इसका नाम अष्टापद पड़ गया है। उसी समय उस कोरे हुए भागके बाहरकी ओर चाँदीका एक परकोटा निर्माण किया गया सब कार्यको समाप्त कर चक्रवर्तीको निवेदन किया। वे भी प्रसन्न हुए। मागधामर, भद्रमुख व युवराजको वस्त्ररत्नाभरणादि प्रदान कर सन्मान किया एवं कहा कि आप लोगोंने बड़ी शूरताका कार्य किया है। हमारे समयमें मनुष्य विमानोंमें बैठकर आएँ एवं पूजन करें। फिर आगे विद्याधर व देव जाकर पूजा करें। जिनालयोंकी रक्षा युवराज के द्वारा हुई। परन्तु आगे परकोटेकी चाँदीके लिए लोग आपसमें कलह करेंगे, इस विचारसे सगरपुत्र वहाँ खाईका निर्माण करेंगे। व्यंतराग्रणि मागधामरको विदाकर आत्मांतराग्रणि भरतेश्वर अत्यन्त आनन्दके साथ राज्यवैभवको भोगते हुए सौख्यविश्रांतिसे समयको व्यतीत कर रहे हैं। उसका क्या वर्णन करें।

भूभारकी चिंता मंत्रीरत्न वहन कर रहा है। परिवार अर्थात् सेनाकी देखरेख अयोध्यांककी जिम्मेवारीपर है, नगरकी रक्षा माकाल कर रहा है। भरतेश्वर आत्मयोगमें हैं। राजपुत्रोंका आतिथ्य वगैरह युवराज कर रहा है। और व्यंतरोंका योगक्षेम मागधामर चला रहा है, भरतेश आत्म-योगमें हैं। हाथी, घोड़ा, आदिकी देखरेख, घर व महलकी देखरेख

विश्वकर्मा कर रहा है। स्नानगृह, भोजनगृहकी व्यवस्था गृहपतिके हाथमें है। भरतेश आत्मयोगमें हैं। भरतेशके सेवक बाहिर दरवाजेपर पहरा देते हैं, तो सम्राट् अपनी रानियोंके साथ आनन्दसे सुवर्णके महलमें निवास करते हैं। सौनंदक, खड्ग व सुदर्शन, शत्रुके अभावको सूचित करते हैं तो दण्डरत्न पर्वतको भी चूर्णित करनेको तैयार हैं। इस प्रकार भरतेश्वर निरातंक होकर राज्यवैभवको भोग रहे हैं।

सेनाको आनेवाली ऊपर व नीचेकी आपत्तिको छत्र व चर्मरत्न दूर करते हैं। सम्राट् अपने नगरमें अखण्ड लीलामें मग्न हैं। चिंतामणि रत्न चिंतित पदार्थको प्रदान करनेवाला है इसी प्रकार महत्वपूर्ण नवनिधि है। गुफामें भी प्रकाश करनेवाला काकिणी रत्न है। फिर महलमें भरतेश्वर सुखी हों, इसमें आश्चर्य क्या है। बारह कोसतक कूदनेवाला घोड़ा है, उत्तम हस्तिरत्न है, परिपूर्ण इन्द्रियसुखको प्रदान करनेवाला स्त्रीरत्न है। फिर भरतेश्वरके आनन्दका क्या वर्णन करना है? असि, दण्ड, चक्र, काकिणि, छत्र, चर्म व चिंतामणि ये सात अजीव रत्न हैं, विश्वकर्मा, मंत्री, सेनापति, गृहपति, स्त्रीरत्न, अश्वरत्न व गजरत्न ये सात जीवरत्न हैं। सम्राट्के भाग्यका क्या वर्णन करें? चौदह रत्न हैं, नवनिधि हैं, अपार सेना है। उनका सामना कौन कर सकता है। अत्यंत आनंदमें हैं। तीन समुद्र, और हिमवान् पर्वततकके प्रदेशमें स्थित प्रजायें बार-बार उनकी सेवामें उपस्थित होती हैं। शूर वीरगण भरतेश्वरकी सेवा करते हैं, स्वयं भरतेश विलासमें मग्न हैं। रोज जलक्रीड़ा, विवाह, मंगल आदिका तांता लगा हुआ है। क्षाम, दुष्काल, आग, उत्पात, पूर वगैरहकी कोई बात ही भरतेशके देशोंमें नहीं है। चोटी पकड़नेका कार्य वहाँ कामुकोंमें है, सज्जनोंमें नहीं है। किसीको मारनेकी क्रिया शतरंजके खेलमें है मनुष्योंमें नहीं है। बोल व चालमें च्युत होनेकी क्रिया वहांपर विरही जनोंमें पाई जाती थी, परन्तु लोग अपनी वृत्तिमें कभी वचनभंग नहीं करते थे। जैसा बोलते वैसा चलते थे। दण्डका ग्रहण वहाँपर वृद्ध लोग करते थे, किसीको मारने-पीटनेके लिए दण्डका उपयोग वहां कोई नहीं करते थे। जड़ता (आलस्य) वहाँपर कामसेवनके अन्तमें व निद्रामें थी, परन्तु लोगोंमें आलस्यका लेश भी नहीं था। प्रत्येक नगरमें प्रजायें सुखसे अपने समयको व्यतीत करती हैं। जगह-जगह शास्त्राभ्यासके मठ, ब्राह्मणोंके अग्रहार बने हुए हैं, जहां मंत्र पाठ वगैरह चल रहे हैं। गंधकुटीका विहार वहाँ बार-बार आता है और चारणमुनियोंका भी आगमन वहाँपर बारम्बार होता है। एवं उस सुखमय राज्यमें उत्तम जातिके घोड़े व हाथी उत्पन्न होते रहते थे। जहाँ-

वहाँ रत्नोंकी प्राप्ति मनुष्योंको होती है। और भूमिमें गड़ी हुई सम्पत्ति मिलती है। जंगलमें सर्वत्र श्रीगंध व कर्पूरलतायें हैं। नगरमें सर्वत्र त्यागी व भोगियोंकी सम्पदाएँ भरी हुई हैं। बड़े-बड़े घड़े में भरकर दूध देनेवाली गायें, विश्व को मोहित करनेवाली देवियाँ, नील कमल, कमलसे युक्त तालाब, गंधशालीसे युक्त खेत, सुन्दर व सुगन्धित पवनोंसे युक्त उपवन आदिसे वहाँ विशिष्ट शोभा है। नगरमें अन्नछत्र, धर्मशाला व मार्गमें कच्चे नारियलका पानी, शक्कर व प्याऊकी व्यवस्था है। भिन्न-भिन्न वार, तिथि आदि के समय व्रत आराधना वगैरहके साथ मुनिभुक्ति, ब्राह्मण भोजन, सन्मान आदि हो रहे हैं। आज कलियुग होनेसे देव व व्यंतर मनुष्योंको दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं, परन्तु भरतेशका युग कृतयुग था। उस समय देवगण, मनुष्योंके साथ हिल-मिलकर रहते थे, क्रीड़ा करते थे। ज्ञानकल्याणके लिए, निर्वाण कल्याणके लिए जब वे देवगण इस धरा-तलपर उतरते हैं, तो मनुष्य उनको देखते हैं एवं उनके साथ मिलकर भग-वंतकी पूजा करते हैं, उस समयके उत्सवका क्या वर्णन किया जाय ? भूमि व स्वर्गका व्यवहार चल रहा था, सर्वत्र सम्पत्तिका साम्राज्य था। भरतेश को राज्यपालनकी चिंता बिलकुल नहीं है। जिस प्रकार मन्दिरके भारको भीत, खम्भे वगैरहके ऊपर सौंपकर भगवान् अलग रहते हैं, उसी प्रकार भरतेश षट्खंडभारको अपने आप्त मंत्रिमित्रादिकोंको सौंपकर स्वयं सुख में हैं। बाहिर सेना व प्रजाओंको जैसा देखते हैं तो अंतरंगमें अपनी देवियोंके साथ आनन्द भी मानते हैं परन्तु किसीके यहाँ निमंत्रणसे भोजन को जानेवालेके समान। प्रजाओंको वे देखते हैं, जैसे कोई मुनि तपोवनको देखता हो। अपने पुत्रोंकी ओर उनका उतना ही मोह है जितना कि एक मुनिका अपने शिष्योंपर होता है। खजाने, भंडार आदिको वे उसी दृष्टि-से देखते हैं जैसे कोई वेतनभोगी भंडारी देखता हो। लोग तो उस निधि को सम्राट्की कहते हैं। परन्तु स्वयं सम्राट् उसे अपनी नहीं समझते हैं। षट्खंड पदको वे एक पुण्यसम्बन्धसे प्राप्त एक मेलाके समान देख रहे हैं। उसे अपनेसे भिन्न समझकर भोग रहे हैं।

भरतेश स्वयं धारण किए हुए शरीरको भी जब अपनेसे भिन्न समझते हैं तो इतर वैभवके जालमें वे कैसे फँस सकते हैं? परमात्मारसिकके रहस्यको कौन जाने ? पुण्यफलको अनुभव करके कम कर रहे हैं। एवं आत्मलावण्यका साक्षात्कार कर रहे हैं। फिर उनको मुक्ति प्राप्त करना कोई गण्य है ? अपितु सरल है। इस प्रकारकी वृत्तिमें वे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

कभी-कभी समयको जानकर भरतेश्वर ९६ हजार स्त्रियोंकी क्रीड़ामें रत होकर उनको तृप्त करते हैं एवं तृप्त होते हैं। भरत चक्रवर्तीके रानीवासमें ३२००० विद्याधर स्त्रियाँ हैं, ३२००० भूमिगोचरी स्त्रियाँ हैं, एवं ३२००० म्लेच्छभूमिकी स्त्रियाँ हैं। इस प्रकार ९६००० देवियाँ हैं। सब स्त्रियोंको एक-एक सन्तान है। परन्तु पट्टरानीको कोई सन्तान नहीं है। इसलिए उसके शरीरमें प्रसवक्रियाजन्य हानि नहीं होती है। उसका सौन्दर्य ज्योंका त्यों बना रहता है। अतएव भरतेश्वरको पट्टरानीमें ही अधिक सुख मालूम होता है। योनियोंके भेद जो कहे गये हैं उन सबमें सन्तान की उत्पत्ति होती है, परन्तु शंखयोनिमें सन्तानकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह पट्टरानी शंखयोनीकी है। उसे प्रसववेदनाका दुःख नहीं है, वह महान् सुखी है।

सभी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करनेपर भी पट्टरानीके साथ क्रीड़ा न करनेपर उस सार्वभौमको तृप्ति नहीं होती है। लोककी सर्व सम्पत्ति एक तरफ, वह सुन्दरी एक तरफ। इतनी अद्भुत सामर्थ्य उस सुभद्रादेवीमें है। षट्खंडके समस्त पुरुषोंमें जैसे चक्रवर्ती अग्रणी है, उसी प्रकार षट्खंडकी समस्त स्त्रियोंमें वह पट्टरानी अग्रणी है। जैसे देवेन्द्रको शची, धरणेंद्रको पद्मावती प्राप्त हुई, उसी प्रकार पट्टरानी भरतेश्वरको प्राप्त है। पट्टरानी आदिको लेकर ९६००० रानियोंके साथ सुखको अनुभव करते हुए बहुत समय व्यतीत किया। स्त्रियोंके शरीरमें कुछ शिथिलता आती है, परन्तु भरतेशके शरीरमें तो जवानी ही बढ़ती जाती है। पवनाभ्यास, योगाभ्यास व ध्यानमार्गको जानकर जो सदाचरणसे रहते हैं उनके शरीर का तेज कभी कम नहीं होता है। रोग भी उनको नहीं छूता है, एवं नवयौवन ही बढ़ता जाता है, प्राणवायु व अपानवायुको वे वशमें करते हैं। एवं वीणानादके समान नित्य हंसनाथका दर्शन करते हैं, उनको यह क्या अशक्य है?

इस प्रकार ध्यान, योग व वायुधारणकी सामर्थ्यसे काली मूछोंसे शोभित होते हुए २७-२८ वर्षके जवानके समान वे सदा मालूम होते हैं। जिन स्त्रियोंपर जरा बुढ़ापेका असर हुआ उनको मंदिरमें ले जाकर आर्यिकाओंसे व्रत दिलाते थे एवं उनके पास ही उनको छोड़ते थे एवं भरतेश नवीन व जवान स्त्रियोंके साथ आनन्द करते थे। बूढ़े घोड़ेको हटाकर नवीन-नवीन घोड़ेका उपयोग जिस प्रकार किया जाता है, उसी प्रकार बूढ़ी स्त्रियोंको मंदिरमें भेजकर जवान स्त्रियोंसे विवाह कर लेते थे। वे स्त्रियाँ स्वयं सम्राट्की जवानी व अपने बुढ़ापेको देखकर लज्जित

होती थीं। एवं स्वयं मंदिर चली जाती थीं। उसी समय राजा लोग सम्राट्के योग्य जवान कन्याओंको लाकर देते थे। जो स्त्रियाँ व्रत लेनेके लिए जानेकी अनुमति मांगती थीं उनको हँसकर सन्मति देते थे। एवं उनके योग्य जवान कन्याओंको ला देनेपर हँसकर पाणिग्रहण कर लेते थे। बूढ़ी स्त्रियाँ कभी-कभी न कहकर एकदम मंदिर जाती थीं और उसी समय अकस्मात् नवीन कन्यायें विवाहके लिए आती थीं तो गुरु हंसनाथ की महिमा समझकर उनको स्वीकार करते थे। अच्छी-अच्छी कन्याओं-को देखकर आसपासके राजा सार्वभौमके योग्य वस्तु समझकर ला देते थे तब भरतेश उनके साथ विवाह कर लेते थे। देश-देशसे प्रतिनित्य कन्यायें आती रहती हैं। रोज भरतेश्वरका विवाह चल रहा है। इस प्रकार वे नित्य दूल्हा ही बने रहते हैं। उनके वैभवका क्या वर्णन किया जाय? पुरानी स्त्रियाँ जाती हैं, नवीन स्त्रियाँ आती हैं। सारांश यह है कि हर समय ९६००० स्त्रियाँ उनको बनी रहती हैं। कम नहीं होती है। पुरुषोंके साथ दीक्षा लेनेवाली कन्यायें एवं दीक्षा लेनेवाले कुमारोंको छोड़कर षट्खंड दिग्विजयको करनेके बाद सम्राट्को एक कम ९६००० संतान होनी ही चाहिए। पट्टरानी विद्याधर लोककी है, वंध्या है, स्त्रीरत्न है। कभी काम ज्यादा शिथिल वगैरह नहीं होती है।

ऐसी मदोन्मत्त जवान स्त्रियोंके साथ भरतेश यथेच्छ क्रीड़ा करते रहे, जैसे पानीमें प्रवेश कर मदोन्मत्त हाथी करता हो। श्रृंगार और सौन्दर्यसे युक्त स्त्रियोंमें वे राजमोही ऐसे लीन हो गये थे जैसे कि पुष्प वाटिका में भ्रमर आनन्दित होता है। उनके स्पर्श करने मात्रसे स्त्रियोंको रोमांच होता है। उनको परवश कर देते हैं, मूच्छित करते हैं एवं पुनः आनन्दसे जागृत करते हैं। भिन्न-भिन्न स्त्रियोंकी इच्छानुसार रमण कर तदनन्तर अपनी इच्छानुसार उनको मोहित करते हैं। भरतराजेन्द्रका क्या गुण वर्णन करें? हजारों स्त्रियोंको हजारों रूपोंको धारण कर वे एक साथ भोगते हुए इन्द्रजालियाके समान मालूम होते थे। उन अनुपम सौन्दर्ययुक्त स्त्रियोंके शरीर सम्पर्कसे उत्पन्न सुखको अनुभव करते हुए भरतेश्वर सातिशय पुण्यफलको भोग रहे हैं एवं उसको आत्मप्रदेशसे निकाल रहे हैं। जिस प्रकार अनेक देशके लोग आकर किसी मंदिरकी पूजा करते हों, उसी प्रकार हजारों स्त्रियाँ भरतेशकी सेवा करती हैं तो उसे वे आनन्दसे ग्रहण करते थे। वहाँ एक मेला-सा लग जाता था। जिस प्रकार पके हुए एक फोड़ेको दाबकर एक धीर उसका पीप निकालकर बाहर कर देता है उसी प्रकार इन स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर पुंवेदकर्मरूपी फोड़ेका वे पीप

निकाल रहे थे। अर्थात् पुंवेदकर्मको पिघला रहे थे। कसरतके द्वारा अपने शरीरके आलस्यको दूर कर प्रसन्नतासे जैसे मनुष्य रहता है, उसी प्रकार माधुर्यवचनसे युक्त स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर हंससमाधिमें वे बने रहते थे। भेदविज्ञानीका सुख सभी कर्मनिर्जराके कारण है। वह दूसरोंको दीखने-वाली कला नहीं है। केवल स्वसंवेदनागम्य है। स्त्रियोंके स्तनपर पड़ा हुआ, योगी रह सकता है। पर्वतकी शिलाके ऊपर स्थित मोही हो सकता है। यह सब परिणामका वैचित्र्य है। ललित आत्मयोगके रहस्यको कौन जाने ? अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्द करते हुए, अपने साढ़े तीन करोड़ बंधुओंको संतुष्ट करते हुए, षट्खंडसे सत्कीर्तिको पाते हुए सार्वभौम भरत अयोध्यामें आनन्दसे समय व्यतीत कर रहे हैं। चर्मचक्षुके द्वारा अपने राज्यको देखते हुए एवं ज्ञानचक्षुसे निर्मल आत्माको देखते हुए राजा भरत अपार आनन्दके साथ राज्य पालन कर रहे हैं। यह उनकी राज्य-पालन व्यवस्था है।

भरतेश्वरका पुण्य असदृश है। अप्रतिम आनन्द, अतुल भोग, अद्वितीय वैभवके होते हुए भी भरतेश उसे हेयबुद्धिसे अनुभोग करते हैं। केवल कर्मोंका निर्देश है, उसे भोगकर ही पूर्ण करना चाहिए। उसके बिना उन कर्मोंका अन्त भी कैसे होगा। शरीर भोग, वैभवादिक सभी कर्मजनित सुख-साधन हैं। इनकी हानि गृहस्थाश्रममें तो दानसे या भोगसे होती है। सर्वथा अन्त तो तपसे ही होता है। उसके लिए योग्य समयकी आवश्यकता होती है। अतः भरतेश सांसारिक जीवनमें वैभवको दान व भोगके द्वारा क्षीण कर रहे हैं। परन्तु विशाल भोगोंके बीचमें रहते हुए भी वह भावना करते हैं कि:—

हे चिदम्बरपुरुष ! अनुपम सुज्ञान राज्यको दशों दिशाओं में व्याप्त करते हुए एवं नवीन कांति व रूपको धारण कर मेरे हृदय में सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप गरीबोंके आधार हैं। विद्वानोंके मनोहर हैं। विवेकियोंके मान्य हैं। इसलिए हे पारसके समान इच्छित फल देनेवाले निरंजन सिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति राज्यपालन संधिः

—०—

भरतेशनिर्वेगसंधिः

भरतेश्वरकी कीर्ति त्रिभुवनमें व्याप्त हो गई है। भरतेशके तेजके सामने सूर्य भी फीका पड़ता है। इस प्रकारकी वृत्तिसे सम्राट् राज्यका पालन कर रहे हैं। चतुरंगके खेलके सिवाय लोकमें युद्धक्षेत्रमें उसको प्रतिभट करनेवाले वीर नहीं हैं। समुद्र स्वयं अपने तटको दबाकर जाता है, अपितु मदसे लोकमें कोई उसे दबानेवाले नहीं हैं। उसकी वीरतासे भिन्न-भिन्न देशके राजा पहिले उनके वशमें आ गये हैं। अब वे भरतके शृंगार व उदार गुण के लिए भी मोहित हो गये हैं। एवं सदा उनकी सेवा करते हैं। भरतेशके सौंदर्य, शृंगार, बुद्धिमत्ता एवं गांभीर्यके लिए पाताल लोक, नरलोक, सुरलोकमें प्रसन्न न होनेवाले कोई नहीं हैं। अंतरंगमें पंचसंपत्ति और बाहर अतुल भाग्यके साथ साम्राज्य वैभव भोगको भोगते हुए उन्होंने बहुत आनन्दके साथ बहुत काल व्यतीत किया।

भरतेश्वरका आयुष्य चौरासी लाख पूर्व वर्षोंका था। ७० खरब व छप्पन अर्बुद वर्षोंका एक पूर्व होता है। ऐसे ८४ लाख पूर्व वर्षोंकी स्थिति भरतचक्रवर्ती की थी। इतने दीर्घ समय तक वे सुखका अनुभव कर रहे थे। योगकी सामर्थ्यसे शरीरका तेज बिलकुल कम नहीं हुआ। जवानीकी ही कोमल मूँछें, बाल सफेद नहीं होते। सारांश यह है कि भरतेश सदा भरजवानीसे ही भोगको भोग रहे हैं। धन्य है। यह क्या प्राणायामकी सामर्थ्य है? अथवा ब्राह्मणोंके आशीर्वादका फल है या जननीके आशीर्वादका फल है, अथवा जिनसिद्ध या हंसनाथ परमात्माकी महिमा है, न मालूम क्या, परन्तु उनकी जवानीमें कोई कमी नहीं होती है। "चिंता ही बुढापा है, संतोष ही यौवन है" इस प्रकार कहनेकी परिपाटी है। सचमुचमें भरतेशको कभी किसीकी चिंता नहीं है, सदा आनन्द ही आनन्द है। फिर बुढापा कहाँसे आ सकता है! बूढी स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे बुढापा जल्दी आ सकता है। सुन्दरी जवान स्त्रियोंके साथ सदा भोग करने वाले भरतेशको बुढापा क्योंकर आ सकता है? हमेशा जवानी ही दिखती थी।

राजगण छाँट छाँटकर उत्तमोत्तम कन्याओंको लाकर भरतेश्वरके साथ विवाह करते थे। उनको भरतेश भोगते थे। जब वे स्त्रियाँ वृद्धत्वको प्राप्त होतीं तो उनको छोड़कर नवीन जवान स्त्रियोंके साथ भोग करते थे।

उन तरुणियोंके साथ संभोग करते हुए एवं आनन्द मनाते हुए शरीरके

मदको बुद्धिमान भरतेश कम करते थे। एवं इसी प्रकार उस परमात्माके दर्शनसे कर्मकी निर्जरा करते थे। अंतःपुरकी देवियां यदि आपसमें आनंदसे खेलना चाहें तो उनको भरतेश खेलकूदमें लगाकर स्वयं राज-दरबारमें पहुँचकर वहांपर राजाओंको प्रसन्न करते थे।

एक दिनकी बात है। भरतेश बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंके दरबारमें सिंहासन पर विराजे हुए हैं। उस समय एक घटना हुई।

वहांपर जो मुखचित्रक था, उसने भरतेशको दर्पण दिखाया। शायद इसलिए कि सम्राट् देखें कि अपना मुख बराबर है या नहीं? भरतेशने दर्पणमें अच्छी तरह देखा। मुख थोड़ा-सा झुका हुआ-सा मालूम हुआ। शायद भरतेशने विचार किया कि इस राज्यपालनकी अब जरूरत नहीं है। बारीकीसे देखते हैं तो भरतेशके कपालमें एक झुरकी देखनेमें आई। शायद वह मुक्तिकांताकी दूती हो तो नहीं। उसे मुक्तिलक्ष्मीने भरतेशको शीघ्र बुलानेके लिए भेजी हो, इस प्रकार वह मालूम हो रही थी।

भरतेशने उसी समय विचार किया कि ध्यानयोगके करनेवालेके शरीरमें इस प्रकार अन्तर हो नहीं सकता है। फिर इसमें क्या कारण है? आश्चर्यके साथ जब उन्होंने अवधिज्ञानका उपयोग किया तो मालूम हुआ कि आयुष्य कर्म बहुत कम रह गया है। अब मुझे मुक्ति अत्त-समीप है, कल ही मुझे मोक्षसाम्राज्यका अधिपति बनना है। इस प्रकारका योग है। घातिया कर्मोंका तो आज ही नाश होना है। इस प्रकार उनको निश्चित रूपसे मालूम हुआ।

भरतेश अन्दरसे हँसते हुए ही विचार करने लगे कि ओहो! मैं भूल ही गया हुआ था, अब इस झुरकीने आकर मुझे स्मरण दिलाया। अच्छा हुआ। चलो, आगेका कर्तव्य करना चाहिये।

संसार सुखकी आशा विलीन हुई। अब सम्राट्के हृदयमें वैराग्यका उदय हुआ। वह विचार करने लगा कि मुक्ति अब अत्यंत निकट है। संसार और भोगमें कोई सार नहीं है। जब शरीरमें जर्जरितदशा देखनेमें आई तो अब कन्याओंके साथ क्रीडा करना क्या उचित है? बस रहने दो, मेरे लिए धिक्कार हो। तपश्चर्यारूपी दुग्धको सेवन न कर केवल मुग्धोंके समान विषयविषको सेवन करते हुए मैं आज पर्यंत दग्ध हुआ। हाय! कितने दुःखकी बात है?

"मेरे आचारके लिए धिक्कार हो! तपश्चर्यारूपी क्षीरसमुद्रमें डुबकी

न लगाकर जड़देहसुखरूपी लवणसमुद्रको पीते हुए फिर भी प्यासा ही प्यासा रहा। हाय! कितने दुःखकी बात है। ध्यानरूपी अमृतको पान न कर आत्मानन्दका अनुभव नहीं किया। केवल शरीरके ही सुखमें मैं मग्न हुआ। देखो! मेरे सहोदर तो मूंछ आनेके पहले ही दीक्षा लेकर चले गये एवं अमृतपदको पा गये। परन्तु मैंने ही देरी की। सहोदरोंकी बात क्यों? मेरे शरीरसे पैदा हुए मेरे पुत्रोंने दीक्षा लेकर मुक्तिस्थानको प्राप्त किया। इससे अधिक मेरी मूर्खता और क्या हो सकती है? मेरे पिताजी, श्वसुर, मामा, साले आदि सभी आप्त आगे बढ़ गये। मैं अकेला ही पीछे रहा। हाय! अत्यन्त खेदकी बात है। अच्छा! वे आगे गये। मुझे भी मार्ग है, मैं भी जाऊँगा। मुझे तपश्चर्याका योग है। तपश्चर्याके योग्य स्वपरतत्वका ज्ञान है। एवं विपुल आत्मयोग है। उसके द्वारा कर्मको नष्ट करके मैं मुक्तिको जाऊँगा", इस प्रकार सम्राट्ने दृढ़ निश्चय किया।

बुद्धिसागर मन्त्रीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! आप यह क्या विचार करने लगे हैं। इस षट्खंडाधिपत्यसे बढ़कर सम्पत्ति कहाँ है? इसलिए आप इस सुखको अनुभव करो। तपके तापकी अभी जरूरत ही क्या है! आपको यहाँपर किस बातकी कमी है। धरणीतलपर स्थित समस्त शासक राजा आपके चरणोंमें मस्तक रखते हैं। मनुष्य लोकके सर्व श्रेष्ठ श्रीमन्तोंको छोड़कर अन्य विचार आप क्यों कर रहे हैं राजन्! छोड़ो इस विचारको।

सम्राट्ने कहा कि मंत्री! क्या उस दिन पिताजी दीक्षा लेकर चले गये, क्या उनके पास कुछ भी सम्पत्ति नहीं थी? इसलिए बुद्धिमानके लिए यह शरीर स्थिर नहीं है। इसलिए अपना हित सोच लेना चाहिए। यह तो बिलकुल ठीक बात है कि जिनके हृदयमें वैराग्य नहीं है, केवल तपश्चर्याके लिए जाते हैं तो वह तप भारभूत है। परन्तु ज्ञानी विरक्तिके लिए वह तपश्चर्या गुड़के अन्दर प्रविष्ट होनेवालेके समान मधुर है। ज्ञान-रहित आत्माके कर्म पत्थरके समान कठिन हैं। परन्तु ज्ञान प्राप्त होनेके बाद वह कठिन नहीं हैं, अत्यन्त मृदु हैं। षट्खण्डको जीतनेसे क्या होता है। जबतक कर्मके तीन काण्डोंको यह जीत नहीं लेता है तबतक तीन रत्नों (रत्नत्रय-सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र) को ही ग्रहण करना चाहिए। इन चौदह मणियोंसे क्या प्रयोजन है? सम्राट् जब बोल रहा था तो उस दरबारमें ऐसा मालूम हो रहा था कि अमृतकी वर्षा हो रही हो। मन्त्रीने कहा कि स्वामिन्! हम तो आपके विवेकके प्रति मुग्ध हुए हैं। अमृतके

सामने गुड़की कीमत ही क्या है ? बुद्धिमत्ता, वीरता आदिमें आपकी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन है ? आपकी बुद्धिको देखकर बुद्धिमान लोग ज्ञानी लोग वीरपुरुष सभी प्रसन्न होते हैं राजेन्द्र ! आपका शपथ है, मुझ सरीखा मूर्ख उसे क्या जान सकता है। मैंने अज्ञानसे एक बात कही ! आप क्षमा करें। आपने जो विचार किया है वही युक्त है। मेरे अपराधको आप भूल जायें। इस प्रकार प्रार्थना कर बुद्धिसागर अपने स्थानपर बैठ गया।

सम्राट्ने अपने पुत्रोंको बुलाया। बड़े भैया ! "इधर आओ इस राज्य-को तुम ले लो, मुझे दीक्षाके लिए भेजो" इस प्रकार कहते हुए अर्ककीर्ति कुमारको आलिंगन देते हुए भरतेशने कहा ! उसी समय आंसू बहाते हुए अर्ककीर्ति मूर्छित हो गया। शीतलोपचारसे पुनः जागृतकर सम्राट्ने कहा कि बेटा ! घबराते क्यों हो, क्या क्षत्रिय लोग डरते हैं ? दुःख किस बातके लिए करते हो ? मुझे धैर्यके साथ भेजो।

अर्ककीर्ति कुमारने हाथ जोड़कर कहा कि पिताजी, क्या हाथीका भार कलभ (हाथीका बच्चा) धारण कर सकता है ? आपकी सामर्थ्यसे प्राप्त इस राज्यभारको मैं कैसे उठा सकता हूं। इसलिए ऐसा विचार क्यों कर रहे हैं ?

उत्तरमें सम्राट्ने कहा कि बेटा ! तुम इस राज्यभारको धारण करने-के लिए सर्वथा समर्थ हो इस बातको जानकर ही मैंने सब कुछ कहा है। बेटा ! क्या तुम भूल गये ! जब मैं उस दिन वृषभराजको अपनी गोदपर लेकर बैठा था, उस समय उसे भार समझकर तुमने अपनी गोदपर लिया, फिर आज इस राज्यभारके लिए क्यों तैयार नहीं होते ?

अर्ककीर्ति कहने लगा कि पिताजी ! बड़ी-बड़ी बातें करके मुझे आप फुसला रहे हैं एवं अचलित शिवपदके प्रति आपका ध्यान है और मुझे इस मलिन राज्य पदमें डाल रहे हैं, क्या यह न्याय है ? आज पर्यन्त आपको जो इष्ट थे उन्हीं अन्न, वस्त्र, आभूषणोंसे आपने मेरा पालन किया, परन्तु आज आपको जिस राज्यसे तिरस्कार है ऐसे राज्यको मुझे क्यों प्रदान कर रहे हैं ? आज पर्यन्त हमारे इष्ट पदार्थोंको बार-बार देकर हम लोगोंका पालन-पोषण किया। परन्तु आज तो आप हमें व आपको जो इष्ट नहीं है, ऐसे राज्यको प्रदान कर रहे हैं तो हमने आपको क्या कष्ट दिया था ?

बेटा ! तुम बोलनेमें चतुर हो। इस बातको मैं जानता हूं। यह

राज्य मूर्खके लिए कष्टदायक है, बुद्धिमान विवेकीके लिए कष्ट नहीं है इष्ट ही हैं। इसलिए इस पट्टके लिए सम्मति दो देरी मत करो। इस प्रकार सम्राट्ने कहा।

उत्तरमें कुमारने निर्भीक होकर कहा कि स्वामिन्! आप तो मोक्ष राज्यको चाहते हैं? और हमें तो इस भौतिक राज्यमें रहनेको अनुमति दे रहे हैं, इसे हम कैसे मान सकते हैं। इसलिए मुझे भी दीक्षा ही शरण है, मैं भी आपके साथ ही आता हूं।

पुनः सम्राट्ने कहा कि बेटा! मेरे पिताजीने मुझे राज्य देकर दीक्षा ली। और मैं तुमको राज्य देकर दीक्षित होऊं यही उचित मार्ग है, इसे स्वीकार करो। कुछ समय रहकर बादमें हमारे समान तुम भी तपश्चर्याके लिए आना। बेटा! संसारमें राज्य सुखको आनन्दसे भोगकर बादमें अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा लेनी चाहिए व मुक्तिराज्यको प्राप्त करना चाहिए। यही हमारा आनुवंशिक कुलाचार है। क्या इसे तुम उल्लंघन करते हो? इसलिए मुझे आगे भेजो, बादमें तुम आना। यही तुम्हारा कर्तव्य है।

अर्ककीर्तिकुमार निरुपाय होकर कहने लगा कि पिताजी! ठीक है, कपालमें एक झुरकीके दिखनेसे क्या होता है। इतनी गड़बड़ी क्या है? कुछ दिन ठहरिये। बादमें दीक्षा ले सकते हैं। इसलिए अभी जल्दी नहीं करें। उत्तरमें सम्राट्ने कहा कि ठीक है! रह सकता हूं। परन्तु आयुष्य कर्म तो बिलकुल समीप आ पहुंचा है। आज ही घातियाकर्मोंको नाश करूंगा। और कल सूर्योदय होते ही मुक्ति प्राप्त करनेका योग है।

इस बातको सुनते ही अर्ककीर्तिके हृदयमें बड़ा भारी धक्का लगा। एकदम स्तब्धसा रह गया। परन्तु सम्राट्ने यह कहकर उसे बोलने नहीं दिया कि यदि तुमने फिरसे कुछ कहा तो मेरी सौगन्ध है तुम्हें! यह राज्य तुम्हारे लिए है, युवराजपद आदिराजके लिए है और बाकीके कुमारोंको छोटे-छोटे राज्योंको देता हूं। इस प्रकार कहते हुए अपने दूसरे पुत्रोंके तरफ राजाने देखा।

वृषभराज! तुम्हें किस राज्य की इच्छा है? बोलो। उत्तरमें उस कुमारने निश्चयपूर्वक कहा कि मुझे मोक्ष नामक राज्यकी इच्छा है। मैं तो पिताजीके साथ ही आऊंगा। इस राज्यमें तो हरगिज नहीं रहूंगा।

हंसराजाको बुलाकर पूछा गया तो उसने संशयरहित होकर कहा कि मैं सिद्धलोकके सिवाय और किसी राज्यसे प्रसन्न नहीं हो सकता हूं।

यह बात मैं हंसनाथके साक्षीपूर्वक कहता हूं। बाकी कुमारोंने भी सामने आकर निश्चल चित्तसे कहा कि स्वामिन् ! हम तो आपके पास ही रहेंगे ! यहां नहीं रह सकते हैं।

सम्राट् भरतने सोचा कि सबको समझाकर सांत्वना देनेके लिए मेरे पास समय नहीं है, अब जो होगा सो होगा। इस प्रकार सिंहासनसे उठकर खड़े हुए। अर्ककीर्तिकुमारको हाथ पकड़कर सिंहासनपर बैठा दिया। अपने कीरीटको उतारकर उसके मस्तक पर रखा। उपस्थित सर्व जनताने जयजयकार किया। कंठहारको धारण कराकर नवीन पट्टको बांध दिया एवं घोषित किया कि तुम ही अब इस राज्यके अधिपति हो। तिलक लगाकर उसके पट्टाभिषेकका कार्य पूर्ण किया। पास ही स्थित छोटेसे सिंहासनपर आदिराजको बैठा दिया। एवं रत्नहार पहनाकर तिलक लगाया, घोषित किया कि यह युवराज हैं। अन्तमें कहा कि बेटा ! प्रजा है, परिवार है, देश है, राज्य है। सबके मनको जानकर उनको प्रसन्न करके राज्यका पालन करना यह तुम्हारा कर्तव्य है। अब मुझे बोलनेके लिए समय नहीं है। इस प्रकार सर्व पुत्रोंको संकेत किया।

वे कुमार आंसू बहा रहे थे। इधर सम्राट्ने राजसमूहको देखकर कहा कि आप लोग अब मेरी चिन्ता न करें। अब इन कुमारोंके प्रति ध्यान देकर उनके अनुकूल होकर रहें। इस प्रकार सबके प्रति एकदम इशारा किया।

दुनियाका झंझट दूर हो गया। अब भरतेशको किसी बातकी चिन्ता नहीं रही। अपनी स्त्रियां, मंत्री, मित्र वगैरह किसीका ध्यान नहीं रहा परमात्माका स्मरण करते हुए वह उसी क्षण आगे बढ़ गया। अर्ककीर्ति आदिराज आदि कुमार आगे बढ़कर उनके चरणोंमें पड़े और आंसू बहाते हुए उनको आगे बढ़नेसे रोकने लगे। पितृवियोगको कौन सहन कर सकते हैं ? क्या भरतराजेन्द्रने उन रोते हुए पुत्रोंकी ओर देखा ? नहीं ! अब तो उनके हृदयमें मोहका अंश बिलकुल नहीं है। उन पुत्रोंको रोते हुए ही छोड़कर मदोन्मत्त हाथीके समान आनन्दके साथ तपोवनकी ओर बढ़े। दरबारमें स्थित राजा प्रजा और परिवार तो उन्हींके साथ आगे बढ़कर आये एवं सम्राटके सामने पालकी लाकर रख दी। भरतेश आत्मलीलाके साथ उसपर आरूढ हुए।

सम्राट् दीक्षावनकी ओर चले गये, यह मालूम होते ही अंतःपुरमें एकदम हाहाकार मच गया। धूपमें पड़े कोमल लताके समान रनिवासमें

स्थित देवियाँ मूर्छित होकर गिर पड़ीं। उसी समय उनका प्राण ही निकल जाता। परन्तु जमीनिक सम्राट् भाग्य शरीरको धारण किए हुए हैं। उन्हें हम लोग देख सकती हैं, इस अभिलाषासे वे आकुलित हो रही थीं। हाय! षट्खंडाधिपति सम्राट्का भाग्य देखते-देखते अदृश्य हो गया? इस संसार के लिए धिक्कार हो। इस प्रकार वे स्त्रियाँ दुःख कर रही थीं। लोग कहते थे कि षट्खंडाधिपतिकी बराबरी करनेवाले लोकमें कोई नहीं है, इसकी सम्पत्ति अतुल है। तथापि एक क्षणमें वह सम्पत्ति अदृश्य हो गई, आश्चर्यकी बात है इस प्रकार वे दुःख करने लगीं। हमेशा पतिदेव हमसे कहते थे कि आयुष्कर्मका क्षय होनेके बाद कौन रह सकता है, उसी बात को आज उन्होंने प्रत्यक्ष करके बताया। जीवनको बिगाड़कर वे नहीं चले गये, अपितु कल प्रातःकाल ही मुक्ति जानेवाले हैं यह सूचित कर चले गये हैं। इसलिए हमें भी दीक्षा ही गति है। अब सब लोग उठो, यह कहती हुई सभी देवियाँ चलनेके लिए तैयार हुईं। यदि सम्राट् महलमें होते तो हम लोग भी महलमें रहकर सुखका अनुभव करती थीं। परन्तु अब वे तपोवनमें चले गये तब यहाँपर रहना उचित नहीं है। वे जिस जंगलमें प्रविष्ट हुए वही हमारे लिए परम सुखका स्थान है।

हमारी आँखें व मनकी तृप्ति जिस तरह हो उस तरह हमने सुखका अनुभव किया। अब तपश्चर्या कर इस स्त्री पर्यायको नष्ट करना चाहिए, एवं स्वर्गलोकको प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकारके निश्चयसे उदासीन वृद्ध स्त्रियाँ अंतःपुरकी रानियाँ वगैरह दुःखमें धैर्य धारण कर दीक्षा लेने का निश्चय किया। जाते समय अपने पुत्रोंको आशीर्वाद दिया कि बेटा! आप लोग अपने पिताके समान ही सुखसे राज्य पालन कर बादमें मोक्ष सुखको प्राप्त करना! हम लोग आज सुखके लिए दीक्षा वनमें जाती हैं। इस प्रकार कहती हुई आगे बढ़ीं।

कुसुमाजी और कुन्तलावती रानी भी अपने रोते हुए पुत्रोंको आशीर्वाद देकर धैर्यके साथ आगे बढ़ीं। पुत्रोंने भी विचार किया कि ऐसे समयमें इनको रोकना उचित नहीं है। अपने पतिके हाथसे ही इनको दीक्षा लेने दो। इस विचारसे उन माताओंको पालकीपर चढ़ाकर रवाना किया। जो भाई दीक्षा लेनेके लिए गये थे उनकी स्त्रियाँ भी दीक्षाके लिए उद्यत हुईं। उनको भी माताओंके साथ ही पालकियोंमें भेजा।

नगरमें सर्वत्र स्त्रियाँ अपने घरोंमें ऊपरकी माड़ीपर चढ़कर रो रही हैं, प्रजा परिवारमें शोकसमुद्र ही उमड़ पड़ा है। स्त्रियाँ पीछेसे आ रही

हैं, सम्राट् आगेसे जा रहे हैं। लोग आश्चर्यचकित होकर इस दृश्यको देख रहे हैं।

हाय! हमारे स्वामीकी सम्पत्ति तो इन्द्रधनुषके समान दिखकर अदृश्य हो गई। संसारी प्राणियोंके सुखके लिए धिक्कार हो, इस प्रकार नगरमें सर्वत्र चर्चा हो रही थी।

बुढ़ापा न पाकर तुमने आजतक जीवन व्यतीत किया, अपनी स्त्रियोंको जरा भी दुःख कभी नहीं दिया। परन्तु आज तो चुपचाप जंगलको जा रहे हो, कितने आश्चर्यकी बात है नगरमार्गसे जाते हुए कभी आपको हम देखती हैं तो हमें स्वर्गसुखका ही आनन्द मिलता है। हाय! परन्तु अब तो हमारी सम्पत्ति चली जा रही है। स्त्रियाँ, पुत्र व पुत्रवधू आदिको तुमने षट्खंडको वश कर प्राप्त किया था, अब तो उन सबको लेकर आप तपके लिए जा रहे हैं। हाय! इस प्रकार वहाँ स्त्रियाँ दुःख कर रही थीं। शोक करनेवाले नगरवासियोंको न देखकर सम्राट् अपने निश्चयसे परिवारके साथ भयंकर जंगलमें पहुँचे। वहाँपर एक चन्दनका वृक्ष था। उसके मूलमें एक शिलातल था वहाँपर भरतेश पालकीसे उतरे, वहाँ उपस्थित लोगोंने जय-जयकार किया। उस शिलातलपर खड़े होकर एक बार सबकी ओर दृष्टि पसार कर देखा। म्लानमुखसे उन लोगोंने नमस्कार किया। पासमें अर्ककीर्ति और आदि राजा भी थे। उनका भी मुख फीका पड़ गया था। परन्तु बाकीके पुत्र तो हँस रहे थे। अर्थात् प्रसन्नचित्त थे। उनको देखकर सम्राट्को भी हँसी आई। मित्रगण प्रसन्न थे। अनेक राजा भी प्रसन्न थे। भरतेश समझ गये कि ये सब दीक्षा लेनेवाले हैं। स्त्रियों की पालकियाँ भी आकर एकत्रित हुईं। अब भृंगारयोगी भरतेशने दीक्षा लेनेके लिए अंतरंगमें तैयारी की। समस्त परिवारको दूर खड़े होनेके लिए इशारा करके अपने पुत्र, मित्र, मंत्री आदि जो समीप थे उनसे एक परदा धरनेके लिए कहा एवं स्वयं दीक्षाविधिके लिए सन्नद्ध हुए।

भरतेशका आत्मबल अचिन्त्य है। उनका पुण्य अतुल है। वह लघुकर्मी है। जीवनके अंत समयतक सातिशय भोगको भोगकर समयपर अपने आयुष्यको पहिचानना एवं अपने आत्महितकी ओर प्रवृत्त होना यह अलौकिक महापुरुषोंका ही कार्य है। हर एक मनुष्यके लिए यह साध्य नहीं है।

आज प्रातःकाल दरबारमें पहुँचनेतक सम्राट्को मालूम नहीं था कि

मेरे आयुष्यका अन्त हो चुका है। मेरे घातिया कर्म जर्जरित हो चुके हैं। आज मुझे घातिया कर्मोंको नष्ट करना है। कल प्रातःकाल सूर्योदय होते ही शेष सर्व कर्मोंको नष्ट करके सिद्ध लोकमें पहुँचना है। अन्तःपुरसे दरबारमें आनेतक उनको यह मालूम नहीं था। परन्तु अकस्मात् दरबार में आनेपर उनको यह सब दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने अपने आत्महितको पहिचान लिया। देखा कि अब देरी करनेसे लाभ नहीं। उस समय राज्य का लोभ नहीं। रानियोंकी चिंता नहीं, पुत्रोंका मोह नहीं। हजार वर्ष के अभ्यस्त योगिके समान निकलकर चला जाना सचमुचमें आश्चर्यकी बात है। भरतेश सदा इस बातकी भावना करते हैं—

हे परमात्मन् ! तुम तो अदृश्य पदार्थोंको भी दृश्य कर देनेवाले परंज्योति हो। इसलिए सदा प्रज्वलित होते हुए मेरे हृदयरूपी कोठरीमें बने रहो। यदि चले जाओगे तो तुम्हें मेरा शपथ है।

हे सिद्धात्मन् ! आप दानियोंके देव हैं। रक्षकोंके देव हैं। भव्योंके देव हैं, मेरे लिए सबसे बढ़कर देव हैं, विशेष क्या ? हे निरंजनसिद्ध ! आप देवोंके भी देव हैं। इसलिए मुझे सन्मति प्रदान कीजिए।

इसी भावनासे वे लोकविजयी होते हैं।

इति भरतेशनिर्वेगसंधिः

—००—

ध्यानसामर्थ्यसंधि

परदेके अन्दर उस सुन्दर शिलातलपर भरतेश सिंहासनसे बैठकर अब दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुए हैं। उनका निश्चय है कि मेरे लिए कोई गुरु नहीं है। मेरे लिए मैं ही गुरु हूँ, इस प्रकारके विचारसे वे स्वयं दीक्षित हुए। वस्त्राभूषणोंसे सर्वथा मोहको उन्होंने परित्याग कर अलग किया। वस्त्राभूषणोंकी शोभा इस शरीरके लिए है, आत्माके लिए तो शरीरभी

नहीं है फिर इन आभरणोंसे क्या तात्पर्य है ? इस प्रकार उन वस्त्राभरणोंसे मोह हटाकर शरीरसे उनको अलग किया।

कोटिचन्द्रसूर्योंका प्रकाश मेरे आत्मामें है। फिर इस जरासे प्रकाशसे युक्त शरीरशोभासे क्या प्रयोजन ? यह समझते हुए सर्व परिग्रहोंका परित्याग किया। बादमें केशलोंच किया। भगवान आदिनाथको केशोंके होते हुए कर्मक्षय हुआ, तथापि उपचारके लिए केशलोंचकी आवश्यकता है। इस विचारसे उन्होंने केशलोंच किया। उसे केशलोंच क्यों कहना चाहिए। मनके संक्लेशका ही उन्होंने लोंच किया। वह शूर भरतयोगी आँख मींचकर अपनी आत्माकी ओर देखने लगे, इतनेमें अत्यन्त प्रकाशयुक्त मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति हुई।

अब मुनिराज भरत महासिद्ध बिंबके समान निश्चल आसनसे विराज कर आत्म निरीक्षण कर रहे हैं। बाह्यसामग्री, परिकर वगैरह अत्यन्त सुन्दर हैं। ध्यानमें जरा भी चंचलता नहीं है, वे आत्मामें स्थिर हो गये हैं।

जिस प्रकार बाह्यसाधन शुद्ध है उसी प्रकार अंग भिन्न है, आत्मा भिन्न है, इस प्रकार भेद करके अनुभव करनेवाला अन्तरंगसाधन भी परिशुद्ध रूपसे उनको प्राप्त है। अतएव भंगुरकर्मोंको अष्टांगयोगमें रत होकर भंग कर रहे हैं।

योगी अपने आपको देख रहा था। परन्तु उससे घबराकर कर्म तो इधर-उधर भागे जा रहे हैं। जैसे-जैसे कर्म भागे जा रहे हैं आत्मामें सुज्ञान-प्रकाशका उदय होता जा रहा था। कर्मरेणु अलग होकर जब आत्म-दर्शन होता तो ऐसा मालूम हो रहा था कि जमीनमें गड़ी हुई रत्नकी प्रतिमा मिट्टीको खोदनेपर मिल रही हो। कल्पना कीजिये, मूसलधार वृष्टिके बरसनेपर मिट्टीका पर्वत जिस प्रकार गल-गल कर पड़ता है, उसी प्रकार परमात्माके ध्यानसे कर्मपिंड गलता हुआ दिखाई दे रहा था।

जलती हुई अग्निमें यदि लकड़ी डाले तो जैसे वह अग्नि बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार कर्मोंके समूहके कारण वह ध्यानरूपी अग्नि भी तेज हो गई है।

घोरकर्म ही काष्ठ है, शरीरही होमकुण्ड है, ध्यान ही अग्नि है। इस दीक्षित धीरयोगीने उस होमके द्वारा संसाररूपी शत्रुको नाश करने का ठान लिया है। दोनों आँखोंको मींचनेपर भी उन्होंने सुज्ञानरूपी बड़े

नेत्रको खोल दिया है वह नेत्र अग्निस्वरूप है। उसके द्वारा कर्मवैरीके निवासस्थानभूत तीन शरीररूपी तीन नगरोंको जलानेका कार्य हो रहा है। प्रलयकालीन अग्निसे जिस प्रकार लोकके समस्त पदार्थ जलकर खाक हो जाते हैं, उसी प्रकार उस तपोधनके ध्यानाग्निके द्वारा कर्म जलकर खाक हो रहा है एवं अपने स्थानको छोड़ रहा है। वह प्रतापी दिग्विजयके समय विजयार्धमें वज्रकपाटको तोड़कर अन्दरसे निकली हुई भीषण अग्निको घोड़ेपर चढ़कर जिस प्रकार देख रहा था उसी प्रकार कर्मकपाटको तोड़कर अपने भावोंमें खड़े होकर उस कर्मको जलानेवाले अग्निको देख रहा है।

दिग्विजयके समय काकिणी रत्नके द्वारा गुफाके अन्धकारको निराकरण किया था, उस बातको मालूम होता है कि यह भरतयोगी अभी भूल नहीं गया है। अतएव उसका प्रयोग यहाँ भी कर रहा है, यहाँ पर ध्यानरूपी काकिणीरत्नसे देहरूपी गुफामें महान् प्रकाश व्याप्त हो रहा है।

भरतेशने संसारसे विरक्त होकर चक्ररत्नका परित्याग किया तो यहाँ ध्यानचक्रका उदय हुआ। अब आगे शक्र (देवेंद्र) आकर इसकी सेवा करेगा। एवं मुक्ति साम्राज्यका अधिपति बनेगा। सो हमेशा वैभव ही वैभव है। आश्चर्य है, मुनिकुलोत्तम भरत ध्यान पराक्रमसे हंसनाथ (परमात्मा) को दे रहा है। उसी समय कर्मका विध्वंस हो रहा है एवं आत्मांशु (कांति) बढ़ता ही जा रहा है।

जिस प्रकार बाँधको तोड़नेपर रुका हुआ पानी एकदम उतरकर चला जाता है, उसी प्रकार बंधको तोड़नेपर रुका हुआ कर्मजल निकलकर चारों ओर जाने लगा। मस्तकपर रखे हुए धान्यकी पोटरीसे कुछ धान्य निकालनेपर वह थोड़ी-सी हल्की हो जाती है उसी प्रकार कर्मोंका अंश कुछ कम होनेपर योगीको अपना भार कम हुआ-सा मालूम होने लगा। कई परदोंके अन्दर रखे हुए दीपक, जिस प्रकार एक-एक परदेके हटनेपर अधिक प्रकाशयुक्त होता है उसी प्रकार कर्मोंके आवरणके हटनेपर आत्मज्योति बढ़ती गई एवं बाहर भी उसकी कांति प्रतिबिंबित होने लगी। पहिले अक्षरात्मक ध्यानसे रत्नमालाके समान आत्माका अनुभव कर रहा था, अब वह नष्ट हो गया है। केवल आत्मनिरीक्षणका ही कार्य हो रहा है। पहिले धर्म्यध्यान था, इसलिए उसमें अत्यधिक प्रकाश नहीं था, और पदस्थ पिंडस्थादि अक्षरात्मक रूपसे उसका विचार हो रहा था। परन्तु अब उस योगीके हृदयमें परम शुक्लध्यान है, उसमें

अक्षरोंका विकल्प नहीं है। केवल आत्मकलाका ही दर्शन हो रहा है। सूर्यके समान शुक्लध्यान है, चन्द्रमाके समान धर्म्यध्यान है। चन्द्रमाके सामने नक्षत्र दिखते हैं, परन्तु सूर्यके सामने नक्षत्रों का दर्शन नहीं हो सकते है। उसी प्रकार शुक्लध्यानके सामने अक्षरात्मक विचार नहीं रह सकते हैं, केवल आत्मप्रकाशकी वृद्धि होकर सुज्ञानका अनुभव हो रहा है।

विविध शब्दब्रह्म उस ब्रह्मामें अन्तर्लीन हो गया हो इस प्रकार सूचित करते हुए वह परमात्मयोगी इस समय व्यवहारको छोड़कर निश्चयपर आरूढ़ हुआ है एवं आत्मानुभवमें मग्न है। ध्यानके समय ध्यान, ध्येय, ध्याता व ध्यानका फल इस प्रकार चार विकल्प होते हैं। परन्तु वहाँपर वह दिव्ययोगी अकेला स्वयं स्वयंमें मग्न होते हुए परमात्मयोगका अनुभव कर रहा है। भेददृष्टिका विचार बंधका कारण है। अभेदात्मक अध्यवसाय ही मोक्ष है। वह मोक्ष सम्यग्ज्ञान सिद्धांतके द्वारा ही साध्य है, अतः वह योगी उस समय स्वसंवेदनमें मग्न था।

उस आत्मयोगको वचनके द्वारा कैसे वर्णन कर सकते हैं? क्योंकि वचन तो जड़ है, और वह आत्मा ज्ञानरूपी है। इसलिए जो आत्मासे ही आत्माको जानता है, अनुभव करता है उस आत्माको आत्मसिद्धि होती है। एवं उज्ज्वल कान्तिको बढ़ा रहा है, उस ध्यानकी महत्ताको भरत-योगीन्द्र ही जान सकता है। मुखकी छाया प्रसन्नतासे युक्त है, शरीर अत्यन्त स्थिर है। उन्नत योगीके शरीरमें नवीन कान्ति बढ़ रही है। कर्मरेणु तो झरते जा रहे हैं, आत्मकान्ति तो बढ़ती जा रही है। बाल-सूर्यके प्रकाशमें ऐक्य होनेवालेके समान वह योगिरत्न परमात्मकलामें मग्न है।

बाह्य सर्व झंझटोंको छोड़कर अपने घरमें जाकर विश्रान्ति लेनेवाले व्यक्तिके समान वह राजा उस समय दुनियाकी चिन्ताको छोड़कर अपनी आत्मामें विश्रांति ले रहा है।

संसारके अस्थिर भवोंमें भ्रमण करते हुए अनेक परस्थानोंको प्राप्त किया एवं उनको दुस्थानके रूपमें अनुभव किया। अतएव उनको छोड़कर अब स्वस्थानमें निवास किया है।

तीन लोकमें स्थानलाभ तो अनेक समय तक अनेक बार हुआ। परन्तु आत्मस्थानलाभ तो बार-बार नहीं हुआ करता है, यह तो क्वचित् ही होता है, अब उसकी प्राप्ति हुई है इससे बढ़कर और क्या भाग्य होगा? अनेक राज्योंपर शासन किया, परन्तु वे सब राज्यवैभव नश्वर ही प्रतीत

हुए। इसलिए उन राज्यवैभवोंमें कोई महत्त्व नहीं है। अतएव इस अनुपम आत्मराज्य-वैभवपर वह सम्राट् आरूढ़ हो गया है।

आज वह आत्मा अपने शरीरके प्रमाणसे है। परन्तु कल वह तीन लोकमें व्याप्त होता है। परमात्मसाम्राज्यकी महत्ता अनुपम है। उसी साम्राज्यका अब वह राजा है।

पहले मंत्री, सेनापति आदिके द्वारा परतन्त्रतासे राज्यपालन हो रहा था। उससे भरतेशको तृप्ति हुई। अब आत्मराज्यको पाकर स्वतन्त्रतासे उसका पालन कर रहा है। पहलेके राज्यको नरेशने अस्थिर समझा था, और आत्मराज्यको स्थिर समझा था। अस्थिर तो अस्थिर ही ठहरा, स्थिर तो स्थिर ही ठहरा। भरतेशका ज्ञान अन्यथा क्योंकर हो सकता है? भरतेश गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी मातृप्रेम, पुत्रमोह व स्त्रियोंके मोहको माया ही समझते थे। एवं हमेशा अपने आत्मामें रत रहते थे। वह विचार सत्य सिद्ध हुआ। बाह्यमें लोकप्रसन्न हो इस प्रकारका व्यवहार और अन्तरंगमें आत्मसुखके अनुभवको स्वीकार करते हुए उन्होंने विवेकसे काम लिया। वह विवेक आज काममें आया।

अब तो भरतेशके शरीरमें अणुमात्र भी परसंग अर्थात् परिग्रह नहीं है। अब शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, कर्मवर्गणा भी आत्मासे भिन्न है। इस प्रकारके अनुभवसे स्वयं अपनी आत्मामें स्थिर हो गये हैं, कर्म-वर्गणायें इधर-उधर निकल भाग रही हैं।

इन्द्रिय, शरीर, मन, वचन और कर्मसमूह आदि आत्मासे भिन्न हैं, आत्मा उनसे भिन्न है, मैं तो द्रव्यभावोंसे परिशुद्ध हूं। इस प्रकारके विचारसे वह योगीन्द्र स्वयंको ही देख रहा है।

आत्माको शुद्धविकल्पसे देखा जाय तो वह शुद्ध है। बद्ध विकल्पसे देखा जाय तो वह बद्ध है। सिद्धान्तके द्वारा वह देखनेमें नहीं आ सकता है। आत्माके द्वारा आत्माको निबद्ध करनेपर आत्मदर्शन होता है।

शास्त्रोंमें आत्मगुणोंका वर्णन है, एवं आत्मामें आत्माको स्थिर करने-के उपाय भी बताये गये हैं। परन्तु वह आत्मा वचन गोचरातीत है। अतः वचनसे उसका साक्षात्कार कैसे हो सकता है? अपितु नहीं हो सकता है, अनुभवसे ही उसका दर्शन होना चाहिये।

ध्यानके प्रारम्भमें उन्होंने विचार किया कि कर्म भिन्न है, और आत्मा भिन्न है। आत्मध्यानमें मग्न होनेके बाद यह विकल्प भी दूर हुआ। केवल आत्मामें तल्लीन हुआ। उसके बाद गुरु हंसनाथ ही मैं हूं इस

प्रकारका विकल्प था। परन्तु ध्यानकी विशुद्धिमें वह विकल्प भी दूर हो गया है। अब तो वह योगी निर्विकल्पक समाधिमें मग्न है।

कर्म तो क्रम-क्रमसे ढीले होकर गिरते जा रहे हैं। आत्मविज्ञान बढ़ता जा रहा है। वह तपोधन जब एकाग्रचित्तसे ध्यानमें अविचल होकर रहा तो तीन लोक कंपित होने लगा। चंचल मनको अत्यन्त निश्चल बनाकर आत्मामें उसे अन्तर्लीन किया। वह वीर आत्मध्यानमें मग्न हुआ तो तीन लोक कांपे इसमें आश्चर्य क्या है? उस समय स्वर्गमें देवेन्द्रको शची-महादेवी पुष्प दे रही थी। उस समय बैठे हुए मंचके साथ वह पुष्प भी एकदम कंपित हुआ तो देवेन्द्रने कारणका विचार किया और अपनी देवी-से आश्चर्यके साथ कहने लगा कि भरतेश मुनि हो गया है। धन्य है! अधोलोकमें धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ तो उसकी देवी घबराकर पतिको आलिंगन देकर खड़ी हुई, तब धरणेन्द्रने अवधिके बलसे विचार किया और भरतेशके मुनि होनेका समाचार अपनी देवीको सुनाया।

एक स्थानमें एक पत्थरके ऊपर सिंह था, वह पत्थर एकदम कम्पित हुआ तो पत्थरके साथ सिंह उल्टा सिर करके पड़ गया एवं घबराकर एक जगह खड़ा रहा। जिस प्रकार आंधी चलनेपर वृक्षलतादिक हिल जाते हैं उसी प्रकार यह भूलोक ही एकदम कंपित होने लगा भरतेशकी ध्यान सामर्थ्यका कहांतक वर्णन कर सकते हैं?

भोगमें रहकर जिस वीर सम्राट्ने व्यंतर, विद्याधर आदियोंके मस्तक-को अपने चरणोंमें झुकवाया वह योगमें रत होकर तीन लोकमें सर्वत्र अपना प्रभाव डाले इसमें आश्चर्य क्या है?

आत्मज्योति बराबर बढ़ रही थी, इधर कर्मरेणु ढीले होकर निकल रहे थे। उसे आगममें श्रेण्यारोहणके नामसे कहते हैं। उसका भी वहांपर वर्णन करना प्रासंगिक होगा। सिद्धांतमें चौदह गुणस्थानोंका कथन है। परन्तु अध्यात्म दृष्टिसे उन चौदह गुणस्थानोंके तीन ही विभाग हो सकते हैं। बहिरात्मा और अन्तरात्मा और परमात्माके भेदसे तीन ही विभाग करनेपर चौदह गुणस्थानोंमें विभक्त सभी जीव अन्तर्भूत हो सकते हैं। पहिले तीन गुणस्थानवाले बहिरात्माके नामसे पहिचाने जाते हैं। आगेके नौ गुणस्थानवाले अर्थात् १२वें गुणस्थान तकके जीव अन्तरात्मा कहलाते हैं। और अन्तके दो सयोगकेवली व अयोगकेवली परमात्मा कहलाते हैं। इस प्रकार वे चौदह गुणस्थान इन तीन भेदोंमें अन्तर्भूत होते हैं।

भरतेशकी आत्मा बहिरात्मा नहीं है, अन्तरात्मा था। परंतु शीघ्र ही वह परमात्मा बन गया। अध्यात्मकी महिमा विचित्र है।

राजवैभवको छोड़कर योगी बननेपर भी राजवैभवने क्षात्रधर्मने भरतेशका साथ नहीं छोडा। वह तेजस्वी है, वहांपर उसने कर्मोंकी सेना के साथ वीरतासे युद्ध करना प्रारंभ किया।

अश्वरत्न वहांपर नहीं है, परन्तु मनरूपी अश्वपर आरूढ़ होकर ध्यान खड्गको अपने हाथमें लिया एवं कर्मरूपी प्रबल शत्रुपर उस वीरने चढ़ाई की युद्ध प्रारम्भ होते ही तीन आयुष्यरूपी योद्धा तो रुक गये। अब उस वीरने अपने घोड़ेको आगे बढ़ाया तो अग्निके प्रतापसे पिघलनेवाले लोहेके समान कुगति आदि १६ दुष्ट कर्म गलकर चले गये।

आगे बढ़नेपर ८ कषाययोद्धा पड़े। नपुंसकवेद और स्त्रीवेद तो जरा से धमकानेपर इधर-उधर भागे। वीरका खड्ग सामने आनेपर स्त्री, नपुंसक कैसे टिक सकते है? इतनेमें वह वीर और भी आगे बढ़ा तो अरति शोकादिक छह नोकषाय निकल भागे। और भी आगे बढ़नेपर पुंवेद भी नहीं ठहर सका, उस पराक्रमीका कौन सामना कर सकता है?

उसके बाद संज्वलन-क्रोध, मान, मायाने मुंह छिपाकर पलायन किया तो केवल संज्वलन-लोभ शेष रह गया है। वहांसे आगे बढ़कर उस लघु-लोभका भी अन्त किया। उसी समय मोहराक्षसको लात देकर उस वीर-योगीने विजयको प्राप्त की। ज्ञानावरणीयके चार प्रकृतियोंका अन्त पहिलेसे हो चुका है, अवधिज्ञानावरणीयका भी पहिलेसे अंत हो चुका है। अब बचे हुए धूर्तकर्मोंको भी मैं मार भगाऊंगा, इस संकल्पसे आगे बढ़ा। ध्यानखड्गके बलसे प्रचला व निद्राका नाश किया। साथमें पंचांतराय व दर्शनावरणके शेष प्रकृतियोंको भी नष्ट किया। इतनेमें ६३ कर्मप्रकृतिरूप प्रतिभट करनेवाले योद्धा हट गये। अब वह वीर अन्तरात्मा नहीं रहा, परमात्माका वैभव वहां दिखने लगा है। अब वह धीर मुनि नहीं है, जिन बन गया है।

चित्त वाहन था, ध्यान खड्ग था, और उस मुनिने मारा भगाया इत्यादि जो वर्णन किया गया है वह कल्पनाजाल है, वस्तुतः उस मुनि-राजके स्वयं अपनी आत्माको देखनेपर कर्मकी निर्जरा हुई, यही उसका सार है। वर्णन करनेमें ही विलम्ब लगा, परन्तु उस कर्मनिर्जराके लिए अन्तर्मुहूर्त ही समय लगा है। उस परमात्मयोगीकी सामर्थ्यका क्या वर्णन करें।

चार घातिया कर्मोंके नष्ट होनेसे अनन्त चतुष्टयकी प्राप्ति हुई। अनन्त चतुष्टयोंके साथ पाँच बातोंको मिलाकर नवकेवललब्धिके नामसे उल्लेख करते हैं, वह विभूति उस निरंजनको प्राप्त हो गई है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख व केवलवीर्यको अनन्तचतुष्कके नामसे कहते हैं। वह अनुपम सम्पत्ति उसके वशमें हो गई है। मद, निद्रा, क्षुधा, मरण, तृषा आदि अठारह दोष तो अब दूर हो गये हैं। देवेन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्रसे भी बढ़कर अगणित सुखका वह अधिपति बन गया है। विशेष क्या, उसे निज सुखकी प्राप्ति हो गई है।

उस समय वह परमात्मा ज्ञानके द्वारा समस्त लोक व अलोकको एक साथ जानता है, और दर्शनके द्वारा एक साथ देखता है। मिट्टीकी थालीको उठानेके समान इस समस्त पृथ्वीको उठानेकी अनन्त सामर्थ्य उसे अब प्राप्त हो गयी है कर्मका आवरण अब दूर हो गया है। अतएव शुद्धात्म-वस्तुकी चित्प्रभा बाहर उमड़कर आ गई है। कोटिसूर्य-चन्द्रोंका प्रकाश उस समय परमात्माके शरीरसे बाहर निकलकर लोकमें भर गया है। कर्मका भार जैसे-जैसे हटता गया शरीर भी हल्का होता गया। इसलिए परमज्योतिर्मय परमात्मा उस शिलातलके एकदम ऊपर आकाशप्रदेशमें लाँघकर चला गया। शायद सुन्दर सिद्धलोकके प्रति गमन करनेका यह उपक्रम है, इसलिए वह शुद्धात्मा उस समय भूतलसे पाँच हजार धनुष प्रमाण ऊपर आकर आकाशप्रदेशमें ठहर गया। जिन्होंने परदा धर लिया था अब दूर हटे। आश्चर्यचकित होते हुए जय-जयकार करते देखते हैं तो भरतजिनेन्द्र आकाश प्रदेशमें ऊपर विराजमान हैं। सबने भक्तिके साथ वंदना की।

स्वर्गमें देवेन्द्रने भरतेशकी उन्नतिपर आश्चर्य व्यक्त किया एवं अपनी देवीके साथ ऐरावत हस्तिपर आरूढ़ होकर भूतलपर उतरने लगा। देवेन्द्र ऊपरसे नीचे आ रहा है तो पाताल लोकसे धरणेन्द्र व पद्मावती व परिवारके साथ अनेक गाजे-बाजेके साथ ऊपर आ रहा है इसी प्रकार अनेक दिशाओंसे किन्नर व किंपुरुषदेव भरत जिनेन्द्रकी स्तुति करते हुए आनन्द से आ रहे हैं। वे कह रहे थे कि हे भरत जिनेश्वर! भवरोगवैद्य! सुंदरों-के सुंदर! आप जयवन्त रहें।

कुबेरने उसी समय गन्धकुटीकी रचना की। और उसके बीचमें सुंदर सुवर्ण कमलका निर्माण किया। उसको स्पर्श न करते हुए कुछ अन्तरपर उसके ऊपर कमलासनमें भरत जिनेन्द्र शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

भगवान् आदि प्रभुके मुक्ति जानेपर उनके साथ जो केवली चारण-मुनि वगैरह थे वे सब इधर-उधर चले गये थे। भरत जिनेन्द्रकी गंधकुटीका निर्माण होनेपर सब लोग वहांपर आकर एकत्रित हुए मालूम होता है कि पिताकी सम्पत्ति पुत्रको मिलनेकी पद्धति ही यहांपर भी चरितार्थ हुई। पिताका मंत्री पुत्रको भी प्राप्त हो वह साहजिक एवं शोभास्पद है। इसलिए तेजोराशि मुनिनाथ भी वहांपर आये व भरतजिनेन्द्रकी वन्दना कर वहां बैठ गये।

देवेंद्र धरणेंद्रने भी अपनी देवियोंके साथ पादानत होकर उस दुरित-निर्धूमधान-भरतकेवलीको अनेकविध भक्तिसे स्तुति की, वन्दना की, पूजा की। देवगण भी वहांपर भक्तिसे आये, भूतलपर जो भव्य थे वे भी सोपानमार्गसे गंधकुटीमें आये। एवं जिनेश्वरको संतोष व भक्तिके साथ सब लोगोंने नमस्कार किया।

अर्ककीर्ति व आदिराज कुमारका मुख अर्क (सूर्य) के दर्शनसे खिलनेवाले कमलके समान हर्षसे युक्त हुए। बाकीके मंत्री, मित्रोंको भी मित्रोंके दर्शनसे अत्यधिक आनन्द हुआ।

देवेंद्रने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! परमात्मसिद्धि कैसे होती है? कृपया फरमावें! इतनेमें भरत सर्वज्ञने दिव्यध्वनिके द्वारा विस्तारसे वर्णन किया। उसका क्या वर्णन करें?

"हे देवेंद्र! सुनो! आत्मसिद्धिको प्राप्त करना कोई कठिन नहीं है? आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। इस प्रकारके विवेकसे अपनेसे ही अपनेको देखने पर आत्मसिद्धि होती है। इस प्रकार आत्मार्थी देवेन्द्रको प्रतिपादन किया।

पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्व और नव पदार्थोंमें आत्मा ही उपादेय है, बाकीके सर्व पदार्थ हेय हैं। चेतन हो या अचेतन हो, चेतनके साथ अचेतन मिश्रित होकर जब रहता है तब वह परपदार्थ है। केवल पवित्र आत्मा ही स्वपदार्थ है।

परवस्तुओंमें जो रत है वे परसमयी है और आत्मामें निरत है वे स्वसमयी है। परवस्तुओंके अवलंबनसे बंध है, अपने आत्माके अवलंबनसे मोक्ष है। यही इसका रहस्य है।

आप्त, आगम और गुरुकी उपासना करनेसे शरीर-सुखकी प्राप्ति होती है। कैवल्य सुखके लिए अपने आपको देखना चाहिए। अन्य

भावोंके द्वारा मोक्षकी सिद्धि नहीं हो सकती है। ध्यानके अभ्यासके समय परवस्तुओंके अवलम्बनसे काम लेना चाहिये, आत्मा आत्मामें स्थिर होनेके बाद अन्य संगका परित्याग करना चाहिये।

खाने पीने व पहननेसे क्या होता है? स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे भी क्या बिगड़ता है? परन्तु उनको अपने समझकर भोगनेसे बिगाड़ होती है, यदि उनको परवस्तु समझकर भोगें तो कोई चिंताकी बात नहीं है। परिणाममें आत्माको देखते हुए आत्मसुखका जो अनुभव करता है उसे स्वयंका सुख समझें एवं उस आत्मवस्तुको छोड़कर अन्य सभी परपदार्थ हैं, इस प्रकारकी भावनासे उस आत्माकी हानि नहीं हो सकती है। भव्योंमें दो भेद हैं, एक तीव्रकर्मी व दूसरा लघुकर्मी। जिनका कर्म तीव्र है, कठिन है वे पहिले बाह्य पदार्थोंको छोड़कर अनन्तर आत्म सुखकी साधना करते हैं। और जो लघुकर्मी अर्थात् जिनका कर्म मृदु है, वे बाह्य-संपत्ति वैभवोंके रहते हुए आत्मनिरीक्षण कर सरलतासे मुक्तिको जाते हैं। इसके लिए दूर जानेकी क्या आवश्यकता है? देखो! आदि परमेश, बाहुबलि आदिने कठिन तपश्चर्याके द्वारा इस भवका नाश किया, परन्तु हमने तो बहुत सरलतासे इस भवबन्धनको अलग किया, यही तो इसके लिए साक्षी है।

ध्यानसामर्थ्यको कौन जाने? स्वयं स्वयंको देखें तो वह मालूम हो सकता है। हे भव्य! अनेक विचारोंका यह सार है, विविध विचारोंको त्यागकर आत्मामें मनको लगाना यही मुक्तिके लिए साधन है।

जैसे जैसे आत्मानुभव बढ़ता जाता है वैसे ही शरीर-सुख अपने आप घटता है, आत्मा आत्मामें मग्न हो जाता है, बाह्य पदार्थोंके परित्यागसे आत्मसुखकी वृद्धि होती है।

आत्मामें आत्माके ठहरनेपर कर्मकी निर्जरा होती है। शरीर आत्मासे भिन्न हो जाता है। आत्मसिद्धिको कोई दूसरे नहीं देते हैं। अपने आप ही यह भव्य प्राप्त कर लेता है। परमाणुमात्र भी परवस्तु या पुद्गलका संसर्ग न रहे एवं स्वयं शुद्धात्मा रहे, इसीको आत्मसिद्ध कहते हैं।" इस प्रकार भरतजिनेन्द्रने देवेन्द्रको प्रतिपादन किया।

इतनेमें बीचमें ही आकर पुत्र, मित्र व मंत्रियोंमेंसे कुछने कहा कि देवेन्द्र! जरा ठहरो, हमें भी एक काम है। आगे बढ़कर भरतकेवलीसे उन लोगोंने प्रार्थना की कि स्वामिन्! हम लोगोंको दीक्षा देकर हमारा

उद्धार कीजिये। इस प्रकार वृषभराजकुमारको आगे करके सबने प्रार्थना की।

केवलीने भी 'भवतु च उत्तिष्ठत' इस प्रकारके आदेशके साथ दिव्यध्वनिकी वर्षा की। विशेष क्या? देवेन्द्र धरणेंद्र व तेजोराशि आदि मुनियोंकी उपस्थितिमें उनका दीक्षा-विधान हुआ। सब लोग उस समय जयजयकार कर रहे थे।

उस दिन रविकीर्ति कुमारको आदि लेकर १०० कुमारोंको आदिशिवने जिस प्रकार दीक्षा दी उसी प्रकार आज इन पुत्रोंको इस स्वामीने दीक्षा दी। इतना ही कहना पर्याप्त है अधिक वर्णनकी क्या आवश्यता है?

अर्ककीर्ति व आदिराजने यह कहते हुए साष्टांग नमस्कार किया कि अर्हन् हमारी माताओं एवं मामियोंको दीक्षा प्रदान कीजिये। तब उसे भगवंतने सम्मति दी। शचिदेवी, पद्मावती आदियोंने आगे बढ़कर परदा हाथमें लिया एवं मुनियोंको भी वहाँपर आनेके लिए इशारा किया गया। तदनन्तर उन पुण्यकांताओंको उस परदेके अन्दर प्रविष्ट कराया।

पुरुष तो समवशरणमें अनेकबार दीक्षा लेते थे। परन्तु आज स्त्रियोंकी दीक्षा है। उसमें भी सम्राट्की स्त्रियां तो पुरुष समाजके बीच कभी नहीं आया करती थीं। आज ही वे पुरुषोंकी सभामें आई हुई हैं।

देववाद्यके बजनेपर एवं तेजोराशि आदि मुनियोंकी उपस्थितिमें उन सतियोंका दीक्षाविधान हुआ। उस दिन माता यशस्वती व सुनंदाको जिस प्रकार दीक्षा-विधान हुआ इसी प्रकार आज भी उन स्त्रियोंको वैभवसे दीक्षा दी गई, इतना ही कहना पर्याप्त है।

उस समय उन देवियोंने समस्त आभरणोंका परित्याग किया। हार, पदक, बिलवर, कांचीधाम, वीरमुद्रिकादि आभरणोंको दूर फेंक रही हैं जैसे कि कामविकारको ही फेंक रही हों। कंठमें धारण किये हुए एकसर, पंचसर, त्रिसर आदिको तोड़कर अलग-अलग रख रही हैं, शायद वे कामदेव अपनी ओर न आवे इसके लिए दिग्बंधन कर रही हैं जब सर्वसंगको परित्याग ही करने बैठी हैं तो इन भारभूत आभरणोंको क्या आवश्यकता है? इसी प्रकार कर्णाभरण, नासिकाभरण आदिको भी निकालकर फेंक रही हैं। अब पुनः स्त्रीजन्मकी अभिलाषा उन देवियोंको नहीं है। मस्तकपर धारण किये हुए रत्नाभरणादिको निकाल कर इधर-उधर फेंक रही हैं। शायद विरहाग्निकी चिनगारियां ही निकल भाग रही हैं ऐसा मालूम हो रहा था। विशेष क्या, सर्व आभरणोंको तृणके समान

समझ कर छोड़ दिया। जिन आभरणोंकी शोभा शरीरके लिए थी, उनको पतिके जानेपर वे क्यों धारण करेंगी। इसलिए बहुत धैर्यके साथ उनसे मोहका त्याग किया। उनके हृदयमें अतुल विरक्ति है। चित्तमें अनुपम धैर्य है, क्योंकि वे क्षत्रिय स्त्रियाँ हैं। सासुओंको देखकर बहू देवियाँ एवं बहुओंके धैर्यको देखकर सासूरानी मनमें ही प्रसन्न हो रही हैं। आभरणोंको दूर कर जब केशपाशका भी मुण्डन किया तो पासमें रहनेवालोंको कोई दुःख नहीं हुआ। क्योंकि वह जिनसभा है। वहाँपर शोकका उद्रेक नहीं हो सकता है। माणिक्य रत्न तो अब अलग हो गया है। अब उनके पाणितलमें कमण्डलु व जपसर आ गये हैं। अब उनको रानियोंके नामसे कोई उल्लेख नहीं कर सकता है। अब तो उनको अक्का या अम्मा कहते हैं। अर्जिका या कांतिके नामसे अभिधान करनेके लिए केशलोंच स्वतः करनेकी आवश्यकता है। वह कठिन है। अतः इस अवस्थामें रहकर उसका अभ्यास करो। इस प्रकारका आदेश दिया गया।

परदा हट गया, बाजेका शब्द भी बन्द हुआ। अब अन्दर सफेद साड़ीको पहनी हुई साध्वियाँ विराजी हुई हैं। मालूम होता है कि कोमल पुष्पाच्छादित लताओंने ही दीक्षा ली है।

धरणेंद्रकी देवियाँ, देवेन्द्रकी देवियाँ आदि आगे बढ़ीं व उनके चरणोंमें मस्तक रक्खा। इसी प्रकार समस्त सभाने ही उनकी वंदना की। विशेष क्या? देवोंने हर्षभरसे नृत्य कर आकाश प्रदेशसे पुष्पवृष्टि की। उस दृश्यका वर्णन क्या हो सकता है? नवीन मुनिगण मुनियोंके समूहमें एवं नवीन साध्वीगण अर्जिकाओंके समूहमें बैठ गईं। यह समाचार बातही बातमें दशों दिशाओंमें फैल गया।

चक्रवर्तीका स्त्रीरत्न अर्थात् पट्टरानी नरकगामिनी होती है, इस प्रकार कुछ लोग अज्ञानसे कहते हैं। परन्तु वह ठीक नहीं है। इसके लिए एक सिद्धान्तका नियम है।

दुर्गतिको जानेवाले चक्रवर्तीको पट्टरानी दुर्गतिको ही जाती है यह सत्य है, परन्तु स्वर्ग व मोक्षको जानेवाले चक्रवर्तिके स्त्रीरत्नको स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है, यह सिद्धान्तका नियम है। पुरुषोंके परिणामके अनुसार ही स्त्रियोंका परिणाम होता है। इसलिए पुरुषको गतिके अनुसार ही वह स्त्रीरत्न उस मार्गमें कुछ दूर बढ़कर रहती है।

पुत्र मोक्षगामी, भाई मोक्षगामी, स्वतःके पति भरतेश मोक्षगामी फिर

वह सुभद्रादेवी दुर्गति कैसे जा सकती है? अवश्य वह स्वर्गको ही जायेगी। इसलिए सुभद्रादेवी ने भी बहुत वैभवके साथ दीक्षा ली।

भरत चक्रवर्तीकी पालकीको ढोनेवाले जो सेवक हैं वे भी स्वर्ग जानेवाले हैं तो पट्टरानीको दुर्गति क्योंकर हो सकती है? वह निर्मल शरीरवाली है, उसे आहार है, नीहार नहीं है। इसलिए उसे कमण्डलु नहीं है। अब वह अजिकाओंके बीचमें शोभित हो रही है। देवेन्द्र, अर्ककीर्ति, आदिराज आदि गंधकुटीमें भगवद्भक्तिमें लीन हैं, और भगवान् भरतकेवली अपने कमलासनमें विराजमान हैं।

भरतेशकी सामर्थ्य अचिंत्य है। षट्खण्डवैभवका लीलामात्रसे परित्याग करना, दीक्षित होना, दीक्षित होकर अन्तर्मुहूर्तमें मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति, पुनश्च केवलज्ञानकी प्राप्ति, यह सब उस आत्माकी महत्ताको साक्षात् सूचनायें हैं। कर्मपर्वतको क्षणार्धमें चूर कर देना सामान्य मनुष्योंको साध्य नहीं है। भरतेशके कुछ समयके ध्यानसे ही वे कर्म वैरी निकलकर भाग रहे हैं। वहाँ दिग्विजयकर षट्खंडको वशमें किया तो कर्मदिग्विजय कर नवखण्ड (नवकेवललब्धि) को प्राप्त किया। यह सामर्थ्य उनको अनेक भवोंके अभ्याससे प्राप्त है। भरतेश सदा भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन्! चिदम्बरपुरुष तृणको जलानेवाले अग्निके समान अष्टकर्मको क्षणभरमें भस्म करनेकी सामर्थ्य तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। तुम गणनातीत हो, अमृतकी निधि हो, इसलिए मेरे हृदयमें बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप चिन्तामणि हो। गुणरत्न हो, देव शिरोरत्न हो, त्रिभुवनरत्न हो, एवं रत्नत्रयरूप हो, अतएव हे सहजश्रृंगार निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि भरतेशने कर्मपर्वतको क्षणार्धमें नष्ट करनेकी ध्यान-सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी।

इति ध्यानसामर्थ्य संधिः

—०○—

चक्रेशकैवल्य संधिः

परमात्मन् ! महादेव ! उस भरतेशकी महिमाको क्या कहें ? हंसाराध्य वह सम्राट् योगीने जब इस प्रकार उत्तम पदको प्राप्त किया तो उसी समय दीक्षाप्राप्त पुत्र मित्रादिकोंने भी उत्तम पदको प्राप्त किया। दुपहरके समय भरतेशने घातिया कर्मोंको दूरकर सायके लोगोंको दीक्षा दी। आश्चर्य है कि उनमेंसे वृषभराज योगीने सायकालके समय घातिया कर्मोंको नष्ट किया। पिताने बहुत जल्दी घातिया कर्मोंको दूर किया। फिर मैं आलसी बना रहूँ यह उचित नहीं है। इस विचारसे शायद स्पर्धा-के साथ उसने घातिया कर्मोंको दूर किया हो। इस प्रकार वह धीरयोगी वृषभराज परमात्मा बन गया है। बचपनमें जब अपने पिता भरतेशने उसका हाथ देखा तो उसने भी भरतेशका हाथ देखा था। तब पिताने कहा था कि बेटा ! तुम और मैं एक सरीखे हैं। वह बात आज चारितार्थ हो गई है। चन्द्रिकादेवी आदि अर्जिकायें उस समय आनन्द समुद्रमें मग्न हुईं। एवं इन्द्रार्चित अन्य अर्जिकायें भी आनन्दसे फूली न समाती थीं। विशेष क्या, गंधकुटीमें स्थित सारे भव्य प्रशंसा करने लगे। अर्ककीर्ति व आदिराज पिता व सहोदरोंके दीक्षित होनेपर चिन्तित थे। परन्तु जब वृषभराज केवली बन गया तो उनका भी आनन्दका पार नहीं रहा। हर्षसे नृत्य करने लगे। पिताजीने इसका नामकरण वृषभराज किया है। अर्थात् दादाके नामसे इसे बुलाया है, वह आज सार्थक हो गया है वाह ! वृषभराज ! संसारका तुमने नाश किया है। शाबास ! तुम साहसी हो ! इस प्रकार कहकर वृषभराजयोगीके चरणोंमें मस्तक रक्खा। उसी समय नागरमुनि, अनुकूल योगी बुद्धिसागर यति और दक्षिणांक स्वामीको भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति हुई। चक्रवर्तीके बंधुओंको किस बातकी कमी है ? उस समय और भी कुछ पुत्रोंको, राजाओंको अवधिज्ञान आदि उत्तम सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। आत्माराममें विहार करनेवालोंको क्या बड़ी बात है ? उसी समय देवोंके द्वारा गंधकुटीकी रचना की गई, एवं नरसुर उरगलोकके वासियोंने भक्तिसे पूजा की। विशेष क्या, भरत जिनेन्द्रके समीप ही वृषभजिनेशका महल तैयार हो गया है।

वह रात्रि बीत गई। सूर्योदयके होनेपर वह आराध्य भरतसर्वज्ञ अघातियाँ कर्मोंको दूर करनेके लिए सन्नद्ध हुए, उसका क्या वर्णन करें ? गंधकुटीका परित्याग किया। पहिलेके श्रीगंधवृक्षके मूलमें ही फिर पहुँचे। वहाँपर सुन्दर शिलातलपर पर्यंक योगासनसे विराजमान हुए।

परमौदारिक दिव्य शरीरमें भरे हुए क्षीरसमुद्रको इस भूमिसे सुरलोकके अग्रभाग तक उठानेकी भावना उस समय उस महात्माके हृदय में थी।

आयुष्य कर्मकी स्थिति कम थी। परन्तु शेष नाम, गोत्र व वेदनीयकी स्थिति अधिक थी। इसलिए काट-छाँटकर उनकी स्थितिको आयुष्यके बराबर करूँगा, इस हेतुसे उस समय चार समुद्घातकी ओर दृष्टि गई। उत्तम सोनेको जिस प्रकार कीटसे अलग करनेपर वह अलग हो जाता है, उसी प्रकार इस आत्माकी स्थिति उस समय थी। वह परमात्मा जिस प्रकार आदेश दे रहा था उसी प्रकार उसकी हालत हुई।

सुवर्ण भिन्न है, उसे निकालनेवाला भिन्न है। यह उदाहरण केवल उपचार रूप है। यहाँपर आत्मा ही निकालनेवाला और आत्मा ही निकलनेवाला है।

सबसे पहले आत्माको दण्डाकारके रूपमें परिवर्तन किया। यह आत्मा शरीरसे निकलकर त्रिलोकरूपी जहाजके स्थिर स्तम्भके समान तीन लोक में दण्डके समान व्याप्त हुआ। उस शिलातलपर तैजसकार्मणसे युक्त होकर बाह्य शरीर जरूर था, परन्तु निर्मल आत्मा तीन लोकमें दण्डस्वरूपमें व्याप्त होकर था। औदारिक त्रिगुणघन होकर वह उस समय आवृत था, तथापि स्पष्ट कहें तो १४ रज्जु परिमित लोकाकाशमें नीचेसे ऊपरतक वह आत्मा व्याप्त हो गया है। उसीको कपाटरूपमें परिणत किया। वह उस समय लोकके लिए एक दरवाजेके समान मालूम हो रहा था।

उस समय दक्षिणोत्तर सात रज्जु चौड़ाईसे और मोक्षसे पाताल लोक तक चौदह रज्जु लम्बाईसे वह आत्मा व्याप्त हो गया। उसके बाद प्रतर क्रियाकी ओर वह आत्मा बढ़ा तो तीन वातवलयोंके भीतर वह आत्मा तीन लोकमें कुम्भमें भरे हुए दूधके समान सर्वत्र भर गया। उसका क्या वर्णन करें? सुबहकी धूप, शुभ्र आकाश प्रातःकालमें व्याप्त हिमपुंज, अथवा रात्रिकी चाँदनी आदि जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त होते हैं, उसी प्रकार वह आत्मा उस समय तीन लोकमें व्याप्त हो गया। आगे लोक पूरणके लिए वह आत्मा बढ़ा तो तीन वातवलयोंमें व्याप्त हुआ। लोक सर्वत्र उस समय शुद्धात्मप्रदेशसे व्याप्त हुआ है। लोग कहते हैं कि भगवान्‌के पेटमें त्रिलोक था, शायद यह कथन तभीसे प्रचलित हुआ है।

लोकाकाशको उस समय अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शनसे व्याप्त किया

और लोकके बाह्य त्रिवातवलयको भी उस अर्हंत परमात्माने व्याप्त किया था।

गुरु हंसनाथकी महिमा भगवान् आदिप्रभु और भरतेश ही जानते हैं, अन्य मनुष्योंको उसका परिज्ञान क्या हो सकता है?

जिस प्रकार षट्खंड दिग्विजयके लिए सम्राट् निकले थे एवं षट्खंड विजयके बाद अपने नगरकी ओर निकले उसी प्रकार यहाँपर त्रिलोक विजयी होकर अब अपने शरीरकी ओर ही लौटे। भुवन-पूरणसे प्रतरप्रतर से कपाट और कपाटसे दंडप्रक्रियाकी ओर बढ़कर अपने मूल शरीरमें ही आत्मप्रदेशमें प्रविष्ट हुआ। स्थूल वाङ्मनोदेहकी चंचलताको क्रमशः दूर कर उस परमात्मयोगीने लघु, गौर व तैजसशरीरको [illegible] लाकर रक्खा।

घातिया कर्मोंको नष्ट करनेपर जिन नामाभिधान हुआ, उसे ही तीर्थंकर पदके नामसे भी कहते हैं। बादमें शेष कर्मोंको भी नष्ट करनेका उस वीराग्रणीने उद्योग किया।

तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें ७२ प्रकृतियोंका नाश हुआ और बादमें १३ प्रकृतियाँ भी एकदम नष्ट हुईं। उस समय बिजलीके समान शरीर अदृश्य हुआ और वह परमात्मा लोकाग्र भागपर जाकर विराजमान हुआ।

इस बातके वर्णनमें ही विलम्ब हुआ। परन्तु योगबलसे उन कर्मोंको नष्ट करनेमें तो पाँच ह्रस्वाक्षरोंके उच्चारणका ही समय लगा, अधिक न लगा। इतने ही अल्प समयमें कर्मदानवका मर्दन उस वीरने किया।

समय अत्यन्त सूक्ष्मकाल है, एक ही समयमें सात रज्जु परिमित लोकाकाशके उस मार्गको तय कर वह परमात्मा लोकाग्रभागमें पहुँच गया। उसके सामर्थ्यका क्या वर्णन किया जाय।

वह अष्टकर्म तो नष्ट हुए। अब विशुद्ध अष्ट गुण वहाँपर पुष्ट होकर उत्पन्न हुए। उस समय उद्धत (उत्तम) मुनि, जिन आदि संज्ञा भी विलीन हुई। अब तो उस परमात्माको सिद्ध कहते हैं।

दिव्य सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्म, अवगाह, अगुरुलघुत्व अव्याबाध इस प्रकार आठ गुण व सिद्ध योगीको प्राप्त हुए। इसे ही नव-केवललब्धि कहते हैं। इस प्रकार आठ गुणोंसे वह परमात्मा सुशोभित हुआ। यद्यपि दंडकपाटादि अवस्थामें वह आत्मा विशाल आकृतिमें था

तथापि अब तो अन्तिम शरीरसे कुछ कम आकारमें वह मोक्षमें विराजमान है।

भरतेश्वर नामाभिधान तो शरीरके साथ ही चला गया है। अब तो वह परमात्मा सिद्धोंके समूहमें परमानन्दमें मग्न होकर विराजमान है, वहाँसे अब वह किसी भी हालतमें लौट नहीं सकता है। वह परम सुखका मार्ग है।

परमात्मा भरतयोगीको जिस समय कैवल्यधामकी प्राप्ति हुई उस समय आश्चर्यकी बात है कि भरतेश्वरके पाँच पुत्रोंने भी घातिया कर्मोंको नष्ट कर केवलज्ञानको प्राप्त किया। हंसयोगी, निरंजनसिद्धमुनि, महाशुयति, रत्नमुनि और संमुखि मुनिको केवलज्ञान एक ही साथ प्राप्त हुआ। उन पाँचोंका जन्म भी एक साथ हुआ था। और अब केवलज्ञान भी उनको एक साथ हुआ। इसलिए भरतेश्वरके मुक्ति जानेका दुःख उनको नहीं हो सका।

भरतेश्वरने पंचमगतिको प्राप्त किया तो पाँच पुत्रोंने घातिया कर्मों का पंचत्व (मरण) को प्राप्त कराया। लोकमें सम्राट्की महिमा अपार है।

श्रीमाला, वनमाला, मणिदेवी, हेमाजी और गुणमाला साध्वियोंने परम आनन्दको प्राप्त किया। ये तो उन पुत्रोंकी मातायें हैं, उनको हर्ष होना साहजिक है। परन्तु शेष साध्वियोंको भी आनन्द हुआ। सबोंने उन पुत्रों की प्रशंसा की, कीर्ति दस दिशाओंमें फैल गई।

पिताश्री भरतेश्वर मुक्ति गये इस बातका दुःख अर्ककीर्ति व आदिराज को नहीं हुआ, क्योंकि पाँच सहोदरोंने एक साथ केवलज्ञान प्राप्त किया इस आनन्दमें वे मग्न थे। उसी समय कुछ राजाओंको, कुछ कुमारोंको, कुछ सम्राट्के मित्रोंको अवधिज्ञान आदि सम्पत्तियोंकी प्राप्ति हुई। इसमें आश्चर्य क्या है? भरत चक्रवर्तीकी संगतिमें रहनेवालोंको यह कोई बड़ी बात नहीं है।

मागधामरको परम सन्तोष हुआ। सन्तोषके भरमें वह कहने लगा कि मेरे स्वामीने इस लोकमें रहते हुए सबको सन्तुष्ट किया और यहाँसे जाते हुए भी सबको आनन्दित किया। धन्य है! इसी प्रकार वरतनुदेव, विजयार्धं, हिमवंत आदि देव भी सम्राट्की प्रशंसा कर रहे थे। गंगादेव और सिंधुदेव भी बार-बार आनन्दसे भरतेश्वरका स्मरण कर रहे थे।

उसी समय जिन पाँच पुत्रोंको केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई उनको गंध-

कुटीका रचना की गई। मनुज, नाग आमरोंने उनकी पूजा की। वहाँपर बड़ी भारी प्रभावना हो रही है।

इधर भरत सर्वज्ञ जिस शिलातलसे मुक्तिको प्राप्त हुए उसके पास देवेन्द्रने होमविधान किया एवं आनन्दसे नर्तन कर रहा था और उसे अर्ककीर्ति और आदिराज भी देखकर आनन्दित हो रहे हैं।

धरणेंद्र प्रशंसा कर रहा था कि कहाँ तो षट्खंडका भार और कहाँ ९६ हजार रानियोंका आनन्दपूर्ण खेल, कहाँ तो क्षणमात्रमें कैवल्य प्राप्त करनेका सामर्थ्य ! धन्य है ? अपने आपको स्वयं ही गुरु बनकर दीक्षा ली। और अपनी आत्माको स्वयं ही देखकर शरीरका नाश किया। एवं अमृत पदको प्राप्त किया। शाबाश !

क्या शरीरको कोई कष्ट दिया ? नहीं, भिक्षाके लिए किसीके सामने हाथ पसारा ? नहीं ? चक्रवर्तीके वैभवमें ही मोक्षसाम्राज्यको प्राप्त किया। विशेष क्या ? झूला झूलनेके समान मुक्ति-स्थानमें जा विराजे। धन्य है !

सिंहासनसे उतरकर आये तो इधर कमलासनपर विराजमान हुए। रत्नमय गन्धकुटी थी तो उसका भी परित्याग कर अमृतलोकमें पहुँचे। लोकविजयी भरतेश्वरको नमोस्तु ! भ्रमण कर आहार नहीं लिया। तपोमुद्राको प्राप्त कर कुछ समय देशमें विहार भी नहीं किया। वैभवमें थे और वैभवमें ही पहुँचकर मुक्तिसाम्राज्यके अधिपति बने, आश्चर्य है ! इस प्रकार धरणेंद्र आनन्दसे प्रशंसा कर रहा था कि देवेन्द्रने, विनोदसे कहा कि अब बस करो ! कलियुगके रत्नाकर सिद्धके लिए भी कुछ रहने दो। वह भी भरतेश्वरकी प्रशंसा करेगा।

धरणेंद्रने कहा कि देवेन्द्र ! चक्रवर्तीकी महत्ताको वर्णन करनेकी सामर्थ्य न मुझमें है और न रत्नाकर सिद्धमें है और न तुममें है। वह तो एक अलौकिक विभूति है। देवेन्द्रने कहा कि तुम सच कहते हो। गुणमें मत्सरकी क्या जरूरत है। सम्राट्के समान वैभवके बहुभारको धारण कर क्षणमें मुक्ति जानेवाले कौन हैं ? उनके समान ही हमें भी मोक्ष-साम्राज्य शीघ्र प्राप्त होवे। इस भावनासे देवेन्द्रने होम-भस्मको मस्तकपर लगाया एवं उसी प्रकार धरणेंद्रने भी आनंदसे उस होम-भस्मको धारण किया। वहाँपर उपस्थित अर्ककीर्ति आदि सभीने भक्तिसे होम-भस्मको धारण किया। यहाँपर भरतेश्वरका मोक्ष-कल्याण हुआ। सबको आनन्द हुआ।

शरीरके अदृश्य होते ही गन्धकुटी भी अदृश्य हो गई। मुनिगण व

अर्जिकाय आदि संयमीजन वहाँसे अन्य स्थानमें चले गये एवं सुखसे विहार करने लगे। इसी प्रकार देवेन्द्र, धरणेंद्र गंगादेव, सिंधुदेव आदि व्यंतरोंने भी केवली, जिन, मुनिगण आदिके चरणोंकी वन्दना कर एवं अर्ककीर्ति, आदिराजसे मिष्टव्यवहारसे बोलकर अपने-अपने स्थानमें चले गये। उसी प्रकार अर्ककीर्ति आदिराज भी उन केवलियोंकी वन्दना कर अपने नगरमें चले गये। और गन्धकुटियोंका भी इधर विहार हो गया।

मागधामर जब अपने महलमें पहुँचा तो उसे बार-बार अपने स्वामीका स्मरण हो रहा था, दुःखका उद्वेग होने लगा। जिन सभामें शोक उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु यहाँपर सहन नहीं कर सका। शोकोद्रेकसे वह प्रलाप करने लगा कि हे भरतेश्वर! मेरे स्वामी! देवेन्द्रको भी तिरस्कृत करनेवाले गंभीर! विशेष क्या, पुण्यरूपी कल्पवृक्ष! आप इस प्रकार चले गये! हम बड़े अभागे हैं। आप वीरता, विनय, विद्या, परीक्षा, उदारता, शृंगार, धीरता आदिके लिए लोकमें अप्रतिम थे। हम कमनसीब हैं कि आपके साथ नहीं रह सके!

राजसभामें आकर जब मैं तुम्हारा दर्शन करता था तो स्वर्गलोकका ही आनन्द मुझे आता था। अपने सेवकको इस प्रकार छोड़कर मोक्ष स्थानमें चले जाना क्या उचित है? स्वामिन्! कभी मेरी प्रार्थनाकी ओर आपने उपेक्षा नहीं की। मुझे अन्य भावनासे कभी नहीं देखी। आजपर्यंत मेरा सत्कार बहुत कुछ किया। ऐसी अवस्थामें मुक्ति जाकर मुझे आपने मारा ही है इस प्रकार मागधामर उधर दुःखित हो रहा था तो इधर गंगादेव और सिंधुदेव (गंगासिंधुतटके अधिपति) भी अपने दुःखको सहन नहीं कर सके। वे भी शोकोद्रिक्त हुए। हाय! भावाजी आप हमें छोड़चले गये तो अब हमारा जीना क्या सार्थक है? हमें यमदेव आकर क्यों नहीं ले जाता? आपके सालेके रूपमें जब हमें लोग पहिचानते थे, उस समय अपने वैभवका क्या वर्णन करें कोई चूँतक नहीं कर सकते थे। अब हमें किनका आश्रय है, किसके जोरसे हम लोग अपने वैभवको बतावें" इस प्रकार रो रहे थे जैसे कोई कंजूस अपने सुवर्णको खोया हो। स्वामिन्! हम तो आपके सेवक बनकर दूर ही रहना चाहते थे। परन्तु हमारी सेवासे प्रसन्न होकर आपने ही हमें अपने बहनोई बनाये। परन्तु आश्चर्य है कि अब अपने बहनोइयोंको इस प्रकार कष्ट दिया। आपके प्रेमको हम कैसे भूल सकते हैं! इस प्रकार बहुत दुःखके साथ सर्व वृत्तान्त को अपनी पत्नी गंगादेवी व सिंधुदेवीके साथमें कहा। तब उन देवियोंका भी दुःखका पार नहीं रहा।

भाई ! हम तो बहुत दुःखी हुई, हमारे उदरमें तो तुम अग्निको ही प्रज्वलित कर चले गए। इस प्रकार जमीन पर लोट-लोट कर रो रही थी। सहोदरियोंका दुःख क्या कम होता है ! भरतेश्वरकी ये दोनों मानो हुई बहिनें थीं। भाई ! तुम तो अपूर्व थे, विद्वानोंके लिए मान्य थे, आँख व मनको प्रसन्न करनेवाले राजा थे। ऐसी हालतमें तुमने हमको इस प्रकार दुःखी कर एक तरहसे हमारी हत्या ही की है।

भाई ! हमारे साथ तुम्हारा प्रेम क्या कम था ? हम रास्तेमें रोकती तो तुम रुकते थे, प्रेमसे तुम्हारे दुपट्टेको खींचती, हमारी बातको तुमने कभी टाली ही नहीं, ऐसी हालतमें आखिरतक हमारे साथ न रहकर जाना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? पट्टरानीके प्रेमको तुम भूल गए, सहोदरियोंकी भक्तिको भी तुम भूल गए। इस प्रकार हमें मार्गमें डालकर जाना क्या योग्य है ? भूलोककी संपत्ति आज नष्ट हो गई। पीहर जानेकी अभिलाषा भी अदृश्य हो गई। हम लोग तो पापी हैं, हमारे सामने तुम कैसे रह सकते हो। तुम्हारी सब बातें दर्पणके समान हैं। इस प्रकार गंगादेवी सिंधुदेवीका रोना उधर चल रहा था, इधर भरतेश्वरकी पुत्रियाँ भी दुःखसे मूर्छित हो रही हैं।

पिताजी ! क्या हम लोगोंको यहाँपर छोड़कर तुम लोकाग्रभागमें चले गए ? हाय ! इस प्रकार दुःखसे विलाप कर रही थीं, जैसे कोई बालक गरमागरम घी भूलसे पी गया हो। पुत्र, पुत्रवधूएँ एवं अपनी स्त्रियोंको लेकर तुम चले गए। एक तरहसे हमारे पीहरको तुमने बिगाड़ दिया। षट्खंडाधिपति ! क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? स्वामिन् ! किसी भी कार्यमें तुमने आजतक हमें भूला नहीं तो आज इस कार्यमें क्यों भूल गए ? हाय ! दुर्दैव है। इस प्रकार बत्तीस हजार पुत्रियोंने विलाप किया।

इसी प्रकार भरतेश्वरके ३२००० जामाता और हजारों श्वसुर भी जहाँ तहाँ दुःखी हो रहे थे। इतना ही क्यों ? बाहुबलिके तीन पुत्र भी दुःखसे मूर्छित हुए। फिर उठकर बार-बार चिन्तित होने लगे। चलो ! दीक्षावनमें स्वामीको देखेंगे, इस विचारसे चलने लगे तो समाचार मिला कि वे मोक्ष चले गये हैं, फिर वहींपर पक्षभग्न पक्षीके समान गिर पड़े। फिर विलाप करने लगे कि हाय ! पिताजी ! हम तो दुर्दैवी है। आप हमारी चिन्ताको छोड़कर इस प्रकार चले गये। कुछ समयके बाद जाते तो आपका क्या बिगड़ जाता था ? इतनी जल्दीकी क्या आवश्यकता

थी ? हमारे खास माता-पिताओंके प्रेमको हम नहीं जानते हैं। उसे भुलाकर आपने ही हमारा पालन-पोषण किया। बड़े भारी वैभवपदमें हमें प्रतिष्ठित किया, संतोषके साथ हमारे जीवनक्रमको चलाया। पिताजी ! अन्तमें इस प्रकार क्यों किया ? इस संपत्तिके लिए धिक्कार हो। आपके ही हाथसे दीक्षा लेनेका भाग्य भी हमें नहीं मिला। हमें तिरस्कार कर आप चले गये, हमें धिक्कार हो" इस प्रकार तीनों कुमार दुःखी हो रहे थे।

इधर अर्ककीर्ति आदिराज गंधकुटीसे लौटकर अपनी सेनाको छोड़कर नगरमें प्रविष्ट हुए। नगरमें सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था। प्रजाओंकी आँखोंसे आँसू बह रहा था। इन सब बातोंको देखकर दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए महलकी ओर आगे बढ़े, वहाँपर सम्राट्के सिंहासनको देखकर तो उनका शोक दबा नहीं रहा, एकदम वे शोकोद्विग्न हुए। आँसू बहने लगा। जोर जोरसे रोने लगे। स्वामिन् ! हम दुर्दैवी हैं। इस प्रकारका वचन एकदम उनके मुखसे निकला।

पिताके सुन्दर रूपको उन्होंने वहाँ नहीं देखा तो उनका धैर्य ढीला हुआ ! तेज पलयित हुआ, वचनका चातुर्य नष्ट हुआ। सूर्यके रहनेपर भी रात्रिके समान मालूम होने लगा।

पिताजी ! आप कहाँ हो, षट्खंडके समस्त राजा लेकर खड़े हैं। उसे आप स्वीकार कीजिये। तुममें कभी आलस्यको हमने देखा ही नहीं। तुम्हारे दरबारमें रिक्तता कभी नहीं थी, लोगोंका आना हर समय बना रहता था। अब तो यह बिलकुल सूनासा मालूम हो रहा है। इसे हम कैसे देख सकते हैं ? आपको हम यहाँ नहीं देखते हैं, साथमें हमारे बहुतसे सहोदर भी यहाँ नहीं है। रत्नके महलमें भी अब कान्ति नहीं रही, अब हम किसके शरणमें जायें !" इस प्रकार अनेकविधसे दुःख कर पुनश्च वस्तुस्थितिको समझकर अपने आत्माको सांत्वन किया। भरतपुत्रोंको यह सहजसाध्य है।

सेवकोंको एवं आप्तजनोंको अपने-अपने स्थानोंमें भेजकर दोनों कुमार महलमें प्रविष्ट हुए। वहाँपर रानियाँ दुःखसमुद्रमें मग्न हो रही थीं। 'स्वामिन् ! स्त्रियोंके अपारसमूह यहाँसे चला गया, अब तो हम लोग यहाँ रहे हैं। हमें तो यह महल नहीं राक्षसभुवनके समान मालूम हो रहा है, इसमें हम लोग कैसे रह सकती हैं ? उनके साथ ही हम लोग भी चली जातीं तो हमें परमसुख प्राप्त होता। हमारा यहाँ रहना उचित नहीं

हुआ, हमारा अनुभव तो यह है। परन्तु आपके मनका विचार क्या है कौन जाने ? यहाँपर हमारी सासुदेवियाँ नहीं हैं, हमारी बहिनें भी अदृश्य हो गई हैं, मामाजीका पता ही नहीं, ऐसी हालतमें यह सम्पत्ति क्षण नश्वर हैं, इसपर मोह करना उचित नहीं, छी ! धिक्कार हो" इस प्रकार भरतेश्वर पुत्र-वधुएँ विलाप कर रही थीं।

भरतेश्वरकी पुत्रवधुओंको दुःख हो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है ? लोककी समस्त स्त्रियाँ ही उस समय दुःखमें मग्न थीं। क्योंकि भरतेश्वर परदारसहोदर कहलाते थे।

लोकके समस्त ब्राह्मणगण भी भरतेश्वरके वियोगसे दुःखसंतप्त हो रहे हैं। हे गण्य ! भरतेश्वर ! आपका इस तरह चला जाना क्या उचित है ! वस्त्ररत्नहिरण्यभूमिके दाताका इस प्रकार वियोग ! क्या करें। हमारा पुण्य क्षीण हुआ है।

विशेष क्या, मार्ग चलनेवाले पथिक, पत्तनमें रहनेवाले नागरिक, परिवारजन, विद्वान्, कविजन, राजा, महाराजा, माण्डलिक आदि सभीने कामदेवके अग्रज भरतेश्वरके मुक्ति जानेपर रात्रिदिन दुःख किया। मनुष्योंको दुःख हुआ इसमें आश्चर्य ही क्या है। हाथी, घोड़ा, गाय आदि पशुओंने भी घास आदि खाना छोड़कर आँसू बहाते हुए दुःख व्यक्त किया।

विजयपर्वत नामक पट्टके हाथी और पवनंजय नामक पट्टके घोड़ेको भी बहुत दुःख हुआ। उन दोनोंने आहारका त्याग किया एवं शरीरको त्यागकर स्वर्गमें जन्म लिया। भरतेश्वरका संसर्ग सबका भला ही करता है। गृहपतिने दीक्षा ली, विश्वकर्म घरमें ही रहकर व्रतसंयमसे युक्त हुआ। आगे अयोध्यांक भी अपने हितको विचार कर दीक्षा लेगा।

चक्ररत्न आदि ७ रत्न जो अजीव रत्न हैं, शुक्रके अस्तमानके समान अदृश्य हुए। चक्रवर्तीके अभावमें वे क्यों रहने लगे ?

उन रत्नोंको किसने ला दिया ? उनको उत्पन्न किसने किया ? सम्राट्के पुण्यसे उनका उदय हुआ। सम्राट्के जानेपर उनका अस्त हुआ। जैसे आये वैसे चले गये, इसमें आश्चर्य क्या है ?

चक्रवर्तीके पुण्योदयसे विजयार्धमें जिस वज्रकपाटका उद्घाटन हुआ था, उसका भी दरवाजा अपने आप बन्द हुआ। चक्रवर्तीका वैभव लोकमें एक नाटकके समान हुआ।

इस प्रकार मोहके कारणसे लोक भरतेश्वरके मुक्ति जानेपर दुःख समुद्रमें गोते लगा रहे थे। उधर मोक्ष साम्राज्यमें अमृतकान्ताके बीच भरतेश्वर जो आनन्द भोगमें मग्न हुए, उसका भी वर्णन करना इस प्रसंगमें अनुचित नहीं होगा। प्रतिदिन शृंगार पाकर अपनी आत्माको देखते हुए उस भरतेश्वरने कर्मोका नाश किया, इसलिए उसका नाम शृंगारसिद्ध ऐसा प्रसिद्ध हुआ।

शृंगारसिद्ध भरतेश्वर जब मोक्षस्थानमें पहुँच रहे थे उस समय मुक्तिलक्ष्मीकी दूतियोंने आकर उसे खबर दिया। वह मुक्तिलक्ष्मी एकदम अपने पलंगसे उठकर खड़ी हुई। उसे आनन्दसे रोमांच हुआ। मुक्तिलक्ष्मीको खबर देनेवाली दूतियां क्षमा व विरक्ति नामकी थीं। अपने पतिके आनेका सुन्दर समाचार इन दूतियोंने दिया, इसलिए मुक्तकांतोने उनको आनन्दसे आलिंगन दिया एवं विशेषरूपसे सत्कार किया। बाद अपने वीर पतिके स्वागतके लिए वह अपनी सखियोंके साथ आगे बढ़ी। भरतेश्वर सदृश्य शृङ्गारसिद्धको वरनेके लिए एवं उस शिकारको अपने वश करनेके लिए वह बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा कर रही थी। अब जब वह वीर स्वयं इसके साथ सम्भव्य करनेके लिए आ रहा है तो उसे आनन्द क्यों नहीं होगा? वह हंसती हुई आगे बढ़ी, उस समय आनन्दसे फूली नहीं समा रही थी।

सहिष्णुता, शांति, कांति, सन्मति, ऋषि, बुद्धि नामक पवित्र देवियोंने छत्र, चामर, दर्पण, कलश आदि मंगल द्रव्योंको हाथमें लिया है, उनके साथ वह मुक्तिलक्ष्मी भरतेश्वरके स्वागतके लिए आ रही है।

शृङ्गार प्राप्त विद्यादेवियां आगेसे शृङ्गारपदोंको गा रही हैं। साथ ही शृङ्गाररसकी वर्षा करती हुई वह मुक्तिदेवी आ रही है। कल्याणदेवियां वेणुवीणाको लेकर स्वरमंडलके साथ मंगल पदोंको गा रही हैं। उनके अनेक सम्मानपूर्ण वचनोंको सुनती हुई वह आगे बढ़ रही है। उस मुक्तिलक्ष्मीके साथ अणिमादि सिद्धिको प्राप्त देवियां भी हैं। उनमेंसे कोई मुक्ति देवीकी वन्दना कर रही है तो कोई चरणस्पर्श कर रही है, कोई आभूषणोंको व्यवस्थित कर रही है, इस प्रकार बहुत आनन्दके साथ वह आ रही है। उसकी बोल, उसकी चाल आदि आनन्दमय है, परिवारदेवियां कानमें कह रही हैं कि तुम्हारे पति बहुत बुद्धिमान हैं, कुशल हैं। इन सब बातोंको सुनकर वह प्रसन्न हो रही है।

उसके चरणकमलोंकी कांति तो तीन लोकमें व्याप्त होती है, और

दिव्यशरीरकी कांतिसे शृङ्गारसिद्धको भी फीका कर देगी, इस ठौविसे वह सुन्दरी आगे बढ़ रही है। चन्द्रसूर्योंकी कांति तो उसकी दासियोंके शरीरमें भी है, परन्तु यह तो कोटिचन्द्रसूर्योंकी कांतिसे युक्त है।

कामिनियोंको वशमें करनेवाले कामदेव तो उस देवीके निवास प्रदेशमें प्रवेश करनेके लिए अयोग्य है। उस मुक्तिकांताकी दासियाँ अपनी दृष्टि से हजारों कामदेवोंको वशमें कर सकती है।

दिव्यपादसे लेकर मस्तकतक संजीवन अमृत ही भरा पड़ा है। उसे जन्म, जरा, मरण नहीं है। अतएव अमृतकामिनीके नामसे उसका उल्लेख करते हैं। नर, सुर, नाग लोककी उत्तम स्त्रियाँ उसकी चरण-दासियाँ हैं। पादांगुष्ठकी [illegible] हैं! भगवान् परमात्मा ही आगे उस अमृतकांताके सौंदर्यको कौन वर्णन कर सकता है?

वह अमृतकामिनी विलासके साथ वीरभरतेश्वरके स्वागतके लिए आ रही है, इधर यह शृङ्गारसिद्ध बहुतवैभवके साथ आ रहा है?

तीन लोककी उत्तमोत्तमस्त्रियोंको भोगकर उनसे तिरस्कार उत्पन्न होनेपर तीन शरीरोंका जिसने नाश किया, केवल चित्प्रकाशको ही शरीर बना लिया है, वह शृङ्गारसिद्ध आ रहा है।

इधर उधर फिरकर देखनेकी दृष्टि वहाँपर नहीं है चारों ओरकी बातोंको स्पष्ट देखने व जाननेकी सामर्थ्य उस परमात्मामें विद्यमान है। पुनः न्यूनताको न प्राप्त होनेवाला यौवन है। तीन लोकको व्याप्त होने-वाला प्रकाश है। करोड़ों इन्द्र, करोड़ों नागेन्द्र, करोड़ों नरेन्द्र एवं करोड़ों कामदेवोंकी संपत्ति व लावण्य मेरे पादांगुष्ठमें निहित है, इस बातको व्यक्त करते हुए वह आ रहा है। वह वीर बुद्धिमान् है, सुन्दर है, तीन लोकको उठानेकी सामर्थ्य रखता है। महासुखी है, मुक्तिसतीको इसे देखते ही हार खानी पड़ेगी, इस प्रकारके वैभवसे वह वहाँ आ रहा है।

उसके साथ कोई नहीं है, वह शृंगारसिद्ध अकेला है। वीरतापूर्ण ठौविमें आगे बढ़कर उसने मुक्तिकांताको देखा तो मुक्तिकांताने भी शृङ्गार सिद्धको देख लिया। दोनोंको एकदम रोमांच हुआ। आनंद-परवश होकर दोनों मूछित होना चाहते थे, इतनेमें परब्रह्म शक्तिने उस मूर्छाको दूर किया। तत्काल सरस्वतीदेवीने उसे जागृत किया एवं कहने लगी कि अपने पतिकी आरती उतारो तब उस देवीने शृंगारसिद्धका चरणस्पर्श किया। एवं पतिके सामने खड़ी हो गई। परिवारदेवियाँ कलश

व दर्पणको हाथमें लिए हुई थीं, परन्तु शृङ्गारसिद्धकी दृष्टि उस ओर नहीं थी। उसकी दृष्टि मुक्तिकांताके रत्नकुचकलश व मुखदर्पणमणिकी ओर थी। वह उसीको आनन्दसे देख रहा था। तत्क्षण देवीने पतिकी आरती उतारकर कंठमें पुष्पमाला धारण कराई। एवं स्त्रियोंके मंगल गीत के साथ शृङ्गारसिद्धके चरणकमलोंको नमस्कार किया। जब मुक्त्यंगना-शृंङ्गारसिद्धके चरणोंमें पड़ी तो उसे हाथसे पकड़कर उठानेकी इच्छा तो एकदफे हुई। परन्तु पुनः सोचकर वह सिद्ध वैसा ही खड़ा रहा। न मालूम उसके हृदयमें क्या बात थी।

विवाह तो कन्यादानपूर्वक हुआ करता है। अब यहाँपर इस कन्याको दान देनेवाले माता पिता नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें स्वयं प्रसन्न होकर आई हुई कन्याके साथ मैं पाणिग्रहण कैसे कर सकता हूँ। इस विचारसे वह शृङ्गारयोगी उसकी ओर देखते ही खड़ा रहा।

मुक्तिकांताकी सखियोंने सिद्धके हृदयको पहिचान लिया। कहने लगी कि स्वामिन्! तुम्हारे प्रति मोहित होकर आई हुई कन्याके हाथको ग्रहण करो, सुविख्यात मुक्तिकांताको देनेवाले कौन है। उसके पिता कौन? माता कौन? वह स्वयंसिद्ध विनीता है। कितने ही समयसे आपके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है। अब आपके आनेपर आनन्दसे चरणोंमें पड़नेवाली प्रेयसीके पाणिग्रहण न करते हुए आप खण्ड-खण्ड देख रहे हैं। हे निष्करुणि! आपके हृदयमें क्या है? कानकी शिकारमें आपको सुनती हुई, आँखकी शिकारसे देखती हुई एवं प्रत्यक्ष संसर्गके लिए हृदयसे कामना करनेवाली युवती कामिनीको जब आप उठाकर आलिंगन नहीं देते हैं तो आप आत्मानुभवी कैसे हो सकते हैं? हाय! दुःखकी बात है।

वह मुक्तिकामिनी प्रसन्न होकर आपके चरणोंमें पड़ी है। हमारी स्वामिनी महापतिभक्ता है, आप नायकोत्तम है। इसलिए इसे अपनी स्त्री बनायें।

इन बातोंको सुनकर भी वह शृङ्गारसिद्ध हँसते हुए खड़े ही रहे। इतनेमें उसके हृदयमें विराजमान गुरुहंसनाथने कहा कि हे चतुर! इस कन्याको मैं प्रदान करता हूँ। उसका पाणिग्रहण करो। तत्क्षण उसने हाथ पकड़ लिया। मस्तकपर हाथ लगाकर उठाया, विशाल बाहुओंसे गाढ़ आलिंगन दिया। परिवारदेवियोंने आनन्दसे जय जयकार किया। अब वह कुशलसिद्ध अधिक विलम्ब न करके उसके हाथ पकड़कर शय्यागृहकी ओर ले गया।

अब सब दासियाँ बाहर रह गईं। उस शय्यागृहमें दोनों ही प्रविष्ट हो गये। वहाँपर वे दोनों योगी या परमभोगी निर्वाणरतिके आनन्दमें मनके अभिलाषाकी तृप्ति होनेतक मग्न हो गये।

परम सम्यक्त्वका शय्यागृह है। अगुरुलघु ही वहाँपर चंदोवा है। अव्याबाधरूपी परदा वहाँपर मौजूद है। उसके अन्दर वे चले गये। अनन्तदर्शनरूपी दीपक हैं, अनन्तवीर्यरूपी पलंग है। सूक्ष्मगुणरूपी सुन्दर तकिया है। अवगाहनगुणरूपी मृदुतल्प (गादी) है। वहाँपर सुज्ञान संयुक्त दोनों सुन्दर भोगी भोगमें मग्न हो गये। शरीरके अन्दर प्रविष्ट हो जाय इस प्रकार एकमेकको आलिंगन देकर शक्करसे मीठे ओठोंसे चुम्बन ले रहे हैं। इस प्रकार प्रचुर आनन्दके साथ उन दोनोंने संभोग किया। आनन्दसे चुम्बनके समय परस्पर ओठको स्पर्श कर रहे थे, तो करोड़ों क्षीरसमुद्रोंको पीनेका आनन्द आ रहा है। जब मुक्तिदेवीके स्तनोंको हाथसे पकड़ रहा है तो तीन लोकका वैभव हाथ आया हो इतना आनन्द उस शृङ्गारसिद्धको हो रहा है।

उसके मुखको देखते हुए तीन लोकके मोहनस्वरूपको देखनेके समान आनन्द हो रहा है। उसकी स्मितनेत्रोंको देखनेपर तो अरबों खरबों काम-देवोंके दरबारमें बैठे हुएके समान आनन्द आ रहा है।

सुन्दर, कृशकटी, प्रौढ़भुज, मृदु जंघाओंको स्पर्श करते हुए जब वह भोग रहा है तो तीन लोकमें मोहनरस लबालब भरनेके समान आनन्द आ रहा है। लावण्य भरे हुए उसके रूपको देखनेके लिए और उसके मनोभाव-को जाननेके लिए केवलज्ञान और केवलदर्शन ही समर्थ है। इन्द्रियोंकी शक्ति वहाँतक पहुँच नहीं सकती है।

सरससल्लाप, चुम्बन, योग्य हास्य, नेत्रकटाक्षक्षेप, प्रेम व आलिंगन आदिके द्वारा वह मुक्त्यांगना उस सिद्धके साथ एकीभावको प्राप्त हो रही है। इन्द्रकी शची, नागेन्द्रकी देवी, चक्रवर्तीकी पट्टरानीमें जो इन्द्रिय सुख होता है उसे वह तिरस्कृत कर रही है। उसकी बराबरी कौन कर सकते हैं?

अब वह शृंगारसिद्ध अनंतजन्मोंमें तीन लोकमें सर्वत्र अनुभूत सुखको भूल गया। मुक्तिकान्ताके सुखमें वह परवश हुआ। विशेष क्या? वह उसके साथ अद्वैतरूप बन गया।

मोहके वशीभूत होकर अनेक जन्मोंमें अनेक स्त्रियोंके साथ भोगकर भी वहाँपर तृप्ति नहीं हुई। परन्तु उस अमृतकान्ताके भोगनेपर वह तृप्त

हुआ एवं आरामके साथ उसके साथ रहा। वह परमानन्दसुख आज उसे मिला इसलिए आज उसकी आदि है, परन्तु वह कभी नष्ट होनेवाला नहीं है अतएव अनन्त है। इस प्रकारके अविनश्वर अमृतकान्ताके सुखको उस शृंगारसिद्धिने प्राप्त किया।

अब उनके रूप दो विभागमें नहीं है। दोनों एक रूप होकर रहते हैं। इनके अद्वैत प्रेमको देखकर अगोरा पड़ोसमें रहनेवाले सिद्ध व मुक्ति-कान्तायें प्रसन्न होने लगी है। उस शृंगारसिद्धने तीन प्रकारके रत्न जो कहे गये हैं उनको एक ही रूपमें अनुभव किया। उसे भी वहाँपर अमृत-स्त्रीरत्नके रूपमें देखा। इस प्रकारका वह रत्नकारसिद्ध हंसनाथके मनो-रत्नगेहमें परमानन्दमय सुखसे निवास करने लगा।

इधर अयोध्याके महलमें स्त्रियोंके बीच दुःख समुद्र उमड़ा पड़ा था उसे अर्ककीर्ति और आदिराजने शान्त किया। उनको अनेक प्रकारसे सांत्वनापर उपदेश किया। संसारसुख किसके लिए स्थिर है? कैवल्य-सिद्धिका नाश कभी नहीं हो सकता है। हंसनाथकी भक्ति क्या नहीं दे सकती है? इसलिए हंसनाथ ही हमारे लिए शरण है। इस प्रकार उन्होंने उन स्त्रियोंको समझाया।

अब कुछ समयमें ही अविलम्ब अर्ककीर्ति व आदिराज भी परम दीक्षा-को ग्रहण करेंगे। उसे कलावंत सज्जन अर्ककीर्ति-विजयके नामसे वर्णन करेंगे। इधर पराक्रमियोंके स्वामी भरतेश्वरकी निर्वाण पूजा शक्र आदि प्रमुखोंने सुक्रमके साथ की एवं अपने-अपने स्थानपर चले गए।

जीवन भर शरीरमें जरा भी न्यूनताका अनुभव न करते हुए दीर्घ-कालतक सुखोंको अनुभव कर एकदम भरतेश्वर मोक्ष साम्राज्यके अधिपति बने। यहाँपर मोक्षविजय नामक चौथा कल्याण पूर्ण होता है।

भरतेश्वरकी महिमा अपार है वह अलौकिक विभूति है। संसारमें रमे रहे तबतक सम्राट्के वैभवसे ही रहे, तपोवनमें गये तो ध्यान साम्राज्यके अधिपति बने। वहाँसे भी कर्मोंपर विजय पाकर मोक्षसाम्राज्यके अधिपति बने। उनका जीवन सातिशय पुण्यमय है। अतएव मोक्षसाम्राज्यमें उनको अधिष्ठित होनेके लिए देरी न लगी, उनकी सदा भावना रहती थी कि—

हे परमात्मन्! अनेक चिन्ताओंको छोड़कर मैं एक ही याचना करता हूँ, वह यह कि तुम हर समय मेरी रक्षा करो।

हे सिद्धात्मन् ! आप विस्मयस्वरूप हैं, विचित्रसामर्थ्यसे युक्त हैं । आकस्मिक महिमा सम्पन्न हैं । महेश ! अस्मदाराध्य ! दशदिशारश्मि ! हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान करो ।

इसी भावनाका फल है कि उन्होंने अलौकिक परमानंदमय पदको प्राप्त किया ।

इति अयोगकेवल संधि

मोक्षविजयनाम चतुर्थकल्याणं सम्पूर्णम्

—००—

सर्वनिर्वेग संधिः

परम परंज्योति कोटिचंद्रादित्यकिरणसुज्ञानप्रकाश ।
सुरमुकुटमणिरंजितचरणाब्ज शरण श्रीप्रथमजिनेश ।।

परमात्मन् ! क्या कहूं, उस भरतेश्वरकी महिमाको, उन्होंने जब मुक्तिको प्राप्त किया तो लोकमें सर्व जीव वैराग्य सम्पन्न हुए। लोकमें अग्रगण्य भरतेश्वरका भाग्य जब इस प्रकारका है तो हमारी संपत्तिका क्या ठिकाना ? यह कभी स्थिर रह सकती है ? धिक्कार हो, इस विचारसे लोग अपनी सम्पत्ति आदिको छोड़कर दीक्षित हो रहे हैं।

षट्खंडाधिपति सम्राट्ने जब भोगका त्याग किया तो हम लोग इस अल्पसुखमें फंसे रहें यह ग्वालोंकी ही वृत्ति है, बुद्धिमान इसे पसन्द नहीं कर सकते हैं, इस विचारसे बुद्धिमान् लोग अपने परिग्रहोंको त्यजकर कोई तपस्वी बन रहे हैं।

भरतेश्वर तो महाविवेकी बुद्धिमान था, जब उसने इस विशाल भोग-को परित्याग किया, उसे जानते देखते हुए भी हम लोग मोहमें फंसे रहें तो तब यह भेड़ियोंकी वृत्ति है। इसका परित्याग करना ही चाहिए, इस विचारसे कोई तपश्चर्याकी ओर बढ़ रहे हैं।

भरतेश्वरके रहते हुए तो संसारमें रहना उचित है, परन्तु उसके चले जानेपर भिक्षासे भोजन करना ही उचित है, इसीमें उत्तम सुख है। इस विचारसे कोई तपस्वी बन रहे हैं।

स्त्रीपुरुष सभी वैराग्यसे युक्त हो रहे हैं। कुछ लोग एकत्रित होकर चिन्तासे विचार करने लगे कि इस प्रकार सभी स्त्रीपुरुष दीक्षित हो जाय तो इनको आहार देनेवाले कौन रहेंगे ? इस प्रकारकी चिन्ताका अवसर प्राप्त हुआ। जिनका कर्म ढीला हो गया है वे तो दीक्षित होकर चले गये जिनका कर्म दृढ़ था, कठिन था वे तो अपने घरमें ही रहकर निर्मल मुनियोंकी सेवा सुश्रूषा करने लगे। धर्मके लिए दारिद्र्य कहां ?

पोदनपुरके अधिपति महाबल राजा विरक्त होकर दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुआ। उसने अपने दोनों भाइयोंको राज्यपालन करनेके लिए आग्रह

किया। उन दोनों भाइयोंने स्पष्ट निषेध किया। अब तीनोंने विचार किया कि अर्ककीर्ति और आदिराजको यह परिस्थिति समझाकर अपने तीनों दीक्षित होंगे। तीनों ही अयोध्याकी ओर रवाना हुए।

उनके साथ अगणित सेना नहीं, गाजा-बाजा भी नहीं, सुन्दर अलंकार भी नहीं हैं। सर्वश्रृंगारोंसे रहित होकर वे अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए।

पिताके रहनेपर तो उस नगरकी शोभा ही और थी। अब तो वह नगर बिलकुल शून्य मालूम हो रहा है। इन पुत्रोंको बहुत दुःख हुआ। वे कहने लगे कि इस नगरमें रहनेकी अपेक्षा अरण्यमें रहना अधिक सुखकर है। हाय! पिताजी अपने साथ ही नगरकी सम्पत्तिको भी लूट ले गये! नहीं तो उनके अभावमें इस नगरकी यह हालत क्यों हुई? अयोध्या नगर-की यह हालत हुई, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। सारे देश ही कला-हीन हो गया है। इस दुःखके साथमें भरतेशकी राज्यशासन महत्तापर भी गर्व करने लगे। आगे बढ़ते हुए सामने कांतिविहीन रत्नगोपुर उनको दृष्टिगोचर हुआ। उसे देखकर और भी आश्चर्यचकित हुए कि पिताजीके साथ ही इसका भी श्रृंगार चला गया। इस तेजविहीन राजभवनमें एवं प्रजाओंके आँसूसे द्रवित अयोध्यामें हमारे भाई अर्ककीर्ति आदिराज अभी-तक ठहरे रहे, यह आश्चर्यकी बात है।

दूरसे ही जब तीनों कुमार अर्ककीर्तिकी ओर आ रहे थे तब पासमें बैठे हुए लोगोंसे अर्ककीर्तिने पूछा कि यह कौन है? फिर जब पास आये तो मालूम हुआ कि ये मेरे भाई हैं। पिताजीके चले जानेपर राजठीविको उन्हींके साथ इन्होंने रवाना किया मालूम होता है। पिताजी जब थे तब जब कभी ये कुमार आते तो बहुत वैभव व श्रृंगारके साथ आते थे। इनके श्रृंगारको देखनेका भाग्य पिताजीको था। परन्तु मेरा भाग्य तो दारिद्र्य-रससे युक्त भाइयोंको देखनेका है। हाय! दुःखकी बात है।

समीप आकर भाईके चरणोंमें तीनोंने मस्तक रखा एवं तीनों कुमार मिलकर दुःखसे रोने लगे। भाई! पिताजीको कहाँ भेजा? हमें अगर पहलेसे कहते तो क्या कुछ बिगड़ता था? हमने तुम्हारा ऐसा कौनसा अपराध किया था? इस प्रकार पादस्पर्श कर रोने लगे।

अर्ककीर्तिके आँखोंमें भी पानी भर आया। तीनों कुमारोंको उठाते हुए कहने लगा कि भाई मेरी गलती हुई, क्षमा करो। उन कुमारोंने आदिराजको नमस्कार किया। दुःखोदयके साथ उसने आलिंगन दिया।

एवं तीनों कुमारोंको बैठनेके लिए कहा। वे तीनों पासमें ही आसनपर बैठ गए। अर्ककीर्ति राजाने कहा कि भाई महाबल ! पिताजीको मोक्ष जानेमें कुछ देरी नहीं लगी। नहीं तो क्या तुम्हें मैं खबर नहीं देता, यह कैसे हो सकता है। भाई ! आयुष्य एकदम क्षीण हो गया इसलिए पिताजीने इस भूभारको जबर्दस्ती मुझपर डालकर वायुवेगसे कर्मोंको जलाया एवं कैवल्यधाममें पधारे।

उत्तर में बुद्धिमान् महाबल राजाने कहा कि भैया ! आपका इसमें क्या दोष है, हमें कुछ दुःख हुआ, इससे बोले। परन्तु हम पुण्यहीन हैं। अतएव हमें पिताजीका अन्तिम दर्शन नहीं हो सका।

भैया ! पिताजी गए तो क्या हुआ ? अब तो हमारे लिए पिताजीके स्थानमें आप ही हैं ! इसलिए हमें आज आपसे एक निवेदन करना है। यह कहते हुए तीनों कुमार एकदम उठे व महाबल राजाने बड़े भाईको हाथ जोड़कर कहा कि भैय्या ! कृपाकर हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करना चाहिए। भैय्या ! पिताजी जब गए तभी हमारे मनका संतोष भी उन्हींके साथ चला गया, मनमें भारी व्यथा हो रही है। शरीर हमें भारस्वरूप मालूम हो रहा है। अब तो यह जीवन हमें स्वप्नसा मालूम हो रहा है।

हिमवान् पर्वत और सागरांत पृथ्वीको पालन करनेवाले पिताजीका अखंड षट्खंडवैभव जब अदृश्य हुआ तो जीवनोपयोगके लिए प्रदत्त हमारी छोटीसी सम्पत्ति स्थिर कैसे मानी जा सकती है ?

भैया ! पिताजीने अवधिज्ञानके बलसे अपने आयुष्यके अंतको पहचान लिया। एवं योग्य उपाय कर मुक्तिको चले गये। हमें तो हमारे आयुष्यको जाननेकी सामर्थ्य ही कहा है ?

ज्येष्ठ सहोदर ! शरीर नाशशील है, आत्मा अविनश्वर है, यह बात बार-बार पिताजी हमें कहते थे ऐसी हालतमें नाशशील शरीरको ही विश्वास कर नष्ट होना क्या बुद्धिमानोंका कर्तव्य है ? आप ही कहिये। भैया ! इसलिए हम दीक्षावनमें जाते हैं। हमें सन्तोषके साथ भेजो।" इस प्रकार कहते हुए तीनों कुमार अर्ककीर्तिके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार करने लगे। राजा अर्ककीर्तिके हृदयमें बड़ा भारी धक्का पहुँचा। उन्होंने भाइयोंसे कहा कि भाई ! उठो, अपन विचार करेंगे। तब तीनों कुमारोंने कहा कि हम उठ नहीं सकते हैं, हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करोगे तो उठेंगे। नहीं तो नहीं उठेंगे।

पुनः अर्ककीर्तिने कहा कि भाई ! इसमें वादको क्या जरूरत है ! आदिराज तुम हम मिलकर योग्य विचार करेंगे। उठो, तब वे कुमार उठकर खड़े हुए।

पुनः अर्ककीर्तिने कहा कि आप लोगोंने विचार जो किया है वह उत्तम है। उसे करनेमें कोई हर्ज नहीं है। पिताजीके चले जानेपर राज्यवैभवको भोगना उचित नहीं है। दीक्षा लेना ही उचित है। तथापि एक विचार सुन लो। पिताजीके वियोगसे सभी प्रजा परिवार दुःखसागरमें मग्न हैं। इसलिए कमसे कम एक वर्ष अपन रहकर सबका दुःख शांत करें। फिर तुम हम सभी मिलकर दीक्षा लेंगे व तपश्चर्या करें, यह मेरी इच्छा है। तबतक ठहरना चाहिये। साथमें अर्ककीर्तिने आदिराजकी ओर संकेत करते हुए कहा कि आदिराज ! इस सम्बन्धमें तुम क्या कहते हो। तब आदिराजने भी उन भाइयोंसे कहा कि भैया ठीक तो कह रहे हैं। केवल वर्षकी बात है। अधिक नहीं इसलिए तुमको मान लेना चाहिये।

ज्येष्ठ सहोदरोंके वचनको सुनकर महाबल राजाने कहा कि भैया ! मनुष्यको क्षणमें एक परिणाम उत्पन्न होता है। चित्त चंचल है। जीवको जो विरक्ति आज जागृत हुई है वह यदि विलीन हो गई तो फिर बुलाने-पर भी नहीं आ सकती है सबको सन्तुष्ट कर आपलोग सावकाश दीक्षाके लिए आवें। हमारे निवेदनको स्वीकृतकर आज ही हमें भेजना चाहिए। इस प्रकार कहते हुए पुनः चरणोंमें मस्तक रखा। आपको पिताजीकी शपथ है। आप दोनोंके चरणोंका शपथ है। हमलोग तो अब यहाँ नहीं रहेंगे। हमें सन्तोषके साथ भेजिये।

अर्ककीर्ति राजाने अगत्या सम्मति दे दी। भाई ! आपलोग आगे जाओ। हम लोग पीछेसे आयेंगे। तीनों भाइयोंको इस वचनको सुनकर परम हर्ष हुआ। कहने लगे कि भैया ! हम जाते हैं पोदनपुरमें हमारे कुमार हैं। उनको अपने पुत्रोंके समान संरक्षण करना है। अब उनके मनमें कोई संकल्प-विकल्प नहीं रहा।

अर्ककीर्तिने कहा कि आज हमारी पंक्तिमें बैठकर भोजन करो। कल चले जाना। उत्तरमें महाबल राजाने कहा कि भाई ! पिताजीके महलको देखनेपर शोकोद्रेक होता है। इसलिए हम यहाँ भोजनके लिए नहीं ठहरेंगे। पुनश्च दोनों भाइयोंके चरणोंको नमस्कार कर वे तीनों वहाँसे रवाना हुए। अर्ककीर्ति आदिराजके नेत्रोंमें अश्रुधारा बह रही है। परन्तु वे तीनों सहोदर हँसते हुए आनन्दसे फूलकर जा रहे हैं। संसार विचित्र है। उनके

चले जानेपर भरतेश्वरके शेष सहोदरोंके पुत्र वहाँपर शृंगारशून्य होकर आये। और उन्हींके समान शोकाकुलित हुए। वृषभसेनके पुत्र अनंतसेनेंद्र आदिको लेकर सभी भाई वहाँपर आये और अपने दुःखको व्यक्त करने लगे, उनको उनके पिताओंने केवल जन्म दिया है। परन्तु वे बाल्यकालमें ही उनको छोड़कर चले गये हैं। पीछेसे भरतेश्वरने ही उनका पालन प्रेमके साथ किया था। उनको दुःख क्यों नहीं होगा ? भरतेश्वरने अपने पुत्रोंमें व इनमें कोई भेद नहीं देखा था। अपने पुत्रोंके समान ही इनका भी पोषण किया। फिर इनको पिताके मुक्ति जानेपर शोक क्यों नहीं होगा ? वे दुःखके साथ स्त्रियोंके समान विलाप करने लगे कि हम लोगोंने पिताजीका दर्शन नहीं किया। उनको देखते तो उन्हींसे दीक्षा लिये बिना नहीं छोड़ते। वे तो हमें मार्गमें ही छोड़कर चले गये। पूर्वमें हम लोगोंने किसके व्रताचरणका तिरस्कार किया होगा ? किन सुखोंकी निन्दाकी होगी ? इसलिए हम लोगोंको उस धीरयोगीके हाथसे दीक्षा लेनेका भाग्य नहीं मिला।

तुषमाष ज्ञान प्राप्त कर पिताजीके हाथसे मनोभिलषित दीक्षा लेनेके लिए हम लोगोंने क्या वृषभराज, हंसराज आदि पुत्रोंका अतुल भाग्य पाया है ! नहीं ! अस्तु। अब हीनपुण्य हमलोग यदि अपेक्षा करें तो वह गुरु हमें क्योंकर प्राप्त हो सकता है। हमें अब भोगकी जरूरत नहीं है। दीक्षाके लिए हम जायेंगे। इस प्रकार कहते हुए उन्होंने बड़े भाईसे प्रार्थना की।

अर्ककीर्तिने कुछ दिन रुकनेके लिए कहा परन्तु उन्होंने मंजूर नहीं किया। तब अर्ककीर्तिने कहा कि अच्छा ! जाओ। हमें भी अब विशेष आशा नहीं रही है, हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे आयेंगे। जाते हुए उन भाइयोंने अपने पुत्रोंको योग्यरूपसे पालन करनेके लिए हाथ जोड़कर कहा एवं सब अलग-अलग दिशामें दीक्षाके लिए चले गये, जैसे पखेरू अलग-अलग दिशाओंमें उड़ जाते हों।

इन सहोदरोंके चले जानेपर अर्ककीर्तिकी बहिनोंके साथ अर्ककीर्तिके ३२ हजार बहनोई इस दुःखके समय सांत्वना देनेके लिए आये। कनकराज, कांतिराज आदि बहनोई शृङ्गारशून्य होकर अर्ककीर्तिके पास आये, इधर बहिनें अन्दर महलमें चली गईं। अर्ककीर्ति उनको देखकर उठा तो उसी समय उन लोगोंने भी दुःखके साथ अश्रुपात करते हुए आलिंगन दिया। एवं सभी बैठ गये। अर्ककीर्ति आदिराजको देखकर सांत्वना देते

हुए कहने लगे कि मामाजीकी वृत्ति आश्चर्यकारक है। कितनी शीघ्र दीक्षा ली। कर्मको जलाया कितना शीघ्र! और साथमें मोक्षको भी कैसे जल्दी चले गये। उनके समान अक्षुण्ण महिमाको धारण करनेवाले और कौन हैं? धन्य हैं।

षट्खंडको वश करते समय मामाजीको कुछ समय लगा। परन्तु मोक्षको वश करनेके लिए तो पौने चार घटिका ही लगी आश्चर्य है!

उस दिन लीलाके साथ राज्यको जीत लिया तो आज लीलासे ही मुक्ति साम्राज्यके अधिपति बने। मामाजी सचमुचमें कालकर्मके भी स्वामी हैं।

लोक सभी जयजयकार करे, इस प्रकारकी अतुल कीर्तिको पाकर मुक्ति चले गये। इस कार्यसे सबको संतोष होना चाहिये। आपलोग व्यर्थ दुःख क्यों करते हैं। संसारमें स्थिर होकर कौन रहने लगे हैं। मामाजी जहाँ रहते हैं वही स्थिर स्थान है। कुछ समय विश्रांति लेकर अपन सभी मुक्तिके लिए प्रस्थान करेंगे। मामाजी गये तो क्या हुआ हमें आत्म-संवेदन ज्ञानको देकर चले गये हैं। इसलिए उनके मार्गको ही अनुसरण कर अपन भी जावें व्यर्थ दुःख क्यों करना चाहिये। इस प्रकार उन लोगोंने अर्ककीर्ति व आदिराजको सांत्वना दी। अर्ककीर्तिने भी उत्तरमें कहा कि हमें दुःख नहीं है। थोड़ा-सा दुःख था, वह आपलोगोंके आनेपर चला गया। आपलोग बहुत दूरसे आकर थक गये हो। इसीका मुझे दुःख है! आपलोग अपने मामाके महलमें वैभवसे आते थे और वैभवसे जाते थे। परन्तु आज क्षोभके साथ आकर कष्ट उठा रहे हो। मेरा भाग्य ऐसा ही है।

उत्तरमें उन बहनोइयोंने कहा कि आप दोनोंके रहनेपर हमें तो मामाके समान ही आनन्द रहेगा। इसलिए आप लोग कोई चिंता मत करो। इस प्रकार कहकर ३२ हजार बंधुओंने उनके दुःख शान्त करनेका प्रयत्न किया। आदिराजको वहाँ उनके पास छोड़कर स्वयं अर्ककीर्ति अपनी बहनोंको देखनेके लिए महलके अन्दर चले गये। वहाँपर शोकसमुद्र उमड़ पड़ा। कनकावली रत्नावली आदि बहिनोंने अश्रुपात करती हुई अर्ककीर्तिके चरणोंमें लोटकर पूछा कि भैया! पिताजी कहाँ हैं? हमारी मातायें कहाँ हैं? यह महल इस प्रकार कांतिविहीन क्यों बन गया? भैया! तुम सरीखे मनुमार्गियोंके होते हुए ऐसा होना क्या उचित है?

तुम्हारे लिए जाते समय उन्होंने क्या कहा? हमें भूलकर वे क्यों चले गये? हाय! हमारा दुर्दैव है। धिक्कार हो। अर्ककीर्तिका हृदय

भी शोकसंतप्त हुआ। तथापि धैर्यके साथ उनको उठाया। एवं अनेक विधिसे सांत्वना देनेके लिए प्रयत्न किया।

बहिनो! अब दुःख करनेसे क्या होगा! मुक्तिको जो गये हैं वे लौटकर हमारे साथ पहिलेके समान क्या प्रेम कर सकते हैं? शोकसे व्यर्थ दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है?

उन्होंने शिवसुखके लिए प्रयत्न किया है! भवसुखके लिए नहीं। ऐसी हालतमें हमको आनन्द होना चाहिये। अविवेकसे दुःख करनेका कोई कारण नहीं। बहिनो! संपत्तिको छोड़कर राज्य करनेवालेके समान देहको छोड़कर वे मोक्ष साम्राज्यमें आनन्दमग्न हैं तो हमें दुःख क्यों होना चाहिये?

बुद्धिमती बहिनो! नाशशील राज्यको पिताने पालन किया तो उस दिन तुमलोग बहुत प्रसन्न हो गई थीं। अब अविनश्वर मुक्ति साम्राज्यको पिता पालन करने लगे तो क्यों नहीं सन्तुष्ट होती? दुःख क्यों करती है? अपने पिताकी शक्तिको तो देखो। तपश्चर्यामें भी शक्तिकी न्यूनता नहीं हुई। अर्धघटिकामें ही कर्मोंको नष्टकर मुक्ति चले गये। तीन लोकमें सर्वत्र उनकी प्रशंसा हुई।

हमारे पिताजी सुखसे रहे, सुखसे मुक्ति गये, हमारे सर्व बंधु मुक्ति जायेंगे। इसलिए अपनेको अब दुःख करनेकी आवश्यकता नहीं है। सहन करें, अपन भी कल जाकर उनसे मिल सकेंगे।

बहिनो! शोक करनेसे शरीर कृश होता है, आयुष्य क्षीण होता है। तुम लोगोंको मेरा शपथ है, दुःख मत करो। मंगल विचार करो। मंगल कार्य करो। इस प्रकार समझाकर अपनी बहिनोंका दुःख दूर किया। उत्तरमें बहिनोंने भी कहा कि भाई! पहिले कुछ दुःख जरूर था, अब तुम्हारे वचनोंको सुनकर तुम्हारा शपथ है, वह दुःख दूर हुआ। आदि-राज और तुम सुखसे जीवो यही हम चाहती हैं। इस प्रकार कहती हुई भाईको सर्व बहिनोंने नमस्कार किया।

तदनन्तर सर्व बहिनोंको स्नान देवार्चनादि करानेके लिए अपनी स्त्रियोंसे कहकर राजा अर्ककीर्ति अपनी राजसभामें आये। वहांपर अपने ३२ हजार बहनोइयोंको उपचार वचनसे संतुष्ट कर सेवकोंके साथ स्नानगृहमें स्नानके लिए भेजा। आदिराज और स्वयंने भी स्नानकर देवपूजा की। बादमें सभी बंधुओंके साथ बैठकर भोजन किया। इस प्रकार पितृवियोगके दुःखको सबको भुलाया।

तदनन्तर उन बहनोइयोंसे अर्ककीर्तिने कहा कि हमारे माता-पिताओंने हमको छोड़कर दीक्षा वनकी ओर प्रस्थान किया, अब महल सूनासा मालूम होता है। इसलिए कुछ दिन आप लोग यहां रहें एवं हमें आनंदित करें। उन लोगोंने भी उसे सम्मति देकर कुछ समय वहींपर निवास किया। गुणोत्तम अर्ककीर्तिने भी उनको व अपनी बहिनोंको बार-बार अनेक भोग वस्तुओंको देते हुए उनका सन्मानकर आनन्दसे अपना समय व्यतीत किया।

दूसरे दिन भानुराज विमलराज और कमलराज भी अपने पुत्र कलत्र परिवारके साथ वहांपर आये। अर्ककीर्ति आदिराजके मामा हैं, इसलिए अर्ककीर्ति आदिराजने भी उनका सामने जाकर स्वागत किया। विशेष क्या? उनका भी यथापूर्व यथेष्ठ सत्कार किया गया, स्त्रियोंको भी स्त्रियोंके द्वारा सत्कार कराया गया, इस प्रकार कुछ समय वहांपर आनन्दसे रहे।

इसी प्रकार अर्ककीर्तिसे मिलनेके लिए आनेवाले बाकी साढ़े तीन करोड़ बन्धुवर्गोंका भी उन्होंने अपने पिताके समान ही आदरातिथ्यसे यथायोग्य सत्कार किया।

सबको समादरपूर्ण व्यवहारसे संतुष्ट कर, बहिनों व उनके पतियोंका भी सत्कार कर राजेन्द्र अर्ककीर्तिने कुछ समयके बाद उनकी बिदाई की। भरतेश्वरके मुक्ति जानेपर लोकमें एक बार दुःखमय वातावरण निर्माण हुआ। परन्तु भरतेश्वरके विवेकी पुत्र अर्ककीर्तिने अपने विवेकसे उसे दूर किया। सम्राट् भरत ऐसे समयमें हमेशा उस गुरु हंसनाथके शरणमें पहुँचते थे। वहांपर सदा सुख ही सुखका उनको अनुभव होता था।

उनको हमेशा यह भावना रहती थी कि—

हे परमात्मन्! दुःख, ममकार और विस्मृति सब भिन्न-भिन्न भाव हैं, इस विवेकको जागृत करते हुए मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! चन्द्रको जीतनेकी धवलकीर्तिसे चन्द्र और सूर्यके समान विशिष्ट तेजको धारण करनेवाले चन्द्रार्ककीर्ति विजय! हे मोक्षेन्द्र! निरंजनसिद्ध! मेरा उद्धार करो!

इति सर्वनिर्वेग संधिः

—oo—

सर्वमोक्ष संधिः

प्रतिनित्य आते हुए अपने बन्धुओंका योग्य सत्कार कर राजेन्द्र अर्ककीर्ति भजते रहे। एक दिन राजसभामें सिंहासनासीन थे, उस समय एक नवीन समाचार आया।

विमलराज, भानुराज और कमलराजने अपने पुत्र कलत्रके साथ दीक्षा ली है, यह समाचार मिला। अपने भानजोंको सांत्वना देनेके लिए जब वे अयोध्यामें आये थे, उसी समय महलमें चक्रवर्तीकी सम्पत्तिको देखकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ था इसी प्रकार अर्ककीर्तिके बांधवोंमें बहुतसे लोगोंके दीक्षित होनेका समाचार उसी समय मिला। अर्ककीर्ति और आदिराजके हृदयमें भी विरक्ति जागृत हुई। भाईके मुखको देखकर अर्ककीर्ति हँसा और आदिराज भी उसके मुखको देखकर हँसा। एवं कहने लगा कि हमारे सर्व बांधव आगे चले गये। अब हमें विलम्ब क्यों करना चाहिये। हमें धिक्कार हो।

अर्ककीर्तिने भाईसे कहा कि तुम ठीक कहते हो। तुम कोई सामान्य नहीं। कैलासनाथके वंशज हो। मैं ही अभी तक फँसा हुआ हूं। अब मैं भी निकल जाऊँगा, देखो! पिताजीकी नवनिधि, चौदह रत्न एवं अपरिमित सम्पत्ति जब एकदम अदृश्य हुई तो इस सामान्य राज्यपदपर विश्वास रखना अधर्मपना है मेरे प्रभुके रहते हुए युवराज पदमें जो गौरव था, वह मुझे आज अधिपराजपदमें भी नहीं है। इसलिए मेरे इस गौरवहीन अधिराजपदको जलाओ। इसको धिक्कार हो। पहले षट्खंडके समस्त राजेन्द्र आकर हमारी सेवा करते थे। अब तो केवल अयोध्याके आसपासके राजा ही मेरे अधीन हैं क्या इसे महत्वका ऐश्वर्य कहते हैं? धिक्कार हो! जिस पिताने मुझे जन्म दिया है। उसकी आज्ञाका उल्लंघन न हो इस विचारसे मैंने भूभारको धारण किया है। यह राज्यपद उत्तम है, इसमें सुख है, इस भावनासे मैंने ग्रहण नहीं किया, अब इसे किसीको प्रदान कर देता हूं। घासकी बड़े भारी राशिके समान सोनेकी राशि मौजूद है। घासके बड़े पर्वतके समान ही वस्त्राभूषणोंका समूह है। परन्तु उन सबको अर्ककीर्तिने घासके ही समान समझा।

सुपारीके पर्वतके समान आभरणोंका समूह है। समुद्रतटकी रेतीके समान धान्यराशि है। परन्तु इन सबकी कीमत अब अर्ककीर्तिके हृदयमें एक सूखी सुपारीके अर्धभागके बराबर भी नहीं है।

सुवर्णनिर्मित महल, रत्ननिर्मित गोपुर, नाटकशाला आदि तो अब उसे श्मशानभूमि और कारावासके समान मालूम हो रहे हैं।

सौन्दर्ययुक्त अनेक स्त्रियाँ अब तो उसे कुरूपी स्त्रीवेषको धारण करनेवाले पात्रोंके समान मालूम होने लगे। राजपट्ट तो अब उसे एक बंदीखानेके पहरेके समान मालूम हो रहा है।

भरतेश्वरके समय सब कुछ महाभाग्यसे युक्त था, परन्तु उसके मुक्ति जानेपर विक्रियासे निर्मित सभी वैभव अदृश्य हुए। हाथी, घोड़ा, रथ आदि सभी उस समय उसे इन्द्रजालके समान मालूम हुए। वैराग्यका तीव्र उदय हुआ। अर्ककीतिके पुत्रोंमें बहुतसे वयस्क थे, उनको राज्य प्रदान करनेका विचार किया तो उन्होंने साफ निषेध करते हुए प्रतिज्ञा की कि हम तो इस राज्यमें नहीं रहेंगे आदिराजके प्रौढ़पुत्रोंको पट्ट बाँधनेका विचार किया तो उन्होंने भी मंजूर नहीं किया एवं सभी दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुए। जब प्रौढ़ पुत्रोंने राज्यपदको स्वीकार नहीं किया तो छह वर्ष के दो बालकोंको अधिराज और युवराज पदमें अधिष्ठित किया।

मनुराज नामक अपने कुमारको अधिराजका पट्ट और भोगराज नामक आदिराजके पुत्रको युवराज पट्ट बाँधकर उनके पालन-पोषणके लिए अन्य आप्तजनोंको नियुक्त किया।

इन दोनों कुमारोंके मामा शुभराज, मतिराज नामक सरदारोंको अतिविनयसे समझाकर उनके हाथमें दोनों पुत्रोंको सौंप दिया। बाकी सभी बांधव मित्र दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुए। परन्तु सन्मतिनामक मंत्रीको आग्रहसे ठहराया कि तुम ये पुत्र बड़े हों तबतक वहाँ ठहरना, बादमें दीक्षा लेना। साथमें उसका यथेष्ट सत्कार भी किया गया। देश महल, हाथी, घोड़ा, प्रजा, परिवार, खजाना, निधि आदि जो कुछ भी है उसे आप लोग देखते रहना, और सुखसे जीना इस प्रकार निराशासे उसने उनको कह दिया।

आदिराजसे तपोवनको चलनेके लिए कहनेसे पहिले ही वह उठ खड़ा हुआ। और दोनों दीक्षाके लिए निकले। सेवकोंने चमर ढोलते हुए दो सुन्दर विमानको लाकर सामने रख दिया तो एक विमानपर अर्ककीर्ति चढ़ गया। दूसरे विमानपर आदिराजको चढ़नेके लिए कहा। आदिराज ने उसको निषेध किया कि सामान्य रूपसे हो आऊँगा। वहाँपर उसने कहा कि वह राजनीतिको छोड़ना नहीं चाहता है। चमर, विमान आदि तो

पट्टाभिषिक्त राजाके लिए चाहिए, युवराजके लिए क्या जरूरत है? अविवेकके आचरणको कौन कर सकते हैं। इसे मैं नहीं चाहता हूँ।

अर्ककीतिने आग्रह किया कि भाई! अब तो अपने मोक्षपथिक हैं, इसे मोक्षयान समझकर बैठनेमें हर्ज नहीं, तथापि वह तैयार नहीं हुआ कहने लगा कि दीक्षा लेनेतक राज्यांगके संरक्षणकी आवश्यकता है।

बड़े भाईके उस विमान और चमरके साथ चलनेपर आदिराजने भी एक पालकीपर चढ़कर वहाँसे प्रयाण किया। महलमें उन छोटे बच्चोंको पालनेवाली दो दासियाँ रह गई हैं। बाकी सभी स्त्रियाँ उनके योग्य सुवर्ण पालकियोंपर चढ़कर इनके पीछेसे आ रही हैं। सारा देश ही निर्वेगरसमें मग्न हुआ है, इसलिए वहाँपर रोनेवाले रोकनेवाले वगैरह कोई नहीं है। अतएव विशेष देरी न करके ही राजेन्द्र अर्ककीति आगे बढ़े। नगरसे बाहर पहुँचकर भरतेश्वरने जिस जंगलमें दीक्षा ली थी उसी जंगलमें प्रविष्ट हुए। और वहाँपर एक चन्दनवृक्षके समीप अपने विमानसे उतरे। सब लोग जयजयकार कर रहे थे। पालकीसे उतरे हुए आदिराजको भी बुलाकर अपने पास ही खड़ा कर लिया। बाकी सभी जरा दूर सरककर खड़े हुए और स्त्रियाँ भी कुछ दूर अलग खड़ी हो गईं।

गुरु हंसनाथको ही अपना गुरु समझकर दूसरोंकी अपेक्षा न करते हुए अपने आप ही दीक्षित होनेके लिए सन्नद्ध हुए। वे भरतेश्वरके ही तो पुत्र हैं।

पिताकी दीक्षाके समय जिस प्रकार परदा धरा था उसी प्रकार इनको भी परदा धरा गया। पिताने जिस प्रकार दीक्षा ली उसी प्रकार इन्होंने भी दीक्षा ली, इतना ही कहना पर्याप्त है। भरतेशके समान ही दीक्षा ली। परन्तु भरतेशके समान अन्तर्मुहूर्त समयमें कर्मोंका नाश उन्होंने नहीं किया। कुछ समय अधिक लगा।

निर्मल शिलातलपर दोनों भाई कमलासनमें बैठ गये। और समऋजु-देहसे विराजमान होकर आँख मींच लीं एवं चंचलमनको स्थिर किया।

आँख मींचने मात्रसे भाईका सम्बन्ध भूल गये। अब वहाँपर कोई भ्रातृमोह नहीं है। मनकी स्थिरता आत्मामें होते ही उन्हें शरीर भिन्न रूपसे अनुभवमें आने लगा।

हर पदार्थका मोह तो पहलेसे नष्ट हुआ था। सहोदर स्नेह भी अब दूर हो गया है। इसलिए अब उन योगियोंको परमात्मकलाकी वृद्धिके साथ कर्मकी निर्जरा हो रही है।

लोकमें स्नेह (तेल) का स्पर्श होनेपर अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है। परन्तु ध्यानाग्नि तो स्नेह मोहके संसर्गसे बुझ जाती है। स्नेह जितना दूर हो जाय उतना ही यह ध्यान बढ़ता है, सचमुचमें यह विचित्र है।

बाहरके लोग समझते थे कि यह बड़ा भाई है, बड़ा तपस्वी है, यह छोटा भाई है, छोटा तपस्वी है। परन्तु अन्दर न छोटा है और न बड़ा है। दोनोंके हृदयमें चिदानन्दमय प्रकाश बराबरीसे बढ़ रहा है।

लोकमें वय, शरीर, वंश आदिके द्वारा मनुष्योंमें भेद देखनेमें आता है, परन्तु परमार्थसे आत्माको देखनेपर वहाँ कुछ भी भेद नहीं है।

हाय उनके ध्याननिष्ठुरताका क्या वर्णन करना। कपासकी राशिपर दबी हुई चिनगारीके समान कर्मकी राशिको वह ध्यानाग्नि लग गई। वर्णन करते विलम्ब क्यों करना चाहिये। उन दोनों तपोधनोंने अपने विशुद्ध ध्यानबलके द्वारा घातिया कर्मको एक साथ नष्ट किया। आश्चर्य है, ढाई घटिकामें कर्मोंको नष्ट करनेका महत्त्व पिताजीके लिए रहने दो शायद इसीलिए कुछ अधिक समय लेकर अर्थात् साढ़े पाँच घटिकामें उन्होंने घातिया कर्मोंको नष्ट किया।

पिताने दीक्षा लेते ही श्रेण्यारोहण किया। परन्तु पुत्रोंने दीक्षा लेकर चार घटिका तक आत्माराममें विश्रांति लेकर अनंतर श्रेण्यारोहण किया। श्रेणिमें तो अन्तर्मुहूर्त ही लगा।

कर्मोंको उन्होंने किस क्रमसे नष्ट किया यह भुजबलियोगिके श्रेण्यारोहणके समय गिनाया है, उसी प्रकार समझ लेना चाहिए। कर्मोंके नाश होनेपर भरत बाहुबलीके समान ही गुणोंको प्राप्त किया।

कर्कश कर्मोंके दूर होनेपर अर्ककीर्ति और आदिराज कोटिचन्द्रार्क प्रकाशको पाकर इस भूतलसे ५००० धनुष प्रमाण आकाश प्रदेशमें जा विराजे। चारों ओरसे सुर नरोरगदेव जयजयकार करते हुए आये विशेष क्या? दोनों केवलियोंकी अलग-अलग गंधकुटीका निर्माण किया गया। कमलको स्पर्श न करते हुए कमलासनपर दोनों परमात्मा विराजमान हैं सर्व भव्य जनोंने आकर पूजा की, स्तोत्र किया। वहाँ महोत्सव हुआ।

देवेन्द्रके प्रश्न पूछनेपर भरत सर्वज्ञने जिस प्रकार उपदेश दिया उसी प्रकार इन केवलियोंने भी धर्मवर्षा की। भरतजिनने जिस प्रकार स्त्रियोंको दीक्षा दी थी, उसी प्रकार इन्होंने भी स्त्रियोंको दीक्षा दी।

उद्दंडमति, अष्टचन्द्रराज, अयोध्यांक एवं कुछ अन्य राजाओंने भी

दीक्षा ली। ज्ञानकल्याणकी पूजा कर देवेन्द्र स्वर्गलोकको चला गया। परन्तु प्रतिनित्य अनेक भव्यगण, तपोधन आनन्दसे वहाँपर आते थे एवं केवलियोंका दर्शन लेते थे। श्री कुन्तलावती व कुसुमाजी साध्वीको बहुत ही हर्ष हो रहा। अभी उनके हृदयमें पुत्रभावनाका अंश विद्यमान है। इन दोनोंके हृदयमें मातृमोह नहीं है। परन्तु माताओंके हृदयमें अभी तक पुत्र भावना विद्यमान है यह तो कर्मकी विचित्रता है। वह शरीरके अस्तित्वमें बराबर रहता ही है।

पाठकोंको पहलेसे ज्ञात है कि बाहुबलिके तीन पुत्र और अनंत सेनेन्द्र आदि राजा पहिलेसे ही दीक्षा लेकर चले गये हैं। अर्ककीर्ति और आदि-राजने स्वयं ही दीक्षा ली। परन्तु उन सबने गंधकुटी पहुँचकर जिनगुरु साक्षीपूर्वक दीक्षा ली है। परन्तु ये तो पिताके तत्त्वोपदेशको बार-बार सुनकर पिताके समान ही आत्माको देखते हुए स्वयं दीक्षित हुए। अन्य लोगोंको यह सामर्थ्य क्योंकर प्राप्त हो सकता है।

अपने अंतरंगको देखकर जो आत्मानुभव करते हैं, उनको आत्मा ही गुरु है। परन्तु जिनको आत्मानुभव करते हैं, उनको दीक्षित होनेके लिए अन्य गुरुकी आवश्यकता है। यही निश्चय व्यवहारकला है। स्याद्वादका रहस्य है।

किसी वस्तुके खोनेपर यदि स्वयंको नहीं मिले तो दूसरे अपने स्नेही बन्धुओंको साथ लेकर ढूंढना उचित है। यदि वह पदार्थ स्वयंको ही मिल गया तो दूसरोंकी सहायता की क्या जरूरत है।

इन सहोदरोंके दीक्षित होनेके बाद कनकराज, कान्तराज आदि सालोंने भी दीक्षा ली, इसी प्रकार उनके माता-पिता, भाई आदि सभी दीक्षित हुए। एवं सर्व बहिनोंने भी दीक्षा ली। भाजाजी रत्नाजी, कनकावली आदि बहिनोंने भी अपने पतियोंके साथ ही वैराग्यभरसे दीक्षा ली।

भरतेश्वरके रहनेपर तो यह भरतभूमि सम्पत्ति वैभवसे भरित थी। परन्तु उसके चले जानेपर वैराग्य समुद्र उमड़ पड़ा। एवं सर्वत्र व्याप्त हो गया।

मोहनीय कर्मका जब सर्वथा अभाव हुआ तभी ममकारका अभाव हुआ। अब तो ये केवली परमनिस्पृह हैं इसलिए दोनों केवलियोंकी गंध-कुटी भिन्न-भिन्न प्रदेशके प्राणियोंके पुण्यानुसार भिन्न-भिन्न दिशामें चली गई। सब लोग जयजयकार कर रहे थे।

पिताने घातियाकर्मोंको नष्ट कर दूसरे ही दिन मोक्षको प्राप्त किया। परन्तु इनको घातिया कर्मोंको नष्ट करनेके बाद कुछ समय विहार करना पड़ा। पिताके समान घातिया कर्मोंको तो शीघ्र नष्ट किया। परन्तु अघातिया कर्मोंको दूर करनेके लिए कुछ समय अधिक लगा।

पिताने अपने आयुष्यके अवसानको जानकर दीक्षा ली थी। परन्तु इन्होंने आयुष्यको बहुत सा भाग शेष रहनेपर भी दीक्षा ली है। इसलिए आयुष्यको व्यतीत करनेके लिए गंधकुटीमें रहकर कुछ समय विहार करना पड़ा, जिससे जगत्को परमानन्द प्राप्त हुआ।

अर्ककीर्ति और आदिराज केवलीका विहार कलिंग, काश्मीर, लाट, कर्णाट, पांचाल, सौराष्ट्र, नेपाल, मालव, हुरमुंजि, काशि, हम्मीर, बंगाल, बर्बर, सिन्धु, पल्लव, मगध, और तुर्कस्थान आदि सभी देशोंमें हुआ एवं सर्वत्र उपदेशामृतको पान कराकर सबको संतुष्ट किया।

जहाँ तहाँ भव्योंने उपस्थित होकर केवलियोंकी अर्चाकी पूजा की, वंदनाएँकी, और आत्महितको पूछनेपर दिव्यध्वनिसे आत्मसिद्धिके मार्गको निरूपणकर उनका उद्धार किया।

विशेष क्या वर्णन किया जाय? बहुत समय तक धर्मवर्षा करते हुए दोनों केवलियोंने विहार किया एवं लोकमें धर्मपद्धतिका प्रकाश किया। अब आयुष्यका अन्त समीप आया तो उन्होंने समाधियोगको धारण किया।

अर्ककीर्ति केवलीने रौप्यपर्वतसे अघातिया कर्मोंको नष्ट कर मुक्ति प्राप्त किया। देवेन्द्र आया व निर्वाणपूजा कर चला गया। इसी प्रकार कुछ दिनके बाद आदिकेवलीने भी अघातिया कर्मोंको नष्ट कर उसी पर्वतसे मुक्तिको प्राप्त किया। अन्तिम मंगलविधि तो पूर्वोक्त प्रकारसे ही की गई। वृषभनाथ हंसनाथ आदि भरतपुत्रों एवं बाहुबलिके पुत्रोंने भी जहाँ तहाँ गिरिवननदीतटोंमें तपश्चर्या कर मुक्तिको प्राप्त किया।

अर्जिकाओंने घोर तपश्चर्याकर स्त्रीपर्यायको नष्ट करते हुए पुरुष होकर स्वर्गमें जन्म लिया।

आदिप्रभुके निर्वाणके बाद चक्रवर्तीकी माताओंको स्वर्गलोकी प्राप्ति हुई। भरतेशके मोक्ष जानेके बाद उनकी रानियोंको भी स्वर्गलोकमें पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई। आदिनाथके अनंतर ही कच्छ महाकच्छ योगियोंको मोक्षकी प्राप्ति हुई और भरतेशके बाद बाहुबलि नमि विनमि ने वृषभसेन

को मुक्तिकी प्राप्ति हुई। प्रणयचन्द्र, गुणवसंतक मन्त्रीने आदिचक्रेशकी अनुमतिसे आदिनाथसे दीक्षा ली एवं तपश्चर्याकर मोक्षको चले गये। दक्षिण नागर आदि भरतेशके आठ मित्र, मंत्री व सेनापति भी दीक्षित होकर मुक्ति चले गये। वे भरतेशको छोड़कर अन्य स्थानमें कैसे रह सकते हैं?

अब किस किसका नाम लें? मरीचीकुमारको छोड़कर बाकी सर्व भरतेश्वरके पुत्र व भाई सबके सब मोक्षधाममें पहुँचे।

सम्राट्के जमाताओंमें कुछ तो स्वर्गमें और कुछ तो मोक्षमें चले गये, और पुत्रियोंने विशिष्ट तपश्चर्याकर स्वर्गलोकमें पुरुषत्वको प्राप्त किया।

विमलराज, कमलराज और भानुराजने मुक्तिको प्राप्त किया। शेष बांधवोंमें किसीने स्वर्ग और किसीने मोक्षको क्रमसे प्राप्त किया।

देवकुलको दीक्षा नहीं है, इसलिए गंगादेव और सिंधुदेव अपनी देवियोंके साथ घरमें ही रहे। नहीं तो वे भी घरमें नहीं रह सकते थे। इसी प्रकार मागधामरादि व्यंतरेन्द्र भी खिन्न होकर महलमें ही रहे। वे दीक्षित नहीं हो सकते थे, नहीं तो उस गुणोत्तम आदिचक्रेशके वियोग सहन करते हुए इस भूभागमें कौन रह सकते हैं?

वह भरतेश्वर गुरुहंसनाथपर मुग्ध होकर चेतोरंगमें उसे देखते थे तो सागरांत पृथ्वीके प्रजाजन उनकी वृत्तिपर प्रसन्न थे। आत्मारामपर कौन मुग्ध नहीं होंगे?

उसे जाने दो। वायुकी सामर्थ्यसे वृद्धत्वको प्राप्त न करते हुए सदा जवानीमें रहना क्या आश्चर्यकी बात नहीं है? ९६ हजार रानियोंमें यत्किंचित् भी मत्सर उत्पन्न न होने देते हुए रहनेवाले विवेकीपर कौन मुग्ध नहीं होंगे? परिग्रहोंको त्याग कर सभी मनःशुद्धिको प्राप्त करते हैं। परन्तु परिग्रहोंको ग्रहण करते हुए आत्मशुद्धि करनेवाले कौन हैं? सम्पत्तिके होनेपर नीचवृत्तिसे चलनेवाले लोकमें बहुत हैं, भरतेश्वरके समान सकलैश्वर्यसे सम्पन्न होकर गम्भीरतासे चलनेवाले कौन हैं? दूरदर्शितासे विषयको जाननेका प्रकार बुद्धिमत्तासे बोलनेका क्रम, प्रजा परिवारके पालनेका प्रबन्ध, आजके सुख और कलकी आत्मसिद्धिकी ओर दृष्टि, यह सब गुण भरतेश्वरमें भरे हुए थे। मित्रोंका विनय, मंत्रियोंका परामर्श, सेनापति, मागधामरादिका स्नेह, सत्कवि और विद्वानोंका समादर लोकमें चक्रेशके समान और किसे प्राप्त हो सकते हैं?

माता-पिताओंकी भक्ति, बहिनोंकी प्रीति, सालोंकी सरसता, पुत्र-पुत्रियोंका प्रेम और सबसे अधिक स्त्रियोंका संतोष भरतेश्वरके समान किसे प्राप्त हो सकते हैं। राज्यपालनके समय कोई चिंता नहीं, तपश्चर्याके समय कोई कष्ट नहीं। सन्तोषमें ही थे, और सन्तोषके साथ ही मुक्ति गये। धन्य हैं।

मुक्तात्मा सभी सदृश्य है। परन्तु संसारमें अतुल भोगके बीच रहने पर भी आत्मशक्तिको जानकर क्षणमात्रमें मुक्तिको प्राप्त करनेवाली मुक्तिके प्रति मेरा हृदय आकृष्ट हुआ। पिताको दो रानियोंके रहनेपर भी हजार वर्ष तपश्चर्या कर मुक्ति जाना पड़ा, कुछ कम लाख रानियोंके होते हुए भी भरतेश्वरने क्षणमात्रमें मोक्ष प्राप्त किया। यह आश्चर्य है। इसमें छिपानेकी बात क्या है? प्रथमानुयोगमें प्रसिद्ध त्रेसठशलाका पुरुषोंमें इस पुरुषोत्तम—भरतेश्वरको सर्वश्रेष्ठ समझकर उसकी प्रशंसा संतोषके साथ मैंने की।

भोगोंके बीच रहते हुए भी हंसनाथके योगमें मग्न होकर क्षणमात्रमें मुक्तिको प्राप्त होनेवाले भरतभास्करका यदि वर्णन न करें तो रत्नाकर सिद्ध आत्मसुखी कैसे हो सकता है, वह गँवार कहलाने योग्य है।

श्रृंगारके वशीभूत होकर भोगकथाओंको सुनते हुए भव्यगण न बिगड़े इस हेतुसे अंगसुखी और मोक्षसुखी भरतेश्वरका कथन श्रृंगारके साथ वर्णन किया।

मैंने काव्यमें दुष्ट, दुराचारी व नीच सतियोंका वर्णन नहीं किया है। सातिशय पुण्यशील भरतेश्वर व उनकी स्त्रियोंका वर्णन किया है जो इसे स्मरण करेंगे उनको पुण्यका बंध होगा।

इस कथानकको मैंने जब वर्णन किया तब लोकमें बहुतसे लोगोंको हर्ष हुआ। परन्तु ८-४ गुण्डोंको बहुत दुःख भी हुआ। मैंने कोई लाभ व कीर्तिकी लोलुपतासे इस कृतिका निर्माण नहीं किया। कीर्ति तो अपने आप आ जाती है। परन्तु कुछ धूर्त कीर्तिकी अपेक्षा करते हुए उसकी प्रतिक्षा करते हैं। कीर्तिकी कामना से वे कविता करने लग जाते परन्तु वह आगे नहीं बढ़ती है, और न ही कानको ही शोभती है। फिर कुछ भी न बने तो "जाने दो, इस नवीन कविताको" कहकर प्राचीन शास्त्रोंमें गड़बड़ करते हैं। वे लोग एक महीनेमें जो शास्त्रका अध्ययन करते हैं वे मुझे एक दिनमें अवगत होते हैं। तथापि उन बाह्यविषयोंके प्रतिपादनसे क्या प्रयोजन है, यह समझकर मैं अन्तरंगमें मग्न रहा। बाह्य वाक्यप्रपंच

को छोड़कर मैं रहता था। परन्तु खा-पीकर मस्त भट्टारकोंके समान वे अनेक भारोंसे युक्त होनेपर भी भवसेन गुरुके समान बोलते थे।

शरीरमें स्थित आत्माको नग्नकर उसका मैं निरीक्षण करता था। परन्तु वे शरीरको नग्नकर आत्माको अंधकारमें रखते हुए दुनियामें फिर रहे थे। किसी भी प्रयत्नसे भी वे मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सके और उल्टा उनकी ही निंदा लोकमें होने लगी तो उस दुःखसे वे अज्ञानी मेरे काव्यकी निंदा करने लगे। सूर्यको तिरस्कृत करनेवाले उल्लूके समान तर्क पुराण आदिके बहाने मेरी कृतिकी निंदा करने लगे। मैं तो उनकी परवाह न कर मौनसे ही रहा, परन्तु विद्वान् व राजाओंने ही उनको दबाया। ध्यानमें जब चित्त नहीं लगा तो मैंने आत्मशीलकी शुद्धिके लिए मैंने काव्यकी रचना की, किसीके साथ ईर्षा व स्पर्धाके वशीभूत होकर ग्रन्थका निर्माण नहीं किया। इसलिए मौनसे ही रहा।

हंसनाथकी शक्तिसे विरचित काव्यको लोकादर मिलनेमें संशय क्या है! मेरी सूचनाके पहिले ही विद्वान्, मुनिगण व राजाधिराज इसे चाहकर उठा ले गये।

कवि-परिचय

मुझे लोकमें क्षत्रिय वंशज, कर्नाटक क्षेत्रका अण्ण कहते हैं, परन्तु यह सब मेरे विशेषण नहीं हैं, इनको मैं अपने शरीरका विशेषण समझता हूँ। मैं सिद्धपदके प्रति मुग्ध हूँ इसलिए रत्नाकरसिद्ध कहनेमें कभी-कभी मुझे प्रसन्नता होती है।

शुद्धनिश्चय विचारमें निरंजनसिद्ध ही मैं कहलाता हूँ। जन्म मरण रोग शोकादिकसे युक्त माता-पिताके परिचयसे अपना परिचय लोग कराते हैं। परन्तु मैं तो श्रीमंदरस्वामीको अपने पिता कहनेमें आनन्द मानता हूँ। मेरे जीवनमें एक रहस्य है, सिद्धान्तके तत्वको समझकर, लोकमें विशेष गलबला न करते हुए उसका मैं आचरण करता हूँ चरित्रमें प्रतिपादित रहस्य कोई विशेष नहीं है। आत्मरहस्य और भी अधिक हैं। उसे कोई सीमा नहीं है।

मेरे दीक्षा गुरु चारुकीर्ति योगी हैं, मोक्षमार्गगुरु हंसनाथ हैं। यह अक्षुण्णभव्य रत्नाकरसिद्ध व्यवहार निश्चयमें अतिदक्ष हैं। देशिगणाग्रणि चारुकीर्त्याचार्यने जब दीक्षा दी तो श्री गुरु हंसनाथने उसमें प्रकाश देकर मेरी रक्षाकी। गुरु हंसनाथकी कृपासे सिद्धान्तके सारको समझकर आत्म

लीलाके लिए भरतेश-वैभव काव्यकी रचनाकी, आत्मसुखकी अपेक्षा करने-वाले उसे अध्ययन करें।

जिनको चाहिये वे सुनें, जिन्हें नहीं चाहिये वे न सुनें, उपेक्षा करें। मुझे न उसमें व्याकुल है और न संतोष है। मैं तो निराकांक्षी हूं।

भोगविजयको आदि लेकर दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजयका वर्णन किया है और यह पांचवां अर्ककीर्तिविजय है। यहांपर पंचकल्याण-की समाप्ति होती है। पंचविजयोंका भक्तिसे अध्ययनकर जो प्रभावना करते हैं वे नियमसे पंचकल्याणको पाकर मुक्ति जाते हैं। यह निश्चित सिद्धान्त है।

भरतेश वैभव अनुपम है, भरतेशके समान ही भरतेशके पुत्र भी राज्य वैभवको भोगकर मोक्षसाम्राज्यके अधिपति बने। यह भरतेशके सातिशय पुण्यका फल है।

इस जिनकथाको जो कोई भी सुनते हैं, उनके पापबीजका नाश होता है। लोकमें उनका तेज बढ़ता है पुण्यकी वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, आगे जाकर वे नियमसे अपराजितेश्वरका दर्शन करेंगे।

प्रेमसे इस ग्रन्थका जो स्वाध्याय करते हैं, गाते हैं, सुनते हैं एवं सुनकर आनंदित होते हैं वे नियमसे देवलोकमें जन्म लेकर कल श्रीमंदर स्वामीका दर्शन करेंगे।

वृषभमासमें प्रारम्भ होकर कुम्भमासमें इस कृतिकी पूर्ति हुई। इसलिए हे वृषभांक, हंसनाथ! चिदम्बर पुरुष! परमात्मन! तुम्हारी जय हो।

हे सिद्धात्मन्! आनन्द-लोकनाट्यावलोकमें वश हो। ब्रह्मानन्द सिद्ध हो! समृद्ध हो! ध्यानैकगम्य हो! हे मोक्ष-संधान! निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये, यही मेरी प्रार्थना है।

इति सर्वमोक्ष संधि

अर्ककीर्तिविजय नामक पंचकल्याणं समाप्तम्

(इति भद्रं भूयात्)